चन्दा झा कृत

मिथिला भाषा रामायण

(मैथिली रामायण)

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक : पं॰ गोविन्द झा

प्रकाशक : भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता।

'संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है', यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली लिखी जानेवाली लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। स्वरों-व्यंजनों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। स्माल्, कैपिटल्, इटैलिक्स् के समान अनेकरूपा नहीं; बस एक ही रूप में लिखना, बोलना, छापना और प्रत्येक अक्षर का समान वजन पर

हिन्दी-मैथिली (देवनागरी) वर्णमाला				
अ	आ	इ	ई	उ
ऊ	ऋ	ए	ऐ	ओ
	औ	अं	अः	
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	क्ष	त्र
	ज्ञ	ड़	ढ़	

एकाक्षरी नाम। उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अतः वे सब नागरी के समान ही विश्व की अन्य लिपियों की अपेक्षा 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्‌भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों के रूप में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियां 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से खड़ी बोली का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) तो है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता से प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि देशी-विदेशी अन्य सभी लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अतः अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से विश्व की समस्त अ-लिप्यन्तरित ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश, सुरयानी आदि का वाङ्मय रह गया। जगत् तो दूर, राष्ट्र का ही प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नहीं करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है

अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयल की क्षति नही होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को 'भी' अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नही निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता, युगों की मानव-शृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को रुद्ध कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र है। किन्तु विदेशों में बसने वाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मान कर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर, उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। अरब का पेट्रोल हम नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपो मे वैज्ञानिकता नहीं है। बे, काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क मे समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नही रखती। उनको लिपि में कहाँ तक और कैसे समाविष्ट

किया जाय ?'' यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अलबत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं— किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आजादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में, ज़रूरी मानकर, उन विशिष्ट भाषाई स्वर-व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "ख़िल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर(स०)का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक— चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहां तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है ? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ— उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिप्थांग)आदि बनते हैं। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लहजा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार

से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी "पहले" का शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेजी के उद्भट विद्वान् अंग्रेजी में भाषण देते हैं—उनके लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेजी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार को वरीयता (तर्जीह)।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस शोध-समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे जरूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी वर्णमालाओं में एकार तथा ओकार की ह्रस्व,दीर्घ —दोनों मात्राएँ हम बोलते हैं, किन्तु पृथक् लिखते नहीं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल पर नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वजों की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् कर दिये। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, जबर-जेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है—(अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली हिन्दी-उर्दू के ऐ, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नि, ये सात स्वर; इनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ तो अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का उनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके

मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो 'ब्रह्म' ही है। " बेस्ट् इज़् द ग्रेटेस्ट् ॲनिमी ऑफ़् गुड् । " इसलिए शग़ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो गुजराती लिपि की भाँति अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" राष्ट्रभाषा होने पर, भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने पर, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता, संस्कृत का अपार ज्ञान-भण्डार सबको प्रत्यक्ष होता, और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। *संस्कृत देश-काल-पात्र के प्रभाव से मुक्त, अव्यय (कभी न बदलने-वाली), सदाबहार भाषा है। अन्य सब भाषाएँ देश-काल-पात्र के प्रभाव से नहीं बचतीं।

आज क्या करना है ?

किन्तु अब "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर, नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— ("ही" नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व चरितार्थ होगा।

—नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट,

एक लिपि, एक संस्कृति

[आनन्द बाजार पत्रिका, कलकत्ता, ९ फ़रवरी, १९८६ में प्रकाशित]

(श्री चित्तरञ्जन बन्द्योपाध्याय*)

भारते रोमक लिपि प्रथम प्रवर्त्तन करेछिल पोर्तुगीजरा। बांगला भाषाय सर्वप्रथम रोमक लिपिर व्यवहार ताराइ करे। १७४३ ख्रीष्टाब्दे आस्सूम्प साँत बांग्ला-पोर्तुगीज शब्द-तालिका सकलन करे मुद्रित करेन रोमक लिपिते। यतदिन देशीय भाषार हरफ निर्माणशिल्पेर उन्नति घटेनि ततदिन पर्यन्त मिशनारीरा रोमान हरफ व्यवहार करे छेन। अन्यान्य देशे, येमन आफ्रिकाय एवं येखाने समृद्ध वर्णमाला छिल ना सेखानेओ ख्रीष्टीन धर्म प्रचारेर जन्य मिशनारीरा ये सब बइपत्र छेपेछेन ताते रोमक लिपि व्यवहार करा हयेछे। इस्ट इन्डिया कोम्पानिर अधिकार यखन भारते मोटामुटिरूपे प्रतिष्ठित हय तखन अनुभूत हलये, एकटि देशेर मध्ये एत बिभिन्न भाषा एवं बिचित्र वर्णमाला सुष्ठु प्रशासनेर पक्षे बिशेष बाधार कारण। शुधु प्रशासनिक क्षेत्रेइ ये लिपि वैचित्र्य बाधार सृष्टि करे ता नय, शिक्षा ओ संस्कृतिर क्षेत्रेओ एइ वैचित्र्य अन्तराय हये दाँड़ाय। एइ परिस्थिति उपलब्धि करे कोम्पानिर कोनो कोनो शिक्षित (देशीय) कर्मचारी ऊनविंश शताब्दी प्रथमार्धे प्रस्ताव करेछिलेन ये. भारतीय भाषार जन्य रोमक लिपि प्रचलन करा होक। एइ निये दीर्घकाल नाना बितर्क हयेछे। केउ केउ दृष्टान्त स्वरूप रोमक लिपिते किछु किछु बइपत्र छेपेओ वेर करेछिलेन। रोमक लिपि व्यवहारेर सर्वापेक्षा उल्लेखयोग्य दृष्टान्त हल दुर्गेशनन्दिनीर रोमक लिपिते लिप्यन्तर। १८८१ ख्रीष्टाब्दे पण्डित हरप्रसाद शास्त्री एवं जे, एफ० ब्राउन एइ काजटि मिलित भावे सम्पन्न करेन।† रोमक लिपिर व्यवहार स्वभाव तइ भारतीयदेर निकट

---

* १-६-८५ की बात है कि श्री चित्तरञ्जन बन्द्योपाध्याय द्वारा बंगला में लिखा एक पत्र मेरे पास आया। उन्होंने कहीं से अकिञ्चन् द्वारा बंगला कृत्तिवासी रामायण का पद्यानुवाद देखा और भुवन वाणी ट्रस्ट के सानुवाद लिप्यन्तरण की चर्चा सुनी। विस्तार से मेरा परिचय जानने की उन्होंने सानुरोध इच्छा प्रकट की। स्वभाववश मैं अपने सम्बन्ध में नहीं लिख पाया। तब नवम्बर, ८५ में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय - अध्यापिका श्रीमती तृप्ति बसु को लिखा। श्रीमती बसु ट्रस्ट-परिसर पर पधारीं, समग्र वृत्त लेकर कलकत्ता भेजा। श्री बन्द्योपाध्याय ने 'आनन्द बाजार पत्रिका (बंगला)' में एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया। यह उसका ही नागरी लिप्यन्तरण प्रस्तुत है। हिन्दी पाठक सरलता से इसको समझ लेंगे। श्री बन्द्योपाध्याय जी का पूरा परिचय 'वाणी सरोवर' अंक जुलाई में दिया जायगा।

† शासन के चाटुकार महत्त्वाकांक्षी सदैव सभी देशों में होते आये हैं। इंगलैण्ड में भी, फ्रांस के पराधीन रहने पर, वहाँ के समृद्ध और अधिकारी अंग्रेज ही फ्रेंच बोलने में गौरव समझते और अपनी मातृभाषा अंग्रेजी तथा अपने देशभक्त भाइयों का उपहास करते थे। किन्तु जन सामान्य देशभक्तों के बल पर ही (पृष्ठ १० पर देखें)

मिवाव

बिशेष समादृत हयनि; केनना, बर्णमालार चित्ररूपेर संगे आमादेर सांस्कृतिक जीवनेर एकटा अविच्छेद्य सम्पर्क आछे। ताके त्याग करा सहज नय। रोमक लिपि प्रवर्तन सेइ सब क्षेत्रेइ सम्भव, येखाने समृद्ध बर्णमालार अभाव अथवा येखाने शासन ताँर निजेर क्षमतार बले जातिर उपर एटा चापिये दिते पारेन। भारतेओ पालि प्राकृत भाषार क्षेत्रे एवं किछु किछु आदिबासी अञ्चले रोमक लिपि प्रचलित हयेछिल। कामाल पाशा ताँर शासन काले रोमक लिपि चालिये छिलेन। तिनि आरबी भाषार कोरान रोमक लिपिते प्रकाश करेछिलेन, धर्मान्ध मुसलमानदेर प्रतिबाद अग्राह्य करे। रोमक लिपिर सपक्षे सब चेये बड़ युक्ति एइ ये, एते वर्णमालार सख्या ह्रास पाय। सुतरां मुद्रणेर काज अनेक सहज हये याय। ताछाड़ा द्वि-मात्रिक ओ त्रि-मात्रिक एव युक्ताक्षर इत्यादि रोमक लिपिते संख्याय कम। एइ सब कारणेइ बोध हय १९३४ सालेओ बांग्ला देशेर अध्यापकदेर एकांश बांग्ला बर्णमालार परिबर्त रोमक लिपि द्वारा बांग्ला बइपत्र मुद्रणेर प्रस्ताव एवेछिलेन। एइ शतकेर त्रिशेर दशके एक बार कंग्रेस अधिबेशने प्रस्ताव उठेछिल ये, हिन्दुस्तानी भारतेर राष्ट्रभाषा होक क्षति नेइ, किन्तु तार बाहन येन हय रोमक लिपि। बर्तमान शतकेर मध्यभाग पर्यन्त रोमक लिपि प्रचारेर सपक्षे किछु किछु काज हयेछे। आचार्य सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय एक समय रोमक लिपिर पक्षपाती छिलेन§। तिनि बलेछेन, "भारतेर समस्त भाषा रोमान पक्षरे लिखिबार एकटि प्रस्ताव बहुकाल धरिया चलिया आसितेछे। एइ प्रस्तावटि आपात दृष्टिते एमनइ अनावश्यक एवं जातीयता बिरोधी ये, आमादेर देशे प्राय सकलेइ एइ प्रस्ताव उल्लापन-मात्रेइ ताहा जातीयता बोध बर्जित पागलेर प्रलाप बलिया "पत्रपाठ" बर्जन करिया बसेन;" तबे चिन्ताशील व्यक्तिरा अनेकेइ मने करतेन ये, भारतेर लिपि बैचित्र्य एक जातीयता बोधेर परिपन्थी। रोमक लिपि सुबिधाजनक हलेओ कये कटि कारणे ता ग्रहण योग्य मने हयनि। बिशेषत यखन स्वाधीनतार जन्य आन्दोलन शुरु हल तखन देशीय लिपिर परिबर्त बिदेशी लिपि ग्रहण करबार कथा मेने नेओया कठिन छिल। रोमक लिपिर परिबर्ते प्रस्ताव एल देवनागरी लिपि ग्रहण कर बार। एइ प्रस्ताव कार्ये रूप देबार जन्य प्रथम उद्योगी हयेछिलेन कलिकाता हाइकोर्टेर बिचारपति,

---

(पेज ९ से) आगे चलकर यह उपहासास्पद गंवारू अंग्रेजी भाषा विश्व की व्यापक खिचड़ी भाषा बन गई। भारतीय भाषाएँ तो परम वैज्ञानिक और अति समृद्ध हैं!

§ पहले वे हिन्दी ही के बड़े पक्षधर थे। बाद में, विरोध में आकर रोमन का पक्ष ग्रहण किया।

—नन्दकुमार अवस्थी
सम्पादक, वाणी सरोवर

शिक्षानुरागी एवं सुलेखक सारदाचरण मित्र (१८४८-१९१७)। ताँर उद्योग एवं अर्थानुकूल्य कलकाताय स्थापित हल एक-लिपि-बिस्तार परिषत् बर्तमान शतकेर गोड़ार दिके। एइ परिषदेर मुखपत्र छिल "देवनागर"। स्वल्पजीवी एइ सामयिक पत्रे बांग्ला, उड़िया, माराठी, गुजराती, तामिळ, तेलुगु, प्रभृति भाषार रचना देवनागरी लिपिते लिप्यन्तर करे मुद्रित हत। सारदाचरणेर एइ उद्योग सेदिन शिक्षित समाजेर निकट बिशेष प्रेरणा लाभ करेनि। सारदाचरण एकलिपि बिस्तारेर ये काज आरम्भ करेछिलेन बांग्ला देशे केउ ताके साफल्य मण्डित करबार जन्य उद्योगी हननि। किन्तु कयेक बछर यावत् लक्ष्नौ (लखनऊ) शहरे ताँर आदर्शके रूपायित करबार जन्य एक बिराट कर्मयज्ञेर सूत्रपात हयेछे। एइ कर्मयज्ञेर प्रधान पुरोहित पद्मश्री नन्दकुमार अवोयास्थी। तिनि तामिळ कबि सुब्रह्मण्य भारतीर काव्य संकलनेर देवनागरी संस्करणेर भूमिकाय सारदाचरणेर उद्योगेर ये उच्छ्वसित प्रशंसा करेछेन ता आमादेर बिशेष श्लाघार कारण। लक्ष्नौवासी

जस्टिस सारदाचरण मित्र

नन्दकुमारेर जन्म २ (मई) १९०७ ख्रीष्टाब्दे। कर्मजीवन आरम्भ हय रेलओये संक्रान्त चाकरि दिये। कलकाताय तिनि चाकरि करेछेन कयेक बछर; सेइ सगे कयेकटि। छोटखाट हिन्दी सामयिक पत्रिकारओ सम्पादना करेछेन। साहित्य-चर्चा एवं समाजसेवा छिल ताँर काछे अत्यन्त प्रिय। आपिसेर परिबेश एदेर बिरोधी छिल बले तिनि चाकरि त्याग करे लक्ष्नौ चले आसेन। सेखानकार नओलकिशोर प्रेसेर काजे योग देन एवं दीर्घ कुड़ि बछर ओइ प्रेसेर सगे युक्त छिलेन। एइ अभिज्ञता ताँर परबर्ती जीबनेर काजे बिशेष सहायक हयेछे। नन्दकुमारजीर साहित्य चर्चार मूले आछे ताँर बांग्ला साहित्येर प्रति अनुराग। कलकाताय अवस्थान कालेइ तिनि बांग्ला शिखेछिलेन एवं कृत्तिवासेर रामायण पड़ते आरम्भ करेन। ए छाड़ा आर शरतेर रचनावली ताँके प्रभावान्वित करे छिल ताँदेर मध्ये बिशेष रूपे उल्लेख योग्य बंकिमचन्द्र ओ रबीन्द्रनाथ। राजनीतिर क्षेत्रेओ एकजन बाङाली छिलेन ताँर गुरु स्थानीय— योगेशचन्द्र चट्टोपाध्याय*। जीवने

* ये नहीं, मेरे कनिष्ठ भ्राता आयुर्वेदाचार्य स्वतंत्रता सेनानी, कविराज (देखें पृष्ठ १२ पर)

तिनि नाना दुःख कष्ट भोग करे छेन, किन्तु साहित्य चर्चार आदर्श थेके कखनो बिच्युत हननि। तिनि आदर्शबादी साहित्यसेवी, सुतरां एकटा विशेष लक्ष्य सामने रेखे साहित्य साधनार काजे अग्रसर हये छेन। स्वाधीनतार परे भारतेर भाषा समस्यार प्रति ताँर दृष्टि आकृष्ट हय। ताँर मने हयेछिल स्वाधीनतार माध्यमे ये राजनैतिक ऐक्य बोध समग्र देशके एकसूत्रे ग्रथित करेछे ता दृढ़तर हबे यदि संस्कृतिगत ऐक्य आना याय। सांस्कृतिक ऐक्येर प्रधान बाधा एत बिभिन्न भाषा एवं बिभिन्न बर्णमाला। भारते बेश कये कटि भाषा रयेछे यारा बिशेष रूपे समृद्ध एवं तादेर साहित्य ओ गौरवोज्ज्वल। एदेर निज निज एलाकाय पूर्ण बिकाशेर सुयोग करे दिते हबे। ता छाड़ा सांस्कृतिक ऐक्येर जन्य आर एकटि जरूरी काज हल विभिन्न आञ्चलिक साहित्येर श्रेष्ठ ग्रन्थराशि देवनागरीते लिप्यन्तर करे समग्र देशे तादेर प्रचारेर सुयोग करे देओया। एकाजेर मध्य दियेइ सांस्कृतिक मिलनेर भित्ति दृढ़ हते पारे। देबनागर लिपिर मध्यमे समग्र देशके मिलनेर सूत्रे बंधे देओयार प्रेरणा तिनि लाभ करेछिलेन सारदाचरण मित्रेर एक-लिपि-बिस्तारेर उद्योग थेके। नन्दकुमार जी देवनागरे आञ्चलिक भाषार श्रेष्ठ रचना गुलि लिप्यन्तरेर परिकल्पना ग्रहण करेछिलेन एइ कारणे ये, देवनागर अन्यान्य ये कोन आञ्चलिक बर्णमाला अपेक्षा अधिक परिचित। हिन्दी साहित्य सर्वश्रेष्ठ एमन संकीर्ण मनोभाव ताँर नेइ। बरं तिनि बलेछेन संस्कृत भारतेर राष्ट्रभाषा हले अन्यान्य भाषाभाषीरा निजेदेर द्वितीय श्रेणीर नागरिक बले मने करत ना। एमन कि, तिनि बलेछेन संस्कृत आन्तर्जातिक भाषा हिसाबे स्वीकृति पाबार योग्य। नन्दकुमार अओयास्थी जी ताँर आदर्श सुष्ठुरूपे रूपायणेर जन्य १९६९ साले भुवन बाणी ट्रस्ट स्थापन करेन। ताँर आदर्शेर मूल कथा हल : प्रत्येक आञ्चलिक साहित्य निजस्व लिपि व्यवहार करे बिकाश लाभ करबे। शुधु भारतेर नय, पृथिबीर सकल देशेर साहित्य सम्बन्धेओ एकथा प्रयोज्य। किन्तु एक साहित्येर सम्पद येन शुधु भाषार प्राचीर अन्य भाषाभाषीदेर काछ थेके दूरे ना राखे। ताहले सेटा हबे सभ्यता ओ संस्कृति बिस्तारेर पक्षे अन्तराय। अओयास्थी जी बिश्वास करेन प्रत्येक भाषार श्रेष्ठ ग्रन्थ समूह देवनागरीते लिप्यन्तर ओ हिन्दीते अनुवाद हले मानव-समाजेर महत् चिन्ता-धारा भाषार गण्डि अतिक्रम करे बिश्वमय छड़िये पड़बे। ताइ तिनि ताँर ट्रास्टेर नामकरण करे छेन भुवन बाणी, भारत बाणी नय। नाना

(पृष्ठ ११ से) पि० कृष्णकुमार अवस्थी आयुर्वेदाचार्य के गुरु थे। मेरे सुहृद थे। सन् १६४२ के स्वतंत्रता-संग्राम के समय स्व० योगेश दादा तथा अन्य अनेक कर्मठ क्रान्तिकारी हमारे परिवार में महीनों निवास करते थे। —नन्दकुमार अवस्थी

कारणे देवनागरी लिपि नाना अञ्चले बिस्तार लाभ करेछे। सुतरां एइ लिपि केउ तिनि संस्कृति बिस्तारेर बिश्वसेतु हिसारे ग्रहण करे छेन। आसले तिनि मने करेन प्रत्येक भाषार वर्णमालाइ विज्ञान भित्तिक एवं महत् साहित्य रचनार उपयुक्त बाहन। ट्रास्ट स्थापनेर अनेक आगे थेकेइ अयोयास्थी जी ताँर काज आरम्भ करे दियेछिलेन। ताँर प्रथम काज कोरान शरीफेर नागरीते लिप्यन्तर ओ हिन्दी अनुवाद। १९४७ साले एइ काज शुरु हय। बइ छेपे बेरुते समय लागे कुड़ि बछर। नाना बाधा विघ्न अतिक्रम करे एकक चेष्टाय तिनि शेष पर्यन्त सफल हन। मुसलमान सम्प्रदाय आरबी धर्मग्रन्थेर लिप्यन्तर ग्रहण करबे। किना ता निये मने सर्वदाइ सन्देह छिल। किन्तु एखन सन्देह असूलक बले प्रमाणित हयेछे। आरबी भाषार पण्डितर नागरी लिप्यन्तर ओ हिन्दी अनुवादेर भूयसी प्रशंसा करे छेन। रयेल आकारेर १०२४ पृष्ठार बइयेर दाम मात्र ५२ टाका। एइ बइयेर क्रेता हिन्दु-मुसलमान उभय सम्प्रदायेर पाठक। सब चेये वेशि बिक्रि एइ बइटिर। एखन चलजे सप्तम संस्करण। द्वितीय ग्रन्थ कृत्तिवासी रामायण। अनुबाद ओ लिप्यन्तरेर काज शुरू हये छिल १९२८-१९३० साले। अयोयास्थी जी यखन कलकाताय छिलेन तखन थेकेइ कृत्तिवासी रामायणेर प्रति आकृष्ट हन। १९१६ एवं तार परेओ अवश्य कृत्तिवासेर रामायणेर दुतिनटि काण्ड हिन्दीते अनुवाद हयेछे। किन्तु अयोयास्थी जीइ एके एके सातटि काण्ड अनुवाद करे प्रकाश करे छेन। तिनि दिये छेन नागरी लिप्यन्तर। हिन्दी गद्यानुवाद एवं तुलसीदासेर अनुकरणे दोहाचौपदी छन्दे अयोयास्थी जी निजेइ पद्यानुवाद करे छेन। हिन्दी भाषीदेर तिनि कृत्तिवासी रामायण पड़ते बले छेन तिनटि कारणे : प्रथमत, कृत्तिवास बांग्लार आदिकबि बले कथित; द्वितीयत, तिनि तुलसीदास गोस्वामीर रामचरितमानस रचनार प्राय एकशत बछर पूर्बे राम-कथा आञ्चलिक भाषाय कि भावे रूपान्तरित करेन तार निदर्शन एइ रामायण। तृतीयत, बांग्ला भाषा संस्कृत शब्द बहुल सुतरां लिप्यन्तर पाठे कृत्तिवासेर मूल रचनार रस अनेकटाइ आस्वादन करा येते पारबे। एर परे तिनि ये बइटिर लिप्यन्तर ओ अनुवाद करेन सेटि हल तिरुभाल्लुभार रचित दुहाजार बछरेर प्राचीन ग्रन्थ तिरुक्कुरल। तामिल भाषीदेर निकट एटि अवश्य पाठ्य नीतिशास्त्र विषयक धर्मग्रन्थ। लिप्यन्तर छाड़ा देओया हयेछे हिन्दी गद्य ओ पद्यानुवाद। भूमिकाय एइ ग्रन्थ सम्बन्धे बिशद आलोचना आछे। चतुर्थ ग्रन्थटि तामिल भाषार प्रसिद्ध कबि सुब्रह्मण्य भारतीर काव्य-संग्रहेर लिप्यन्तर ओ हिन्दी ते गद्य ओ पद्यानुवाद। भूमिकाय कविर विस्तृत परिचय देओया हयेछे। ११७६ पृष्ठार बिराट ग्रन्थेर मूल्य १०० टाका। भुवन वाणी ट्रास्टेर ग्रन्थ-तालिका थेके देखा याय उतिमध्ये ताँरा ६१ खानि

अन्य भाषार बइ देवनागरीते लिप्यन्तर ओ हिन्दी अनुवाद करे प्रकाश करे छेन। एइ सब भाषार मध्ये आछे : असमीया, आरबी, ऊर्दू, ओड़िया, कन्नड, काश्मीरी, गुजराती, गुरुमुखी, ग्रीक, तमिळ, तेलुगु, नेपाली, फारसी, बांग्ला, मराठी, मालयालम, मैथिली, राजस्थानी, संस्कृत, सिन्धी, हिब्रू, (यूनानी, अरामी)—मोट २३टि भाषा। एइ तालिका थेके एकटि जिनिस लक्ष्यणीय ये अओयास्थी जी द्रुत बइ बिक्रिर लोभे जनप्रिय कथा-साहित्यिकदेर रचना लिप्यन्तर करेननि। बिभिन्न भाषार मूल संस्कृति धाराके प्रचार करबार आदर्श सामने रेखेइ तिनि काज करे चले छेन। एइ काजटि ये कत प्रयोजनीय ता उपलब्धि करा याय यखन देखि ताँर लिप्यन्तर ओ हिन्दी अनुबादेर तालिकाय आञ्चलिक भाषाय राम-कथार अन्तत १८टि रूपान्तर स्थान पेयेछे। काश्मीर थेके आसाम, दक्षिण-भारत, पूर्व ओ पश्चिम भारते रामायण ये किभाबे नाना रूप ग्रहण करेछे ता अध्ययनेर जन्य एइ लिप्यन्तर ओ अनुवाद बिशेष प्रयोजनीय। भुवन वाणी ट्रास्टर हाते एखन रयेछे बिभिन्न भाषार ५७-५८टि बइ प्रस्तुतिर नाना पर्याये। एजाड़ा ताँरा बाणी-सरोवर नामे एकटि सामयिक पत्र प्रकाश कर छेन। बला बाहुल्य, एइ पत्रिका ट्रास्टर आदर्श प्रचारेर मुखपत्र हिसारे काज करजे। एइ प्रसंगे बला प्रयोजन ये, भुवन बाणीर आर एकटि परिकल्पना आजे। ता हल बिश्व-भाषा मन्दिर प्रतिष्ठा। ए मन्दिरे कोन बिग्रह थाकरे ना। मन्दिरेर प्रत्येकटि प्रस्तर फलके उत्कीर्ण थाकरे बिश्वेर प्रधान प्रधान भाषार बर्णमाला एवं सेइसब भाषा थेके उपयुक्त उद्धृति। विश्वभाषा प्रेमिक अयोयास्थी जी ८० बजरे पा दिते चले छेन। किन्तु तरुणेर आशा ओ उत्साह निये तिनि भुवन वाणीर कारजे एगिये चले छेन। ताँर सब चेये बड़ कृतित्व तिनि आञ्चलिक भाषार अनेक पण्डितके निजेर काजेर संगे युक्त करते पेरे छेन। एँदेर सकलेर सक्रिय सहयोगिता ताँ के सफलतार पथे एगिये निये चले छे। तरे अर्थाभावे प्रचार करते ना पाराय ट्रास्टर बइएर बिक्रि आशानुरूप नय। व्यक्तिगत क्रेनाइ बेशि। सरकारी साहाय्यपुष्ट हले काज हयतो आर ओ सुष्ठु भावे चलत। संस्कृत साहित्येर क्षेत्रे लिप्यन्तर प्रथा बांग्लाय पुथिर युग थेकेइ प्रचलित आछे। ए र फले ग्रन्थटि पाठकेर निकट सहज पाठ्य हय। अओयास्थी जीर मत कोन उद्योगी व्यक्ति यदि हिन्दी, माराठी, गुजराती, ओड़िया, असमीया प्रभृति भाषार श्रेष्ठ ग्रन्थावली बंगाक्षरे लिप्यन्तर करेन तरे बाङाली पाठकेर निकट ता सहज बोध्य हते पारे।

भुवन वाणी ट्रस्ट सम्बन्धे अनेक तथ्य संग्रह करे दिये छेन लक्ष्नौ विश्वविद्यालय-अध्यापिका श्रीमती तृप्ति बसु —चित्तरञ्जन बन्द्योपाध्याय।

अनुवादकीय

कवीश्वर चन्दा झा और उनकी रामायण

प्रस्तुत रामायण के लेखक हैं कवीश्वर चन्दा झा। ये अपनी रचनाओं में अपना नाम 'चन्द्र कवि' भी लिखते हैं। इनका जन्म शाके १७५३ (१८३१ ई०) में, और स्वर्गवास शाके १८२९ (१९०७ ई०) में हुआ। इनका निवास दरभंगा जिले के पिण्डारुछ गाँव में था, पर बाद में मधुबनी जिले के ठाढ़ी गाँव में जा बसे। दरभंगा के महाराज रमेश्वर सिंह इनके आश्रयदाता थे, जिनके दरबार में इन्होंने सन्तोषपूर्वक अपना सात्त्विक जीवन बिताया। इनका पारिवारिक जीवन बड़ा करुण रहा। इनके चार पुत्र हुए और एक-एक कर चारों पुत्र इनके जीवन-काल में ही काल-कवलित हुए। इनकी मृत्यु के समय इनके परिवार में एकमात्र विधवा पुत्रवधू जीवित रह गई थीं। स्वभावत: ये पक्के विरक्त सन्त की भाँति सारी विपत्तियों को झेलते हुए आजीवन भक्ति की धारा में मग्न रहे। इनका जीवन-परिचय 'चन्दा झा' नाम से पं० जयदेव मिश्र ने अंग्रेजी में लिखा है जो साहित्य अकादमी, दिल्ली से मेकर्स ऑफ़् इण्डियन् लिटरेचर नामक ग्रन्थमाला में प्रकाशित है। इन पर एक दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है डॉ० अमरनाथ झा का लिखा हुआ 'कवीश्वर चन्दा झा और उनका मिथिला भाषा रामायण',

कवीश्वर चन्दा झा

जो मैथिली अकादमी, श्रीकृष्णपुरी, पटना से प्रकाशित है। ये शिव और राम के भक्त थे। इन्होंने मैथिली में हजार से अधिक गीत लिखे, जिनमें शिव और राम की लीला-भक्ति के उद्‌गार के साथ चित्रित है। प्रस्तुत रामायण भी इनकी भक्ति का ही काव्यात्मक उद्‌गार है। इन्होंने महाकवि विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा' का मैथिली में अनुवाद किया है जो पटना विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। इनके गीतों का संग्रह 'चन्द्र-रचनावली' तथा प्रस्तुत 'मिथिला भाषा रामायण' मैथिली अकादमी,

श्रीकृष्णपुरी, पटना से प्रकाशित है। साहित्य के अतिरिक्त इनका योगदान मिथिला के इतिहास एवं पुरातत्त्व के विषय में भी मूल्यवान माना जाता है। मैथिली साहित्य के इतिहास में ये आधुनिक काल के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनका गौरव और ख्याति मुख्यत: प्रस्तुत रामायण को लेकर है।

पूर्व में मिथिला में केवल दो सम्प्रदाय विशेष प्रचलित थे। जयदेव के बाद समाज के ऊपरी तबके में कृष्ण-भक्ति की एक धीमी लहर आई, पर बाद में पश्चिम से आ पहुँची रामभक्ति की धारा ने उसे दबा दिया। फलत: चन्दा झा के बाल्यकाल में आकर राम-भक्ति की धारा सारी मिथिला में तरंगित थी। स्वभावत: मिथिला की सरस-समृद्ध भाषा मैथिली को भी एक नये वाल्मीकि या तुलसीदास की आवश्यकता हुई और मानो उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कवीश्वर चन्दा झा का जन्म हुआ। उन्होंने मैथिली में रामकाव्य का अभाव देखकर ही इस रामायण की रचना की।

मिथिला में राम-भक्ति की धारा देर से पहुँची, इसीलिए जहाँ अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में राम-काव्य की रचना पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में ही हो चुकी थी, मैथिली में यह प्रथम राम-काव्य १८८० ई० के आसपास लिखा गया और इसका प्रथम प्रकाशन १८९०-९१ ई० में हुआ। लगभग इसी समय में मैथिली में एक और राम-काव्य लिखा गया—महाकवि लालदास कृत 'रमेश्वरचरित रामायण', पर दुर्भाग्यवश यह बहुत दिनों के बाद १९५५ ई० में आकर प्रकाश में आया, अत: यह प्रस्तुत रामायण की तरह प्रचलित न हो सका।

चन्दा झा ने मुख्यत: 'अध्यात्म रामायण' को अपना आधार बनाया और 'रामचरितमानस' से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है। इस प्रकार मौलिकता में कुछ कमी के बावजूद यह मिथिला के लोककंठ में जल्द ही समा गई, जिसका कारण है मुहावरों और कहावतों से भरी चुभती हुई बोलचाल की भाषा का प्रयोग, प्रवाहमय शैली और विलक्षण गानोपयुक्तता। मूल ग्रन्थ के उपर्युक्त भाषागत चमत्कार को भाषान्तर के गद्यानुवाद में उतार पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अत: मैथिली न जानने वालों को यदि मेरा यह गद्यानुवाद नीरस लगे तो उसे मूल ग्रन्थ का दोष न समझकर मेरा दोष समझें और इसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के प्रति तथा विशेषत: उसके न्यासी सभापति पद्मश्री-विभूषित प० नन्दकुमार अवस्थी के प्रति श्रद्धापूर्वक आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत 'मिथिला भाषा रामायण' को अपनी प्रकाशन-माला में स्थान देकर मेरी मातृ-भाषा मैथिली का उचित सत्कार किया है। हिन्दी अनुवाद सहित होने के फलस्वरूप, यह कृति सारे राष्ट्र को आह्लाद प्रदान करेगी।

मैथिली भाषा और लिपि

निकट अतीत तक सारे उत्तर भारत की भाषा एक थी। आज भी मूलतः एक है। इसमें धीरे-धीरे वैभाषिक अन्तर बढ़ते गये और लगभग हजार वर्ष पहले आधुनिक स्थानीय भाषाओं का उद्भव हुआ। बिहार प्रदेश के पूर्वोत्तर कोने में गंगा, गंडक और कोसी नदियों से घिरे क्षेत्र की भाषा मैथिली है। इसी में चन्दा झा की प्रस्तुत रामायण लिखी गई है। इसमें साहित्य बारहवीं सदी से लगातार लिखा जाता रहा है। इसके प्रमुख साहित्यकार हुए हैं ज्योतिरीश्वर, विद्यापति, उमापति, गोविन्ददास, मनबोध और चन्दा झा। आधुनिक काल में मैथिलीभाषियों ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और अखंडता की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का स्वागत किया। इससे मैथिली के विकास में कुछ अवरोध अवश्य हुआ, पर साहित्य-सर्जन का सिलसिला चलता रहा और अब इसके पुनर्जागरण का प्रयास चल रहा है। सम्प्रति यह अपने क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम है। बिहार के सभी विश्वविद्यालयों में इसका साहित्य उच्चतम स्तर तक पढ़ाने की व्यवस्था है। यह साहित्य अकादमी, पी० ई० एन०, प्रगतिशील लेखक संघ आदि संस्थाओं द्वारा अंगीकृत है। इस भाषा का परिचय डॉ० सुभद्र झा कृत 'फार्मेशन् ऑफ़् मैथिली' में तथा गोविन्द झा कृत 'मैथिली भाषा का विकास' में मिलेगा; तथा इसके साहित्य का परिचय डॉ० जयकान्त मिश्र कृत 'हिस्ट्री ऑफ़् मैथिली लिटरेचर' में मिलेगा।

मैथिली हिन्दी से बहुत दूर नहीं है। शब्दराशि और वाक्य-विन्यास में नाम मात्र अन्तर है। किन्तु क्रियापद-प्रणाली एकदम भिन्न और जटिल है क्योंकि इसमें पुरुष और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक प्रत्यय जुड़ता है जिससे रूपों की भरमार हो जाती है; जैसे 'मैंने देखा' उसकी जगह मैथिली में (हम) देखल, देखलहुँ, देखलिऐक, देखलिअनि, देखलिअहु, देखलिऔक, ये छः रूप हैं जो भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं। शब्दों के अन्त में ह्रस्व इकार बहुत प्रचलित है। लिंग-भेद और वचन-भेद लुप्त-से हो गये हैं।

मैथिली की अपनी लिपि है जो 'तिरहुता', 'मिथिलाक्षर' या 'मैथिली लिपि' कहलाती है। नमूना पृ० १८ पर दिया गया है। इसका आभास बँगला-सा लगता है क्योंकि बँगला की तरह यह भी कोणबहुल है, जबकि देवनागरी वृत्तबहुल है। इसमें इ, ई, उ, ऊ, ऋ, क्ष, ट, र, न, ब, य और म बँगला से भिन्न आकृति के हैं। इसका उद्भव उत्तर गुप्तकालीन 'कुटिल' या 'वर्तुल' लिपि से हुआ बताया जाता है। इसका दर्शन १०वीं शताब्दी से होने लगता है। यह मिथिला के ब्राह्मण पण्डितों के अतिरिक्त नालन्दा और विक्रमशील विहारों के बौद्ध पण्डितों की भी

MAITHILI SCRIPT - VOWEL, CONSONANT AND COMBINED LETTERS

मैथिली लिपि - स्वर, व्यञ्जन एवं मिश्रवर्ण.

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
A Ā I Ī U Ū RI RĪ LRI LRĪ E AI O AU AṂ AH

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ
KA KHA GA GHA ṄA CHA CHHA JA JHA ÑA

ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
ṬA ṬHA ḌA ḌHA ṆA TA THA DA DHA NA

प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ
PA PHA BA BHA MA YA RA LA VA SHA ṢA SA HA KṢA TRA JÑA

क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः
KA KĀ KI KĪ KU KŪ KE KAI KO KAU KAṂ KAḤ

श्री ॐ क्य क्र क्ल क्क र्क स्क स्छ स्थ स्त त्न ङ्क न्त न्द न्ध ङ्क ह्म
SHRĪ AUṂ KYA KRA KLA KKA RKA SKA SUCHA STHA STA TNA NKA NTA NDA NDHA NKA HMA

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

लिपि थी। इसमें लिखी पांडुलिपियों का अपार भंडार भारत भर के ही नहीं, विश्व भर के प्राच्य विद्याग्रन्थागारों में विद्यमान है। जमींदारी, कचहरियों, अदालतों और शिक्षालयों में धीरे-धीरे फ़ारसी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और हिन्दी के प्रवेश के फलस्वरूप मैथिली लिपि का प्रयोग अब नाम मात्र रह गया और मैथिली भाषा के लिए भी देवनागरी अपना ली गई; यों १९वीं सदी तक मिथिला में हिन्दी या ब्रजभाषा भी मैथिली लिपि में ही लिखी जाती थी।

—गोविन्द झा

प्रकाशकीय

भुवन वाणी ट्रस्ट के नवनिर्मित 'विश्वभाषा सेतु संस्थान' के विशाल अवलोकनीय परिसर पर सारा कामकाज आ जाने के बाद, 'मैथिली रामायण' हमारा दूसरा प्रकाशन प्रस्तुत है।

पृष्ठ ३-८ पर विश्वनागरी लिपि तथा हमारा दृष्टिकोण, और पृष्ठ ९-१४ पर सम्प्रति देश के १०-१५ विद्वानों में गण्यमान्य श्रीचित्तरञ्जन बन्द्योपाध्याय का आनन्द बाज़ार पत्रिका, कलकत्ता, ९ फ़रवरी, १९८६ के अंक में प्रकाशित 'एक लिपि, एक सस्कृति' लेख पठनीय है। तदर्थ हम श्रीबन्द्योपाध्याय के ऋणी हैं। 'देश के समस्त भाषाओं के प्रचुर वाङ्मय को नागरी लिपि में लाया जाय', १९०५ ई० में इसके मंत्रद्रष्टा और देवनागर के सम्पादक, जस्टिस् सारदाचरण मित्र का चित्र जो अनुपलब्ध था, वह किसी प्रकार से उनकी ही खोज के फलस्वरूप पाठकों के दर्शनार्थ पृष्ठ ११ पर हम प्रस्तुत करके अपने को धन्य मान रहे हैं।

ग्रन्थकार श्री चन्दा झा तथा मैथिली लिपि और मैथिली भाषा का सम्यक् परिचय, अनुवादकीय वक्तव्य पृष्ठ १५-१८ पर अवलोकनीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुवादकर्ता प० गोविन्द झा का जन्म बिहार प्रदेश के मधुबनी जिले के भीतर इसहपुर गाँव में १९२३ ई० में मैथिल ब्राह्मण के एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ। आपने अपने पिता महावैयाकरण दीनबन्धु झा से प्राचीन रीति से विधिवत् व्याकरण-शास्त्र पढ़ा और बाद में स्वाध्याय द्वारा साहित्य-शास्त्र, वेदशास्त्र, भाषाविज्ञान और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, बँगला, नेपाली, मैथिली, अंग्रेजी आदि बहुत-सी भाषाएँ जानते हैं। मैथिली में नाटक, कहानी और कविता, भाषाशास्त्र, व्याकरण और छन्दःशास्त्र में भी आपने कई प्रामाणिक ग्रन्थ मैथिली और हिन्दी में लिखे हैं। राज-काज में अंग्रेजी की जगह हिन्दी को लाने के क्रम में आप बिहार सरकार की सेवा में आये और राजभाषा-उपनिदेशक के पद पर पहुँचकर सेवा-निवृत्त हुए। तब से मैथिली अकादमी, पटना में उपनिदेशक के पद पर रहकर कई ग्रन्थों तथा एक मैथिली शब्द-कोश का संकलन-सम्पादन किया

अनुवादक श्री गोविन्द झा

है। सितम्बर १९८३ में, बिहार राजभाषा विभाग ने अकिञ्चन को पुरस्कृत किया था। उसी विभाग के श्री धर्मनाथ झा ने अपने श्वसुर श्री गोविन्द झा का परिचय कराते हुए, मैथिलि रामायण के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा था। अतः प्रस्तुत प्रकाशन हेतु ट्रस्ट आप दोनों का कृतज्ञ है।

आभार-प्रदर्शन।

सदाशय श्रीमानों और उत्तर प्रदेश शासन के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा मानव संसाधन विकास (शिक्षा) मन्त्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी-सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि 'नागरी' के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उपर्युक्त सबके फलस्वरूप मैथिलि का यह अनुपम काव्य प्रस्तुत वर्ष १९८६-८७ में प्रकाशित हो सका। मैथिलि लिपि का प्रारूप बंगला से मिलता-जुलता था। अब नागरी लिपि अपना ली गई है। देखे पृष्ठ १८। मैथिलि-कोकिल विद्यापति को मिथिला और बंग —दोनों ही अपना होने का दावा करते हैं।

विदित हो—

विदित हो कि पुत्र-जन्म पर उसका नाम लखपति साह रख देने से वह लखपती नहीं बन सकता, वह दस-बीस लाख का स्वामित्व पाकर ही लक्षाधीश चरितार्थ होगा। राष्ट्रभाषा की स्थापना तो हो गई परन्तु अभी वह इस रूप में चरितार्थ तो नहीं हुई। भारत में अधिक फैली होने ही के एक मात्र कारण से, प्रचलित हिन्दी (खड़ी बोली) को, राष्ट्रभाषा और परम वैज्ञानिक भारतीय लिपियों में से सर्वाधिक प्रसरित लिपि 'नागरी' को उनकी प्रतिनिधिस्वरूपा होकर राष्ट्र का एकात्मभाव सदैव की भाँति दृढ़ बनाये रखने के लिए, सेवा सौंपी गई। अतः प्रथम कर्तव्य है राष्ट्रलिपि और राष्ट्रभाषा को न केवल भारतीय वरन् विश्व के वाङ्मय के सानुवाद लिप्यन्तरण द्वारा भर दिया जाय, लखपति साह को वस्तुतः लक्षाधीश बना दिया जाय।

> विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
> पहन नागरी-पट सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥
> अमर भारती सलिलमञ्जु 'मैथिली' सुपावन धारा।
> पहन नागरी-पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा॥'

—नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२०

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

बिश्वनागरी लिपि ३-८
एक लिपि—एक संस्कृति ९-१४
अनुवादकीय १५-१८
प्रकाशकीय १९-२०

बालकाण्ड २५-११३

पहला अध्याय— मंगलाचरण और प्रस्तावना २५; सूत-शौनक-संवाद; नारद-ब्रह्मा-संवाद; शिव-पार्वती-संवाद २७; रामकथा, राम-रहस्य और रामगीता का माहात्म्य २९

दूसरा अध्याय— ब्रह्मा द्वारा विष्णु से अवतार लेने का अनुरोध ४०

तीसरा अध्याय—दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ और चार पुत्रों की प्राप्ति ४५

चौथा अध्याय—विश्वामित्र द्वारा दशरथ से राम-लक्ष्मण-याचना ५५; रामचन्द्र का ताटका, सुबाहु और मारीच से युद्ध ५८

पाँचवाँ अध्याय—राम और लक्ष्मण का मिथिला प्रस्थान; अहिल्योद्धार ६०

छठा अध्याय— राम-लक्ष्मण का जनकपुर जाना ६६; राम का फुलवाड़ी जाना और सीता को देखना ७२; यज्ञ का अन्त; राम-लक्ष्मण का सभामंडप पर जाना ८३; धनुर्भंग ८५; सीता का विवाह ९३; परशुराम का क्रुद्ध होना और झुकना १०१

अयोध्याकाण्ड ११४-२०२

पहला अध्याय—विष्णु-संवाद लेकर नारद का राम के पास आना ११४

दूसरा अध्याय— राम को राजतिलक लेने का प्रस्ताव और तैयारी ११६; सरस्वती की चाल से मन्थरा द्वारा कैकेयी का बहकावा १२१

तीसरा अध्याय— राम को वनवास की आज्ञा १२८

चौथा अध्याय— लक्ष्मण और सीता का वन जाने का आग्रह १३८

पाँचवाँ अध्याय— वन के लिए राम, लक्ष्मण और सीता का प्रस्थान १४८; निषादराज गुह से भेंट १५६

छठा अध्याय— गंगा पार करना १५८; भरद्वाज के आश्रम में जाना १६१; चित्रकूट में पहुँचना और वाल्मीकि से मिलना १६२

सातवाँ अध्याय— सुमन्त्र का अयोध्या लौटना १६८; दशरथ का श्रवणकुमार की कथा सुनाना और प्राणत्याग करना १७२; ननिहाल से भरत का लौटना और पिता का श्राद्ध करना १७५

आठवाँ अध्याय— भरत की राज्य-अस्वीकृति; राम को लौटाने का प्रयास १८३

नवाँ अध्याय— राम की भरत से भेंट १९१; राम का चित्रकूट से दंडक वन जाना और अत्रि से भेंट २००

विषय पृष्ठ

अरण्यकाण्ड २०३-२५३

पहला अध्याय— विराध की मुक्ति २०३
दूसरा अध्याय— शरभंग ऋषि की मुक्ति; सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम जाना २०८
तीसरा अध्याय— राम का अगस्ति के आश्रम में जाना २१२
चौथा अध्याय— राम की जटायु से भेंट; लक्ष्मण को ज्ञानोपदेश २१५
पाँचवाँ अध्याय— काममोहित शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण के पास जाना; लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटना; श्री राम द्वारा खर-दूषण का वध; शूर्पणखा का लंका-गमन और रावण को सीता हरण के लिए उकसाना २१९
छठा अध्याय— रावण का मारीच के पास जाना और मारीच का माया-मृग-रूप धारण करना २२८
सातवाँ अध्याय— रावण द्वारा सीता का हरण २३४; रावण का जटायु से युद्ध २४०
आठवाँ अध्याय— जटायु की मृत्यु २४२
नवाँ अध्याय— कबन्ध-वध २४८
दसवाँ अध्याय— शबरी से भेंट और उसकी मोक्ष-प्राप्ति २५१

किष्किन्धाकाण्ड २५४-३०८

पहला अध्याय— राम का पम्पासर जाना २५४
दूसरा अध्याय— बालि और सुग्रीव-युद्ध तथा बालि-वध २६४
तीसरा अध्याय— तारा का विलाप, राम द्वारा उपदेश २७२; सुग्रीव का राजा होना २७६
चौथा अध्याय—सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में दूत भेजा जाना २७८
पाँचवा अध्याय— राम का किष्किन्धा में चातुर्मास्य; विरह-वर्णन २७९; सुग्रीव पर लक्ष्मण का कुपित होना २८३
छठा अध्याय— सुग्रीव का अपनी सेना का परिचय राम को देना और सेना का प्रस्थान २८८; स्वयंप्रभा को राम का दर्शन, मोक्ष २९१
सातवाँ अध्याय— घबराये अंगद का हनुमान का उपदेश २९४; सम्पाति से भेंट और लंका का पता चलना २९६
आठवाँ आध्याय— सम्पाति की आत्मकथा और आध्यात्मिक उपदेश २९९
नवाँ अध्याय— हनुमान को लंका के लिए विदा करना ३०४

सुन्दरकाण्ड ३०९-३६१

पहला अध्याय— हनुमान-लंका-गमन; सुरसा, सिंहिका, लंकिनी से सामना ३०९
दूसरा अध्याय— खोजने में निकले हनुमान का रावण के महल में घूमना ३१५

विषय पृष्ठ

अशोक वाटिका में रावण द्वारा सीता को डर दिखाना ३१७; सीता का विलाप ३२३

तीसरा अध्याय— हनुमान-सीता-संवाद ३२६; हनुमान का बाग के फल खाना, पेड़ तोड़ना; मेघनाद द्वारा बन्धन ३३४

चौथा अध्याय— रावण के दरबार में हनुमान का उससे संवाद ३४०; हनुमान की पूँछ में आग लगाया जाना और लंका-दहन ३४६ हनुमान का सीता से विदा लेना, मधुवन उजाड़ना और राम के पास लौटना ३५७;

लंकाकाण्ड ३६२-५३०

पहला अध्याय— राम की सेना की तैयारी और लंका-प्रस्थान ३६२

दूसरा अध्याय— रावण का विचार-विमर्श; विभीषण की चेतावनी ३६८

तीसरा अध्याय— विभीषण का राम की शरण में आना और अभिषेक-पाना ३७३; रावण के गुप्तचर का राम की छावनी में आना ३७८; समुद्र का मान-मर्दन और सेतु बनाने की तैयारी ३८०

चौथा अध्याय— रामेश्वर शिव की स्थापना; पुल का निर्माण; गुप्तचर शुक के मुँह से राम की सेना का वर्णन ३८३

पाँचवाँ अध्याय— रावण द्वारा शुक का अपमान; शुक की कथा; माल्यवान का निष्कासन ३९०; राम के बाण से रावण के मुकुट गिरना; मन्दोदरी द्वारा समझाना ३९३; अंगद का दूत बनकर रावण के पास जाना और बातचीत करना ३९६; अंगद का लौटना; प्रभंजन-वध; राम-रावण का घमासान युद्ध ४१२

छठा अध्याय— रावण का राम से युद्ध करना, लक्ष्मण को शक्ति लगना ४१९; संजीवनी लाने का प्रयास, कालनेमि की कथा ४२२

सातवाँ अध्याय— रूपमाली की कथा; हनुमान द्वारा कालनेमि-वध ४२५; युद्ध से घबराकर रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाया जाना ४३१

आठवाँ अध्याय— कुम्भकर्ण का वध ४३५; युद्ध में मेघनाद का आना और तान्त्रिक साधना करना ४४१

नवाँ अध्याय— मेघनाद की तान्त्रिक साधना में बाधा एवं वध ४४६; सुलोचना का विलाप और सती होना ४५६

दसवाँ अध्याय— रावण का शुक्राचार्य से मंत्र ले साधना करना; राम द्वारा विघ्न ४६७

ग्यारहवाँ अध्याय— राम-रावण युद्ध और रावण-वध ४७३

विषय पृष्ठ

बारहवाँ अध्याय— विजय के बाद राम द्वारा विभीषण आदि के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन ४८६; सीता को संवाद देना, उनका लौटना तथा अग्नि-परीक्षा ४९१

तेरहवाँ अध्याय— सभी देवों द्वारा राम की स्तुति; अग्निदेव द्वारा वास्तविक सीता का लौटाना; राम का सदल-बल अयोध्या को प्रस्थान ४९६

चौदहवाँ अध्याय— पुष्पक रथ से राम का सदल-बल अयोध्या पहुँचना ५०३

पन्द्रहवाँ अध्याय— राम-राज्याभिषेक; देवगन्धर्व आदि द्वारा स्तुति ५१५

सोहलवाँ अध्याय— राज्याभिषेक के उपलक्ष में इनाम बाँटा जाना; विभीषण आदि को विदा करना; रामायण का माहात्म्य ५२५

उत्तरकाण्ड ५३१-६००

पहला अध्याय— रावण के जन्म की कथा ५३१

दूसरा अध्याय— रावण आदि की तपस्या, वर पाना तथा विवाहादि ५३८

तीसरा अध्याय— वाली और सुग्रीव की जन्म कथा; सनत्कुमार द्वारा रावण को उपदेश ५४७

चौथा अध्याय— रावण का श्वेतद्वीप जाना और पराजित हो राम के हाथ मरने की कामना करना ५५३; शम्बूक का वध ५५६; लोकापवाद का फैलना और सीता का वनवास ५५६; सीता का वाल्मीकि के आश्रम में जाना ५६४

पाँचवाँ अध्याय— सीता के विरह में राम का आध्यात्मिक चिन्तन ५६५; शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध और मथुरा में राजधानी बनाना ५६८; कुश और लव का जन्म और शिक्षा-दीक्षा ५७१; राम का अश्वमेध यज्ञ करना; गुरु के साथ कुश-लव आगमन ५७३

छठा अध्याय— कुश और लव के गीतों का राम के कान में पड़ना; राम द्वारा उनकी पहचान; सीता का धरती में प्रवेश ५७५; उदास राम का आध्यात्म-चिन्तन में लीन होना तथा माताओं को उपदेश देना ५८३

सातवाँ अध्याय—राम के भ्राताओं और उनकी सन्तानों के राज्याभिषेक५८६ कालपुरुष का आगमन और लक्ष्मण का स्वर्ग जाना ५८७

आठवाँ अध्याय— राम का सभी बन्धु-बान्धवों, प्रजाजनों-सहित स्वर्ग-प्रस्थान ५९३; रामायण का माहात्म्य ५९९

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

चन्दा झा कृत

मैथिली रामायण

बालकाण्ड

प्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरण

सरसमधुसुधातो गद्यपद्यन्नवीनं
वचनजनिधरायाश्शारदाया अधीनम्।
सकलजननमस्यास्सन्नमस्यन्ति यस्याः
पदयुगलमतोऽस्या नौमि नित्यं सुभक्त्या ॥ १ ॥

वन्दे वारणवदनं विघ्नध्वान्तप्रणाशने सूरम्।
शाङ्करिमतुलोदारं विधिगणशरणं गुणातीतम् ॥ २ ॥

पहला अध्याय

मंगलाचरण और प्रस्तावना

मधु और अमृत से भी रोचक नये गद्य-पद्य की रचना कर पाना शब्दों की जननी शारदा की कृपा से ही सम्भव है। इसलिए मैं भक्तिभाव के साथ शारदा के दोनों चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनको सभी लोगों के प्रणम्य (देवता लोग) भी प्रणाम करते हैं। १ मैं शंकर के पुत्र गजवदन गणेश जी की वन्दना करता हूँ जो विघ्न रूपी अँधेरे को दूर करने में मानों सूरज हैं; अनुपम उदार हैं; ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी शरण देनेवाले हैं; और सभी गुणों से परे हैं। २ मैं गिरिराज हिमालय की पुत्री पार्वती के पति भगवान् शिव की

॥ चौपाइ ॥

वन्दे गिरिपति-कन्याकान्तं । अप्रमेयमगणितगुणशान्तं ॥ ३ ॥
राजत - भूधर - द्युति - हर - भासं । श्रितकैलासं जगन्निवासं ॥ ४ ॥
भुक्तिमुक्तिदं गणपति-तातं । परमोदारतया विख्यातं ॥ ५ ॥
श्रीपतिरवनिभारसंहर्त्ता । सेव्यो विभुः स्वतन्त्रः कर्त्ता ॥ ६ ॥
कर्त्तुरीप्सितं कर्म्म च येन । मखमवता प्रभुतातस्तेन ॥ ७ ॥
तस्मै नमो यतो निर्भीताः । मुनयो भुवन-शान्तये प्रीताः ॥ ८ ॥
भक्त्या तस्य च नामस्मरणे । मरणे भयमपि नान्तःकरणे ॥ ९ ॥
हे रघुनन्दन दुर्गति - खण्डन । पालय मां दिनकर-कुलमण्डन ॥ १० ॥

श्रीमन्महीजनिमही - जनि - जानिगीतिं
वैदेह-देश-वचसा रुचिरां सुरीतिम् ।
रामायणीय-चरितस्य सदर्थधारां
चन्द्रः प्रगृह्य वितनोति शुभैकसाराम् ॥ ११ ॥
जनुरिह मम जातं जानकी-जन्मभूमौ
बुधसदसि निवासात्प्राप्तविद्यस्य सौख्यं ।
अनुभवत उदार-श्रीलक्ष्मीश्वरेशं
शृणुत शृणुत धीराः श्रीलचन्द्रस्य वाचम् ॥ १२ ॥

वन्दना करता हूँ जो असीम हैं, अनगिनत गुणों से भरे और शान्त हैं, चाँदी के पर्वत की चमक को चुरानेवाली शोभा से युक्त हैं, कैलाश पर्वत पर आसीन हैं, फिर भी सारे जगत् में व्याप्त हैं, भोग और मोक्ष दोनों देनेवाले हैं, और गणेश जी के पिता हैं। ३-५ मैं श्रीरामचन्द्र को प्रणाम करता हूँ जो श्रीस्वरूपा सीता के पति हैं, धरती के भार को दूर करनेवाले हैं, आराध्य हैं, विश्वव्यापी हैं, स्वतन्त्र कर्ता अर्थात् स्वेच्छा से सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेवाले हैं, जिन्होंने अपनी प्रभुता से मुनि के यज्ञ की रक्षा करते हुए कर्ता के कर्म को इष्ट किया अर्थात स्वयं अनासक्त होते हुए भी रावण के वध में कर्ता बने, और जिनके इस काम से भयहीन होकर मुनिगण संसार के हित के लिए प्रसन्न हुए। ६-८ भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्र के नाम का स्मरण करने से हृदय में मृत्यु-भय नहीं रह जाता है। ९ दुर्गति को दूर करनेवाले हे रघुनन्दन रामचन्द्र जी, हे सूर्यवंश के भूषण, मेरा पालन कीजिए। १० धरती से पैदा हुई श्रीमती सीता और उनके पति श्रीमान् रामचन्द्र की गुणगाथा चन्द्र कवि मिथिला देश की भाषा मैथिली में रचते हैं, जो गाथा रोचक है, पूर्णतः शुभमय है और रामायण में गाये गये चरित की सद्भावधारा से पूर्ण है। ११ मेरा जन्म जनकनन्दिनी सीता की जन्मभूमि मिथिला में हुआ। मैंने सुखपूर्वक पंडितमंडली में रहते हुए विद्या प्राप्त

इह जगति यदस्ति स्थावरं जंगमं य-
त्सदतिशयनमस्यं ब्रह्मतो नापि भिन्नम्।
भवति भवतु लोके सत्कथायाः प्रचारो
जनकनृपति - पुत्री - मातृभाषाञ्चितायाः ॥ १३ ॥

॥ चौपाइ ॥

शौनक पुछल कहल भल सूत। अति आनन्द मगन मन पूत ॥ १४ ॥
नारद जोगी पर उपकार। करक हेतु सञ्चर संसार ॥ १५ ॥
सत्य लोक मुनि पहुचल जखन। देखल विरञ्चिक वैभव तखन ॥ १६ ॥
जनिकर सिरिजल सब संसार। तनिक विभव के बरनय पार ॥ १७ ॥
बाल दिवाकर सन छवि भास। मार्कण्डेय प्रभृति तट वास ॥ १८ ॥
स्तुति करइत छलछथि छल-हीन। ककरहु ततय देखल नहि दीन ॥ १९ ॥
ब्रह्मा संग शारदा दार। सकल अर्थ जानल व्यवहार ॥ २० ॥
देव चतुर्मुख विश्वक नाथ। तनिका नारद जोड़ल हाथ ॥ २१ ॥
भवित दण्डवत चरण प्रणाम। कयलनि स्तुति वचनै अभिराम ॥ २२ ॥

की। हे गम्भीर विद्वान् लोगो, श्रीमान् लक्ष्मीश्वर सिंह की उदारता से सुख का अनुभव कीजिए और श्रीचन्द्र कवि की वाणी अर्थात् यह काव्य सुनिए। १२ इस संसार में जो कुछ भी स्थावर या जंगम पदार्थ है, वह सब परम प्रणम्य है, क्योंकि वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है। राजा जनक की बेटी की मातृभाषा अर्थात् मैथिली में लिखी गई इस सत्कथा अर्थात् मिथिला भाषा रामायण का लोगों में प्रचार होवे। १३

सूत-शौनक-संवाद : नारद-ब्रह्मा-संवाद : शिव-पार्वती-संवाद

शौनक ने पूछा और सूत ने परम आनन्द में मग्न हो पवित्र मन से कहा— १४ योगी नारद, जो परोपकार करने के लिए संसार में घूमते रहते हैं, सत्यलोक पहुँचे और ब्रह्मा का वैभव देखा। १५-१६ सारा संसार हो जिनका रचा हुआ है, उनके वैभव का वर्णन कौन कर पाएगा। १७ उनकी शोभा उदय-काल के सूरज के समान चमक रही थी, तथा मार्कण्डेय आदि ऋषिगण उनके पास बैठ थे। १८ और वे ऋषि लोग निश्छल भाव से उनकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ किसी को भी दीनताग्रस्त नहीं देखा। १९ ब्रह्मा के साथ उनकी पत्नी शारदा भी थीं, जिन्हें सारे अर्थ और व्यवहार की जानकारी है। २० वे चार मुँह वाले भगवान् ब्रह्मा विश्व के मालिक हैं। उन्हें नारदजी ने हाथ जोड़कर, २१ भक्तिपूर्वक चरण पर दण्डवत् प्रणाम किया और प्रिय वचनों से स्तुति की। २२ प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा— "हे नारद मुनि !

तुष्ट कहल तनिका खग-केतु। कहु नारद अयलहुँ की हेतु॥ २३॥
कहलनि नारद देव समाज। अयलहुँ प्रभु अछि बड़ गोट काज॥ २४॥
सकल शुभाशुभ जे किछु रहल। हमरा अपने पूर्व्वहि कहल॥ २५॥

॥ दोहा ॥

कहू कृपा कय भय-हरण, सम्प्रति अछि श्रोतव्य।
कमलासन मङ्गल-करण, दुष्ट समय भवितव्य॥ २६॥

॥ चौपाइ ॥

होयत कलियुग जखना घोर। सभ जन लम्पट सभ जन चोर॥ २७॥
सत्य कथा ककरहु नहि नीक। दुराचार रत मन सबहीक॥ २८॥
पर अपवाद मध्य मन निरत। पर-धनमे अभिलाषी फिरत॥ २९॥
आनक वनितामे मन सटल। पर हिंसाक परायण पटल॥ ३०॥
आत्मा भिन्न देह नहि जान। नास्तिक गति मति पशुक समान॥ ३१॥
माय बापमे द्वेष अलेख। अपनें संसारी सुख देख॥ ३२॥
वनिता बूझत देव समान। कामक किङ्कर कुत्सित ज्ञान॥ ३३॥
ब्राह्मणकाँ बाढ़त बड़ लोभ। वेदक विक्रय नहि मन क्षोभ॥ ३४॥
धनक उपार्ज्जनें व्याकुल चित्त। विद्या पढ़ता मोह निमित्त॥ ३५॥
सभ जन त्यागत निज निज जाति। वञ्चक व्यवहारी दिन राति॥ ३६॥

बताइये, किस काम से पधारे ?" २३ नारद ने कहा— "हे प्रभु, एक बहुत बड़े काम से आपके पास आया हूँ। २४ क्या शुभ है क्या अशुभ, यह तो आप मुझे पहले ही बता चुके हैं। २५ हे भयहारी, हे कमलासन, अब मुझे कृपा करके यह सुनाइए कि आनेवाले बुरे दिनों में किस काम से लोगों का कल्याण होगा। २६ जब कलियुग घोर (प्रौढ़) होगा, तब हर कोई लम्पट और हर कोई चोर हो जाएगा। २७ सच्ची बात किसी को भी अच्छी नहीं लगेगी। सबका चित्त बुरे कामों में लगा रहेगा। २८ दूसरों की निन्दा में मन लगेगा। पराये धन को हड़पने के लोभ में लोग भटकते रहेंगे। २९ परायी औरत में मन टँगा रहेगा। दूसरे की हिंसा में लगा रहना ही धन्धा रहेगा। ३० आत्मा शरीर से भिन्न है, यह ज्ञान नहीं रहेगा। नास्तिक-जैसा आचरण होगा और पशु-जैसी बुद्धि होगी। ३१ माता और पिता से झगड़ा रहेगा, केवल अपना सांसारिक सुख सूझेगा। ३२ पत्नी को देवता समझेंगे। कामवासना के दास होंगे। ज्ञान कुत्सित होगा। ३३ ब्राह्मणों में लोभ की वृद्धि होगी। वे वेद को (ज्ञान को) बेचेंगे, और इस कुकर्म से उन्हें ग्लानि न होगी। ३४ दौलत बटोरने में मन बेताब रहेगा। विद्या केवल मोह (अज्ञान) के लिए पढ़ेंगे। ३५ सभी लोग अपनी-अपनी जात छोड़ देंगे। रात-दिन चालबाज़ी

क्षत्रिय वैश्य स्वधर्म्मक त्याग। करता कि कहब तनिक अभाग ॥ ३७ ॥
नीचक उन्नति हयत अपार। शूद्र-निरत ब्राह्मण आचार॥ ३८ ॥
बहुतो होइति धृष्टा नारि। पतिकाँ विपति देति कत गारि॥ ३९ ॥
श्वशुरक मन्द - कारिणी हयति। स्वेच्छा सुपथें कुपथमे जयति॥ ४० ॥
तनिकाँ सबहिक की गति हयत। जखना ई परलोक मे जयत॥ ४१ ॥
कहल जाय की तकर उपाय। सभ ज्ञाता विधि नाम कहाय॥ ४२ ॥
शुनि मुनि कथा विरंचि उदार। ई भल कथा कयल सञ्चार॥ ४३ ॥
भल अहँ पुछल कहै छी नीक। शुभ गति कारक जे सबहीक॥ ४४ ॥
एक समय गिरिराज - कुमारि। राम-तत्त्व पूछल त्रिपुरारि॥ ४५ ॥
भक्ति - वत्सला विनयक धाम। बूझल कथा चित्त विसराम॥ ४६ ॥
विश्वजननि नित पूजन करथि। लोचन मन आनन्दित धरथि॥ ४७ ॥
लोकक जखन होयत नय भाग। रामायणक बढ़त अनुराग॥ ४८ ॥
पढ़इत नर सद्गतिमे जयत। जिबइत पूर्ण मनोरथ हयत॥ ४९ ॥

में लगे रहेंगे। ३६ क्षत्रिय और वैश्य भी अपने-अपने धर्म को छोड़ देंगे, उनका जो बुरा हाल होगा सो कहाँ तक कहें। ३७ नीच की बहुत उन्नति होगी। शूद्र ब्राह्मण का आचरण करने लगेंगे। ३८ अधिकतर स्त्रियाँ कमीना हो जाएँगी और पति को विपत्ति की घड़ी में गालियाँ देंगी। ३९ ससुर की बुराई करेंगी और स्वच्छन्दचारिणी होकर सुमार्ग को छोड़ कुमार्ग में चली जाएँगी। ४० जब ऐसी स्त्रियाँ परलोक में जाएँगी तो उनकी क्या गति होगी। ४१ प्रभो, कहा जाए कि इसका प्रतिकार क्या होगा। कहा जाता है कि ब्रह्मा सभी बातों के ज्ञाता-सर्वज्ञ हैं।" ४२

रामकथा, राम-रहस्य और रामगीता का माहात्म्य

उदार (सन्तों के हित की कामना करनेवाले) ऋषि नारद की बात सुनकर ब्रह्मा ने यह कल्याणकारी कथा सुनाई— ४३ "भला किया जो आपने पूछा। मैं एक अच्छी बात सुनाता हूँ जो सभी को शुभ परिणाम देनेवाली है। ४४ एक समय पर्वतराज हिमालय की पुत्री गिरिजा ने शिवजी से राम की महिमा पूछी। ४५ भक्तों के प्रति पुत्रवत् स्नेह रखनेवाली परम विनीता गिरिजा की समझ में आ गया कि राम-कथा ही चित्त को विश्राम (परमशान्ति) देनेवाली वस्तु है। ४६ विश्वजननी गिरिजा रोज राम की पूजा करने लगी और रामकथा को अपनी आँखों में और हृदय में आनन्दपूर्वक रखने लगी। ४७ लोगों के जब भाग्य के दिन आएँगे तब उन्हें रामायण के प्रति अनुराग बढ़ेगा। ४८ रामायण पढ़ते हुए लोग अन्त में सद्गति पाएँगे और जीवन-काल में उनके मनोरथ पूरे होंगे। ४९ जो कोई एकादशी तिथि को व्रत करके

एकादशि तिथि कय उपवास। सभा रमायण करथि प्रकास॥ ५०॥
वर्ण वर्ण गायत्री जेहन। पुरश्चरण फल पाबथि तेहन॥ ५१॥
राम-नवमि दिन कर उपवास। रात्रि जागरा मन उल्लास॥ ५२॥
कुरुक्षेत्र तीर्थादि निवास। सूर्य-ग्रहणमे पाप विनाश॥ ५३॥
आत्मतुल्य धन द्विजकाँ देथि। व्यासक सम द्विज दान से लेथि॥ ५४॥
तनिकाँ से फल लाभ अनन्त। सत्य कहल छल गिरिजा-कन्त॥ ५५॥
प्रति दिन रामायण कर गान। सुरपति आज्ञा तनिकर मान॥ ५६॥
रामायणक कथा बड़ गोटि। पढ़लय फल पाबो गुण कोटि॥ ५७॥
हनुमानक प्रतिमाक समीप। राम हृदय शिव मानस दीप॥ ५८॥
तीनि बेरि मौनी जे पढ़त। पूर्ण मनोरथ सुखचय बढ़त॥ ५९॥

॥ सवैया॥

करथि प्रदक्षिण पीपर तुलसिक, राम हृदय पढ़इत जे भक्त।
ब्रह्मघात पातक सभ छूटय, भक्ति भावना मन अनुरक्त॥ ६०॥

॥ चौपाइ॥

कहल महात्म राम-गीताक। जानथि एक कान्त गिरिजाक॥ ६१॥
तकर आध गिरिजा पुन जान। तकर आध हमरा अछि ज्ञान॥ ६२॥

सभा (भक्तों की मंडली) में रामायण का उच्चारण करेगा, ५० वह अनुष्ठान का वैसा ही फल पाएगा, जैसे मानों रामायण का हर अक्षर गायत्री मन्त्र हो। ५१ जो कोई राम-नवमी के दिन व्रत करेगा और प्रसन्न मन से रात में जागरण करेगा, उसे वैसे ही अनन्त पुण्य की प्राप्ति होगी जैसा पुण्य पाप-नाशक सूर्यग्रहण के समय में कुरुक्षेत्र में रहते हुए अपने शरीर के तौल के बराबर सोना व्यास-जैसे द्विज को दान देने से मिलता है। पार्वती जी के पति शिवजी ने यह सच्ची बात कही थी। ५२-५५ जो हर रोज रामायण का पाठ करता है, देवताओं के राजा इन्द्रदेव भी उसकी आज्ञा मानते हैं। ५६ रामायण की कथा महान है। इसे पढ़ने से कोटि गुणा फल मिलता है। ५७ शिवजी के मन को दीप की भाँति आलोकित करनेवाला 'राम-हृदय' नामक स्तोत्र जो कोई हनुमानजी की मूर्ति के पास बैठकर तीन बार मन ही मन पढ़ेगा उसकी कामना पूरी होगी और वह अधिकाधिक सुखी होता जाएगा। ५८-५९ जो कोई भक्त पुरुष 'रामहृदय' पढ़ते हुए पीपल और तुलसी वृक्ष की परिक्रमा करेगा, वह ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्त हो जाएगा, और उसका मन भक्ति-भावना में रम जाएगा। ६० तब ब्रह्माजी ने 'रामगीता' का माहात्म्य बताया— "यह माहात्म्य एकमात्र गिरिजापति शिवजी जानते हैं। ६१ और उसका आधा पार्वतीजी जानती हैं और उस आधे का आधा मैं जानता

से हम किछु कहइत छी आज। सावधान सुनु सकल समाज ॥ ६३ ॥
जानितहिँ मन निर्म्मल भय जाय। श्रीपति गीता देल पढ़ाय ॥ ६४ ॥
उपनिषदुदधिक मन्थन कयल। गीता-सुधा राम से धयल ॥ ६५ ॥
से लक्ष्मणका कहि देल कान। अमर भेला से शुनि से ज्ञान ॥ ६६ ॥

॥ रूपमाला ॥

धनुर्बिद्या पढ़य कारण शैलजेश समीप।
कार्त्तवीर्य्यक नाश-कारण पूर्व्व भृगुकुल-दीप ॥ ६७ ॥
पार्व्वती ओ शम्भुकाँ से छल कथा संवाद।
शुनल धारण कयल मनमे भेल अति आह्लाद ॥ ६८ ॥
ब्रह्महत्या आदि पातक शीघ्र होय बिनास।
राम-गीता पाठसौँ मन भक्तिसौँ एक मास ॥ ६९ ॥
दुःप्रतिग्रह निन्द्य भोजन असद्भाषण पाप।
नाश हो एक मास पढ़लेँ रामचरित प्रताप ॥ ७० ॥

॥ नरेन्द्र दोबय हरिपद ॥

शालग्राम तुलसि यति सन्निधि गीता पाठ जे करथी ॥ ७१ ॥
बचन अगोचर से फल पाबथि भव जलनिधि से तरथी ॥ ७२ ॥
निराहार एकादशि दिनमे द्वादशि संयम कारी ॥ ७३ ॥

है। ६२ उसी में से कुछ मैं आज बताता हूँ. हे समवेत मुनि-गण, आप सभी ध्यानपूर्वक सुनिए। ६३ इसको जानते ही मन निर्मल हो जाता है। लक्ष्मीपति भगवान् कृष्ण ने उपनिषद् रूपी समुद्र का मथन करके गीता का उपदेश किया। उस गीता रूपी सुधा को भगवान् रामचन्द्र ने प्राप्त किया। ६४-६५ यह गीतामृत श्रीराम ने लक्ष्मण जी के कानों में डाला। गीता का ज्ञान पाकर लक्ष्मण जी अमर हो गए। ६६ कार्तवीर्य को नाश करने के उद्देश्य से भृगु-कुल को उजागर करनेवाले भगवान् परशुराम धनुर्विद्या सीखने के लिए पार्वतीपति शिव के पास गए। ६७ उस समय पार्वती और शिवजी के बीच राम-गीता का संवाद चला। परशुराम ने उसे सुना और अतिशय आह्लाद के साथ मन में धारण कर लिया— याद कर लिया। ६८ जो कोई भक्तिभावना के साथ एक मास रामगीता का पाठ करेगा, उसके ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाएँगे। ६९ इसका एक मास पाठ करने से वर्जित दान लेने का पाप, अखाद्य वस्तु खाने का पाप और बुरी बात बोलने का पाप रामचरित की महिमा से कट जाता है। ७० जो कोई शालिग्राम, तुलसी और संन्यासी के पास रामगीता का पाठ करेगा उसे मिलनेवाले पुण्य का वाणी से वर्णन करना असम्भव नहीं है और वह संसार रूपी समुद्र से तर जाता है। ७१-७२ एकादशी के दिन व्रत करके द्वादशी के दिन संयम के साथ अगस्त पेड़ के पास जो निवास

वृक्ष अगस्तिक निकट वासकर तनिकर फल बड़ भारी ।। ७४ ।।
जानि लेब तनिकाँ रघुनन्दन सकल देव कर अर्च्चा ।। ७५ ।।
जीवन्मुक्त भक्तिसौं संयुत यम घर तनिक न चर्च्चा ।। ७६ ।।
विना दान सौं विना ध्यान सौं विना तीर्थ मे गेले ।। ७७ ।।
राम गीत अध्ययन मात्रमे फल अनन्त अछि धेले ।। ७८ ।।
शुनु मुनि नारद बहुत कहब की श्रुति स्मृति सकल पुराणे ।। ७९ ।।
रामायणक कथा तुलना नहि ई गति अछि किछु आने ।। ८० ।।

।। हरिपद ।।

कमलासन नारद सौं कहलनि रामायण तहिठाम ।
श्रद्धासौं पढ़ि सुनि जन जायत सुर पूजित हरिधाम ।। ८१ ।।

।। चौपाइ ।।

पृथिवी काँ बाढ़ल बड़ भार । चिन्मय पुरुष लेल अवतार ।। ८२ ।।
कयल प्रार्थना ई सुर-लोक । कहलनि धरणी काँ बड़ शोक ।। ८३ ।।
पृथिवी मे रघुकुल अवतार । धय प्रभु हरलनि पृथिवी भार ।। ८४ ।।
पुन ब्रह्मत्व पदहि चल गेल । पाप विनाशि वृहत यश भेल ।। ८५ ।।
जानकि-नाथक करिय प्रणाम । भुक्ति-मुक्तिप्रद जनिकर नाम ।। ८६ ।।
कारण उत्पत्ति स्थिति नाश । माया-बाहर माया-बास ।। ८७ ।।

करेगा उसे महान पुण्य होगा । ७३-७४ वह रामचन्द्र के तुल्य पूज्य माना जाएगा । सभी देवता उसकी अर्चना करेंगे । ७५ वह जीवित अवस्था में ही भव-बन्धन से मुक्त हो जाएगा और यमराज के घर में उसकी चर्चा भी नहीं होगी । ७६ न दान करने की आवश्यकता होगी, न ध्यान करने की और न तीर्थ-यात्रा करने की; केवल रामगीता पढ़ लें, आपके लिए अनन्त पुण्य रखे हुए हैं । ७७-७८ हे नारद मुनि, सुना जाय; मैं अधिक क्या कहूँ— वेदों, स्मृतियों और सभी पुराणों में भी राम-कथा की तुलना नहीं है । इसका सुफल कुछ और ही है । ७९-८० यहीं पर ब्रह्मा ने नारद जी को रामायण का उपदेश किया, जिसे पढ़कर और सुनकर लोग देवताओं द्वारा पूजित होकर वैकुंठ धाम को प्राप्त करते हैं । ८१ धरती पर भार बहुत बढ़ गया । चिन्मय परमेश्वर ने अवतार लिया । ८२ क्योंकि देवताओं ने ऐसी प्रार्थना की थी और कहा था कि धरती को बड़ी पीड़ा हो रही है । ८३ प्रार्थना सुनकर ईश्वर ने धरती पर रघुवंश में अवतार लिया और धरती का भार उतारा । ८४ यह काम करके ईश्वर पुनः अपने ब्रह्मत्व के पद पर चले गए । उन्होंने पाप का नाश करने में भारी यश प्राप्त किया । ८५ जानकी के पति श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके नाम भुक्ति (सांसारिक सुख) भी मिलती है और अन्त में मुक्ति भी । ८६ वे श्रीराम उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के मूल कारण

मूर्ति अचिन्त्य सान्द्र आनन्द। अमल सुबोध-रूप सुख-कन्द ॥ ८८ ॥
निखिल-तत्व सीतेश प्रणाम। हम करइत छी मन सुख काम ॥ ८९ ॥
पढ़ सुन नित्य रमायण जेह। सकल पाप हर गुणमय सेह ॥ ९० ॥
नारायण पद सुख सौँ जयत। तनिकाँ कष्ट लेश नहि हयत ॥ ९१ ॥
जौँ इच्छित भव बन्धन मुक्ति। पाठ रमायण अछि बड़ युक्ति ॥ ९२ ॥
कोटि-कोटि जे कर गोदान। से फल सम जे पढ़ इ पुरान ॥ ९३ ॥
पुरब समय शिव विश्व-निवास। छल छथि बसइत गिरि कैलास ॥ ९४ ॥
मणि सिंहासन बैसल ध्यान। यति-वर एहन दोसर के आन ॥ ९५ ॥
सिद्ध संघ सौँ सेवित चरण। अभय त्रिनेत्र सकल अघ हरण ॥ ९६ ॥
गिरिजा प्रश्न कयल तहि ठाम। वास जनिक शंकर तन वाम ॥ ९७ ॥
हे परमेश्वर जगन्निवास। सकल चराचर अहँक विलास ॥ ९८ ॥
कय प्रणाम हम पूछिअ सेह। परम इष्ट अपनेँ काँ जेह ॥ ९९ ॥
भक्त छोड़ि अनका नहि कहथि। बुध विज्ञानि लोक जे रहथि ॥ १०० ॥
ईश्वर अपनेँक ईश्वर राम। जनिक जपैत रहैछी नाम ॥ १०१ ॥

है। वे माया से परे रहते हुए भी नर-रूप धारण कर माया में पड़े हैं। ८७ उनका स्वरूप अचिन्त्य है, घन आनन्दमय है, निर्मल-निष्कलुष है, सम्यक् ज्ञान रूप है, सुख का खजाना है। ८८ मैं सीतापति श्रीराम को, जिन्हें सभी तत्त्व ज्ञात हैं, मन में सुख की कामना से प्रणाम करता हूँ। ८९ जो सभी पापों को दूर करनेवाली रामायण को प्रतिदिन पढ़ेगा और सुनेगा वह अन्त में सुविधा-पूर्वक वैकुंठलोक को प्राप्त करेगा, उसको लेश मात्र भी कष्ट नहीं होगा। ९०-९१ यदि कोई सांसारिक बन्धन से छुटकारा पाना चाहे तो उसके लिए रामायण पढ़ना एक बहुत अच्छा साधन है। ९२ जो करोड़ों गोदान करता है और जो इस रामायण रूपी पुराण को पढ़ता है, दोनों को बराबर पुण्य मिलता है। ९३ प्राचीन युग में एक समय विश्व में व्यापक भगवान शिव कैलाश पर्वत पर रहते थे। ९४ वे रत्नों से बने सिंहासन पर समाधि लगाकर बैठे थे। उनके समान श्रेष्ठ योगी दूसरा कौन है। ९५ सिद्धों का दल उनके चरणों की सेवा कर रहा था। उनकी तीनों आँखें अभय देनेवाली और सभी पापों को दूर करनेवाली थीं। ९६ वहाँ पार्वती ने, जिनका वास शिवजी के आधे शरीर में है, शिवजी से प्रश्न किया— ९७ "हे परमेश्वर शिव, आप तो सारे संसार में व्याप्त रहते हैं। विश्व में जो भी चल या अचल पदार्थ हैं वे सभी आप के खेल हैं। ९८ प्रणाम करके मैं एक ऐसा प्रश्न पूछती हूँ जो आपको परम प्रिय है। ९९ जो लोग विद्वान् और ज्ञानवान् हैं वे [ज्ञान की बातें] भक्त (उन बातों के प्रति अनुरागी) को छोड़ और किसी को नहीं बताते हैं। १०० हे ईश्वर, आप तो स्वयं ईश्वर हैं; फिर आपके ईश्वर राम कैसे हुए जिनका नाम

स्त्री स्वभाव सौँ पूछल फेरि। राम तत्त्व बिसु कहु एक बेरि ॥ १०२ ॥
मानुष रूपक धारण कयल। दशरथ नृपक पुत्र बनि अयल ॥ १०३ ॥
तृण दिव्यास्त्र जयन्तक बेरि। शिव धनु तोड़ल तृण सम फेरि ॥१०४ ॥
गौतम-गेहिनि छलि पाषाण। तनिकर कयल राम कल्याण ॥ १०५ ॥
अगम जलधि मे बाँधल सेतु। बानर योधा रावण हेतु ॥ १०६ ॥
मानुष रूप अमानुष काज। एक कथा पुछइत हो लाज ॥ १०७ ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण अवतरल। दुष्टभार धरणिक सभ हरल ॥ १०८ ॥
जनिकाँ सुख दुख लेश न व्याप। सीता-कारण कयल विलाप ॥ १०९ ॥

॥ रोला छन्द ॥

पुछल भक्ति सौँ जखन कथा ई गिरिवर-कन्या।
अति प्रसन्न शिव कहल प्रिया अपनै अति धन्या ॥ ११० ॥
जनु मयूर आनन्द मेघ-माला धुनि शुनि शुनि।
रामचन्द्र काँ कय प्रणाम तनि तत्त्व कहल पुनि ॥ १११ ॥
प्रकृतिहुँ सौँ पर छथि अनादि पुरुषोत्तम रामे।
अद्वितीय आनन्द सकल कारण विश्रामे ॥ ११२ ॥

आप हमेशा रटते रहते हैं ? १०१ औरत के कुतूहली स्वभाव से मैं पूछती हूँ। एक बार मुझे राम का रहस्य समझा दीजिए। १०२ राम ने नर-तनु को धारण किया और दशरथ के पुत्र बनकर [धरती पर] आए। १०३ उन्होंने जयन्त पर दिव्यास्त्र छोड़ा और शिवजी के धनुष को तिनके की भाँति तोड़ डाला। १०४ गौतम की स्त्री पत्थर हो गई थी और राम ने उसका उद्धार किया। १०५ अगाध समुद्र में पुल बना दिया। रावण को मारने के लिए बन्दरों के दल की सेना बनायी। १०६ मानव होकर भी उन्होंने असम्भव काम किये, अतः एक कथा पूछने में लजाती हूँ। १०७ उन्होंने निर्गुण ब्रह्म होकर सगुण रूप में अवतार लेकर धरती पर पड़े दुष्टों के भार का हरण किया। १०८ जिन्हें सुख और दुःख छू तक नहीं सकते, वही राम सीता के विरह से रोये। १०९ जब पर्वतराज हिमालय की पुत्री गिरिजा ने भक्ति-पूर्वक उपर्युक्त प्रश्न पूछा, तब शिवजी बड़े खुश होकर कहने लगे— "हे प्रिये, तुम परम धन्य हो।" ११० जिस तरह बादल की आवाज़ सुन-सुनकर मोर आनन्दित हो जाता है उसी प्रकार आनन्दित हो शिवजी रामचन्द्र को प्रणाम करके गिरिजा को राम का रहस्य समझाने लगे— १११ "राम अनादि हैं पुरुषोत्तम हैं और प्रकृति से भी परे हैं। अनुपम आनन्दस्वरूप हैं और सभी कारणों के मूल कारण हैं। ११२ जो कुछ भी संसार में भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देते हैं वे सभी उन्हीं के चैतन्य हैं। किन्तु वे किसी भी वस्तु में लिप्त नहीं हैं, जैसे आकाश सभी वस्तुओं में व्याप्त रहते हुए भी सबसे भिन्न

तनिके सभ चैतन्य दृश्य सकलावच्छिन्ने।
लिप्त कतहु नहि होथि गगनवत पुन से भिन्ने॥ ११३ ॥
सृष्टि सकल व्यवहार कराथ जनिकर वर माया।
मिथ्या सत्य प्रतीति यथा जल गगनक छाया॥ ११४ ॥
विषयी जन काँ भास दोष सौँ दूषित दृष्टी।
उत्तर दक्षिण कहथि विपर्य्यय भय गेल सृष्टी॥ ११५ ॥
होइछ दिवा न रात्रि भानु काँ गिरिजा जहिना।
नहि तम सम अज्ञान राम चिद्घन रवि तहिना॥ ११६ ॥
जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति सकल साक्षी से निष्फल
तनिकर सेवा विना जन्म काँ मानब निष्फल॥ ११७ ॥

॥ चौपाइ ॥

कति बेरि राम लेल अवतार। कत बेरि हरलनि अवनी भार॥ ११८ ॥
श्री रामायण अछि शत कोटि। ब्रह्मलोक महिमा बड़ गोटि॥ ११९ ॥
सबल सपुत्र दशानन मारि। धरणी भार सकल देल टारि॥ १२० ॥
मारुत तनय प्रमुख महावीर। ज्ञान भक्ति शूरत्व गभीर॥ १२१ ॥
सीता लक्ष्मण कपिपति सहित। अयला निजपुर विधि शिव सहित॥ १२२ ॥

है। ११३ राम ही की माया सारे सांसारिक व्यवहारों की सृष्टि करती है, और जिस प्रकार पानी में आकाश प्रतिबिम्ब-रूप में मिथ्या दिखाई देता है उसी प्रकार मिथ्या में सत्य की प्रतीति कराती है। ११४ जो लोग सांसारिक विषय-भोग में आसक्त हैं उनकी दृष्टि दोषों (मिथ्या ज्ञानों) से गड़बड़ हो जाती है और वे विपर्यय (भ्रान्ति) के वश उत्तर, दक्षिण आदि का मिथ्या व्यवहार करने लगते हैं। [illegible] हो जाती है। ११५ हे पार्वती, जिस तरह सूर्य के लिए न कभी रात होती है और न कभी दिन, उसी तरह राम को, जो [illegible] सूर्य हैं, अन्धकार-या अज्ञान नहीं होता है। ११६ वे सबसे दूर रहते हुए जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, सभी अवस्थाओं के साक्षी हैं। उन राम की सेवा के बिना अपने जन्म को निष्फल समझना चाहिए। ११७ राम कई बार अवतार ले चुके हैं, कई बार धरती का भार उतार चुके हैं। ११८ उनकी चरितगाथा रामायण, एक नहीं, सौ-सौ करोड़ हैं। ब्रह्म-लोक की महिमा अपार है। ११९ सेना और पुत्रों सहित रावण को मारकर रामचन्द्र ने धरती का सारा भार उतारा। १२० उसके बाद परम वीर हनुमान आदि के साथ, जो अगाध ज्ञान, भक्ति और वीरता वाले हैं। १२१ सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, ब्रह्मा और शिव के साथ अपनी राजधानी लौटे। १२२ गुरु वसिष्ठ ने शास्त्र में बताई गई रीति से अभिषेक किया और राम ने एकच्छत्र राज्य प्राप्त किया। १२३ राजा राम सिंहासन पर बैठे तो

गुरु वसिष्ठ विधि सौं अभिषेक। पाओल राज्य राम नृप एक ॥ १२३ ॥
सिंहासन संस्थित महिपाल। कोटि सूर्य्यसम कान्ति विशाल ॥ १२४ ॥
अञ्जनि-सुतकाँ भक्ति न थोड़ि। आगाँ ठाढ़ भेल कर जोड़ि ॥ १२५ ॥
प्रभु जानथि हनुमानक धर्म्म। अतिशय अद्भुत हिनकर कर्म्म ॥ १२६ ॥
लोभक रहित कथल सभ काज। ज्ञान चहै छथि से पुन आज ॥ १२७ ॥
शुनु वैदेही कहिऔनि ज्ञान। अधिकारी सेवक हनुमान ॥ १२८ ॥
हमरहि निकट सुचित भय रहिय। हमर तत्त्व हिनका अहँ कहिय ॥ १२९ ॥
वैदेही प्रभु आज्ञा पाय। कथा कहल हनुमान बुझाय ॥ १३० ॥

॥ सोरठा ॥

जानब अहँ हनुमान, परब्रह्म श्रीराम काँ।
ई निश्चय करु ज्ञान, मूल प्रकृति हमहीं थिकहुँ ॥ १३१ ॥
उद्भव पालन नाश, हमहिं स्वतन्त्रा कारिणी।
हमरहु हुनके आश, तनिके सन्निधि मुख्य बल ॥ १३२ ॥

॥ चौपाइ ॥

राम अयोध्या वर रघुवंश। जन्म लेल शिव मानस हंस ॥ १३३ ॥
मुनि मख रक्षा भेलनि तखन। कौशिक मुनि संग गेला जखन ॥ १३४ ॥

उनकी चमक एक करोड़ सूरज के बराबर हो गई। १२४ अपार भक्ति वाले अजनिपुत्र हनुमान हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए। १२५ हनुमान के गुणों को भगवान रामचन्द्र जानते थे। इनकी करनी बड़ी ही अजब थी। १२६ इन्होंने बिना किसी लोभ के सारा काम किया। आज ये ज्ञान चाहते हैं। यह जान रामचन्द्र ने सीता से कहा— १२७ "हे विदेहराजपुत्री, तुम इन्हें ज्ञान बताओ। ये हमारे सेवक हनुमान ज्ञान पाने के पात्र हैं। १२८ तुम मेरे ही पास शान्त चित्त से बैठकर मेरा तत्त्व इनको समझाओ।" १२९ राम की आज्ञा पाकर सीता ने हनुमान को रामकथा समझाई : १३० "हे हनुमान, आप श्रीराम को परब्रह्म समझिए और निश्चित रूप से जानिए कि [सांख्य दर्शन में वर्णित] मूल प्रकृति (माया) में ही हूँ। १३१ संसार की सृष्टि, पालन और नाश करने में मैं स्वतन्त्र हूँ। मुझे भी रामचन्द्र का ही भरोसा रहता है और उन्हीं के पास मेरा मुख्य प्रभाव रहता है। १३२ रामचन्द्र ने रघुओं के श्रेष्ठ वंश में अयोध्या नगरी में जन्म लिया। वे मानो शिव के मन रूपी सरोवर में हंस (ज्ञानालोक) हैं। १३३ जब कौशिक मुनि विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम पहुँचे तब मुनि के यज्ञ की रक्षा हुई। १३४ गौतम की पत्नी अहल्या शापवश पत्थर हो गई थी। राम ने उन्हें शाप से मुक्त किया और वह उत्तम लोक को गई। १३५ राम ने जनकपुरी में शिवजी का धनुष बहुत से भले लोगों की सभा में तोड़ा। १३६ तब प्रभु रामजी के साथ मेरा विवाह हुआ।

छली अहल्या पाथर भेलि। शाप छुटल उत्तम गति गेलि ॥ १३५ ॥
जनक-पुरी मे शिव धनु भंग। कयलन्हि बहु विधि सज्जन संग ॥ १३६ ॥
परिणय हमर भेल प्रभु संग। परशुराम अयला भल रंग ॥ १३७ ॥
परिचय पाबि गेला तप भूमि। क्षत्रिय अरि नहि भेला घूमि ॥ १३८ ॥
वास अयोध्या बारह वर्ष। नित नव नव अनुभव हिअ हर्ष ॥ १३९ ॥
कैकयि कहल भेल वनवास। दशरथ छोड़ल जीवन आश ॥ १४० ॥
चित्रकूट सौँ दण्डक गहन। कयल निवास बहुत दुख सहन ॥ १४१ ॥
निधनि विराध तथा मारीच। यति बनि आयल रावण नीच ॥ १४२ ॥
कयलक माया सीता हरण। युद्ध जटायुक भेल मरण ॥ १४३ ॥
मोक्ष कबन्धहुकाँ भेल तेहन। मुनि लोकहुकाँ दुर्लभ जेहन ॥ १४४ ॥
शबरी भक्ति सुपूजन कयल। तनिकाँ मुक्ति युक्ति छल धयल ॥ १४५ ॥
सुग्रीवक संग मैत्रीकरण। तनिक हेतु बालिक भेल मरण ॥ १४६ ॥
सीतान्वेषण कृत प्रस्थान। लंका दग्ध कयल हनुमान ॥ १४७ ॥
रावण काँ रण मारण हेतु। बाँधल गेल समुद्रहुँ सेतु ॥ १४८ ॥
लंका घेड़ल बनरन मारि। रावण मरण सुरण मे हारि ॥ १४९ ॥

तब परशुराम रंगभूमि में पधारे। १३७ उन्हें राम का परिचय मिल गया और वे सीधे अपने तपोवन में लौट गए। फिर कभी उन्होंने क्षत्रिय से दुश्मनी नहीं की। १३८ इसके बाद रामजी बारह साल अयोध्या में रहे, जहाँ रोज नये-नये अनुभवों से हृदय हर्षित होता रहा। १३९ कैकेयी के कहने पर उन्हें वनवास मिला और दशरथ ने प्राण त्यागे। १४० पहले चित्रकूट में, फिर दंडकारण्य में वास किया और बहुत से कष्ट झेले। १४१ विराध और मारीच का वध किया। उसके बाद दुष्ट रावण संन्यासी का कपट-वेष धारण कर पहुँचा। १४२ उसने छल करके सीता का हरण किया। उससे लड़ते जटायु की मृत्यु हो गई। १४३ कबन्ध को भी वैसा मोक्ष मिला जैसा मुनि-लोगों को भी मिलना कठिन है। १४४ शबरी ने भक्तिभाव से राम की पूजा की। उसकी मुक्ति के लिए यही उपाय नियत था। १४५ तब राम ने सुग्रीव के साथ मैत्री की और सुग्रीव के कारण राम ने बालि का वध किया। १४६ हनुमान सीता की खोज करने चले। महावीर ने लंका जलाई। १४७ रावण को युद्ध में मारने के लिए समुद्र में भी पुल बनाया गया। १४८ लंका घेर ली गई। लड़ाई ठन गई। घनघोर लड़ाई में रावण मारा गया। १४९ रावण का कोई लड़का-पोता भी न बचा। राम ने उसके अपराधों को बहुत बर्दाश्त किया। १५० अपने भक्त विभीषण को को लंका का राज दे दिया और उन्होंने शुद्ध हृदय से प्रभुवर रामचन्द्र की शरण को गहा। १५१ तब श्रीरामचन्द्र शत्रुओं से रहित होकर मेरे साथ

तनिकर पुत्र प्रभृति नहि रहल। बहुत अवज्ञा प्रभुवर सहल ॥ १५० ॥
देल विभीषण जनकाँ राज। प्रभुवर शरण धयल निर्व्याज ॥ १५१ ॥
पुष्पक चढ़ि प्रभु हमरा सहित। जनपद अयला अरिसौँ रहित ॥ १५२ ॥
राजा राम नाम अभिषेक। कहल कथा संक्षेप विवेक ॥ १५३ ॥
सकल कयल हमही सब कर्म्म। ज्ञानी जानथि एकर मर्म्म ॥ १५४ ॥
निर्विकार अखिलात्मा राम। ई आरोप कि तनिका ठाम ॥ १५५ ॥

॥ सोरठा ॥

सुनि गिरिजा वृत्तान्त, महादेव कहलनि कथा।
तखना सीताकान्त, मारुतनन्दन सौँ कहल ॥ १५६ ॥

॥ दोहा ॥

यथा जलाशय त्रिविधि नभ, देखि पड़ै अछि जेह।
महाकाश ह्रद मे तथा, प्रतिबिम्बहु मे सेह ॥ १५७ ॥
एक पूर्ण चैतन्य मे, जीव भ्रम आरोप।
त्रिगुणा मायाकृति सकल, तत्वज्ञान सौँ लोप ॥ १५८ ॥

पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने देश अयोध्या लौट आए। १५२ राजा राम का राज्याभिषेक नाममात्र का हुआ। उनकी कथा संक्षेप में अपनी बुद्धि के अनुसार आपको बताई। १५३ वास्तव में रावण-वध आदि जो कुछ भी काम हुआ वह मैंने ही किया। इसका रहस्य केवल ज्ञानी लोग जानते हैं। १५४ क्योंकि राम तो निर्विकार और अखिल ब्रह्माण्ड स्वरूप हैं; फिर उनके ऊपर किसी काम का कर्तृत्व थोपना क्या उचित होगा ? १५५ गिरिजा से वृतान्त सुनकर शिवजी ने कथा सुनाई। तब सीतापति रामचन्द्र ने पवनसुत हनुमान से कहा— १५६ "जिस प्रकार अलग-अलग पानी के बरतन में आकाश का प्रतिबिम्ब अलग-अलग दिखाई पड़ता है अर्थात् एक ही आकाश अनेक मालूम पड़ता है, उसी तरह महाकाश जो झील में वही प्रतिबिम्ब में भी है। १५७ पूर्ण चैतन्यरूपी एक आत्मा का दर्शन अनेकानेक भिन्न-भिन्न जीव के रूप में होता है; यह भ्रममूलक मिथ्या आरोप है। इस तरह के भ्रम का मूल कारण है त्रिगुणात्मिका माया। तत्त्व-ज्ञान से इस भ्रम का अन्त होता है। १५८ यह तत्त्व-ज्ञान तत्-त्वम्-असि (वही तुम हो) इत्यादि वेदोक्त महावाक्य से होता है। मन में मैं वही (ब्रह्म) हूँ ऐसा निश्चय (असन्दिग्ध बोध) हो जाने पर ब्रह्म और जीव में भेद का भ्रम दूर हो जाता है। १५९ जो कोई मेरा भक्त मननशील है वह ज्ञान द्वारा मद्भाव को प्राप्त करता है अर्थात् मुझमें लीन हो जाता है। बार-बार जन्म लेने पर भी ज्ञान के बिना मोक्ष सम्भव नहीं है। १६० यह गोपनीय कल्याणकारी ज्ञान मैंने स्वयं तुम्हें बताया है। यह ज्ञान उसे न देना जो भक्ति से हीन हो, भले ही वह इन्द्र के समान महान

तत्त्वमसि प्रभृतिक श्रुतिक, महावाक्य सौँ ज्ञान।
निश्चय मन भेलैँ तहाँ, ब्रह्म जीव नहि आन॥ १५९॥
मननशील जे हमर जन, जागि जाथि मद्भाव।
ज्ञान विना हो मोक्ष नहि, बहुत जन्म जौँ पाव॥ १६०॥
ई रहस्य अहँ काँ कहल, हम अपनहिँ शुभ ज्ञान।
भक्तिहीन काँ देब नहि, जौँ हो इन्द्र समान॥ १६१॥

॥ चौपाइ॥

गिरिजा शंकर काँ संवाद। रघुपति हृदयक बड़ मर्य्याद॥ १६२॥
ई गोट पढ़लए रहए न पाप। गोपनीय थिक प्रबल प्रताप॥ १६३॥
पढ़थि भक्तियुत जे मन लाय। ब्रह्म-बधादिक पाप मेटाय॥ १६४॥
बहुजन्मार्जित पापक नाश। यमक यातनाकृत नहि त्रास॥ १६५॥

॥ घनाक्षरी॥

जाति पाति नष्ट भ्रष्ट पापी पर-धन-रत ब्रह्मघाती उतपाती मित्रजन नासी जे। कुल मे कलंकि ओ कुलघ्न हेमचोर चाढ़ योगिवृन्द-अपकारी धर्म्म मे उदासी जे॥ रामचन्द्र पूजिकैं करय जे हृदय-पाठ योगीन्द्र अलभ्य पदहोक होथि वासी से। 'चन्द्र' भन सर्व्व लोक विजयि विभूतिमान पड़थि न कदापि कठोर जम फाँसी से॥ १६६॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे बालकाण्डे प्रथमोऽध्यायः॥

हो। १६१ यह शिव-पार्वती-संवाद रामचन्द्र को हृदय से बड़ा प्रिय है। १६२ इसके पाठ से पापों से छुटकारा मिलता है। इसकी बड़ी महिमा है। यह गोपनीय है। १६३ जो कोई इसका पाठ भक्ति के साथ मन लगाकर करेगा उसके ब्रह्मवध आदि बड़े-बड़े पाप भी दूर हो जाएँगे। १६४ जन्म-जन्मान्तर में अर्जित पाप कट जाएँगे, और उसे यमराज के यहाँ यातना पाने का डर नहीं होगा। १६५ जो जात-पाँत से एकदम गिर गया हो, पापी हो, दूसरे के धन को अनुचित तरीके से भोगने में लगा हो, ब्रह्महत्या करनेवाला हो, लोगों को सतानेवाला हो, अपने मित्रों का नाश करनेवाला हो, कुल में कलंक लगानेवाला हो, कुल के लिए घातक हो, स्वर्ण चुरानेवाला हो, उचक्का हो, योगियों की बुराई करनेवाला हो, धर्म से विरत हो, वह भी यदि रामचन्द्र की पूजा करके 'राम-हृदय' का पाठ करेगा तो जो पद बड़े-बड़े योगियों को भी नहीं मिल पाता उस पद को प्राप्त करेगा; चन्द्र कवि कहते हैं, सभी लोगों में विजयी होगा और ऐश्वर्यशाली होगा, तथा यम को कठोर फाँसी में कभी न पड़ेगा। १६६

॥ मैथिल चन्द्र कवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में बालकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

शिव शिव कहल शुनल हम कान। रामायण वर अमृत समान॥ १ ॥
पिबइत पिबइत तृप्ति न भेल। भवसन्ताप सकल चल गेल॥ २ ॥
धन्य भाग्य थिक मन मे गुणल। रामतत्त्व संक्षेपहि शुनल॥ ३ ॥
कयल अनुग्रह संशय छुटल। अपनेसौं शुनि रामक पटल॥ ४ ॥
शुनब कथा सम्प्रति विस्तार। कहु कहु प्रियतम परम उदार॥ ५ ॥
अति आनन्द शम्भु शुनि चित्त। राम-चरित दुखहरण निमित्त॥ ६ ॥
पूर्व्व काल हमरा गुणधाम। कहलें छल छथि अपनहि राम॥ ७ ॥
संप्रति हम कहइत छी सैह। दुख अज्ञान निवारक जेह॥ ८ ॥
चिरजीवी सन्तति अति ऋद्धि। श्रोता हाथ सकल गोट सिद्धि॥ ९ ॥

॥ बोधय छन्द ॥

एक समय भयदीना अवनी भारें व्याकुल भेली।
सुरभिरूप बनि कनइत कनइत धाम विरञ्चिक गेली॥ १० ॥
सकल देवगण तनिकाँ संगे पुछलनि विधि कहु धरणी।
सञ्च सञ्च से सबटा कहलनि दुष्ट दशानन करणी॥ ११ ॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा द्वारा विष्णु से अवतार लेने का अनुरोध

हे शिव, आपने अमृत के समान श्रेष्ठ रामायण की कथा सुनाई और मैंने कानों से सुनी। १ उक्त कथामृत बार-बार पीने पर भी मन में तृप्ति न हुई। सभी सांसारिक कष्टों का अन्त हो गया। २ यह मेरा सौभाग्य है। मैंने उसका मनन किया। पर राम की कहानी आपने संक्षेप में ही सुनाई। ३ आपने बड़ी कृपा की। आपसे राम का पटल अर्थात् रामायण सुनकर मेरे मन का सन्देह मिटा। ४ अब मैं विस्तारपूर्वक यह कहानी सुनूँगी। हे परम उदार मेरे प्रियतम, आप सुनाने की कृपा करें। ५ पार्वती का उक्त अनुरोध सुनकर शिवजी के मन में खुशी हुई। उन्होंने पार्वती जी से कहा— राम का चरित दुःख को दूर करनेवाला है। ६ पूर्वकाल में एक समय गुणों के आश्रय श्रीराम जी ने अपना चरित स्वयं मुझे सुनाया था। ७ वही चरित मैं तुम्हें सुनाता हूँ, जिसके सुनने से दुःख और अज्ञान दूर होते हैं। ८ दीर्घ आयुवाली सन्तानों की वृद्धि होती है। सारी सिद्धियाँ श्रोता के हाथ में आ जाती हैं। ९ एक समय पापियों के भार से व्याकुल और डर से घबराई हुई धरती गाय का रूप धारण करके रोते-रोते ब्रह्मलोक गई। १० उसके पीछे-पीछे सभी

॥ चौपाइ ॥

यजन सुजप मुनि तप जे करथी। तनिकर राक्षस प्राणे हरथी ॥ १२ ॥
हरि हरि अनइछ अनकर नारि। डरसौँ के कर हुनि सौँ मारि ॥ १३ ॥
थर थर काँपथि सब दिकपाल। रावण जनमल भल-जन-काल ॥ १४ ॥
धारण धर्म्म देल समुझाय। भार अपार सहल नहि जाय ॥ १५ ॥
सकल दुःख हम देल जनाय। अपनहि बुड़ले युग बुड़ि जाय ॥ १६ ॥
जौँ अपने नहि टारब भार। होयत अकालहि लय संसार ॥ १७ ॥
कमलासन शुनि ध्यानावस्थ। सकल देवगण छला तटस्थ ॥ १८ ॥
कहलनि विधि चलु हमरा संग। अहँक दुःख सब होयत भंग ॥ १९ ॥
क्षीरसमुद्र तीर मे जाय। ब्रह्मा बैसला ध्यान लगाय ॥ २० ॥
स्तुति कयलनि पढ़ि श्रुति सिद्धान्त। जय नारायण लक्ष्मीकान्त ॥ २१ ॥
स्तोत्र पढ़ल जे पठित पुराण। गद गद वचन परम विज्ञान ॥ २२ ॥
हर्षक नोर बहल जलधार। प्रभु प्रसन्न भेल करुणागार ॥ २३ ॥
ज्योति - प्रकाश भानु सम भेल। श्रीनारायण दर्शन देल ॥ २४ ॥
इन्द्रनीलमणि छविमय अंग। स्मित - मुख लोचन पङ्कज रंग ॥ २५ ॥

देवता लोग भी थे। ब्रह्मा ने पूछा— हे पृथ्वी, बताइए क्या बात है ? पृथ्वी ने शान्तिपूर्वक दुष्ट रावण की सारी करनी कह सुनाई। ११ "जो कोई मुनि यज्ञ, जप या तप करते हैं, वह राक्षस रावण उनके प्राण हर लेता है। १२ वह पराई औरतों को हरण कर ले आता है। किसकी मजाल है कि उससे लड़ाई ठाने। १३ रावण के डर से इन्द्रादि सभी दिक्पाल थर्राते हैं। रावण का जन्म मानों सज्जनों के लिए काल हो गया है। १४ सबको धारण करना जो मेरा धर्म है यह तो मैं समझती हूँ, लेकिन पापियों का यह अपार भार अब मुझसे सहा नहीं जा रहा है। १५ मैंने अपनी सारी तकलीफ़ आपको बता दी। अपना नाश तो मानों दुनिया का नाश। १६ अगर आप मेरे भार को दूर नहीं करेंगे तो असमय में ही संसार में प्रलय हो जाएगा"। १७ ब्रह्मा यह सुनकर ध्यान में लीन हो गए। सभी देवता लोग पास में खड़े थे। १८ ब्रह्मा ने कहा— "आप मेरे साथ चलें। आपका सारा दुःख दूर हो जाएगा।" १९ इतना कहकर ब्रह्मा क्षीरसमुद्र के किनारे गए और वहाँ समाधि लगाकर बैठ गए। २० वैदिक सूक्त पढ़-पढ़कर भगवान् विष्णु की स्तुति की— लक्ष्मीपति नारायण की जय हो। २१ फिर पुराणों में बताए गए स्तोत्रों का पाठ किया। स्तुति करते समय भक्ति के उद्रेक से उनकी वाणी गद्‌गद हो गई और परम ज्ञान का आलोक हुआ। २२ हर्ष से आँसू की धारा बहने लगी। परम दयालु भगवान नारायण प्रसन्न हुए। २३ फिर सूरज की- सी ज्योति छिटकी और श्रीनारायण ने दर्शन दिया। २४ उनके शरीर की कान्ति नीलम जैसी (श्याम वर्ण) थी। मुँह में मीठी मुस्कान थी।

हार किरीट तथा केयूर। कटकादिक शोभा भरि पूर ॥ २६ ॥
श्रीवत्सान्वित कौस्तुभ राज। सनकादिक स्तुति करथि समाज ॥ २७ ॥
पार्षद लोक सकल छल तथ। प्रकट भेला (ह) पुरुषोत्तम जतय ॥ २८ ॥
शंख रथाङ्ग गदा जलजात। कनक-जनौ कनकाम्बर गात ॥ २९ ॥
लक्ष्मीसहित गरुड़पर चढ़ल। देखितहि विधि मन आनन्द बढ़ल॥ ३० ॥

॥ वानिनी छन्द ॥

शत शत शत नमस्कार देवदेव आजे।
दीना पृथिवीक दुष्टभारनाश काजे ॥ ३१ ॥
अपनेक त्रिगुणात्म सृष्टि सर्व्वमान्य माया।
रचना-प्रतिपाल-नाश-कारिणी अकाया ॥ ३२ ॥
निर्गुण सगुणावतार भूमि-भार-हर्त्ता।
स्वेच्छासौं एकसौं अनेकरूप धर्त्ता ॥ ३३ ॥
संसृति-जलराशि-तरण नावकल्प भक्ति।
सकल-पदार्थदा अनन्तसारशक्ति ॥ ३४ ॥

॥ चौपाइ ॥

स्तुति करइत विधिकाँ विभ कहल। अपनें सबहि दुःख बड़ सहल ॥ ३५ ॥

आँखों के रंग कमल-जैसे थे। २५ शरीर में हार, किरीट, केयूर (बाजूबन्द), कटक (कमरबन्द) आदि भूषणों की शोभा भरी हुई थी। २६ हृदय में श्रीवत्स चिह्न के साथ कौस्तुभ नामक मणि शोभा पा रही है। सनक-सनातन आदि मुनियों का दल स्तुति कर रहा है। २७ जहाँ पुरुषोत्तम नारायण प्रकट हुए वहाँ उनके सभी पार्षद भी उपस्थित थे। २८ चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म थे। सोने का जनेऊ था और शरीर में स्वर्णवर्ण का (पीला) रेशमी वस्त्र था। २९ लक्ष्मी जी के साथ गरुड़ पर सवार थे। उनको देखते ही ब्रह्मा के मन में आनन्द की बाढ़ आ गई। (दर्शन होते ही ब्रह्मा स्तुति करने लगे—)३० "हे देवों के देव नारायण, मैं आज सौ-सौ बार नमस्कार करता हूँ। दुष्टों के भार से पृथ्वी भारी पीड़ा में पड़ी हुई है; उस भार को दूर करना आपका काम है। ३१ सभी मानते हैं कि यह त्रिगुणात्मिका माया आप ही की रचना है। यही स्वयं शरीर से रहित होते हुए भी सर्जन, पालन और संहार तीनों करती है। ३२ आप गुणों से रहित हैं, फिर भी पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप सगुण होकर अवतीर्ण होते हैं, और अपनी इच्छा से एक से अनेक रूप धारण करते हैं। ३३ आपकी भक्ति संसार-सागर को पार करने की नाव-जैसी है, वह सभी आकांक्षाओं की पूर्ति करनेवाली और अनन्त शक्तिस्वरूप है।" ३४ स्तुति कर रहे ब्रह्मा से विष्णु ने कहा— "आप लोग बहुत कष्ट झेले। ३५ "हे ब्रह्मा, बताइए, मैं

विधि कहु की करु हम उपकार। शुनि विधि मन भेल हर्ष अपार ॥ ३६ ॥
परमेश्वर शुनु रावण नाम। राक्षसेन्द्र बस लङ्का - धाम ॥ ३७ ॥
ओ पौलस्त्यक तनय महान। संप्रति दुष्ट एहन नहि आन ॥ ३८ ॥
हम वर देल भेल अन्याय। हमरहि सबकाँ भेल बलाय ॥ ३९ ॥
के कह तनिका नीति बुझाय। उचित न बिरनी-वृन्द जगाय ॥ ४० ॥
तीनि लोक मे से के लोक। जनिका रावण देल न शोक ॥ ४१ ॥
एक गोट अछि तनि मे आश। मानुष हाथेँ तनिक बिनाश ॥ ४२ ॥
राखल जाय देव संसार। अपनेँ धरु नर-वर अवतार ॥ ४३ ॥
दुख शुनि तखन कहल भगवान। नीक नीक होयत कल्यान ॥ ४४ ॥
हम सन्तुष्ट देल वरदान। तकरा मध्य कथा नहि आन ॥ ४५ ॥
कश्यप बहुत तपस्या कयल। विष्णु होथु सुत ई मन धयल ॥ ४६ ॥
संप्रति दशरथ से तप वेस। छथि से उत्तर कौशल देश ॥ ४७ ॥
तनिकर पुत्र होयब हम जाय। कौशल्या सौँ शुभ दिन पाय ॥ ४८ ॥
चारि रूप हम अपनहि हयब। केकयि सुमित्रा पुत्र कहयब ॥ ४९ ॥
माया हमरे आज्ञा पाय। सीता नाम कहौतिह जाय ॥ ५० ॥
तनिकाँ संग हरब महि भार। माया लीला अति विस्तार ॥ ५१ ॥

आपका क्या उपकार करूँ ?" यह सुनकर ब्रह्मा के मन में बड़ा हर्ष हुआ। ३६ उन्होंने कहा— "हे परमेश्वर, सुनिए। रावण नाम का एक राक्षसराज लंकापुरी में रहता है। ३७ वह पौलस्त्य का लड़का है। अभी उसके समान बदमाश और कोई नहीं है। ३८ मैंने ही उसे वरदान दिया, सो अच्छा नहीं किया। वह दुष्ट तो हम ही सबों के लिए बला हो गया है। ३९ किसका सामर्थ्य है कि उसे उचित बात समझाए। बर्रे के दल को छेड़ना अच्छा नहीं होता है। ४० तीनों भुवन में ऐसा कौन होगा जिसे उसने सताया न हो। ४१ उसके बारे में आशा की बात एक ही है कि उसकी मौत मनुष्य के हाथ से लिखी है। ४२ हे देव, आप इस संसार को बचाइए। आप पुरुषोत्तम रूप में अवतार लीजिए।" ४३ तब उनका दुःख सुनकर भगवान विष्णु ने कहा— "अच्छा, अच्छा। आप लोगों का कल्याण होगा। ४४ मैं सन्तुष्ट होकर यह वरदान देता हूँ। इसमें अन्यथा नहीं हो सकता है। ४५ कश्यप ऋषि ने बड़ी तपस्या की। उनके मन में यह कामना थी कि विष्णु उनका पुत्र होकर अवतार लें। ४६ अभी राजा दशरथ ने इसी कामना से अच्छी तपस्या की है। वे अभी उत्तर कौशल नामक देश में राज्य कर रहे हैं। ४७ मैं शुभ घड़ी पाकर कौशल्या में उनका पुत्र होऊँगा। ४८ चार रूप मैं स्वयं धारण करूँगा, वे (मेरे तीन रूप) कैकेयी और सुमित्रा के पुत्र कहलाएँगे। ४९ माया मेरी आज्ञा पाकर अवतार लेगी और सीता कहलाएगी। ५० उनके साथ मैं धरती का भार दूर करूँगा। माया की लीला अपरम्पार है।" ५१

बहुत कयल विधि प्रभु-गुणगान। ई कहि भेला अन्तर्धान ॥ ५२ ॥
होयत रघुकुल विभु-अवतार। माया मानव गुण-विस्तार ॥ ५३ ॥
अपनहुँ सबहिँ एहन मति करब। बानर भालु रूप भल धरब ॥ ५४ ॥
यावत प्रभु महि मण्डल रहथि। होयब सहाय जतय जे कहथि ॥ ५५ ॥
ई सब देव सकल शुनि लेल। दृढ़ भरोस धरणी काँ देल ॥ ५६ ॥
धरणी धरु धरु धीर सुचित्त। विभु अवतरता अहँक निमित्त ॥ ५७ ॥
मनवांछित अहँकाँ अछि जेह। सकल-शक्तियुत होयत सेह ॥ ५८ ॥
सुख सौं विधि गेला निज लोक। ई शुनि काश्यपीक कृश शोक ॥ ५९ ॥

॥ हरिपद ॥

पर्व्वत वृक्ष अस्त्र वानरतन कयल अमर-गण धारण।
विभुक बाट तकइत नित सबजन रण सहायता कारण ॥ ६० ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे
बालकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

ब्रह्मा ने विष्णु का बहुत गुणगान किया और विष्णु अन्तर्धान हो गए। [ब्रह्मा ने कहा—] ५२ "रघुकुल में भगवान विष्णु अनन्तगुण-विभूषित माया-मानव के रूप में अवतार लेंगे। ५३ हे देवताओ, आप लोग भी अवतार लीजिए और बन्दर-भालू का रूप धारण कीजिए। ५४ जब तक भगवान विष्णु धरती पर रहें तब तक वे जहाँ जो कहें उसमें आप लोग मदद करें।" ५५ सभी देवताओं ने ऐसा सुना और धरती को पक्का भरोसा दिया। ५६ "हे धरणी, आप मन में धीरज रखिए। भगवान विष्णु आपके खातिर अवतार लेंगे। ५७ आपके मन में जैसी कामना है, सारी शक्ति लगाकर वैसा ही किया जाएगा।" ५८ यह कहकर ब्रह्मा ब्रह्मलोक को चले गये और उनकी बात सुनकर कश्यप की पुत्री धरणी की चिन्ता कुछ दूर हुई। ५९ देवताओं ने पर्वत, वृक्ष, अस्त्र, वानर आदि का रूप धारण किया और लड़ाई में सहायता करने के लिए सभी नित्य नारायण के अवतार की प्रतीक्षा करने लगे। ६०

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में बालकाण्ड का
दूसरा अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

राजा दशरथ बड़ श्रीमान । सत्य - पराक्रम एहन न आन ॥ १ ॥
पुरी-अयोध्याधिप अति वीर । सकल - लोक - विश्रुत रणधीर ॥ २ ॥
पुत्र-हीन चिन्तातुर चित्त । गुरु - समीप - गत तकर निमित्त ॥ ३ ॥
कयल सविधि गुरु - चरण प्रणाम । कहलनि पुत्र-हीन धिक धाम ॥ ४ ॥
गुरु अपनें सन राज्य पवित्र । पुत्र - हीन की कर्म्म विचित्र ॥ ५ ॥
कयल जाय गुरु तेहन उपाय । श्री-परमेश्वर होथि सहाय ॥ ६ ॥
पुत्रहीन कें राज्यक भोग्य । लुप्त - पिण्ड - क्रिय पुत्र न योग्य ॥ ७ ॥
लक्षण - लक्षित पुत्र अनेक । हमरा होथि से करु विवेक ॥ ८ ॥
गुरु वसिष्ठ कहलनि तत्काल । चिन्ता मन जनु करु महिपाल ॥ ९ ॥
चारि पुत्र अहँकाँ नृप हयत । जनिक सुयश त्रिभुवन मे जयत ॥ १० ॥
शान्ता - स्वामी मित्र जमाय । आनू तनिकाँ अपनहि जाय ॥ ११ ॥
काम - यज्ञ करु विधि सौं भूप । हमरा सब मिलि कर्म्म अनूप ॥ १२ ॥

तीसरा अध्याय

दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ और चार पुत्रों की प्राप्ति

दशरथ नाम के एक राजा थे। वे बड़े ही श्रीसम्पन्न थे। सत्य और पराक्रम में उनका जोड़ा नहीं था। १ वे अयोध्यापुरी के स्वामी थे। युद्ध में उनकी वीरता और धीरता सारी दुनिया में मशहूर थी। २ उनके पुत्र नहीं था, इसलिए उनके मन में चिन्ता रहती थी। वे एक दिन इस चिन्ता के समाधानार्थ गुरु वसिष्ठ के पास गए। ३ उन्होंने यथोचित रीति से गुरु के चरणों में प्रणाम किया और कहा— "हे गुरुदेव, पुत्रहीन घर बेकार है। ४ मुझे आप-जैसे गुरु मिले हैं और पवित्र राज्य मिला है। फिर भी मैं पुत्रहीन हूँ। भाग्य की क्या विडम्बना है। ५ हे गुरुदेव, ऐसा उपाय करिए जिससे श्रीसहित नारायण मेरे सहायक हों। ६ जो पुत्रहीन है उसे राज्य का भोग क्या होगा। यदि योग्य पुत्र न हुआ तो मरने पर उसका पिंडदान कौन करेगा। ७ इसलिए विचार करके ऐसा बताइए जिससे मुझे अनेक गुणवान पुत्र प्राप्त हों।" ८ गुरु वसिष्ठ ने तुरत उत्तर दिया— "हे राजा, आप मन में चिन्ता मत कीजिए। ९ आप के चार पुत्र होंगे, जिनका सुयश तीनों लोक में फैलेगा। १० शृंगी ऋषि शान्ता के स्वामी आपके मित्र के जमाई हैं। उन्हें आप खुद जाकर ले आइए। ११ हे महाराज, शास्त्रोक्त विधान के साथ काम-यज्ञ (पुत्रेष्टि) कीजिए। हम सभी लोग मिलकर इस काम में आपकी सहायता करेंगे। १२ अंग देश में परम भाग्यशाली रोमपाद नामक

अङ्ग देश मे भाग्य विशाल। रोमपाद नामक महिपाल ॥ १३ ॥
पुत्र न तनिकहुँ गत कत बर्ष। चिन्तातुर मन रहल न हर्ष ॥ १४ ॥
तनिकाँ कहलनि सनत्कुमार। पुत्र होयत करु एहन विचार ॥ १५ ॥
शृङ्गीऋषि जौं एहि थल आब। तनिका सौं बाढ़य सद्भाव ॥ १६ ॥
शान्ता कन्या तनिकाँ देब। मनवांछित फल हुनि सौं लेब ॥ १७ ॥
शृङ्गी रहता घरहि जमाय। साध्य कार्य्य पुत्रेष्टि कराय ॥ १८ ॥
मंत्री सभ काँ पुछल नरेश। शृङ्गीऋषि आबथि एहि देश ॥ १९ ॥
मन्त्रीगण भण सुनु महराज। बड़ गड़बड़ सन लगइछ काज ॥ २० ॥
ओ वनचर व्यवहार न जान। सभकाँ मानथि एक समान ॥ २१ ॥
वनिता पुरुष भेद नहि चित्त। जाएत के वन तनिक निमित्त ॥ २२ ॥
बड़ क्रोधी मुनि तनिकर बाप। अनुचित देखले देथिनि शाप ॥ २३ ॥
सुमरि-सुमरि तनि पुण्य-प्रताप। हे महिपति जिव थर-थर काप ॥ २४ ॥
शृङ्गी पिता विभाण्ड स्वभाव। साध्य न मन्त्री देल जबाब ॥ २५ ॥

॥ दोबय छन्द ॥

भूपति तखन वार-वनिता कें अपना निकट बजाओल।
अपना निमित्त शृङ्गिऋषि आबथि सब कहि काज सुनाओल ॥ २६ ॥

राजा थे। १३ उन्हें भी बहुत उम्र बीत गई पर पुत्र न हुआ। मन में चिन्ता समाई रहती थी। हर्ष जाता रहा। १४ सनत्कुमार ने उन्हें उपदेश दिया कि पुत्र होगा, ऐसा विश्वास कीजिए। १५ यदि शृंगी ऋषि यहाँ पधारें तो उनसे सद्भाव (मित्रतापूर्ण सम्बन्ध) बढ़ाया जाए। १६ शान्ता नाम की अपनी बेटी को उनसे ब्याह दी जाए और उनकी सहायता से मनवांछित फल (पुत्र) प्राप्त होगा। १७ शृंगी ऋषि जमाई होकर घर में ही रहेंगे, इससे उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जा सकता है।" १८ राजा रोमपाद ने मन्त्रियों को बुलाकर पूछा कि "शृंगी ऋषि यहाँ कैसे पधारेंगे ?" मन्त्रियों ने कहा— "हे महाराज, सुना जाय। यह काम बड़ा गड़बड़-सा लगता है। १९-२० वे वनवासी हैं। गृहवासी का व्यवहार नहीं जानते हैं। सबों को एक-सा समझते हैं। २१ उनके मन में नर और नारी में कोई अन्तर नहीं समझ में आता है। भला, उनको लाने के लिए तपोवन कौन जाएगा। २२ उनके पिता विभाण्डक मुनि बड़े क्रोधी हैं। कुछ भी अनुचित व्यवहार देखेंगे तो तुरन्त शाप दे देंगे। २३ उनके पुण्य की महिमा को सोच-सोचकर, हे महाराज, मेरा जी थर-थर काँपता है। २४ शृंगी ऋषि का भी स्वभाव अपने पिता विभाण्डक ऋषि के समान है। यह काम साध्य नहीं है।" —मन्त्रियों ने जवाब दिया। २५ तब राजा ने वेश्याओं को अपने पास बुलाया और अपना प्रयोजन सुनाया कि अमुक काम से शृंगी ऋषि को बुला लाना है।

मुनि-मन-मोहिनि तोहरि सनि के जौ ओ मुनि कें लएबह।
हमर मनोरथ-सिद्धोत्सव मे कोटि-कोटि धन पएबह॥ २७॥
हाथ जोड़ि गणिकागण बाजलि साधक कार्य्य विधाता।
आनब हम ठानब प्रपञ्च बड़, स्वस्थ चित्त रहु दाता॥ २८॥
तकइत तकइत सभ जनि पहुचलि पाओल तनिक ठेकाना।
रतिपति-वर्द्धन राग अलापय रतिचेष्टा कर नाना॥ २९॥
सञ्च सञ्च श्रृङ्गी लग सभ जनि गणिका ओ संप्राप्ता।
तनिसौं अतिथि-सपर्य्या पाओल तनिक जनक भय-व्याप्ता॥ ३०॥
गाबि गाबि नित गीत मनोहर मिलि मिलि मुनि तन जाथी।
कन्द मूल फल प्रीति सौं देथि जे मुनिहिक सोझाँ खाथी॥ ३१॥

॥ सोरठा ॥

फल हमरो मुनि खाउ, लाइलि छी बड़ि दूर सौं।
कि कहब आश पुराउ, उचित कहल वेश्योक्ति शुनि॥ ३२॥

॥ हरिपद ॥

मोदक मधुर मनोजविवर्द्धन सुधा-समान विलक्षण।
गणिका देथि वनी नहि जानथि लगला करय सुभक्षण॥ ३३॥
एक वर्ष सहवास नियत छल छल न बुझल दुर्ल्लक्षण।
रतिपति-गति संप्राप्त जानि मुनि लय गेली पुर तत्क्षण॥ ३४॥

[उन्होंने कहा—]। २६ "मुनियों के मन को मोहनेवाली तुम-जैसी और कौन है। यदि तुम लोग शृंगी ऋषि को ले आओगी तो मेरा मनोरथ पूरा होने के उत्सव में करोड़ों स्वर्ण-मुद्रा पाओगी।" २७ वेश्याओं ने हाथ जोड़कर कहा— "इस कार्य में ईश्वर हमारे साधक होंगे। तरह-तरह के प्रपंच ठानकर हम लोग उन्हें लायेंगी। हे दाता, आप निश्चिन्त रहिए।" २८ शृंगी ऋषि को खोजते-खोजते सभी वेश्याएँ पहुँचीं और उनका ठिकाना मिल गया। वे काम-वर्धक राग अलापने लगीं और नाना तरह से कामोत्तेजक हाव-भाव करने लगीं। २९ तब धीरे-धीरे वे सभी वेश्याएँ शृंगी ऋषि के पास पहुँचीं। शृंगी ऋषि से उन्होंने आतिथ्य-सत्कार पाया, किन्तु उनके पिता विभाण्डक से वे सभी आतंकित थीं। ३० वे वेश्याएँ रोज मनोहर गीत गा-गाकर हिल-मिलकर मुनि के पास जातीं, और मुनि प्रेमपूर्वक जो कन्द-मूल-फल देते, मुनि के सामने खाती थीं। ३१ कोई वेश्या कहती— "हे मुनि, मेरा फल भी खाइए। मैं बड़ी दूर से ले आई हूँ। ज्यादा क्या कहूँ, मेरा मंशा पूरा कीजिए।" वेश्या की ऐसी बात सुनकर ऋषि ने कहा— "ठीक है।" ३२ वेश्याएँ अमृत के समान मीठा अद्भुत काम-वर्धक मोदक मुनि को देतीं। वनवासी मुनि क्या जानें, वे रुचिपूर्वक मोदक खाने लगे। ३३ एक वर्ष तक इस प्रकार उनका सहवास (संग) चलता रहा। मुनि को इसमें कोई बुराई

बड़ उत्सव महिपाल कयल तत शान्ता कन्या देलनि।
शृङ्गी मुनि जमाय सौं मख-विधि पूर्ण मनोरथ भेलनि ॥ ३५ ॥
रोमपाद पुत्रोत्सव पाओल ओ नृप अहँकाँ मित्रे।
शान्ता सहित तनिक पति आबथि कार्य्य-सिद्धि की चित्रे ॥ ३६ ॥

॥ चौपाइ ॥

गेला रोमपाद नृप देश। श्रीयुत दशरथ विदित नरेश ॥ ३७ ॥
मित्र-भवन रहला किछु काल। कहल प्रयोजन निज महिपाल ॥ ३८ ॥
शान्ता कन्या शृङ्गि जमाय। तनिकाँ दिऔनि अयोध्या जाय ॥ ३९ ॥
कयल लेआओन कन्या जानि। रोमपाद घर सब लेल मानि ॥ ४० ॥
जाथु अवश्य अपन घर थीक। हिनका गेलें निश्चय नीक ॥ ४१ ॥
चलला कन्या-संग जमाय। दशरथ हर्ष कहल नहि जाय ॥ ४२ ॥
पहुँचलाह नृप अपना नगर। भेल हकार नगर मे सगर ॥ ४३ ॥
तनिक चुमाओन उत्सव गीति। सुता जमाइक सन सब रीति ॥ ४४ ॥
सभ रानी मन हर्ष अपार। नित नव कन्या वर व्यवहार ॥ ४५ ॥
दशरथ यज्ञ कयल तत गोट। इन्द्रक बिभव देखि पड़ छोट ॥ ४६ ॥

लक्षित नहीं हुई। जब एक दिन उन्होंने देखा कि मुनि कामवश हो गए हैं, तब वे मुनि को तुरन्त पकड़ राजधानी ले आईं। ३४ राजा ने वहाँ बहुत उत्सव किया और अपनी कन्या उन्हें ब्याह दी। तब जमाई शृंगी ऋषि की देख-रेख में पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न हुआ और राजा की कामना पूरी हुई। ३५ राजा रोमपाद को पुत्र हुआ। वे राजा रोमपाद तो आपके मित्र ही हैं। यदि शान्ता के साथ उनके पति शृंगी ऋषि आपके यहाँ आयें तो आपका काम बन जाएगा, इसमें कोई अचरज नहीं।" ३६ तब राजा दशरथ राजा रोमपाद के यहाँ गये। ३७ कुछ दिन अपने मित्र के यहाँ ठहरे, तब राजा से अपना प्रयोजन जनाया— ३८ "आप अपनी कन्या शान्ता और अपने जमाई शृंगी ऋषि को अयोध्या जाने दीजिए।" ३९ राजा दशरथ ने शान्ता को अपनी लड़की समझकर अपने यहाँ बुलाया, इसलिए रोमपाद के घर में इस न्योता को सबों ने स्वीकार कर लिया और कहा— ४० "अवश्य जायं। आपका घर तो उसका अपना घर हुआ। उसके जाने से अवश्य ही भला होगा।" ४१ लड़की के साथ जमाई चले। दशरथ को जो हर्ष हुआ वह बताना कठिन है। ४२ राजा अपनी राजधानी अयोध्या पहुँचे। सारे नगर को बुलावा भेजा गया। ४३ उन्हें बेटी-जमाई की तरह चुमाया गया, उत्सव मनाया गया और गीत गाये गये। ४४ सभी रानियों के मन में अपार हर्ष था। हर रोज़ नये वर-वधू का व्यवहार होने लगा। ४५ दशरथ ने इतना बड़ा यज्ञ किया कि उसके आगे इन्द्र का वैभव भी छोटा दिखाई देने लगा। ४६

महिमे जतेक महीप छलाह। दशरथ-यज्ञ-समय अयलाह ।। ४७ ।।
सभहिक कयल परम सन्मान। गुरु वसिष्ठ बसु-मन्त्रि-प्रधान ।। ४८ ।।
यज्ञारम्भ वसन्त विचारि। सहस्राक्ष मन मानल हारि ।। ४९ ।।

।। हरिपद ।।

दशरथ नृपति विष्णु मानिसौं तत शृङ्गी मुनिकें अनलनि।
मन्त्रीसहित नृपति अति शुचिसौं सविधि काम-मख ठनलनि ।। ५० ।।
पापरहित चित मुनि श्रुति-पारग बहुत यज्ञमे अयला।
होम अनल सौं दिव्य पुरुष एक स्वर्ण-वर्ण बहरयला ।। ५१ ।।
पायसपूर्ण पात्र कर लेलय कहि गुण नृपकें देले।
थोड़हि दिनमे परमेश्वर सुत अन मानू अछि भेले ।। ५२ ।।
पायस लेल नृपति आनन्दित मुनि-गुरुपद कय वन्दन।
अन्तर्द्धान अग्नि कहि भेला आधि भेल सब खण्डन ।। ५३ ।।
गुरु वसिष्ठ शृङ्गी ऋषि कहलनि रानी पायस खयती।
की विलम्ब शुभ अवसर नृप अछि पूर्ण-मनोरथ हयती ।। ५४ ।।
कौशल्या केकयी छली तँह दुइ भाग कय देलनि।
ततय सुमित्रा पाछाँ अइली तनिकाँ नहि किछु भेलनि ।। ५५ ।।

सारे संसार में जितने भी राजा थे वे सब-के-सब दशरथ के इस यज्ञ में पधारे। ४७ दशरथ ने सबों का खूब सत्कार किया। गुरु वसिष्ठ और श्रेष्ठ मन्त्रियों ने वसन्त में यज्ञ शुरू करने का निर्णय किया। यह जानकर इन्द्र मन ही मन हार मान गये। ४८-४९ राजा दशरथ भगवान विष्णु समझकर शृंगी ऋषि को वहाँ ले आये। तब मन्त्रियों-सहित राजा ने परम पवित्रता के साथ विधि-पूर्वक काम-यज्ञ (पुत्रेष्टि) आरम्भ किया। ५० इस यज्ञ में बहुत-सारे ऋषि-मुनि पधारे जो निष्कलुष हृदय वाले और वेद-शास्त्र में पारंगत थे। यज्ञ के हवनकुंड से एक सोना-सा चमकीला दिव्य पुरुष निकला। ५१ उसके हाथों में खीर से भरा एक स्वर्णपात्र था और उसने वह स्वर्णपात्र, उसके गुण का बखान करते हुए, राजा को दिया— "विश्वास कीजिए, थोड़े ही दिनों में परमेश्वर आपका पुत्र बनेंगे।" ५२ राजा ने आनन्दित हो मुनियों और गुरुजनों के चरणों को प्रणाम करके पायस ले लिया। उक्त बात सुनाकर दिव्य-पुरुष रूपी अग्नि अन्तर्धान हो गये। राजा की सारी चिन्ता दूर हो गई। ५३ तब गुरु वसिष्ठ तथा शृंगी ऋषि ने कहा— "रानियाँ यह पायस खाएंगी। हे राजा, अभी शुभ मुहूर्त है, इसमें विलम्ब क्यों? इसके खाने से रानियों की कामना पूरी हो जाएगी।" ५४ उस समय वहाँ कौशल्या और कैकेयी उपस्थित थीं। दोनों ने आधा-आधा हिस्सा बाँट लिया। सुमित्रा बाद में आई, इसलिए उन्हें कुछ नहीं मिला। ५५ तब दोनों रानियों

अपन भागसौं बुनु जनि रानी अर्द्ध भाग पुनि कयलनि।
देल सुमित्रा काँ तीनू जनि पायस से तहँ खयलनि॥ ५६॥
सभ जनि भेलि सगर्भा तनिकहि छवि सौं मन्दिर शोभित।
जगन्निवास वास जत कयलनि कोटि भानु शशि क्षोभित॥ ५७॥

॥ हंसगति छन्द॥

भक्तक वश भगवान एहन मति फुरलनि।
दशम मास मधु मास आश प्रभु पुरलनि॥ ५८॥
कौशल्या थिकि धन्य जनिक सुत भेलाह।
ब्रह्मानन्दानन्दें दोष दुख गेलाह॥ ५९॥
शुक्लपक्ष नवमी शुभ कर्क उदित हित।
मध्य दिवस नक्षत्र पुनर्व्वसु अभिजित॥ ६०॥
पञ्चग्रह उच्चस्थ मेषमे दिनकर।
सृष्टि त्रिगुण उतपत्ति शक्ति कर जनिकर॥ ६१॥

॥ चौपाइ॥

वारिद वरिसल तखना फूल। जन्म लेल सभ सम्पति मूल॥ ६२॥
नीलोत्पलदल श्यामल राज। चारि सुभुज कनकाम्बर भ्राज॥ ६३॥
अरुण जलज वर सुन्दर नयन। कुण्डल मण्डित शोभा-अयन॥ ६४॥

ने अपनें-अपनें हिस्से को दो-दो भागों में बाँट दिया और एक-एक हिस्सा सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार वहाँ तीनों रानियों ने पायस खाया। ५६ सभी रानियाँ गर्भवती हो गईं। उनकी छवि से दशरथ के आँगन की शोभा बढ़ गई। जहाँ पर जगन्निवास भगवान् विष्णु ने स्वयं निवास किया उसकी शोभा के आगे कोटि-कोटि सूर्यों और चन्द्रों की चमक परास्त है। ५७ ईश्वर भक्त के वश में होते हैं, इसीलिए तो उन्हें ऐसी इच्छा हुई। चैत महीना आया, जो गर्भ का दसवाँ महीना हुआ। इसी मास में ईश्वर ने उनकी इच्छा पूरी की। ५८ धन्य हैं रानी कौशल्या, ईश्वर जिनके पुत्र हुए। ब्रह्मानन्द के तुल्य आनन्द से उनके सभी दुख-दर्द दूर हो गए। ५९ शुक्ल पक्ष की शुभ नवमी तिथि थी। कर्क लग्न था। मध्याह्न काल था। पुनर्वसु अभिजित् नक्षत्र था। ६० पाँच ग्रह ऊँचे स्थानों में थे। सूर्य मेष राशि में थे। ऐसे समय में राम ने जन्म लिया जिनके हाथ में सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों वाले संसार का सृजन करने की शक्ति है। ६१ उस समय बादल से फूल बरसने लगे। सभी कल्याणों के मूल ईश्वर ने जन्म लिया। ६२ उनका वर्ण नीलकमल की पंखुड़ियों के सदृश श्याम था। चार भुजाएँ थीं। सोने के रंग का वस्त्र चमक रहा था। ६३ उनकी आँखें लाल कमल-सी सुन्दर थीं। वे शोभा की खान कुंडल पहने हुए थे। ६४

सहस सूर सन सुछवि प्रकास। कुटिल अलक सुमुकुट भल भास ॥ ६५ ॥
शंख रथाङ्ग गदा जल-जात। वनमाली स्मितमुख अवदात ॥ ६६ ॥
नयन करुण रससौँ परिपूर। इन्दीवर शोभा कर दूर ॥ ६७ ॥
श्री श्रीवत्स हार रमणीय। केयुर नूपुर गण कमनीय ॥ ६८ ॥

॥ दोहा ॥

कौशल्या देखल सकल, अदभुत बालक भेल।
कहलनि से कर जोड़िकेँ, कनइत हर्षक लेल ॥ ६९ ॥

॥ चौपाइ ॥

बार बार हम करिय प्रणाम। हम अबला अज्ञानक धाम ॥ ७० ॥
वचन बुद्धि मन पहुँच न जतय। स्तुति हम कि करब फुरय न ततय ॥ ७१ ॥
रचना पालन प्रलय स्वतन्त्र। विश्व चढ़ल भल माया-यन्त्र ॥ ७२ ॥
ब्रह्म अनामय हर्षक मूल। हमरा पर से प्रभु अनुकूल ॥ ७३ ॥
अहँक उदर-वर बस संसार। हमर तनय बनलहुँ व्यवहार ॥ ७४ ॥
कहइत छी प्रभु हम कर जोड़ि। रूप अलौकिक ई दिअ छोड़ि ॥ ७५ ॥
एहि रूपक हमरा रह ध्यान। बनल रहय नित ई हित ज्ञान ॥ ७६ ॥
सुन्दर शिशु सरूप अँह धरिय। दिन दिन देव कृतार्थित करिय ॥ ७७ ॥

सहस्र सूर्य के समान उनकी चमक थी। घुँघराले बाल और मुकुट शोभा दे रहे थे। ६५ चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म थे। वनमाला गले में थी। होठ पर शुभ्र मुसकान थी। ६६ उनके नयन करुणा से भरपूर थे और नीलकमल की शोभा को परास्त करते थे। ६७ श्रीवत्स मणि से विभूषित हार, केयूर (बाजूबन्द) और नूपुर आदि भूषण शोभा पा रहे थे। ६८ कौशल्या ने पूर्ण रूप से देखा, यह तो अद्‌भुत बालक हुआ। हर्ष से रोती हुई वे हाथ जोड़कर बोलीं—६९ "हे प्रभु, मैं बारंबार प्रणाम करती हूँ। मैं अबला हूँ, ज्ञानहीन हूँ। ७० जहाँ वाणी, बुद्धि और मन की भी पहुँच नहीं है, वहाँ समझ में नहीं आता कि मैं क्या स्तुति करूँ। ७१ आप अपनी इच्छा के अनुसार सृजन, पालन और प्रलय करने में समर्थ हैं। यह संसार आपके माया-रूपी यन्त्र पर चढ़ा नाच रहा है। ७२ आप निर्विकार ब्रह्म हैं और आनन्द के मूल हैं। ऐसे प्रभु आप आज मुझ पर कृपालु हुए। ७३ आपके विशाल उदर में यह संसार समाया हुआ है, फिर आप मेरे उदर में आकर मेरे पुत्र बने —यह आपकी लीला है। ७४-७५ हे देव, आपके इस रूप की झाँकी सदा मेरे मन में रहे। यह हित ज्ञान हमेशा बना रहे। ७६ अब आप सुन्दर शिशु का रूप धारण कीजिए और दिन पर दिन मुझे कृतार्थ करते रहिए।" ७७ तब भगवान् ने कहा— "हे माता, आपकी जैसी ही

॥ रोला छन्द ॥

तखन कहल श्रीनाथ अम्ब वांछित अछि जेहन।
किछु नहि करब विलम्ब रूप करइत छी तेहन ॥ ७८ ॥
भूमि भार हरणार्थ विधि स्तुति बहुत सुनाओल।
अँह दशरथ तप कयल तकर फल दर्शन पाओल ॥ ७९ ॥
हमर होथु श्रीनाथ पुत्र पूर्व्वहि मँगलहुँ वर।
दुर्ल्लभ दर्शन हमर लाभ अछि नहि संसृति डर ॥ ८० ॥
ई संवाद जे पढ़त सुनत सारूप्य हमर से।
दुर्ल्लभ हमरे स्मरण अन्तमे पाओत नर से ॥ ८१ ॥

॥ चौपाइ ॥

ई कहि बनला सुन्दर बाल। इन्द्रनील छवि नयन विशाल ॥ ८२ ॥
बाल अरुण तन दिव्य प्रकाश। जनिकर माया विश्व विलास ॥ ८३ ॥
पुत्र जन्म शुनि मुदित महीप। सत्वर गेला गुरुक समीप ॥ ८४ ॥
सहित वसिष्ठ देखल नृपतनय। हर्षे किछु नहि कहइत बनय ॥ ८५ ॥
जय जय शब्द सकल थल सोर। नृपित नयन बह हर्षक नोर ॥ ८६ ॥
तखन कयल नृप जातक कर्म्म। उत्तम कुलक उचित जे धर्म्म ॥ ८७ ॥
केकयि सौँ उतपति सुत भरत। कमल कि लोचन-समता करत ॥ ८८ ॥

चाह है, कुछ देर न करूँगा, वैसा ही रूप मैं धारण करता हूँ। ७८ धरती के भार को दूर करने के लिए ब्रह्मा ने मेरी बड़ी स्तुति की। आप और आपके पति दशरथ ने जो तप किया है, उसी के फलस्वरूप मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। ७९ आपने पूर्व में ही ऐसा वर माँगा था कि ईश्वर मेरे पुत्र हों। मेरा दर्शन पाना बड़ा दुर्लभ है, वह आपको मिल गया। अब आपको संसार (भव-बन्धन) का डर नहीं रहा। ८० माता-पुत्र का यह संवाद जो पढ़ेगा, जो सुनेगा वह मुझमें एकाकार हो जाएगा। जीवन के अन्त में उसे मेरा दुर्लभ ध्यान आएगा।" ८१ ऐसा कहकर वे सुन्दर शिशु बन गए। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें नीलम की शोभा पा रही थीं। ८२ शरीर में उदयकाल के सूरज के समान लाल वर्ण की अलौकिक चमक थी, जिनकी माया से सारे विश्व का खेल चल रहा है। ८३ पुत्र-जन्म की खबर पाकर राजा हर्षित होकर तुरन्त गुरु वसिष्ठ के पास गए। ८४ वसिष्ठ के साथ आकर राजा ने अपने पुत्र को देखा। इतना हर्ष हुआ कि कुछ भी बोल नहीं पाते। ८५ सभी जगह 'जय-जय' का शोर मच गया। राजा की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। ८६ तब राजा दशरथ ने अपने उत्तम कुल के आचार के अनुसार शिशुओं का जातकर्म नामक वैदिक संस्कार किया। ८७ कैकेयी से भरत नामक पुत्र का जन्म हुआ, जिसकी आँखों का मुकाबला कमल नहीं कर सकता

पुत्र सुमित्राकाँ दुइ गोट। लक्ष्मण ओ शत्रुघ्न सुछोट॥ ८९॥
देल विप्र काँ गाम हजार। बड़ गोट उत्सव चारि कुमार॥ ९०॥
कनक रत्न पट ओ गोदान। करथि नृपति जँ हो कल्यान॥ ९१॥

॥ घनाक्षरी ॥

मगन महीप मन देखि याचकक गन,
देव देव करथि अनन्त रत्न बरषन।
कत रथ चढ़ि कत चढ़ि गजराज पीठ,
कत वाजिराजि न रहल चित्त धरषन॥ ९२॥
सोहर मनोहर सुगाब किन्नरी नरोक,
बनलि सुरुप एत जन केओ परख न।
देव-दुन्दुभीक धुनि गगन प्रसून-वृष्टि,
रामचन्द्र जनम उत्सव की प्रहरषन॥ ९३॥

॥ चौपाइ ॥

रमित होअ मुनि-मन जहि ठाम। तनिकर नाम धएल मुनि राम॥ ९४॥
कारक भरण भरत तँ नाम। लक्षण युत लक्ष्मण गुण-धाम॥ ९५॥
करता गय शत्रुक संहार। नाम धयल शत्रुघ्न उदार॥ ९६॥
रामक सह लक्ष्मण रह सतत। शत्रुघ्नो भरतर संग निरत॥ ९७॥

है। ८८ सुमित्रा को दो पुत्र हुए— बड़े लक्ष्मण और छोटे शत्रुघ्न। ८९ ब्राह्मणों को दान में हज़ार गाँव दिए गए। बहुत बड़ा उत्सव हुआ, क्योंकि एक-दो नहीं चार पुत्र एक साथ हुए। ९० राजा ने सोना, जवाहरात, वस्त्र और गायों का दान किया ताकि नवजात शिशुओं का मंगल हो। ९१ याचकों के दल को देख-देख राजा का मन उल्लसित हो उठा। मानो देवों के राजा इन्द्र अनगिनत रत्नों का बौछार कर रहे हों। कितने लोग रथ चढ़कर, कितने हाथी चढ़कर और कितने घोड़े चढ़कर उल्लसित हुए। किसी के मन में डर न रहा। ९२ किन्नरियाँ नारियों (मानवियों) का रूप धारण करके मनोहर स्वर में सोहर (जन्मोत्सव-गीत) गा रही हैं, और कोई परख नहीं रहा है कि ये नारियाँ नहीं, किन्नरियाँ हैं। आकाश में देवता लोग दुन्दुभी बजा रहे हैं और फूल बरसा रहे हैं। रामचंद्र के जन्म का उत्सव क्या रोमांचकारी आनन्द देनेवाला है! ९३ गुरु वसिष्ठ ने उनका अन्वर्थ नाम 'राम' रखा, जहाँ मुनिजनों का मन रमता है। ९४ संसार का या प्रजा का भरण-पोषण करनेवाले होंगे, इसलिए 'भरत' नाम पड़ा। शुभ लक्षणों से युक्त होने के कारण गुणवान् 'लक्ष्मण' नाम पड़ा। ९५ शत्रु का संहार करेंगे, यह सोचकर 'शत्रुघ्न' नाम पड़ा। ९६ लक्ष्मण हमेशा राम के साथ रहते थे और शत्रुघ्न भरत के साथ। ९७ पायस में लगे हिस्से के अनुसार दो-दो

दुइ दुइ जन पायस अनुसार। बाल सुलीला कर सञ्चार॥ ९८॥
बालक वचन सुधाक समान। राजा रानी शुनि शुनि कान॥ ९९॥
मन आनन्द कहल की जाय। वचन मनोहर चारू भाय॥ १००॥
बाल विभूषण शोभा वेश। से देखि रानी मुदित नरेश॥ १०१॥
नाचथि गाबथि नाना रङ्ग। सम वय बालक लय लय सङ्ग॥ १०२॥
नृपति बजाबथि भोजन बेरि। हँसि पड़ाथि लग जाथि न फेरि॥ १०३॥
कौशल्याकाँ कह तह भूप। पकड़ि लाउ बालककाँ चूप॥ १०४॥
हसइत कहुखन अपनहि आब। कादो माटि हाथ लपटाब॥ १०५॥
किछु किछु नृपतिक रुचि सौँ खाथि। चञ्चल खेड़िक हेतु पड़ाथि॥ १०६॥
बालक कौतुक जे प्रभु कयल। से शिव गिरिजा मानस धयल॥ १०७॥
बरुआ भेला चारु कुमार। उपनयनक गुरु कयल विचार॥ १०८॥
चारू जन विधि सौँ उपनीत। सभ विद्या पढ़ि परम विनीत॥ १०९॥
धनुर्वेद - विद्या - निष्णात। शास्त्र न एक तनिक अज्ञात॥ ११०॥
राम संग लक्ष्मण नित रहथि। आज्ञा करथि राम जे कहथि॥ १११॥
शत्रुघ्नो भरतक संग तेहन। लक्ष्मण राम रीति मति जेहन॥ ११२॥

भाई मिलकर ललित बाललीला करते थे। ९८ अमृत के समान मीठा शिशुओं का बोल कान से सुन-सुनकर रानी-समेत राजा के मन में जो आनन्द होता था वह कहा नहीं जा सकता है। चारों भाई के बोल बड़े मीठे थे। ९९-१०० बालोचित भूषणों की जो शोभा थी उसे देख-देखकर रानी और राजा प्रसन्न होते थे। १०१ चारों भाई समान उम्रवाले बालकों को साथ ले-लेकर तरह-तरह से नाचते और गाते। १०२ भोजन के समय जब राजा खाने को बुलाते तो हँसकर भाग जाते, फिर पास न जाते। १०३ ऐसी स्थिति में राजा कौशल्या से कहते थे— चुपके से तुम बालकों को पकड़ लाओ। १०४ कभी चारों भाई खुद हँसते हुए पास आ जाते और उनके हाथ में कीचड़ और मिट्टी लगी रहती। १०५ कुछ-कुछ राजा के आग्रह से खाते थे, फिर चंचल होकर खेल के लिए भाग जाते थे। १०६ राम ने जो-जो बाल-लीलाएँ कीं उनकी झाँकी शिव और पार्वती ने अपने हृदय में अंकित कर रखी। १०७ चारों बालक बरुआ (वटु) की अवस्था में पहुँचे। तब गुरु वसिष्ठ ने उनके उपनयन (जनेऊ) करने का निर्णय किया। १०८ चारों का शास्त्र-वर्णित रीति से जनेऊ हुआ। सभी सारी विद्या पढ़कर विनीत-विद्वान् बने। १०९ वे धनुर्वेद (तीरंदाजी) में पारंगत हुए। उन्हें एक भी शास्त्र अछूता न रहा। ११० लक्ष्मण सदा राम के साथ रहते थे, और राम की आज्ञा मानते थे। १११ इसी प्रकार शत्रुघ्न भी भरत के साथ रहते थे, जिस प्रकार लक्ष्मण राम की रीति और बुद्धि पर चलते थे। ११२

अश्व चढ़ल कर धनुष सुबाण। नित्य सिकारक हेतु प्रयाण॥ ११३॥
मेध्य मेध्य मृग मारथि जाय। पिता निकट से देथि पठाय॥ ११४॥
उठि सबेरि स्नानादिक कर्म्म। करथि सनातन जे कुल-धर्म्म॥ ११५॥
राज काज कर आलस थोड़। लागथि नित्य पिताकाँ गोड़॥ ११६॥
बन्धु सहित गुरु आज्ञा पाय। भोजन करथि तखन नित जाय॥ ११७॥
धर्मशास्त्र विधि शुनि व्याख्यान। करथि सतत मन उत्तम ज्ञान॥ ११८॥

॥ दोहा ॥

मानव-लीला करथि प्रभु, निर्गुण रहित विकार।
जानथि ब्रह्मा प्रभृति नहि, विभु माया विस्तार॥ ११९॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे बालकाण्डे तृतीयोऽध्यायः॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ चौपाइ॥

कौशिक रामक दर्शन काज। गेला दशरथ नृपति समाज॥ १॥
दशरथ कयल तनिक सम्मान। मुनि वसिष्ठ सन गुरु मतिमान॥ २॥

चारों भाई घोड़े पर चढ़-चढ़कर तीर-धनुष हाथ में लिये रोज़ शिकार के लिए जाते। ११३ जंगल जाकर वैसे मृगों (चौपायों) को मारते जिनका मांस खाया जाता है। और शिकार के मृग पिता के पास भेज देते। ११४ सबेरे उठकर स्नान आदि नित्य-कर्म करते, जो सनातन (सदा से चला आया) कुलाचार है। ११५ राजकाज करते थे, उसमें आलस्य नहीं करते थे। पिता को नित्य प्रणाम करते थे। ११६ रोज़ पहले साथियों-समेत गुरु के पास जाकर उनसे आज्ञा लेते थे, तब भोजन करते थे। ११७ धर्मशास्त्र में बताई रीति से उपदेश सुनते थे और मन में हमेशा अच्छी भावना रखते थे। ११८ गुणों और विकारों से रहित ईश्वर इस प्रकार राम का अवतार लेकर मानव-लीला करते। ब्रह्मा आदि देवता भी ईश्वर की माया का ओर-छोर नहीं जानते। ११९

॥ मैथिल चन्द्र कवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में बालकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त॥

चौथा अध्याय

विश्वामित्र द्वारा दशरथ से राम और लक्ष्मण की याचना

एक समय कौशिक मुनि विश्वामित्र रामचन्द्र के दर्शन के लिए राजा दशरथ के यहाँ पधारे। १ दशरथ ने, मुनि वसिष्ठ जैसे विद्वान् जिनके गुरु

अपनेक सदृश जाथि जन जतय। संपति सकल पहुँच सच ततय॥ ३ ॥
बहुत कृतार्थ कएल मुनि आज। अभ्यागत लत हयर समाज॥ ४ ॥
कोन हेतु गुरु मुनि संचार। कहल जाय करु तकर विचार॥ ५ ॥
शुनि मुनि कहल सुनिय महिपाल। कार्य्य उपस्थित ई एहि काल॥ ६ ॥
यज्ञारम्भ करी हम जखन। अबइत अछि राक्षस-गण तखन॥ ७ ॥
नाम सुबाहु तथा मारीच। दुहु प्रधान अज्ञानी नीच॥ ८ ॥
यज्ञ-विघ्न-कारक अवतार। मरत ककर सक कयल विचार॥ ९ ॥
लक्ष्मण राम ततय जौं जाथि। हिनक त्रास सौं दुष्ट पड़ाथि॥ १० ॥
देल जाय होयत कल्यान। रक्षा करत कहू के आन॥ ११ ॥
गुरु बसिष्ठ सौं करू विचार। अनुमति सुजस होयत संसार॥ १२ ॥
हँ की नहि नहि बजला भूप। हुनि मुनि आगाँ रहला चूप॥ १३ ॥
नृप एकान्त कहल निज आधि। मुनि-कृत बाढ़ल बहुत उपाधि॥ १४ ॥
गुरु कहु करब कि देब न तनय। क्रोधी मुनि मनता नहि विनय॥ १५ ॥
राम बिना नहि जीवन रहत। नहि जौं देब लोक की कहत॥ १६ ॥

हैं, विश्वामित्र का सत्कार किया और कहा—२ "आपके जैसे पुरुष जहाँ पधारते हैं, वहाँ वास्तव में सभी सम्पत्तियाँ पहुँच जाती हैं। ३ हे मुनि, आज आपने मुझे परम कृतार्थ किया। ऐसे श्रेष्ठ अतिथि हमारे घर आये। ४ हे गुरुदेव मुनि, कहा जाय, किस काम से आपका यहाँ आना हुआ, ताकि उधर ध्यान दिया जाए।" ५ यह सुनकर मुनि विश्वामित्र ने कहा— "हे राजा, सुना जाय, मुझे अभी जो काम आ पड़ा है। ६ ज्यों ही मैं यज्ञ शुरू करता हूँ त्यों ही राक्षसों का एक दल आ धमकता है। ७ उस दल के दो प्रधान राक्षसों के नाम हैं सुबाहु और मारीच। दोनो परम अज्ञानी और अधम हैं। ८ उनका जन्म ही यज्ञ में विघ्न डालने के लिए हुआ है। मैं सोचने लगा, कौन इसे मार सकता है। ९ तो यह बात मन में आई कि यदि राम और लक्ष्मण वहाँ जाएँ तो उनके डर से वे दुष्ट राक्षस भाग सकते हैं। १० ये दोनों कुमार मुझे दे दिए जाएँ। इसी से हमारा कल्याण (त्राण) होगा। कहिए, और कौन है जो हमारी रक्षा कर सकेगा। ११ आप अपने गुरु वसिष्ठ से विचार-विमर्श कर लें। इसमें अनुमति देने से संसार भर में आपका यश फैलेगा।" १२ राजा न 'हाँ' बोले, न 'ना'। वे मुनि के आगे अवाक्-से रह गए। १३ फिर एकान्त में विचार-विमर्श करने के लिए गुरु वसिष्ठ के पास गए और उन्हें अपने मन की व्यथा सुनाई— "मुनि विश्वामित्र के कारण मन में बड़ी चिन्ता बढ़ गई है। १४ हे गुरु, कहिए; ऐसे अवसर में क्या किया जाए ? यदि उन्हें पुत्र नहीं दूँगा तो क्रोधी ऋषि विश्वामित्र गिड़गिड़ाने पर भी माननेवाले नहीं हैं। १५ राम के बिना मेरे प्राण नहीं बचेंगे। यदि पुत्र नहीं दूँगा तो लोग क्या कहेंगे। १६ कई हजार साल

बहुत सहस गत भै गेल वर्ष। चारि तनय विधि देल सहर्ष ॥ १७ ॥
सभ जन से छथि हमर समान। रामचन्द्र छथि हमरा प्राण ॥ १८ ॥
जौं नहि देब देता मुनि शाप। हृदय हमर गुरु थर थर काँप ॥ १९ ॥
कहु कर्त्तव्य उचित हो कर्म्म। हम सपनहु नहि करब अधर्म्म ॥ २० ॥
कहल वसिष्ठ सुनू महिपाल। कि कहब अपनें क भाग्य विशाल ॥ २१ ॥
ई वृत्तान्त कतहु नहि कहब। पुछलहु उतर सु-मौने रहब ॥ २२ ॥
हरण हेतु भूमिक सभ भार। विधि-प्रार्थित नर-वर अवतार ॥ २३ ॥
नारायण छथि जानब राम। चिन्मय सकल विश्व-विश्राम ॥ २४ ॥
अहँ कश्यप तप कयल अपार। अदिति थिकथि कौशल्या दार ॥ २५ ॥
भेला प्रसन्न देल वर-दान। पुत्र अहाँक भेला भगवान ॥ २६ ॥
तनिकर माया सीता भेलि। भाग्य मही मिथिलामे गेलि ॥ २७ ॥
रामक होयत ततय विवाह। कौशिक तेहि कारण अयलाह ॥ २८ ॥
ई वक्तव्य कतहु नहि थीक। होयत नृपवर अहँइक नीक ॥ २९ ॥
कौशिक पूजन करु दय चित्त। आएल छथि मुनि जनिक निमित्त ॥ ३० ॥
लक्ष्मण सहित रामकाँ देब। सुयश विश्व भरि भूपति लेब ॥ ३१ ॥
कहल वसिष्ठ शुनल महिपाल। कृत-सुकृत्य आनन्द विशाल ॥ ३२ ॥

बीतने के बाद विधाता ने प्रसन्न हो बुढ़ापे में ये चार पुत्र दिए। १७ मेरे लिए सभी अमर-समान हैं, किन्तु उनमें रामचंद्र तो मानों मेरे प्राण हैं। १८ अगर मैं नहीं दूंगा, तो विश्वामित्र शाप दे देंगे। हे गुरु, मेरा हृदय थरथर काँप रहा है। १९ कहा जाय, क्या करना उचित (धर्मानुरूप) होगा? मैं सपने में भी अधर्म नहीं करूँगा।" २० वसिष्ठ ने कहा—"हे राजा, सुना जाय। आप परम भाग्यशाली हैं। २१ मैं जो बात बता रहा हूँ उसे कहीं नहीं खोलिएगा। अगर कोई पूछे भी तो मौन ही रहिएगा। २२ धरती के सभी भारों को दूर करने के लिए ब्रह्मा के अनुरोध पर विष्णु ने मनुष्य-रूप में अवतार लिया है। २३ आपके पुत्र राम विश्वव्यापी चिन्मय नारायण हैं। २४ आप कश्यप ऋषि हैं, जिन्होंने ईश्वर को पुत्र-रूप में पाने के लिए भारी तपस्या की थी; और कौशल्या ऋषिपत्नी अदिति हैं। २५ ईश्वर प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान दिया। फलस्वरूप भगवान् नारायण ने आपके पुत्र के रूप में जन्म लिया। २६ उनकी माया सीता के रूप में अवतरित हुई हैं, जो पावन भूमि मिथिला गई। २७ वहाँ राम का विवाह होगा। उसी के लिए विश्वामित्र ऋषि आपके पास आए हैं। २८ यह बात कहीं खोलनी नहीं है। हे राजा, इससे आप ही का कल्याण होगा। २९ आप यत्न के साथ विश्वामित्र का पूजन करें। जिनको लेने के लिए विश्वामित्र पधारे हैं, उन लक्ष्मण-सहित रामचंद्र को मुनि के हाथ सौंप दीजिए। इससे हे राजा, विश्व भर में आपको उज्ज्वल यश मिलेगा।" ३०-३१ गुरु वसिष्ठ की बात राजा ने सुनी

लक्ष्मण राम कों भूप बजाय। बार बार उर कण्ठ लगाय ॥ ३३ ॥
सजल नयन नृप दूनू भाय। कौशिक मुनि कें देल सुमुझाय ॥ ३४ ॥

॥ रोला छन्द ॥

आनन्दित मुनि भेल नृपतिकाँ आशिष देलनि।
राम सुमित्रा-पुत्र दुनू जन संग कें लेलनि ॥ ३५ ॥
धनुष बाण तूणीर जुगल भ्राता करें धयलनि।
मुनि-मण्डलि-महि जाय सकल आनन्दित कयलनि ॥ ३६ ॥

॥ हरिपद ॥

चलइत बाट ताटका दौड़लि कौशिक देल चिन्हाय।
रघुवर शर मारल एक तनिकाँ जे मुनि-जनक बलाय ॥ ३७ ॥
बड़ पापिनि मुनि-प्राणक सापिनि छलि करुणा सौं रहिता।
सिद्धाश्रमक सङ्कटा मुइलें मुनि-मंडलि सुख-सहिता ॥ ३८ ॥

॥ अनुष्टुप् छन्द ॥

बला अतिबला विद्या देव-निर्म्मित देल से।
क्षुधा-तृष्णादि-शान्त्यर्थं राम सानन्द लेल से ॥ ३९ ॥

और सुनकर कृतकृत्य हो गए। आनन्द का ठिकाना न रहा। ३२ तब राजा ने राम और लक्ष्मण को बुलाया। बार-बार उन्हें गले से लगाया। ३३ आँसू-भरी आँखों से राजा ने दोनों भाइयों को विश्वामित्र के ज़िम्मे सौंप दिया। ३४ विश्वामित्र आनन्दित हो गए। उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया, और राम तथा लक्ष्मण दोनों को अपने साथ लगा लिया। ३५ दोनों भाइयों ने तीर, धनुष और तरकस धारण किए और मुनियों के आश्रम में जाकर सबों को आनन्दित किया। ३६

रामचन्द्र का ताटका, सुबाहु और मारीच से युद्ध

रास्ते में आते समय ही 'ताटका' नाम की राक्षसी दौड़ आई। विश्वामित्र ने पहचान करा दी। राम ने एक ही तीर चलाकर उसको मार गिराया. जो मुनियों के लिए बला थी। ३७ वह बड़ी पापिनी थी। मुनियों के प्राणों के लिए मानों नागिन थी। उसे दया नहीं थी। वह मुनियों के आश्रम के लिए एक संकट थी। उसके मरने से मुनि लोग सुखपूर्वक रहने लगे। ३८ मरते समय ताटका ने राम जी को बला और अतिबला नाम की विद्या दी, जिसका आविष्कार देवों ने किया था। इन विद्याओं से भूख और प्यास को दबाया जा सकता है। रामचन्द्र ने आनन्दपूर्वक उन्हें ग्रहण किया। ३९

॥ छन्द मालिका ॥

कण्ठ अङ्कमे लगाव। कौशिकादि सौख्य पाब ॥ ४० ॥
धन्य धन्य भूप-बाल। दुष्ट राक्षसीक काल ॥ ४१ ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

विश्वामित्र चरित्र राम-कृत देखल प्रमुदित चित्त।
मन्त्र सहित सर्व्वास्त्र राम कौं देलनि समर निमित्त ॥ ४२ ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनि-संकुल कामाश्रम राम। एक राति कयलनि विश्राम ॥ ४३ ॥
उठि प्रभात गेला मुनि सङ्ग। सिद्धाश्रम देखल भल रंग ॥ ४४ ॥
सब सौं कहलनि विश्वामित्र। अतिथि एहन के आन पवित्र ॥ ४५ ॥
हिनकर पूजन मन दय करिअ। दुष्ट-निशाचर-भय सौं तरिअ ॥ ४६ ॥
विश्वामित्र कहल मुनि जेहन। राजक कयल से पूजा तेहन ॥ ४७ ॥
रामचन्द्र कौशिक आवेश। कहलनि दिक्षा करू प्रवेश ॥ ४८ ॥
राक्षस दुहु कौं दिअओ देखाय। सावधान हम दूनू भाय ॥ ४९ ॥
तेहन कयल तत मुनि-समुदाय। यज्ञारम्भ कयल मुनि जाय ॥ ५० ॥
काम-रूप राक्षस दुहु फेरि। खल आयल मध्यान्हे बेरि ॥ ५१ ॥
तनिकाँ ज्ञात न दोसर सृष्टि। शोणित हाड़ कयल खल वृष्टि ॥ ५२ ॥
रामचन्द्र दुइ शर सन्धानि। मारल दुष्ट निशाचर जानि ॥ ५३ ॥

विश्वामित्र आदि ऋषियों ने निश्चिन्त होकर उन्हें गले और छाती से लगाया और बोले— ४० "दुष्ट राक्षसी ताटका का अन्त करनेवाले राजकुमार धन्य हैं! धन्य हैं!" ४१ विश्वामित्र ने प्रसन्न चित्त से राम की यह करतूत देखी और राम को युद्ध करने के लिए मन्त्र-समेत सभी अस्त्र दिए। ४२ तब राम जी ने मुनियों की भीड़ से भरे कामाश्रम में एक रात विश्राम किया। ४३ सुबह उठकर मुनि विश्वामित्र से साथ चले और भलीभाँति सिद्धाश्रम देखा। ४४ सभी आश्रमवासियों से विश्वामित्र ने कहा— "ऐसा पवित्र अतिथि और कौन होगा। ४५ हृदय से इनका पूजन किया जाए और दुष्ट राक्षसों के भय से त्राण पाया जाए।" ४६ जैसा मुनि विश्वामित्र ने कहा उसी तरह उन लोगों ने वहाँ राम जी का सत्कार किया। ४७ रामचन्द्र ने कौशिक से कहा— "अब दीक्षा में प्रवेश कीजिए, यज्ञारम्भ कीजिए। ४८ हम दोनों भाई सावधान हैं। उन दोनों राक्षसों को दिखा दीजिए।" ४९ तब मुनि लोगों नें वैसा ही किया, और विश्वामित्र नें यज्ञ शुरू किया। ५० इच्छानुसार अपना स्वरूप बदलने में समर्थ वे दोनों दुष्ट राक्षस दुपहर के समय ही फिर पहुँच गए। ५१ उन दोनों को यह मालूम नहीं था कि दुनिया बदल गई है। फिर वे हड्डी और लहू बरसाने लगे। ५२ रामचन्द्र ने निशाना साधकर दो तीर उन दोनों दुष्ट राक्षसों पर चलाए। ५३ राम जी के हाथ

॥ हरिपद ॥

रामचन्द्र-कर-धनुष-मुक्त-शर-परवश खल मारीच।
शत योजन घुमि मृतक सदृश जुमि खसला जलनिधि बीच ॥ ५४ ॥
ठामहि वीर सुबाहु भस्म भेल रघुवर मख रखबार।
अति अद्भुत नर-वर रण-लीला अविकल सकल निहार ॥ ५५ ॥

॥ बरवा ॥

तदनुयायि अततायिकँ हनिहनि तीर।
सभकेँ लक्ष्मण मारल बड़ रणधीर ॥ ५६ ॥

॥ रोला ॥

पुष्प-वृष्टि सुर कयल देव दुन्दुभी बजाओल।
जय-जय ध्वनि उच्चार सिद्ध-चारण गुण गाओल ॥ ५७ ॥
हर्षित विश्वामित्र ततय पूजा विधि कयलनि।
सानुज श्रीरघुनाथ भक्ति सौँ हृदय लगओलनि ॥ ५८ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे बालकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

तिन दिन प्रभु रहला ओ देश। कन्द मूल फल भोजन बेश ॥ १ ॥

के धनुष से छूटे हुए तीर से घायल होकर दुष्ट मारीच एक सौ योजन का चक्कर लगाकर मुर्दे की तरह समुद्र के बीच जा गिरा। ५४ और सुबाहु उसी जगह जलकर राख हो गया। यज्ञ के रक्षक पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की इस अति अद्भुत रण-लीला को सभी लोग अपलक देखते रहे। ५५ उसके बाद उन दोनों राक्षसों का साथ देनेवाले नृशंस राक्षसों को परम रणधीर लक्ष्मण ने तीर चला-चलाकर मार दिया। ५६ देवता लोग फूल बरसाने लगे। स्वर्ग में उत्सववाद्य दुन्दुभी बजने लगी। जय-जयकार होने लगा। सिद्धों और चारणों ने गुण-गान किया। खुश होकर विश्वामित्र ने वहाँ यज्ञकर्म किया और छोटे भाई लक्ष्मण-सहित श्री रामचन्द्र को छाती से लगाया। ५७-५८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में बालकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

राम और लक्ष्मण का मिथिला-प्रस्थान : अहिल्योद्धार

रामचन्द्र जी तीन दिन उस आश्रम में रहे। कन्द, मूल और फल

कहलनि कौशिक कथा पुराण। पुरुष पुराण सहज सब जान।। २ ।।
चारिम दिन कहलनि औ राम। नव उत्सव मिथिलाधिप-धाम।। ३ ।।
तिरहुति सन नहि दोसर देश। विज्ञानी मानी मिथिलेश।। ४ ।।
थापित शंकर धनु तहि ठाम। अपनेहुँ काँ देखक थिक राम।। ५ ।।
देखब तनि मर्य्यादा जाय। जनक नृपति सौँ पूजा पाय।। ६ ।।
सुनि मुनि संग चलि लछमन राम। गंगा उतरि विदेहा नाम।। ७ ।।
दिव्य फूल फल भल तरु पाँति। खग मृग रहित भेल दिन राति।। ८ ।।
मुनि कैँ पुछलनि से देखि राम। एहि आश्रमक कहू की नाम।। ९ ।।
अति आह्लादित करइछ चित्त। पुण्याश्रम की एहन निमित्त।। १०।।
विश्वामित्र कहल से शुनि। आश्रम छल छथि गौतम मुनि।। ११ ।।
तप-बल सौँ तेजस्वी भेल। कन्या तनिकाँ ब्रह्मा देल।। १२ ।।
नाम अहल्या तेहनि न आन। कयलनि विधि वनिता निर्म्मान।। १३ ।।

।। रूपक दण्डक ।।

न्याय-सूत्र-कर्त्ता गौतम मुनि, ब्रह्मचर्य्य-व्रतधारी, बड़ भारी।
कोनहु लोक एहनि के सुन्दरि, तनिक अहल्या नारी, सुकुमारी।। १४ ।।

भोजन करते रहे। १ विश्वामित्र पुराणों की कहानियाँ सुनाते थे, किन्तु आदिपुरुष भगवान् रामचन्द्र को तो स्वतः सब कुछ जाना हुआ था। २ चौथे दिन विश्वामित्र ने कहा— "हे राम जी, मिथिला के राजा जनक के यहाँ एक नया उत्सव हो रहा है। ३ तिरहुत (मिथिला) जैसा दूसरा देश नहीं है और वहाँ के राजा बड़े ज्ञानी एवं मनस्वी हैं। ४ वहाँ शिवजी का धनुष स्थापित है। हे राम, आपको भी उसका दर्शन करना चाहिए। ५ वहाँ जाकर राजा जनक से आतिथ्य ग्रहण करना है और उनकी अतिथिपरायणता देखनी है।" ६ यह सुनकर राम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ चल पड़े और गंगा नदी को पार कर विदेह नामक देश में पहुँचे। ७ एक जगह पंक्ति-बद्ध वृक्षों में सुन्दर-सुन्दर फूल और फल लगे थे, पर दिन या रात कभी कोई पशु-पक्षी नहीं दिखाई देता। ८ यह देखकर राम जी ने मुनि से पूछा— "इस आश्रम का क्या नाम है? ९ यह मेरे मन को देखते ही प्रसन्न कर रहा है। पुण्याश्रम में पशु-पक्षी न रहने का क्या कारण है?" १० यह सुनकर विश्वामित्र ने कहा— "इस आश्रम में गौतम मुनि रहते हैं। ११ वे अपनी तपस्या के बल से बड़े प्रतापी हो गए हैं। ब्रह्मा ने उन्हें अपनी बेटी दी है। १२ उसका नाम अहल्या है। उसके समान कोई और नहीं है। ब्रह्मा ने आदर्श वनिता के रूप में उसका निर्माण किया है। १३ 'न्यायसूत्र' नामक दर्शन ग्रन्थ के रचयिता गौतम मुनि बहुत बड़े ब्रह्मचर्यव्रती हैं। उनकी पत्नी अहल्या स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दर-सुकुमार हैं। १४ एक

वासव काम-विवश रस-लम्पट, रूप तनिक मन धारी, छलकारी।
गौतम आश्रम राति रहथि नहि, तिय पातिव्रत टारी, अव भारी ॥ १५ ॥

॥ तीरभुक्ति-सङ्गीतानुसारेण स्मरसन्दीपन कोडार छन्दः ॥

धाता लिखल जेहन भाल।
से फल भेलैं से पथ गेलैं क्रमहिँ काले काल ॥ १६ ॥
गमहि गमहि गौतम जखन गेहक निकट धाओल।
परक कारन नरक परक तरक तेहन पाओल ॥ १७ ॥
देखल चरित बुझल दुरित दारक मारक दोषे।
शान्तिक पटल सकल हटल सटल अटल रोषे ॥ १८ ॥

॥ रूपक दण्डक ॥

अति-अनर्थ-कर्त्ता कह के तोँ, शून्याश्रम-सञ्चारी, हठकारी।
क्षणमे दुष्ट भस्म हम कय देब, हमर रूप की धारी, छल भारी ॥ १९ ॥
कहल इन्द्र अपराध कयल हम, कामक भेलहुँ दासे, मति नाशे।
विधिक पुत्र ! कर क्षमा इन्द्र हम, सकल लोकमे हासे, अति त्रासे ॥ २० ॥

॥ हरिपद ॥

इन्द्रक वचन शुनल जेहि खन मुनि कोप लाल बड़ आँखि।
भग हजार टा तनमे होयतहु उठला गौतम भाखि ॥ २१ ॥

दिन रस-लम्पट इन्द्र कामवेदना से व्याकुल होकर छल से गौतम का रूप धारण करके रात में गौतम के आश्रम में पहुँचे, जब मुनि बाहर गए हुए थे; और उस कुकर्मी ने उनकी पत्नी का पातिव्रत्य नष्ट किया। १५ विधाता माथे पर जैसा लिख देते हैं, आज नहीं तो कल कालक्रम में वह फल भोगना ही पड़ता और उस रास्ते से जाना ही पड़ता है। १६ धीरे-धीरे गौतम मुनि जब अपने घर के पास आए, तब उनके मन में ऐसी आशंका होने लगी कि कहीं दूसरे के कारण मुझे नरक न भोगना पड़े। १७ जो कुछ हुआ था, उन्हें मालूम हुआ। कामवासना के कारण पत्नी का दुष्कर्म ज्ञात हुआ। सारी शान्ति-भावना जाती रही। वे अपने क्रोधावेश को टाल न सके। उन्होंने कहा— १८ अरे, यह भारी अनर्थ करनेवाला, हठपूर्वक सूने आश्रम में घुसनेवाला तू कौन है ? अरे दुष्ट, मैं क्षण भर में तुझे भस्म कर दूंगा ! तूने भारी छल करके मेरा रूप धारण कर लिया !" १९ इन्द्र ने कहा— "मुझसे यह अपराध हुआ क्योंकि मैं कामवासना का दास हो गया था और सुध-बुध खो बैठा था। हे ब्रह्मा के पुत्र गौतम ऋषि, मुझे क्षमा कर दीजिए। सारी दुनिया में मेरी बड़ी बदनामी होगी, इसका मुझे डर है।" २० जब ही मुनि ने इन्द्र की बात सुनी, मुनि की आँखें क्रोध से एकदम लाल हो गई और वे बोल उठे— "तेरे शरीर में एक हजार भग हो जाएँगी !" २१ फिर अपने आश्रम के भीतर जाकर

आश्रम जाय अहल्या देखल कपइत जोड़ल हाथ।
मिथ्यालाप शाप डर कयल न रहल उपाय न लाथ॥ २२॥

॥ चौपाइ ॥

गौतम कहल रहह गय जाय। पापिनि पाथर भितर समाय॥ २३॥
जल जनु पीबह अन्न न खाह। आश्रम छोड़ि कतहु जनु जाह॥ २४॥
जन्तु मात्र सौँ आश्रम हीन। होएतहु यावत पातक क्षीण॥ २५॥
दिवारात्र तप करह सहिष्णु। हृदय ध्यान परमेश्वर विष्णु॥ २६॥
राम राम मन मनमे कहब। बहुत सहस वत्सर एत रहब॥ २७॥
जखन होयत रामक अवतार। हरण हेतु अवनिक सभ भार॥ २८॥
सानुज से एहि आश्रम आबि। तोर भल करता ई अछि भावि॥ २९॥
पाथर परसहि रामक चरण। तोहरा अभय दुरितचय-हरण॥ ३०॥
तनिकर पूजन भक्ति प्रणाम। लोचन-गोचर प्रभुवर राम॥ ३१॥
सेवा हमर पूर्व्व सम करब। कोक समान संग सञ्चरब॥ ३२॥
ई कहि गेला मुनि हिमवान। आश्रम भै गेल आनक आन॥ ३३॥
गेलथिनि गौतम एतहि राखि। हिनका दोसर देखथि न आँखि॥ ३४॥
अपनैक चरणक चाहथि धूरि। हिनकर दुःख-निकर कर दूरि॥ ३५॥

अहल्या को देखा जो थरथर काँपती हुई हाथ जोड़े खड़ी थी। उसने शाप के डर से कोई झूठी बात न बताई। बहाना करने का कोई चारा न था। २२ गौतम ने शाप दिया— "अरे पापिनी, जाओ; इस पत्थर के भीतर समाई रहो। २३ न पानी पियोगी, न अन्न खाओगी; आश्रम छोड़ कहीं जा भी नहीं सकोगी। २४ जब तक तुम्हारे पाप का अन्त नहीं हो जाता तब तक इस आश्रम में कोई भी प्राणी न आ सकेगा। २५ दिन-रात परमेश्वर विष्णु का ध्यान करते हुए कठोर तपस्या करती रहो। २६ मन ही मन राम-राम रटती रहो। इस प्रकार कई हजार वर्ष यहाँ पड़ी रहोगी। २७ जब धरती का भार उतारने के लिए राम का अवतार होगा। २८ तब वे अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ आश्रम आकर तुम्हारा कल्याण करेंगे —यही भवितव्य है। २९ जभी इस पत्थर में राम के चरण का स्पर्श होगा, जो चरण सभी पापों को हरनेवाला है, तभी तुम्हें अभय (इस सजा से छुटकारा) मिल जाएगा। ३० भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करना, उन्हें प्रणाम करना। प्रभु राम तुम्हें साक्षात् दर्शन देंगे। ३१ उसके बाद फिर पहले की भाँति मेरी सेवा करोगी और चकोरी की तरह मेरे साथ लगी रहोगी।" ३२ इतना कहकर गौतम मुनि तपस्या करने हिमालय पर चले गए और आश्रम का रंग कुछ और ही हो गया। ३३ गौतम इनको यहीं छोड़ गए, और कोई दूसरा इन्हें आँख से देख भी नहीं सकता है। ३४ अब अहल्या आपके चरण की धूल चाहती हैं। चरण से स्पर्श करके आप

कौशिक रामक धय लेल हाथ। करु उद्धार देव रघुनाथ ॥ ३६ ॥
विधि-तनयाक विपति-तति-हरण। परस भेल तेहि पाथर चरण ॥ ३७ ॥
अपन रूप पाओल तहि ठाम। तनिकर राम कयल परनाम ॥ ३८ ॥
दशरथ-तनय राम थिक नाम। ब्रह्म-पुत्रि अयलहुँ एहिठाम ॥ ३९ ॥
से देखल पीताम्बर वीर। लक्ष्मण सहित हाथ धनु तीर ॥ ४० ॥
स्मित मुख-पंकज पंकज-नयन। श्रीवत्सांकित शोभा-अयन ॥ ४१ ॥
वर-माणिक्य-कान्ति श्रीराम। देखि अहल्या आनन्द-धाम ॥ ४२ ॥
हर्ष लेल लोचन बड़ गोट। तन रोमाञ्च प्रपञ्च न छोट ॥ ४३ ॥
मन पड़ि आएल गौतम कहल। कर लगली परमेश्वर टहल ॥ ४४ ॥
कहइत बाढ़ विपुल स्वर-भंग। हर्ष न अटय अहल्या अंग ॥ ४५ ॥

॥ गीत ॥

हमर गति अपनैं सौं के आन।
करुणागार दीन-प्रति-पालक रामचन्द्र भगवान ॥ ४६ ॥
पिता विधाता घुरि नहि तकलनि पति-मति भेलहु पषान।
सुरपति कुमति विदित भेल कतए न हम अबला की ज्ञान ॥ ४७ ॥

इनकी पीड़ा दूर कीजिए।" ३५ विश्वामित्र ने राम जी का हाथ पकड़ लिया और अनुरोध किया— "हे देव रघुनाथ, इनका उद्धार कीजिए।" ३६ उस पत्थर में रामचन्द्र के चरण का स्पर्श हुआ कि ब्रह्मा की पुत्री अहल्या के सारे संकट दूर हो गए। ३७ अहल्या ने वहीं अपने पिछले रूप (नारी-रूप) को प्राप्त किया और उन्हें राम जी ने प्रणाम किया और बोले— ३८ "मैं दशरथ का बेटा हूँ। मेरा नाम राम है। हे ब्रह्मा की पुत्री, मैं यहाँ आया हूँ।" ३९ अहल्या ने देखा, राम लक्ष्मण-सहित पीले वस्त्र पहने हाथ में तीर-धनुष लिये खड़े हैं। ४० कमल-जैसे मुँह में मुसकान है। आँखें कमल-जैसी हैं। छाती पर श्रीवत्स चिह्न लगा हुआ है, और शोभा के खज़ाना हैं। ४१ देह की कान्ति अच्छे मानिक की-सी है। ऐसे आनन्द-धाम श्रीराम को देखकर हर्ष से उनकी आँखें विस्फारित (बड़ी-सी) हो गईं। शरीर रोमांच से भर गया। ४२-४३ गौतम ने जो बात शाप में कही थी वह याद आ गई। वह परमेश्वर श्रीराम की आराधना करने लगी। ४४ बोलें, तो कैसे बोलें, हर्ष से उनका गला रुँध गया। अहल्या के शरीर में इतना बड़ा हर्ष समा न सकता था। अहल्या स्तुति करने लगी— ४५ "मुझे आपसे भिन्न और कौन सहारा है। हे भगवान रामचन्द्र! आप दया के समुद्र हैं और दीन-जनों का पालन करनेवाले हैं। ४६ पिताजी ब्रह्मा ने ब्याह देने के बाद फिर कोई खोज नहीं की। पतिदेव गौतम ने पत्थर बना दिया। इन्द्र की बुरी चालें किसको नहीं मालूम हैं। मैं अबला औरत हूँ। मुझे उनकी चाल

जन्तु मात्र सौँ वर्जित आश्रम नहि भोजन जल पान।
बरष हजार बहुत एत गत भेल रामचरण मे ध्यान ॥ ४८ ॥
सगुन ब्रह्म अपनेकाँ देखल निर्गुन मन अनुमान।
चन्द्र सुकवि भन लाभ एहन सन त्रिभुवन शुनल न कान ॥ ४९ ॥

॥ गीत पुनः ॥

हमर सनि भाग्यवन्ति के नारि।
निर्गुण ब्रह्म सगुण बनि अएलहुँ अपनहि सौ असुरारि ॥ ५० ॥
अपनेक चरण सरोज सौँ सुरसरि उतपति पावन वारि।
सकलो तीर्थक मूल चरण से देखल आँखि पसारि ॥ ५१ ॥
जे चरणक धूली लय धन्धित रहथि देव त्रिपुरारि।
से धूलीक प्रकट फल पाओल कर्म्म शुभाशुभ जारि ॥ ५२ ॥
रामचन्द्र कहलनि सुनु शुभमति अहँक हाथ फल चारि।
हमर भक्ति अहँकाँ से होएत सकल सिद्धि देनिहारि ॥ ५३ ।

॥ संगीते सूहव नाम छन्दः ॥

श्रीमन्नारायण विष्णो।
शापादुद्धर शापादुद्धर दुर्द्धर-दनुज जिष्णो ॥ ५४ ॥
विधेर्विधे दयानिधे विधेरहं कन्या।
तपस्विनी मनस्विनी यशस्विनी धन्या ॥ ५५ ॥

समझ में न आई। ४७ इस आश्रम में किसी भी प्राणी का प्रवेश करना मना था। मुझे न खाना मिलता था, न पानी। यहाँ राम जी के चरण में ध्यान लगाए इस प्रकार कई हजार वर्ष बीत गए। ४८ निर्गुण ब्रह्म का तो केवल अनुमान किया था, पर सगुण ब्रह्म के रूप में आपका साक्षात् दर्शन हुआ। ऐसा बड़ा लाभ, चन्द्र कवि कहते हैं, तीनों लोकों में और कोई न सुना। ४९ मुझ जैसी भाग्यशाली कौन नारी होगी। हे राक्षसों के शत्रु, आप निर्गुण ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी सगुण रूप में स्वयं मेरे सामने आए। ५० आप ही के चरण-कमल से पावन जल वाली गंगा का उद्भव हुआ है। इस तरह सभी तीर्थों के मूल आपके इस चरण को आँखें फैला-फैलाकर देखा। ५१ जिस चरण-धूल को पाने के लिए त्रिपुरारि शिवजी चिन्तित-उत्कंठित रहते थे, मैंने पूर्व के सभी अच्छे-बुरे कामों के परिणामों से छुटकारा पाकर उस धूल का प्रत्यक्ष फल पा लिया।" ५२ रामचन्द्र ने कहा— "हे भला सोचनेवाली अहल्या, आपके हाथ में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल सम्प्राप्त हैं। आपको मेरी भक्ति होगी जो सभी सिद्धियाँ देनेवाली है।" ५३ अहल्या ने कहा— "हे दुर्धर्ष राक्षसों को जीतनेवाले श्रीमान् नारायण विष्णु, शाप से मेरा उद्धार करो, उद्धार करो। ५४ हे विधाता के भी विधाता और दया की

आसं दैवाद्दुराचारा मारद्वारा जाता।
कष्टस्थाने भवानेव प्रभो विष्णो त्राता ॥ ५६ ॥
॥इति श्री मैथिल चन्द्र-कवि-विरचिते मिथिला-भाषा-रामायणे बालकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

गौतम-घरणि सरणि भल गेलि। गौतम सङ्ग पूर्व सनि भेलि ॥ १ ॥
कौशिक कहल कुशल-मति राम। गुण कि कहब अपने गुणधाम ॥ २ ॥
ज्ञान-समुद्र नृपति मिथिलेश। तिरहुति सन नहि दोसर देश ॥ ३ ॥
जीवन्मुक्त जतय बस लोक। ज्ञान प्रताप चित्त नहि शोक ॥ ४ ॥
सीता कन्या ततय कुमारि। धनुष-यज्ञ नृप कयल विचारि ॥ ५ ॥
शिवक धनुष तोड़त जे आय। एहि कन्या मे सेह जमाय ॥ ६ ॥
पत्र पठाओल तैं सभ देश। एकहि ठाम देखि पड़त नरेश ॥ ७ ॥
जायब ततय अँहउ चलु संग। देखक योग्य सभा भल रङ्ग ॥ ८ ॥

खान नारायण, मैं ब्रह्मा की पुत्री हूँ, तपस्विनी हूँ, मनस्विनी हूँ और यशस्विनी भी हूँ। मैं अपने को धन्य समझती हूँ। ५५ दैवयोग से कामवश मैं दुराचारिणी हो गई थी। ऐसे संकट के अवसर पर हे प्रभु विष्णु, आप ही त्राण करनेवाले हैं।" ५६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में बालकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

राम-लक्ष्मण का धनुष-यज्ञ देखने जनकपुर जाना

गौतम की स्त्री अहल्या को अच्छी गति मिली और वह गौतम के साथ फिर पहले की भाँति रहने लगी। १ विश्वामित्र ने कहा—"हे बुद्धिमान् राम, गुणों का वर्णन क्या करूँ। आप तो गुणों का खजाना हैं। २ मिथिला के राजा जनक मानो ज्ञान के समुद्र हैं। तिरहुत-सा दूसरा कोई देश नहीं है. ३ जहाँ लोग जीवित अवस्था में ही मुक्त की भाँति रहते हैं, ज्ञान के प्रभाव से चित्त में कोई शोक नहीं होने पाता है। ४ उस देश में राजा की बेटी सीता कुँवारी है। उसके विवाह के लिए राजा ने धनुष-यज्ञ करने का निर्णय किया है। ५ जो कोई आकर शिवजी के धनुष को तोड़ेगा इस कन्या का वही वर होगा। ६ इसलिए सभी देशों में निमन्त्रण-पत्र भेजा गया है। सभी राजाओं का दर्शन एक ही जगह हो जाएगा। ७ मैं वहाँ जाऊँगा। आप भी साथ चलिए। वह सुन्दर सभा देखने लायक होगी।" ८ गुरु की आज्ञा

गुरु आज्ञा शुनि चलला राम। देखइत शोभा पथ वन गाम॥ ९॥

॥ वरवृत्त ॥

आनन्दित मन चलला प्रभु दुहु भाय।
जनकक जनपद मुनि पुन देल देखाय॥ १०॥
सुनितहिँ छल छी लक्ष्मण तिरहुति राज।
कहलनि रघुवर अवलहुँ देखल आज॥ ११॥

॥ वसन्ततिलका ॥

की दिव्य भूमि मिथिला हम आबि गेलौँ।
देखैत मात्र मन लक्ष्मण तृप्त भेलौँ॥ १२॥
की दिव्य फूल फल वृक्ष अनन्त धान।
पक्षी विलक्षण करै अछि रम्य गान॥ १३॥

॥ नाराच ॥

प्रपूर्ण सत् तडाग की सुधा समान वारिसौँ
विचित्र पद्मिनी-वनो विहङ्ग वारि-चारिसौँ॥ १४॥
द्विरेफ गुञ्जि गुञ्जि कैँ महा मदान्ध घूमिकैँ
सरोजिनीक अङ्ग सुप्त वार वार चूमिकैँ॥ १५॥

॥ चञ्चला ॥

शालि-गोप गीतिकाँ सुप्रीति रीति शूनि शूनि।
खेत शस्य खाथि नै कुरङ्ग आँखि मूनि मूनि॥ १६॥
सत्य तीरहूति यज्ञ-भूमि पुण्य देनिहारि।
शास्त्र कैँ बजैत बैस कीर बैसि डारि डारि॥ १७॥

पाकर राम विदा हुए। रास्ते में वनों और गाँवों की शोभा देखते चले। ९
प्रसन्न मन से दोनों भाई चले। मुनि ने उन्हें जनक का देश दिखाया। १०
रघुवीर ने कहा— "हे लक्ष्मण, तिरहुतराज की चर्चा तो सुनते थे, पर आज
यहाँ आकर आँखों से देखा। ११ क्या विलक्षण मिथिला-देश हम पहुँच गए हैं।
हे लक्ष्मण ! देखते ही मन तृप्त हो गया। १२ यहाँ के फूल, फल, वृक्ष और
तरह-तरह के धान कितने सुन्दर हैं। पक्षी विलक्षण गान कर रहे हैं। १३
अच्छे-अच्छे पोखरे अमृत के समान जल से भरे हुए हैं। इन पोखरों के कमल-
वन जलचर पक्षियों से अपूर्व शोभा पा रहे हैं। १४ मद से अन्धे भौंरे गूंज-
गूंजकर और मँड़रा-मँड़राकर कमलिनी का मुँह बारंबार चूमकर उसके अंग
पर सो जाते हैं। १५ हिरन खेतों में फ़सल खाते नहीं, क्योंकि धान के रखवाले
जो गीत गाते हैं उसे वे बड़ी रुचि के साथ आँख मूँदकर सुनने में लीन हैं। १६
वास्तव में यज्ञभूमि मिथिला पावन है, जहाँ तोते भी डाल-डाल पर बैठ शास्त्र-
विवेचन करते हैं। १७ नदी से सींचे जानेवाले सुहावने खेत फ़सलों से भरे-

॥ रूपमाला ॥

नदी-मातृक क्षेत्र सुन्दर शस्य सौँ सम्पन्न।
समय सिर पर होय वर्षा बहुत सञ्चित अन्न ॥ १८ ॥

दयायुत नर सकल सुन्दर स्वच्छ सभ व्यवहार।
सकल-विद्या-उदधि मिथिला विदित भरि संसार ॥ १९ ॥

॥ षट्पद ॥

कनक सुमणि सौँ खचित रचित नृप बिमल अटारी।
नन्दन-सोदर सुवन रती रम्भा सनि नारी ॥ २० ॥
मन्द भद्र पर्य्याय भद्र-कर करि ओ करिणी।
सभ गुण नियत निवास कनक-रत्नाकर धरणी ॥ २१ ॥
उत्तम हिम-गिरिवर निकट सुलभ रत्न औषधि सकल।
पुरि महती मिथिला-पुरी ककरहु नहि देखल विकल ॥ २२ ॥
शुभ लक्षण संयुक्त मनोगति सुन्दर सुन्दर।
उच्चैःश्रवा समान अश्व नृप जेहन पुरन्दर ॥ २३ ॥
राज-कुमार उदार सकल विद्या कौँ जनइत।
शौर्य्यशील सन्तोष धर्म्मवेत्ता स्मृति मनइत ॥ २४ ॥
सकल प्रजा आनन्द-मन विहित गृहाश्रम धर्म्ममत।
नृपतिक शुभ-चिन्तक सतत नीति-निपुण मन कर्म्मरत ॥ २५ ॥

पूरे हैं। वक़्त पर वर्षा होती है और अन्न का अम्बार लगा रहता है। १८ सभी लोग सुन्दर और दयालु होते हैं और उनका व्यवहार बड़ा साफ़ (निश्छल) होता है। सारी दुनिया में मशहूर है कि मिथिला सभी विद्याओं का समुद्र है। १९ यहाँ का राजमहल सोने से बना और मणियों से खचा है। यहाँ के वन स्वर्ग के नन्दनवन के समान हैं। यहाँ की हर नारी इन्द्र की परी रम्भा के समान सुन्दर हैं। २० यहाँ मन्द और भद्र दो प्रकार के कल्याण-कारी हाथी और हथिनियाँ होती हैं। सभी गुण अपनी-अपनी जगह पर निश्चित हैं। धरती सोने और रत्नों से भरी है। २१ पास में उत्कृष्ट हिमालय पर्वत है जहाँ हर प्रकार रत्न और जड़ी-बूटियाँ अनायास मिलती हैं। सभी नगरियों में मिथिला नगरी महान् है जहाँ किसी को भी दीन नहीं देखा। २२ यहाँ मन के समान तेज़ दौड़नेवाले सभी शुभ-लक्षणों से युक्त सुन्दर-सुन्दर घोड़े हैं। वे घोड़े वैसे हैं जैसे राजा इंद्र के पास उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा। २३ राजा उदार (दाता) हैं, सभी विद्याओं को जाननेवाले हैं, शूरता, सुशीलता और सन्तोष रखते हैं, धर्म के ज्ञाता हैं और स्मृतियों का मनन करनेवाले हैं। २४ सारी प्रजा खुश हो अपने-अपने कुल और आश्रम के अनुरूप काम में लगी रहती है। राजा की भलाई सोचती

पशु पक्षी सभ हृष्ट पुष्ट नहि दुष्ट कुलक्षण।
कृष्णसार मृग बहुत नृपति कर समहिक रक्षण ॥ २६ ॥
अतिशय जन सौजन्य देश मुनिजन-मनरञ्जन।
जे ताकी से भेट कतहु नहि सृष्टि एहन सन ॥ २७ ॥
नारि सुनयना शुभमती कुलदेवत लज्जावती।
सकल रसज्ञा नतिमती मत्त-मतङ्गजवर-गती ॥ २८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कौशिक सङ्ग ततय दुहु भाय। धनुष-यज्ञ थल देखल जाय ॥ २९ ॥
जनकपुरी मे कयल प्रवेश। कौशिक अयला शुनल नरेश ॥ ३० ॥
उपाध्याय काँ सङ्ग लगाय। अति आतिथ्य कयल नृप जाय ॥ ३१ ॥
मुनि-पद-पङ्कज अतिशय प्रीति। कयल दण्डवत नृपति सुरीति ॥ ३२ ॥
देखलनि पुछलनि जुगल कुमार। नर नारायण जनु अवतार ॥ ३३ ॥
श्यामल गोर मनोहर देह। चन्द्र सूर्य्य सन निस्सन्देह ॥ ३४ ॥
सब दिश होय प्रकाशित आज। के ई थिकथि कुमर द्विजराज ॥ ३५ ॥
मनमे होइछ प्रीति अपार। देखइत बालक परमोदार ॥ ३६ ॥

है। उसका मन नीति में (कर्तव्याकर्तव्य-विवेचन में) और तन कर्म में लगा रहता है। २५ सभी पशु और पक्षी हृष्ट-पुष्ट हैं और कोई भी बदमाश ऐब वाला नहीं है। बहुत सारे कृष्णसार मृग चरते हैं। राजा सबों की रक्षा करते हैं। २६ लोगों में मेल-जोल खूब रहता है। यह मिथिला देश मुनियों के मन को प्रसन्न करनेवाला है। जो भी खोजें वह मिल जाएगा। ऐसी सृष्टि तो कहीं नहीं देखी। २७ यहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर आँखों वाली, सदा शुभचिन्तक, कुलदेवता, भक्त और लज्जाशील होती हैं। सभी रसीली, विनीत और मत्त हाथी की भाँति झूम-झूमकर चलनेवाली होती हैं।" २८ विश्वामित्र के साथ दोनों भाइयों ने वहाँ जाकर धनुष-यज्ञ-स्थल देखा। २९ उन्होंने जनक की राजधानी में प्रवेश किया। राजा जनक को खबर हो गई कि विश्वामित्र पधारे हैं। ३० अपने गुरु को साथ लेकर राजा उनके पास गए और उनका खूब आतिथ्य किया। ३१ उन्हें विश्वामित्र के चरण-कमल में बड़ी प्रीति हुई। उन्होंने उचित रीति से दंडवत् प्रणाम किया। ३२ दोनों कुमारों को देखा और पूछा— "ये दोनों कुमार तो लगते हैं जैसे नर और नारायण के अवतार हों। ३३ इन दोनों के क्रमशः श्यामवर्ण और गौरवर्ण शरीर निश्चय चाँद और सूरज-से लगते हैं। ३४ क्योंकि उनकी प्रभा से चारों दिशाएँ चमक रही हैं। ये दोनों राजकुमार कौन हैं? ३५ परम उदार इन दोनों बालकों को देखते मेरे मन में अपार प्रेम उमड़ रहा है।" ३६ इतना कहकर राजा चुप हो गए और उनकी एकटक आँखों में

मौन महीपति भेल ई भाखि । एक टक ताटक लागल आँखि ॥ ३७ ॥
नृपतिक वचन विनयमय शुनि । प्रश्नोत्तर कहलनि मुनि पुनि ॥ ३८ ॥
परिचय हिनकर अगम अपार । थिकथि दुहू जन विश्वाधार ॥ ३९ ॥
राम श्याम-घन लक्ष्मण गौर । दशरथ नृपतिक जुगल किशोर ॥ ४० ॥
आनल माँगि नृपति सौँ जाय । हमरा भेला बहुत सहाय ॥ ४१ ॥
भेटलि ताटका अबितहिँ मात्र । राम हनल एक शर तनि गात्र ॥ ४२ ॥
छटपटाय छन छोड़लक प्रान । हिनकर सन रन-सूर न आन ॥ ४३ ॥
आश्रम आबि कयल विसराम । कयल पराक्रम बड़ गोट राम ॥ ४४ ॥
यज्ञारम्भ कयल मुनि-वृन्द । भेल उपस्थित राक्षस निन्द ॥ ४५ ॥
पौरुष हिनक देखल हम नयन । वैरि-विहीन विपिन भेल चयन ॥ ४६ ॥
रावण अनुचर अति बलवान । सिंह समक्ष शृगाल समान ॥ ४७ ॥
गेल सुबाहु प्रभृति भट नास । बहुत पड़ाएल बड़ मन त्रास ॥ ४८ ॥
खसल समुद्र बीच मारीच । बड़ कठजीव मुइल नहि नीच ॥ ४९ ॥
गौतम आश्रम गङ्गा-तीर । अयला जखन ततय रघुवीर ॥ ५० ॥
पतिक शाप दुख कारागार । कैलनि रघुवर ततय उधार ॥ ५१ ॥

मानों त्राटक लग गया । ३७ राजा का नम्रतापूर्ण वचन सुनकर मुनि विश्वामित्र ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया-- ३८ "इन दोनों का परिचय अगम्य और अपार है। ये दोनों संसार के आधार हैं । ३९ जो बादल-जैसे साँवले हैं वे राम हैं और जो गौरवर्ण हैं वे लक्ष्मण हैं। ये दोनों कुमार राजा दशरथ के पुत्र हैं। ४० मैं इन्हें राजा दशरथ से माँग लाया हूँ। ये मुझे बड़े सहायक हुए हैं । ४१ आते ही ताटक राक्षसी मिली। राम ने एक ही तीर से उसके शरीर को बेध दिया । ४२ छटपटाकर उसने क्षण भर में प्राण छोड़ दिए। लड़ाई में इनके बराबर शूर और कोई नहीं हैं । ४३ तब उन्होंने मेरे आश्रम में निवास किया और बहुत बड़ा पराक्रम किया । ४४ जब मुनियों ने यज्ञ-कर्म शुरू किया तो दुष्ट राक्षस आ धमके । ४५ मैंने तब इनकी वीरता अपनी आँखों से देखी। इन्होंने तपोवन को शत्रु राक्षसों से रहित कर दिया और तपोवन में शान्ति छा गई । ४६ रावण के सेवक सुबाहु आदि जो अति बलवान समझे जाते थे वे भी इनके सामने सिंह के आगे सियार के समान सिद्ध हुए । ४७ उन वीरों का नाश हो गया और बहुत-से वीर तो परम त्रस्त मन से भाग ही गए । ४८ उनमें एक मारीच समुद्र में जाकर गिरा। वह कठजीव (बड़ी कठिनाई से मरनेवाला) ठहरा, इसलिए तत्काल मरा नहीं । ४९ गंगा के तट पर गौतम का आश्रम है। रामजी वहाँ आए । ५० पति के शाप से अहल्या जो दुख के क़ैदखाने में बन्द थी, उसका राम ने उद्धार किया । ५१ अहल्या को राम ने प्रणाम किया और अपना

अहल्याक प्रभु कयल प्रनाम। रघुवर कहल अपन वर नाम॥ ५२॥
प्रभु-पदधूलि पड़ल उड़ि अङ्ग। भेल अहल्या पूर्व्वक रङ्ग॥ ५३॥
महादेव धनु देखय काज। आयल छथि अपनें क समाज॥ ५४॥

॥ सोरठा॥

विश्वामित्रक उक्ति, मिथिलापति मन दय शुनल।
कार्य्यसिद्धि वर युक्ति, मानल मन सर्व्वज्ञ बुध॥ ५५॥

॥ चौपाइ॥

बड़ बड़ नृपति गेल छथि आबि। टूटल न धनुष नीक फल भावि॥ ५६॥
जनक कहल पण हमर न व्यर्थ। मुनिवर अघटन घटन समर्थ॥ ५७॥
कयल कृपा अयलहुँ मुनि आज। सिद्धि भेल मानल मन काज॥ ५८॥
बहुत हर्ष नहि हृदय समाय। कहल सचिव सौँ जनक बुझाय॥ ५९॥
ई बालक महिमा के जान। आगत जेहन स्वयं भगवान॥ ६०॥
हिनकर करू बहुत सत्कार। युगल बन्धु छथि परमोदार॥ ६१॥
बाढ़ल नृप मन बहुत सनेह। पूजा विधिवत कयल विदेह॥ ६२॥
कौशिक केँ दय उत्तम वास। समुचित उचिती कयल प्रकास॥ ६३॥
गेल जाओ नृपकाँ मुनि पुनि। कहलनि कार्य्य-भार मन गुनि॥ ६४॥

नाम सुनाया। ५२ राम के पाँव की धूल उड़कर उसके अंग पर पड़ी। उसके पड़ते ही अहल्या पत्थर से फिर नारी हो गई। ५३ आज ये शिवजी के धनुष को देखने के लिए आपके यहाँ आए हैं।" ५४ मिथिलापति जनक ने विश्वामित्र की बात ध्यान से सुनी। सर्वज्ञ विद्वान् जनक ने मन में सोचा कि काम बनने की यह अच्छी युक्ति (सुयोग) आई है। ५५ बड़े-बड़े राजा आ चुके हैं और अभी तक धनुष किसी से भी नहीं टूटा है। इससे लगता है कि अच्छा फल होनेवाला है। ५६ जनक ने कहा— "मेरी प्रतिज्ञा विफल न जाएगी। हे मुनिवर, आपकी कृपा से असम्भव घटना भी सम्भव हो सकती है। ५७ हे मुनि, आप जो यहाँ आए सो बड़ी कृपा की। अब मुझे मन में विश्वास हो गया कि मेरा मनोरथ पूरा होगा।" ५८ राजा को इतना हर्ष हुआ जितना कि उनके हृदय में समा भी न सकता था। तब जनक ने अपने सचिव से समझाकर कहा—५९ "इस बालक की महिमा कौन जानता है। लगता है जैसे स्वयं भगवान् बालक का रूप धारण कर पधारे हैं। ६० इन दोनों कुमारों का सत्कार बड़े पैमाने पर किया जाए। ये दोनों भाई बड़े उदार हैं।" ६१ राजा के मन में दोनों कुमारों के प्रति भारी स्नेह उमड़ आया। राजा विदेह ने बड़े विधान से उनकी आराधना की। ६२ विश्वामित्र ऋषि को अच्छा बासा दिया और उचित विनय-वचन कहा। ६३ राजा के ऊपर काम के बोझ का अनुमान करके विश्वामित्र ने राजा से कहा— "अब

घर थिक अपन कहल नृप फेरि। हम आएब घुमि फिरि कय बेरि ॥ ६५ ॥
कौशिक युगल बन्धुकें कहल। वत्स करक थिक एकटा टहल ॥ ६६ ॥

॥ वसन्ततिलका ॥

राजा विदेहक वृहत् फुलबाड़ि जाउ।
हे राम लक्ष्मण अहाँ फुल तोड़ि लाउ ॥ ६७ ॥
दैवप्रदोष शिव पूजन मुख्य काज।
राजन्य-बीज चरमाचल-मौलि राज ॥ ६८ ॥

॥ चौपाइ ॥

गुरु आज्ञानुसार श्रीराम। चलला लक्ष्मण सङ्ग घनश्याम ॥ ६९ ॥
नन्दन-मद-गञ्जन वनवेश। शतमख शतगुण विभवि नरेश ॥ ७० ॥
लक्ष्मी जतय लेल अवतार। तनिक विभव के बरनय पार ॥ ७१ ॥
देखल जखन जनक-वन जाय। बड़ मन हर्षित दून भाय ॥ ७२ ॥
माली सौं पुछलनि फुल लेब। पूजा हेतु गुरू के देब ॥ ७३ ॥
मालि कहल फुलबाड़िक भाग। बड़ आश्चर्य एक गोट लाग ॥ ७४ ॥
सभ ऋतु फूल फुलायल आज। प्रकट एतय सभ दिन ऋतुराज ॥ ७५ ॥
कुमुदिनि कमलिनि गत-सङ्कोच। रवि विधु बुधि अपनहिक किरीच॥ ७६ ॥

आप जा सकते हैं।" ६४ फिर राजा ने कहा— "यह आपका अपना घर है। मैं बीच-बीच में बारंबार आपकी सेवा में उपस्थित होता रहूँगा।" ६५

राम का फुलवाड़ी जाना और सीता को देखना

विश्वामित्र ने दोनों भाइयों से कहा— "वत्सो, आप दोनों को एक टहल करना है। ६६ हे राम और लक्ष्मण, आप दोनों राजा जनक की विशाल फुलवाड़ी में जाइए और वहाँ से फूल चुन लाइए। ६७ देवप्रदोष (शाम) के समय शिव की पूजा करना मेरा मुख्य काम है। राजाओं के मूल पुरुष सूर्य पश्चिमाचल (अस्ताचल) की चोटी पर शोभ रहे हैं।" ६८ गुरु की आज्ञा पाकर बादल-से श्यामवर्ण रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी के साथ विदा हुए। ६९ राजा जनक की फुलवाड़ी नन्दन-वन के घमंड को दूर करनेवाली थी और राजा का विभव इंद्र के विभव का सौ गुना था। ७० जिनके लिए सीता रूपी लक्ष्मी ने जन्म लिया उनके ऐश्वर्य का वर्णन कौन कर सकता है। ७१ जब दोनों भाइयों ने जनक की फुलवाड़ी को देखा तब दोनों के मन बड़े हर्षित हो गये। ७२ उन्होंने माली से अनुमति माँगी— "पूजा के वास्ते गुरु को देने के लिए मैं फूल चुनना चाहता हूँ।" ७३ माली ने उत्तर दिया— "आप फूल चुनें, यह तो फुलवाड़ी के लिए सौभाग्य की बात होगी, पर एक बात का बड़ा अचरज लगता है। ७४ आज तो हर मौसम के फूल खिले हुए हैं, जबकि

अपने युगल मूर्त्ति गुणधाम। हमर भाग्य अयलहुँ एहि ठाम ॥ ७७ ॥
दुहु जन गल देल सुमनक माल। अञ्जलि-बद्ध कहल नयपाल ॥ ७८ ॥
रामचन्द्र शुनि पुनि बजलाह। निजगुणशालि मालि तोहं जाह ॥ ७९ ॥
अपन काज कर स्वामि निमित्त। हम वन देखब टहलि सुचित्त ॥ ८० ॥

॥ कवित्त ॥

उपवन मध्यमे तड़ाग हंस चक्रवाक जल-खग सहस सुरस कलगान।
देखि शुनइत मुनिहुक चित्तवित्त हर मानस समान जल एहन न आन ॥ ८१ ॥
अमल कमल कमला निवास भासमान गुञ्जित मधुप-पुञ्जमत्त मधुपान।
गान कान पड़य चामर चारु ढरइछ देवता-निवास मणिदीपक समान ॥ ८२ ॥

॥ चौपाइ ॥

सीता चलली अवसर ताहि। युगल बन्धुछल छथि वन जाहि ॥ ८३ ॥
गिरिजा देवी पूजि मनाउ। माय कहल जानकि अहँ जाउ ॥ ८४ ॥
ततय सखी सङ्ग बहुत कुमारि। विधुर पूर-विधु सुमुख निहारि ॥ ८५ ॥
कमल हरिण खञ्जन ओ मीन। तनि-लोचन-जित सोचहि दीन ॥ ८६ ॥

यहाँ सदा केवल वसन्त ऋतु रहती थी। ७५ आज एक ही समय में कुमुद भी खिले हैं और कमल भी (जबकि दिन में कमल और रात में कुमुद खिलने चाहिए)। क्या सूरज और चाँद ने आप ही के अनुरोध से ऐसा विचार किया? ७६ आप दोनों गुणों के खज़ाने हैं। आप यहाँ पधारे, यह मेरा सौभाग्य है।" ७७ यह कहकर माली ने दोनों कुमारों के गले में फूल की माला पहना दी औ हाथ जोड़कर कहा। ७८ रामचन्द्र सुनकर फिर बोले— "हे अपने काम में कुशल माली, तुम जाओ, अपने मालिक का काम करो। मैं प्रसन्न मन से घूम-घूमकर फुलवाड़ी देखूँगा।" ७९-८० फुलवाड़ी के बीच में एक पोखरा था। उसमें हंस, चकवा आदि जलचर पक्षी हज़ारों की संख्या में रसीला कलकल गान कर रहे हैं। यह देखकर और सुनकर मुनियों का भी चित्त रूपी धन अपहृत हो जाता था। यह मानस सरोवर जैसा लगता था। ऐसा जल कोई और जगह दुर्लभ है। ८१ निर्मल कमल के फूलों पर मानों लक्ष्मी का वास था। भौंरों का दल कमलमधु पीकर मत्त हो गूँज रहा था। पक्षियों के गान कान में पड़ रहे थे, उनकी पाँखें मानों चँवर डुला रही थीं और इस प्रकार पोखरा देवता के निवासस्थान मणिद्वीप के जैसा लगता था। ८२ इसी समय में सीता भी संयोगवश उस फुलवाड़ी में पहुँची जहाँ दोनों भाई विराजमान थे। ८३ माता ने कहा था— 'हे जानकी, तुम जाओ, गिरिजा की पूजा करके उन्हें मनाओ कि अच्छा वर मिले।" ८४ वहाँ बहुत सी कुआँरी सहेलियाँ सीता के साथ थीं। सीता के सुन्दर मुख को देखकर पूर्णचन्द्र विधुर (दुखी) हो गए। ८५ कमल, हरिण, खंजन और

मानस बासा कयल मरालि। उत्तम देखल जनि जनि चालि ॥ ८७ ॥
जनिक बाहु-जित मञ्जु मृणाल। लज्जित लपटाएल जलथाल ॥ ८८ ॥
तुल्य न कनक कदलि कह काँपि। जघनक हम छी हिनक कदापि ॥ ८९ ॥
अति कृश कटि करकश कुचभार। सुन्दरता सौँ जित संसार ॥ ९० ॥
कुटिल सुचिक्कन केश विशाल। अंग अलङ्कृत शोभित माल ॥ ९१ ॥
जनिकर शुनल पिकी निक गान। गान-मानहत अङ्ग मलान ॥ ९२ ॥
शुनि नूपुर हंसक धुनि सार। उपवन राम नयन सञ्चार ॥ ९३ ॥
लक्ष्मण कौँ पूछल छल-हीन। श्रुति मानस भेल धुनिक अधीन ॥ ९४ ॥

॥ हरिपद ॥

बाल हंस कल श्रवण मनोहर एतय कतय सौँ आयल।
जनक-पुरी युवतीक गमन-जित मानस व्यथित नुकायल ॥ ९५ ॥
सेह थिकथि जनु देवि अवनिजा अबइत छथि सखि सङ्ग।
नूपुर धुनि सुनलाँ जाइत अछि बुझलौं जाइछ रङ्ग ॥ ९६ ॥

॥ बरवा तिरहुति गीत ॥

अबइत छथि वैदेही सखि मिलि सङ्ग।
जित-जग-सेना जेना रचित अनङ्ग ॥ ९७ ॥

मछली —ये सभी सीता की आँखों की शोभा से पराजित होकर दुख से दीन हो गए। ८६ सीता की चाल को अपनी चाल से उत्कृष्ट देखकर हंसी लाज से मानससरोवर में रहने लगी। ८७ मृणाल (कमल का डंठल) सीता की बाँह से हारकर लज्जित हो कीचड़ में लिपट गया। ८८ कनक-कदली (एक तरह के केले का पेड़) काँपती हुई कह रही थी— 'मैं सीता की जाँघ की बराबरी कतई नहीं कर सकती।'' ८९ सीता की निहायत पतली कमर और कठोर भारी स्तन अपनी सुन्दरता से संसार को जीतनेवाले थे। ९० घुँघराले, चिकने और लम्बे बाल थे। अंगों में आभूषण थे। माला शोभा दे रही थी। ९१ उनके गले की मीठी आवाज़ को सुनकर कोकिला ने अपने गान के घमंड को खो दिया और (ग्लानि से) उसका अंग काला पड़ गया। ९२ राम ने सीता के नूपुर की ध्वनि को हंस का कलनाद समझ लिया और फुलवाड़ी में अपनी नज़र दौड़ाई। ९३ निश्छल भाव से लक्ष्मण से पूछा— "सुनते ही इस ध्वनि ने मेरे मन को वश में कर लिया है। ९४ यहाँ हंस के बच्चे की श्रवण-सुखद कलकाकली कहाँ से आई? हंस तो जनकपुरी की युवतियों की चाल से हारकर व्यथित हो मानससरोवर में जा छुपे, फिर यहाँ हंसध्वनि कैसे सुनाई पड़ी? ९५ लगता है, धरती की बेटी सीता अपनी सहेलियों के साथ पधार रही हैं। उन्हीं के पाँव के नूपुर की ध्वनि सुनाई पड़ती है और उससे मेरा मन उल्लसित हो रहा है। ९६ सहेलियों के साथ

फरकै अछि सुनु लक्ष्मण दहिना आँखि।
तन पुलकित प्रभु हरषित उठला भाखि॥ ९८॥
गबइत अबइत छथि सब गौरी-गीति।
सकल रागिनी तन धरु जेहन सुप्रीति॥ ९९॥

॥ हरिपद ॥

धनुष यज्ञ जें कारण होइछ उत्सव सकल समाजे।
दर्शनीय तनिका हम देखल एक पन्थ दुइ काजे॥ १००॥
लोचनमे घन-सार-शलाका सनि लगइत छथि आबी।
सुधा रसँक छटा सनि तनमे के बुझ की अछि भावी॥ १०१॥

॥ चौपाइ ॥

उपवन पहुँचलि सकल कुमारि। तोड़थि फूल नबाबथि डारि॥ १०२॥
तरु तरु छाया क्षण बिसराम। देखथि चलि चलि भल आराम॥ १०३॥
सीता कहलनि हित-सखि कान। अहँकाँ अछि सभ सगुनक ज्ञान॥ १०४॥
जखनहि सौं अयलहुँ आराम। बेरि बेरि फरकै अङ्ग वाम॥ १०५॥
सखि कहलनि शुभ-सूचक थीक। सगुनक गुन कहलनि मुनि नीक॥ १०६॥
मज्जन कयल तड़ाग मे जाय। गिरिजा काँ पूजल मन लाय॥ १०७॥

सीता आ रही है, जसे कामदेव ने संसार को जीतनेवाली सेना सजाई हो। ९७ हे लक्ष्मण, सुनो। मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है।" —कहते-कहते राम के शरीर में रोमांच हो गया और वे प्रसन्न हो फिर बोले—। ९८ "सभी सहेलियाँ गिरिजा के गीत गाती हुई आ रही हैं, मानों सभी रागिनियों ने प्रेमवश शरीर धारण कर लिया है। ९९ जिसके कारण धनुष-यज्ञ हो रहा है और सारे समाज में उत्सव हो रहा है, उस दर्शनीय कन्या को मैंने देख लिया— एक पन्थ दो काज। १०० यह सीता मुझे आँख में कपूर की सलाई-सी शीतल लगती है और शरीर में अमृत-रस की छींट-सी लगती है। कौन जानता है कि क्या होनेवाला है।" १०१ सभी कुमारियाँ फुलवाड़ी में पहुँचीं। वे डालें झुकातीं और फूल तोड़तीं। १०२ हर पेड़ की छाया में छन-पर-छन विश्राम करतीं, फिर घूम-घूमकर सुन्दर फुलवाड़ी को देखतीं। १०३ सीता ने अपनी एक अन्तरंग सखी से कहा— "हे सखी, तुमको सभी सगुनों का ज्ञान है। १०४ मैं जभी से फुलवाड़ी में आई हूँ तभी से बारंबार मेरे बायें अंग फड़क रहे हैं।" १०५ सखी ने कहा— "यह तो शुभसूचक है। ऋषियों ने इसका अच्छा फल बताया है।" १०६ तब सीता ने उस पोखरे में जाकर स्नान किया और मन लगाकर गिरिजा का पूजन किया। १०७ उस फुलहर नामक स्थल की शोभा अपूर्व हो गई जहाँ लक्ष्मी-

फुलहर थल शोभा भल राज। विष्णुरमा जत सहित समाय ॥ १०८ ॥

॥ सुन्दरी छन्दः कमला छन्दश्च ॥

जय देव महेश-सुन्दरी। हम छी देवि अहाँक किङ्करी।
शिव-देह-निवास-कारिणी। गिरिजा भक्त-समस्त-तारिणी ॥ १०९ ॥
हम गोड़ लगैत छी शिवे। जननी भूधरराज-सम्भवे।
जनता-मन-ताप-नाशिनी। जय कामेश्वरि शम्भुलासिनी ॥ ११० ॥

॥ भुजङ्ग-विजृम्भित छन्द ॥

महादेव-रानी सती श्री मृड़ानी सदा सच्चिदानन्द-रूपा अहैं छी।
अहाँ शैल-राजाधिराजाक पुत्री धरित्री सवित्रीक कर्त्री कहै छी ॥ १११ ॥
अहाँ योगमाया सदा निर्भया छी दया विश्व चैतन्य रूपे रहै छी।
सदा स्वामिनी सानुकूला जतै छी धनुर्भङ्ग-चिन्ता ततै की सहै छी ॥ ११२ ॥

॥ उपजाति सुन्दरी छन्द ॥

अपने काँ हम गौरि की कहू। अनुकूला जनि मे सदा रहू ॥ ११३ ॥
हमरा जे मन मध्य चिन्तना। सभटा पूरब संह प्रार्थना ॥ ११४ ॥

॥ चौपाइ ॥

देखलनि एक जनि युगल-कुमार। हरषहि रहल न देह सँभार ॥ ११५ ॥

सहित विष्णु एक साथ उपस्थित हैं। (पूजा के बाद सीता ने गिरिजा की स्तुति की—)। १०८ "हे देवी, हे महादेव की पत्नी, तुम्हारी जय हो। मैं तुम्हारी सेविका हूँ। तुम शिव के आधे शरीर में निवास करती हो, तुम पर्वतराज की पुत्री हो और सारे भक्तों का उद्धार करनेवाली हो। १०९ हे शिवे, मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करती हूँ। तुम माता हो, तुम पर्वतराज हिमालय की पुत्री हो। तुम लोगों के मन के सन्ताप को दूर करनेवाली हो। शम्भु को प्रसन्न रखनेवाली हे कामेश्वरी, तुम्हारी जय हो। ११० तुम ही महादेव शिव की रानी, सती, श्री, मृड़ानी और सदा सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी हो। तुम ही पर्वताधिराज हिमालय की बेटी, धारण करनेवाली शक्ति और सृजन करनेवाली शक्ति को जन्म देनेवाली हो। १११ तुम योग-माया हो, सदा निर्भय हो, दयारूपा हो, विश्वरूपा हो और चैतन्यरूपा हो। जहाँ मेरी स्वामिनी तुम मुझ पर सदा अनुकूल (कृपालु) हो वहाँ धनुर्भंग के बारे में चिन्ता क्यों सहनी पड़े। ११२ हे गौरी, मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम अपनी दासी में सदा अनुकूल रहो। ११३ मेरे मन में जो-जो कामनाएँ हैं, उन सबों को तुम पूरा करना —यही मेरी प्रार्थना है।" ११४ एक सखी ने दोनों कुमारों को देखा। देखकर इतना हर्ष हुआ कि अपनी देह को सँभालना भी कठिन हो गया। ११५ वह अपनी सहेलियों से अलग होकर गई थी। मानों

गेल छल छथि से सखि सङ्ग फूटि । तनिक भेल जनु मन धन लूटि ॥ ११६ ॥
कहु की देखल कहु की भेल । पुछलहु क्षण नहि उत्तर देल ॥ ११७ ॥
किछु न उपद्रव किछु नहि व्याधि । सहजहि लागल मदन समाधि ॥ ११८ ॥
सभ उपचार करथि भरि पोष । चेतए कहल आन नहि दोष ॥ ११९ ॥
विद्यमान एत युगल-कुमार । देखल तनि शोभा-विस्तार ॥ १२० ॥
रहितहुँ देवि सरस्वति शेष । कहि सकितहुँ सौन्दर्य्य विशेष ॥ १२१ ॥
विश्व-मनोहर वयस किशोर । अति सुन्दर वर श्यामल गोर ॥ १२२ ॥
जौँ गिरि-नन्दिनि होथि सहाय । देथि जनक-गृह योग्य जमाय ॥ १२३ ॥
देखल न एहन शुनल नहि कान । नहि परतक्ष विषय परमान ॥ १२४ ॥
दर्शनीय छथि एहि आराम । जनिक कान्ति सौँ निर्जित काम ॥ १२५ ॥
जे कहि गेला नारद मूनि । मन से पड़ल समय से शूनि ॥ १२६ ॥
यदपि अपन सखि-जनिक समाज । तदपि जानकी मन भेल लाज ॥ १२७ ॥
स्वेद स्तम्भ पुलक वर अङ्ग । भाव सरस धर गर स्वर-भङ्ग ॥ १२८ ॥
देह काँप वैवर्ण्य शरीर । युगल जलज-लोचन धरु नीर ॥ १२९ ॥

इसीलिए एकान्त में किसी लुटेरे ने उसके मन रूपी धन को लूट लिया। ११६ कहो क्या देखा, कहो क्या हो गया —ऐसा पूछने पर भी वह सहेलियों को जवाब न दे सकी। ११७ न कोई उत्पात दिखाई देता है और न कोई बीमारी ही। अनायास ही इसको काम की चोट लग गई है। ११८ सभी सखियाँ अपना भर उपचार-इलाज करने लगीं और कहा कि होश में आओ। (उसने कहा—) "और कोई बात नहीं है। ११९ यहाँ दो कुमार आए हुए हैं। मैंने उनकी दिव्य शोभा देखी। १२० अगर मैं भगवती सरस्वती होती, या शेषनाग होती, तभी उन किशोरों के विशिष्ट सौन्दर्य का वर्णन कर पाती। १२१ सारे संसार के मन को हरनेवाले साँवले और गोरे परमसुन्दर दो किशोर दिखाई दिए। १२२ यदि पर्वतराजपुत्री गिरिजा अनुकम्पा करें तो राजा जनक के घर में ऐसे ही योग्य जमाई दें। १२३ ऐसा न कहीं देखा, न कहीं सुना। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या जरूरत। १२४ इसी फुलवाड़ी में तो वे दोनों दर्शन-योग्य कुमार मौजूद हैं, जिनकी छवि से कामदेव भी पराजित हैं।" १२५ सखी के मुँह से यह बात सुनकर सीता को वह समय याद आ गया जब नारद मुनि इसके बारे में कुछ कह गए थे। १२६ यद्यपि मंडली केवल अपनी अन्तरंग सखियों की थी, तथापि जानकी के मन में लज्जा हुई। १२७ अंग से पसीना निकलने लगा, संचारहीनता आ गई, रोंगटे खड़े हो गए, श्रृंगार भाव जाग उठा, कंठ-स्वर गद्गद हो गया। १२८ शरीर काँपने लगा, देह का रंग बदल गया, दोनों नयन-कमलों से आँसू बहने लगे। १२९ और चेतना जाती सी रही। इस प्रकार आठों सात्त्विक भाव

प्रलय भाव जागल भल आठ। मनसिज प्रथम पढ़ाओल पाठ॥ १३०॥
तनिक भाव बूझल सखि एक। जनि मनमे छल गूढ़ विवेक॥ १३१॥
चलु जानकि देखू आराम। नीलक कुरबक तरु जँहि ठाम॥ १३२॥
कहलनि से परिहरु परिहास। अहँक रहै अछि बड़ मन आश॥ १३३॥
सखि हँसि कहलनि शुनु सुकुमारि। वनछवि देखू आँखि पसारि॥ १३४॥
नव-घन-श्यामल छथि नहि दूर। घन विनु बजइछ मत्त मजूर॥ १३५॥
वन घन शोभा कहु की आज। सगुन सिद्धि मन-वाञ्छित काज॥ १३६॥
हंसी देखल विपिन समाज। चतुर सखीक उकुति तनि बाज॥ १३७॥

॥ शिखरिणी छन्द ॥

अये हंसी चिन्ता चित परिहरू सुस्थिर रहू
वियोगें व्यग्रा की विरह दिन धीरा अहँ सहू॥ १३८॥
विशालाक्षी देखू अछि न शिशुता अङ्ग धवले
सुशीला साध्वी छी निकट छथि प्राणेश अबले॥ १३९॥

॥ बरवा ॥

नारद मुनि जे कहलनि से दिन आज।
आरामक परिशीलन करु तजु लाज॥ १४०॥
कहल राम काँ लक्ष्मण दुअ कर जोड़ि।
दर्शनीय नृप-उपवन लिअ फुल तोड़ि॥ १४१॥

जाग उठे। मानों कामदेव ने पहला पाठ पढ़ा दिया। १३० उनमें से एक सखी, जिसके मन में गहन विवेचन की शक्ति थी, सीता के भाव ताड़ गई। (उसने कहा—) १३१ "हे सखी जानकी, चलो फुलवाड़ी देखें जहाँ नीले कुरबक (अर्थात् राम) का पेड़ है।" सीता ने उत्तर दिया— "सखी, मजाक छोड़ो। तुम्हारे मन में तो क्या-क्या कामनाएँ रहती हैं।" १३२ फिर सखी ने हँसकर कहा— "सुनो सखी, आँखें फैलाकर उपवन की शोभा देखो। १३३ नव घनश्याम दूर नहीं है, पर उस घन के विरह में मतवाला मयूर बोल रहा है। १३४ आज नये बादल की जो शोभा है वह क्या कही जाए। यह शकुन बताता है कि तुम्हारे मन की कामना पूरी होगी। १३५-१३६ फिर उसने वन के बीच एक हंसी को देखा। चतुर सखी की अन्योक्ति में वह बोली— १३७ "हे हंसी, तुम अपने मन की चिन्ता दूर करो। निश्चिन्त रहो। विरह से व्याकुल क्यों हो रही हो? तुम धैर्यवती हो, विरह के चन्द दिनों को बर्दाश्त करो। १३८ हे बड़ी-बड़ी आँखों वाली, अब तुम्हारे तन में बचपन का वास नहीं रहा। तुम सुशीला और चरित्रवती हो। तुम्हारा प्राणनाथ पास आ चुका है। १३९ नारद मुनि ने जो कहा था वह दिन आज आ गया। लज्जा को दबाकर फुलवाड़ी का अवलोकन करो।" १४० उधर लक्ष्मण ने दोनों हाथ

॥ वसन्ततिलका ॥

हे नाथ सार्थ नदिनाथक बालिका मे
श्रीनाथ-मानस-निवास-मरालिका मे ॥ १४२ ॥
राजा-विदेह-दुहिता धरणीसुता मे
की भेद-बुद्धि वर-लक्षण-संयुता मे ॥ १४३ ॥

॥ चौपाइ ॥

राम जानकी मन नहि चयन। उत्कण्ठित दर्शन विनु नयन ॥ १४४ ॥
लता ओट सौँ राम समक्ष। मनसिज-सुषमा-हारक दक्ष ॥ १४५ ॥
सखी देखाओल अवसर जानि। नारद मुनिक वचन अनुमानि ॥ १४६ ॥
तनि विनु एहन होएत के आन। राजकुमार विष्णु भगवान ॥ १४७ ॥
चलि नहि सकथि थगित भेल देह। बाढल ततय परस्पर नेह ॥ १४८ ॥
सीता रामचन्द्र-मुख हेरि। अनिमिष-आँखि निमिष नहि फेरि ॥ १४९ ॥
प्रेम-विवश विसरल मन शोच। लोचन त्यागल पल संकोच ॥ १५० ॥
रामहु काँ नहि चित-चेतन्य। साहस सञ्चर नरवर धन्य ॥ १५१ ॥
रमा विष्णु ओ थिकथि सभाग। उचित निमेष न लोचन लाग ॥ १५२ ॥
अग्रज श्याम गोर छोट भाय। शोभा जनिक कहल नहि जाय ॥ १५३ ॥

जोड़कर रामचन्द्र से कहा—"राजा की फुलवाड़ी देखने लायक है। अब फूल चुन लिया जाए। १४१ हे नाथ, एक ओर नदियों के पति समुद्र की बेटी लक्ष्मी, जो नारायण के मन रूपी मानससरोवर की हंसी है, और दूसरी ओर राजा विदेह जनक की पुत्री धरणी-सुता जानकी, जो सभी शुभ लक्षणों वाली है, इन दोनों के बीच भेदभाव क्या (अर्थात् जानकी साक्षात् लक्ष्मी-जैसी सोहती है)।" १४२-१४३ राम और जानकी के मन में चैन नहीं रहा। दोनों की आँखें एक-दूसरे को देखने के लिए उत्कंठित हो गईं। १४४ सखी ने अवसर पाकर और नारद मुनि के वचन को स्मरण करके लता की ओट से राम की झाँकी सीता को दिखाई जो राम कामदेव के सौन्दर्य को जीतने में समर्थ थे। राम को छोड़ ऐसा और कौन हो सकता है? राजकुमार साक्षात् विष्णु भगवान् हैं। १४५-१४७ दोनों चल नहीं सकते क्योंकि शरीर स्तम्भित हो गया था। वहाँ दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम बढ़ गया। १४८ सीता एकटक राम का मुख निहारने लगी, पलक भी नहीं फेरती। १४९ प्रेम में विभोर हो मन की सारी चिन्ता भूल गई। आँखों ने पलक गिराना बन्द कर दिया। १५० राम के चित्त में भी होश व हवाश नहीं रहा। पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र धन्य हैं जो ऐसी अवस्था में भी साहस-पूर्वक चलते-फिरते रहे। १५१ सीता और राम, जो सर्वांशतः लक्ष्मी और विष्णु हैं, दोनों की आँखों में पलक नहीं गिरती है (पलक न गिरना देवताओं का लक्षण है)। १५२ जो श्यामवर्ण

नख शिख जनिकर देखल रूप। चित्र लिखित सनि सब जनि चूप ॥ १५४ ॥
एक जनि सखि बड़ साहस कयल। सीता-कर-सरसीरुह धयल ॥ १५५ ॥
अयि सखि सुमुखि स्वस्थ रहु चित्त। मुनिक कहल फल-प्राप्ति निमित्त ॥ १५६ ॥
कत जन उपवन कर सञ्चार। सुचित कि उचित कहत व्यवहार ॥ १५७ ॥
चलु बरु गिरिजा-मन्दिर जाउ। चलब भवन किछु समय जुड़ाउ ॥ १५८ ॥
गिरिजा-चरण पूजलहिँ आस। पूरत हयत चित्त निश्वास ॥ १५९ ॥
सखी-वचन हित तखना शुनि। युगल बन्धुकेँ देखल पूनि ॥ १६० ॥
प्रभु छवि देखि धयल मन ध्यान। तन्मय विश्व वस्तु नहि आन ॥ १६१ ॥
देखि देखि सखि युगल-कुमार। आधि विषाद हृदय विस्तार ॥ १६२ ॥
पण की नृप कएलनि मन जानि। बुझि सुझि लेल न हित ओ हानि ॥ १६३ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

महाराज जनक उचित पण कैल नहि बुद्धिमान लोक बुद्धिमान कतै कहतैनि।
महादेव धनुष मनुष बूत टूट कत बल देवासुरक जतय ने निबहतैनि ॥ १६४ ॥
धनुष भञ्जन मन काम भूप वीर मन एकहु जनक दाप चापमे न लहतैनि।
घुरि वीर आगत नगर निज जयताह घरमध्य कन्यका कुमारि कोना रहतैनि ॥१६५॥

हैं वे बड़े भाई हैं और जो गोरे हैं वे छोटे भाई। इन दोनों की शोभा कही नहीं जा सकती है। १५३ इनका नख-शिख रूप (पाँव से माथे तक सारा स्वरूप) जिस-जिस सखी ने देखा वह देखकर अवाक् रह गई जैसे चित्र में लिखी हो। १५४ एक सखी ने बड़ा साहस किया और सीता के कर-कमल को पकड़कर बोली— १५५ हे सुन्दरी सखी, चित्त को स्थिर करो। मुनि ने जो बताया था उस फल की प्राप्ति के आसार दिखाई देते हैं। १५६ फुलवाड़ी में बहुत से लोग आते-जाते रहते हैं। तुम जो कर रही हो उसे क्या समझदार आदमी उचित व्यवहार कहेंगे? १५७ चाहो तो चलो गिरिजा-मन्दिर चलें। कुछ देर नयन तृप्त करके फिर घर चली जाएँगी। १५८ गिरिजा के चरण की पूजा करने से ही कामना पूरी होगी और मन निश्चिन्त होगा।" १५९ तब सखी के हित वचन को सुनकर एक बार फिर दोनों कुमारों को देखा। १६० रामचन्द्र की छवि निहार कर हृदय में उसका ध्यान धर लिया। उन्हें सारा जगत राममय दिखाई देने लगा, और कोई वस्तु उसे न सूझती। फिर सखी ने कहा—। १६१ "हे सखी, दोनों कुमारों के दर्शन से हृदय में व्यथा और विषाद बढ़ता जा रहा है। १६२ न जाने, राजा जनक ने क्या समझकर प्रतिज्ञा की। उन्होंने अपने हिताहित का विवेचन नहीं किया। १६३ महाराज जनक ने उचित प्रण नहीं किया। समझदार लोग उन्हें बुद्धिमान नहीं कहेंगे। शिवजी के धनुष को मनुष्य कैसे तोड़ सकेगा जहाँ कि देव और राक्षस लोगों का बल भी सफल नहीं हो सकता है। १६४ जो वीर राजा लोग धनुष को तोड़ने की कामना से जुटे हैं उनमें एक भी व्यक्ति

पुलकित तन घन आनन्द उदित मन बेरि बेरि मिथिलेश आँगनमे अबितहुँ ।
कन्या वर मङ्गलदायक युवती-समूह गणपति गिरिजा गिरीश गुन गबितहुँ ॥१६६॥
'चन्द्र' भन रामचन्द्र पूर्णचन्द्र-मुख अनिमेष लोचन चकोरीकें बनबितहुँ ।
कोटि काम छवि अभिराम घनश्याम राम जानकीक योग्यजों मनोज्ञ वर पबितहुँ ॥ १६७ ॥

॥ मालिनी छन्द ॥

सभ जनि पुनि गौरी पूजबा काल ऐली ।
नव नव फुल-माला मालिनी गाँथि लेली ॥ १६८ ॥
सुविधि कयल पूजा जानकी विश्व-धन्या ।
तखन मन प्रसन्ना भेलि शैलेन्द्र-कन्या ॥ १६९ ॥

॥ गीतिका छन्द ॥

कहि देल जे मुनि भेल से दिन इष्ट देवि कृपा करू ।
अभिलाष-पूरण-कारिणी जनकार्य्य मे मन दै परू ॥ १७० ॥
सकलेष्ट-साधन-शक्ति-सकला भूधरेन्द्र-सुता अहाँ ।
कत किङ्करी शरणागता रहिता मनोरथ सौं कहाँ ॥ १७१ ॥

॥ चौपाइ ॥

गौरि पूजि पद कयल प्रणाम । फरकल बेरि बेरि अङ्ग वाम ॥ १७२ ॥

का दर्प इस शिवजी के धनुष में सफल नहीं होगा। आये हुए वीरगण तो अपने-अपने घर लौट जाएँगे, पर राजा जनक अपने घर में कन्या को कुमारी कैसे रखेंगे। १६५ तन पुलकित हो जाता, मन में घना आनन्द छा जाता, बार-बार मिथिलेश के आँगन में आतीं; युवतियों का दल बनाकर कन्या और वर के मंगल के लिए गिरिजा, और शिवजी के प्रार्थना-गीत गातीं; 'चन्द्र' कवि कहते हैं, रामचन्द्र के मुख रूपी पूर्णचन्द्र को देखते अपलक आँखों को चकोरी बना लेतीं; यदि करोड़ कामदेव की छवि से भी अधिक छविवाले बादल-से साँवले राम को जानकी के लिए उपयुक्त वर पा सकतीं। १६६-१६७ फिर सभी सहेलियाँ गिरिजा के पूजन के समय जुट गईं। मालिन फूल की नई-नई मालाएँ गूँथकर ले आईं। १६८ जानकी ने विधानपूर्वक विश्ववन्द्य गिरिजा की पूजा की। पूजा पाकर पर्वतराजपुत्री गौरी प्रसन्न हुईं। १६९ सीता ने गिरिजा की स्तुति की— "मुनि नारद ने जो कहा था वह दिन आज उपस्थित है। हे मेरी आराध्य देवी गिरिजा, कृपा करो। तुम मन की अभिलाषा पूरी करनेवाली हो; अपनी सेविका के काम में ध्यान देकर पड़ो। १७० तुम कामना-पूर्ति की सारी शक्ति से युक्त हो और पर्वतराज हिमालय की पुत्री हो। बहुत सारी सेविकाएँ जो तुम्हारी शरण में आईं वे अपने मनोरथ से कभी वंचित नहीं हुईं।" १७१ गौरी के पद की पूजा करके सीता ने प्रणाम

तखन खसल भल फूलक माल। ओ प्रसाद लय राखल भाल॥ १७३॥
पुन प्रसाद से हृदय लगाब। मन कह वाञ्छित होयत आब॥ १७४॥
भूधर-नन्दिनि हर्षित चित्त। कहलनि वैदेहीक निमित्त॥ १७५॥
चिन्ता परिहरु अवनि-कुमारि। नयन सफल करु निकट निहारि॥ १७६॥
सुन्दर श्याम मही-पुरहूत। शिवक धनुष टुट हिनकहि बूत॥ १७७॥
जे वर नारद कहि गेलाह। लोचन-गोचर से भेलाह॥ १७८॥
गिरिजा-वचन शुनल से कान। सकल सखी करु तनि गुनगान॥ १७९॥

॥ गीत ॥

रहु देवि दासी-विषय सहाय।
जय जय जगदीश्वर-वामाङ्गी जय जय गणपति माय॥ १८०॥
अतिशय चिन्ता मनमे छल अछि नृपति कठिन पण पाय।
दरशन देल भेल मन-वाञ्छित चिन्ता गेलि मिटाय॥ १८१॥
सकल सृष्टि-कारिणि जनतारिणि महिमा कहल न जाय।
जगदम्बा अनुकूला अपनहि हम की देब जनाय॥ १८२॥
रामचन्द्र सुन्दर वर जे विधि होथि महीप-जमाय।
जय जय जननि सनातनि सुन्दरि तेहन रचब उपाय॥ १८३॥

किया। उनके बायें अंग बार-बार फड़के। १७२ तब मूर्ति के ऊपर से फूल की एक माला गिरी जिसे सीता ने प्रसाद समझकर उठा लिया और अपने माथे पर रख लिया। १७३ फिर उस प्रसाद को छाती से लगा लिया। हृदय ने कहा, अब वांछित फल अवश्य मिलेगा। १७४ गिरिराजपुत्री पार्वती ने प्रसन्नचित्त होकर सीता के प्रति कहा— १७५ "हे पृथ्वीपुत्री, चिन्ता छोड़ो। पास में जो धरती पर उतरे इन्द्र के समान श्यामवर्ण सुन्दर रामचन्द्र हैं उनकी ओर देखकर आँखें सफल करो। उन्हीं की शक्ति से शिवजी का धनुष टूटेगा। १७६-१७७ नारद जो वर कह गए थे वही वर श्रीराम आज तुम्हारी आँख के सामने हैं।" १७८ गिरिजा का उपर्युक्त वचन सुनकर सभी सखियाँ स्तुति करने लगीं— १७९ "हे देवी, अपनी सेविका के प्रति अनुकूल रहो। हे जगदीश्वर शिव की अर्द्धांगिनी, तुम्हारी जय हो। हे गणेशजी की माता, तुम्हारी जय हो। १८० राजा की कठिन प्रतिज्ञा देखकर मन में बड़ी चिन्ता हो गई थी। तुमने दर्शन दिए, मेरी अभिलाषा पूरी हो गई और चिन्ता मिट गई। १८१ तुम सारी सृष्टि करनेवाली हो और सभी भक्तों को तारनेवाली हो। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हे संसार भर की माता, तुम तो स्वयं अनुकूल हो, फिर विनती क्या करूँ? १८२ हे सनातन सुन्दरी जननी, तुम्हारी जय हो। तुम ऐसा उपाय करो कि जिससे सुन्दर वर रामचन्द्रजी राजा जनक के जमाई हों।" १८३

॥ चौपाइ ॥

गिरिजा-वचन सकल जनि शुनि। हर्षित चललि भवन सभ पुनि ॥ १ ॥
गुरुक निकट गेला पुन राम। लक्ष्मण-सहित देखि आराम ॥ २ ॥
देखल उपवन हर्ष न थोड़। लगला जाय गुरू कें गोड़ ॥ ३ ॥
गुरु पुछलनि नृप उपवन केहन। कहल विदेहक होइनि जेहन ॥ ४ ॥
गुरुपूजार्थं धयल भल फूल। नन्दन-वन न नृपक वन तूल ॥ ५ ॥
चरमाचल चुम्बन कर सूर। कुमुदिनि-कुलक मनोरथ पूर ॥ ६ ॥
सरसीरुह-मुह सम्पुट कयल। चटकाली गुरु-भूरुह धयल ॥ ७ ॥
समुदित विधु-मुख विधु-वदनाक। दिवस अन्ध खग सञ्चर ताक ॥ ८ ॥
सानुज सन्ध्या-वन्दन कयल। गुरुपद-कमल विमल उर धयल ॥ ९ ॥
कह रघुवर विधुबिम्ब निहारि। कत विधु कतय विदेह-कुमारि ॥ १० ॥
तनि मुख समता शशि की पाव। प्रति तिथि व्यथित अतिथि बनि आव ॥ ११ ॥
तनि पदसमता वारिज कहब। असमञ्जस अपयश जन सहब ॥ १२ ॥
रजनि विकास न हिमसौं हानि। जानकि उपमा देब कि जानि ॥ १३ ॥

यज्ञ का अन्त होना और राम-लक्ष्मण का सभामंडप पर जाना

सभी सखियाँ गिरिजा की वाणी सुनकर हर्षित हो घर लौट गईं। १ फिर लक्ष्मण सहित रामजी फुलवाड़ी देखकर गुरु के पास गए। २ उपवन देखा। अपार हर्ष हुआ। जाकर गुरु को प्रणाम किया। ३ गुरु ने पूछा—"उपवन कैसा था?" राम ने उत्तर दिया—"राजा विदेह का जैसा होना चाहिए।" ४ तब लाये हुए फूलों को गुरु के पूजार्थ रख दिए। राजा जनक की फुलवाड़ी का मुक़ाबला नन्दनवन भी नहीं कर सकता है। ५ सूरज अस्ताचल की चोटी पर पहुँचे। कुमुदिनियों का मनोरथ पूरा हुआ [क्योंकि कुमुदिनी सूरज डूबने के बाद खिलती है]। ६ कमल अपने मुँह बन्द किए। पंछी बड़े-बड़े पेड़ों पर अपने-अपने घोंसले गए। ७ चन्द्रमुखी सुन्दरियों का मुखकमल खिल उठा [क्योंकि प्रिय-मिलन का समय निकट आया]। जो पंछी दिन में अन्धे हो जाते हैं वे आँखों में रोशनी पाकर विचरण के लिए प्रस्तुत हुए। ८ लक्ष्मण-सहित राम ने सन्ध्यावन्दन किया। गुरु के निर्मल-चरण-कमल का ध्यान किया। ९ रामचन्द्र ने चन्द्रमंडल को निहारकर कहा—"कहाँ चाँद और कहाँ जानकी का मुख। १० उसके मुख की बराबरी चाँद क्या करेगा। वह तो हरेक तिथि में व्यथा पाकर अर्थात् बिगड़कर रोज अतिथि होकर आता है। ११ उसके चरण की तुलना यदि कमल से की जाए तो लोगों में अनुचित कहलायेगा और अपयश सहना पड़ेगा। १२ जो रात में भी खिला रहता और जाड़े में भी गलता नहीं ऐसे चरण की उपमा कमल से कैसे

कन्यारत्न प्रकट महि-फूल। उपमा विधि नरचल निधि मूल ॥ १४ ॥
जतय जतय भय पड़इछ दृष्टि। ततय ततय सीतामयि सृष्टि ॥ १५ ॥
एहन न अछि एको प्रस्ताव। सीतास्मरण जतय नहि आब ॥ १६ ॥
गुरुप्रसाद अयलहुँ एहि ठाम। सुनितहिँ छलछी तिरहुति नाम ॥ १७ ॥
छथि गुरु देव विधाता तूल। काज होइत अछि चित अनुकूल ॥ १८ ॥
टुटि छिड़िआएल तारा-हार। रजनीकाँ शशि सङ्ग विहार ॥ १९ ॥
बीतल रातिक दोसर याम। निद्रा सेवित लक्ष्मण राम ॥ २० ॥
हृदय कमल मे रमा निवास। विद्रावित निद्रा तेँ त्रास ॥ २१ ॥
चललि रजनि जनि विधु तजि सङ्ग। अरुणित अम्बर कुसुमक रङ्ग ॥ २२ ॥
खग-कल भल भूषण-झनकार। समटि लेल तारावलि हार ॥ २३ ॥
परसल छल जनु कच अंधकार। धूसर विधु विरही व्यवहार ॥ २४ ॥
कुमुदिनि मलिनि कमल वन राज। उदय अस्त दिनकर द्विजराज ॥ २५ ॥
कलेश कटित भेल कोकवधूक। दिवस-अंध मन धंधित घूक ॥ २६ ॥
कत प्रभात-सूचक खग कूज। मुनि मानस-विधि गुरु केँ पूज ॥ २७ ॥

दी जा सकती है। १३ जो कन्यारत्न धरती से फूल की भाँति प्रकट हुआ, सभी निधियों के आश्रय उसके लिए ब्रह्मा ने कोई उपमा नहीं बनाई। १४ जहाँ-जहाँ मेरी नज़र जाती है, सारी दुनिया मुझे सीता ही सीता दिखाई देती है। १५ ऐसा कोई प्रसंग नहीं है जो सीता की याद न दिलावे। १६ गुरु विश्वामित्र की कृपा से मैं यहाँ आया। मैं तो तिरहुत का केवल नाम सुनता था। १७ गुरु, देवता और विधाता (भाग्य) तीनों साथ हैं, इसीलिए मन लायक काम होता जा रहा है।" १८ रात्रि रूपी नायिका ने चन्द्र रूपी नायक के साथ रतिविहार किया। नायिका के गले का तारा रूपी हार टूट गिरा और उसके दाने बिखर गये। १९ रात का दूसरा पहर बीत गया। राम और लक्ष्मण निद्रित हो गए। २० राम के हृदय रूपी कमल में लक्ष्मी विराजमान थी, यह देखकर सौत के डर से निद्रा भाग गई। २१ चाँद का साथ छोड़कर रजनी निकल गई। कुसुम रंग में रँगा उसका लाल अम्बर (वस्त्र और आकाश) दिखाई देने लगा। २२ पक्षियों का चहकना मानों उसके अंग के गहनों का खनकना है। उसने ताराओं के अपने हार को समेट लिया। २३ उसके बाल रूपी अन्धकार जो फैला हुआ था वह समाप्त हो गया। रजनी के विरह से चाँद का रंग फीका हो गया। २४ कुमुदिनी म्लान हो गई (मुँद गई) और कमलवन प्रसन्न हो गया (खिल उठा)। सूरज और चाँद क्रमशः उदयाचल और अस्ताचल पर पहुँचे। २५ चकवी की विरह-वेदना दूर हुई। दिन को अन्धा हो जानेवाले उल्लू के मन में चिन्ता समाई। २६ प्रातःकाल की सूचना देते हुए कई पक्षी कूजने लगे। मुनि लोग मानसविधि से (मन ही मन) अपने-अपने गुरु को पूजने लगे। २७ चारों ओर 'शिव-शिव' शब्द सुनाई

शिव शिव धुनि सुनि पड़ चहु ओर । स्नान करथि संयमि जन भोर ॥ २८ ॥
घण्टा शंखनाद आनन्द । विकच कमल करव मुख बन्द ॥ २९ ॥
प्रेम-बद्ध अलि नलिनी-कोष । भ्रमित भ्रमर मधु पिबि भरिपोष ॥ ३० ॥
गणिका चललि नृत्य अवसान । नील नलिन दल नयन समान ॥ ३१ ॥
वन्दी विरुद रटथि नृप-द्वार । भैरव राग सरस सञ्चार ॥ ३२ ॥
वाद्य विविध धुनि मृदुल मृदङ्ग । शयित अवनिपति निद्रा भङ्ग ॥ ३३ ॥
अगनित महिपति जनक-समाज । आगत शिव-धनु-भञ्जन काज ॥ ३४ ॥
यथा यथा भूपति जन आब । तथा जनक सौँ आदर पाब ॥ ३५ ॥
रथ तुरङ्ग गज पथ नहि सूझ । अर्थी दिन रजनी नहि बूझ ॥ ३६ ॥
यज्ञभूमि मे थल निर्म्माण । कयल मनोहर जनक-प्रधान ॥ ३७ ॥
प्रातःकृत्य स्नान कय राम । गुरु-पद-पङ्कज कयल प्रणाम ॥ ३८ ॥
आशिष दय गुरु कहलनि आज । सत्वर चलु जत नृपति विराज ॥ ३९ ॥
मञ्च अनेक बनल छल बेश । तेहि पर बैसथि जाय नरेश ॥ ४० ॥
सकल मञ्च मे एक प्रधान । बैसल कौशिक सह भगवान ॥ ४१ ॥

देने लगे। नियम-संयम वाले लोग प्रातःस्नान करने लगे। २८ घड़ी-घंटे और शंख के शब्द आनन्द देने लगे। कमलों के मुख खुल गए कुमुदों के बन्द हो गए। २९ भौंरे कमल की गोद में प्रेमवश कैद हो गए। कुछ भौंरे मन भर कमल-मधु पीकर मंड़राने लगे। ३० नाच खत्म करके वेश्याएँ चली गईं। उनकी आँखें कमल के पत्ते के समान नीली हो गईं। ३१ भाट लोग राजा के द्वार पर स्तुतिपाठ करने लगे। प्रातःकालीन भैरवराग अलापा जाने लगा। ३२ मधुर मृदंग की आवाज के साथ तरह-तरह के वाद्यों के शब्द से सोये हुए राजा जनक की नींद टूटी। ३३

धनुभंग

राजा जनक के दरबार में शिवजी के धनुष को तोड़ने के लिए अनगिनत राजा लोग आने लगे। ३४ जैसे-जैसे राजा लोग आते गए वैसे-वैसे जनक से आदर पाते गए। ३५ इतने रथ, घोड़े और हाथी छा गये कि रास्ता नहीं सूझता था। गर्जमन्द लोग दिन है या रात इसकी परवाह नहीं करते। ३६ राजा जनक के अधिकारियों ने यज्ञ-भूमि में सभा-स्थल (पंडाल) का निर्माण किया था। ३७ रामचन्द्र ने स्नान करके प्रातःकृत्य किया और गुरु विश्वामित्र की चरण-वन्दना की। ३८ आशीर्वाद देकर गुरु ने कहा—"आज शीघ्र वहाँ चलिए जहाँ राजा दरबार लगाए हुए हैं। ३९ राजाओं के बैठने के अनेकानेक मंच (ऊँचे आसन) बने हुए थे। राजा लोग उन पर जा-जा बैठने लगे। ४० सभी मंचों में जो एक मुख्य स्थान में था उस पर विश्वामित्र

नृपति सुमति तति तत बैसलाह। जनक-प्रधान कहय लगलाह॥ ४२॥
शतानन्द मुनि गौतम-तनय। कहल सभा मे जनकक विनय॥ ४३॥
कन्या रमा-रमा मिथिलेश। तप-बल पाओल तिरहुति देश॥ ४४॥
धरणी-तनया अति सुकुमारि। छविमयि रती-विजयि अवतारि॥ ४५॥
त्रिभुवन देखल शुनल नहि कान। वनिताजन विरचल विधि आन॥ ४६॥
आगत नृपवर जनक-समाज। जनकक कहल शुनल हो काज॥ ४७॥
शिबक धनुष भञ्जन कर जेह। वैदेही वर होयता (ह) सेह॥ ४८॥
शुनि तनि कथा हर्ष नृप-चित्त। आएल छी एत सेह निमित्त॥ ४९॥
तोड़ब धनुष हमहि अगुआय। पाछाँ रहब मरब पछताय॥ ५०॥
बड़ बड़ बलगर गलगर जाथि। टूट न धनुष मनुष पछताथि॥ ५१॥
एहि गति कत कत नृप गत-गर्व्व। धनुष न टार हार मन सर्व्व॥ ५२॥
परिचित बलक हजार हजार। शङ्कर धनुष समुख मन हार॥ ५३॥
धनुष निकट माचल महाघोल। सभ जन पाओल माथक मोल॥ ५४॥

के साथ रामचन्द्र बैठे। ४१ बड़े-बड़े बुद्धिमान राजा-महाराजा वहाँ बैठे। जनक के अधिकारी विनय-वचन से सबों का सत्कार करने लगे। ४२ गौतम के पुत्र मुनि शतानन्द ने जनक की ओर से विनय-पूर्वक निवेदन किया— ४३ "मिथिलेश राजा जनक ने तिरहुत देश में अपने पुण्य के प्रताप से एक कन्या प्राप्त की जो लक्ष्मी के समान सुन्दरी है। ४४ वह धरती से उत्पन्न हुई है। बड़ी कोमलांगी है, शोभामयी है। मानों सौन्दर्य में रति को जीतने के लिए अवतीर्ण हुई है। ४५ तीनों लोकों में न आँखों से देखा और न कानों से सुना कि ऐसी नारी ब्रह्मा ने कोई और बनाई है। ४६ जनक के दरबार में आए हुए राजाओ, राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनी जाय और तदनुसार काम हो। ४७ जो कोई शिवजी के धनुष को तोड़ेगा वही सीता का पति होगा।" ४८ शतानन्द की बात सुनकर राजाओं के मन हर्षित हुए और एक राजा बोले, "इसी के लिए तो मैं यहाँ आया हूँ। ४९ मैं ही आगे होकर धनुष तोड़ूँगा। अगर पीछे पड़ूँगा तो पश्चात्ताप से मर जाऊँगा।" ५० बड़े-बड़े बलवान् और गाल बजानेवाले राजा लोग धनुष तोड़ने जाते, पर उनसे धनुष न टूटता और वे पछतावा करने लगते। ५१ इस प्रकार कितने ही राजाओं का घमंड टूटा, पर धनुष को टाल भी न सके। सभी मन में हार गए। ५२ विख्यात बलशाली हज़ार-हज़ार राजा शिवजी के धनुष के सामने हार मान गये। ५३ धनुष के पास बड़ा कोलाहल मच गया। सभी अपने-अपने माथे का मूल्य पा चुके। ५४ महिलाएँ विकल हो कहने लगीं— "अब

॥ सोरठा ॥

आब न रहल उपाय, बनिता-गण मन विकल कह।
भूपति-पण अन्याय, कतय शम्भु-धनु मनुष कत ॥ ५५ ॥
कन्या रहलि कुमारि, अनुचित एहन न भेल छल।
सभ बैसलि मन हारि, नृपति सकल बल बुझि पड़ल ॥ ५६ ॥
शतानन्द बजलाह, अहह आह निर्वीर मही।
भल करइत अधलाह, होमय न बूझ विदेह कौं ॥ ५७ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

टूटल न धनुष विमुख तुष नृपगण,
साहस सौं सहस सहस छल लटकल।
बीर सौं विहीन भेलि अवनी से ज्ञात भेल,
गेल जाओ वीरवृन्द व्यर्थ छी कि अटकल ॥ ५८ ॥
विधिक लिखल कन्या रहली कुमारी मान्या,
जनकक उक्ति शतानन्द सभा फटकल।
लछमन कुमर सकोप शुनि बजलाह,
आकृति जनिक देखि सभ जन सटकल ॥ ५९ ॥

॥ झूलना छन्द ॥

देव-रघुनाथ-पद-वारिरुह-दास हम सर्व्वदा भ्रातृ-आज्ञानुसारी।
मेरु उद्दण्ड भुजदण्ड तट गण्य नहि जीर्ण शिव-चाप कहु कोन भारी ॥ ६० ॥

कौन उपाय होगा ? राजा जनक ने गलत प्रतिज्ञा की। कहाँ शिवजी का धनुष और कहाँ मनुष्य का बल। ५५ बेटी क्वाँरी रह गई। ऐसा अनर्थ तो कभी न हुआ था।" सभी महिलाएँ निराश हो बैठ गईं। सभी राजाओं के बल का भंडाफोड़ हो गया। ५६ शतानन्द बोले—"अहा, आज इस संसार में कोई वीर पुरुष न रहा। राजा जनक को एक अच्छा काम करते ऐसा बुरा परिणाम नहीं मिलना चाहिए। ५७ धनुष न टूटा। भूँसे के बराबर राजा लोग विमुख हो चले गए। साहस के साथ हजार-हजार राजा लगे हुए थे। आज मालूम हुआ कि धरती वीरों से खाली है। हे वीरो, आप लोग जाइए। नाहक अटके क्यों हैं ? ५८ विधि ने यही लिखा था। श्रेष्ठ कन्या कुमारी रह गई।" राजा जनक की ओर से शतानन्द ने यह बात राजाओं की मंडली में घोषित की। कुमार लक्ष्मण सुनते ही क्रुद्ध होकर बोलने लगे, जिनका चेहरा देख सभी भौंचक रह गए। ५९ "मैं प्रभु रामचन्द्र के चरण-कमल का सेवक हूँ और सदा भ्राता की आज्ञा माननेवाला हूँ। मेरे भुजदंड के आगे प्रचंड मेरु पर्वत की भी गिनती नहीं, फिर बताइए तो मेरे लिए जीर्ण-शीर्ण पुराना शिव-धनुष कौन-सा भारी होगा। ६० यदि रामचन्द्र की इच्छा हो तो मैं धनुष

पाबि रुचि चाप धय देब कय खण्ड कय रहित भय सञ्चरब वीर मानी।
कोप मन बाढ़ जनकोक्ति कटु गाढ़ शुनि विश्व के ठाढ़ संग्राम प्राणी ॥ ६१ ॥

॥ बरबा ॥

स्मित-मुख राम न बजला, अनुज निहारि।
चेष्टहि कयल निवारण, समय बिचारि ॥ ६२ ॥
कौशिक कहलनि रघुबर धनुष उठाउ।
पूरिअ जनक-मनोरथ आधि मिटाउ ॥ ६३ ॥
(धनुर्बन्ध, २० पत्र कमलबन्ध, १० दल कमलबन्ध,
चामरबन्ध, करमुष्टिबन्ध, गो-मूत्रिका-बन्ध इत्यादि।)

॥ दोहा ॥

राम राम छम काम-सम, मसम मसम सम धाम।
रोम रोम भ्रम सोम हिम, सुसम महिम सम नाम ॥ ६४ ॥

॥ मालाबन्ध घनाक्षरी ॥

कत कत जत तत जन मन मन भन बड़ गड़बड़ पड़ गोपचाप भूपकाँ।
गाम धाम धाम राम-गीति अतिप्रीति रीति बरगर हार धर जप तप रूपकाँ। ६५ ॥
सुर नर पुर द्वार सकलक एक टक आँखि भाखि भाखि सखि भल भेल भलकाँ।
भल फल भेल देल सिधि विधि निधि सुधि गेल चलचल बलशाल भेल खलकाँ॥६६॥

॥ चौपाइ ॥

जनक कयल कौशिक काँ विनय। खण्डल धनुष करथु नृपतनय ॥ ६७ ॥
कौशिक कहल कहल नृप वेश। धनु भञ्जन नहि एक नरेश ॥ ६८ ॥

को उठाकर खंड-खंड कर दूँगा और मनस्वी वीर की तरह निर्भय हो विचरण करूँगा। जनक की बड़ी तीखी बात सुनकर मेरे मन में क्रोध जाग गया है। मेरे सामने संसार भर का कौन प्राणी लड़ाई में खड़ा हो सकेगा।" ६१ छोटे भाई का रंग देखकर रामजी केवल मुस्कुराए, बोले कुछ नहीं। वक़्त को देखते हुए उन्हें केवल इशारे से रोका। ६२ तब विश्वामित्र ने कहा— 'हे राम, आप धनुष उठाइए और राजा जनक की चिन्ता दूर कर उनका मनोरथ पूरा कीजिए *। ६३-६४ यत्र-तत्र कितना हूँ लोग मन ही मन कहते हैं कि यह शिवजी का चाप बड़ी गड़बड़ मचानेवाला हुआ *। ६५-६६ राजा जनक ने विश्वामित्र से निवेदन किया कि राजा दशरथ के पुत्र रामजी शिवजी का धनुष तोड़ें। ६७ विश्वामित्र ने उत्तर दिया— "हे महाराज, आपने अच्छा कहा। कोई भी राजा धनुष न तोड़ सके। ६८ अब श्रीराम आपकी कामना पूरी करेंगे। वे

* यह दोहा और कुछ आगे की पंक्तियाँ चित्रकाव्य या धनुर्बन्धादि में बँधी हैं, इसलिए अर्थ लगा पाना सम्भव न हुआ।

अहँक मनोरथ पुरता राम। अयले छथि धनु-खण्डन-काम ॥ ६९ ॥
रमानाथ पुरुषोत्तम शूर। करिय विदेह-मनोरथ पूर ॥ ७० ॥
गुरुक वचन शुनि कह प्रभु नीक। कञ्जबन्धु-कुल कृति हित थीक ॥ ७१ ॥
परिकर बाँधल दृढ़तर राम। राखल धनुष बाण तहिठाम ॥ ७२ ॥
मञ्चक उपर सहज प्रभु ठाढ़। अतिशय हरष जनक मन बाढ़ ॥ ७३ ॥
रानि मनाबथि देव बहूत। धनु भञ्जन हो हिनकहि बूत ॥ ७४ ॥
जनिक दृष्टि पड़ युगल कुमार। विबुध विलोचन सम व्यवहार ॥ ७५ ॥
घण्टाशत-युत मणि ओ वस्त्र। स्थापित छल त्रिपुरारिक अस्त्र ॥ ७६ ॥
देव सकल छल भल नर वेष। रघुवर शोभा टक टक देख ॥ ७७ ॥
इन्द्राणी-गण गायिनि सर्व्व। रमा-रमेशक परिणय . पर्व्व ॥ ७८ ॥
लक्ष्मण तत्क्षण रक्षण काज। कहल आबिकँ धनुषसमाज ॥ ७९ ॥
राम वामकर धनु धरताह। जन देखइत कौतुक करताह ॥ ८० ।
श्रमकर नृपवर छल छथि व्यर्थ। देखथु रामक कर-सामर्थ्य ॥ ८१ ॥
गुरु देथि आशिष पढ़ि शत बेरि। कौतुक ततय देखल जन हेरि ॥ ८२ ॥

तो धनुष तोड़ने के लिए आए ही हैं।" ६९ [फिर उन्होंने राम से कहा—] "हे रमानाथ पुरुषोत्तम-वीरवर, आप राजा जनक की कामना पूरी कीजिए।" ७० गुरु की बात सुनकर राम ने कहा— "अच्छा"। सूर्यवंश की प्रतिष्ठा को क़ायम रखने के लिए ऐसा करना उचित होगा।" ७१ राम ने कसकर कमर बाँधी और वहाँ अपना तीर-धनुष रख दिया। ७२ फिर सहजभाव से मंच के ऊपर खड़े हो गए। जनक के मन में हर्ष की लहर दौड़ गई। ७३ रानियाँ देवताओं को गुहराने लगीं कि धनुष-भंग इन्हीं की ताक़त से होवे। ७४ जिनकी नज़र इन दोनों कुमारों पर पड़ती थीं उनकी आँखें उसी तरह अपलक हो जाती थीं जिस तरह देवता की आँखें। ७५ शिवजी का धनुष सौ घंटियों, विविध रत्नों और वस्त्रों से सुशोभित करके रखा गया था। ७६ मनुष्य का रूप धारण कर देवता लोग जुटे हुए थे और रामचन्द्र की शोभा एकटक देख रहे थे। ७७ इन्द्र की पत्नियाँ गीत गानेवाली नारियों के रूप में इस रमा (लक्ष्मी) और रमेश (नारायण) के विवाह के उत्सव में उपस्थित थीं। ७८ लक्ष्मण ने धनुष-यज्ञ में जुटे जनसमुदाय से आकर रक्षार्थ कहा— ७९ "अब रामजी बायें हाथ से धनुष उठाएँगे और आप लोगों के देखते अद्भुत लीला करेंगे। ८० मेहनत करनेवाले राजा लोग बेकार बैठे हुए हैं। अब वे रामजी का बाहु-बल देखें।" ८१ गुरु विश्वामित्र सौ-सौ बार मन्त्र पढ़-पढ़कर आशीर्वाद देते और दर्शकवृन्द वहाँ तमाशा देखते रहे। ८२ हे धरणी, आप स्थिर रहना। हे पर्वतो, आप भार थामे रहना। अब

॥ अमृतध्वनि ॥

अहँ धरणी धीरा रहब सहब धरणि-धर भार।
दलन हेतु शङ्कर-धनुष उद्यत राम उदार॥ ८३ ॥
दार-सहित जयकार करथि सुर भार अवनि हर।
वर्ष सुमन मन हर्ष बहुत प्रभु कर्ष धनुष कर॥ ८४ ॥
भङ्ग धनुष रव चङ्ग भुवन सब रङ्ग अवनि पुनि।
चाप टुटल परिताप छुटल कह लोक अमृतधुनि॥ ८५ ॥

॥ चौपाइ ॥

प्रभु कर परस धनुष टुटि गेल। शब्द प्रचण्ड भुवन भरि भेल॥ ८६ ॥
फणिपति-फण फट फट कय फाट। कच्छप कछमछ मानस आँट॥ ८७ ॥
कलमलाय उठलाह वराह। कसमस कयल दशन निर्वाह॥ ८८ ॥
दिग्गजचय कयलन्हि चिनकार। सहि नहि शक महि दुर्भर भार॥ ८९ ॥
डगमग अवनी अद्भुत लाग। सात समुद्र रहित मर्य्याद॥ ९० ॥
दिनकर-रथ-हय त्यागल बाट। जय-जय कर मिथिलेश्वर-भाट॥ ९१ ॥
मैथिल मानव उठला भाखि। विधि मर्य्यादा लेलनि राखि॥ ९२ ॥
मनहुँक संशय-चय भेल दूर। कयल मनोरथ ईश्वर पूर॥ ३॥

शिवजी के धनुष को तोड़ने के लिए उदार रामजी तैयार हैं। ८३ अपनी-अपनी पत्नियों-सहित देवता लोग जयध्वनि कर रहे हैं। धरती के भार का हरण हो रहा है। फूल बरस रहे हैं। मन में अपार हर्ष है। प्रभु रामचन्द्र हाथ से धनुष खींच रहे हैं। ८४ धनुष टूटा। सारा भुवन चकित हो उठा। धरती पर आनन्द की लहर फैल गई। धनुष टूटा। चिन्ता दूर हुई। लोग आनन्द की बातें करने लगे। ८५ रामचन्द्र के हाथ का स्पर्श होते ही धनुष टूट गया। प्रचंड शब्द से सारा संसार भर गया। ८६ धक्का लगने से शेषनाग का फन फटफट आवाज़ के साथ फटने लगा। धरती को पीठ पर रखनेवाले कच्छप छटपटाने लगे। उनका मन व्याकुल हो गया। ८७ पृथ्वी को दाँत पर रखनेवाले वराह छटपटा उठे। किसी तरह अपने दाँत को बचा सके। ८८ दिशाओं का पालन करनेवाले ऐरावत आदि दिग्गज चिघाड़ने लगे। धरती अपने ऊपर बेसँभाल भार को सँभालने में असमर्थ हो गई। ८९ धरती का डगमग डोलना अजब लगता था। सातों समुद्र अपने तटों को लाँघ उछलने लगे। ९० सूर्य के रथ के घोड़े आतंकवश रास्ता छोड़ भटकने लगे। मिथिलेश जनक के वन्दी लोग जय-जयकार करने लगे। ९१ मिथिलावासी लोग बोल उठे— "विधाता ने हम लोगों की प्रतिष्ठा बचा ली। ९२ मन की सारी आशंकाएँ दूर हुईं। ईश्वर ने हमारी कामना पूरी की।" ९३ राजा

जनकक लोचन हरषक नोर। राम धनुष तोड़ल भेल सोर॥ ९४॥
अति चिन्ता चिन्तामणि पाय। जनक कनकमणि देथि लुटाय॥ ९५॥
जनकक पण निवहल भल हूब। रङ्क न एक महघ मणि छूब॥ ९६॥
राजा मिलल राम भरि अङ्क। वत्स छोड़ाओल हमर कलङ्क॥ ९७॥
रानी हर्ष कहल नहि जाय। अन्तःपुर धन रहलि लुटाय॥ ९८॥
कयल जानकिक दिव्य शिङ्गार। दक्षिण कर देलनि वर हार॥ ९९॥

॥ गीत—कमल-छन्द॥

कुशल जगदम्बिका करथु घनश्याम काँ।
जनक-पण-पूर्त्तिमे प्रबल-बल-धाम काँ॥ १००॥
कहथि तिरहूतिमे सकल जन राम काँ।
कयल अहाँ विश्वमे अचल निज नाम काँ॥ १०१॥
कमल-वर-लोचना जनक-सुकुमारिका।
कहथि सखि लोक की हृदय-दुख-धारिका॥ १०२॥
कयल विधि सिद्धिओ मनक अभिलाष काँ।
अहँक वर देखि कँ नयन-सुख लाख काँ॥ १०३॥
दिवस-पति-वंश मे एहन सखि आन के।
त्रिपुर-हर-चाप काँ दलन भगवान के॥ १०४॥

जनक की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। शोर हो गया कि राम ने धनुष तोड़ा। ९४ राजा सोना और रत्न लुटाने लगे जिससे सबों को मनमाना धन मिल गया, अतः चिन्तामणि को चिन्ता होने लगी कि जनक के आगे उसकी महिमा जाती रही। ९५ जनक की प्रतिज्ञा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ पूरी हुई। एक रंक भी इतना धनी हो गया कि मूल्यवान रत्न को भी नहीं छूता। ९६ राजा राम से गले भर मिले और बोले— "हे वत्स, आपने मेरा कलंक छुड़ाया। ९७ रानी के हर्ष का क्या कहना। वे रनिवास में धन लुटाने लगीं। ९८ तब उन्होंने जानकी का विवाहोचित शृंगार किया और उनके दाहिने हाथ में वरमाला दी। ९९ भगवती जगदम्बा बादल जैसे साँवले राम को कुशल रखें, जो जनक की प्रतिज्ञा को पूरा करने में समर्थ बलशाली हैं। १०० तिरहुत के सभी लोग राम जी से कहने लगे— "आपने संसार भर में अपने नाम को अचल बनाया।" १०१ श्रेष्ठ कमल-जैसी आँखोंवाली जनक-किशोरी सीता से उनकी सखियों ने कहा— "तुम नाहक हृदय में चिन्ता करती थी। १०२ विधाता ने तुम्हारे मन की अभिलाषा पूरी की। तुम्हारे दूल्हे को देखकर लाखों की आँखें तृप्त हुईं। १०३ हे सखी, सूर्यवंश में ऐसा और कौन है जो शिवजी के धनुष को तोड़े?" १०४ जानकी ने हाथ में सुन्दर वर-माला

॥ लक्ष्मीधर स्त्रग्विणी छन्द ॥

जानकी हाथमे माल लक्ष्मी धरू। श्रीघनश्यामकाँ देखि चिन्ता हरू ॥१०५॥
जे धनुभङ्गकर्त्ता ततं सञ्चरू। ऐ महानन्दसौं स्वान्तकें सम्भरू ॥१०६॥

॥ चौपाइ ॥

स्मितमुख सखि सङ्ग बाढ़ल लाज। बड़ उत्सव बड़ लोक समाज ॥ १०७ ॥
रामक उपर देल से माल। त्रिदश-दुन्दुभी बाज विशाल ॥ १०८ ॥
सकल नगर-जनि जनकक दार। वार वार वर कुमर निहार ॥ १०९ ॥
जनक कहल कौशिक काँ न्याय। दशरथ ओतय निमन्त्रण जाय ॥ ११० ॥
रानी-सुत-युत नृप अओताह। जाति बराति बहुत लओताह ॥ १११ ॥
पत्र सहित तत पहुँचल दूत। जतय अयोध्याधिप पुरहूत ॥ ११२ ॥
दशरथ बुझल राम-कृत चरित। जेहन सुखायल तरु हो हरित ॥ ११३ ॥
मिथिलेशक जे आयल दूत। तनिकाँ देलनि वित्त बहुत ॥ ११४ ॥
हरषि हरषि अपनहिँ कर काज। बजबाओल सभ मन्त्रि समाज ॥ ११५ ॥
बाँचि शुनाओल सभ काँ पत्र। जाएब तत सुत सहित कलत्र ॥ ११६ ॥
जनक समधि निरवधि सुख थीक। एहि सौं कार्य्य होएत की नीक ॥ ११७ ॥
गज तुरङ्ग-वर वर-रथ पत्ति। महती सेना बड़ सम्पत्ति ॥ ११८ ॥

ली। रामचन्द्र को देखते ही उनकी चिन्ता दूर हो गई। १०५ धनुष तोड़ने के लिए जो-जो यहाँ जुटे थे वे भी इस भारी आनन्द में मग्न हो गए। १०६ सखियों के बीच सीता मुस्कुराई। लाज बढ़ गई। बड़ा उत्सव था। बहुत-सारे लोग जुटे थे। १०७ श्रीराम के ऊपर मालाएँ गिरने लगीं और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। १०८ नगर की सारी नारियाँ और जनक की स्त्रियाँ बार-बार दूल्हे को देख रही थीं। १०९ राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा—"अब राजा दशरथ के यहाँ निमन्त्रण जाना चाहिए। ११० रानियों और बेटों के साथ राजा दशरथ आयेंगे और अपने साथ जात-बिरादर के लोगों की भारी बारात सजाकर लायेंगे।" १११ दूत पत्र लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ अयोध्या के राजा दशरथ इन्द्र के समान विराजमान थे। ११२ जब दशरथ ने रामजी के कृत्य सुने तो वे प्रसन्न हो उठे मानों सूखा हुआ पेड़ हरा हो उठा हो। ११३ मिथिलेश जनक के यहाँ से जो दूत आया उसको राजा दशरथ ने बहुत धन दिया। ११४ वे हर्षित हो-होकर खुद सब काम करने लगे। मन्त्रियों की मंडली को बुलवाया। ११५ सबको पत्र पढ़कर सुनाया कि "हम रानियों और राजकुमारों-सहित वहाँ जाएँगे। ११६ जनक समधी होंगे, यह बड़े आनन्द की बात है। इससे बड़ा हित और क्या होगा।" ११७ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल —चारों अंगोंवाली विशाल सेना और भारी सम्पत्ति साथ लेकर, ११८

अग्नि सहित गुरु चलला अग्र। हमरा हर्षहिँ मन भेल व्यग्र ॥ ११९ ॥
मुनि संग चलली रामक माय। हम रथ चढ़ि जाएब अगुआय ॥ १२० ॥
प्राप्त जनकपुर दशरथ भूप। अयला जनक समधि अनुरूप ॥ १२१ ॥
आनल दूरहि सौँ अड़िआति। से व्यवहार विहित छल जाति ॥ १२२ ॥
शतानन्द गौतम-मुनि-बाल। अति सत्कार कयल तत्काल ॥ १२३ ॥
उत्तम भवन देल नृप वास। सुरपति-सदन समान सुभास ॥ १२४ ॥
लक्ष्मण सहित आबि तत राम। पिता-चरणमे कयल प्रणाम ॥ १२५ ॥
उत्कण्ठित छल चित्त बहूत। युगल कमल-मुख देखल पूत ॥ १२६ ॥

॥ सोरठा ॥

गुरुक अनुग्रह तात, कार्य्य सकल सम्पन्न अछि।
अपनें छलछी कात, बालक प्रति-पालक सुमुनि ॥ १२७ ॥
दशरथ हृदय लगाब, लक्ष्मणयुत रघुनाथ काँ।
अनिर्वचन सुख पाब, ब्रह्मानन्दक प्राप्त जनु ॥ १२८ ॥

॥ चौपाइ ॥

बास अयोध्याधिप आगार। राजकुमर वर दशरथ-दार ॥ १ ॥
जनक मुदित मन देल निवास। यथायोग्य काँ स्थल विन्यास ॥ २ ॥

अग्नि-सहित गुरु वसिष्ठ को आगे करके राजा दशरथ चले और बोले— "मेरा मन हर्ष से विभोर हो गया है।" ११९ उनके साथ रामजी की माता कौशल्या चली और बोली— "मैं रथ चढ़कर आगे ही पहुँचूंगी।" १२० राजा दशरथ जनकपुर पहुँचे। उनके अनुरूप समधी राजा जनक उनके पास आए, १२१ और दूर से ही अगवानी करके उन्हें अपने यहाँ ले आए। यही रीति उनकी जात-बिरादरी में प्रचलित थी। १२२ गौतम मुनि के पुत्र शतानन्द ने तुरन्त पूरी तरह सत्कार किया। १२३ अच्छे से अच्छे भवन में राजा दशरथ को आवास दिया गया जो इन्द्रभवन के समान शोभा पा रहा था। १२४ वहाँ लक्ष्मण-सहित राम आए और पिता को प्रणाम किया। १२५ राजा दशरथ का चित्त बड़ा उत्कंठित था। उन्होंने दोनों पुत्रों के कमल-मुख देखे। १२६ उन्होंने कहा — "हे वत्स, गुरु की कृपा से सारा काम पूरा हुआ है। मैं स्वयं तो दूर रहा, किन्तु दोनों कुमारों का प्रतिपालन करनेवाले मुनिवर विश्वामित्र थे।" १२७ दशरथ ने लक्ष्मण और राम को गले से लगाया और ऐसा अनिर्वचनीय आनन्द पाया जैसा ब्रह्म के साक्षात्कार से मिलता है। १२८

सीता का विवाह

अयोध्या के राजा दशरथ के आने पर दोनों राजकुमारों और रानियों को उसी भवन में ठहराया गया जिसमें राजा दशरथ ठहरे थे। राजा जनक

सामग्रीक बूझ के थाह। लक्ष्मी-नारायणक विवाह॥ ३ ॥
विधि समान मुनि विश्वामित्र। विदित भुवन भरि जनिक चरित्र॥ ४ ॥
दशरथ नृपति निकट अयलाह। घटना शतानन्द लयलाह॥ ५ ॥
हे नृप-वर एत नृपति विचार। राजकुमर सभ होथु सदार॥ ६ ॥
जनकात्मजा उर्म्मिला नाम। लक्ष्मण परिणय विधि तहिठाम॥ ७ ॥
जनक-भ्रातृ-कन्या दुइ गोटि। जेठि श्रुतिकीर्त्ति माण्डवी छोटि॥ ८ ॥
भरत तथा शत्रुघ्न जमाय। यथासंख्य होमहि बुझ न्याय॥ ९ ॥
से शुनि कहल अयोध्याधीश। अघटन घटना कर जगदीश॥ १० ॥
जे अनुमति रति नृपति विदेह। हमरो अनुमति निस्सन्देह॥ ११ ॥
कहल पुरोहित नृपकाँ जाय। चारू कन्या वृत्त जमाय॥ १२ ॥
शुभ सिद्धान्त नगर भेल ख्यात। हर्षयँ पड़य न पृथिवी लात॥ १३ ॥
आयल सुदिन सुलग्न सुयोग। हलचल सकल चलल उद्योग॥ १४ ॥
जनि कर परिछनि गबइत गोति। विधि कर विधिकरि तिरहुति रीति॥१५॥

ने प्रसन्न मन से यथोचित जगह की व्यवस्था करके सबों को ठहराया। १-२ जहाँ लक्ष्मी और नारायणस्वरूप सीता और राम का विवाह होनेवाला है वहाँ जुटाए गए सामानों का पार कौन पाएगा ? ३ मुनि विश्वामित्र तो ब्रह्मा की बराबरी करनेवाले हैं [क्योंकि इन्होंने एक अलग सृष्टि की थी]। इनकी कीर्तिगाथा संसार भर में विख्यात है। ४ विवाह की कथा लेकर शतानन्द राजा दशरथ के यहाँ पहुँचे और बोले— ५ "हे महाराज, हमारे राजा जनक की कामना है कि सभी राजकुमार लोग विवाह करें। ६ जनक की पुत्री जो उर्मिला नाम की हैं उनके साथ लक्ष्मण का विवाह कराया जाय। ७ जनक के भाई की दो कन्याएँ हैं— बड़ी श्रुतिकीर्ति और छोटी मांडवी। ८ इन दोनों का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से होना परम अनुरूप होगा।" ९ यह सुनकर अयोध्या के राजा दशरथ बोले— "ईश्वर की कृपा से सब कुछ सम्भव है। १० राजा विदेह की जो राय है निःसन्देह उसमें मेरी भी सहमति है।" ११ तब पुरोहित शतानन्द ने लौटकर राजा जनक से कहा— "चारों कन्याओं के लिए दूल्हे मिल गए।" १२ सारे नगर में यह बात फैल गई कि विवाह का शुभ सिद्धान्त[1] (अन्तिम निर्णय) हो गया। १३ विवाह के लिए निर्धारित शुभ दिन, शुभ लग्न और शुभ योग आ गये। सर्वत्र हलचल मच गयी। उद्योग[2] (इन्तिज़ाम) शुरू हुआ। १४ महिलाएँ विवाह सम्बन्धी गीत गाते हुए 'परिछनि' नामक रस्म करने लगीं। विधिकरी[3] तिरहुत में प्रचलित

1 मैथिलों के विवाह में शादी तय होने के रस्म को 'सिद्धान्त' कहते हैं।
2 'उद्योग' भी मैथिल विवाह का एक रस्म है।
3 विवाह में दुलहिन की मदद करने के लिए तैनात औरत।

बहुत सुवासिनि नगर हकार। जनक कयल भल कुल-व्यवहार ॥ १६ ॥
भेरी दुन्दभि घन निर्घोष। गीत नृत्य नूपुर भरि पोष ॥ १७ ॥
मण्डप अतिशय शोभित देश। मुक्ता-पुष्प-फलान्वित वेश ॥ १८ ॥
रत्नस्तम्भ बहुत बड़ गोट। वर वितान तोरण नहि छोट ॥ १९ ॥
रत्नाञ्चित वर आसन कनक। बैसक देल राम कां जनक ॥ २० ॥
गुरु वसिष्ठ कौशिक सत्कार। शतानन्द कयलनि व्यवहार ॥ २१ ॥
रामक निकटहिँ बैसक देल। बहुत गीत हो हर्षक लेल ॥ २२ ॥
अग्निस्थापन विहित विवाह। मण्डप सीता कां लयलाह ॥ २३ ॥
नाना-रत्न-विभूषित काय। सीता शोभा कहल न जाय ॥ २४ ॥
रानी-सहित जनक महराज। बैसला कन्या-दानक काज ॥ २५ ॥

॥ दोहा ॥

पङ्कज-लोचन-राम-पद, लेलनि जनक धोआय।
विधिवत से जल भक्ति सौं, माथा लेल चढ़ाय ॥ २६ ॥

॥ सोरठा ॥

जे जल गौरीनाथ, मुनिजन-सहित विरञ्चिगण।
मुदित चढ़ाओल माथ, हमरहु प्राप्ति से भाग्यवश ॥ २७ ॥

रीति से विधियाँ (रस्म अदायगी) करने लगी। १५ सारे नगर की लड़कियों को न्यौता पड़ा। जनक ने अपने कुल की रीति से अच्छी तरह सभी व्यवहार किए। १६ ढाकों और डंकों की आवाज़ बादल के गर्जन जैसी होने लगी। राजधानी में जमकर नाच-गान हुए। १७ विवाहमंडप खूब सजाया हुआ था, अच्छे-अच्छे मोती, फूल और फल लगाए गए। १८ मंडप में कई बड़े-बड़े रत्नमय खम्भे थे। अच्छा चँदोवा लटका था। बड़े-बड़े बन्दनवार बने थे। १९ रत्नों से खचा हुआ सोने का एक आसन था। राजा जनक ने उस पर रामचन्द्र को बैठाया। २० शतानन्द ने गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र का यथोचित आदर-सत्कार किया। २१ उन्हें राम के पास ही आसन दिया। हर्षवश गीत पर गीत होते गए। २२ विवाह में विहित रीति से राम ने अग्नि-स्थापन किया और सीता को विवाह-मंडप पर ले आए। २३ सीता के अंग-अंग तरह-तरह के रत्नाभूषणों से अलंकृत थे। दुलहन सीता की शोभा क्या कहना। २४ रानी-सहित राजा जनक कन्यादान करने के लिए मंडप पर बैठे। २५ राजा जनक ने कमलनयन राम के पाँव पखारे और उस जल को भक्तिपूर्वक अपने माथे पर लिया। और उन्होंने कहा— २६ "जो जल गौरीपति शिव और मुनिगण-सहित ब्रह्मा अपने सिर पर प्रसन्नतापूर्वक रखते हैं, सौभाग्य की बात है कि वह जल मुझे भी आज प्राप्त हुआ।" २७

॥ चौपाइ-मणिगण ॥

नरवर-वर-सुत-कर-जलरुह पर। नरवर धरणि-सुजनि-कर-वर धर ॥ २८ ॥
अछत उदक धर श्रुति विधि अनुसर। तनि अरपल भल वर रघुवर कर ॥ २९ ॥

॥ रूपक घनाक्षरी ॥

जनक कहल न रहल अभिलाष मन
ज्ञान ध्यान मध्य देल दिवस गमाय
मन्दिरमे इन्दिरा कहाय बालिका छलीह
आज भगवान विष्णु पाओल जमाय ॥ ३० ॥
दशरथ समधि विदित निरवधि यश
जगतक जननीक जनक कहाय
कहु भगवान की ग्रहण करु मैथिलीक
हम भाग्यवान् तिरहुति राज्य पाय ॥ ३१ ॥

॥ चौपाइ ॥

सीता अरपल रामक हाथ। रमा जलधि जकँ जनक सनाथ ॥ ३२ ॥
लक्ष्मणकाँ निज कन्या देल। नाम उर्मिला हर्षित भेल ॥ ३३ ॥
विख्याता श्रुतिकीर्त्ति कुमारि। देल भरत काँ जनक विचारि ॥ ३४ ॥
माण्डवि प्रथित कयल जमाय। श्रीशत्रुघ्न समय शुभ पाय ॥ ३५ ॥
चारु कुमार दार-सम्पन्न। लोकपाल सन लोक प्रसन्न ॥ ३६ ॥

नर-श्रेष्ठ राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के करकमल पर नरश्रेष्ठ राजा जनक ने धरती से उत्पन्न हुई सीता का हाथ रखा। २८ वेद में बताई गई रीति के अनुसार अक्षत और जल हाथ में लेकर अपनी लड़की सीता श्रेष्ठ दूल्हे रघुवर के हाथ में अर्पित की। २९ जनक ने कहा— "मेरे मन में और कोई अभिलाषा न रही। मैंने अपना सारा समय ज्ञान-ध्यान (दार्शनिक चिन्तन) में बिताया। घर में बालिका सीता लक्ष्मी कहलाती थी और उसके अनुरूप आज विष्णु मुझे जमाई मिल गए। ३० दशरथ-जैसे समधी मिले जिनके सुयश का कहीं अन्त नहीं है। मुझे स्वयं भी जगज्जननी जानकी का पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ। हे भगवान्, मैं कहूँ क्या? मैथिली को ग्रहण कीजिए। मैं तिरहुत का राजा होना अपना सौभाग्य समझता हूँ।" ३१ जैसे समुद्र ने अमृत-मथन के बाद नारायण को लक्ष्मी अर्पित की थी उसी तरह जनक ने सीता को राम के हाथ में अर्पित कर कृतकृत्य हो गए। ३२ फिर उर्मिला नाम की अपनी कन्या हर्षपूर्वक लक्ष्मण को अर्पित की। ३३ श्रुतिकीर्ति नाम की कन्या अनुरूप समझकर भरत को दी। ३४ शुभ अवसर पाकर मांडवी नामक कन्या में शत्रुघ्न को जमाई बनाया। ३५ जब चारों कुमारों का विवाह हो गया, तब वे लोकपाल-से हो गए और लोग हर्षित हुए। ३६

जनक कहल हरषित तहिठाम। सीता लाभ जना एहि धाम॥ ३७॥
शुनु वसिष्ठ मुनि विश्वामित्र। कहइत छी कन्याक चरित्र॥ ३८॥
भूमि-विशुद्धि यज्ञ करवाक। नृपतिहुँ काँ भेल हर धरबाक॥ ३९॥
देखल तत हम जोतइत भूमि। बहराइलि कन्या काँ घूमि॥ ४०॥
चारि बरख वयसक परमान। कन्या एहनि देखल नहि आन॥ ४१॥
के ई थिकथि कोना के जान। हृत भेल ज्ञान हिनक लेल ध्यान॥ ४२॥
आनल घरमे पुत्री भाव। उपमा हिनक आन के पाब॥ ४३॥
एक समय नारद सञ्चार। भ्रमइत अयला हमरा द्वार॥ ४४॥
करइत महती बीणा गान। अनुरत भगवानक गुणगान॥ ४५॥
पूजन कयल जे होमय बूझ। पूछल अपनेकाँ सभ सूझ॥ ४६॥
उतपति कन्या धरणी फोड़ि। के थिकि कहु दिय संशय तोड़ि॥ ४७॥
शुनि मुनि कहलनि शुनु मिथिलेश। गोपनीय कहइत छी वेश॥ ४८॥
नारायण लेल नर अवतार। रावण मारि महिक हर भार॥ ४९॥
चारिरूप मे दशरथ गेह। सम्प्रति छथि से निस्सन्देह॥ ५०॥

इस अवसर पर हर्षित हो जनक ने सुनाया कि इस घर में पुत्री के रूप में सीता कसे प्राप्त हुई। ३७ "हे मुनि वसिष्ठ और विश्वामित्र, सुनिए। मैं अपनी कन्या सीता का वृत्तान्त सुनाता हूँ। ३८ मुझे भूमि विशुद्धि नामक यज्ञ करना था, जिसमें राजा को भी हल चलाना पड़ता है। ३९ उसमें हल चलाते हुए मैंने मुड़कर देखा कि उससे एक कन्या निकली है। ४० उसकी उम्र लगभग चार साल की थी। ऐसी कन्या तो कोई और देखी ही नहीं। ४१ यह लड़की कौन है, कैसे यहाँ आई —यह कौन जाने। मेरा ज्ञान-हरण हो गया। मुझे इसी लड़की में ध्यान लग गया। ४२ बेटी बनाकर इसे घर ले आए। इसकी उपमा और कौन पा सकेगी। ४३ एक समय नारद ऋषि भ्रमणार्थ निकले और घूमते-घूमते मेरे द्वार पर पधारे। ४४ वे महती नामक अपनी वीणा पर गीत गाते और भगवान् के गुण-गान में लीन थे। ४५ मैंने जैसा होना चाहिए उस तरह से उनका सत्कार किया और पूछा— "आपको तो सब कुछ सूझता है। ४६ इस कन्या का जन्म धरती फाड़कर हुआ है। यह कौन है, यह बताकर मेरी शंका दूर कीजिए।" ४७ यह सुनकर मुनि नारद ने कहा— "हे मिथिलेश! सुनिए। ४८ यह मैं आपको परम गोपनीय बात कहता हूँ। रावण नामक राक्षस को मारकर धरती का भार दूर करने के लिए भगवान् नारायण ने मनुष्य का अवतार लिया है। ४९ वे अभी राजा दशरथ के घर में चार स्वरूपों में विराजमान हैं —इसमें सन्देह मत करना। ५० सीता योगमायास्वरूपा हैं और राम विष्णु भगवान् हैं। सीता उन्हीं राम

॥ रूपमाला ॥

योगमाया थिकथि सीता राम विभु भगवान।
देब तनिकहि हिनक पति ओ थिकथि सत्य न आन ॥ ५१ ॥
ई कथा ओ कन्यका गुण कहल नारद मुनि।
ताहि दिन सौं रमा मानल भेल चरित जे पुनि ॥ ५२ ॥

॥ चौपाइ ॥

कोन परि हयता राम जमाय। दिन दिन चिन्ता बाढ़लि जाय ॥ ५३ ॥
चिन्तातुर मन कयल विचार। सभ महिपति आबथि जें द्वार ॥ ५४ ॥
स्मरहर त्रिपुर समर मे मारि। धनुष धयल की चित्त विचारि ॥ ५५ ॥
हमर पितामह घर छल धयल। विद्यमान फल पण जे कयल ॥ ५६ ॥
सभहिक होइत मानक हानि। सकल निबाहल देवि भवानि ॥ ५७ ॥
लयलहुँ पङ्कज-लोचन राम। अपनें मुनिवर हमरा गाम ॥ ५८ ॥
सुफलित हमर मनोरथ गोट। सुयश भुवन भरि भेल न छोट ॥ ५९ ॥

॥ गीत तिरहुति-प्लवङ्गम छन्द ॥

श्रीपति रविकुल-तिलक जानकीनाथ हे।
लोचन शोच न एक चरण धय माथ हे ॥ ६० ॥
कोन सुधन हम देब रमापति रामकाँ।
की करु हम गुणगान सदानन्द धाम काँ ॥ ६१ ॥

को दीजिएगा। वही सीता के पति हैं, कोई और नहीं।" ५१ नारद ने यह कहानी कही और कन्या के गुण बखाने। उसी दिन से इनको मैंने साक्षात् लक्ष्मी समझा। उसके बाद जो कुछ हुआ सो सुनिए। ५२ अब दिन-दिन मेरे मन में यह चिन्ता बढ़ती गई कि किस तरह राम को जमाई बनाया जाय। ५३ चिन्तातुर मन में सोचा कि ऐसा काम किया जाय जिससे सभी राजा दरवाज़े पर आयें। ५४ शिवजी ने लड़ाई में त्रिपुरासुर को मारकर अपने धनुष को न जाने चित्त में क्या विचार करके यहाँ रख दिया। ५५ यह धनुष मेरे पितामह के घर में रखा पड़ा था। उसके बारे में जो मैंने प्रतिज्ञा की उसका फल आज प्रत्यक्ष है। ५६ सबकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती, किन्तु भगवती गिरिजा ने सब निभा दिया। ५७ हे मुनिवर, आप कमलनयन रामचन्द्र को मेरे घर लेते आये। ५८ मेरी कामना भलीभाँति पूरी हुई और तीनों भुवन में मेरा सुयश छा गया। ५९ हे लक्ष्मीपति ! सूर्य-कुलभूषण जानकीनाथ राम, जब आपके चरणों में माथा टेक दिया तो अब मुझे कोई चिन्ता दिखाई नहीं देती। ६० जो लक्ष्मी के स्वामी हैं उनको मैं कौन-सा धन दूँ ? जो निरवच्छिन्न आनन्द के खज़ाना हैं उनकी स्तुति मैं क्या करूँ ? ६१ आपसे बढ़कर इस संसार में कोई और कहाँ है ? आप ज्ञानी

के अपने सौं आन अधिक संसार मे।
भानु इन्दु वर नयन ज्ञानि अवतार मे॥ ६२॥
श्रीनारायण देव देखि छवि लेब हे।
विश्वम्भर विभु एक देव, वर देब हे॥ ६३॥

॥ सोरठा ॥

जौतुक देबक थीक, पुत्रिक उचित द्विरागमन।
सम्मति सभ मुनिहीक, विष्णु जमाय सुता रमा॥ ६४॥

॥ दोहा ॥

शत सहस्त्र देल अश्वरथ, अश्व नियुत पुन देल।
दश सहस्त्र गज राम काँ, देलनि हर्षक लेल॥ ६५॥
दासी देलनि तीनि शय, एक लक्ष देल पत्ति।
विव्याम्बर वरहार पुन, लक्ष्मी काँ सम्पत्ति॥ ६६॥

॥ चौपाइ ॥

मणिचय परखि परखि नृप लेथि। शय शय प्रति गहना पुनि देथि॥ ६७॥
वसिष्ठादि मुनि जन सत्कार। जनक कयल उत्तम व्यवहार॥ ६८॥
लक्ष्मण भरत कुमर जे सर्व्व। तनिकहु धन देल खर्व्व निखर्व्व॥ ६९॥
सकल कन्यका कयल बिदाय। जनकक नयन नोर बढ़ि आय॥ ७०॥

॥ माधवीय वराड़ी छन्द ॥

तुअ विनु आज भवन भेल रे, धन विपिन समान।
जनु ऋधि सिधिक गरुअ गेल रे, मन होइछ भान॥ ७१॥

अवतार हैं। सूर्य और चन्द्र दोनों आपकी दो आँखें हैं। ६२ हे देव, आपकी लक्ष्मीनारायण-छवि मैं एक बार देख लूँ, हे विश्वम्भर प्रभु, एक मात्र यही वरदान मुझको दिया जाय। ६३ दहेज देना है। बेटी को बिदा करना है। सभी मुनि बताते हैं कि लड़की लक्ष्मी होती है और जमाई विष्णु होते हैं।" ६४ राजा जनक ने हर्षित होकर रामचन्द्र को दहेज में एक लाख घोड़ों वाले रथ, दस लाख घोड़े और दस हजार हाथी दिए। ६५ तीन सौ दासियाँ दीं। एक लाख पैदल सैनिक दिये। अपूर्व-अपूर्व वस्त्र तथा कीमती हार लक्ष्मीरूपा पुत्री की सम्पत्ति के रूप में दिए। ६६ राजा परख-परखकर जवाहरात लेते थे और सौ-सौ प्रति गहनों के साथ देते थे। ६७ जनक ने वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों का उत्तम रीति से सत्कार किया। ६८ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन सबों को भी खरब के खरब धन दिये। ६९ सभी लड़कियों की विदाई की गई। जनक की आँखों में आँसू की बाढ़ आ गई। ७० जनक ने कहा— तुम्हारे बिना आज मेरा घर घोर अरण्य के समान हो गया है। मन में ऐसा लगता है जैसे मेरी ऋद्धि और सिद्धि चली गईं। ७१ हे परमेश्वरी, तुम्हारी महिमा

परमेश्वरि महिमा तुअ रे, शिव बिधि नहि जान।
मोर अपराध छमब सब रे, नहि याचव आन ॥ ७२ ॥
जगत जननि काँ जग कह रे, जम जानकि नाम।
नेहर नेह नियत नित रे, रह मिथिला धाम ॥ ७३ ॥
शुभमयि शुभ शुभ सभ दिन रे, थिर पति अनुराग।
तुअ सेबि पुरल मनोरथ रे, हम सुखित सभाग ॥ ७४ ॥

॥ चौपाइ ॥

सजल-नयन जानकि मिलु माय। लोचन जल बह रहल न जाय ॥ ७५ ॥
देखब कोन परि पुत्रि जमाय। कहुखन नोर न आँखि शुखाय ॥ ७६ ॥
समदाउनि गायिनि-गण गाब। ककरा नयन नोर नहि आब ॥ ७७ ॥
जानकि कें रानी कह चूप। कहि परबोध सुवचन अनूप ॥ ७८ ॥
शाशु श्वशुर पद सेवन करब। पतिव्रत मे तन मन अहँ धरब ॥ ७९ ॥
वरष दूइ छल अहँ सहवास। अहँ विनु जानकि भवन उदास ॥ ८० ॥
चलल सवारी डंका बाज। सहित बराति चलल महराज ॥ ८१ ॥
उचिति विनति कति सहित सनेह। दशरथ समधि समान विदेह ॥ ८२ ॥

शिव और ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं। मुझसे जो अपराध हुए उन्हें क्षमा कर देना —इसके सिवा मैं और कोई याचना नहीं करूँगा। ७२ जो संसार की जननी है लोग उसको जनक की बेटी जानकी कहते हैं। इसलिए अपने नैहर मिथिलापुरी में तुम्हारा स्नेह अवश्य ही सदा रहेगा। ७३ हे शुभमयी, हर रोज़ तुम्हारा शुभमय हो और पति के प्रति प्रेम स्थिर रहे। तुम्हारी सेवा करके मेरा मनोरथ पुरा हुआ। आज मैं सुखी हूँ और भाग्यवान् हूँ। ७४ आँसू ढालती हुई माता अपनी बेटी सीता से मिली। आँखों से धाराप्रवाह आँसू बह रहे थे। उसे वे रोक न पाती थीं। ७५ वे कहती हैं—"आँखों में आँसू कभी सूखते नहीं, बेटी और जमाई को किस तरह देख पाऊँगी ?" ७६ नेवाली महिलाएँ समदाउनि[1] गाती हैं। किसकी आँख में आँसू नहीं आते। ७७ रोती हुई सीता को रानी अमूल्य प्रबोधन-वचन कह-कहकर ढाढ़स दिलाती है— 'सास-ससुर की सेवा करना। सदा तन और मन से पातिव्रत्य का पालन करना। ७८-७९ केवल दो साल तुम्हारा साथ रहा। अब हे जानकी, तुम्हारे बिना यह घर उदास हो गया।" ८० डंका बोल उठा। सवारी चली। बारात के साथ महाराज दशरथ विदा हुए। ८१ दशरथ और जनक दोनों समान समधियों के बीच प्रेम-पूर्वक परस्पर अनुनय-विनय की

[1] 'समदाउनि' मैथिली में विदा-गीत को कहते हैं जो लड़की की विदाई के समय गाया जाता और बड़ा हृदयद्रावक होता है।

॥ सोरठा ॥

नाना बाजन बाज, नभ सुरराज-समाज मे।
जय जय जय महराज, वन्दी मागध लोक कह॥ ८३॥

॥ चौपाइ ॥

मिथिलापुर सौँ योजन तीन। पहुँचलाह उत्साह नवीन॥ १॥
कयल वसिष्ठक नृपति प्रमाण। घोर निमित्त देखि तहि ठाम॥ २॥
असकुन गुनि मन चिन्ता आब। कहु गुरु शान्ति अनिष्ट प्रभाव॥ ३॥
अछि किछु भयक योग तत्काल। अचिरहि हो सुख हे महिपाल॥ ४॥
हरिण अनेक प्रदक्षिण जाय। एहि सौँ संकट विकट मेटाय॥ ५॥
एहि विचार मे उठल बसात। सहित मूल तरु रहल न पात॥ ६॥
धूरा उड़ ककरहु नहि सूझ। उत्पातक गति के जन बूझ॥ ७॥
देखल किछु दुरि आगाँ जाय। कोटि सूर्य सम भासित काय॥ ८॥
नील जलद सन जटा विशाल। दशरद आगु ठाढ़ की काल॥ ९॥
दशरथ मन कह हे भगवान। धर्म्महि धाधर शुनल न कान॥ १०॥
तनिकर पूजा बहुविधि कयल। चिन्हल दण्डवत पद-युग धयल॥ ११॥

बात हुई। ८२ आकाश में जुटे देवों की मंडली में तरह-तरह के बाजे बजने लगे। वन्दी और मागध लोग महाराजा के जय-जयकार करने लगे। ८३

परशुराम का क्रुद्ध होना और झुकना

राजा दशरथ नयी उमंग के साथ मिथिलापुरी से तीन योजन आगे बढ़े कि वहीं कुछ बुरा शकुन दिखाई पड़ा। उन्होंने गुरु वसिष्ठ को प्रणाम किया और बोले— १-२ "अपशकुन देखने से मन में चिन्ता हो गई है। इस अनिष्ट फल की शान्ति के उपाय बताइए।" गुरु वसिष्ठ ने कहा— ३ "हे राजा, तत्काल कुछ भय का योग है, किन्तु उसका समाधान शीघ्र ही हो जाएगा। ४ देखिए, अनेक हरिण आपके बाएँ से दाहिने चक्कर लगाकर गये हैं। इस शुभ शकुन से बड़े-बड़े संकट कट जाते हैं।" ५ ऐसा विचार चल ही रहा था कि भारी आँधी उठी। जड़-सहित पेड़ गिरे और पत्ते भी न बचे। ६ इतनी धूल उड़ी कि कोई किसी को देख न पाता। कौन जाने, इस उत्पात का क्या परिणाम होगा। ७ राजा ने कुछ दूर आगे बढ़कर देखा— एक करोड़ सूरज के बराबर तेजोमय शरीर, नीले बादल-सी काली-काली लम्बी जटाएँ, मानों दशरथ के आगे स्वयं काल खड़ा हो। ८-९ दशरथ ने मन ही मन कहा— हे ईश्वर, धर्म करने से ही अनिष्ट होता है ऐसी बात तो कभी न सुनी थी। १० उन तेजस्वी पुरुष का भाँति-भाँति सत्कार किया। उन्हें पहचाना और पाँव छूकर प्रणाम किया। ११ फिर त्राहि-त्राहि करते हुए

त्राहि त्राहि कहि जोड़ल हाथ। अभय प्रदान करिअ भृगुनाथ॥ १२॥
राम हमर छथि प्रणाधार। मन नहि थिर कर देखि कुठार॥ १३॥
धर्म्मक कथा कोप कत मान। नृप कह आन कहथि मुनि आन॥ १४॥

॥ घनाक्षरी ॥

अस्त्र चोख कोख अछि मन महारोख अछि बल भरि पोख अछि रीति अनुसरबे।
नाम भृगुराम अछि समर न साम अछि गति सभ ठाम अछि अरि चोर धरबे॥१५॥
एहन के वीर अछि धनुष सतीर अछि कुलिश शरीर अछि हरि अरि गरबे।
विदित संसार अछि क्षत्रिय संहार अछि करमे कुठार अछि चोर मारि करबे॥१६॥

॥ चौपाइ ॥

सहजहु भृगुपति गरजथि घोर। प्रलयकाल घन कृत जनु सोर॥ १७॥
कहु कहु कौशिक की थिक काज। नृपजन जनक महीप समाज॥ १८॥
कहलनि कौशिक नृप मिथिलेश। धनुषयज्ञ ठानल छल बेश॥ १९॥
सिद्धि काज टूटल शिव-चाप। रामचन्द्र तत कयल प्रताप॥ २०॥
भृगुपति कहलनि बाहु उठाय। क्षत्रियजन शुभ मन श्रुति लाय॥ २१॥
अपराधिहि काँ करह फराक। नहि तौँ सब जन शिर पर डाक॥ २२॥

हाथ जोड़कर बोले— "हे भृगुनाथ परशुराम, मुझे अभयदान दीजिए। १२ राम मेरे प्राणों के आधार हैं। आपके हाथ में कुठार देखकर मेरा कलेजा काँप रहा है।" १३ जहाँ क्रोध जगा हो वहाँ धर्म की बात कहाँ तक सुनी जाएगी। राजा कुछ और ही कहते हैं और मुनि परशुराम कुछ और ही बोलते जा रहे हैं। १४ "देखो, मियान में तेज अस्त्र हैं। मन में तेज रोष है। शरीर में भरपूर शक्ति है। मैं तो अपनी रीति पर ही चलूँगा। मेरा नाम परशुराम है। लड़ाई में मैं साम (शान्ति-समझौता) नहीं जानता। मुझे कहीं कोई रोक नहीं सकता है। शत्रु रूपी चोर को मैं पकड़ूँगा ही। १५ मुझ-जैसा वीर कौन है? धनुष और बाण मौजूद हैं। मेरा शरीर वज्र-सा कठोर है। मैं शत्रु के घमंड को पस्त करता हूँ। संसार भर में मशहूर है कि मैं क्षत्रियों का संहार करनेवाला हूँ। मेरे हाथ में कुठार है। चोर को मारकर ही रहूँगा।" १६ सामान्य स्थिति में भी भार्गव परशुराम घोर गर्जन करते हैं। इस समय तो प्रलयकाल के मेघ के समान शोर मचा दिया। उन्होंने विश्वामित्र से पूछा— १७ "बताइए, बताइए तो विश्वामित्र जी, क्या बात है? राजा जनक के दरबार में राजा लोग क्यों जुटे थे?" १८ विश्वामित्र ने उत्तर दिया— "मिथिला के राजा जनक ने धूमधाम से धनुष-यज्ञ किया था। १९ उनका काम बना। शिवजी का धनुष टूटा। वहाँ रामचन्द्र ने अपना प्रताप दिखाया।" २० यह सुन परशुराम बाँहें उठाकर बोले— "हे क्षत्रियो, अपने हित की बात सोचिए और सुनिए। २१ जो धनुष तोड़ने का

क्षत्रिय-क्षय कय एकइश बार। कर मे जाग्रत कठिन कुठार।। २३ ।।
कातर नृप न उठाओल घाड़। अजक गोलजक निकट हुड़ाड़।। २४ ।।
जनकक चित चिन्ता नहि आव। धनुष भङ्ग कर विदित प्रभाव।। २५ ।।
मिथिलाधिप की चुक व्यवहार। भृगुनन्दनक कयल सत्कार।। २६ ।।
रामचन्द्र लक्ष्मण दुहु भाय। जनक अपन लेल सङ्ग लगाय।। २७ ।।
कयलनि सभ जन तनिक प्रणाम। जनक चिन्हाय कहल भल नाम।। २८ ।।
आशिष देल देखल छवि नयन। सुजन लोक मन हरषित चयन।। २९ ।।
शतानन्द अभिमान न थोड़। भृगुनन्दन कें लगला गोड़।। ३० ।।
से पुछलनि मखविधि आरम्भ। कहल पुरोहित चित अतिदम्भ।। ३१ ।।
चारि वर्ष वयसक एक गोटि। कोटि रती उपमा हो छोटि।। ३२ ।।
कन्या-रत्न एहन के आन। लक्ष्मी थिकथि सिद्धि अनुमान।। ३३ ।।
हरक अग्रसौं उखड़लि जानि। सीता नाम अर्थ सौं मानि।। ३४ ।।
विज्ञानी मिथिला-महिपाल। कन्या बुद्धि कयल तत्काल।। ३५ ।।
नारद मुनि तनि कहलनि आबि। कन्याकाँ बड़ गुण जे भावि।। ३६ ।।
नारायण हिनकर वर सेह। भूमिक भार-निकर हर जेह।। ३७ ।।

अपराधी है उसे अलग कर दीजिए, नहीं तो सबों के सिर पर खतरा है। २२ मैंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया है। मेरे हाथ में यह कठोर कुठार जीता-जागता है।" २३ कायर राजाओं में किसी ने सिर नहीं उठाया, जैसे भेड़िया के सामने बकरियों का दल हो। २४ किन्तु राजा जनक के मन में चिन्ता नहीं हुई, क्योंकि धनुष तोड़ने से राम का पराक्रम उन्हें मालूम हो गया था। २५ मिथिला के राजा क्या अपने व्यवहार में चूक कर सकते हैं? उन्होंने परशुराम का अच्छा सत्कार किया। २६ जनक ने राम और लक्ष्मण को अपने साथ कर लिया। २७ सबों ने परशुराम को प्रणाम किया। जनक ने परिचय देकर उनका-नाम बताया। २८ परशुराम ने आशीर्वाद दिया; अपनी आँखों से उनका सौन्दर्य देखा। भले लोगों के मन शान्त और प्रसन्न हो गए। २९ स्वाभिमानी शतानन्द ने परशुराम को प्रणाम किया। ३० परशुराम ने यज्ञ का वृत्तान्त पूछा। राजा के पुरोहित शतानन्द दम्भ भरे हृदय से कहने लगे—। ३१ "चार साल उम्र की एक लड़की राजा जनक को मिली, जिसकी बराबरी एक करोड़ रतियाँ भी नहीं कर सकतीं। ३२ ऐसी कन्या तो कहीं देखी ही नहीं गई। लगता था जैसे साक्षात् लक्ष्मी हो। ३३ यह हल चलाते समय हल के अग्रभाग से निकली थी, अत: इसका सार्थक नाम 'सीता' रखा गया। ३४ मिथिला के विद्वान् राजा जनक ने इसे तुरंत अपनी बेटी मान लिया। ३५ नारद मुनि आए और उन्होंने राजा से कहा कि कन्या भविष्य में बड़ी गुणवती होगी। ३६ इस कन्या के पति स्वयं नारायण होंगे जो धरती के भार का हरण करनेवाले हैं। ३७ राजा जनक ने अपने मन में अनुमान

तनि बिनु धनुष दलन के आन। कयल जनक मन ई अनुमान ॥ ३८ ॥
शिव धनु टुटत परीक्षा लेब। ई कन्या हम हुनकहि देब ॥ ३९ ॥
जनक नृपति काँ होमहि बूझ। ब्रह्मज्ञाता काँ सभ सूझ ॥ ४० ॥
रघु-कुल-कमल-बिकासक सूर। कयलनि राम मनोरथ पूर ॥ ४१ ॥

॥ बरबा ॥

परशुराम से शुनितहिँ, हँसि उठलाह।
ब्राह्मण मर्क्कट काँ के, अछि चरबाह ॥ ४२ ॥

॥ चौपाइ ॥

कर्म्म पुरोहित अति स्वच्छन्द। पर घर नाचथि मूसर चन्द ॥ ४३ ॥
शान्त जनक भूपक नहि त्रास। सभहिक गुरू गोवर्द्धनदास ॥ ४४ ॥
जनकक सभा तोहर बड़ गाल। उपलक्षण ढोढ़ी धरि माल ॥ ४५ ॥
शतानन्द तोँ छेँ बड़ मूच। ना बड़ ऊच कान दुहु बूच ॥ ४६ ॥
शतानन्द कहलनि खिसिआय। उचिते कहलेँ संग बिधुआय ॥ ४७ ॥
काटल कियक रेणुका-माथ। ई वकवाद वृथा भृगुनाथ ॥ ४८ ॥
ब्राह्मण काँ धिक क्षात्र प्रताप। तत्त्व विचार करी तौँ पाप ॥ ४९ ॥
आनक दोष अणुक परमान। देखथि अपन न विल्व समान ॥ ५० ॥

किया कि उनको छोड़ शिवजी के धनुष को और कोई तोड़ नहीं सकेगा। ३८ शिवजी का धनुष टूटेगा, इसी से जाँच हो जाएगी। जो धनुष तोड़ेंगे उन्हीं को कन्या दूँगा। ३९ राजा जनक के लिए यह उचित ही है। ब्रह्म को जाननेवाले सभी बात जानते हैं। ४० रघुवंश रूपी कमल को विकसित करने में सूरज के समान राम ने राजा जनक की कामना पूरी की।" ४१ इतनी बात सुनते ही परशुराम हंस पड़े— "बाभन और बन्दर को कौन चरा सकता है। ४२ पुरोहित का काम बेरोक-टोक चलता है। वे दूसरे के घर में नाचते फिरते हैं, जैसे ओखल में मूसल। ४३ राजा जनक शान्तिपूर्वक बैठे हुए हैं। उनको कोई डर नहीं है। सबके गुरु गोवर्धनदास हैं अर्थात् गुमराह करनेवाला कोई और ही व्यक्ति है (यहाँ शतानन्द अभिप्रेत हैं)। ४४ जनक की सभा में तुम बहुत गाल बजाते हो— बढ़-चढ़कर बोलते हो। कहावत है कि माला नाभि तक लटकी रहती है। ४५ अरे शतानन्द, तुम बड़े मूर्ख हो। तुम्हारा नाम तो ऊंचा है पर दोनों कान बूच (सिकुड़े हुए) हैं, जो बेवकूफ़ का लक्षण है।" ४६ शतानन्द यह सुनकर क्रोधित हो बोले— "उचित बात कहने से दोस्ती बिगड़ती है। ४७ आपने अपनी माता रेणुका का सर क्यों काटा? हे परशुराम, इस तरह विवाद उठाना अच्छा नहीं है। ४८ उस ब्राह्मण को धिक्कार है जो क्षत्रिय का प्रताप दिखावे। यदि तत्त्वतः विचार किया जाए तो ब्राह्मण के लिए क्षत्रिय का कर्म पाप है। ४९ दूसरे की तिल भर

परशुराम लोचन भेल लाल। जेहन रौद्र रस प्रकट विशाल ॥ ५१ ॥
जनक कयल सभ कार्य्य अनर्थ। भावी तनिक मनोरथ व्यर्थ ॥ ५२ ॥
हम क्षत्रिय-अरि से नहि चेत। दशरथ मरता अपटी खेत ॥ ५३ ॥
अति सुन्दर छल युगल-कुमार। कि करब कयलक बड़ अपकार ॥ ५४ ॥
हँसि हँसि लक्ष्मण कयल प्रणाम। कहलनि शुनितहिँ छल छो नाम ॥ ५५ ॥
लक्ष्मण मन रण अति उत्साह। देखि भृगुपति भेल जेहन बताह ॥ ५६ ॥
हास्य सदा थिक कलहक मूल। भृगुपति कथा कहल प्रतिकूल ॥ ५७ ॥
देखलैँ छँ की बाबू आँखि। मरय बेरि चिउटिहु काँ पाँखि ॥ ५८ ॥
कहलनि लक्ष्मण शुनि मुनि लेब। तखन दण्ड ककरहु अहँ देब ॥ ५९ ॥
अपनैँ भृगुपति कोप अगाध। एतगोट रोष कोन अपराध ॥ ६० ॥
भृगुपति कहलनि शुन रे बाल। एखनहि सौँ तोँ बड़ बाचाल ॥ ६१ ॥
हमरा चापाचार्य्य महेश। तनिक प्रताप विजय सभ देश ॥ ६२ ॥
तनिकर धनुष मनुष देत तोड़ि। जिबइत तनिकाँ देब कि छोड़ि ॥ ६३ ॥
लक्ष्मण कहलनि की अजगूत। क्षत्रिय क्षय कत अपनैँ बूत ॥ ६४ ॥
शिव-धनु टुटल देत के जोड़ि। की होअ आब कपारे फोड़ि ॥ ६५ ॥

के बराबर बुराई दिखाई देती है, पर अपनी बेल के बराबर बुराई भी नहीं दिखाई देती।" ५० परशुराम की आँखें लाल हो गईं। मानों रौद्र-रस विशाल मूर्ति के रूप में प्रकट हो गया हो। ५१ और वे बोले—"सारा अनर्थ जनक ने किया है। उनका भावी मनोरथ का सपना बेकार जाएगा। ५२ उनको यह भी होश नहीं है कि मैं क्षत्रियों का दुश्मन हूँ। बेचारे दशरथ नाहक बेमौके मारा जाएगा। ५३ वे दोनों कुमार तो बड़े ही सुन्दर थे, लेकिन करूँ क्या, भारी अपराध कर डाला है।" ५४ लक्ष्मण ने मुस्कुराकर प्रणाम किया और कहा—"आपका नाम तो सुना है।" ५५ लक्ष्मण के मन में लड़ाई ठानने का उत्साह है, यह देखकर परशुराम मानों पागल हो उठे। ५६ परशुराम ने प्रतिकुल मुद्रा में कहा, "हँसी हमेशा झगड़े की जड़ होती है। ५७ बच्चू, क्या तुम्हें मालूम है कि चींटी को मरने के वक़्त पंख उग आते हैं ?" ५८ लक्ष्मण ने कहा— "हे मुनि महाराज, पहले मामला क्या है यह तो सुन लिया जाए। तब किसी को सजा दीजिएगा। ५९ आप भार्गवकुलभूषण हैं। आपके कोप का क्या कहना है। किन्तु भला कौन-सा अपराध इतने बड़े क्रोध का कारण हुआ ?" ६० परशुराम ने कहा— "अरे बालक, सुन। तू अभी से इतना वाचाल निकला। ६१ मुझे स्वयं शिवजी ने धनुर्विद्या की शिक्षा दी है। उन्हीं के प्रताप से मैं हर जगह विजय पाता रहा हूँ। ६२ उन शिवजी के धनुष को मनुष्य तोड़ देगा और मैं उसे जिन्दा ही छोड़ दूँगा ?" ६३ लक्ष्मण ने कहा— इसमें अचरज क्या ?" आप तो कई बार क्षत्रियों का संहार कर चुके हैं। ६४ शिवजी का धनुष टूट गया तो उसे

अपनैं अबितहु एतय सबेरि। धनुष न छुबितथि एको बेरि ॥ ६६ ॥
सड़ल पड़ल छल चाप पुरान। से धनु तोड़ल की क्षति मान ॥ ६७ ॥
धनुष-भङ्ग-धुनि कतय न गेल। शिव शिव शिवमन रोष न भेल ॥ ६८ ॥
एक अपराध कहब कर जोड़ि। सीता लाभ धनुष कें तोड़ि ॥ ६९ ॥

॥ कुण्डलिया ॥

बालक ई कालक सदन, जयता हमरहि हाथ।
अग्निकण्ठ पकठोस बड़, काटब हिनकर माथ ॥ ७० ॥
काटब हिनकर माथ, परशु सौं देरि न करबे।
बालक बध अन्याय, अयश माथा बरु धरबे ॥ ७१ ॥
आबथु हमर समीप, हिनक जे छथि प्रतिपालक।
त्याग करथु मन शोच भाग्य एतबहि दिन बालक ॥ ७२ ॥

॥ दोहा ॥

कयल उपद्रव सभ जनक, देखता मलैं जमाय।
टैंगरा पोठी चाल दै, रोहुक शीर बिसाय ॥ ७३ ॥
लक्ष्मण कहल सरोष शुनि, भृगुपति मति अति छोटि
पर्व्वत मध्ये ठेकलैं, भाँगिय घरक शिलौटि ॥ ७४ ॥

अब कौन जोड़ देगा ? अब सर पटककर क्या होगा ? ६५ आप यदि वक़्त पर आते तो एक बार भी कोई धनुष न छूता। ६६ पुराना धनुष सड़ा-गला पड़ा था। उस धनुष को तोड़ा तो आपकी क्या हानि हुई ? ६७ धनुष-भंग की आवाज़ कहाँ-कहाँ न पहुँची; पर हाय हाय, शिवजी के मन में तो क्रोध न हुआ। ६८ हाथ जोड़कर एक अपराध स्वीकार किया जा सकता है— धनुष-भंग के फलस्वरूप सीता को प्राप्त करना।" ६९ परशुराम ने कहा— "यह बालक मेरे हाथ से ही काल के घर जाएगा। यह आग उगलनेवाला भारी ढीठ है। इसका सिर मैं काट लूँगा। ७० मैं इसका सिर इस कुठार से काट लूँगा और इसमें देर नहीं करूँगा। यद्यपि बाल-वध अनुचित है, तथापि मैं इस बदनामी को सिर पर ले लूँगा। ७१ इस बालक के जो संरक्षक हैं वे मेरे पास आएँ। मन से शोक को त्याग दें और समझें कि पुत्र-सौभाग्य इतना ही दिन लिखा था। ७२ सब फ़िसाद करनेवाला जनक है, पर उसका फल उसके जमाई को भोगना होगा। पोखरे में चहल-पहल करती हैं छोटी-छोटी मछलियाँ, (मछुआ उससे समझ लेता है कि पोखरे में बहुत मछलियाँ हैं) पर प्राण गंवाते रोहू।" ७३ यह सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो बोले— "परशुराम की बुद्धि बड़ी थोड़ी है। सर फूटे पर्वत से और फोड़ें घर की सिलवट को ! ७४ मुझे

॥ घनाक्षरी ॥

कालक न त्रास अछि अयोध्या निवास अछि,
अरिगण दास अछि शूर-गुण-धाम छी।
धनुष समक्ष अछि शर कर दक्ष अछि,
निज लोक पक्ष अछि लक्ष्मण नाम छी॥ ७५॥
रामचन्द्र भक्ति अछि बाहु पूर्ण शक्ति अछि।
विप्र अनुरक्ति अछि स्वस्थ अष्टयाम छी॥
वीर वर वेष अछि मन बड़ तेष अछि।
कौशल विशेष अछि अपनैं को वाम छी॥ ७६॥

॥ सोरठा ॥

हम नहि वचनहिँ शूर, शुनि महि-सुर-वर समरमे।
करिअ मनोरथ पूर, कर कुठार वृतकण्ठ इह॥ ७७॥

॥ चौपाइ ॥

रामचन्द्र हँसि लेल हटाय। लक्ष्मण जनु कर गुरु अन्याय॥ ७८॥
धरा धरणिधर भार सहिष्णु। फन एक देश शयन कर विष्णु॥ ७९॥
कुल-मर्यादा राखू वीर। द्विज पर धयल धनुष की तीर॥ ८०॥
राम कहल सभ हमरे दोष। बालक उपर करक नहि रोष॥ ८१॥

काल का भी डर नहीं है। मैं अयोध्या का निवासी हूँ। मेरे सभी दुश्मन गुलाम बना लिये गये हैं। मैं शूर हूँ। मैं गुणवान् हूँ। सामने धनुष है और सधे हुए हाथ में तीर है। अपने सभी लोग पक्ष में हैं। मेरा नाम लक्ष्मण है। ७५ मुझे रामचन्द्र के प्रति भक्ति है, बाहु में पूरी शक्ति है। विप्रों में अनुराग है। सदा स्वस्थ रहता हूँ। श्रेष्ठ वीर का बाना है। मन में भारी जोश है। लड़ाई करने का विशेष कौशल है। आप व्यर्थ मेरा दुश्मन बनते हैं। ७६ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, मैं केवल कथनी में ही वीर नहीं हूँ। मुझसे लड़कर समर में अपना मनोरथ पूरा कीजिए। आपके हाथ में कुल्हाड़ी मौजूद है और इधर मेरा गला तैयार है, जो करना हो सो कीजिए।" ७७ रामचन्द्र ने हँसकर लक्ष्मण को हटा लिया और बोले— "हे लक्ष्मण, इतना भारी अनर्थ मत करो। ७८ शेषनाग की जो फणा सारी पृथ्वी और सभी पर्वतों का भार सहती है उसी के एक भाग में भगवान् विष्णु सोते हैं (अर्थात् इतनी बड़ी शक्ति के रहते शेषनाग स्थिर-शान्त रहते हैं; उसी तरह आपको भी शान्त रहना चाहिए)। ७९ हे वीर लक्ष्मण, अपने वंश की मर्यादा का पालन करो। ब्राह्मण पर तीर-धनुष मत चलाओ।" ८० फिर रामचन्द्र ने परशुराम से कहा— "सब दोष मेरा है। बालक के ऊपर क्रोध न किया जाए। ८१ क्रोध करने

की कर्त्तव्य कोप की काज। कहल जाय सभ सुनथि समाज ॥ ८२ ॥
अयलहुँ एतय अन्य परसंग। हमरहि बुतें धनुष भेल भङ्ग ॥ ८३ ॥
परशुराम मन नहि भेल साम। कुपित कहल शुन अभिनव राम ॥ ८४ ॥
क्षत्रिय अधम कहाबह नाम। हम एक राम आन के राम ॥ ८५ ॥
तोड़लह शङ्कर धनुष पुरान। मनमे बाढ़ल बड़ अभिमान ॥ ८६ ॥
हमरहि कर बड़ वैष्णव चाप। लेह चढ़ाबह करह प्रताप ॥ ८७ ॥
भ्रमइत छह रघुवंशि कहाय। द्वन्द्व युद्ध कय देह हटाय ॥ ८८ ॥
नहि तौं हमरा हाथहिँ सर्ब्ब। मारल जएबह रह नहि गर्ब्ब ॥ ८९ ॥
पृथिवी डोललि तम परि पूर। मन मन हर्षित लक्ष्मण शूर ॥ ९० ॥
रघुवर भृगुवर कर लय चाप। अक्रिय भृगुपति थर थर काँप ॥ ९१ ॥
धनुष चढ़ाओल करमे आनि। रघुवर कहलनि शर सन्धानि ॥ ९२ ॥
लक्ष्य देखाउ अहाँ भृगुराम। की निज पद-युग की पर धाम ॥ ९३ ॥
परशुराम मन बाढ़ल भीति। भय बिनु कतहु शुनल नहि प्रीति ॥ ९४ ॥
बिकृत वदन सन क्षण भृगुराम। कोप लोप भेल ठामहि ठाम ॥ ९५ ॥
स्मरण कयल पूर्व्वक वृत्तान्त। रहित रौद्र रस सञ्चरु शान्त ॥ ९६ ॥

की कोई जरूरत नहीं, कहिए कि हम क्या करें ? जुटे हुए सभी लोग सुन रहे हैं। ८२ यहाँ मैं किसी दूसरे काम से आया था। यह धनुष मुझसे ही टूट गया।'' ८३ इतना कहने पर भी परशुराम का चित्त शान्त न हुआ। वे क्रोध के साथ बोले— ''सुन रे अभिनव राम ! ८४ नीच क्षत्रिय होकर तू राम कहाता है ? राम तो एक मैं हूँ, दूसरा कौन राम है ? ८५ तूने शिवजी के पुराने धनुष को तोड़ा इसी से मन में इतना अभिमान बढ़ गया ? ८६ यहीं तो मेरे हाथ में भगवान् विष्णु का बड़ा धनुष है। ले, इसे चढ़ाकर अपना प्रताप दिखा। ८७ रघुवंशी कहाकर तू घूमता रहता है। द्वन्द्व-युद्ध करके हटा तो दे ! ८८ यदि तू ऐसा नहीं करेगा तो मेरे हाथ से तुम सबों को मौत होगी। किसी का अभिमान सदा नहीं रहा है।'' ८९ पृथ्वी डोल उठी। अँधेरा छा गया। वीर लक्ष्मण मन-ही-मन हर्षित हुए। ९० रामचन्द्र ने परशुराम के हाथ से धनुष ले लिया। परशुराम अक्रिय (कुछ भी करने में असमर्थ) होकर थरथर काँपने लगे। ९१ हाथ में लेकर राम ने धनुष को चढ़ाया और तीर का निशाना लगाते हुए बोले— ९२ ''हे परशुराम, अब आप इस तीर का लक्ष्य बता दीजिए। क्या आप मेरे पाँवों पर गिरना चाहते हैं या पर-लोक जाकर ?'' ९३ परशुराम के मन में भारी भय जगा। भय के बिना कहीं प्रीति होती है ? ९४ क्षण भर में भृगुवंशी राम का चेहरा फीका पड़ गया। अचानक गुस्सा जाता रहा। ९५ पूर्व के वृत्तान्त को याद किया। रौद्र-भाव दूर हो गया, शान्त-भाव आ गया। ९६ और वे बोले, ''हे प्रभु, अज्ञान के

अनुचित कहल न ज्ञान प्रभाव। परमेश्वर परिचित चित आब ॥ ९७ ॥
विष्णु महाप्रभु पुरुष पुराण। कहल जाय प्रभु संकट त्राण ॥ ९८ ॥
कहइत छी हम अपन चरित्र। प्रभु दर्शन सौँ चित्त पवित्र ॥ ९९ ॥
बाल्य अवस्था मे तप कयल। ध्यान निरन्तर विष्णुक धयल ॥ १०० ॥
चक्रतीर्थ मे कयल निवास। अगणित वर्ष दिवस ओ मास ॥ १०१ ॥
बहुत प्रसन्न विष्णु भगवान। कहलनि हमरा दयानिधान ॥ १०२ ॥
हमर चिदंश अहाँकाँ प्राप्त। करबनि हैहय प्राण समाप्त ॥ १०३ ॥
मारब क्षत्रिय एकइस बेरि। कश्यप काँ काश्यपि दब फेरि ॥ १०४ ॥
हम त्रेतायुग दशरथ गेह। होयब पुत्र तपस्या स्नेह ॥ १०५ ॥
ततय भेट मिथिला मे हयत। हमर तेज घुरि हमरहि अयत ॥ १०६ ॥
तखन तपस्या कर अहँ जयब। राम रूप सौँ निर्जित हयब ॥ १०७ ॥
ई कहि भेला अन्तर्द्धान। ओ आज्ञा हम कयल विधान ॥ १०८ ॥
सेह थिकहुँ प्रभु परिचित आज। अनुचित कहल होइछ मन लाज ॥ १०९ ॥
जनम सुफल भेल देखल चरण। छूटल क्षत्रिय प्राणक हरण ॥ ११० ॥

॥ गीतिका संगीते रामकरी छन्दः ॥

जय भक्ति-भावन विश्व-पावन रामचन्द्र दयानिधे।
धृतचाप-सायक सर्व्वनायक जानकीश विधेर्विधे ॥ १११ ॥

प्रभाव से मैंने अनुचित बातें कहीं। आप परमेश्वर हैं, इस बात का ज्ञान अब मेरे मन में हुआ। ९७ हे महाप्रभु, आप विष्णु हैं, पुराणपुरुष हैं। संकट से उबरने का उपाय कहा जाए। ९८ मैं अपनी कहानी सुनाता हूँ। अब आपके दर्शन से मेरा हृदय पवित्र हो गया है। ९९ मैंने बाल्यकाल में तपस्या की। सतत विष्णु का ध्यान करता रहा। १०० चक्रतीर्थ जाकर अनगिनत सालों, मासों और दिनों निवास किया। १०१ दयालु विष्णु भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और मुझसे कहा— १०२ "मेरी चित् शक्ति का अंश आपको प्राप्त हो गया है। आप हैहय का अन्त करेंगे। १०३ इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करेंगे, और कश्यप को अपनी काश्यपी लौटा दीजिएगा। १०४ तपस्या से प्रसन्न होकर मैं त्रेता युग में दशरथ के घर में पुत्र होकर उत्पन्न होऊँगा। १०५ वहाँ मिथिला में आपसे भेंट होगी, तब मेरा तेज अर्थात् चिदंश मुझमें लौट आएगा। १०६ तब आप तपस्या करने जाइएगा और राम के रूप में अवतीर्ण मुझसे हारिएगा।" १०७ इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गए और मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। १०८ हे प्रभु, आप वही राम हैं। आज मुझे परिचय हुआ। मैंने जो अनुचित बातें कहीं उससे लज्जित हूँ। १०९ जन्म सफल हुआ। आपके चरणों के दर्शन हुए। क्षत्रियों के प्राण के हरण का पाप दूर हुआ। ११० हे दयानिधि रामचन्द्र, आपकी जय हो। आप

जय पंचभूत-विभूतिकारण सर्वचारण सद्गते।
त्वयि सन्तु मन्नतयोऽथ मामिह पाहि पाहि जगत्पते ॥ ११२ ॥

॥ सोरठा ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश, मन मानल अपनहि थिकहुँ।
अब प्रभु करिय निदेश, भरल तमोगुण सौँ छलहुँ ॥ ११३ ॥

॥ चौपाइ ॥

परशुरामकृत स्तुति-तति शूनि। राम प्रसन्न कहल मन गूनि ॥ ११४ ॥
शुनु भृगुपति हम से वर देब। मन वाञ्छित माँगू से लेब ॥ ११५ ॥
भार्गव कहल अनुग्रह थीक। गत दुर्दिन आगत दिन नीक ॥ ११६ ॥
अपनें जनक सतत हो संग। अपनेंक पदमे प्रीति अभङ्ग ॥ ११७ ॥
ई वर छोड़ि न माँगब आन। बाढ़ल छल बड़ मन अभिमान ॥ ११८ ॥
हमर कयल स्तुत नर जे पढ़त। अपनेंक भक्ति ज्ञान मन बढ़त ॥ ११९ ॥
अन्त समय हो प्रभु पद स्मरण। अपनेंक बिना आन नहि शरण ॥ १२० ॥
राम तथास्तु कहल शुनि लेल। प्रभुक प्रदक्षिण शत शत देल ॥ १२१ ॥
गेला महेन्द्राचल भृगुराम। जय जयकार भेल एहि ठाम ॥ १२२ ॥

केवल भक्ति से जानने योग्य हैं, संसार को पवित्र करनेवाले हैं, धनुष-बाण-धारी हैं, सबों को रास्ता दिखानेवाले हैं, जानकी के पति हैं और विधाता के भी विधाता हैं। १११ आप पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों तत्त्वों से होनेवाली समृद्धि (सांसारिक अभ्युदय) के कारण हैं, सबों को प्रेरित करनेवाले हैं अर्थात् चेतनास्वरूप हैं, परमगति मोक्षस्वरूप हैं। आपको मेरे नमस्कार हों, और हे संसार के स्वामी, आप इस संसार में मेरा पालन कीजिए। ११२ मुझे विश्वास हो गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश आप ही हैं। हे प्रभु, अब आप मुझको उचित आज्ञा दीजिए। अब तक मैं तमोगुण से अन्धा था।" ११३ परशुराम की स्तुतियाँ सुनकर राम प्रसन्न हुए और मन में सोचकर कहा— ११४ "हे परशुराम, आपको जैसी इच्छा हो वैसा वर माँगिए। वह वर आपको मिलेगा।" ११५ परशुराम ने कहा— "यह आप की कृपा है। मेरे बुरे दिन बीते, अब अच्छे दिन आए हैं। ११६ आपके भक्तों की मुझे हमेशा संगति मिले। आपके चरण में अखंड प्रीति रहे। ११७ इसके सिवा और कोई वर नहीं माँगूँगा। मेरे मन में अभिमान बहुत बढ़ गया था। ११८ मैंने जो स्तुति पढ़ी है उसका पाठ जो कोई करेगा उसके मन में आपके प्रति भक्ति जगेगी और ज्ञान बढ़ेगा। ११९ मृत्यु के समय उसे आपके चरण का ध्यान आएगा। वह आपको छोड़ और कोई सहारा नहीं गहेगा।" १२० राम ने कहा— "तथाऽस्तु।" परशुराम ने सुन लिया और सौ-सौ बार उनका प्रदक्षिण किया। १२१ फिर परशुराम महेन्द्र पर्वत पर चले गए और यहाँ राम का जय-जयकार हुआ। १२२ मैं राम की वन्दना

॥ विष्णुपद छन्दः ॥

भजेऽहं जितरामं रामम् ।
राजन्यालिशमनभृगुपतिना परिवृतसङ्ग्रामम् ॥ १२३ ॥
पङ्कजलोचनमतिकमनीयं कान्त्या जितकामम् ।
सुखतो विश्वेषामपि रुचिरं प्रलये विश्रामम् ॥ १२४ ॥
पालितमुनिमखमतुलमुदारन्नाशितदनुजकुलम् ।
हृतताटकमथ गौतमवनिताकृतजीवन सफलम् ॥ १२५ ॥
जनकपुरे श्रितसकलावनिपे किल भग्नाजगवम् ।
रामचन्द्रमगतीनां गतिमिह कृतचरिताभिनवम् ॥ १२६ ॥

॥ हरिपद छन्द ॥

सकल पुन बाजन बाजय लाग ।
भृगुनन्दन सौँ रघुनन्दन प्रभु बचला बड़ गोट भाग ॥ १२७ ॥
तोड़ल शङ्कर चाप जनकपुर एतदिन अद्भुत लाग ।
वैदेहीपति निकट परशुधर कयल प्रतापक त्याग ॥ १२८ ॥
देवार्चन फल आज फलित भेल कयल जे बहुविधि याग ।
रामचन्द्र काँ हृदय लगाओल दशरथ मन अनुराग ॥ १२९ ॥

॥ मणिगुण-सरम नाम छन्द ॥

अरिगण-रहित सहित निजजनसौँ
निज पुर पहुँचल सभ सुखि मन सौँ ॥ १३० ॥

करता हूँ जो परशुराम को जीतनेवाले हैं; जो क्षत्रियों के समूह को नष्ट करनेवाले परशुराम के साथ संग्राम करनेवाले हैं; १२३ जिनकी आँखें कमल-जैसी हैं; जो अत्यंत सुन्दर हैं; जो अपनी कान्ति से कामदेव को भी जीतनेवाले हैं; जो सुख देने के कारण सारे विश्व को भाते हैं; जिनका विश्राम प्रलय-काल है; १२४ जिन्होंने मुनि के यज्ञ की रक्षा की; जो अनुपम उदार हैं; जो राक्षसों का संहार करनेवाले हैं; जिन्होंने ताटका राक्षसी को मारा; जिन्होंने गौतम की पत्नी अहल्या के जीवन का उद्धार किया; १२५ जिन्होंने सभी राजाओं से भरे जनकपुर में शिवजी के 'अजगव' नामक धनुष को तोड़ा; जो गतिहीनों के लिए गति हैं; जिन्होंने नये-नये चरित दिखाए; उन रामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ। -१२६ फिर सभी बाजे बजने लगे। परशुराम से प्रभु रामचन्द्र बच गए, यह बड़े भाग्य की बात हुई। १२७ इन्होंने जनकपुर में जो धनुष तोड़ा वही इतने दिनों तक बड़ा अद्भुत लगता था, किन्तु अब उससे भी अद्भुत यह बात है कि जानकीपति राम जी के आगे परशुराम ने भी अपने पौरुष का अभिमान गँवा दिया। १२८ इतने दिन जो देवताओं की पूजा का, और तरह-तरह के यज्ञ किए, उनका सत्फल आज प्राप्त हुआ। राजा दशरथ ने स्नेहसिक्त मन से रामचन्द्र को छाती से लगा लिया। १२९ सभी लोग शत्रुओं

कर सुख रघुबर सहज सुधन सौं।
युवति सहित बर अपन भवन सौं॥ १३१॥
वितरण कर कत मणि गुणयुत काँ।
सुरवर सम सुख दशरथ-सुत काँ॥ १३२॥
सभ जन मन मन कह रघुबर काँ।
थिकथि न मनुज सकल दुख हर काँ॥ १३३॥

॥ चौपाइ ॥

नाम युधाजित भरतक माम। भरत संग लय गेला गाम॥ १३४॥
दशरथ नृप आज्ञा अनुसार। शत्रुघ्नहुँ काँ सेह विचार॥ १३५॥
केकयिभ्राता हर्षित चित्त। भेल सम्पन्न जे छलनि निमित्त॥ १३६॥
कौशल्यादिक रानी लोक। देवमातृ सनि रहथि अशोक॥ १३७॥
इन्द्र शची सह शोभित जेहन। वैदेही संग रघुवर तेहन॥ १३८॥
यशोगान रामक सभ ठाम। नित्यानन्द विमल सुखधाम॥ १३९॥
कहि न सकथि ब्रह्मादिक विबुध। कत प्रभु चरित कतै हम अबुध॥ १४०॥

॥ गीत गौरी योगिया ॥

जय सगुणे त्रिगुणातीते-जय जय जन-तारिणि सीते।
जय जय योगिजनानां ध्येये गेये च श्रुतिगीते॥ १४१॥

से मुक्त और स्वजनों से युक्त हो प्रसन्न मन से अपने नगर अयोध्या पहुँचे। १३० तब रामचन्द्र सहज सम्प्राप्त सम्पत्ति का और अपनी प्रेयसी सीता से अलंकृत घर का उपभोग करने लगे। १३१ वे विद्वान, गायक आदि गुणियों को बहुत सारे रत्नों का दान करने लगे। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र इन्द्र के समान सुख भोगने लगे। १३२ रामचन्द्र के बारे में सभी लोग मन में कहने लगे कि सभी दुःखों को दूर करनेवाले ये रामचन्द्र मानव नहीं, देवता हैं। १३३ युधाजित नाम के भरत के मामा थे। वे भरत को अपने साथ घर ले गए। १३४ राजा दशरथ की ऐसी आज्ञा थी। शत्रुघ्न को भी वैसा ही विचार हुआ। १३५ कैकेयी के भाई का चित्त प्रसन्न हुआ क्योंकि उनकी जो इच्छा थी वह पूरी हुई। १३६ कौशल्या आदि रानियाँ देव-माताओं की तरह प्रसन्न रहने लगीं। १३७ जैसे शची के साथ इन्द्र शोभा पाते हैं वैसे ही वैदेही के साथ राम शोभित हुए। १३८ सभी जगह राम के सुयश की चर्चा होने लगी, जो अविच्छिन्न आनन्दस्वरूप हैं, निर्विकार हैं और सुख के भंडार हैं। १३९ ब्रह्मादि देवता भी रामचन्द्रचरित का वर्णन नहीं कर सकते हैं, फिर मैं अविद्वान् होकर उसका वर्णन कैसे करूँगा? १४० हे सीता, तुम्हारी जय हो। तुम त्रिगुणात्मक मायास्वरूपा हो। तुम तीनों गुणों से परे चित्-शक्ति-स्वरूपा हो। योगीजन तुम्हारा ध्यान लगाते हैं और स्तुति करते हैं।

परिपालय मां महामाये-जय जय परमेशसहाये।
सकलशक्तिमयि मिथिलाभूमौ धृतकमनीयककाये ॥ १४२ ॥
कृतजनकयशोविस्तारे - सेवकहितकरुणागारे।
रघुनन्दननवघनसौदामनि भगवति सकलाधारे ॥ १४३ ॥
जय भक्तगृहेर्पितवित्ते - कारितजननिर्म्मलचित्ते।
प्रीतिरस्तु नो भवतीचरणे शरणे मुक्तिनिमित्ते ॥ १४४ ॥

॥इति श्रीमन्मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे बालकाण्डे षष्ठोऽध्यायः॥

॥ इति बालकाण्डः ॥

वेद तुम्हारा गुणगान करता है। १४१ हे महामाया, तुम मेरी रक्षा करो। तुम परमेश्वर रामचन्द्र की सहायिका (सहचारणी शक्ति) हो। तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम सभी शक्तियों से युक्त हो। तुमने मिथिला भूमि में कमनीय शरीर धारण किया। १४२ तुमने जनक के सुयश को फैलाया। तुम सेवकों-भक्तों के लिए दया-सागर हो। रामचन्द्र रूपी अभिनव मेघ में तुम विद्युल्लता-सी चमकती हो। हे भगवती, तुम सारे संसार का आधार हो। १४३ तुम भक्तों के घर अपार सम्पत्ति से भर देती हो; अपने भक्तों के हृदय को निर्मल-निष्कलुष बना देती हो। तुम्हारे चरणों में मुझे प्रीति हो, जो चरण सबों को शरण देनेवाले हैं और मुक्त करानेवाले हैं। १४४

॥ मैथिल चन्द्र कवि-विरचित मिथिला भाषा-रामायण में बालकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

॥ बालकाण्ड समाप्त ॥

अयोध्याकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ श्लोक ॥

[शार्दूलविक्रीडित छन्दः]

भाले बालकलाकरं गलगरं वामाङ्गवामाधरं
चञ्चन्मौलिसरिद्वरं वृषचरं सर्वप्रदं निर्दरम् ।
वन्दे पिङ्गजटं मनोहरनटं विश्रान्तिभूसद्वटं
श्रीमन्निष्कपटं सुकृत्तिकपटं भ्राजद्विभूतिच्छटम् ॥ १ ॥

॥ मालिनीछन्दः ॥

अवतु जलदनीलस्सद्गृही पुण्यशील-
स्त्रिभुवनखलजिष्णू रामचन्द्राख्यविष्णुः ।
रघुवरवरजाया सर्व्वसम्पन्निकाया
जनिरखिलसहायाः पातु मान्देवमाया ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

बारह बरष अयोध्यावास । वैदेही संग विविध बिलास ॥ ३ ॥

पहला अध्याय

विष्णु का संवाद लेकर नारद का राम के पास आना

शिवजी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके माथे पर बालचन्द्र है, गले में विष है, बाएँ अंग में वामा गौरी विराजमान हैं, सिर पर चंचल वेगवती गंगा हैं, जो बसहा पर चलते हैं, सब कुछ देनेवाले हैं, भय-रहित हैं, पीली जटाओंवाले हैं, सुन्दर नृत्य करनेवाले हैं, पथिकों के विश्राम-स्थल के वटवृक्ष हैं, श्री से सम्पन्न हैं, कपट से रहित हैं, ललित गजचर्म का वस्त्र धारण किए हुए हैं, विभूति (भस्म और ऐश्वर्य) की छटा से विराजमान हैं। १ रामचन्द्र नाम से विदित विष्णु भगवान् हमारी रक्षा करें, जो बादल-जैसे नील-वर्ण हैं, अच्छे गृहपति हैं, पुण्यकार्य में स्वभावतः संलग्न रहते हैं, और तीनों भुवनों के दुष्टों को जीतनेवाले हैं। वह भगवती हमारा पालन करें, जो रामचन्द्र की पत्नी के रूप में अवतीर्ण हैं, सकल सम्पत्तिस्वरूपा हैं, सर्वंसहा पृथ्वी से उत्पन्न हैं, और देवमायारूपिणी हैं। २ धरती के भार को हरने के लिए श्रेष्ठ मानव के रूप में अवतीर्ण रामचन्द्र सीता के साथ तरह-तरह का विलास करते हुए बारह

श्रीरघुनन्दन भूमिक भार। हरनिहार नरवर अवतार ॥ ४ ॥
कहलनि मुनि नारद विधि कान। विधिहुक सभा आन नहि जान ॥ ५ ॥
सुरधरणिक अहँ होउ सहाय। कहू सन्देश राम काँ जाय ॥ ६ ॥
जे कारण लेलहुँ अवतार। एखनहुँ धरि धरती काँ भार ॥ ७ ॥
सीतासहित विपिन कय वास। कयल जाय सुर-अरिक विनाश ॥ ८ ॥
विधिक कहल शुनि मुनि मुदचित्त। चलला सुर-अचलाक निमित्त ॥ ९ ॥
वीणा सरस राग भल बाज। अति उत्साह देखब विभु आज ॥ १० ॥
मुनि नारदक मनोरथ पूर्ण। अतिथि राम तट से भेल तूर्ण ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

अभ्यागत नारद जतय, गृही जतय श्रीराम।
की अपूर्व आतिथ्य-विधि, विधिसुत प्रभु गुणधाम ॥ १२ ॥

॥ चौपाइ ॥

रामचन्द्र उठि कयल प्रणाम। कयल वरासन मुनि विसराम ॥ १३ ॥
लेल जानकी चरण धोआय। पूजन कयल विहित सन्याय ॥ १४ ॥
स्तुति मुनि कयलनि बहुत प्रकार। अपनें प्रभु-वर जगदाधार ॥ १५ ॥
कहइतछी आगमनक काज। कहय कहल कमलासन आज ॥ १६ ॥

बरस तक अयोध्या में रहे। ३-४ उधर ब्रह्मा ने नारद मुनि के कान में कहा, जो ब्रह्मा के दरबार में भी कोई और न जान सका। ५ "हे नारद, आप स्वर्गलोक के सहायक होइए। राम को जाकर यह सन्देश कहिए। ६ 'आपने जिस काम के लिए अवतार लिया है, वह पूरा नहीं हुआ है; अब भी धरती भार से व्याकुल है। ७ अब आप सीता-सहित वनवास में जाइए और देवता के शत्रु राक्षसों का विनाश कीजिए।' " ८ ब्रह्मा की बात सुनकर नारद मुनि देवलोक की भलाई के लिए प्रसन्न मन से विदा हुए। ९ वीणा पर सुन्दर-सरस राग बजने लगा। मन में उल्लास था कि आज भगवान् विष्णु का दर्शन होगा। १० मुनि नारद की कामना पूरी हुई। वे तुरत अतिथि होकर राम के घर पहुँच गए। ११ जहाँ नारद मुनि अतिथि हैं और रामचन्द्र गृहपति, वहाँ कैसा अपूर्व अतिथि-सत्कार होगा। एक ब्रह्मा के पुत्र हैं और दूसरे गुणों के आश्रय भगवान्। १२ रामचन्द्र ने आसन से उठकर प्रणाम किया और मुनि श्रेष्ठ आसन पर बैठे। १३ जानकी ने चरण पखारे, और यथोचित विधि से उनका पूजन किया। १४ मुनि नारद ने बहुत प्रकार से राम की स्तुति की— "हे प्रभु, आप ही पर संसार टिका हुआ है। १५ मैं जिस काम से आया हूँ, वह बताता हूँ, आज ब्रह्मा ने आपसे निवेदित करने को कहा था। १६ ब्रह्मा ने संक्षेप में इतना ही संवाद कहा है कि आप अपने वचन की

कहलनि विधि संक्षेप समाव। राखथु अपन वचन-मर्य्याद ॥ १७ ॥
राम कहल हम करब से काज। गेल जाय मुनि द्रुहिण समाज ॥ १८ ॥
बिसरल नहि महि किछु वृत्तान्त। हसि हसि कहलनि सीताकान्त ॥ १९ ॥
प्रातहि हम जायब वनवास। भावी दशवदनादि विनाश ॥ २० ॥
चौदह वरष वनी बनि रहब। देखब चरित एखन की कहब ॥ २१ ॥
तीनि प्रदक्षिण दण्ड प्रणाम। कय नारद गेल विबुधसुधाम ॥ २२ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे अयोध्याकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

दशरथ नृप वर परम उदार। गुरु वसिष्ठ संग कयल विचार ॥ १ ॥
विषय मनोरथ रथ आरूढ़। उचित कि आब भेलहुँ बड़ बूढ़ ॥ २ ॥
रामचन्द्र भ्रातामे ज्येष्ठ। सकलगुणोपेतहुँ से श्रेष्ठ ॥ ३ ॥
तनिक सुयश जन के नहि बाज। रामचन्द्रकाँ करु युवराज ॥ ४ ॥
प्रातहि रह सभ वृत्त सुधाम। मन्त्रित करु गुणशाली राम ॥ ५ ॥

यह काम होना चाहिए। सभी सामान तो घर में ही मौजूद हैं। गुणशाली मर्यादा का पालन करें।" १७ राम ने कहा— "मैं आज वह काम करूँगा। हे मुनि, आप देवताओं के पास जाएँ। १८ धरती पर आकर मुझे वह वृत्तान्त भूला नहीं है। हँस-हँसकर सीतापति राम ने कहा— सुबह होते ही मैं वनवास जाऊँगा। रावण आदि राक्षसों का अन्त होगा। १९-२० चौदह साल तक मैं वनवासी होकर रहूँगा। मेरा चरित देखिएगा। अभी क्या कहूँ!" २१ तीन बार प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करके नारद देवलोक चले गए। २२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

दूसरा अध्याय

राम को राजतिलक लेने का प्रस्ताव और तैयारी

बड़े उदार राजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ के साथ विचार-विमर्श किया। गुरु ने कहा—। १ "विषय-भोग के मनोरथ रूपी रथ पर सवार रहना अब क्या उचित होगा? अब आप बहुत बूढ़े हो गये हैं। २ रामचन्द्र सभी भाइयों में बड़े हैं, और सभी गुणों में भी सभी भाइयों में श्रेष्ठ हैं। ३ उनकी बड़ाई संसार में कौन नहीं करता। रामचन्द्र को युवराज बनाइए। ४ सुबह ही

कहलनि तखन सुमन्त्रि बजाय। अहाँक अधीन कार्य्य समुदाय॥ ६ ॥
श्रीगुरु जे जत कहथि सुकाज। करु सम्पन्न शीघ्रतर आज॥ ७ ॥
सचिव पुछल कहि देल सभ मूनि। नृपति-तिलक-पद्धति पढ़ि गूनि॥ ८ ॥

॥ हरिपद छन्द ॥

नानावर्ण पताका तोरण मणिमुक्तामय टाँगू।
स्मारक पत्र लिखल अछि जेहन राजपुरुषसौं माँगू॥ ९ ॥
प्रातःकाल सकल भूषणयुत सत्कुल बहुत कुमारी।
मध्य कक्ष मे पूजन हेतुक पूर्व्वहि रह तयारी॥ १० ॥
चतुर्दन्त ऐरावतवंशक कनक रत्नसौं भूषित।
सोड़ह गोट महागज चाही शुभलक्षणनिर्दूषित॥ ११ ॥
कनक-कलस नानातीर्थोदक-पूरित रहै हजारे।
दधि दूर्व्वाक्षत कुङ्कुम चाही मत्स्य प्रशस्तक भारे॥ १२ ॥
करब थापना तहँ अहँ नव नव तीन गोट बघछाला।
रत्नदण्ड अवदात छत्रमणि दिव्य दिव्य वरमाला॥ १३ ॥
दिव्यवस्त्र ओ दिव्य आभरण पूर्व्वहि राखू आनि।
सत्कृत मुनि पुन रहथि बहुत शुनि वरणकाज कुशपाणि॥ १४ ॥
गायन वैदिक तथा नर्त्तकी लोक वृत्त भय आबथु।
वाद्यकार नाना बाजन लय नृपतिक द्वार बजाबथु॥ १५ ॥

राम को अभिषिक्त कीजिए।" ५ तब राजा दशरथ ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा— "सारे काम आप लोगों के ही हाथ में है। ६ इस शुभ कार्य में गुरु जो-जो फ़रमाएँ उसे आप लोग आज जल्द से जल्द पूरा कर दें।" ७ मन्त्रियों ने पूछा। मुनि ने राजतिलक की पद्धति देखकर सब कुछ बता दिया। ८ "रंग-बिरंग की पताकाएँ लगाइए। रत्नों और मोतियों से अलंकृत बन्दनवार खड़े कीजिए। ९ सुबह में सारे गहने पहनाकर अच्छे कुल की बहुत सी कुमारिकाओं को पूजन के लिए मध्य कक्ष में पहले से ही तैयार रखिए। १० चार-चार दाँतोंवाले ऐरावत वंश के सोलह हाथी चाहिए जो सभी शुभ चिह्नों से युक्त, सभी दोषों से मुक्त और सोना-जवाहरात से सजाए हुए हों। ११ अनेक तीर्थों के जल से भरे सोने के एक हज़ार घड़े रहने चाहिए। दही, दूब, अक्षत, कुंकुम और अच्छी-अच्छी मछलियाँ चाहिए। १२ वहाँ आप नये-नये तीन व्याघ्रचर्म रखवा दें। रत्नमय दण्ड, श्वेत मणिमय छत्र और अच्छी-अच्छी वरमालाएँ चाहिए। १३ दिव्य वस्त्र और दिव्य भूषण पहले से ही लाकर रखिए। बहुत से मुनियों को अभिषेक-कर्म का संवाद देकर बुलाएँ, उनकी पूजा की जाए और वे हाथ में कुश लिये तैनात रहें। १४ गीत गानेवाले, वेदपाठ करनेवाले और नर्तकियाँ सभी तैयार हो आवें। बाजा

गज हय यान पदाति सज्जसौं बाहर बहुत सिपाही।
रहथु करथु मन्दिर मन्दिर द्विज देवीपूजन ताही ॥ १६ ॥

॥ पादाकुलक दोहा ॥

नाना पूजा बलिविधि नाना, हसइत कहल वसिष्ठ।
करु सम्पन्न सुमन्त्र सुमन्त्री, जे जत अछि अवशिष्ट ॥ १७ ॥

॥ चौपाइ ॥

जे सब कहल वसिष्ठ विधान। वृत्त सकल भेल कहल प्रधान ॥ १८ ॥
कहि शुनि मुनि पुन कयलन्हि गमन। रथ चढ़ि रामचन्द्र वरभवन ॥ १९ ॥
तेसरहि खण्ड छोड़ि रथवेश। अन्तःपुर मुनि कयल प्रवेश ॥ २० ॥
रोक टोक नहि बुझि अनिवार्य्य। द्वारपाल परिचित आचार्य्य ॥ २१ ॥
गुरु आगमन बुझल श्रीराम। कयल कृताञ्जलि दण्डप्रणाम ॥ २२ ॥
कनकालुका भरल भल वारि। वैदेही लेल चरण पखारि ॥ २३ ॥
कनकासन पुन बैसक देल। से जल सींचि माथ बिच लेल ॥ २४ ॥
रामचन्द्र मुख शुनि मुनि वचन। उत्तर कहल उचिततर-रचन ॥ २५ ॥
अपनेंक चरणोदक धय माथ। धन्य धन्य शिव गिरिजानाथ ॥ २६ ॥
कयल उचित जन हित उपदेश। अपनें रामचन्द्र परमेश ॥ २७ ॥

बजानेवाले तरह-तरह के बाजे राजा के द्वार पर बजाते रहें। १५ बाहर में बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिक और रक्षक गण मौजूद रहें। ब्राह्मण लोग हर मन्दिर में देवीपूजन करें।" १६ मुस्कुराते हुए वसिष्ठ ने तरह-तरह की पूजाएँ और तरह-तरह के बलिकर्म बताए और कहा—"हे श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र, जो कुछ भी छूट गया हो उन सबों का भी आप लोग प्रबन्ध कर लें।" १७ "जो-जो विधान गुरु वसिष्ठ ने बताया वह सब तैयार है"—प्रधान ने कहा। १८ फिर विचार-विमर्श कर मुनि रथ पर चढ़कर रामचन्द्र के भवन की ओर विदा हो गए। १९ तीसरे ही फ़ाटक पर रथ को छोड़ दिया और अन्तःपुर (भीतरी महल) में प्रवेश किया। २० विशेष स्थिति के कारण बिना किसी रोक-टोक के भीतर गए, क्योंकि द्वारपाल गुरु वसिष्ठ को पहचानता था। २१ राम ने सुना कि गुरु पधारे हैं। सुनते ही हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम किया। २२ सोने के घड़े में पानी भरा हुआ था। उससे जानकी ने मुनि के चरण पखारे। २३ फिर सोने के आसन पर बैठाया। उनके चरण के जल से अपने माथे को सिक्त किया। २४ रामचन्द्र के मुँह से उचित स्वागत-वचन सुनकर मुनि ने उससे भी अधिक उचित रचना करके उत्तर दिया। २५ "आपके चरण के जल (गंगा) को सर पर रखकर गिरिजापति शिवजी धन्य हैं। २६ अपने भक्तों की भलाई के लिए उचित उपदेश किया। हे रामचन्द्र, आप परमेश्वर हैं। २७ आपने लक्ष्मी रूपी सीता के साथ धरती

सीता-रमा सहित अवतार। हरण हेतु अवनिक दिक भार ॥ २८ ॥
हमरासौं प्रभु करु जनु लाथ। रावण मरता अपनैंक हाथ ॥ २९ ॥
हम गुरु अहाँ शिष्य आचार। करइत छी माया-व्यवहार ॥ ३० ॥
पितरक पितर गुरुक गुरु राम। देवदेव अपनहि सुखधाम ॥ ३१ ॥
रहइत छी व्यवहारक व्याज। मर्म्म न बजइत छी सुरकाज ॥ ३२ ॥
कहल विधाता हमरा कान। मर्म्म तकर ककरहु नहि ज्ञान ॥ ३३ ॥
ई इक्ष्वाकुवंश गुणधाम। अपनहि अवतरता विभु राम ॥ ३४ ॥
सत्वर दुरित विनाशन कार्य्य। हमर ख्याति अपनैंक आचार्य्य ॥ ३५ ॥
याजक कर्म्म निन्दिताचार। एहि लोभें कयलहुँ स्वीकार ॥ ३६ ॥
प्रभुवर विभु अपनैं मायेश। होयत नहि मायाक कलेश ॥ ३७ ॥
एतय पठाओल अहकाँ बाप। काज रहल अछि नहि चुपचाप ॥ ३८ ॥
आयल छी आमन्त्रण काज। प्रातः काल होउ युवराज ॥ ३९ ॥
सीतासहित विहित उपवास। शुचिसंयम करु विश्व-निवास ॥ ४० ॥
धरणी-शयन जितेन्द्रिय कर्म्म। करु करु कहइक थिक गुरुधर्म्म ॥ ४१ ॥
चललहुँ दशरथ नृप तट फेरि। अपने आयब भोर सबेरि ॥ ४२ ॥

का भार दूर करने के लिए अवतार लिया है। २८ हे प्रभु ! आप, मुझसे बहाना मत कीजिए। रावण आप ही के हाथ से मरेगा। २९ मैं गुरु और आप शिष्य यह तो मात्र दिखावा है और ऐसा व्यवहार आप केवल मायामानव के रूप में करते हैं। ३० हे राम, आप पितरों के भी पितर हैं और गुरुओं के भी गुरु हैं; आप देवताओं के देवता हैं, और सुख के खज़ाना हैं। ३१ आप सांसारिक जीवन के बहाने छुपे रहते हैं, और यह प्रकट नहीं करते कि आप देवताओं के काम से आए हैं। ३२ ब्रह्मा ने मेरे कान में कहा (इस बात का रहस्य किसी को भी मालूम नहीं है) कि ३३ परम गुणवान इस इक्ष्वाकु वंश में स्वयं विष्णु राम के रूप में अवतार लेंगे और शीघ्र दुष्टों का संहार करेंगे। आपका गुरु होने से मेरी बड़ी प्रतिष्ठा होगी, ३४-३५ इसलिए, याजक (पुरोहित) के कर्म को निन्दित समझते हुए भी मैंने यह पौरोहित्य स्वीकार किया। ३६ हे विश्वव्यापी प्रभु, आप तो माया के पति हैं, अतः आपको माया का कष्ट नहीं होगा। ३७ आपके पिता राजा दशरथ ने मुझको यहाँ आपके पास भेजा है। जो काम है वह अब छिपा नहीं है। ३८ मैं आपको आमन्त्रित करने आया हूँ। कल सुबह आप युवराज होइए। ३९ हे विश्वव्यापी भगवान्, आप सीता के साथ शास्त्रानुसार उपवास कीजिए तथा पवित्रता एवं संयम के साथ रहिए। ४० धरती पर सोइए। इन्द्रिय-निग्रह रखिए। यह सब बता देना गुरु का कर्तव्य है। ४१ फिर मैं राजा दशरथ के पास जाता हूँ। कल सबेरे आप पहुँच जाइएगा।" ४२ इतना कहकर मुनि वसिष्ठ राजा के यहाँ चले

रथ चढ़ि नृपतट गेला मुनि। राम कहल लक्ष्मणकाँ शुनि ॥ ४३ ॥
हम प्रातहि होयब युवराज। नाम हमर अहँइक सभ काज ॥ ४४ ॥
मुनि नृप काँ जे भेल विचार। शुनि एक जन मन हर्ष अपार ॥ ४५ ॥
कौशल्या काँ बार्त्ता देल। बड़ गोट हर्ष रहल नहि गेल ॥ ४६ ॥
शुनि आयल छी नृपति समाज। प्रातहि रामचन्द्र युवराज ॥ ४७ ॥
शुनल सुमित्रा मन सन्तोष। धन दय बहुतक कर परितोष ॥ ४८ ॥
दुहुजनि मिलि पुन राम निमित्त। लक्ष्मी-पूजा करथि सुचित्त ॥ ४९ ॥
बरु शशि उष्ण शीतकर भानु। घनसारक सम शीत कृशानु ॥ ५० ॥
दशरथ कहल वितथ भय जाय। तौँ अकाल मे उदधि शुखाय ॥ ५१ ॥
कामुक नृप केकयी अधीन। ई गुनि गुनि मन होइछ दीन ॥ ५२ ॥
दुर्गार्च्चना करथि मन लाय। कौशल्या केकयि-भय पाय ॥ ५३ ॥

॥ गीत तिरहुति माधवीय बराड़ी छन्द ॥

से करु देवि दयामयि हे, थिर रह महराज।
पूरिअ हमर मनोरथ हे, केकयि नहि बाज ॥ ५४ ॥
नृपतिक हृदय ककर वश हे, ककरो नहि मीत।
सौतिनि सामरि सापिनि हे, मन हो भयभीत ॥ ५५ ॥

गए। सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा— ४३ "मैं सुबह ही युवराज होऊँगा। नाम मेरा रहेगा, काम तो सब तुमको ही सँभालना है।" ४४ उधर वसिष्ठ और दशरथ के बीच जो विचार हुआ वह सुनकर एक आदमी के मन में बड़ा हर्ष हुआ। ४५ उसने कौशल्या को यह खुशखबरी सुनाई। उसे इतना अधिक हर्ष हुआ कि उससे चुप रहा न गया। ४६ उसने कहा— "मैं राजदरबार से सुन आया हूँ कि सुबह ही राम युवराज होंगे।" ४७ सुमित्रा ने सुना। उनके मन में बड़ा आनन्द हुआ। धन लुटाकर बहुतों को खुश किया। ४८ फिर दोनों रानियाँ राम के मंगल के लिए ध्यान देकर लक्ष्मी की पूजा करने लगीं। ४९ भले ही चाँद गर्म हो जाए, सूरज शीतल हो जाए, आग बर्फ़-सी ठंडी हो जाए, ५० पर यदि दशरथ का वचन मिथ्या हो जाए तो मानों अकाल में समुद्र सूख जाए। ५१ फिर भी राजा दशरथ कामुक होने के कारण रानी कैकेयी के वश में हैं, यह बात सोचकर मन में चिन्ता होती है। ५२ इसलिए कौशल्या कैकेयी से डरकर मन लगा दुर्गा की पूजा करने लगी। ५३ "हे दयामयी देवी, ऐसा कीजिए जिससे महाराज अपने वचन पर दृढ़ रहें। मेरा मनोरथ पूरा कीजिए। कैकेयी कुछ बोलें नहीं। ५४ राजा का चित्त किसके वश में रह सकता है। वह किसी का भी मीत नहीं होता। मेरी सौतन कैकेयी तो काली नागिन है। इससे मन में बड़ा डर लगता है। ५५ हे भवानी, मैं तुम्हारी दासी हूँ। जब तक मेरा तन रहे तब तक तुम्हारे

तुअ शङ्करि हम किङ्करि हे, यावत रह देह।
तुअ पद-कमल नियत रह हे, मोर अचल सिनेह ॥ ५६ ॥
रामचन्द्र सीतापति हे, होयता युवराज।
त्रिभुवन आन एहन सन हे, नहि हित मोर काज ॥ ५७ ॥

॥ सोरठा ॥

लेब जनम भरि नाम, रामचन्द्र बन जाथि जों।
सुरमण्डलि एक ठाम, कहल सरस्वतिसों तहाँ ॥ ५८ ॥
बद्धाञ्जलि सभ ठाढ़, करु उपाय नहि काल अछि।
संशय मन हो गाढ़, राज्य पाबिकें राजमद ॥ ५९ ॥

॥ रूपक-दण्डक छन्द ॥

शुनु शुनु देवि शारदा सुन्दरि, जाउ अयोध्या आजे, करु व्याजे
जाय उपाय तेहन करु सत्वर, राम न पाबथि राजे, सुर काजे ॥ ६० ॥
प्रथम मन्थरा काँ अँहाँ मोहब, तखन केकयी रानी, ठकुरानी
दशरथ-नृपति-मनोरथ-पङ्कज, कानन-दलन-हिमानी, बनु वाणी ॥६१॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण पर्व्वतीय बराड़ीय छन्द]

चललि शारदा सुर-हित-काज। दशरथ वनितागार समाज ॥ ६२ ॥

चरण-कमल में मेरा अचल नेह लगा रहे। ५६ सीतापति रामचन्द्र युवराज होंगे। तीनों भुवनों में इससे बढ़कर मेरी हितसिद्धि और कुछ भी नहीं हो सकती है।" ५७

सरस्वती की चाल से मन्थरा द्वारा कैकेयी का बहकावा

उधर स्वर्ग में देवताओं की मंडली जुटी हुई थी। वहाँ सभी हाथ जोड़कर खड़े सरस्वती से प्रार्थना कर रहे थे— "यदि रामचन्द्र वन जाएँ तो हम आजीवन आपका नाम लेंगे। कोई उपाय कीजिए। समय नहीं है। मन में गहरी आशंका होती है। राजगद्दी पा लेने पर सबके मन में कुछ राजमद आ जाता है। ५८-५९ सुनिए, सुनिए हे शारदा सुन्दरी देवी, आप आज ही अयोध्या जाइए। छल का प्रयोग कीजिए। देवलोक के हित में वहाँ जाकर कुछ ऐसा उपाय कीजिए जिससे राम राजगद्दी न पा सकें। ६० पहले आप मन्थरा को मोहिए, तब प्रभावशालिनी रानी कैकेयी को मोहिए। हे सरस्वती, आप दशरथ राजा के मनोरथ रूपी कमलवन को नष्ट करने के लिए बर्फ़ की राशि बन जाइए।" ६१ यह सुनकर सरस्वती देवताओं के हितार्थ दशरथ के रनिवास की मंडली पहुँची। ६२ वहाँ मन्थरा नामक दासी के

कय प्रवेश दासी-गल-देश। पटु पण्डिता मन्थरा वेश ॥ ६३ ॥
रानिहुँ काँ बानी नहि टेर। बाजवधू बुझ जेहन बटेर ॥ ६४ ॥
नृपतिक उच्च भवन आरूढ़ि। पुर शोभैं संक्षोभित मूढ़ि ॥ ६५ ॥
अनमनि पुछलनि कहु कहु धाइ। बड़गोट उत्सव की थिक आइ ॥ ६६ ॥
हर्षित धन कौशल्या देथि। याचक विप्र लोक से लेथि ॥ ६७ ॥
कहल धाइ रामक अभिषेक। करता भूपति उचित विवेक ॥ ६८ ॥
केकयि रानिक गेलि समीप। भेम्ह मन्थरा उत्सव दीप ॥ ६९ ॥
दासी भाभट कहल कि जाय। छाती पिटि पिटि भूमि लोटाय ॥ ७० ॥
कहलनि केकयी कह की भेल। कनइत किछु नहि उत्तर देल ॥ ७१ ॥
मिथ्या दुःखक स्वाङ्ग अनूप। डटलैं सौं हटि भेलि से चूप ॥ ७२ ॥
कानब हम नहि कानत आन। सङ्कट ककर पड़ल अछि प्राण ॥ ७३ ॥
पुछलनि केकयि कह हित काज। पड़ल कि कूबड़ि संकट आज ॥ ७४ ॥
सुनु स्वामिनि विधिगति विपरीत। नृपकाँ छल अपनहि मे प्रीति ॥ ७५ ॥
से छल सभ छल भेल परिणाम। युवराजक पद पओता राम ॥ ७६ ॥
सकल वस्तु तिलकक भेल वृत्त। ककरो कृत नहि रहल निवृत्त ॥ ७७ ॥

गले में घुस गई। वह बड़ी पटु और समझदार थी। ६३ वह रानी की बात को भी नहीं टेरती थी, जैसे मादा बाज़ पक्षी बटेर नहीं टेरती। ६४ वह राजा के ऊँचे महल पर खड़ी हो गई और नगर की शोभा देख-देख मतिमन्द क्षुब्ध हो रही थी। ६५ अन्यमनस्क भाव से उसने धाई से पूछा, "हे धाई, बड़ा भारी उत्सव हो रहा है, कहिए क्या बात है ? ६६ हर्षित हो कौशल्या धन बाँट रही हैं और याचक ब्राह्मण लोग दान ले रहे हैं।" ६७ धाई ने कहा— "राजा आज उचित विचार करके राम का अभिषेक करेंगे।" ६८ तब वह रानी कैकेयी के पास गई। वह मन्थरा उस उत्सव रूपी दीप के लिए भँभ बन गई (जो झंप मारकर दिये को बुझा देती है)। ६९ दासी मन्थरा ने जो नखड़ा किया वह क्या कहें। छाती पीट-पीटकर वह धरती में लोटने लगी। ७० कैकेयी ने पूछा— "कहो, तुम्हें क्या हुआ है ?" वह रोती रही और कुछ नहीं बोली। ७१ झूठे दुःख का बहाना अजब होता है। डाँट पड़ने पर उसने अलग हो रोना बन्द किया और बोली— ७२ "मैं नहीं रोऊँगी। रोना तो किसी और को है। किसके प्राण संकट में फँसे हैं ?" ७३ कैकेयी ने पूछा— "कहो, क्या चाहती हो ? कुबड़ी, आज तुम पर क्या संकट आ पड़ा है ?" ७४ तब मन्थरा बोली— "सुनिए मालिकिन, विधाता की चाल उलटी होती है। राजा को आपसे बड़ा प्यार था। ७५ लेकिन वह सब धोखा था। परिणाम आज सामने है। राम युवराज बननेवाले हैं। ७६ तिलक के लिए सभी चीज़ों का इन्तिज़ाम हो चुका है। किसी के भी प्रयास से वह रुक नहीं सका। ७७ हे सुन्दरी सखी, सुनिए। आज आपके लिए विधाता प्रतिकूल

शुनु शुनु सुमुखि विमुख विधि भेल। भरतो अपनेक नैहर गेल॥ ७८॥
नृपतिक अनुमति सौतिनि सङ्ग। दिन लग आयल देखब रङ्ग॥ ७९॥
अहँ गर्वित पलँगहिँ पर शूति। अनकर किछु नहि मानिअ जूति॥ ८०॥
गुण गौरव तामस विस्तार। डरसौं कि कहब अपन कपार॥ ८१॥
सुखिति सुमित्रा रहती वेश। लक्ष्मण रामक मतहि प्रवेश॥ ८२॥
अहँक अभाग्य कहल को जाय। सभ गुण गोबर अवसर पाय॥ ८३॥
नीति-निपुणता शुनल पुरान। शुनलहुँ नृपति मित्र कहुँ कान॥ ८४॥
चल-मति चढ़लहुँ स्वामिनि चाँच। घर उपवास द्वारपर नाच॥ ८५॥
अन्तःपुर सम्प्रति अभिमान। बाहर घर घर आनक आन॥ ८६॥

॥ हरिपद छन्द ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण श्रीछन्दोनामापि]

शुनि मन हर्ष केकयी रानी कहल माँग से पयबें।
रामचन्द्र युवराज सत्य तौं तों अशोचि भय जयबें॥ ८७॥
अन्तःपुर मे कहल लोक के गीत समय शुभ गाबें।
कार्य्य-सिद्धि-कारण हर-गिरिजा-गणपति लगलि मनाबें॥ ८८॥
नव नव वस्त्र विभूषण नव नव रानी सौं जन पाबें।
हर्षक नोर भरल रानी-दृग सरल सुराग सुनाबें॥ ८९॥

हो गये हैं। भरत को भी आपके ननिहाल भेज दिया गया। ७८ राजा की राय वही है जो आपकी सौतन की। दिन पास आ चुका है, देख लेना आगे का रंग। ७९ आप पलंग पर सोकर ही घमंड में चूर हो जाती हैं। दूसरों की कोई बात सुनती ही नहीं हैं। ८० जब अपने गुण का घमंड होता है तब गुस्सा बढ़ जाता है। डर के मारे बोलूँ क्या खाक। ८१ अब सुमित्रा खूब सुख से रहेंगी क्योंकि लक्ष्मण और राम दोनों का मत एक रहता है। ८२ आपकी बदनसीबी क्या बताई जाए। मौक़ा आने पर सारे गुड़ गोबर हो जाते हैं। ८३ राजा नीति-निपुण होता है यह तो सुनती थी; पर राजा किसी का दोस्त होता है, यह बात तो कभी सुनाई न पड़ी। ८४ हे चंचल बुद्धिवाली मालिकिन, आप फन्दे में पड़ गईं। घर में उपवास है और दरवाज़े पर नाच हो रहा है। ८५ अन्तःपुर में सम्प्रति अभिमान है। आपको बाहर तो घर जैसा लगता है और घर कुछ और ही हो गया है।" ८६ मन्थरा की बात सुनकर कैकेयी हर्षित हुई और बोली— "बोलो, जो माँगोगी वही पाओगी। यदि सचमुच में रामचन्द्र युवराज होनेवाले हैं तो तुम्हारा सारा दुःख-दारिद पार हो जाएगा।" ८७ फिर रनिवास में लोगों से कहा कि शुभ अवसर के गीत गाए जाएँ; और यह शुभ कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो, इस कामना से शिव, गौरी और गणेश को मनाने लगी। ८८ लोग रानी कैकेयी से नये-नये कपड़े, नये-नये गहने इनाम में पाने लगे। रानी की आँखों में हर्ष के आँसू

महाविघ्नकारिणी मन्थरा ग्रहण न कर मणिमाला।
उत्सव गीति प्रीतिसौँ शुनय न हृदय लागु जनि भाला ॥ ९० ॥

॥ चौपाइ ॥

एक दोष नहि साधल मौन। बजला जाइछ खायल नोन ॥ ९१ ॥
नृप-चिन्तित होयत जौँ काज। क्षण मे स्वामिनि छुटत समाज ॥ ९२ ॥
कत हम रहब कि ककर कहाय। शीरा बाँधल भाठ शुखाय ॥ ९३ ॥
जनि बल सौँ चलइत छल गाल। तनिके नृप की करता हाल ॥ ९४ ॥
हमहूँ कुबड़ि रहब कहु चूप। आगि लाग घर खनब न कूप ॥ ९५ ॥
स्वामिनि चरण कहैछी छूबि। अवश मरब सरयूमे डूबि ॥ ९६ ॥
केकयि कहल केहन तोर ज्ञान। मन अबइछ बजइछ केओ आन ॥ ९७ ॥
बिनु पढ़लें प्रतिभा अभ्यास। गण विशेष तन तोर निवास ॥ ९८ ॥
कूबड़ि कहल कहर भेल काल। व्यभिचरकतहु कि विधि-लिपि भाल ॥९९॥
एखनहुँ धरि केकयि काँ काट। ई विवाह सौँ चिन्हल ललाट ॥ १०० ॥
हमरा पर की पर उतपात। उच्चहि घर पर प्रबल बसात ॥ १०१ ॥
केकयि शुनल कहल खिसिआय। बजइतछें अनुचित अन्याय ॥ १०२ ॥

बहने लगे और वह उमंग के साथ गीत गाने लगीं। ८९ पर इस उत्सव में भारी विघ्न डालनेवाली मन्थरा ने इनाम के रत्नहार को ठुकरा दिया। उत्सव के गीत चाव से नहीं सुनती; उसके कलेजे में जैसे भाला चुभ गया हो। ९० मन्थरा बोली— "मुझमें एक ऐब है। मुँह को बन्द न रख सकी। नमक खाया है इसलिए कुछ बोल निकल ही जाते हैं। ९१ राजा जो चाहते हैं वह यदि सफल हो गया तो हे स्वामिनी, क्षण भर में संग छूट जाएगा। ९२ किसकी कहाकर मैं कहाँ रहूँगी ? नदी में जब ऊपर की ओर जलरोधक बाँध बन जाता है तो नीचे की ओर पानी सूख जाता है। ९३ जिनके बल से मेरा गाल चलता था, मैं ढिठाई के साथ कुछ बोलती थी, न जानें राजा उन्हीं का क्या हाल करेंगे। ९४ मैं कूबड़ी भी अब चुप्पी साधकर रहूँगी। घर में आग लग चुकने के बाद कुआँ खोदना शुरू नहीं करूँगी। ९५ हे मालिकिन, मैं आप के पाँव छूकर कहती हूँ, मैं अवश्य ही सरयू नदी में डूबकर आत्मघात कर लूँगी।" ९६ कैकेयी ने कहा— "अरी, तुम्हारा ज्ञान कैसा हो गया है ? लगता है जैसे कोई और बोल रही हो। ९७ पढ़े बिना ही तुममें प्रतिभा चमक उठी है। तुम्हारे शरीर में किसी देवगण का प्रवेश हो गया है।" ९८ कुबड़ी ने कहा— "अनर्थकारी जमाना आ गया। ललाट में विधाता जो लिख देते हैं उसमें कहीं अन्यथा हो सकता है। ९९ अब भी कैकेयी के लिए काँटा है। विवाह से ही भाग्य को पहचान लिया। १०० मुझ पर क्या संकट पड़ेगा ? आँधी का असर बड़े घरों पर ही पड़ता है।" १०१ कैकेयी सुनते ही गुस्से में आकर बोली— "तुम अनुचित और गलत बात बोलती

उत्सव समय कहैछे आन। कानी गायक भिन्न बथान ॥ १०३ ॥
भरतहुसौं प्रियकर मोर राम। कौशल्या छथि सौतिनि नाम ॥ १०४ ॥
सभ कर हमर हृदय-रुचि राखि। की होइत छौ अटपट भाखि ॥ १०५ ॥
दुस्सह कान करैछे घोल। डोकाकाँ फूजल मुह बोल ॥ १०६ ॥
एक किङ्करि काँ कहब बजाय। मारति तोरा कुबड़ तकाय ॥ १०७ ॥
बड़ि भभटिनि कपटिनि दुरि गेलि। भवनमे रहय योग्य नहि भेलि ॥ १०८ ॥
से सुनि कुबड़ी कहइछ कानि। हा हा हित करइत हो हानि ॥ १०९ ॥
मारी मरी हलाहल खाइ। धिक जीवन सौं भल मरि जाइ ॥११० ॥
राजभवन नहि कारागार। बुझल राग बाजल भल तार ॥ १११ ॥
परइङ्गित जन जे नहि जान। तनिका जानब पशुक समान ॥ ११२ ॥
छल भरोस अहँ किछु बुधिआरि। कहि सुनि स्वामिनि बैसलहुँ हारि ॥११३॥
कण्ठ सुखाइछ पिउब न पानि। चट पट खसब अटासौं फानि ॥ ११४ ॥
भरतो हयता रामक दास। की वन जयता लक्ष्मण त्रास ॥ ११५ ॥
सत्वर प्राण दैव लय लेथि। भल नहि सौतिनि स्वामिनि देथि ॥ ११६ ॥
सुध मति अपनें काँ नहि चाड़ि। हम दैछो सभटा मन पाड़ि ॥ ११७ ॥

हो। १०२ उत्सव के समय में तुम अनाप-शनाप बोलती हो। कानी गाय का बथान अलग होता है (अर्थात् सब खुश हैं तुम अकेली रोती हो)। १०३ मुझे तो राम भरत से भी बढ़कर प्यारे हैं। कौशल्या तो नाम मात्र के लिए मेरी सौतन है। १०४ वह तो सब कुछ मेरे मन के मुताबिक ही करती है। तुम्हें यह अटपट बात बोलकर क्या फल मिलता है? १०५ तुम मेरे कान में बरदाश्त के बाहर शोर मचा रही हो। मानो घोंघे के मुँह में वाणी आ गई हो। १०६ अब अधिक बोलोगी तो एक दासी को बुलाऊँगी और वह तुम्हें कूबड़ पर पीटेगी। १०७ तुम बड़ा नखड़ा करनेवाली, चालबाज, नीच हो गई हो। अब तुम महल में रहने लायक न रही।" १०८ यह सुनकर कूबड़ी रो-रोकर कहने लगी— "हाय हाय! नेकी करे तो बदी मिले! १०९ पिटाई खाकर मरूँ या जहर खाकर, ऐसी जिन्दगी को धिक्कार है। इससे तो मर जाना ही अच्छा है। ११० यह राजमहल कोई क़ैदख़ाना नहीं है। अच्छा हुआ कि तार से आवाज़ निकली और कौन राग बजता है यह समझ गई। १११ जो दूसरे का इशारा न समझे उसको पशु के बराबर समझना चाहिए। ११२ हे स्वामिनी, मुझे भरोसा था कि आप समझदार हैं। लेकिन कह-सुनकर मैं हार बैठी। ११३ गला सूख रहा है, पर पानी न पिऊँगी। जल्द अटारी से कूदकर प्राण त्याग कर लूँगी। ११४ भरत भी राम के दास बनकर रहेंगे या लक्ष्मण के डर से जंगल चले जाएँगे। ११५ अच्छा हो कि विधाता जल्द मेरे प्राण ले लें, पर सौतन को दासी न बनावें। ११६ आप भोलीभाली हैं, आपको फ़िक्र न होती। मैं सारी बात याद करा देती हूँ। ११७ आपको दशरथ ने

दुइटा वर नृप दशरथ देल। अछिए न्यासित अहँ नहि लेल ॥ ११८ ॥
सुरपति दशरथ केँ बजबाय। कहल धनुर्द्धर होउ सहाय ॥ ११९ ॥
असुर भयङ्कर समर विरुद्ध। नृप दशरथ सौँ माचल युद्ध ॥ १२० ॥
दशरथ रथक अक्ष सौँ कील। समर खसल भय गेल छल ढील ॥१२१॥
कील स्थान हाथ अहँ धयल। स्वामिनि साहस अतिशय कयल ॥१२२॥
नृप समरोत्सव से नहि जान। राखल सति नृपतिक तहँ प्रान ॥ १२३ ॥
असुरक प्राण नृपति रण हरल। तखन दृष्टि अपने दिश पड़ल ॥ १२४ ॥
कहि आश्चर्य लगाओल अङ्क। माँगु माँगु वर कहल निशङ्क ॥ १२५ ॥
अहँ तहँ कहल कृपाकर नाह। सत्य-प्रतिज्ञ वचन निर्व्वाह ॥ १२६ ॥
वर दुइगोट नाथ जोँ देब। अवसर पड़त तखन हम लेब ॥ १२७ ॥
से लिय माँगि कतय कछु त्रास। मन पड़ि आयल कयल प्रकास ॥ १२८ ॥

॥ हरिपद छन्द ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण नेपाल बराड़ीय छन्दोपि]

शञ्ब शञ्च पुन देवि शारदा केकयि कण्ठ समयिलो।
दया क्षमा मति नति उदारता गुणतति दूर पड़यिली ॥ १२९ ॥
कोप-भवन मे केकयि करुणाशून्या गहना त्यागल।
त्रेतामे कलि फलित-मनोरथ राजभवन मे जागल ॥ १३० ॥

दो वर दिए थे। वे आपने तत्काल नहीं लिये। वे दोनों वर यों ही पड़े हैं। ११८ इन्द्र ने दशरथ को बुलाया और उनसे अनुरोध किया कि हे धनुर्धर (तीरन्दाज़), आप मेरी मदद कीजिए। ११९ राजा दशरथ का राक्षसों के साथ भारी युद्ध मचा। १२० राजा दशरथ के रथ की धुरी का कील, जो ढीला पड़ गया था, लड़ाई के वक़्त ही गिर गया। १२१ उस कील की जगह आपने अपना हाथ दे दिया, इस प्रकार हे स्वामिनी, आपने भारी साहस किया। १२२ राजा को लड़ाई की धुन में यह बात मालूम न हुई। हे सती, आपने राजा के प्राण बचाए। १२३ राजा ने लड़ाई में राक्षस को मार गिराया, तब उनकी नज़र आपकी ओर गई। १२४ 'अचरज! अचरज!' ऐसा कहकर आपको राजा ने गले से लगाया और कहा— 'हे रानी, बेधड़क वर माँगो, वर माँगो।' १२५ वहाँ आपने कहा— 'हे नाथ! आपने बड़ी कृपा की। आप सत्यव्रती हैं, अपने वचन का पालन अवश्य करेंगे। १२६ हे नाथ, यदि आप दो वर देनेवाले हैं तो मैं अभी नहीं, अवसर आने पर लूँगी।' १२७ हे रानी, वे दोनो वर माँग लीजिए। कहीं कोई डर नहीं है। मुझे याद आ गया, इसलिए कह दिया।" १२८ फिर धीरे-धीरे देवी सरस्वती कैकेयी के गले में समा गई। उनमें जो दया, क्षमा, समझदारी, उदारता ये सभी गुण थे वे दूर भाग गए। १२९ कठोर होकर रानी कैकेयी ने अपने अलंकार त्याग दिए और कोपभवन में चली गई। मानो राजभवन में त्रेतायुग में ही कलि का प्रवेश हो

अनृत-वचन-रचनाकर दासी निकट बजाओल रानी।
कहलनि कह कह की कहाँ के कर के कर मोर हित हानी॥ १३१॥
कि कहब सुमति मन्थरा हमरा आँखि दुहुक तोँ तारा।
कर से उचित उपाय मन्त्रिणी सभ तोहरहि शिर भारा॥ १३२॥
तोहर पहिल विचार शुनल नहि बहुत अनादर सहलेँ।
जे जानहि से ठान आब तोँ बहुत कथा की कहलेँ॥ १३३॥
जोँ स्वामिनि विश्वास हमर अछि बुद्धि-साध्य अछि काजे।
सावधान रहु हमर बुद्धि-बल देखि लेब सभ आजे॥ १३४॥
ठामहि ठाम सकल रहि जायत जे अछि तिलकक साजे।
शपथ करैछी दशरथ अवथ चलि शकता महराजे॥ १३५॥

॥ चौपाइ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण केदार केदारीयं छन्दोपि]

कर करु स्वामिनि अवनी शयन। भृकुटी कुटिल रौद्ररस नयन॥ १३६॥
मलिन वसन तन फूजल केश। हृदय कतहु नहि करुणक लेश॥ १३७॥
परिहरु मुख पङ्कज मृदु हास। सामरि साविनि सन निश्वास॥ १३८॥

गया हो और वह अपना मनोरथ पूरा कर रहा हो। १३० तब झूठी बात गढ़नेवाली दासी को रानी ने अपने पास बुलाया और कहा— "कहो, कहो, कौन कहाँ क्या कर रहा है? मेरे हित को कौन बिगाड़ रहा है? १३१ मन्थरा, तुम अच्छी सूझवाली हो। मैं क्या कहूँ; तुम तो मेरी दोनों आँखों के तारे हो। हे मन्त्रणा देनेवाली, तुम जैसा उचित समझो वैसा उपाय करो। अब सारा भार-मदार तुम्हारे ही ऊपर है। १३२ पहले मैंने तुम्हारी बात नहीं सुनी, और तुम्हें बहुत अपमान सहना पड़ा। अब तुम्हें जो जान पड़े सो करो। ज्यादा कहने से क्या फल।" मन्थरा ने कहा— १३३ "हे मालिकिन, अगर आपको मुझ पर विश्वास है तो यह काम मेरी बुद्धि से बन सकता है। होशियार रहिये, मेरी बुद्धि के बल से कैसे कार्य सिद्ध होता है यह आज ही देख लेंगी। १३४ तिलक की जो तैयारी हुई है वह ज्यों-की-त्यों पड़ी रह जाएगी। मैं सौगन्ध के साथ कहती हूँ, राजा दशरथ को बे-रास्ता भी चलना पड़ेगा। १३५ हे मालिकिन, आप मिट्टी में लेट जाइए, भौंहें टेढ़ी कर लीजिए और आँखों में गुस्से का रंग भर लीजिए। १३६ बदन में गन्दा कपड़ा लगा लीजिए और बाल को बिखरे रहने दीजिए। हृदय में रहम का नामो-निशान मिटा दीजिए। १३७ चेहरे से मुसकान को दूर भगाइए। काली नागिन की

वानीवश रानी मतिहीनि । भय गेल दासी कुमति अधीनि ॥ १३९ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे अयोध्याकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण श्री मालव छन्द]

काज मन्त्रि कें कहि नृप देल । अपनें अन्तःपुर मे गेल ॥ १ ॥
नृपति न देखल केकयि आँखि । की वृत्तान्त उठल नृप भाखि ॥ २ ॥
अबइत हँसइत नित जे आब । केकयि काँ छल सिद्ध स्वभाव ॥ ३ ॥
नृप चिन्तातुर चित्त नितान्त । पुछलनि दासी सौं वृत्तान्त ॥ ४ ॥
स्वामिनि तोर कतय छथि आज । कोप-भवन मे जनु महराज ॥ ५ ॥
आह आह की कोप निदान । सापक चरण साप नृप जान ॥ ६ ॥
की भेल नृपतिक प्रबल प्रताप । कुबड़ि-कथा सुनि थरथर काँप ॥ ७ ॥
शञ्च शञ्च केकयि तट जाय । थर थर कर कर परसल काय ॥ ८ ॥
त्यागि पलंग की धरणी शयन । जिबइत हम देखइत छी नयन ॥ ९ ॥

तरह तेज़ साँस छोड़िए।" १३८ सरस्वती के प्रभाव से रानी की मति जाती रही और वह दासी मन्थरा की कुमन्त्रणा के जाल में फँस गई। १३९

॥ मैथिल चन्द्र कवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

राम को वनवास की आज्ञा

राजा दशरथ सारे कामों का भार मन्त्रियों को सौंपकर खुद रनिवास गए। १ वहाँ राजा को कैकेयी नज़र न पड़ी। क्या बात है, राजा के मुँह से निकला। २ वह तो राजा के आते ही रोज़ मुस्कुराती हुई आ जाती थीं —यह उनका सहज स्वभाव था। ३ राजा मन में बहुत घबराए और दासी से हाल पूछा— ४ "आज तुम्हारी मालिकिन कहाँ हैं?" दासी ने कहा—"हे महाराज, शायद वे कोपभवन में हैं।" ५ राजा बोले— "हाय-हाय ! कोप का क्या कारण हुआ?" दासी ने जवाब दिया— "हे महाराज, साँप के चरण को साँप ही जानता है, मैं क्या जानूँ।" ६ सुनते ही राजा का तेज उतर गया और वे कूबड़ी की बात सुनकर थरथर काँपने लगे। ७ धीरे से कैकेयी के पास गए और काँपते हुए हाथों से रानी की देह सहलाते हुए बोले— ८ "तुम पलंग छोड़ धरती पर लेटी हो और मैं जीते-जी आँखों से देख रहा हूँ। ९

असमय त्यागु कलावति कोप। करु जनु हमर मनोरथ लोप ॥ १० ॥
चलु निज भवन कि भेलहुँ बताहि। बड़ उत्सव दिन दिअ निमाहि ॥ ११ ॥
मलिन वसन धारण धिक ज्ञान। अलङ्करण तन प्रत्याख्यान ॥ १२ ॥
कहु निर्धन काँ बड़ धनि करिय। मानो धनी सकल धन हरिय ॥ १३ ॥
नारी पुरुष अहित जे हयत। दण्डबद्ध जीवन सौँ जयत ॥ १४ ॥
सुन्दरि सुमति कहू की आन। हेतु अहाँक त्यागि देब प्राण ॥ १५ ॥
रामक शपथ कहैछी खाय। करब न अहाँ विषय अन्याय ॥ १६ ॥
सत्य पराक्रम शोभाधाम। प्राणहुँ सौँ प्रियतम छथि राम ॥ १७ ॥
कुबड़ी फल बल कहय इरोत। चोर सहथि की कतहु इजोत ॥ १८ ॥
सुनि से नृपति देल अनठाय। बान्धल सिंह जकाँ पछताय ॥ १९ ॥
दासो चित्त भेल निर्भीक। कुकुरक भागेँ टूटल सींक ॥ २० ॥

॥ षट्पद छन्द ॥

राम शपथ नृप कयल कहल सुनि केकयि रानी ॥ २१ ॥
शञ्च उघाड़ल आँखि सत्य बान्धल नृप ज्ञानी ॥ २२ ॥
देवासुर सङ्ग्राम मध्य वर अहँ दुइ देलहुँ ॥ २३ ॥
से अछि न्यासित हमर प्रयोजन विनु नहि लेलहुँ ॥ २४ ॥

हे कलावती, बेवक़्त का गुस्सा छोड़ो। मेरे मनोरथ में विघ्न मत डालो। १० अपने भवन चलो। पागल हो गई हो क्या ? आज भारी उत्सव का दिन है। इसे निभाने दो। ११ आज यह मैला कपड़ा ? क्या मति हो गई तुम्हारी ? तन से गहने क्यों उतार लिये ? १२ कहो तो मैं अकिंचन को धनवान् बना दूं, घमंडी धनी का सारा धन हर लूँ। १३ स्त्री या पुरुष जो कोई तुम्हारा अहित करेगा वह सजा पाकर जान गँवाएगा। १४ हे समझदार सुन्दरी, मैं और क्या कहूँ ? तुम्हारे लिए मैं अपनी जान तक छोड़ दूँगा। १५ मैं राम की क़सम खाकर कहता हूँ, तुम्हारे प्रति मैं कभी अन्याय नहीं करूँगा। १६ सत्य, पराक्रम और शोभा से भूषित राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है।" १७ कूबरी चुपके से नज़र के ओट होकर बोली—"चोर कहीं उजाला बर्दाश्त कर सकता है ।"१८ राजा ने यह सुनकर भी अनसुना कर दिया और वे बन्धन में पड़े शेर की तरह पछताने लगे। १९ दासी का मन निडर हो गया। कुत्ते के भाग्य से सींका टूट गया। २० राजा ने राम की शपथ खाई, यह जानकर रानी कैकेयी ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं और समझ गई कि ज्ञानी राजा सत्य के बन्धन में फँस गए। फिर वह बोली। २१-२२ "हे राजा, आपने देवासुर-संग्राम के समय मुझे जो दो वरदान दिए थे। २३ वे आपके पास थाती किए हुए हैं। उस समय प्रयोजन नहीं था, इसलिए मैंने नहीं लिये। २४ आज मेरी याचना यही है कि भरत युवराज हों और राम

भरत होथु युवराज नृप राम जाथु दण्डक गहन ॥ २५ ॥
मुनिक वेष चौदह बरष हमर याचना अछि एहन ॥ २६ ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण सरसासावरीयं छन्दः]

हमर कहल नहि होयत भूप। डूबि मरब धसि पोखरि कूप ॥ २७ ॥
गरल अशन कय त्यागब प्रान। सङ्कल्पित जौँ होयत आन ॥ २८ ॥
केकयि कठिन वचन शुनि कान। नृप खसला मूर्छित अज्ञान ॥ २९ ॥
अशनि पतन तरुगण गति जेहन। केकयि कथा श्रवणसौँ तेहन ॥ ३० ॥
मूर्छित दशरथ नृप कौँ जानि। अन्तःपुर जनि उठली कानि ॥ ३१ ॥
दशरथ मन मन करथि विचार। विषमय विषम विषय संसार ॥ ३२ ॥
की दुःस्वप्न भ्रमाकुल चित्त। बूझि न पड़इछ एकर निमित्त ॥ ३३ ॥
मन नृप कह निद्रा नहि गाढ़ि। बाघिनि सनि रानी तट ठाढ़ि ॥ ३४ ॥
वचन न एहन शुनाविय कान। चट पट दय उड़ि जायत प्रान ॥ ३५ ॥
सुमति सुदति सति की मति आज। भोगब अहाँ अकण्टक राज ॥ ३६ ॥
कौशल्या कौँ नहि किछु काज। अहँइक राम अहँक सम्राज ॥ ३७ ॥
भेल कुसङ्ग ज्ञान सभ नष्ट। हमरा शिर मरणाधिक कष्ट ॥ ३८ ॥

मुनि का वेष धारण कर चौदह बरस दंडकवन में वास करें। २५-२६ हे राजा, यदि यह मेरी बात नहीं होगी तो मैं कुएँ या पोखरे में डूब मरूँगी। २७ यदि मेरी इस इच्छा के विपरीत बात होगी तो मैं जहर खाकर के प्राण-त्याग करूँगी।" २८ कैकेयी का यह कठोर वचन कान में पड़ते ही राजा सुध-बुध खो मूर्च्छित हो गिर पड़े। २९ कैकेयी की बात सुनकर राजा का वही हाल हुआ जो वज्र गिरने पर पेड़ों का होता है। ३० राजा दशरथ मूर्च्छित हो गए, यह सुनते ही रनिवास की स्त्रियाँ रोने लगीं। ३१ दशरथ मन में सोचते, "सांसारिक विषय अन्त में बुरा परिणाम देनेवाला कष्टमय होता है। ३२ क्या मेरा मन बुरे सपनों में भरम रहा है। इसका कोई रहस्य समझ में नहीं आता है।" ३३ फिर राजा मन में कहते हैं कि वे गाढ़ी नींद में तो नहीं हैं। (आँखें खोलकर देखते हैं कि) पास में बाघिन जैसी रानी कैकेयी खड़ी है। वे बोले। ३४ "प्रिये, ऐसा वचन मत सुनाओ। यह सुनकर तत्क्षण मेरे प्राण उड़ जाएँगे। ३५ :हे समझदार सुन्दरी, आज तुम्हारी मति ऐसी क्यों हो गई ? तुम ही तो यह निष्कंटक राज भोगोगी। ३६ कौशल्या को कुछ भी मतलब नहीं है। राम भी तुम्हारा ही है और यह राजपाट भी तुम्हारा ही है। ३७ बुरी संगत से तुम्हारी मति बिगड़ गई है। मेरे सर पर मरण से भी बड़ा संकट आ पड़ा है। ३८ हे निर्दय-हृदये, तुम्हें मैं क्या

॥ मत्तगजेन्द्र छन्द ॥

निर्दय चित्त हलाहल घोरि कहू हम को बरु आनि पिआऊ ॥ ३९ ॥
श्याम भुजङ्गमसौं अंग अंगमे केकयनन्दिनि आनि डसाऊ ॥ ४० ॥
कण्ठ मे बाँधि शिला बड़ि गोटि समुद्रक मध्यमे जाय डुबाऊ ॥ ४१ ॥
दुस्सह राम-वियोग-कथा हमरा जनु कामिनि कान शुनाऊ ॥ ४२ ॥

॥ चामरछन्द ॥

केकयी अहाँक दोष रामचन्द्र कैल की ॥ ४३ ॥
मन्थरा कुमन्त्रणा सुबुद्धि कान धैल की ॥ ४४ ॥
जीवनावलम्ब सौं अये वियोग भेल जौं ॥ ४५ ॥
लोकमे कलङ्क देह छोड़ि जीव गेल तौं ॥ ४६ ॥

॥ चञ्चला छन्द ॥

चञ्चला समान गौरि रामकाँ रहै दिऔनि ॥ ४७ ॥
राज पाट कोष ओ समस्त सैन्य लै लिऔनि ॥ ४८ ॥
नीक ई कहैतछी पतिव्रता-विचार-सार ॥ ४९ ॥
स्पष्ट कष्ट नष्ट हैत छूट लोक मे अभार ॥ ५० ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला संगीतानुसारेणेदं द्राविण्यासावरीयं छन्दः]

दशरथ-दशा कहल की जाय । केकयिक पअर धयल लपटाय ॥ ५१ ॥
कहु की रामचन्द्र सौं भीति । कयल कसाइनि सनि की रीति ॥ ५२ ॥
कहलनि केकयि भेलहुँ बताह । शुनितहिँ वचन हृदय उठ दाह ॥ ५३ ॥

कहूँ ? चाहो तो हलाहल लाओ और घोलकर मुझे पिला दो; ३९ कैकेयी, चाहो तो काले नाग लाओ और अंग-अंग में उनसे मुझे डँसा दो; ४० चाहो तो मेरे गले में एक भारी पत्थर लटकाकर मुझे बीच समुद्र में जा डुबाओ; पर हे कामिनी, मेरे कान में राम के विरह की असह्य कथा मत सुनाओ। ४१-४२ कैकेयी, बताओ तो, राम ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ? ४३ क्यों तुमने दुष्ट बुद्धि वाली मन्थरा की बुरी सलाहों पर कान दिया ? ४४ यदि मुझे प्राण के सहारे राम का विरह हो जाएगा तो दुनिया में बदनामी भी होगी और मेरे प्राण भी चले जाएँगे। ४५-४६ हे बिजली की चमक जैसी गोरी, राम को रहने दो। ४७ भले ही राजपाट, खज़ाना और सारी सेना उनके हाथ से ले लो। ४८ हे पतिव्रता के लायक विचार वाली, मैं तुम्हें यह भली बात कहता हूँ। ४९ इससे सभी विपत्तियाँ दूर होंगी और लोगों में कलंक भी न होगा।" ५० दशरथ का हाल क्या बताएं। वे कैकेयी के पाँवों से लिपट गए और बोले। ५१ "बताओ तो, तुम्हें राम से क्या डर लगता है ? क्यों तुम कसाई की चाल चली ?" ५२ कैकेयी ने कहा— "आप पागल

सत्य-प्रतिज्ञ सुयश बड़ गोट। भय जायब मर्य्यादा छोट॥ ५४॥
रामक शपथ कयल कय बेरि। वर माँगल हम अवसर हेरि॥ ५५॥

॥ नाराच छन्द ॥

कहू कहू नृपेन्द्र की वरप्रदान देल जे॥ ५६॥
वृथा कथा करैतछी कि आइ माँगि लेल से॥ ५७॥
कनैतछी बजैतछी जनैतछी न की अहाँ॥ ५८॥
विना विचार काज मे प्रयत्न कैल की कहाँ॥ ५९॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिलासंगीतानुसारेणेदं शुद्धमलारीयं छन्दः]

धरणी शयन चयन नहि चित्त। दुर्गति कामिनि प्रीति निमित्त॥ ६०॥
संज्ञाशून्य मृतक समतूल। केकयि कहथि वचन प्रतिकूल॥ ६१॥
विगत रात्रि जनु बरष समान। दशरथ आधि जान के आन॥ ६२॥
बाहर उत्सव हर्षित लोक। अन्तःपुर पसरल बड़ शोक॥ ६३॥
अरुणोदय भेल नृपति जगाब। वन्दी गायन गुणगण गाब॥ ६४॥
केकयि शासन शुनि भयभीत। विरुद पढ़ी जनु गाबो गीत॥ ६५॥
सम्प्रति स्वस्थ चित्त नहि भूप। की आयल छी वसकू चूप॥ ६६॥
तिलक निमित्त वस्तु सभ धयल। मन्त्रि सुमन्त्र वृत्त सभ कयल॥ ६७॥

हो गए हैं क्या ? आपका बोल सुनकर तो मेरा कलेजा जल उठा। ५३ लोगों में आपका बड़ा नाम है कि आप सत्य पर अडिग रहनेवाले हैं। ऐसा करने से तो आपकी प्रतिष्ठा गिर जाएगी। ५४ आपने वर देने के लिए कई बार राम की शपथ खाई है। मैंने तो अवसर पाकर ही वर माँगा है। ५५ कहिए, कहिए महाराज, आपने जो वर दिया उसे अगर मैंने आज माँग लिया तो आप बेकार की बातें क्यों करते हैं ? ५६-५७ आप रोते-बिलखते तो हैं, पर यह नहीं जानते हैं कि आप मुझसे राय-विचार किए बिना ही क्या-क्या करने लगे ?" ५८-५९ राजा दशरथ धरती में सोए हुए हैं। उनका चित्त अशान्त है। स्त्री के प्रेम में पड़कर उनकी यह दुर्दशा हुई है। ६० होश जाते रहे। मुर्दे-जैसे पड़े हुए हैं। फिर भी कैकेयी कड़वी बातें बकती जा रही है। ६१ एक साल जैसे वह एक रात बीती। दशरथ की व्यथा को और कौन जान सकता है ? ६२ बाहर लोग उत्सव से हर्षित हैं, पर अन्तःपुर में भारी शोक छाया हुआ है। ६३ भोर की लाली छाई। वन्दीगण जगाने के लिए राजा का गुणगान करने लगे। ६४ पर कैकेयी की आज्ञा हुई— "विरुदावली पढ़ना और गाना बन्द करो। महाराज की तबीयत ठीक नहीं है। तुम लोग नाहक आए। यहाँ से चुपचाप निकल जाओ।" आज्ञा सुनते ही सभी डर गए। ६५-६६ तिलक के लिए सारी चीजें रखी थीं। मन्त्री सुमन्त्र ने सब

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यक जाति । निद्रा तनिकाँ आँखि न राति ॥ ६८ ॥
ऋषिकन्या-गण पाँतिक पाँति । बाल वृद्ध तिय भाँतिक भाँति ॥ ६९ ॥
पीताम्बर सुन्दर श्रीराम । कखन देखब छवि शोभाधाम ॥ ७० ॥
कटक किरीटी सर्व्वाभरण । कोटि-मनोभव-शोभा-हरण ॥ ७१ ॥
नव घनश्यामल शोभागार । कौस्तुभ-शोभित परमोदार ॥ ७२ ॥
स्मितमुख गजवर-पीठ विराज । लोक कहत जय जय युवराज ॥ ७३ ॥
श्वेतछत्र धर लक्ष्मण सङ्ग । देखब कखन तखन जे रङ्ग ॥ ७४ ॥
उत्सुक चित्त सकल पुर लोक । द्वार दोसर धरि नहि छल रोक ॥ ७५ ॥
जागल छला राति महिपाल । उठला(ह)अछि नहि एतबहु काल ॥ ७६ ॥
अनुदित दिनकर उठथि सदाय । आइ सुतल छथि की अलसाय ॥ ७७ ॥
भेल अबेरि शयन छथि भूप । मन्त्रि विचार कयल चुपचूप ॥ ७८ ॥
चिन्तातुर नृपतिक घर जाय । शन्चहि जय जय शब्द सुनाय ॥ ७९ ॥
नृप अचेष्ट नहि सुन किछु शोर । मुद्रित नयन युगल बह नोर ॥ ८० ॥
धरणी शयन न नयन उघार । केकयि नयन कोप विस्तार ॥ ८१ ॥
करुण-रसार्दित दशरथ भूप । केकयि बनली रौद्र स्वरूप ॥ ८२ ॥
मन्त्री मन व्याकुल अथऊत । विधि गति टारि न ककरो बूत ॥ ८३ ॥

कुछ जुटाया था । ६७ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किसी को भी उत्सुकतावश रात भर नींद न हुई थी । ६८ झुंड के झुंड ऋषि-कन्याएँ, बच्ची से लेकर बूढ़ी तक तरह-तरह की स्त्रियाँ जुट गई थीं । ६९ आज दूसरे फ़ाटक तक आने में किसी को रोक नहीं थी। नगर के सभी लोगों के मन में यह उत्सुकता थी कि पीताम्बर पहने, कटक-किरीट आदि गहनों से भूषित, करोड़ों कामदेव की शोभा को दबानेवाले, नये बादल-से श्यामवर्ण, कौस्तुभ मणि लगाए, श्वेत छत्र लिये लक्ष्मण-सहित हाथी की पीठ पर सवार, प्रजा के मुँह से 'युवराज की जय हो' की ध्वनि सुनते हुए सुभगमूर्ति श्रीरामचन्द्र को कब देखूँगा । ७०-७५ लोग बोलते थे— लगता है राजा दशरथ रात में जगे थे, इसीलिए अभी तक जगे नहीं हैं । ७६ वे तो हमेशा सूरज निकलने से पहले जगते थे। क्या कारण है कि आज अलसाकर सोए हुए हैं । ७७ मन्त्री ने मन ही मन सोचा, देर हो रही है, अभी तक राजा सोए ही हैं, सो क्यों ? ७८ मन्त्री चिन्ता के साथ राजा के घर गये, और धीरे से जय-जयकार सुनाया । ७९ राजा बेहोश पड़े थे। कोई आवाज़ उन्हें नहीं सुनाई दी। दोनों आँखें बन्द थीं और उनसे आँसू बह रहे थे । ८० धरती पर सोए हुए थे और आँखें नहीं खोलते थे। कैकेयी की आँखों में गुस्सा भरा था । ८१ इधर राजा दशरथ करुण-रस में डूबे हुए हैं और उधर कैकेयी साक्षात् रौद्र-रस बनी हुई थी । ८२ मन्त्री का मन तरह-तरह की आशकाओं से व्याकुल हो गया। विधाता के विधान को टालना किसी के भी बूते की बात नहीं है । ८३ मन्त्री ने हाथ

केकयि कें कहलनि कर जोड़ि। कहु की थिक तामस कें छोड़ि॥ ८४॥
निन्द न सगर राति नृप नयन। विकल नृपति कोढहुँ छथि शयन॥ ८५॥
बुझि कत पड़इछ की थिक आधि। देखल शुनल नहि एहन समाधि॥ ८६॥
राम राम रटइत भेल भोर। बहल बहल चल नयनक नोर॥ ८७॥
वारिज-नयन रामकाँ लाउ। सत्वर रामक वदन देखाउ॥ ८८॥
स्वामिनि लायब राम बजाय। नृप-आज्ञासौं से थिक न्याय।
देखब राम कहल नृप कानि। सत्वरतर तनिकाँ दिअ आनि॥ ८९॥
शीघ्र सुमन्त्र कयल शुनि गमन। जाय अवारित रामक भवन॥ ९०॥
सरसीरुह-लोचन शुनु राम। चलु चलु सम्प्रति भूपति-धाम॥ ९१॥
शीघ्र बजाओल अछि किछु काज। गड़बड़ सन मन लगइछ आज॥ ९२॥
लक्ष्मण-सहित राम रथ हाँकि। नृप लग पहुँचल सभ दिश ताकि॥ ९३॥
कयल पिताक चरण परणाम। नृप जानल आएल छथि राम॥ ९४॥
हुनकाँ हृदय लगाबक बेरि। सम्भ्रम उठला खसला फेरि॥ ९५॥
रामचन्द्र बजला हा हाय। लेल पिता काँ अङ्क लगाय॥ ९६॥
राज-दार उच्चस्वर कान। नृपकाँ की भय गेल अग्यान॥ ९७॥
राजतिलक संभृति भेल व्यर्थ। अन्तःपुर किछु भेल अनर्थ॥ ९८॥

जोड़कर कैकेयी से कहा— "हे देवी, कोप को दूर कर बताइए तो क्या बात है? ८४ रानी कैकेयी ने कहा— "राजा को रात भर नींद नहीं आयी है। न जाने क्यों ये विकल होकर लेटे हुए हैं। ८५ समझ में नहीं आता कि इनके मन में कौन-सी व्यथा घर कर गई है। ऐसी विकलता तो मैंने न कहीं देखी, न सुनी। ८६ राम-राम रटते-रटते भोर कर दिया, और आँखों से आँसू बहते रहे। ८७ अब कमलनयन रामजी को बुला लाइए और जल्द राजा को उनका चेहरा दिखाइए।" ८८ मन्त्री ने कहा— "हे महारानी, रामजी को बुला तो लाऊँगा, पर उचित होता कि राजा की आज्ञा ले ली जाती"। राजा रोते हुए बोले— "हाँ, मैं राम का मुँह देखूँगा, उसे जल्द से जल्द बुला दीजिए।" ८९ सुनते ही मन्त्री शीघ्र चल पड़े और बेरोक-टोक राम के भवन में पहुँचे और बोले— ९० "हे कमलनयन राम, अभी तुरत राजा के पास चलिए। ९१ राजा ने आपको किसी काम से तुरत बुलाया है। आज उनका मन कुछ गड़बड़-सा लगता है।" ९२ सुनते ही लक्ष्मण-सहित राम रथ पर सवार हो चौकन्ना होते राजा के पास पहुँचे। ९३ उन्होंने पिता के चरणों में प्रणाम किया। राजा को मालूम हुआ कि राम आए हैं। ९४ उन्हें छाती से लगाने के लिए हड़बड़ाकर उठे और उठते ही फिर गिर पड़े। ९५ रामचन्द्र ने हाय-हाय करते हुए पिता को गले से लगा लिया। ९६ रानियाँ ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं, हाय, राजा को न जाने क्या हो गया। ९७ राजतिलक की सारी तैयारी बेकार गई। लगता है रनिवास में कोई अनर्थ हो गया है। ९८ राम

राम पुछल नृप-आधि-निदान। केकयि कहलनि हमरा ज्ञान ॥ ९९ ॥

॥ दोबय छन्द ॥

[राग-तरंगिणी-मतानुसारेण शुद्धकोडारीयं छन्दः]

शुनु शुनु राम काम-मद-मोचन, शोचहिँ भूपति मरता ॥ १०० ॥
काज-जहाज अधीन अहँक अछि, सङ्कट-जलनिधि तरता ॥ १०१ ॥
अहाँ सुपुत्र वंशमे भेलहुँ, पिता-धर्म सभ राखब ॥ १०२ ॥
अहँक पिताकाँ कहइत लज्जा, हम मिथ्या नहि भाखब ॥ १०३ ॥
वर दुइ गोट धयल छल पूर्व्वक, नृप सुकृती सौँ माँगल ॥ १०४ ॥
अपना नीकक सभकाँ इच्छा, अयश-पताका टाँगल ॥ १०५ ॥
बापक जौँ सन्ताप हरब नहि, नरकक होएता भाजन ॥ १०६ ॥
सत्य-प्रतिज्ञ कथा कत जाएत, अयशक बाजत बाजन ॥ १०७ ॥
शुनु शुनु श्रवण-शूल सम बाणी, जननी जानि सहैछी ॥ १०८ ॥
भाखिअ अनृत कथा न राम हम, शपथहिँ सत्य कहैछी ॥ १०९ ॥
पिता-काज जीवन काँ त्यागब, विष भक्षण कय मरबे ॥ ११० ॥
सीता ओ कौशल्या त्यागब, राज पाट की करबे ॥ १११ ॥
बिन कहलहुँ जे पिताकार्य्य कर, से थिक उत्तम बालक ॥ ११२ ॥
मध्यम कहलेँ करथि न कहलेहु, करथि अधम कुल-घालक ॥ ११३ ॥

ने पूछा— "राजा की इस विकलता का क्या कारण है ?" कैकेयी ने कहा— "मैं जानती हूँ। ९९ हे कामदेव से अधिक सुन्दर राम, लगता है, राजा शोक से प्राण त्याग कर देंगे। १०० अब कर्तव्य-रूपी जहाज आप ही के हाथ में है जिससे राजा इस शोक-रूप समुद्र को पार कर सकेंगे। १०१ आप इस वंश में सपूत होकर पैदा हुए। आप पिता के धर्म की रक्षा करेंगे। १०२ आपके पिता को वह कर्तव्य कहने में लज्जा हो रही है। मैं झूठ नहीं कहूँगी। १०३ पूर्व के मुझे दो वर राजा के पास थाती थे। मैंने पुण्यवान् राजा से वे दोनों वर माँगे। १०४ अपनी भलाई की इच्छा तो सबको होती है। पर अयश की पताका टँग गई। १०५ यदि आप पिता के सन्ताप को दूर नहीं करेंगे तो वे नरक के भी भागी होंगे। १०६ उनकी सत्यप्रतिज्ञता की प्रतिष्ठा मिट जाएगी और अयश के बाजे बजने लगेंगे।" १०७ राम ने कहा— "सुनिए, कान में बरछे की भाँति चुभनेवाली बात सुनिए। आप माता हैं, यह समझकर मैं बर्दाश्त करता हूँ। १०८ मैं राम हूँ, झूठ नहीं बोलता। शपथ के साथ सच्ची बात कहता हूँ। १०९ पिता के वास्ते मैं प्राण दे सकता हूँ; जहर खाकर मर सकता हूँ; ११० राजपाट कौन कहे, सीता और कौशल्या को भी छोड़ सकता हूँ। १११ जो बिना कहे भी पिता का काम करता है वह उत्तम बालक है, ११२ जो कहने पर करता है वह मध्यम है और जो कहने पर भी

पिता कहल नहि करब अन्यथा सत्य प्रतिज्ञा कयलहुँ ॥ ११४ ॥
तनिकर आज्ञा-पालन-कारण, कहु कि कृत्त भय अयलहुँ ॥ ११५ ॥
करुणारहित कहल शुनि केकयि, धन्य धन्य हे राम ॥ ११६ ॥
जनक-अभीष्ट शिष्ट जन करइछ, त्रिभुवन तनिके नाम ॥ ११७ ॥
अहँ युवराज-काज राजा जे, मङ्गबाओल सम्भार ॥ ११८ ॥
भरत होथु युवराज ताहिसौं, ई सिद्धान्त विचार ॥ ११९ ॥
शुनु गुण-धाम राम कहइत छी, दण्डक-वन अहँ जाउ ॥ १२० ॥
चौदह वर्ष वनी भय रहुगय, कन्द मूल फल खाउ ॥ १२१ ॥
स्मितमुख राम कहल केकयि सौं, भरत होथु युवराजे ॥ १२२ ॥
हम दण्डक-वन गमन करैछी, नृप व्रत-पालन काजे ॥ १२३ ॥
बड़ गोट शोच पिता हमरासौं, नहि बजइत छथि आजे ॥ १२४ ॥
प्रजा पालना भरत करथु भल, भोगथु सभ सम्राजे ॥ १२५ ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण शंकूकनाटीयं छन्दः]

देखलनि नृपति राम छथि ठाढ़ । कयल विलाप दुःख बड़ गाढ़ ॥ १२६ ॥
उत्पथ-वर्त्ति भ्रान्ति मन जानु । हम स्त्रीजितक वचन नहि मानु ॥ १२७ ॥
बलसौं भोगिअ समुचित राज । अनुचित कहत न एक समाज ॥ १२८ ॥

नहीं करता है वह कुल-घालक है। ११३ मैं पिता के वचन को अन्यथा नहीं करूँगा। मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। ११४ पिता की आज्ञा के पालन के लिए, कहिए क्या करना है? मैं तैयार होकर आया हूँ।" ११५ यह सुनकर कठोर-हृदय कैकेयी ने कहा— "हे राम, आप धन्य हैं। ११६ जो भले लोग पिता की इच्छा पूरी करते हैं, तीनों लोकों में उन्हीं का नाम होता है। ११७ आपको युवराज बनाने के लिए तो सामान राजा ने मँगाए हैं, उनसे भरत का राज्याभिषेक किया जाए, यही बात तय पाई है। ११८-११९ हे गुणधाम राम, और भी सुनिए। आप दंडक-वन जाइए, वहाँ चौदह वर्ष वनवासी होकर रहिए, और कन्द-मूल-फल खाइए।" १२०-१२१ मुस्कुराते हुए राम ने कैकेयी से कहा— "भरत युवराज हों! मैं दंडक-वन जाता हूँ, ताकि राजा के वचन का पालन हो। १२२-१२३ मुझे इस बात का बड़ा दुख है कि पिता आज मुझसे बोल नहीं रहे हैं। मेरी शुभ कामना है कि भरत भली-भाँति प्रजा का पालन करें और साम्राज्य का भोग करें।" १२४-१२५ राजा दशरथ ने देखा कि राम सामने खड़े हैं। वे बड़ी गाढ़ी व्यथा से बिलखने लगे। १२६ "हे राम, तुम मुझे बुरे रास्ते पर चलनेवाला भटका हुआ आदमी समझो। मैं स्त्रीजित हो चुका हूँ अर्थात् अपने को स्त्री के वश में कर लिया है। इसलिए ऐसे आदमी की बात तुम मत मानो। १२७ तुम बलपूर्वक इस राज का भोग करो।

एहि सौँ हमरहुँ होयल न पाप। हरु रघुनन्दन मन सन्ताप ॥ १२९ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

[मिथिला संगीतानुसारेण केदारमालवीयं छन्दः]

जगन्नाथ अनाथ हमछी प्राण-वल्लभ राम ॥ १३० ॥
विपिन जायब त्यागि हमरा शून्य पापिनि-धाम ॥ १३१ ॥
कयल स्त्री-विश्वास जे हम तकर फल परिणाम ॥ १३२ ॥
हमर मन-अभिलाष सभटा रहल ठामहि ठाम ॥ १३३ ॥
नृपति ई कहि रामकाँ निज हृदय लेल लगाय ॥ १३४ ॥
उच्चस्वरसौँ करथि क्रन्दन दशा कहल कि जाय ॥ १३५ ॥
राम निजकर-कमल जलसौँ नयन देल धोआय ॥ १३६ ॥
कयल जाय न पिता चिन्ता आब की पछताय ॥ १३७ ॥
हमहुँ पुनि घर घूरि आयब भरत छथि युवराज ॥ १३८ ॥
राजसौँ वन कोटि गुण सुख लाभ मुनिक समाज ॥ १३९ ॥
कहब चिन्ता जननि करु जनु करब चरण प्रणाम ॥ १४० ॥
किछु विलम्ब न तखन जायब जनकतनया-धाम ॥ १४१ ॥
केकयी काँ आधि छूटत एतय आयब फेरि ॥ १४२ ॥
पिता-चरण-सरोज पर शिर धरब हम कय बेरि ॥ १४३ ॥
कय प्रदक्षिण तखन गेला जननि दर्शन राम ॥ १४४ ॥

कोई भी अनुचित नहीं कहेगा। १२८ इससे मुझे भी पाप नहीं लगेगा। हे रघुनन्दन, ऐसा करके तुम मेरा सन्ताप दूर करो। १२९ हा ईश्वर ! आज मैं अनाथ हो गया ! मेरा प्राणप्यारा राम मुझे इस पापिन के सूने घर में छोड़कर वन चला जाएगा। १३०-१३१ मैंने जो स्त्री का विश्वास किया उसी का यह फल मिला है। १३२ मेरे मन के सारे अरमान जहाँ के तहाँ रह गए।" १३३ राजा ने इतना कहकर राम को छाती से लगा लिया। १३४ वे फूट-फूटकर रोने लगे। उनकी दशा का वर्णन नहीं हो सकता है। १३५ राम ने अपने हाथ में पानी लेकर राजा की आँखों को धो दिया और बोले— १३६ "हे पिता, चिन्ता मत कीजिए। अब पछताकर क्या होगा। १३७ मैं भी लौटकर आ जाऊँगा। तब तक युवराज भरत तो हैं ही। १३८ वन में राज-सुख से भी कई गुना अधिक सुख है, जहाँ ऋषियों का समाज मिलता है। १३९ वन से लौटने पर मैं माता के चरणों में प्रणाम करूँगा और कहूँगा कि हे माता, अब चिन्ता मत करो। १४० कुछ समय नहीं लगेगा। उसके बाद जानकी के पास जाऊँगा। १४१ कैकेयी के मन की व्यथा तब तक दूर हो गई रहेगी। फिर मैं यहाँ लौट आऊँगा। १४२ पिता के चरण-कमल पर बार-बार सिर रखूँगा।" १४३ इतना कहकर राम राजा का प्रदक्षिण करके

होम पूजा ध्यान बहुविध दान हो तहि ठाम ।। १४५ ।।

।। दोहा ।।

रामचन्द्र-आगमन किछु कौशल्या नहि जान ।। १४६ ।।
विभु विष्णुक कयले छली राम-हेतु से ध्यान ।। १४७ ।।

।। इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे अयोध्याकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

।। चौपाइ ।।

[मिथिला-संगीतानुसारेण मिथिला गोड़-मालव छन्द]

जें कौशल्या जानथि शञ्च । तेहन सुमित्रा कयल प्रपञ्च ।। १ ।।
रामक छवि देखल भरि नयन । नील-कमल-निन्दक छवि अयन ।। २ ।।
लेल अङ्क भरि लगइत गोड़ । सुत-मुख देखि हर्ष नहि थोड़ ।। ३ ।।
कौशल्या उठि कहलनि आउ । देव-प्रसाद मधुर किछु खाउ ।। ४ ।।
जननि न अवसर बड़ अगुताइ । चललहुँ अछि दण्डक-वन आइ ।। ५ ।।
कैकयि-वरक विवश महिपाल । विकल पड़ल छथि चिन्ताजाल ।। ६ ।।

माता कौशल्या के दर्शन के लिए चल पड़े। १४४ जहाँ तरह-तरह के हवन, पूजन, ध्यान और दान किए जा रहे थे। १४५ कौशल्या को मालूम न हुआ कि राम आए, क्योंकि वे राम के कल्याण के लिए परमेश्वर विष्णु के ध्यान में मग्न थीं। १४६-१४७

।। मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

चौथा अध्याय

लक्ष्मण और सीता का वन जाने का आग्रह

कौशल्या को चुपके से खबर हो जाए, सुमित्रा ने ऐसा उपाय किया। १ कौशल्या ने राम की छवि छककर देखी जो नीलकमल की शोभा को हरानेवाली थी। २ राम प्रणाम करने आए तो उन्हें गोद में ले लिया। पुत्र का मुँह देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। ३ फिर उठकर कहा— "आओ प्यारे, भगवान् का प्रसाद मिठाई कुछ खा लो।" ४ राम ने कहा— "हे माता, आज मुझे मिठाई खाने की फ़ुरसत नहीं है। बड़ी शीघ्रता करनी है। मैं दण्डक-वन जा रहा हूँ। ५ राजा कैकेयी के वर से विवश हो चिन्ता-जाल में फँसे व्याकुल पड़े हुए हैं। ६ यहाँ भरत युवराज होंगे। मेरी कुटी बनवासी

भरत एतय होयता युवराज। हमर कुटी मुनि वनो समाज॥ ७॥
कन्द मूल फल भल आहार। चौदह वर्ष एहन व्यवहार॥ ८॥
आयब अवश तदुत्तर फेरि। चिन्ता जननि न करु एहि बेरि॥ ९॥
सुनि मूर्च्छित उठि कहलनि हाय। हमहूँ वन जायब से न्याय॥ १०॥
अहँ विनु कोन गति जीवन रहत। विषम वियोग प्राण कत सहत॥ ११॥
राज भरत नृप-अनुमति लेथु। अहँ काँ विपिन-वास जनु देथु॥ १२॥
केकयि भूपक कयल न दोष। सुत सज्जन पर एतगोट रोष॥ १३॥
नृप छथि पिता हमहुँ छी माय। हमहुँ देब नहि कानन जाय॥ १४॥
बचन हमर जौं धरब न कान। सुनु सुत त्यागब एखनहि प्राण॥ १५॥
सुनि लक्ष्मण कौशल्या-करुण। भृकुटी कुटिल नयन अति अरुण॥ १६॥
कहल शूरतासौं से वाक। केकयि राजा देलनि डाक॥ १७॥
सभ जन सुनु किछु हमर न दोष। प्रलय-करण मन आगल रोष॥ १८॥
केकयि-वश उनमत्त बताह। बड़ अनुचित कर धरणी-नाह॥ १९॥
नृपकाँ देब हरी मे ठोकि। भरतक हृदय बाण देब भोकि॥ २०॥
एतटा दर्प्प केकयी-चित्त। रामचन्द्र वन वृथा निमित्त॥ २१॥
चलु चलु नाथ होउ युवराज। तखन देखब संसारी काज॥ २२॥

मुनियों के साथ तपोवन में होगी। ७ वहाँ कन्द-मूल और फल अच्छा खाना मिलेगा। चौदह बरस इस तरह रहना है। ८ उसके बाद मैं जरूर लौटकर आऊँगा। हे माता, इस बार आप चिन्ता मत कीजिए।" ९ सुमित्रा इतना सुनते ही मूर्च्छित हो गिरी और फिर होश में आकर बोली— "मैं भी वन जाऊँगी; यही उचित होगा। १० तुम्हारे बिना मेरी जिन्दगी कैसी रहेगी। तुम्हारा दारुण बिछोह मेरे प्राण कितना सहेंगे? ११ भरत राजा की आज्ञा से राज लेना चाहें तो लें। पर तुमको वनवास न दें। १२ राम ने तो कैकेयी का या राजा दशरथ का कुछ नहीं बिगाड़ा है। फिर सज्जन पुत्र पर इतना क्रोध क्यों? १३ राजा तुम्हारे पिता हैं। मैं भी तो तुम्हारी माता हूँ। मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूँगी। १४ यदि तुम मेरी बात नहीं सुनोगे तो हे पुत्र, सुन लो, मैं इसी क्षण प्राण त्याग दूँगी। १५ कौशल्या की करुणा-कथा सुनकर लक्ष्मण की भौंहें टेढ़ी हो गईं; आँखें लाल हो गईं। १६ वे वीर-भाव में आकर बोले— "कैकेयी और राजा दशरथ ने अनर्थ किया। १७ सब कोई सुनिए। मुझको दोष न देना। मेरे मन में प्रलय मचानेवाला क्रोध जाग उठा है। १८ कैकेयी के वश में पड़कर राजा पागल हो गए हैं। वे बड़ा अनुचित कर रहे हैं। १९ राजा को पागल की बेड़ी पहना दूँगा और भरत की छाती में बाण चुभो दूँगा। २० कैकेयी को मन में इतना बड़ा अभिमान हो गया। रामचन्द्र को बिना किसी कारण के वनवास दे दिया!" २१ फिर उन्होंने

जनिकाँ अरुचि होयत मन आन। तनिक हृदय मे वेधव वाण ॥ २३ ॥
राम कहल शुनु लक्ष्मण वीर। असमय त्यागु धनुष ओ तीर ॥ २४ ॥
अहँक सत्त्व हमरा अछि ज्ञात। नहि कर्त्तव्य एखन उत्पात ॥ २५ ॥
देखइत छी जे ई संसार। सकल भरल विष विषय-विकार ॥ २६ ॥
विद्युत जेहन चमकि छवि जाय। जानव तेहन भोग्य-समुदाय ॥ २७ ॥
अनल-तप्त लौहक पर जेहन। वारि-विन्दु आयुक गति तेहन ॥ २८ ॥
भेक व्याल-गलमे पड़ि जाथि। टप टप तँओ माछी खाथि ॥ २९ ॥
काल-व्याल सौँ जन छथि ग्रस्त। तदपि न विषय-मनोरथ व्यस्त ॥ ३० ॥
माय बाप सुत भ्राता दार। प्रपा-मिलन सन सुख संसार ॥ ३१ ॥
देह भोग लय पल पल खिन्न। ई शरीर पुरुषहु सौँ भिन्न ॥ ३२ ॥
बन्धु-समूह-जनित सुख-भोग। जानव नदिया-नाव-संयोग ॥ ३३ ॥

॥ हरिपद ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण देवराज-विजय छन्दः ॥]

लक्ष्मी थिकि चपला छाया सनि तन-तारुण्य-तरङ्गे ॥ ३४ ॥
स्वप्नोपम वनिता-सुख तेहन मन अभिमान अभङ्गे ॥ ३५ ॥

रामचन्द्र से कहा— "हे नाथ, चलिए : आप युवराज होइए। तब सांसारिक कामों को देखना। २२ जिनके मन में कोई और बात होगी तथा यह अभिषेक अच्छा न लगेगा उनके हृदय को मैं अपने तीर का निशाना बनाऊँगा।" २३ राम ने कहा— "हे वीर लक्ष्मण, सुनो। बे-मौक़े धनुष-बाण मत उठाओ। २४ तुम्हारी शक्ति मैं जानता हूँ। अभी उत्पात मचाना ठीक नहीं होगा। २५ देखता हूँ कि यह जो संसार है उसमें जहर के समान विषय रूपी विकार भरे हुए हैं। २६ इस संसार में भोग क्या है, जैसे बिजली चमक उठती और क्षण में चली जाती। २७ मनुष्य की आयु तपे हुए लोहे पर गिरे पानी के बूँद के समान क्षण स्थायी है। २८ मेढक खुद साँप के गले में फँसा रहता, फिर भी मक्खियों को पकड़कर गटगट खाता जाता है। २९ उसी तरह मानव काल रूपी साँप से ग्रस्त रहता है, फिर भी विषय-भोग में व्यस्त रहता है। ३० माता, पिता, पुत्र, भ्राता, पत्नी इन सबों का संग उसी तरह का है जिस तरह प्रपा (प्याऊ) के पास प्यासे लोग जुटते हैं और पानी पीकर क्षण भर में चले जाते हैं। ३१ भोग पाकर शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है। यह शरीर पुरुष (भोक्ता) से भिन्न है। ३२ बन्धु-बान्धवों के मिलन में जो सुख होता है, उसे नदी-नाव का संयोग समझना चाहिए। ३३ लक्ष्मी छाया-जैसी अवास्तविक और क्षणिक है। शरीर की जवानी मानों एक लहर है। ३४ स्त्री से होनेवाला सुख सपने के सुख के समान है। फिर भी मन में ऐसी मिथ्या धारणा (अभिमान) रहता है कि ये सभी स्थायी (अभंग) हैं। ३५

दिनकर-देव-गतागत घटइछ आयु क्रमहि जन-तनसौँ ॥ ३६ ॥
अनकर जरा मरण कँ देखथि किछु नहि बूझथि मनसौँ ॥ ३७ ॥
काँच-कलश-जल-उपमा आयुक जाइत छथि तनु तन सौँ ॥ ३८ ॥
रोग प्रबल रिपु देह-हरण कर लपटायल मन धनसौँ ॥ ३९ ॥
व्याघ्री जरा धरय चाहै मृति सङ्गी समय तकै छथि ॥ ४० ॥
विश्रुत राजा अहं-भाव-वश देह समस्त कहै छथि ॥ ४१ ॥
त्वचा अस्थि रक्तादि भरल जे तनमे कह को निष्ठा ॥ ४२ ॥
अन्त समय मे देह होइछथि कृमि की भस्म कि विष्ठा ॥ ४३ ॥
आतमा देह थिकथि नहि अह कँ लोक दग्धकर इच्छा ॥ ४४ ॥
सकल लोक अभिमानहि होइछ दैछो लक्ष्मण शिक्षा ॥ ४५ ॥
हम छी देह एहन मतिकेँ अहाँ सदा अविद्या जानू ॥ ४६ ॥
थिकहुँ चिदात्मा हम न देह छी ई मति विद्या मानू ॥ ४७ ॥
संसृति-हेतु अविद्या जानब विद्या संसृतिहरिणी ॥ ४८ ॥
विद्याभ्यास मुमुक्षु-काज थिक मननादिक कय करणी ॥ ४९ ॥
शत्रु काम क्रोधादि ततय छथि समतौँ दुर्ज्जय क्रोधे ॥ ५० ॥

ज्यों-ज्यों सूरज आते और जाते रहते हैं, त्यों-त्यों मानव की आयु घटती जाती है। ३६ लोग दूसरे के बुढ़ापे और मृत्यु को देखते रहते हैं, फिर भी अपने मन में कुछ ज्ञान नहीं करते हैं। ३७ आयु की उपमा कच्ची मिट्टी के घड़े में रखे पानी से दी जा सकती है; इसी तरह शरीर से प्राण निकल जाते हैं। ३८ शरीर का भारी दुश्मन रोग शरीर को नष्ट करता रहता है, फिर भी मनुष्य का मन धन-सम्पत्ति में लिपटा रहता है। ३९ जरा (बुढ़ापा) रूपी बाघिन अपनी सहेली मौत का इन्तिज़ार करती रहती है। ४० कहते हैं कि शरीर का मालिक अर्थात् आत्मा अहंकार (अज्ञान) में पड़कर शरीर को ही सब कुछ समझ बैठा है। ४१ चाम, हड्डी, लहू आदि विकारों से भरे शरीर में क्या श्रद्धा की जाए। ४२ यह तो मृत्यु के बाद कीड़े, राख या विष्ठा बन जाता है। ४३ आत्मा शरीर नहीं है। ·····(?) ४४ संसार में जन्म अभिमान (अज्ञान) के कारण ही होता है। हे लक्ष्मण, मैं तुमको शिक्षा देता हूँ। ४५ 'मैं यह शरीर रूपी हूँ', ऐसी धारणा को सदा 'अविद्या' (अज्ञान) समझो। ४६ 'मैं देह नहीं, चिदात्मा हूँ', ऐसी धारणा को 'विद्या' समझो। ४७ अविद्या (मिथ्या ज्ञान) ही संसार (जन्म-मृत्यु-चक्र) का कारण है, और विद्या संसार से छुटकारा दिलाती है। ४८ जो मोक्ष (संसार से छुटकारा) चाहें उन्हें मनन आदि कर्म करके अन्त में विद्याभास (सही ज्ञान का अर्जन) करना चाहिए। ४९ इस साधना में काम, क्रोध आदि शत्रु (बाधक) होते हैं। उनमें भी क्रोध को जीतना सबसे कठिन है। ५० इसी क्रोध के वश में आकर लोग अपना माता,

जे वश जननि पिता भ्रातादिक जन मारैछ अबोधे ॥ ५१ ॥
मूल मनस्तापक कोपे थिक संसारक से बन्धन ॥ ५२ ॥
धर्म्म-नाशकर कोपे मानब अनल बनल विनु इन्धन ॥ ५३ ॥
यम साक्षात कोपकाँ जानब तृष्णानदि वैतरणी ॥ ५४ ॥
नन्दन वन सन्तोष सदा थिक शान्ति कामगवि करणी ॥ ५५ ॥
शान्त-शील रहु कोप करिय जनु शत्रु केओ नहि हयता ॥ ५६ ॥
शत्रु मित्र ओ उदासीन जन एक दिन सभ जन जयता ॥ ५७ ॥
देहेन्द्रिय मन प्राण बुद्धिसौँ आत्मा थिकथि विलक्षण ॥ ५८ ॥
स्वयं-ज्योति आकार-रहित छथि ज्ञाता शुद्ध विचक्षण ॥ ५९ ॥
देहेन्द्रिय-प्राणादि-भिन्न जन आत्मा बुझथि न यावत ॥ ६० ॥
जन्म-मृत्यु-संसार-दुःखसौँ पीड़ित होइछथि तावत ॥ ६१ ॥
बुद्ध्यादिक सौँ बाहर आत्मा एहन भावना राखू ॥ ६२ ॥
सुख दुख प्रारब्धक फल खेद न ज्ञानामृत केँ चाखू ॥ ६३ ॥
अन्तःशुद्ध-स्वभाव बनल रहु बाहर रहु व्यवहारी ॥ ६४ ॥
कर्म्म-दोष किञ्चित नहि लागत बनल रहब संसारी ॥ ६५ ॥
कहल भावना जननी राखब दुःख न होयत मन मे ॥ ६६ ॥
हबर आगमन करब प्रतीक्षा जाइत छी हम वन मे ॥ ६७ ॥

पिता, भाई आदि को भी मार डालते हैं। ५१ मानसिक पीड़ा का मूल यही क्रोध है। यही संसार में बाँधनेवाला है। ५२ क्रोध ही धर्म को भी खत्म करता है। यह मानों बिना ईंधन के जलनेवाली आग है। ५३ क्रोध साक्षात् यम (मौत) है। तृष्णा वैतरणी नदी है। ५४ सन्तोष नन्दनवन है। शान्ति मानों कामधेनु है। ५५ सदा शान्तचित्त रहिए, क्रोध मत कीजिए, कोई आपका शत्रु न होगा। ५६ शत्रु, मित्र या तटस्थ सभी एक-न-एक दिन अवश्य चले जाएँगे। ५७ शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि इन सबों से आत्मा भिन्न है। ५८ आत्मा स्वतःप्रकाश होता है, निराकार होता है, निर्लिप्त होता है और ज्ञान का आश्रय (ज्ञानवान्) होता है। ५९ जब तक आत्मा को देह, इन्द्रिय, प्राण आदि से भिन्न न समझोगे तब तक जन्म-मरण आदि सांसारिक दुःख होते ही रहेंगे। ६०-६१ आत्मा बुद्धि आदि से बाहर है ऐसी धारणा बनाओ। ६२ सुख और दुःख तो प्रारब्ध (संचित पुण्य-पाप) का फल है। इसके लिए चिन्ता मत करो। ज्ञान रूपी अमृत पीते चलो। ६३ भीतर से शुद्ध स्वभाव रखो और बाहर से सांसारिक कर्म करते रहो। ६४ ऐसा करने से सांसारिक बने रहने पर भी कर्मजन्य विकार से लिप्त नहीं होओगे।" फिर राम ने माता से कहा। ६५ "हे माता, मैंने जो कुछ कहा है उसे याद रखिएगा। इससे आपके मन में दुःख न होगा। ६६ मेरे लौटने की प्रतीक्षा करना। मैं वन जाता हूँ। ६७ वनवास के चौदह

चौदह वर्ष अर्द्ध क्षण सन मन भासित होयत जाने ॥ ६८ ॥
आज्ञा देल जाय वन जायक आनब नहि मन आने ॥ ६९ ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण षनछौशाम्भवो छन्दः]

वननिवास मन हर्षित करण। कयल प्रणाम जननि-युग-चरण ॥ ७० ॥
कौशल्या पुनि अङ्क लगाय। आशिष देलनि देव मनाय ॥ ७१ ॥
ब्रह्म विष्णु शिव सुर गन्धर्व्व। रक्षा अहँक करथु मिलि सर्व्व ॥ ७२ ॥
रौदहि माटि होअ जत झाम। तेहि वन चललहुँ अछि अहँ राम ॥ ७३ ॥
स्थित चलइत करयित वन शयन। रवि शशि राखथु अहँपर नयन ॥ ७४ ॥
पुन पुन जननी हृदय लगाय। आशिष देल कहल वन जाय ॥ ७५ ॥
रामक लक्ष्मण कयल प्रणाम। नोर भरल लोचन अभिराम ॥ ७६ ॥
देव कयल मन संशय नाश। हमहु करब गय कानन बास ॥ ७७ ॥
आज्ञा देल जाय प्रभु आज। अपनेक त्यागब हम न समाज ॥ ७८ ॥
हम न रहब एत पापी धाम। नव नव रीति होयत सङ्ग्राम ॥ ७९ ॥
अनुचित सहब न होयत मारि। क्रोधें धरब तीर तरुआरि ॥ ८० ॥
भरत सहित तनिकर हित जानि। मारब समर धरब निज बानि ॥ ८१ ॥
त्यागि चलब तौं त्यागब प्राण। हे रघुनन्दन करु दुख त्राण ॥ ८२ ॥

वर्ष आधा क्षण जैसा लगेगा। ६८ अब वन जाने की आज्ञा दीजिए और मन में अन्यथा न मानिए।" ६९ वन में निवास करूँगा, इस भावना से हर्षित हो राम ने माता के दोनों चरणों में प्रणाम किया। ७० कौशल्या ने फि गले से लगाया और देवताओं को मनाती हुई आशीर्वाद दिया। ७१ "ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता और गन्धर्व सभी मिलकर तुम्हारी रक्षा करें। ७२ जहाँ धूप से मिट्टी झामे की तरह कड़ी हो जाती है, हे राम, तुम उस वन में जा रहे हो। ७३ खड़े रहते, चलते और सोते समय सूरज और चाँद तुम पर दृष्टि रखें।" ७४ इस तरह माता ने बारंबार छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया और वन जाने की अनुमति दी। ७५ तब लक्ष्मण ने राम को प्रणाम किया। राम की सुन्दर आँखों में आँसू भर आए। ७६ उन्होंने कहा— "हे देव ! आपने मेरे मन के संशयों को दूर कर दिया। मैं भी वनवास करूँगा। ७७ प्रभु, आज्ञा दीजिए। मैं आपका साथ न छोड़ूँगा। ७८ मैं इस पापवाले घर में नहीं रहूँगा। यहाँ तो अब नये-नये ढंगों से लड़ाई होगी। ७९ मैं अनुचित बात बर्दाश्त न करूँगा, मुझे विरोध हो जाएगा, और मैं क्रुद्ध हो अस्त्र उठा लूँगा। ८० भरत-सहित उनके पक्ष के जितने लोग होंगे सबों को युद्ध में मार गिराऊँगा और अपना रंग धरूँगा। ८१ यदि आप मुझको छोड़कर चले जाएँगे तो मैं प्राण त्याग दूँगा। हे रघुनन्दन, मुझे इस दुःख से बचाइए।" ८२ राम

चलु चलु लक्ष्मण कहलनि राम। गेला जनकनन्दिनी धाम॥ ८३॥
प्राणनाथ काँ अबइत जानि। सीता कनकपात्र लय पानि॥ ८४॥
पति-पद-पङ्कज लेल धोआय। सिंहासन पर बैसला जाय॥ ८५॥
नृपति किरीट आदि नहि अङ्ग। सेवा गज बाजी जहि सङ्ग॥ ८६॥
बाजन बाज न छत्र न श्वेत। कुशल सकल अछि नृपति-निकेत॥ ८७॥
पअरहि चलइत अएलहुँ कान्त। कहल जाय थिक की वृत्तान्त॥ ८८॥
सीताकाँ कहलनि हँसि राम। त्यागब हम एखनहि ई धाम॥ ८९॥
पिता कहल दण्डक वन जाउ। चौदह वर्ष व्यतीतहि आउ॥ ९०॥
सीता पुछल बहुत मन त्रास। कहु कहु नृप किय देल वनवास॥ ९१॥
कहल राम कारण नहि आन। केकयि पाओल दुइ वरदान॥ ९२॥
एक वर भरत होथि युवराज। दोसर हमर वन-वासक काज॥ ९३॥
पिता धर्म्म-व्रत राखब टेक। विघ्न करिय जन गुणवति एक॥ ९४॥
सीता कहल चलब सङ्ग लागि। सहब न शोक विरह-जर-आगि॥ ९५॥
शुनि उत्तर कहलनि श्रीराम। हठक समय नहि थिक ई ठाम॥ ९६॥
साहस तजु मिथिलेश-कुमारि। उचित कि हमर वचन दिय टारि॥ ९७॥
भल नहि थिक लय जायब सङ्ग। घोर विपिन अछि भूमि कुरङ्ग॥ ९८॥

ने कहा, "अच्छा तो हे लक्ष्मण, तुम भी चलो।" यह कहकर राम जानकी के भवन में गए। ८३ पति को आते देख सीता सोने के जलपात्र में पानी ले आईं; पति के पाँव पखारे; और राम सिंहासन पर बैठे। ८४-८५ न देह में किरीट आदि आभूषण थे और न साथ में हाथी-घोड़े आदि सवारियाँ थीं। ८६ न बाजे बजते थे, और न श्वेत छत्र था। सीता ने पूछा— "राजभवन में सभी कुशल तो हैं? ८७ पतिदेव, आप पैदल ही क्यों आए हैं? कहिए, क्या बात है?" ८८ राम ने मुस्कुराते हुए सीता से कहा— "मैं अभी इस राजमहल को छोड़ूँगा। ८९ पिता ने आज्ञा दी है, दण्डक वन जाऊँ, और चौदह वर्ष बीतने पर लौटूँ।" ९० सीता ने पूछा— "मेरा मन त्रस्त हो गया। कहिए, राजा ने क्यों वनवास दिया?" ९१ राम ने कहा— "कोई और कारण नहीं है। कैकेयी ने दो वरदान पाए थे। ९२ उनमें से एक वर माँगा कि भरत युवराज होवें, और दूसरा वर माँगा कि मैं वनवास जाऊँ। ९३ मैं पिता के धर्मव्रत का पालन करूँगा। हे गुणवती, इसमें तुम कोई विघ्न मत डालो।" ९४ सीता ने कहा— "मैं भी साथ जाऊँगी। यहाँ रहकर बिछोह की आग की जलन नहीं सहूँगी।" ९५ उत्तर सुनकर श्रीराम ने कहा— "यह हठ का उचित अवसर नहीं है। ९६ हे मिथिलेशकुमारी, साहस छोड़ो। मेरी बात को टालना क्या उचित होगा? ९७ साथ ले जाना ठीक न होगा। वन विकराल है। वहाँ की धरती और तरह की है। ९८ तुम भूख और प्यास से व्याकुल हो

भूख पियासैं होयब आँट। गड़त पअर-पङ्कज मे काँट ॥ ९९ ॥
दौड़त बाघ सिंह मुह बाय। कत जन काँ राक्षस धय खाय ॥ १०० ॥
गड़बड़ बड़ बड़ विषधर साप। स्मरण होइत जिव थरथर काँप ॥ १०१ ॥
बहुत बुझाओल अपनहि राम। ठानल हठ सीता तहि ठाम ॥ १०२ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण कोड़ार भेवे सूहब छन्दः]

प्रिये हम जाइतछी वनवास ॥ १०३ ॥
सत्य-प्रतिज्ञ पिता कहलनि अछि, केकयि कयल प्रयास ॥ १०४ ॥
कौशल्या सन सासु सदन मे, राखब नियत निवास ॥ १०५ ॥
तनिकर सेवा उचित करक थिक, धैर्यहि विपतिक नाश ॥ १०६ ॥
ई संसार असार सर्व्वदा, माया सकल विलास ॥ १०७ ॥
सुख दुख मनमे सम कय मानब, मन जनु करब उदास ॥ १०८ ॥
कन्द मूल संयोगहि भेटत लागत भूख पियास ॥ १०९ ॥
रामचन्द्र कह कानन अति दुख, राक्षस लोकक त्रास ॥ ११० ॥
वचन शुनि जिव मोर थर थर काँप ॥ १११ ॥
हम नहि भवन रहब शुनु प्रियतम, देखब की सन्ताप ॥ ११२ ॥
सर्व्वसहा जननी धरणी थिकि, जनक नृपति थिका बाप ॥ ११३ ॥

जाओगी। तुम्हारे पाँवों में काँटे चुभ जाएँगे। ९९ मुँह बाये बाघ-सिंह दौड़ेंगे। कितने लोगों को राक्षस पकड़-पकड़कर खा जाएँगे। १०० वन में बड़े-बड़े विषैले साँप रहेंगे, जिनका ध्यान आते ही प्राण थरथर काँपने लगते हैं।" १०१ इस प्रकार राम ने स्वयं बहुत समझाया, पर सीता ने वहीं हठ ठान दिया। १०२ राम ने कहा— "प्रिये, मैं वनवास में जाता हूँ। १०३ सत्यवादी पिता की ऐसी आज्ञा है, और कैकेयी ने इसके लिए रास्ता बनाया है। १०४ कौशल्या-जैसी सास राजभवन में हैं। तुम निश्चित रूप से यहीं रहो। १०५ उन सास की सेवा करना तुम्हारा कर्तव्य है। धैर्य से ही विपत्ति को पार किया जाता है। १०६ यह संसार सदा सार-हीन है। इसका सारा सुख-भोग माया मात्र है। १०७ सुख और दुख दोनों को मन में बराबर समझना। मन उदास मत करना। १०८ वन में कन्द-मूल-फल भी नियत रूप से नहीं मिलेगा; भूखे और प्यासे रहना होगा। १०९ रामचन्द्र कहते हैं कि वन में बड़ा कष्ट होगा और राक्षसों का डर लगेगा। ११० सीता ने कहा— "आपका बचन सुनकर मेरा कलेजा थरथर काँप रहा है। १११ हे प्रियतम, सुनिए, मैं घर में नहीं रहूँगी। क्या यहाँ सन्ताप देखने के लिए रहूँगी? ११२ मेरी माता धरती है जो सर्वसहा (हर सन्ताप को सहनेवाली) कहलाती है और राजा जनक मेरे पिता हैं। ११३ उन्हें सुख और दुख दोनों

क्षमता-सहन लेहन अछि तनि काँ, सम मणिमाला साप ॥ ११४ ॥
त्रिभुवन बली प्रभुक सन के अछि, तोड़ल शङ्कर-चाप ॥ ११५ ॥
ई गोट आज्ञा हम नहि मानब, धर्म्म होयत की पाप ॥ ११६ ॥
चन्द्र चन्द्रिका घन विनु दामिनि, रहय न पृथक मिलाप ॥ ११७ ॥
कनइत जनक-नन्दिनी कयलनि, कोटि विलाप-कलाप ॥ ११८ ॥
वचन प्रिय ई गोट मानल जाय ॥ ११९ ॥
हम किङ्करी चलब कानन संग, अपनै रहब सहाय ॥ १२० ॥
नेहर मध्य सकल फल कहलनि, वृद्ध ज्योतिषी आबि ॥ १२१ ॥
कानन पति संग जानकि जाएब, भाल लिखल अछि भाबि ॥ १२२ ॥
बहुत रमायण कथा शुनल अछि, शङ्कर-वचन प्रमाण ॥ १२३ ॥
कतहु न लिखल त्यागि सीता गृह, कानन देव प्रयाण ॥ १२४ ॥
जौं अन्यथा प्राण परित्यागब, अपनैक आगाँ आज ॥ १२५ ॥
चलु चलु विपिन सङ्ग वैदेही, हसि कहलनि रघुराज ॥ १२६ ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण वेवकामोद छन्दः]

कि करब हार आभरण आब । विपिन बनब वनि मुनि शन भाव ॥ १२७ ॥
अरुन्धती काँ गहना देब । नहि पाथेय एतय सौं लेब ॥ १२८ ॥

बर्दाश्त करने की क्षमता ऐसी है कि मणिमाला और साँप दोनों उनके लिए बराबर हैं। ११४ तीनों लोक में आपके समान बली कौन है जिन्होंने शिवजी के धनुष को तोड़ा ? ११५ आपकी एक इस आज्ञा को मैं नहीं मानूंगी, चाहे इससे मुझे पुण्य हो या पाप। ११६ चाँद से अलग कहीं चाँदनी रह सकती और बादल से अलग कहीं बिजली रह सकती है ?" ११७ रोती हुई जानकी ने भाँति-भाँति से विलाप किया। ११८ फिर सीता ने कहा— "हे प्रिय, मेरी यह बात मान लीजिए। ११९ मैं आपकी दासी साथ-साथ वन जाऊँगी। आप स्वयं मेरे सहायक रहेंगे। १२० बूढ़े ज्योतिषियों ने ननिहाल में मुझे यह भविष्यवाणी सुनाई थी। १२१ 'हे जानकी, तुम पति के साथ वन जाओगी, तुम्हारे भाल में यही भविष्य लिखा है।' १२२ मैंने रामायण की बहुत-सी कहानियाँ सुनी हैं, जो शंकर की वाणी से कही गई हैं। १२३ उनमें कहीं भी यह नहीं लिखा है कि सीता को घर ही छोड़कर भगवान् वन गए। १२४ अगर ऐसा नहीं होगा तो मैं आपके सामने ही आज प्राण त्याग दूँगी।" १२५ इतना सुनकर राम ने मुस्कुराकर कहा— "हे वैदेही, अच्छा, चलो मेरे साथ वन।" १२६ सीता ने कहा— अब हार और गहनों से क्या काम ? अब तो मुझे मुनियों के समान भाव रखकर वन में बसना है। १२७ जो कुछ गहने हैं वे अरुन्धती को दे जाऊँगी। यहाँ से राह खर्च के लिए भी कुछ लेना नहीं

करब द्विजार्प्पण हम निज वित्त। राखब नहि किछु विपिन निमित्त ॥१२९॥
लक्ष्मण द्विज-गण काँ बजबाय। बहुत देल धन बहुतो गाय ॥ १३० ॥
अपन सकल धन सीता देथि। गुरु-गृहिणीसौँ आशिष लेथि ॥ १३१ ॥
कहल राम मन करु जनु शोक। जे जननिक अन्तःपुर लोक ॥ १३२ ॥
हमर जतेक धन से लय जाउ। चौदह वर्ष सुखी सौँ खाउ ॥ १३३ ॥
कौशल्याक भरल भण्डार। माँगब सहब न पर-उपकार ॥ १३४ ॥
कौशल्या ओ सुमित्रा माय। तनिकर टहल करब मन लाय ॥ १३५ ॥
शुनितहि तहाँ सुमित्रा सकल। वृद्धजननि मन अतिशय विकल ॥ १३६ ॥
लक्ष्मण कहल रहब एक ठाम। सम्पत्ति भरल सकल अछि धाम ॥१३७॥
निर्द्धन विषय करब नित दान। जनु करु वुओ जनि चित्त मलान ॥१३८॥
सेवक-जन नहि बिलटय पाब। देखब कतहु न लोक हसाब ॥ १३९ ॥
शुनल सुमित्रा आशिष ढेरि। वन सौँ सुख सौँ अयबे फेरि ॥ १४० ॥
करबे की थिकि केकयि माय। भरत सेहो छथि अहँइक भाय ॥ १४१ ॥
हमर तुल्य जानकि काँ जानि। रामचन्द्र काँ दशरथ मानि ॥ १४२ ॥
विपिन अयोध्या मध्य कि भेद। सुखी जाउ वन वत्स कि खेद ॥ १४३ ॥

है। १२८ अपना जो वैयक्तिक धन है वह ब्राह्मणों को दान दे दूँगी। वन के लिए कुछ भी नहीं रखूँगी। १२९ लक्ष्मण ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत से धन और बहुत-सी गायों का दान दिया। १३० सीता ने अपने सारे धन दान किए और गुरु की पत्नियों से आशिष पाए। १३१ राम ने कहा— "मन में शोक मत कीजिए। माता के रनिवास में जो-जो हैं वे मेरा सारा धन ले जाइए और सुख से चौदह वर्ष तक निर्वाह कीजिए। १३२-१३३ कौशल्या का भंडार भरा हुआ है। वह परोपकार के लिए ही है। कष्ट नहीं सहना। ज़रूरत पड़ने पर माँग लीजिएगा। १३४ कौशल्या और सुमित्रा जो मेरी माताएँ हैं उनकी सेवा मन लगाकर कीजिएगा।" १३५ यह सुनते ही सुमित्रा-सहित सभी वृद्धाओं का मन विकल हो गया। १३६ लक्ष्मण ने कहा— "आप सभी एक जगह मिलकर रहें। घर में सारी सम्पत्ति भरी पड़ी है। १३७ ग़रीबों को नित्य दान दीजिएगा। दोनों मन को उदास नहीं कीजिए। १३८ ध्यान रखिएगा कि सेवक वर्ग दुर्दशा में न पड़े। देखिएगा, कहीं लोगों में हसारत न हो।" १३९ सुमित्रा ने सुना और खूब आशीर्वाद दिया और बोली— "वन से सुखपूर्वक लौटकर फिर आओगे। १४० क्या करना, आखिर कैकेयी भी तो तुम्हारी माँ है और भरत भी तो तुम्हारा ही भाई है। १४१ तुम वन में जानकी को मेरे तुल्य मानना और रामजी को दशरथ के समान मानना। १४२ फिर वन में और अयोध्या में फ़र्क़ क्या पड़ता है? हे वत्स, सुखपूर्वक वन जाओ। दुख मत करना।" १४३ लक्ष्मण हाथ में धनुष लिये हुए हैं,

कर धनु कोप न बाहर काढ़। लक्ष्मण रामक आगाँ ठाढ़ ॥ १४४ ॥
की विलम्ब कहि चलिअ गणेश। जतय पड़ल छथि विकल नरेश ॥ १४५ ॥
नृपतिक भवन गमन प्रभु कयल। सीता लक्ष्मण प्रभु संग धयल ॥ १४६ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा-रामायणे अयोध्याकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

[राग-तरङ्गिणी-ग्रन्थानुसारेण मंगलराज-विजय छन्दः]

केकयि कयल कुठाठ कठोर। गुपचुप रहल न भय गेल सोर ॥ १ ॥
केकयि-कृत शुनि शुनि उतपात। कह पुरजन बड़ कयलक घात ॥ २ ॥
देति राम काँ विपिन पठाय। देखल न एहन कसाइनि माय ॥ ३ ॥
कतहु कि केओ कहत भल लोक। शुनितहिँ सभकाँ होइछ शोक ॥ ४ ॥
ककरा नयन बहय नहि नोर। धिक धिक जीवन केकयि तोर ॥ ५ ॥
मूढ़ि मन्थरा कहलक जेह। महरानी भय मानल सेह ॥ ६ ॥
बसय योग्य नहि ई थिक देश। जतय रहल नहि नीतिक लेश ॥ ७ ॥

क्रोध को बाहर निकाल नहीं रहे हैं। वे सीधे राम के आगे खड़े हैं। १४४ फिर बोले— "अब देर क्या है, जय गणेश कहकर वहाँ प्रस्थान कीजिए जहाँ राजा दशरथ बेसुध पड़े हुए हैं।" १४५ यह सुनकर राम राजा दशरथ के भवन चले। सीता और लक्ष्मण ने भी उनका अनुसरण किया। १४६

॥ मैथिल चन्द्र कवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

वन के लिए राम, लक्ष्मण और सीता का प्रस्थान

कैकेयी ने जो भारी विघटन किया वह छिपा न रहा; तुरत फैल गया। १ कैकेयी का किया उत्पात सुन-सुनकर नगर-निवासी लोग बोलने लगे— "अरे इसने तो बड़ा घात किया। २ राम को जंगल भेज देगी, ऐसी क़साइन माता तो कभी न देखी गई। ३ क्या इसको कहीं भी कोई भला कहेगा। सुनते ही सबके मन में शोक छा गया है। ४ किसकी आँख में आँसू नहीं आए। अरी कैकेयी, तेरे जीवन को धिक्कार है। ५ मूर्ख मन्थरा ने जो-जो कहा, महारानी होकर उसने वह सब मान लिया। ६ अब यह देश बसने लायक न रहा, जहाँ कि नाम मात्र भी न्याय नहीं रहा। ७ स्त्री के खातिर बेटे को वनवास दिया,

वनिता-कारण सुत वनवास। कत गोट दशरथ नृपकाँ हास॥ ८॥
चलु चलु सभ जन रामक सङ्ग। राजा रानीक जानल रङ्ग॥ ९॥
बरु दुख गौरव रौरव जाइ। एहन समाज बसिअ नहि भाइ॥ १०॥
पयरहि चलती जनक-कुमारि। अति सुकुमारि स्वकीया नारि॥ ११॥
आब रहल नहि ककरो शक्क। केकयि डाकिनि दशरथ ठक्क॥ १२॥
की सुख मे भेल आनक आन। विधिगति अछि सभ सौँ बलवान॥ १३॥
पशु पक्षी तृण भक्ष्य न खाय। लता बृक्ष सभ गेल सुखाय॥ १४॥
केकयि-हृदय अशनि सन थीक। कथलक ककरो ई नहि नीक॥ १५॥
यमराजा सौँ कहथि मनाय। एखनहि जौँ केकयि मरि जाय॥ १६॥
पूजा करब लेब नित नाम। घरमे रहता सीता-राम॥ १७॥
साधुवृन्द भेल व्याकुल-चित्त। बामदेव मुनि कहल निमित्त॥ १८॥
शोच न करिअ धरिअ मन धीर। विष्णु अनादि थिकथि रघुबीर॥ १९॥
लक्ष्मी माया जानकि जानु। बासुकि लक्ष्मणकाँ जिअ मानु॥ २०॥
बिधि हरि हर छथि त्रिगुण सरूप। कि कहब हिनकर चरित अनूप॥ २१॥
प्रलय मे धयल मत्स्य अवतार। बैवस्वत मनु पालन-हार॥ २२॥
मथन समुद्र भेल जेहि बेरि। मन्दर गेल सुतलमे फेरि॥ २३॥

इससे राजा दशरथ को कितना बड़ा अयश हुआ। ८ चलिए, सब मिलकर राम के साथ चलें। राजा-रानी का रंग तो देख ही लिया। ९ भले ही भारी कष्टदायक रौरव-नरक जाऊँ, पर हे भाई, ऐसे समाज में बसना नहीं चाहिए। १० राजा जनक की बेटी पतिव्रता नारी परम सुकुमारी सीता पैदल चलेगी। ११ अब यह बात किसी के वश की न रही। कैकेयी डाकिनी हो गई और राजा दशरथ ठग हो गये। १२ क्या रंग में भंग हो गया। होनी सबसे बलवान् होती है। १३ शोक से मवेशी ने घास खाना छोड़ दिया और पक्षियों ने चरना छोड़ दिया है। लताएँ और पेड़-पौधे सूख गए हैं। १४ कैकेयी का हृदय वज्र-सा है। उसने किसी का भी भला नहीं किया।" १५ नगर के लोग यमराज को मनाने लगे— "यदि कैकेयी अभी मर जाए तो हम, हे यमराज, आपकी पूजा करेंगे, और नित्य नाम जपेंगे। सीता और राम तभी घर में रह पाएँगे।" साधु-सन्तों का चित्त भी व्याकुल हो गया। १६-१७ ऋषि वामदेव ने इस घटना का कारण समझाया। १८ "शोक मत कीजिए। मन में धीरज रखिए। राम अनादि ईश्वर विष्णु हैं। १९ जानकी माया-रूप में लक्ष्मी हैं और लक्ष्मण वासुकि नाग हैं। २० ये सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप हैं। इनके अद्‌भुत चरित का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ? २१ इन्होंने महाप्रलय के समय 'मत्स्य' का स्वरूप धारण किया और वैवस्वत मनु की रक्षा की। २२ जिस समय समुद्र-मथन हुआ और मन्दर पर्वत रसातल जाने लगा, उस समय इन्होंने 'कच्छप' का रूप

कमठ-रूप बनि पर्व्वत धयल। उदधि सुरासुर मन्थन कयल ॥ २४ ॥
धरणी जखन रसातल जाय। शूकर-तन बनि लेल उठाय ॥ २५ ॥
फाड़ल कनककशिपु हठ वक्ष। विधि प्रभृतिक दुखहरण मे दक्ष ॥ २६ ॥
नारसिंह-तनु नख अति चोष। दुष्ट सहत के तनिकर रोष ॥ २७ ॥
वामन-तन बलि-छलनक काज। अदितिक अनुमति सुरपति-राज ॥ २८ ॥
परशुराम पुन एक अवतार। क्षत्रिय-क्षय-कर हर महि भार ॥ २९ ॥
रावणादि वध करता जेंह। राम थिकथि परमेश्वर सेंह ॥ ३० ॥
बड़ तप कयलनि दशरथ भूप। पुत्र-कामना देखल स्वरूप ॥ ३१ ॥
सीता माया थिकि तिनि सङ्ग। जे चाहथि से करथि तरङ्ग ॥ ३२ ॥
लक्ष्मण रामक थिकथि सहाय। वन जयताह सङ्ग दुहु भाय ॥ ३३ ॥
राजा-केकयि-कृत नहि दोष। कथिलय शोक हेतु की रोष ॥ ३४ ॥
पूर्व्वंहि दिन नारद कहि गेल। भूपहुँ काँ मति ईश्वर देल ॥ ३५ ॥
रामचन्द्र कयलनि स्वीकार। चिन्ता त्यागिअ करिय विचार ॥ ३६ ॥
नित्य राम जप निर्म्मल चित्त। रवि-सुत-भय नहि तनिक निमित्त ॥ ३७ ॥
शुन पुन कलिमे आन न युक्ति। राम राम रटलहिँ हो मुक्ति ॥ ३८ ॥

धारण करके मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया, और देवों तथा असुरों ने मिलकर समुद्र का मथन किया। २३-२४ जब धरती रसातल जाने लगी तब इन्होंने 'वराह' का रूप धारण कर उसे उठा लिया। २५ फिर इन्होंने तेज नाखून वाले 'नरसिंह' का रूप धारण करके बलपूर्वक हिरण्यकशिपु की छाती को चीरा। ये ब्रह्मा आदि देवों के दुःख को दूर करने में समर्थ हैं। इनके क्रोध का सामना कौन दुष्ट कर सकेगा। २६-२७ इन्होंने फिर अदिति की अनुमति पाकर इन्द्र के काम से राजा बलि को छलने के लिए 'वामन' रूप धारण किया। २८ फिर इन्होंने एक अवतार 'परशुराम' के रूप में लिया और क्षत्रियों का संहार करके धरती का भार दूर किया। २९ ये 'राम' वही परमेश्वर हैं जो रावण आदि का वध करेंगे। ३० राजा दशरथ ने पुत्र की कामना से बहुत तप किया और उन्होंने राम के रूप में ईश्वर को देखा। ३१ सीता उनके साथ मायास्वरूपा है जो इच्छानुसार जगत् की रचना करती है। ३२ लक्ष्मण राम के सहायक हैं। दोनों भाई साथ-साथ वन जाएँगे। ३३ इसमें राजा दशरथ और रानी कैकेयी का कोई क़सूर नहीं है। फिर आप लोग क्यों शोक करते हैं और क्यों क्रोध में आते हैं। ३४ पिछले दिन ही नारद कह गए थे। राजा को भी ईश्वर ने ही ऐसी मति दी थी। ३५ रामचन्द्र ने स्वीकार कर लिया। ऐसा सोचकर चिन्ता छोड़िए। ३६ जो शुद्ध चित्त से नित्य राम-नाम जपेगा उसको यम का कोई भय नहीं रहेगा। ३७ और सुनिए, कलियुग में दूसरा कोई उपाय नहीं है, केवल राम-नाम जपने से ही मुक्ति मिलती है। ३८ जिनके डर से काल

काल जनिक डर थर थर काँप। दुख शङ्का की तनिका व्याप ॥ ३९ ॥
मुनि गेल अनत बुझल सभ लोक। किछु किछु छूटल मानस शोक ॥ ४० ॥
भूपक निकट मुदित सुखधाम। अविकल कहल जाय श्रीराम ॥ ४१ ॥

॥ दोहा ॥

लक्ष्मण सीता सहित हम, अयलहुँ कैकयि माय ॥ ४२ ॥
नृप-आज्ञा सुनि लेब किछु, अपनेक साध्य उपाय ॥४३॥
पिता वृद्ध सौजन्यमय, सत्य-प्रतिज्ञ उदार ॥ ४४ ॥
वन-गमनें अयलहुँ निकट, सह-लक्ष्मण सह-दार॥ ४५॥

[गीतछन्दस्तु मिथिलासंगीतानुसारेण ब्रनछोमालवीयम्]

पिता रहु हमरा उपर दयाल ॥ ४६ ॥
सीता लक्ष्मण सहित विपिन हम जाइत छी यहि काल ॥ ४७ ॥
परिहरु शोक शरीर वृद्ध अछि कर्म्म लिखल फल भाल ॥४८॥
प्रजा-दुःख सभ भरत हरत नित कि कहत जन वाचाल ॥४९॥
कन्द मूल फल वन बसि खायब ओढ़ब हम मृगछाल ॥ ५० ॥
गुरु गारुड़िक मन्त्र जनइत छी बाधा करत न व्याल ॥ ५१ ॥
वन जायक हमरा भेल आज्ञा दुइ हठि आगत हाल ॥ ५२ ॥
हाहा रामचन्द्र नृप कहलनि मनमे आधि विशाल ॥ ५३ ॥

(यमराज) भी थर्राता है, उनके बारे में दुख की आशंका करना बेकार है।" ३९ इतना कहकर मुनि वामदेव अन्यत्र चले गए। लोगों को यथार्थ बात मालूम हुई। उनके मन से शोक बहुत कुछ दूर हो गया। ४० तब सुख के खज़ाना प्रसन्नचित्त श्रीराम ने राजा दशरथ के पास जाकर साफ़-साफ़ कहा। ४१ "हे माता कैकेयी, लक्ष्मण और सीता-सहित मैं आपकी कामना पूरी करने के लिए आ गया हूँ। पिताजी की कुछ आज्ञा सुननी है। ४२-४३ पिता बूढ़े हैं, सज्जन हैं, सत्य पर अटल रहनेवाले और उदार हैं। मैं लक्ष्मण और सीता-सहित वन जाने के लिए उनके पास आया हूँ। ४४-४५ हे पिता, आप मुझ पर दया रखें। ४६ मैं सीता और लक्ष्मण के साथ इसी समय वन जा रहा हूँ। ४७ शोक मत कीजिए। आप शरीर से बूढ़े हो गए हैं। भाग्य में यही बदा था। ४८ भरत सदा प्रजा के दुःख का निवारण करेंगे। बोलनेवाले जो बोलें सो बोलें। ४९ मैं वन में रहकर कन्द-मूल-फल खाऊँगा और मृगछाला ओढ़ूँगा। ५० ओझा-गुरु का मन्त्र जानता हूँ, साँप क्या करेगा। ५१ वन जाने की आज्ञा तो अकेले मुझको हुई, पर ये दोनों भी हठपूर्वक बाद में साथ लग गए।" ५२ इतना सुनकर राजा दशरथ 'हा हा रामचन्द्र!' पुकार उठे और मन में भारी शोक छा गया। ५३ सीता राजा दशरथ के चरण में लिपट

चरणमे जानकि गेलि लपटाय ॥ ५४ ॥
गुरु सङ्कोच शोच बड़ भारी, कहलनि किछु न लजाय ॥ ५५ ॥
कहलनि लक्ष्मण थिकथि जनकजा केकयि दुर्ग्रह पाय ॥ ५६ ॥
बड़ हठ ठानल कहल न मानल कि करथु बड़का भाय ॥ ५७ ॥
नव-पल्लव पङ्कज-दल सन पद, शिरिस सुमन मृदु काए ॥५८॥
से पुन पयरहि कानन जयती, कि कहब केकयि माय ॥ ५९ ॥
दशरथ कहलनि हम बड़ पापी कयल कठिन अन्याय ॥ ६० ॥
हाय सकल सुख राशि बैसलहुँ, शोक-समुद्र समाय ॥ ६१ ॥

॥ चौपाइ ॥

[मैथिललोचनशर्म्म-संगीतानुसारेण धमछी-पञ्चस्वरा छन्दः]

शुनि केकयि उठि सत्वर जाय। मुनिक चीर काँ लइलि उठाय ॥ ६२ ॥
देलनि तिनुजनकाँ ओ चीर। प्रथमहि पहिरल श्रीरघुबीर ॥ ६३ ॥
अपन वसन कयलनि परित्याग। कह केकयि हँसि सुन्दर लाग ॥ ६४ ॥
सीताकाँ मन उपगत लाज। पहिर न जानथि गुरुक समाज ॥ ६५ ॥
धयल: दुहूटा रामक हाथ। मुख देखलनि बुझलनि रघुनाथ ॥ ६६ ॥
वसन राम राखल लपटाय। राजदार देखि भूमि लोटाय ॥ ६७ ॥
गुरु वसिष्ठ काँ देखि न भेल। धिक धिक केकयि कुमति कि लेल ॥६८॥

गई। ५४ गुरुजन के आगे लज्जा होती थी। चित्त शोक से व्याकुल था। शरमाती हुई कुछ न बोली। ५५ लक्ष्मण बोले— "ये जनकनन्दिनी सीता हैं। इन्होंने कैकेयी के हठ के फलस्वरूप राम के साथ वन जाने का हठ ठान दिया, और मना करने पर भी न माना। बड़े भाई राम क्या करें। ५६-५७ इनके पाँव नये पल्लव-सरीखे और कमल की पंखुड़ियों के सरीखे नाज़ुक हैं और इनका शरीर शिरीष के फूल-सा कोमल है। ५८ ये सीता पैदल ही वन जाएगी। माता कैकेयी का क्या कहना।" ५९ राजा दशरथ बोले— "मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने क्रूर अन्याय किया है। ६० हा, मैं खुद सारे सुख को गँवा कर शोकसिन्धु में डूब गया।" ६१ यह सुनकर कैकेयी फुर्ती से उठी और जाकर मुनि के लायक चीर उठा लाई। ६२ तीनों को उसने वह चीर दिया। पहले श्रीराम ने उसे पहना। ६३ और अपने राजसी वस्त्र का त्याग किया। कैकेयी हँसकर बोली— "क्या खूब!" ६४ सीता को लाज हुई। वे गुरुजनों के सम्मुख पहनना नहीं जानती थीं। ६५ उन्होंने दोनों टुक वस्त्रों को राम के हाथ में दे दिया। राम ने चेहरा देखा और बात समझ गए। ६६ राम ने वस्त्र को लपेटकर रख लिया। यह देख रानी कैकेयी रुष्ट हो धरती पर लोटने लगी। ६७ गुरु वसिष्ठ से देखा न गया। वे बोले— "कैकेयी, आप की बुद्धि मारी गई। धिक्कार है आपको। ६८ आप कालकूट नामक ज़हर

कालकूट सौँ किछु नहि घट्टि। कि कहब भेलहुँ अहाँ निरहट्टि ॥ ६९ ॥
एसय न भरत, नृपक ई हाल। बाघिनि सनि अहाँ बनलहुँ काल ॥ ७० ॥
लक्ष्मण वीर ठाढ़ सन्नद्ध। डर नहि करता कचबाबद्ध ॥ ७१ ॥
केकयि तखन कहल हँसि फेरि। देल सनेहै चलइक बेरि ॥ ७२ ॥
केकयीक की हृदय कठोर। कि हयत दुर्गति आगाँ तोर ॥ ७३ ॥
एक वर रामचन्द्र वनवास। लक्ष्मण सीताकाँ की त्रास ॥ ७४ ॥
देल कि सीताकाँ ई चीर। देखलय ककर जीव रह थीर ॥ ७५ ॥
रामक सङ्ग पतिव्रत काज। जाइत छथि अहँकाँ नहि लाज ॥ ७६ ॥
नैहर हिनकर तिरहुति थीक। कर्म्म हिनक सभटा अछि नीक ॥ ७७ ॥
दिव्याम्बर वर गहना गात्र। पतिव्रता की दुःखक पात्र ॥ ७८ ॥
नृप कह रथ सुमन्त लय आउ। रामचन्द्रकाँ विपिन देखाउ ॥ ७९ ॥
कसि रथ आयल कहलनि राम। चढ़बे रथ पर बाहर गाम ॥ ८० ॥
देखल तिनु जनकाँ नृप नयन। शोकवृद्ध नहि मनमे चयन ॥ ८१ ॥
कयल प्रदक्षिण बापक राम। लक्ष्मण तखन तेहन तहिठाम ॥ ८२ ॥
भूप-कोट सौँ बाहर जाय। रथ छल ठाढ़ देखल दुओ भाय ॥ ८३ ॥
सिरिस-सुमन सन तन सुकुमारि। पुरि-परिसर मे जनक-दुलारि ॥ ८४ ॥

से कुछ भी कम नहीं हैं। क्या कहूँ, आप बेहया हो गईं। ६९ यहाँ भरत नहीं हैं। राजा का यह हाल है। आप तो बाघिन-जैसी विनाशकारणी बन गईं। ७० वीर लक्ष्मण कटिबद्ध हो खड़े हैं। वे डरेंगे नहीं; क़त्लिआम कर देंगे।" ७१ कैकेयी तब फिर हँसकर बोली— "अरे, मैंने तो जाते समय स्नेहवश ये चीर दिए।" ७२ लक्ष्मण फिर कहने लगे— "कैसा कठोर है कैकेयी का हृदय। न जाने आगे तुम्हारी कैसी दुर्गति होगी। ७३ तुमने एक वर पाया कि राम को वनवास मिले। लक्ष्मण और सीता से क्या भय ? ७४ सीता को क्यों तुमने यह चीर दिया ? तुम्हारी यह करनी देखकर किसका कलेजा स्थिर रहेगा ? ७५ सीता पतिव्रत निभाने के लिए राम के साथ वन जाती है, इससे तुम्हें लज्जा नहीं आती ? ७६ इनका ननिहाल तिरहुत है। इनका सारा कर्म प्रशंसनीय है। ७७ इनके शरीर में दिव्य वस्त्र और आभूषण हैं। क्या ऐसी पतिव्रता नारी सताई जाने योग्य है ?" ७८ राजा ने कहा— "हे सुमन्त, रथ ले आइए। रामचन्द्र को वन दिखा लाइए।" ७९ रथ सजाकर आ गया। राम ने कहा— "गाँव के बाहर जाकर रथ पर चढ़ूँगा।" ८० राजा दशरथ ने तीनों को नज़र उठाकर देखा। शोक का सागर उमड़ पड़ा। मन बेचैन हो गया। ८१ राम ने पिता का प्रदक्षिण किया। फिर लक्ष्मण ने भी वैसा किया। ८२ दोनों भाइयों ने देखा, रथ राजा के परकोटे से बाहर खड़ा है। ८३ शिरीष के फूल जैसे सुकुमार शरीरवाली जनकनन्दिनी सीता

चलि नहि शकथि कहथि से घूरि। दण्डक-वन प्रिय अछि कत दूरि ॥ ८५ ॥
से शुनि रहल न करुण संभार। नयन-नीर प्रथमहि अवतार ॥ ८६ ॥
रथ पर चढ़लिह जनक-कुमारि। श्रीरघुवर-मुख-कमल निहारि ॥ ८७ ॥
सभ जन सौँ कहि मन उत्साह। रामचन्द्र रथ पर चढ़लाह ॥ ८८ ॥
लक्ष्मण रथ पर चढ़ला फानि। नगर सगर जन उठला कानि ॥ ८९ ॥
रथ धय धनुष तीर तरुआरि। रथ सुमन्त हाँकल ललकारि ॥ ९० ॥
भूपति कहथि सुमन्त रहु ठाढ़। दुस्सह आधि बहुत मन बाढ़ ॥ ९१ ॥
चलु रथ हाँकि करिय जनु थीर। बारम्बार कहथि रघुवीर ॥ ९२ ॥
ध्यान राम सुन्दर मुख चूमि। खसला दशरथ महिमे घूमि ॥ ९३ ॥
सभ दिश बाहर अहँइक भास। हमर हृदयमे नियत निवास ॥ ९४ ॥
वत्स विपिन जनु कयल पयान। सन्तापहि होइछ अनुमान ॥ ९५ ॥
नृप काँ छूटल जीवन-आश। छन छन मूर्छा कान्ति हरास ॥ ९६ ॥
भृत्य बृत्त छल लेलक उठाय। शोक वृद्ध कानथि शुशुआय ॥ ९७ ॥
कष्टहि कहल नृपति सन्ताप। प्राण-पवन पिब शोकज-साप ॥ ९८ ॥
लै चल रामक जननी-धाम। मन कदाच पाओत बिसराम ॥ ९९ ॥

नगर के आस-पास में ही चल नहीं सकती थी, और मुड़कर पूछती थी— "हे प्रियतम, अब दण्डक वन कितनी दूर है ?" ८४-८५ यह सुनकर व्यथा को दबा न सके। आँख से पहले-पहल आँसू आए। ८६ रामचन्द्र के मुख-कमल का दर्शन करके जनकनन्दिनी रथ पर चढ़ी। ८७ तब रामचन्द्र अपने मन का उत्साह सब लोगों को जनाकर रथ पर चढ़े। ८८ लक्ष्मण छलाँग मारकर रथ पर चढ़े। नगर के सारे लोग रो पड़े। ८९ सुमन्त अपने धनुष-बाण और तलवार को रथ पर रखकर रथ को चलाने लगे। ९० इधर राजा दशरथ कहते— "सुमन्त, जरा रुके रहिए। मेरे मन में बड़ी तेज वेदना हो रही है।" ९१ और उधर रामचन्द्र बार-बार कहते— "रथ को बढ़ाइए, रोकिए मत !" ९२ राजा दशरथ ध्यान में रामचन्द्र का मुख चूमकर लड़खड़ाते हुए धरती पर गिर गए। वे विलखने लगे। ९३ "हे वत्स राम, बाहर सभी दिशाओं में तुम्हारा ही भान होता है। और भीतर मेरे हृदय में भी तुम सदा मौजूद हो। ९४ केवल अपने सन्ताप से ही यह अनुमान होता है कि तुम वन चले गए हो।" ९५ राजा दशरथ की जीने की आशा जाती रही। क्षण-क्षण मूर्च्छा आने लगी और चेहरे से चमक उतरने लगी। ९६ नौकर तत्पर था। तुरत उन्हें उठा लिया। वे शोक की लहर में सिसक-सिसककर रोने लगे। ९७ बड़ी कठिनाई से राजा अपना सन्ताप व्यक्त कर पाते थे— "शोक रूपी सर्प ने मेरे प्राणों को पी लिया। ९८ अब मुझे राम की माता कौशल्या के भवन ले जाओ। वहाँ कदाचित् मन में कुछ चैन

नहि चिर जीवन निश्चय भेल। मणिधर-फणि-मणि जनि छिनि लेल ॥ १०० ॥
तनि घर करइत नृपति प्रवेश। मुरछि खसल नहि संज्ञा-लेश ॥ १०१ ॥
मूर्छा छुटलहुँ बाढ़ल आधि। नृप रहलाह मौनकाँ साधि ॥ १०२ ॥
ओत रथ पहुँचल तमसा-तीर। पड़ला उतरि ततय रघुबीर ॥ १०३ ॥
ईश्वर-चरण-कमलमे ध्यान। निराहार जल-मात्रे पान ॥ १०४ ॥
तरुतल सहित जानकी शयन। सुखसौं कयलनि सरसिज-नयन ॥ १०५ ॥
धृत-कर-शर-धनु ठाढ़ अनन्त। जागल पहरा देथि सुमन्त ॥ १०६ ॥
दुख-मन पुरजन सङ्गहि लागि। कह निज जनकाँ देल कि त्यागि ॥ १०७ ॥
जत जायब तत पुरजन जोहि। लागल रहते नगर धरोहि ॥ १०८ ॥
रघुनन्दन नहि छाड़ब चरण। अयलहुँ सभ मिलि अपनैक शरण ॥ १०९ ॥
वन बसि रहब नगर नहि जयब। अपनैं नृपतिक प्रजा कहयब ॥ ११० ॥
नगर अयोध्या सौं की काज। सानुकूल संग सकल समाज ॥ १११ ॥
अन्न पानि परित्यागल लोक। डेरा कयलनि रोक न टोक ॥ ११२ ॥
अर्द्धरात्रि मे मन्त्रि बजाय। कहल राम रथ आनु नुकाय ॥ ११३ ॥
हठसौं त्यागत लोक न सङ्ग। देखला जाइछ सभहिक रङ्ग ॥ ११४ ॥

मिले।" ९९ हाल से यह पक्का हो गया कि राजा दशरथ अब अधिक देर नहीं जिएँगे। मानों मनिआर नाग की मणि छिना गई हो। १०० कौशल्या के भवन में पहुँचते ही राजा मूच्छित हो गिर पड़े। उन्हें संज्ञा का भान लेश भी न रहा। १०१ मूर्च्छा खत्म होने पर भी उनकी व्यथा बढ़ती ही गई और मौन पड़े रहे। १०२ उधर रामचन्द्र का रथ तमसा नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ रामचन्द्र उतर गए। १०३ वे सदा भगवान् के चरण-कमल में ध्यान लगाए केवल पानी पीकर निराहार रह गए। १०४ सीता-सहित एक पेड़ के नीचे कमल-नयन राम ने सुखपूर्वक शयन किया। १०५ हाथ में धनुष-बाण लिये शेषावतार लक्ष्मण और सुमन्त पहरे पर जगे रहे। १०६ दुखी नगरवासी लोग साथ चले आए थे। वे राम से कहते— "हे प्रभु, आपने अपने सेवकों को क्यों छोड़ दिया ? १०७ आप जहाँ भी जाइएगा, पुरजनों का ताँता लगा ही रहेगा। १०८ हे रघुनाथ, हम लोग आपके चरण को नहीं छोड़ेंगे ? हम सभी मिलकर आपकी ही शरण में आए हैं। १०९ वन में घर बनाकर साथ रहेंगे; अपने नगर कभी नहीं जाएँगे। आपको ही राजा मानेंगे और आपकी ही प्रजा कहलाएँगे। ११० हमें अयोध्या नगर से क्या काम। मिल-जुलकर सभी लोग एक साथ रहेंगे।" १११ सबों ने खाना-पीना छोड़ दिया। बिना रोक-टोक के सबों ने वहीं डेरा डाल दिया। ११२ आधी रात बीतने पर मन्त्री को बुलाकर राम ने कहा— "चुपके से रथ ले आइए। ११३ समझाने बुझाने से ये लोग साथ नहीं छोड़ेंगे, ऐसा ही सबों का रंग-ढंग दिखाई देता

दौड़ितहि आयल छथि हठ टेक । कहलय फिरता नहि जन एक ॥ ११५ ॥
चौकी काटि चलू चुपचाप । दुख पओता सङ्ग होयत पाप ॥ ११६ ॥
बालक सम घर भुखले छैक । वृद्ध लोकके अन्न के दैक ॥ ११७ ॥
सीता ओ सानुज रघुवीर । रातिहि त्यागल तमसा-तीर ॥ ११८ ॥
हाहा रामचन्द्र कहि भोर । कानथि पुरजन कय कय सोर ॥ ११९ ॥
हा रघुनन्दन कयल कि लाथ । सौंपि देल ओहि पापिनि हाथ ॥ १२० ॥
घुरि पुनि पुरिजन शञ्च गेलाह । शोकहिँ दुब्बेल बहुत भेलाह ॥ १२१ ॥
देखइत जनपद सुन्दर भूमि । रथ पर सौँ तिनु जन घुमि घूमि ॥१२२॥
शृङ्गबेरपुर गङ्गातीर । रथ अटकाओल श्रीरघुवीर ॥ १२३ ॥
ततय शिशुपा तरु भेटि गेल । तेहि तर सुखसौँ बासा देल ॥ १२४ ॥
गङ्गा-अर्च्चन स्नान विधान । कयल तिनू जन धर्म्म-निधान ॥ १२५ ॥
रामागमन तहाँ गुह शुनल । उत्सव भाग्य अपन बर गुनल ॥ १२६ ॥
मधु फल पुष्प कन्द कय भार । प्रभुक उपायन कयल विचार ॥ १२७ ॥
भार सकल देखल श्रीराम । उत्तम कहलनि प्रभु गुण-धाम ॥ १२८ ॥

है । ११४ ये लोग दृढ़ प्रतिज्ञा करके रथ के पीछे दौड़ते आए हैं। कहने-सुनने से इनमें से एक भी नहीं लौटेंगे । ११५ चकमा देकर चुपके से चल पड़ें। ये साथ में रहेंगे तो इन्हें तकलीफ़ होगी और उससे मुझे पाप लगेगा । ११६ इनके घर के सभी बच्चे, बूढ़े अन्न के बिना भूख से परेशान हो जायँगे । ११७ इस प्रकार सीता और लक्ष्मण-सहित राम रात ही तमसा नदी के किनारे से चल पड़े । ११८ नगरनिवासी सुबह जगे तो "हा राम !" पुकारते हुए चीख़-चीख़कर रोने लगे । ११९ "हा रघुनन्दन, हमें क्यों चकमा देकर पापिन कैकेयी के हाथ सौंप गए ?" १२० फिर पुरवासी लोग शान्त होकर अयोध्यापुरी लौट गए। वे शोक से बड़े ही दुबले हो गए थे । १२१ उधर तीनों रथ से ही घूम-घूमकर जनपद की सुन्दरी धरती को देखा । १२२ राम ने गंगा के किनारे शृंगवेरपुर में रथ को रुकवाया । १२३ वहाँ शीशम का एक पेड़ देखा। उसी के नीचे डेरा डाल दिया । १२४ वहाँ धर्मपरायण राम, लक्ष्मण और सीता तीनों ने गंगा की पूजा और गंगास्नान किया । १२५

निषादराज गुह से भेंट

निषादराज गुह ने सुना कि वहाँ राम आए हैं। उसने उल्लसित हो अपने को भाग्यवान समझा । १२६ उसने शहद, फल, फूल और कन्द का भार लेकर प्रभु राम को सौगात देने का निश्चय किया । १२७ सारी सौगात देखकर गुणों के ख़ज़ाना श्रीराम ने कहा— "बहुत अच्छा।" १२८ (अपने को अछूत समझकर) गुह ने दूर रहते हुए ही राम को दंड प्रणाम किया। दर्शन

र बसि गुह कर दण्डप्रणाम। नयन सफल कर कह निज नाम ॥ १२९ ॥
राम उठाय लेल भरि पाँज। हरष बहुत गुह किछु नहि बाज ॥ १३० ॥
राम कुशल पुछलनि कय बेरि। बद्धाञ्जलि गुह कहलनि फेरि ॥ १३१ ॥
हम अति धन्य जन्म-फल पाय। अपने मिललहुँ अङ्क लगाय ॥ १३२ ॥
किङ्कर-किङ्कर जाति निषाद। घर प्रभुहिक थिक न करु विषाद ॥१३३॥
करु पवित्र प्रभु एतहुक गेह। बहिआ पर राखक थिक नेह ॥ १३४ ॥
बहिआ कहिआ आओत काज। भोगल जाय अपन थिक राज ॥ १३५ ॥
ई फल मूल ग्रहण हो नाथ। लायलछी हम हयब सनाथ ॥ १३६ ॥
कहल राम अहाँ भक्त पवित्र। अहँक राज्य हमरे थिक मित्र ॥ १३७ ॥
चौदह वर्ष नगर नहि जाइ। आनक देल वस्तु नहि खाइ ॥ १३८ ॥
बटक दुग्ध दुहि सत्वर लाउ। हम मुनि-जन सन जटा बनाउ ॥ १३९ ॥
बटक्षीर लायल गुह-लोक। प्रभु-वर आज्ञा के जन रोक ॥ १४० ॥
लक्ष्मण राम कयल मुनि-वेष। गुह-समूह तहँ टक टक देख ॥ १४१ ॥
घास पात कुश शयन बनाय। निज गृह शय्या सन सुख पाय ॥ १४२ ॥
ओहि रजनी जल-मात्रे पान। शयन कयल दुख लेश न जान ॥ १४३ ॥

पाकर उसने अपनी आँखों को सफल किया और अपना नाम बताया। १२९ राम ने उठाकर उसे छाती से लगा लिया। गुह को इतना हर्ष हुआ कि मुँह से बोल नहीं निकलता। १३० राम ने बार-बार कुशल पूछा। फिर गुह ने हाथ जोड़कर कहा। १३१ "मैं अपने जीवन का फल पाकर परम धन्य हो गया, क्योंकि आप छाती से लगाकर मुझसे मिले। १३२ मैं तो आपके दास का भी दास निषाद जाति का हूँ। यह घर आप ही का है, आप कोई चिन्ता न करें। १३३ हे प्रभु, आप यहाँ के घर को भी पवित्र कीजिए। आप अपने सेवक पर अनुग्रह रखें। १३४ आपका यह सेवक फिर कब काम आएगा। यह सारा अपना राज है, इसका भोग कीजिए। १३५ हे प्रभु, ये फल-मूल ग्रहण किए जाएँ, जो मैं सोगात में ले आया हूँ। आपके ग्रहण करने से मैं सनाथ हो जाऊँगा। १३६ राम ने कहा—"आप पवित्र भक्त हैं। हे मित्र, आपका राज्य तो मेरा अपना हुआ। १३७ पर मेरा व्रत है कि चौदह बरस तक नगर नहीं जाऊँ और दूसरे की दी हुई कोई चीज़ न खाऊँ। १३८ कृपाकर आप जल्द बरगद का दूध ला दीजिए, ताकि मैं मुनियों-जैसी जटा बनाऊँ।" १३९ सुनते ही गुह ने बरगद का दूध ला दिया। प्रभु राम की आज्ञा को कौन टाल सकता है। १४० राम और लक्ष्मण ने मुनि का बाना बनाया। गुह जाति के लोग वहाँ एकटक देखते रहे। १४१ तिनकों, पत्तों और कुशों की सेज बनाई। उसी पर उन्हें राजशय्या का जैसा सुख मिला। १४२ उस रात वे लोग केवल पानी पीकर सो गये, कुछ भी तकलीफ़

सीता-सहित भवन निज जेहन। अति प्रसन्न मन ओतहु तेहन ।। १४४ ।।
लक्ष्मण गुह निज परिजन सङ्ग। कर शर-धनुष वीर-रस अङ्ग ।। १४५ ।।
यामिक कोटवार बल-पूर। सावधान लक्ष्मण रण-शूर ।। १४६ ।।

।। इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे
अयोध्याकाण्डे पंचमोऽध्यायः ।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

।। चौपाइ ।।

[मिथिलासंगीतानुसारेण नामान्तरेण च योगिया-मालव-छन्दः]

लक्ष्मण सौँ गुह कहल निषाद। राम-दशा देखि चित्त विषाद ।। १ ।।
देखिअ रामचन्द्र गति भाय। सुख-सुषुप्त कुश घास ओछाय ।। २ ।।
मणिपर्य्यङ्क भवन रमणीय। जेहन इन्द्र-सुखकर कमनीय ।। ३ ।।
शुदिनि मन्थरा की अधलाहि। तकरे कहले रानि बताहि ।। ४ ।।
हाहा केकयि कयलनि पाप। देखतहिँ होअ चित्त सन्ताप ।। ५ ।।
शुनि लक्ष्मण कहलनि शुनु मित्र। कर्म्म कठिन-गति बहुत विचित्र ।। ६ ।।

नहीं मालूम हुई। १४३ सीता से सुशोभित जैसे अपने राजभवन में लगता था वैसे ही वहाँ भी उनका मन अति प्रसन्न रहा। १४४ अपने परिजन के रूप में लक्ष्मण और गुह साथ में थे। उनके हाथों में तीर-धनुष थे। वे मानों देहधारी वीर-रस हों। १४५ रणवीर महाबली लक्ष्मण दुर्ग-रक्षक के रूप में चौकसी के साथ पहरा दे रहे थे। १४६

।। मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का
पाँचवा अध्याय समाप्त ।।

छठा अध्याय

गंगा पार करना

निषादराज गुह के मन में राम की हालत देखकर बड़ा विषाद हुआ। १ उसने लक्ष्मण से कहा— "हे भ्राता, राम जी का हाल तो देखिए। वे कुश और घास बिछाकर सोए हुए हैं; २ इनकी यह कुश-शय्या वैसी ही लगती है जैसा इन्द्र को भी आरामदेह लगनेवाला सुन्दर भवन में मणियों का बना पलंग। ३ कितनी बुरी है दासी मन्थरा, जिसके कान फूँकने से रानी पागल सी हो गई। ४ हाय, कैकेयी ने यह पाप किया। देखते ही मन में पीड़ा होने लगती है।" ५ यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा— "हे मित्र, सुनिए। कर्म (भाग्य) बड़ा विचित्र और कठिनाई से समझ में आनेवाला है। ६ सुख और

सुख दुख कारण होथि न आन। दुख-दाता पर लघु-मति जान॥ ७॥
हम ई करब व्यर्थ अभिमान। कर्म्म-सूत्र-ग्रन्थित नहि ज्ञान॥ ८॥
शत्रु मित्र दारा सुत भाय। सभटा कर्म्म देथि मिलाय॥ ६॥
बड़ बड़ मुनि जन बैसला हारि। शक्य न कर्म्म शुभाशुभ टारि॥ १०॥
पूर्व्वार्जित सुख दुख जे आब। भोग करी मन सहज स्वभाव॥ ११॥
करब भोग रहबे बिनु भोग। सभ होइछ कर्म्महिं संयोग॥ १२॥
कर्म्म कि मानत फलचय देत। केओ सुरपुर बस केओ वन प्रेत॥ १३॥
व्यर्थ करिअ मन हर्ष विषाद। लाभ शुभाशुभ कर्म्म-प्रसाद॥ १४॥
सकल सुरासुर विधिक विधान। वश छथि सभकाँ गति नहि आन॥ १५॥
पाप पुण्य सौं भेल शरीर। सुख दुख होअ रहय नहि थीर॥ १६॥
सुख दुख उपमा कहल कि जाय। जेहन जल कादव लपटाय॥ १७॥
मायामय थिक मनसौं मानि। इष्टानिष्ट मध्य नहि हानि॥ १८॥
कहितहिं शुनितहिं भय गेल भोर। राम कयल लक्ष्मण काँ सोर॥ १६॥
कृतनितकृत्य वृत्त भय आउ। दृढ़ नव सुललित नाव मँगाउ॥ २०॥
दृढ़ नौका अपनहि गुह टेबि। लयला सत्वर अपनहि खेबि॥ २१॥

दुख का कारण कोई और नहीं होता है। जो ओछे विचार का होता है वही दूसरे को दुखदाता समझ बैठता है। ७ मैंने ऐसा किया, यह अहम्भावना व्यर्थ है। जो आदमी कर्म के जाल में फंसा रहता है उसे सही ज्ञान नहीं होता है। ८ कर्म ही शत्रु, मित्र, पत्नी, पुत्र, भाई आदि सबों से मिलाता है। ६ बड़े-बड़े मुनि लोग हार बैठे; उनमें से कोई भी कर्म के भले या बुरे फल को टाल न सके। १० पूर्व में किए गए कर्मों के फलस्वरूप जो भी सुख या दुख आ पड़े उसे सहज भाव से भोग लेना चाहिए। ११ भोग करते रहना और बिना भोग के रहना —ये दोनों कर्म-वश ही होते हैं। १२ कर्म मानेगा नहीं, वह तो फल चखाकर ही रहेगा। कर्म के फलस्वरूप ही कोई स्वर्ग पाता है तो कोई प्रेत-योनि में भटकता है। १३ मन में हर्ष या विषाद करना व्यर्थ है, क्योंकि शुभ या अशुभ फल का लाभ कर्म के अनुसार ही होता है। १४ जितने देव और दानव हैं वे सभी विधि (भाग्य) के विधान के वश में हैं; सबों को और कोई चारा नहीं है। १५ यह शरीर पाप और पुण्य से पैदा हुआ है, अतः इसमें सुख और दुख होते रहेंगे; न सुख स्थिर रहेगा, न दुख। १६ सुख और दुख की तुलना किससे करूँ; ये दोनों वैसे ही मिश्रित हैं जैसे पानी और कीचड़। १७ यह संसार माया है, ऐसा मन में मानकर, न सुख में हानि समझें, न दुख में।" १८ इस प्रकार कहते-सुनते रात बीत गई और भोर हुआ। राम ने लक्ष्मण को पुकारा। १६ और कहा— "अब नित्यकृत्य स्नानादि करके तैयार हो जाइए और एक मजबूत, नई अच्छी नाव मँगाइए।" २० सुनते ही गुह एक मजबूत

चढ़ल जाय किछु विलम्ब न आब। हे रघुनन्दन निकटहि नाव ॥ २२ ॥
थिर भय बैसक कहल पठाय। सीता काँ प्रभु नाव चढ़ाय ॥ २३ ॥
मित्र हाथ धय चढ़ला राम। नावक उपर कयल विश्राम ॥ २४ ॥
लक्ष्मण आयुध सभ धय देल। फानि नाव पर अपनहु गेल ॥ २५ ॥
लय रथ सचिव घूरि घर जाउ। पिता वृद्ध काँ बहुत बुझाउ ॥ २६ ॥
कहब प्रणाम माय काँ जाय। विद्यमान सुख देब जनाय ॥ २७ ॥
कहब प्रणाम ततय शत मोर। कहइत सीता नयन सनोर ॥ २८ ॥
लक्ष्मण कोपहिँ निन्दा कयल। नीति धर्म्म अद्यावधि धयल ॥ २९ ॥
शोकहिँ तुरग न चल एक डेग। पवनहुँ सौँ जनिकाँ अति वेग ॥ ३० ॥
गुह-परिजन कर धर करुआर। हे प्रभु नाव आब बिच धार ॥ ३१ ॥
शुनि जानकि सुरसरिक प्रणाम। कयल ओ अंगिरल पुर मन-काम ॥ ३२ ॥
हे सुरसरि वन-दुख निस्तार। घुरब करब पूजा विस्तार ॥ ३३ ॥
मदिरा मांस विविध उपचार। करब यथाविधि बारम्बार ॥ ३४ ॥
झटितिहि पर-तट लागल नाव। सभ जन क्रमक्रम उतरिअ आब ॥ ३५ ॥

नाव चुनकर खुद खेकर ले आए और बोले— २१ "हे रघुनन्दन, नाव पास में लगा दी गई है। देर क्या, अब इस पर चढ़ा जाए।" २२ तब राम ने पहले सीता को नाव पर चढ़ाया और कहला दिया कि स्थिर होकर बैठें। २३ फिर रामजी स्वयं मित्र गुह का हाथ पकड़कर नाव पर चढ़े और वहाँ आराम से बैठ गए। २४ लक्ष्मण ने सभी हथियारों को नाव पर रखा और छलाँग मारकर स्वयं भी चढ़ गए। २५ राम ने मन्त्री से कहा— "हे मन्त्री, रथ लेकर आप घर लौट जाइए। बूढ़े पिताजी को ठीक से समझाइए, बुझाइएगा। २६ फिर माँ के पास जाकर उन्हें मेरा प्रणाम कहिएगा और सूचित कर दीजिएगा कि हम लोग यहाँ सुख से हैं। २७ फिर सीता ने कहा— "उन्हें मेरा सौ-सौ प्रणाम कहिएगा।" और इतना कहते ही सीता की आँखों में आँसू उमड़ आए। २८ लक्ष्मण क्रोधवश कुछ निन्दा की बात बोले, किन्तु वे अब तक न्याय और धर्म से विचलित नहीं हुए। २९ जो हवा से भी तेज चलनेवाले थे वे घोड़े शोकवश एक क़दम भी चलने में समर्थ नहीं हैं। ३० इधर गुह के लोग हाथों से करुआर चला रहे थे। उन्होंने कहा— "हे राम, अब नाव बीच धार में पहुँच गई है।" ३१ यह सुनकर सीता ने गंगा को प्रणाम किया और मनौती की, "हे गंगे, यदि मेरे मन की कामना पूरी हुई, यदि वन के दुःख से उबर पाऊँ, तो लौटने पर सविस्तर पूजा करूँगी। ३२-३३ तरह-तरह के मद्य और मांस से विधिपूर्वक बारंबार अर्चना करूँगी।" ३४ जल्द ही नाव किनारे लग गई। अब सभी लोग एक-एक कर उतरते चलें। ३५

गुह कह चलइत हम बन जयब। सङ्गहि सङ्ग एतय पुन अयब ॥ ३६ ॥
जौं नहि लय जायब रघुवीर। अपनहि मरब बेधि हिअ तीर ॥ ३७ ॥
कहल राम शुनु मित्र निषाद। परिहरु परिहरु विषम विषाद ॥ ३८ ॥
आयब चौदह वर्ष बिताय। लक्ष्मण सन हमरा अहँ भाय ॥ ३९ ॥
मिलि मिलि देल बहुत आश्वास। सभ जन फिरला मन-विश्वास ॥ ४० ॥
ततय मेध्य मृग एकटा मारि। अग्नि पकाओल भूष विचारि ॥ ४१ ॥
होम कयल तिनु जन किछु खाए। तरुवर-तर सुख सुतला जाय ॥ ४२ ॥
सकल रजनि गेल सुखसौं बीति। कहइत शुनइत धर्म्म सुनीति ॥ ४३ ॥
भारद्वाजाश्रम लग जाय। पटु बटुकाँ कहि देल पठाय ॥ ४४ ॥
सीता लक्ष्मण राम समाज। बाहर छथि आयल छथि आज ॥ ४५ ॥
एहन कहब बटु मुनि-तट जाय। ओ-मुनिकाँ सभ कहल बुझाय ॥ ४६ ॥
रमणी-सह सानुज रघुवीर। सुन्दर एहन न देखल शरीर ॥ ४७ ॥
वार्त्ता एहन शुनल मुनि जखन। अति आनन्द मगन मन तखन ॥ ४८ ॥
अर्घ पाद्य सभ लेलहि हाथ। गेलाह शीघ्र जतय रघुनाथ ॥ ४९ ॥

चलते समय गुह ने कहा— "मैं भी आप लोगों के साथ वन जाऊँगा और आप जब लौटेंगे तब साथ ही यहाँ लौट आऊँगा। ३६ हे रघुवीर ! यदि आप मुझको साथ न ले जाइएगा तो मैं अपने हृदय में स्वयं तीर लगाकर प्राणत्याग कर दूँगा।" ३७ राम ने कहा— "हे मित्र गुहराज, मेरी बात सुनिए। मन में दुख मत कीजिए। ३८ मैं चौदह बरस बिताकर यहाँ लौटूँगा। आप तो मेरे लक्ष्मण जैसे भाई हैं।" ३९ इस प्रकार राम ने बार-बार गले लगाकर बहुत आश्वासन दिया। राम के वचन पर मन में विश्वास करके गुह आदि सभी लोग लौट गए। ४० वहाँ भूख लगने पर एक मेध्य (यज्ञ के लिए उपयुक्त) मृग को मारकर आग में पकाया। ४१ फिर मांस से हवन किया और थोड़ा-सा शेष मांस तीनों ने खाया। तब सुखपूर्वक जाकर सो गए। ४२ सारी रात धर्म और नीति की बात करते हुए आराम से कटी। ४३

भरद्वाज के आश्रम में जाना

तब वे भरद्वाज के आश्रम के पास पहुँचे। वहाँ एक चतुर ब्राह्मण-कुमार के ज़रिए अपने आगमन की सूचना भेजी। ४४ "हे वटु, भरद्वाज मुनि के पास जाकर ऐसा कहिए कि लक्ष्मण और सीता के साथ राम आए हुए हैं और बाहर में खड़े हैं।" वटु ने मुनि को सारा हाल समझा दिया। ४५-४६ पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ राम खड़े हैं। ऐसा सुन्दर शरीर तो कहीं नहीं देखा। ४७ मुनि ने जब यह समाचार सुना तब उनका मन परम आनन्द में मग्न हो गया। ४८ तब वे मुनि अर्घ्य (पीने का जल) और पाद्य

समुचित पूजा मुनि पुन कयल। आदरसौँ निज आश्रम लयल ॥ ५० ॥
तप जे कयल प्राप्त फल आज। अपने अयलहुँ राम समाज ॥ ५१ ॥
माया मानुष धयल शरीर। चिन्हइतछी अहँ कोँ रघुवीर ॥ ५२ ॥
विधि अनुमति लेल अहँ अवतार। चललहुँ हरण होयत महि भार ॥ ५३ ॥
कहइतछी हम नाथ यथार्थ। आज भेलहुँ हम बहुत कृतार्थ ॥ ५४ ॥
श्रीरघुनन्दन लक्ष्मण-सहित। अभिवादन कयलनि छल-रहित ॥ ५५ ॥
अपने मुनि हम क्षत्रिय जाति। अनुग्राह्य हमही सभ भाँति ॥ ५६ ॥
हमछी धन्य अहाँ भगवान। ई कहइत रजनी अवसान ॥ ५७ ॥
प्रात समय रघुनन्दन जागि। मुनि-सुत-संग तिनू जन लागि ॥ ५८ ॥
मुनि-सुतकाँ से परिचित बाट। पार उतरता यमुना-घाट ॥ ५९ ॥
काठक कौशल बेड़ बनाय। सुख सौँ पार देल पहुचाय ॥ ६० ॥

[हरिपदं मिथिलासंगीतानुसारेण प्रियतमा-मालव-छन्दः]

लक्ष्मण सीता रामचन्द्र गिरि, चित्रकूट चढ़ि गेला ॥ ६१ ॥
गिरि आश्रम शोभा कोँ देखल, मन आनन्दित भेला ॥ ६२ ॥

(पाँव पखारने का पानी) हाथ में लेकर झट वहाँ गए जहाँ राम थे। ४९ मुनि ने उचित विधान के अनुसार उनकी पूजा की और आदर के साथ अपने आश्रम ले गए। ५० और बोले—"मैंने जो तपस्या की उसका फल आज मिल गया, क्योंकि हे राम ! आप सपरिजन यहाँ पधारे। ५१ आपने माया-मनुष्य का शरीर धारण किया है। हे रघुवीर, मैं आपको पहचानता हूं। ५२ आप ब्रह्मा के अनुरोध से अवतार लेकर चले हैं। अब आपसे धरती का भार दूर होगा। ५३ हे प्रभु, मैं सच कहता हूँ, आज मैं बहुत-बहुत कृतार्थ हो गया।" ५४ तब लक्ष्मण-सहित श्रीराम नें सहज भाव से मुनि का अभिवादन किया। और बोले। ५५ "आप मुनि ब्राह्मण हैं, और मैं क्षत्रिय हूं। हर तरह से आपके दर्शन से ही अनुगृहीत हुआ हूं। ५६ मैं धन्य हूँ। आप मेरे लिए भगवान् हैं।" इस तरह बात करते रात बीत गई। ५७ सुबह होने पर राम जगे। तीनों ने मुनि-कुमार को साथ लगा लिया; ५८ क्योंकि मुनि-कुमार को रास्ता जाना हुआ था। फिर यमुना के किनारे पहुँचकर नदी को पार किया। ५९ कौशल के साथ लकड़ी का बेड़ा बनाया और ऋषिकुमार ने उन्हें आराम के साथ पार कर दिया। ६०

चित्रकूट पहुँचना और वाल्मीकि से मिलना

तब लक्ष्मण और सीता-सहित रामचन्द्र चित्रकूट पर्वत पर चढ़े। ६१ पर्वत पर बसे आश्रमों की शोभा देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया। ६२

मृग पक्षीक विलक्षण शोभा, फल भल फूल अनेक ॥ ६३ ॥
मुनि वाल्मीकि धर्म्ममय आश्रम, ऋषि-सङ्कुल सुविवेक ॥ ६४ ॥
आश्रममे वाल्मीकि महामुनि, तेजपुञ्जसौं बैसल ॥ ६५ ॥
देखल जाय प्रणाम तिनू जन, कएलनि कौशल-कौशल ॥ ६६ ॥
सानुज श्रीरघुकुल-सरसिज-रबि, जटा मुकुट शिर धारण ॥ ६७ ॥
अम्बुज-नयन मदन-मद-मोचन, चिन्हलनि मुनि-जन-तारण ॥ ६८ ॥
परमानन्द राम काँ सत्वर, उठिकें हृदय लगाओल ॥ ६९ ॥
हरषल नोर नयन बह अविरल, कहल जन्म-फल पाओल ॥ ७० ॥
पूजा विविध अतिथि परमेश्वर, शीतल जल भरबाओल ॥ ७१ ॥
अपने नरपति थिकहुँ बनी हम, उचिती बहुत शुनाओल ॥ ७२ ॥
कि कहब रामचन्द्र एहि गिरिपर, आबि कष्ट अहँ पाओल ॥ ७३ ॥
बद्धाञ्जलि रघुनन्दन कहलनि, किछु दिन मुनि हम रहबे ॥ ७४ ॥
पिता-वचन सौं बनी-वेष बनि, जनितहिँ छी की कहबे ॥ ७५ ॥
स्थान देखाओल जाय से हमरा, करब जतय सुख-वासा ॥ ७६ ॥
सीतालक्ष्मण सहित रहित-दुख, अपनेक सभ प्रत्याशा ॥ ७७ ॥

वहाँ मृगों और पक्षियों की शोभा निराली थी। तरह-तरह के सुन्दर फल-फूल लगे थे। ६३ वहाँ मुनि वाल्मीक का धर्ममय आश्रम था। वह विवेकवान् ऋषियों से भरा था। ६४ आश्रम में महामुनि वाल्मीकि तेज की राशि जैसे बैठे थे। ६५ तीनों ने उन्हें देखा और तरीके से पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। ६६ रघुवंश रूपी कमल को प्रफुल्लित करने में सूरज के समान लक्ष्मण-सहित राम सर पर जटा और मुकुट धारण किए हुए हैं। ६७ उनकी आँखें कमल-सी हैं। उनकी सुन्दरता कामदेव का मान-मर्दन करनेवाली है। वे मुनियों की रक्षा करनेवाले हैं। देखते ही मुनि वाल्मीकि ने उन्हें पहचान लिया। ६८ उन्होंने परम आनन्दित हो तुरन्त उठकर राम को छाती से लगा लिया। ६९ हर्षातिरेकवश आँखों से आँसू की धारा बहने लगी; और बोले—"आज मुझे जन्म लेने का फल मिल गया।" ७० परमेश्वर अतिथि होकर आए हैं, यह समझकर भाँति-भाँति से उनकी पूजा की और उनके लिए ताज़ा ठंडा पानी मंगवाया। ७१ फिर बहुत-से विनय-वचन कहे— "आप राजा हैं और मैं बनवासी हूँ। ७२ हे रामचन्द्र, मैं क्या कहूँ? आप जो इस चित्रकूट गिरि पर आए, उसमें आपको बड़ा कष्ट हुआ।" ७३ तब राम ने हाथ जोड़कर कहा—"हे मुनि, मैं पिता की आज्ञा से मुनि का वेष धारणकर कुछ दिन यहाँ रहूँगा। कहूँ क्या, आप तो जानते ही हैं। ७४-७५ कृपया मुझे वह स्थान दिखा दीजिए जहाँ मैं सीता और लक्ष्मण के साथ बिना किसी तकलीफ़ के आराम से वास करूँ। आप ही

हँसि मुनि कहल सकल लोकक अहँ, निश्चय बासस्थाने ॥ ७८ ॥
अथवा अहँ सर्व्वत्रहिँ व्यापक, दोसर कि कहब आने ॥ ७९ ॥
द्वेष-रहित समदृष्टि शान्त-मन, अपनेँ चरणक भक्त ॥ ८० ॥
तनिकर हृदय-कमलमे रघुवर, अपनेँक गृह अनुरक्त ॥ ८१ ॥
धर्म्माधर्म्म त्याग कय सभटा, अपनेँक भजनानन्द ॥ ८२ ॥
अपनेँक मन्त्र सदा मन दय जप, जे निस्पृह निर्द्वन्द ॥ ८३ ॥
निरहङ्कार राग सौँ वर्जित, अपनेँ मे मति चित्त ॥ ८४ ॥
सुख दुख सम मायामय सभ थिक, जानथि विश्व अनित्य ॥ ८५ ॥
कनक जेहन इट माटि तेहन सन, लोभ-लेश नहि जानथि ॥ ८६ ॥
षट विकार देहहि मे सभ अछि, आत्मा मे नहि मानथि ॥ ८७ ॥
जे संसार धर्म्मसौँ बाहर, चिद्घन सभ-गत देखथि ॥ ८८ ॥
सीता लक्ष्मण रामचन्द्र अहँ, मन-मन्दिर मे लेखथि ॥ ८९ ॥
अपनेँक नाम सतत कीर्त्तन सौँ, पाप-लेश नहि रहते ॥ ९० ॥
राम-नाम-महिमा रघुनन्दन, वर्णन के कय शकते ॥ ९१ ॥

का तो भरोसा है।" ७६-७७ मुनि ने हँसकर कहा— "आप तो स्वयं सभी लोगों के वासस्थान हैं; ७८ या आप तो सर्वत्र व्याप्त हैं। फिर दूसरी जगह कहाँ बताई जाए। ७९ जो द्वेष से रहित हों, सबको समान दृष्टि से देखनेवाले हों, जिनके मन में शान्ति विराजमान रहे, जो आपके चरण के भक्त हों, ८० हे रघुवीर, आपका प्यारा घर उन्हीं के हृदय-कमल में होना चाहिए; ८१ जो सारे धर्म और अधर्म की चिन्ता छोड़कर केवल आपके भजन के आनन्द में लीन रहते हैं; ८२ सदा मन लगाकर आपके ही मन्त्र का जप करते रहते हैं; जो स्पृहारहित, द्वन्द्वरहित, अहंकार-रहित और राग-रहित हैं, तथा जिनका चित्त सदा आप में रमा रहता है; ८३-८४ जो सुख और दुख को बराबर समझते हैं, और संसार को नाशवान् एवं मायास्वरूप समझते हैं, ८५ जिनके लिए सोना और मिट्टी की ईंटें बराबर हैं, जिनके मन में लोभ नाम मात्र भी नहीं है; ८६ जो समझते हैं कि छः प्रकार के सभी विकार केवल शरीर में होते हैं, न कि आत्मा में; ८७ जो सांसारिक धर्मों से परे रहते हैं, जो सभी प्राणियों में घनीभूत चित्शक्ति का दर्शन पाते हैं; ८८ और जो सीता और लक्ष्मण सहित आपको अपने मन रूपी गृह में वर्तमान पाते हैं। ८९ आप के नाम का कीर्तन सदा करते रहने से पाप निःशेष हो जाता है। ९० हे रघुनन्दन, राम-नाम की महिमा कौन बखान सकता है। ९१ मेरा नाम

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण कामोदनाट छन्दः]

हम ब्रह्मर्षि कहाओल नाम। कारण तकर कहैछी राम॥ ९२॥
द्विज-घर जन्म किरातक सङ्ग। बढ़लहुँ गहलहुँ तकरे रङ्ग॥ ९३॥
शूद्री-रति-कृत पुत्र बहूत। विगत विराग भ्रमिअ अवधूत॥ ९४॥
चोर कुसंगेँ बान्हल साटि। हमरा सौँ सभ तस्कर घाटि॥ ९५॥
धनुष-बाण-धर जंगल जाइ। जीव-घात कय सभ दिन खाइ॥ ९६॥
लूटि मारि ओ तस्कर कर्म्म। नीच कर्म्म बड़ मानल धर्म्म॥ ९७॥
छपकल छलहुँ कतहु वन कात। अबइत देखल हम मुनि सात॥ ९८॥
अनल दिवाकर दिव्य शरीर। तनिपर दौड़लहुँ लय धनु तीर॥ ९९॥
रहु रहु ठाढ़ कहल ललकारि। धन लेब लूटि देब जिब मारि॥ १००॥
मुनि-जनकाँ नहि हरष विषाद। कहलनि शुनि द्विज अधम निषाद॥१०१॥
करइत छह कथिलय ई कर्म्म। करह न लाथ सत्य कह मर्म्म॥ १०२॥
मुनिकाँ हम उत्तर देल फेरि। स्त्री सुत नाति हमर घर ढेरि॥ १०३॥
तन बुलि चुलि तत्पालन काज। यथातथा हो कयल न व्याज॥ १०४॥
मुनि कहलनि अपना घर जाउ। सत्य कथा एकटा बुझि आउ॥ १०५॥

ब्रह्मर्षि कैसे हुआ, यह मैं बताता हूँ। ९२ मेरा तो जन्म ब्राह्मण के वंश में हुआ, पर संगत रही किरातों की। उन्हीं लोगों के साथ मैं बढ़ा और उन्हीं लोगों का आचरण सीखा। ९३ शूद्र जाति की स्त्री के साथ संगम करके बहुत-से पुत्र पैदा किए। अवधूत की तरह बिना परहेज का घूमता-फिरता था। ९४ चोरों के साथ दोस्ती करके एक गिरोह बना लिया था। सभी चोर मेरा लोहा मानते थे। ९५ तीर-धनुष लेकर रोज जंगल जाना और जानवरों को मारकर रोज पेट भरता था। ९६ लूट, हत्या और चोरी इन्हीं अधर्म कर्मों को मैं अपना धर्म मानता। ९७ मैं कहीं जंगल के किनारे घात लगा छुपा हुआ था कि सात मुनियों को आते देखा। ९८ उनके शरीर आग और सूरज की तरह चमक रहे थे। ९९ मैंने चिल्लाकर कहा— "खड़े रहो। तुम लोगों का सारा धन लूट लूँगा और तुम्हें जान से मार डालूँगा।" १०० उन सप्तर्षियों को मेरे वचन पर न हर्ष हुआ और न विषाद। उन्होंने मुझसे कहा— "हे द्विज, हे अधम निषाद, सुनो। १०१ ऐसा बुरा कर्म किसलिए करते हो? बहाना मत करना, अपने अन्तर की बात सच-सच बताना।" १०२ मैंने मुनियों को उत्तर दिया— "मेरे घर में स्त्री, पुत्र, पोते आदि बहुत-से लोग हैं। १०३ उन्हीं के पालन के लिए घूम-फिरकर जो भी कर्म करना पड़ता है, वह करता हूँ। यह मैंने सही-सही बता दिया है, कोई बहाना नहीं किया है।" १०४ ऋषियों ने मुझसे कहा — "घर जाओ और सच्ची बात पूछ

हम करइत छी हिंसा कर्म्म। हमरा वा सभकाँ इ अधर्म्म॥ १०६॥
तावत हम रहबे एहि ठाम। घुरि आयब जायब जे गाम॥ १०७॥
शुनि मुनि वचन गेलहुँ वनटोल। बुझि अयलहुँ हम माँथक मोल॥ १०८॥
हम अनिअ धन कय अन्याय। हमर उपार्ज्जन सभ जन खाय॥ १०९॥
तोहरहु पाप कि हमरहि माँथ। कहह करह जनु एक जन लाथ॥ ११०॥
केवल फल-भागी हम तात। पाप-कर्म्म-फल सौँ हम कात॥ १११॥
हम से शुनि घुरि मुनि लग आय। तीर धनुष काँ देल नड़ाय॥ ११२॥
हुनि मुनि आगाँ खसलहुँ जाय। नरक घोरसाँ लिअओ बचाय॥ ११३॥
मुनि-दर्शन सौँ मन निर्व्वेद। ओ कृपालु किछु कहलनि भेद॥ ११४॥
उठ उठ सतसङ्गति फल पावि। भल फल आब तोहर अछि भावि॥ ११५॥
शरणागत काँ करब न त्याग। उपदेशहु मे गड़बड़ लाग॥ ११६॥
मरा मरा जप मन एक ठाम। यावत हम आबी एहि गाम॥ ११७॥
मन एकाग्र सुजप हम कयल। विषय विराग दिव्य हठ धयल॥ ११८॥

आओ तो। १०५ हिंसा तो तुम करते हो, पर उसके पाप का फल तुम्हारे घर के सभी लोग भोगेंगे या तुम अकेले ? १०६ जब तक तुम घर जाओगे और वहाँ से पूछकर लौट आओगे तब तक मैं यहीं इन्तिज़ार करता रहूँगा।" १०७ मुनियों की बात सुनकर मैं अपनी जंगली बस्ती में गया और वहाँ से कुछ मूल्यवान् ज्ञान लेकर लौटा। मैंने पूछा। १०८ "मैं पाप-कर्म द्वारा कमाकर धन लाता हूँ और मेरा कमाया हुआ धन तुम सभी लोग खाते हो। १०९ इस पाप का फल तुम लोगों को भी मिलेगा या केवल मेरे सर पर ही पड़ेगा ? इसका उत्तर कहो। कुछ दुराव मत करो।" उत्तर मिला— "हे तात, हम लोग तो केवल उस धन का भोग करते हैं। पाप के फल से तो हम दूर रहते हैं।" ११०-१११ यह सुनकर मैं घर से लौटकर मुनियों के पास आया और तुरन्त तीर-धनुष को फेंक दिया। ११२ उन मुनियों के चरणों पर जा गिरा और कहा— "हे मुनियो ! अब मुझे घोर नरक से बचाइए।" ११३ मुनियों के दर्शन से मेरे मन में वैराग का उदय हुआ। उन कृपालु ऋषियों ने मुझे कुछ मर्म की बात सुनाई— ११४ "उठो-उठो, सन्तों की संगत पाकर अब तुम्हें अच्छा फल मिलनेवाला है। तुमने हमें धर्मसंकट में डाल दिया। ११५ तुम शरण में आ गए हो, इसलिए तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर सकता। पर तुम्हें उपदेश देना भी ठीक नहीं प्रतीत होता है (क्योंकि तुम पतित हो)। ११६ 'राम-राम' मन्त्र तुम्हें कैसे दूँ, इसलिए उसका उलटा 'मरा-मरा' मन्त्र एकचित्त हो तब तक जपते रहो जब तक मैं लौटकर फिर इस निषाद ग्राम में आता हूँ।" ११७ तब मैं एकाग्र चित्त से 'मरा-मरा' मन्त्र जपता रहा। आग्रहपूर्वक मन को विषय-भोग से विरत किया। ११८ मेरे

हमरा उपर बढ़ल वल्मीक। हम नहि जानल की ई थीक ॥ ११९ ॥
युग-हजार पर फिरला फेरि। बाहर होउ कहल कय बेरि ॥ १२० ॥
रवि सौँ हमर तेज नहि घाटि। जनु कुहेस रविसौं गेल फाटि ॥ १२१ ॥
ई उतपति वल्मीक सौँ थीकि। संज्ञा हमर धयल वाल्मीकि ॥ १२२ ॥
शुनु रघुनन्दन नाम-प्रभाव। हम ब्रह्मर्षि विदित जग आब ॥ १२३ ॥
चलु चलु लक्ष्मण ठाम देखाउ। पर्ण-कुटी दुइ दिव्य बनाउ ॥ १२४ ॥
गङ्गा-पर्व्वत-मध्य प्रदेश। मुनि कहलनि थल अछि ई बेश ॥ १२५ ॥
पर्णकुटी बान्हल दुइ गोट। एक गोट वृहत एक गोट छोट ॥ १२६ ॥

॥ दोहा ॥

सीता लक्ष्मण सहित प्रभु, वास कयल स्वच्छन्द ॥ १२७ ॥
मनुष वेष बनि विबुध गण, देखथि परमानन्द ॥ १२८ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे अयोध्याकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

शरीर पर वल्मीक (दीमक का टीला) बन गया। मुझे मालूम ही न हुआ कि यह क्या है। ११९ एक हज़ार युगों के बाद वे ऋषि लोग लौटकर वहाँ आए और बार-बार पुकारकर मुझसे कहा— "अरे, दीमक के टीले से बाहर तो निकलिए।" १२० मेरी चमक सूरज से कम न थी। मानों सूरज के उगने पर कुहरा फट गया हो। १२१ चूँकि इस प्रकार मेरा उद्भव वल्मीक (दीमक के टीले) से हुआ, इसलिए मुनियों ने मेरा नाम 'वाल्मीकि' रखा। १२२ हे रघुनन्दन, नाम-जप की महिमा सुनिए। अब मैं दुनिया में 'ब्रह्मर्षि' कहलाता हूँ। १२३ हे लक्ष्मण, चलिए। अब मैं आपको स्थान दिखा देता हूँ। यहाँ दो सुन्दर पर्णकुटियाँ (पत्तों की झोपड़ियाँ) बनाएँ। १२४ गंगा नदी और पर्वत के बीच की यह जगह अच्छी है।" १२५ जब वाल्मीकि मुनि ने ऐसा कहा, तब उन्होंने दो पर्णकुटियाँ बनाईं— एक बड़ी और एक छोटी। १२६ वहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने स्वच्छन्दतापूर्वक वास किया। १२७ देवता लोग मानव-रूप धारण कर-करके उन परम आनन्दस्वरूप राम का दर्शन करने आते रहते थे। १२८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में अयोध्याकण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

[मिथिला-संगीतानुसारेण पार्व्वतीयबराड़ी-नाम छन्दः]

ओतय अयोध्या मन्त्रि सुमन्त्र। पहुचि सरथ भेल दिवसक अन्त॥ १॥
बसनहि सौँ मुह कय लेल ओट। राम-वियोग दुःख बड़ गोट॥ २॥
नोरक लेल गेल तन तीति। पुर-प्रवेश मे हो बड़ भीति॥ ३॥
रथ छोड़ल बाहर नृप-द्वार। भूप देखि जय शब्द उचार॥ ४॥
स्तुति कय कयलनि चरण-प्रणाम। के अहाँ पुछल कहल से नाम॥ ५॥
अहह कहू कत सानुज राम। जनक-नन्दिनी छथि कोन ठाम॥ ६॥
हम निर्द्दय त्यागल मर्य्याद। पापिहुँ काँ किछु कहल समाद॥ ७॥
हाहा राम कहाँ अहँ आज। गुणनिधि त्यागल हमर समाज॥ ८॥
प्रियवादिनि जानकि कत गेलि। दुखमे हमर केओ नहि भेलि॥ ९॥
डबडुब होइछि दुःख-पयोधि। निकट निधन सभटा सुख शोधि॥ १०॥

[हरिपद-छन्दो मिथिलासंगीतानुसारेण तु बसन्तनाम छन्दः]

कहल सुमन्त चढ़ाय लेल रथ, शृङ्गवेरपुर गेला॥ ११॥
गङ्गातीर उतरला जखना भय गेल बड़का मेला॥ १२॥

सातवाँ अध्याय

सुमन्त का अयोध्या लौटना

उधर मन्त्री सुमन्त दिन के अन्त में रथ-सहित अयोध्या लौटे। १ उन्होंने वस्त्र से मुँह पर परदा कर लिया। राम के बिछोह से उन्हें भारी दुख था। २ आँसू से सारे बदन भीग गए। नगर में प्रवेश करने में बड़ा डर लगता था। ३ रथ को बाहर ही छोड़कर सुमन्त राजद्वार आए। राजा दशरथ को देखकर जय-जयकार किया। ४ विरुदपाठ करके राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा— "आप कौन हैं?" उन्होंने अपना नाम बताया। ५ दशरथ बोले— "हाय, बताइए, लक्ष्मण-सहित राम कहाँ हैं? जनकनन्दिनी कहाँ हैं? ६ मैंने निर्दय होकर मर्यादा का त्याग किया। क्या इस पापी पिता को भी राम ने कुछ सन्देश कहा है? ७ हा राम, आज तुम कहाँ हो? गुणवान् पुत्र ने मेरा साथ छोड़ दिया। ८ मधुरभाषिणी सीता कहाँ गई? दुख के वक़्त मेरा कोई नहीं हुआ। ९ मैं दुख के समुद्र में बार-बार डूब रहा हूँ। सारा सुख भोगकर अब मृत्यु के पास पहुँच गया हूँ।" १० सुमन्त ने कहा— "वे लोग रथ पर सवार हुए और शृंगवेरपुर गए। ११ वहाँ गंगा के किनारे ज्यों ही रथ से

गुह नामक निषादपति सभ जन दौड़ि दण्डवत कयलनि ॥ १३ ॥
कन्द मूल फल मधुर मधुर से रामक आगाँ धयलनि ॥ १४ ॥
कन्द मूल फल एक लेल नहि परशि देल प्रभु हाथैं ॥ १५ ॥
गुह कहलनि हम किङ्कर अपनेक आज्ञा कर हम माथैं ॥ १६ ॥
तनिका कहि कहि श्रीरघुनन्दन बड़क दूध मंगबाओल ॥ १७ ॥
सानुज राम ताहिसौं माथा जटा मुकुट निर्म्माओल ॥ १८ ॥
अविकल कहल राम जे हमरा से समाद सभ आजे ॥ १९ ॥
कहितहु बहुत कलेश होइछ मन तदपि कहब महराजे ॥ २० ॥
हमर निमित्त पिता नहि करिहथि ओ चिन्ता किछु मनमे ॥ २१ ॥
निज घर सौं शत गुण सुख सन्तत हमरा होयत वनमे ॥ २२ ॥
राम कहल माता काँ कहि देब पिता शोक सभ हरिहथि ॥ २३ ॥
कहब प्रणाम धैर्य्य कय नृप लग चर्चा हमर न करिहथि ॥ २४ ॥

॥ सोरठा ॥

सभकाँ कहब प्रणाम, गुरुजन जे छथि नगर मे ॥ २५ ॥
चलयित कहलनि राम, गेल जाय पुर शून्य अछि ॥ २६ ॥

॥ नरेन्द्र-छन्दः ॥

सीता कहलनि प्रभु मुख देखइत गुरुजन जे छथि ग्राम ॥ २७ ॥
कहिहथि मन वय शाशु-शशुर-पद शत साष्टाङ्ग प्रणाम ॥ २८ ॥

उतरे कि भारी मेला लग गया। १२ निषादों के राजा गुह सभी परिजनों के साथ दौड़ आए और उन्हें दंडवत् प्रणाम किया। १३ उन्होंने मीठे-मीठे कन्द, मूल और फल राम को अर्पित किए। १४ प्रभु राम ने एक भी कन्द, मूल या फल नहीं लिया, केवल हाथ से छूकर लौटा दिया। १५ फिर गुह ने कहा—'मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा देनी हो सो दीजिए, वह मुझे शिरोधार्य होगी।' १६ तब राम ने उन्हें आज्ञा देकर बरगद का दूध मँगवाया। १७ लक्ष्मण-सहित राम ने अपने माथे में जटा का मुकुट बनाया। १८ राम ने जो संवाद कहा वह सुनाते यद्यपि मुझे मन में बहुत क्लेश होता है, फिर भी हे महाराज, मैं अविकल सुनाऊँगा। १९-२० राम का सन्देश है— 'हमारे लिए पिताजी मन में कुछ चिन्ता न करें। २१ हमें इस वन में सदा अपने राजमहल से सौ गुना सुख मिलेगा।' २२ राम ने माता से यह संवाद कहने को कहा कि 'वे पिताजी के सभी शोकों को दूर करें। २३ मेरा प्रणाम कहियेगा और अनुरोध करियेगा कि वे पिता के पास मेरी चर्चा न करें।' २४ राम ने चलते वक़्त कहा— 'नगर में जो-जो गुरुजन हैं सबों को मेरा प्रणाम कहिएगा। अब जाइए। अयोध्या नगर सूना है।' २५-२६ तब प्रभु रामचन्द्र की ओर

रथकाँ ओ हमरा दिश देखल भेलि अधोमुखि फेरि ।। २९ ।।
हमर प्रणाम कयल संज्ञहि सौँ कनइत चलती बेरि ।। ३० ।।
रोषेँ लक्ष्मण किछु अनुचित सन कहक यत्नपर जखना ।। ३१ ।।
सीताराम शपथ दय तनिकाँ स्वस्थ कयल कहि तखना ।। ३२ ।।
चढ़ि सै नाव उतरि गङ्गा सौँ टक टक तकितहि रहलहुँ ।। ३३ ।।
कहुना कहुना अयलहुँ कनइत देखल से नृप कहलहुँ ।। ३४ ।।

[मत्तगजेन्द्र-छन्दः]

से शुनि कानि कहै लगली तहाँ भूपति सौँ बड़की महरानी ।। ३५ ।।
केकयि काँ वर देलहुं जे वर लेलनि राज्य कि होइत हानी ।। ३६ ।।
हा ! हमरे प्रिय पुत्र पुतोहु वृथा वन दैल कहाओल ज्ञानी ।। ३७ ।।
शोच वृथा करणी अपने सभ आरि न बान्हल गेलहु पानी ।। ३८ ।।

।। माधवीवराड़ी-छन्दः ।।

बड़ निरदय विधि जानल रे ककरो नहि दोष ।। ३९ ।।
राज न करत भरत एत रे केकयि सन्तोष ।। ४० ।।
बुझि पड़ राज-भवन वन रे के रह एहिठाम ।। ४१ ।।
नृपतिक की गति होयत रे बिन लक्ष्मण राम ।। ४२ ।।

निहारकर सीता ने कहा— 'नगर में जो कोई गुरुजन, सासें और ससुर हैं उन सबों के चरण में मेरा सौ-सौ साष्टांग प्रणाम कहिएगा।' २७-२८ फिर सीता ने रथ की ओर और मेरी ओर देखकर गरदन झुका लिया। २९ और विदा होते समय इशारे से ही मेरा प्रणाम किया। ३० क्रोधवश लक्ष्मण ज्योंही कुछ अनुचित-सी बात कहने पर हुए त्योंही सीता और राम ने उन्हें सौगन्ध देकर शान्त कर दिया। ३१-३२ उसी नाव पर चढ़कर गंगा को पार किया; अपलक नयनों से उनकी ओर झाँकता रहा। ३३ किसी-किसी तरह रोते-बिलखते लौट आया हूँ। हे राजा, जो देखा सो आपसे सुना दिया।" ३४ यह सुनकर बड़ी महारानी कौशल्या रो-रोकर राजा दशरथ से कहने लगी— ३५ "आपने कैकेयी को वर दिया और उन्होंने भरत के लिए राज्य माँग लिया, इसमें तो कोई हानि नहीं। ३६ पर हाय, आप मेरे प्रिय पुत्र और पतोहू को अकारण वनवास देकर ज्ञानी कहलाए। ३७ आप व्यर्थ शोक करते हैं। सब आपकी अपनी ही करनी है। आपने आली नहीं बाँधी, पानी बह गया। ३८ मैं जान गई, विधाता (भाग्य) बड़ा निर्दय होता है। इसमें और किसी का दोष नहीं है। ३९ भरत तो राज करेगा नहीं; केवल कैकेयी को मन में सन्तोष होगा। ४० राजभवन तो वन-जैसा लगता है। यहाँ कौन रहेगा। ४१ राम और लक्ष्मण के बिना राजा दशरथ का क्या हाल होगा। ४२

तिनु जन बन बन सञ्चर रे सहि भूख पिआस ॥ ४३ ॥
की होइत की कै देल रे विधि आश विनाश ॥ ४४ ॥
हा धिक हा धिक जीवन रे जग भरि उपहास ॥ ४५ ॥
नीति-तन्त्र लिख ककरो रे नहि करि बिसबास ॥ ४६ ॥

॥ बितत-सूहब छन्दः ॥

राजा विकल कहल एहन ॥ ४७ ॥
अपन हानो कैलहु रानी विधिक शासन जेहन ॥ ४८ ॥
केकयि कारण मानल मरण हरण अपन ज्ञान ॥ ४९ ॥
अन्तष्करण आधि हि दरण होइछ आन कि जान ॥ ५० ॥
मरण दिवस दैवक विवश क्षमा करिअ दोषे ॥ ५१ ॥
पतिक हीना केकयि दीना भोगथु विभव रोषे ॥ ५२ ॥

॥ मुदिरा छन्दः ॥

पुत्र-पुतोहु-वियोग-व्यथा-ज्वरसौँ हम आइ मरै परछी ॥ ५३ ॥
की दुख मे दुख दैछि अहाँ दुख-सागर आइ तरै परछी ॥ ५४ ॥
अन्तरमे अनुभूत महानल बाहर मध्य जरै परछी ॥ ५५ ॥
हा रघुनन्दन प्रीति-प्रतीति धरातल मध्य करै परछी ॥ ५६ ॥

सीता, लक्ष्मण और राम भूख-प्यास सहते हुए बिना परिजन के वन-वन भटक रहे हैं। ४३ विधाता ने क्या से क्या कर दिया। आशा पर पानी फेर दिया। ४४ जिसका सारे संसार में उपहास हो उसके जीवन को धिक्कार है। ४५ नीतिशास्त्र में ठीक ही कहा गया है कि किसी का भी विश्वास नहीं करना चाहिए।" ४६ बिलखते हुए राजा ने कहा। ४७ "विधि का जैसा विधान था, हे रानी, मैंने अपनी हानि आप की। ४८ मैं कैकेयी के कारण मृत्यु पा रहा हूं। मैंने विवेक खो दिया। ४९ अन्तर्व्यथा से कलेजा फट रहा है। दूसरा यह व्यथा क्या जाने। विधिवश आज मृत्यु का दिन आ गया है। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ वह क्षमा कर दो। अब पतिहीन दीन कैकेयी रोष के साथ इस धन-सम्पत्ति का भोग करे। ५०-५२ आज मैं पुत्र और पुत्र-वधू के बिछोह के सन्ताप से मरने पर हूँ। ५३ तुम दुख में मुझे क्यों और दुख देती हो। आज तो मैं दुख-सागर को पार करने पर हूँ। ५४ भीतर में जो तेज आग जल रही है उसकी ज्वाला में बाहर शरीर से भी जलने पर हूँ। ५५ हा रघुनाथ, आज मैं धरती पर प्रेम की कड़वी अनुभूति पाने पर हूं। ५६

॥ सोरठा ॥

कयल बहुत हम पाप, शुनु कौशल्या कुशल-मति ॥ ५७ ॥
तकरे फल सन्ताप, शाप देल मुनि प्राप्ति-दिन ॥ ५८ ॥
तरुण अवस्था भूप, गेलहुँ खेलाय सिकार हम ॥ ५९ ॥
की कहु चूपहि चूप, एक समय शर-धनुष-कर ॥ ६० ॥
दूइ पहर छल राति, नदी-तीर वन घोर मे ॥ ६१ ॥
दुस्सह क्षत्रिय जाति, बाण चलाओल जानि गज ॥ ६२ ॥
गज पिबइत अछि पानि, शब्द-बेध सौँ बिद्ध से ॥ ६३ ॥
व्याकुल उठला कानि, के मारल अपराध बिनु ॥ ६४ ॥
की गति पओतिहि माय, बिकल बाप करताह की ॥ ६५ ॥
के देत पानि पिआय, हाहा पुत्र कतय रहल ॥ ६६ ॥
शब्द शुनल हम कान, मुनि-मानुष-सूचक वचन ॥ ६७ ॥
भेल आन सौँ आन, गमहि गेलहुँ भय त्रस्त हम ॥ ६८ ॥
मुनि हम दशरथ भूप, जल भरइत मारल वृथा ॥ ६९ ॥
जानल नहि ई रूप, गज-भ्रम सौँ अपराध बड़ ॥ ७० ॥
धयल पयर पर माथ, त्राहि त्राहि कय बेरि कहि ॥ ७१ ॥

दशरथ का श्रवणकुमार की कथा सुनाना और प्राणत्याग करना

मेरी समझदार कौशल्या, सुनो। मैंने भारी पाप किया है। ५७ यह सन्ताप उसी का फल है। मुझे मुनि ने शाप दिया था। आज उसी शाप के भोग का दिन आया है। ५८ एक समय, जब मैं किशोर अवस्था का राजा था, चुपके से हाथ में तीर-धनुष लेकर शिकार करने चला गया। ५९-६० दो पहर रात हो गई थी। नदी के किनारे घोर जंगल में दुःसाहसी क्षत्रिय के रूप में शिकार करते मुझे मालूम पड़ा कि हाथी पानी पी रहा है। मैंने शब्दवेधी बाण चला दिया। शर से विद्ध एक पुरुष व्याकुल हो रोने लगा— 'किसने मुझे बिना अपराध के मारा? ६१-६४ मेरी माता की क्या गति होगी? मेरे विकल पिताजी क्या उपाय करेंगे? ६५ उन्हें कौन पानी पिलाएगा? वे रोएँगे, हाय-हाय! मेरा लड़का कहाँ रह गया।' ६६ मैंने वे शब्द सुने। अरे, वे तो किसी मनुष्य के या किन्हीं मुनि के थे। ६७ क्या से क्या हो गया। डर से संत्रस्त मैं धीरे से उनके पास गया और उनसे कहा। ६८ 'हे मुनि, मैं राजा दशरथ हूँ। मैंने जल भरते हुए आपको अकारण मार डाला। आपका यह मुनि-रूप मुझे नहीं मालूम हुआ। हाथी समझकर मैंने बाण चला दिया। मुझसे भारी अपराध हो गया। ६९-७० इतना कहकर मैंने उनके पाँव पर अपना सर रख

सब गति अपनेक हाथ, चोर न्याय सौँ नष्ट हो ॥ ७२ ॥
मुनि कहलनि तहि राति, ब्रह्म-वधक संशय तजिय ॥ ७३ ॥
वैश्य हमर अछि जाति, भ्रम-सौँ मारल कर्म्म-वश ॥ ७४ ॥
करू एकटा काज, जतय पिता जननी हमर ॥ ७५ ॥
लय जल तनिक समाज, जाय देब कृति अपन कहि ॥ ७६ ॥

॥ मत्तगजेन्द्र छन्द ॥

आंधर वृद्ध पिता जननी छथि जाय तहाँ नृप पानि पिआऊ ॥ ७७ ॥
बाणक वेदन देहमे होइछ खौँचि धरू मरिके सुख पाऊ ॥ ७८ ॥
जौँ नहि जायब भूप तहाँ कय भस्म देता जनु कोप बढ़ाऊ ॥ ७९ ॥
जे किछु कैल अहाँ करणी हमरो सब दुर्गति मृत्यु शुनाऊ ॥ ८० ॥

॥ चौपाइ ॥

जेहन कहल मुनि मरती बेरि । सभटा तेहन कयल हम फेरि ॥ ८१ ॥
जल भरि कलस लेल से कन्ध । गेलहुँ हम जत आन्धरि अन्ध ॥ ८२ ॥
पद आहट शुनि से बजलाह । पुत्र रातिमे कतय छलाह ॥ ३८ ॥
भूख पिआसेँ कण्ठ सुखाय । दिअ दिअ सत्वर पानि पिआय ॥ ८४ ॥
शयन करू अपनहुँ जल पीबि । मन चिन्ता छल अयलहुँ जीबि ॥ ८५ ॥
पयर धयल हम कहि निज नाम । अहँक पुत्र नहि छथि एहि ठाम ॥ ८६ ॥

दिया और बार-बार 'त्राहि-त्राहि' की पुकार करते हुए कहा । ७१ 'अब आप जो करें, सब आपके हाथ में है । चोर का नाश न्याय से होता है ।' ७२ उस रात मुनि ने कहा— 'ब्रह्म-वध की शंका मत कीजिए । ७३ मैं वैश्य जाति का हूँ । भाग्यवश आपने भ्रम से मुझे मारा । ७४ कृपया एक काम किया जाए । यह पानी लेकर वहाँ जाइए जहाँ मेरे पिता और माता हैं । उन्हें पानी दीजिएगा और अपनी करनी सुनाइएगा । ७५-७६ हे राजा, मेरे वृद्ध माता-पिता अन्धे हैं । वहाँ जाकर आप उन्हें पानी पिलाइए । ७७ मेरे शरीर में बाण की वेदना हो रही है । इसे खींच लीजिए और मुझे मरकर सुख पाने दीजिए । ७८ हे राजा, यदि आप उनके पास नहीं जाएँगे तो वे आपको भस्म कर देंगे । उनका क्रोध मत बढ़ाइए । ७९ आपने मेरी जो कुछ दुर्गति की है, वह बात तथा मेरी मौत की बात उन्हें सुना दीजिए ।' ८० मरते समय मुनि ने जैसा-जैसा कहा, मैंने वैसा-वैसा किया । ८१ घड़े में पानी भरकर कन्धे पर उठाया और वहाँ गया जहाँ अन्धे और अन्धी थीं । ८२ पाँव की आहट सुन वे बोले— 'बेटा, रात में तू कहाँ था ? ८३ भूख और प्यास से मेरा गला सूख रहा है । ला, जल्द मुझे पानी पिला । ८४ तू भी पानी पीकर सो जा । मन में चिन्ता थी । तू सकुशल चला आया ।' ८५ मैंने अपना नाम

सकल विवर्त्त कहल निज काज। तैँ आयलछी अहँक समाज ॥ ८७ ॥
दया करिय मुनि बड़ अपराध। कनइत कहलनि हा विधि बाध ॥ ८८ ॥
हमरा कहल देह पहुँचाय। शुनि दम्पति लेल कांध चढ़ाय ॥ ८९ ॥
धिक धिक जीवन हमरो आब। कहि शव सुतकाँ अङ्ग लगाब ॥ ९० ॥
हे नृप चिता करिय निर्म्माण। हमरो निश्चय चलला प्राण ॥ ९१ ॥
बूढ़ बूढ़ि कय विविध विलाप। मरण समय हमरहु देल शाप ॥ ९२ ॥
हमर पुत्र-सुख कयलहु हरण। पुत्र-वियोगहिँ तोहरो मरण ॥ ९३ ॥
एकहि चिता तिनू जरि अमर। सुरपुर गेल पार दिन हमर ॥ ९४ ॥
नहि विलम्ब दिन से सम्प्राप्त। मर्म्म मर्म्म दुख हमरा व्याप्त ॥ ९५ ॥
हा रघुनन्दन हा सुत राम। हा जानकि लक्ष्मण गुण-धाम ॥ ९६ ॥
केकयि कारण अहँक वियोग। मरण होइ अछि आन कि रोग ॥ ९७ ॥
ई कहइत त्यागल नृप प्रान। विकलि सकलि रानी-जनि कान ॥ ९८ ॥
गेला वसिष्ठ मन्त्रि लै सङ्ग। की भय गेल रङ्ग मे भङ्ग ॥ ९९ ॥
दशरथ-देह तेलमे रहय। सत्वर दूत भरत केँ कहय ॥ १०० ॥
अश्ववार घोड़ा दौड़ाउ। भरतक मातृक सत्वर जाउ ॥ १०१ ॥

कहकर उनके पाँव पकड़े और कहा— 'आपके पुत्र अब नहीं रहे। ८६ वे चल बसे। उन्होंने अपना काम मुझे बताया। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। ८७ हे मुनि, मुझ पर दया कीजिए। मैंने बड़ा अपराध किया है।' सुनकर वे बिलखने लगे— 'हाय विधाता, तुमने कैसा प्रहार किया ?' ८८ फिर मुझसे बोले— "हमें वहाँ पहुँचा दीजिए जहाँ हमारा लाल है।" सुनकर मैंने अन्धे और अन्धी को काँधे पर उठा लिया। ८९ वे दोनों 'अब हमारा जीना बेकार है' ऐसा कहकर पुत्र के शव को गले से लगा लिया। ९० फिर बोले— 'हे राजा, अब चिता रचाइए। निश्चय अब मेरे प्राण भी चले।' ९१ बूढ़े और बूढ़ी ने मरते समय बहुत विलाप किया और मुझे शाप दिया। ९२ 'तुमने मुझे पुत्र-सुख से वंचित किया है, इसलिए तुम्हारा भी मरण पुत्र के वियोग से होगा।' ९३ तब एक ही चिता पर जलकर तीनों अमर हो गए और स्वर्ग चले गए। अब मेरी बारी आई है। ९४ विलम्ब नहीं है। वह दिन आ पहुँचा। मेरे रग-रग में वेदना छा गई है। ९५ हा रघुनन्दन ! हा बेटा राम ! हा जानकी ! हा गुणधाम लक्ष्मण ! ९६ कैकेयी के कारण तुम लोगों से बिछोह हो गया। और कोई बीमारी नहीं है। मैं शाप के अनुसार इसी बिछोह से मर रहा हूँ। ९७ यह कहकर राजा ने प्राण त्याग दिए और सारी रानियाँ चीख-चीखकर रोने लगीं। ९८ गुरु वसिष्ठ मन्त्री को साथ लेकर वहाँ गए। देखा, क्या रंग में भंग हो गया है। ९९ उन्होंने कहा— "दशरथ का शव तेल में रखा जाय और तुरत भरत के पास दूत भेजा जाए। १०० एक

छथि शत्रुघ्न भरत तहि ठाम। गुरु-आज्ञा चलु एखनहि गाम ॥ १०२ ॥
कहबनि पहुँचल ताकी आज। अननि जनक काँ देखय काज ॥ १०३ ॥
नाम युधाजित भरतक माम। तनिकाँ कयल सवार प्रणाम ॥ १०४ ॥
निज घर भरत चलथु दुहु भाइ। अयलहुँ गुरुक पठाओल आइ ॥ १०५ ॥

॥ सोरठा ॥

त्वरित भरत दुहु भाय, चलला तुरग सवार सह ॥ १०६ ॥
की थिक बुझल न जाय, भय-चिन्तातुर मन अधिक ॥ १०७ ॥

॥ चौपाइ ॥

सगर नगरमे पसरल शोक। उत्सव-रहित सकल पुरलोक ॥ १०८ ॥
प्राणि मात्रकाँ नहि उत्साह। कनइत कनइत जेहन बताह ॥ १०९ ॥
त्यागल कमला जेहन निवास। देखि भरत-मन अतिशय त्रास ॥ ११० ॥
की अनर्थ थिक मन मन गुन। राज-भवन निज जन सौँ शुन ॥ १११ ॥
केवल केकयि बैसलि देखि। मुदित मन्थरा दशा विशेषि ॥ ११२ ॥
कयल प्रणाम मातृ-पद छूबि। ओ आशिष देल मुख लेल चूमि ॥ ११३ ॥

घुड़सवार को हुक्म दिया जाय कि वह तुरत भरत के ननिहाल जाए। १०१ जहाँ भरत और शत्रुघ्न गए हुए हैं। उन्हें कहें कि "गुरु की आज्ञा है, तुरत घर चलिए। १०२ आज ही पहुँचना जरूरी है। आकर माता और पिताजी से मिलिए।" १०३

ननिहाल से भरत का लौटना और पिता का श्राद्ध करना

सवार भरत के ननिहाल पहुँचा और वहाँ भरत के मामा युधाजित को प्रणाम किया। १०४ उनसे अनुरोध किया कि भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई अपने घर चलें; गुरु की आज्ञा से मैं यह संवाद लेकर आया हूँ। १०५ भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई तुरत उस घुड़सवार के साथ चल पड़े। १०६ बात क्या है उन्हें कुछ समझ में नहीं आता। डर और चिन्ता से उनका मन बहुत घबराया हुआ था। १०७ सारी अयोध्यानगरी में शोक छा गया। नगर के सभी लोग उदास हो गए। १०८ किसी को भी उत्साह न रहा। लोग रोते-रोते मानों पागल हो गए। १०९ लगता था जैसे लक्ष्मी वहाँ से चली गई हो। यह रंग देखकर भरत का मन आतंकित हो उठा। ११० वे मन में सोचते हैं, क्या अनहोनी बात हुई है? राजभवन में अपने लोग नहीं दिखाई देते हैं। १११ देखा कि केवल कैकेयी बैठी हैं और इस हाल को देख मन्थरा विशेष प्रसन्न है। ११२ भरत ने माता के पाँव छूकर प्रणाम किया। माता ने आशीर्वाद दिया और मुँह चूमा। ११३ हर्षित हो छाती से लगा लिया। भरत ने

हरषित लेलनि हृदय लगाय। कुशल पिता छथि भ्राता माय॥ ११४॥
अहँ छी निकय देखल भरि नयन। देखला विनु मन छल नहि चयन॥ ११५॥
व्याकुल पुछल पिता छथि कतय। भरत कहल हम जायब ततय॥ ११६॥
एकसरि अहँ कहँ छथि महिपाल। अति व्याकुल मन हो एहि काल॥ ११७॥
अपने बिनु नहि रहथि एकान्त। हाय माय थिक की वृत्तान्त॥ ११८॥
शून्य भवन कत प्रबल प्रताप। बिनु देखलेँ जिव थरथर काँप॥ ११९॥

॥ छपमाला ॥

[मिथिला-संगीतरीत्या केदार-छन्दः]

जेहन छल छथि नृपति सुकृती अश्वमेध जे कयल॥ १२०॥
भरत चिन्ता चित्त नहि करु दिव्य गति से धयल॥ १२१॥
कुलिश-कठिन कठोर केकयि-वचन से शुनि कान॥ १२२॥
शोक-आकुल भरत खसला छिन्न वृक्ष समान॥ १२३॥
हा पिता कत गेलहुँ अपने त्यागि दुखमे बेल॥ १२४॥
राम काँ नहि सोपि गेलहुँ दुःख कोदहु भेल॥ १२५॥
भरत व्याकुल देखि केकयि कहल की हो कानि॥ १२६॥
माय बाप न सदा जोबथि धैर्य करु मन मानि॥ १२७॥

पूछा— "हे माता, मेरे पिता और भाई कुशल तो हैं ?" ११४ बात टालकर कैकेयी ने पूछा— "तुम कुशल से हो न ? अब तुम्हें नजर भर देखा। तुम्हें न देखने से मेरा मन बेचैन था।" ११५ फिर भरत ने व्याकुल हो पूछा— "पिताजी कहाँ हैं ? बताओ, मैं वहाँ जाऊँगा। ११६ यहाँ तुम अकेली हो। राजा कहाँ हैं ? अभी मेरा मन बहुत घबरा रहा है। ११७ राजा तो तुम्हारे बिना एकान्त में नहीं रहते थे। हाय ! बताओ तो मेरी माँ, बात क्या है ? ११८ सूना भवन कितना सन्ताप दे रहा है। पिता को देखे बिना जी काँप रहा है।" ११९ कैकेयी ने कहा— "राजा दशरथ बड़े पुण्यवान् थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। उन्होंने दिव्य गति (स्वर्गलोक) पायी। इसलिए हे भरत, तुम उनके वास्ते मन में चिन्ता मत करो।" १२०-१२१ कैकेयी के मुँह से यह वज्र-सा कठोर वचन सुनकर भरत शोक से व्याकुल हो कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़े और विलाप करने लगे। १२२-१२३ "हे पिता ! आप मुझे राम के हाथ सौंपे बगैर दुख में छोड़कर कहाँ चले गए ? आपको कौन-सा दुःख हुआ कि इस तरह छोड़ चले ?" १२४-१२५ भरत को व्याकुल देखकर कैकेयी ने कहा— "रोकर क्या होगा ? माँ-बाप सदा जीते तो रह नहीं सकते। ऐसा समझकर मन में धैर्य रखो। १२६-१२७ राजा ने 'हा रघुनन्दन राम, हा

॥ सोरठा ॥

हा रघुनन्दन राम, हा वैदेही हा कहाँ ! ॥ १२८ ॥
हा लक्ष्मण गुणधाम, ई कहि त्यागल प्राण नृप ॥ १२९ ॥
लक्ष्मण सीता राम, ई सभ छल छथि जननि कत ॥ १३० ॥
शून्य देखि पड़ धाम, अति व्याकुल मन भरत कह ॥ १३१ ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनु सुत सम्प्रति अछि एकान्त। कहइतछी बड़ बड़ वृत्तान्त ॥ १३२ ॥
मरण निकट नृप मन भेल व्याज। मन छल रामचन्द्र युवराज ॥ १३३ ॥
बड़ि बुधिआरि देखैत अधलाहि। देल मन्थरा काज निबाहि ॥ १३४ ॥
देलक विपति समय मन पाड़ि। हम वर लेल देल नहि छाड़ि ॥ १३५ ॥
वर धयले छल से लेल माँगि। नृपति-हृदय जनु लागल साँगि ॥ १३६ ॥
चौदह वर्ष राम वन जाथु। कन्द मूल फल वन बसि खाथु ॥ १३७ ॥
भरत एतय होअथु युवराज। हमरा एहि बुइटा सौँ काज ॥ १३८ ॥
सगर नगर भेल हाहाकार। त्यागल हम कि कठिन व्यवहार ॥ १३९ ॥
बड़ बड़ जन कहि गेला हारि। सुपुरुष मुरुष हमहि बुधिआरि ॥ १४० ॥
महति मन्थरा समय सहाय। बुद्धि विलक्षण कूबड़ काय ॥ १४१ ॥

वैदेही ! हा गुणधाम लक्ष्मण ! कहाँ हो ?' इस तरह विलाप करते हुए प्राण छोड़े।" १२८-१२९ भरत ने अति व्याकुल मन से कहा— "माँ, लक्ष्मण कहाँ हैं ? सीता और राम कहाँ हैं ? और माताएँ कहाँ हैं ? महल सूना दिखायी देता है।" १३०-१३१ फिर कैकेयी ने कहा— "हे पुत्र, सुनो, अभी कोई दूसरा नहीं है। मैं सुनाती हूँ, बड़ी-बड़ी बात हुई है। १३२ मरने के समय राजा के मन में छल-कपट समा गया। उन्हें इच्छा हुई कि रामचन्द्र को युवराज बनावें। १३३ मन्थरा देखने में तो बदसूरत है, पर है बड़ी सयानी। उसी ने मेरा काम सँभाल दिया। १३४ संकट के समय उसने याद करा दिया। मैंने वर पाये थे। उन्हें छोड़े नहीं थे। १३५ मेरे वर थाती किये हुए थे। सो मैंने माँग लिये। इतने ही से राजा के हृदय में मानों बरछी चुभ गई। १३६ मुझे सिर्फ़ इन दो वरों की ज़रूरत थी— पहला यह कि राम वन चले जाएँ और वहाँ चौदह बरस कन्द-मूल-फल खाते हुए वास करें। दूसरा यह कि भरत यहाँ युवराज बनाए जाएँ। १३७-१३८ सारे नगर में हाहाकार मच गया। फिर भी मैंने अपना यह कठिन आग्रह छोड़ा नहीं। १३९ बड़े-बड़े लोग समझाकर हार गए। भले लोग बेवकूफ़ बने। मैं चतुर सिद्ध हुई। १४० दासी मन्थरा वक़्त पर मददगार हुई। शरीर से तो वह कूबड़ी है, पर उसकी बुद्धि विलक्षण है। १४१ राम का वन-गमन निश्चित होने पर सीता भी घर में

सीता सती रहलि नहि गेह। लक्ष्मण रामक सत्य सनेह॥ १४२॥
तिनु जन वन वश-गत साम्राज्य। पटल आन छल समटल काज॥ १४३॥
आर्त्त भरत की होयत कानि। काज सम्हारल हम हठ ठानि॥ १४४॥
गेल राज्य आयल अछि हाथ। कनलेँ पुत्र दुखाएत माँथ॥ १४५॥

॥ सोरठा॥

जननी-वचन कठोर, शुनलनि भरत अनर्थ कहि॥ १४६॥
धिक धिक जीवन तोर, कहइत कण्ठ न कटि खसल॥ १४७॥
खसला भरत तड़ाक, अशनि-पतन तरु-वर जेहन॥ १४८॥
रहित श्वास ओ वाक, केकयि लेल उठाय पुन॥ १४९॥
एहन करिय नहि ज्ञान, सुख सम्पति मे दुःख की॥ १५०॥
राज्य देल भगवान, भाग्यवान बनि भोग्य करु॥ १५१॥
मुह नहि देखब तोर, असंभाष्य पतिघातिनी॥ १५२॥
विषम हलाहल घोर, बरु मरि जाइ पिआय दे॥ १५३॥
तोहर पुत्र कहाय, बड़ पापी हम विश्वमे॥ १५४॥
मरबे अग्नि समाय, की करवाल कराल सौँ॥ १५५॥

न रही। लक्ष्मण का तो राम के साथ सच्चा स्नेह है। १४२ इसलिए तीनों वन चले गये। अब साम्राज्य तुम्हारी मुट्ठी में आ गया है। रंग-ढंग तो कुछ और ही था, लेकिन अब काम सँभल गया। १४३ हे भरत ! अब अधीर होकर रोने से क्या होगा ? हठ ठानकर मैंने अपना काम सँभाला। १४४ गया हुआ राज्य लौटकर हाथ आया। हे पुत्र ! रोने से केवल सर में दर्द होगा।" १४५ माता के यह कठोर वचन सुनकर भरत बोले— "अनर्थ हुआ ? १४६ तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। क्या यह बोलते तुम्हारा गला कटकर गिर नहीं गया ?" १४७ इतना कहकर भरत धड़ाम से धरती पर गिर पड़े जिस तरह पेड़ से पत्ता गिरता है। १४८ उनकी साँस और वाणी बन्द हो गई। यह देख कैकेयी नें उन्हें उठा लिया। १४९ और बोली— "बेटा, ऐसा मत सोचना। सुख-सम्पत्ति के समय तुम दुखी क्यों होते हो ? १५० ईश्वर ने तुम्हें राज्य दिया है। तुम भाग्यवान् हो, इसका भोग करो।" १५१ फिर गुस्से में आकर भरत बोले— "अरी ! मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगा। तुम बात करने लायक नहीं रही। तुम पतिघातिनी हो। १५२ इससे अच्छा होगा कि तुम हलाहल नाम का तेज जहर घोलकर मुझे पिला दो और मैं मर जाऊँ। १५३ मैं संसार में बड़ा पापी ठहरा, क्योंकि मैं तुम्हारा बेटा कहलाया। १५४ मैं आग में कूदकर जल मरूँगा, या तीखी तलवार से अपना अन्त कर लूँगा। १५५ तुमने अपने ही पति के सिर पर डाका दिया। तुम

देल स्वामि-शिर डाक, दुष्ट मूर्ति के तोर सनि ॥ १५६ ॥
पड़बह कुम्भीपाक, सकल-लोक-सुख-नाशिनी ॥ १५७ ॥
भरत भेला उठि ठाढ़, मन विराम बिसराम कत ॥ १५८ ॥
पर सङ्कट की गाढ़, तनय सङ्कटा सर्प्पिणी ॥ १५९ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयलें पापिनि व्याधिनि काज । मुह न देखब नहि रहब समाज ॥ १६० ॥
उठि गेला कौसल्या गेह । तनिकाँ रामचन्द्र सम नेह ॥ १६१ ॥
भरत देखि कनली कय शोर । अविरल युगल नयन बह नोर ॥ १६२ ॥
कौसल्याक चरण लपटाय । भरतहु काँ नहि नोर सुखाय ॥ १६३ ॥
कौसल्या लेल हृदय लगाय । राम-वियोग-शोक नहि जाय ॥ १६४ ॥
अहँ विनु भरत एहन भेल हाल । करु सुत सकल प्रजा प्रतिपाल ॥ १६५ ॥
कहलनि होइतिह केकयि माय । तनिकर रङ्ग देखल अहँ जाय ॥ १६६ ॥
हा रघुनन्दन हा रघुवीर । हा सीता लक्ष्मण रणधीर ॥ १६७ ॥
दुख-सागरमे पड़लहुँ हाय । अहँ बिनु के लेत जीव बचाय ॥ १६८ ॥
चीराम्बर-धर जटा-कलाप । वन चल गेलहुँ दय सन्ताप ॥ १६९ ॥

जैसी दुष्ट स्वरूपा और कौन होगी ? १५६ तुमने सारी दुनिया के सुख पर पानी फेर दिया । तुम कुम्भीपाक नरक में पड़ोगी ।" १५७ इतना कहकर भरत उठकर खड़े हो गए । उनके मन में शान्ति और विश्राम न रहे । १५८ भारी संकट आ पड़ा । साँपिन अपने पुत्र के लिए ही संकट होती है । १५९ वे बोले— "अरे पापिन ! तुमने व्याधिन का काम किया । मैं तुम्हारा मुँह न देखूँगा और न तुम्हारे साथ रहूँगा ।" १६० इतना कहकर भरत उठकर कौशल्या के भवन चले गए, जिन्हें भरत पर रामचन्द्र-सा प्यार था । १६१ कौशल्या भरत को देखते ही चीख-चीखकर रोने लगीं । दोनों आँखों से धारा-प्रवाह आँसू बहने लगे । १६२ भरत कौशल्या के पाँवों से लिपट गए । उनकी आँखों में भी आँसू की धारा रुकती नहीं । १६३ फिर कौशल्या ने गले से लगा लिया । फिर भी राम के बिछोह की व्यथा दूर न हुई । फिर बोली— १६४ "हे भरत ! तुम नहीं थे, इसीलिए ऐसा हाल हुआ । हे पुत्र ! तुम सारी प्रजा का प्रतिपालन करो । १६५ माता कैकेयी ने कहा ही होगा । उनका रंग-ढंग तुमने जाकर देखा ही । १६६ हाय रघुनन्दन, हाय रघुवीर, हाय सीता, हाय रणधीर लक्ष्मण । १६७ आज मैं दुख-सिन्धु में पड़ा हुआ हूँ । तुम्हारे बिना मुझे कौन उबार सकता है । १६८ तुम चीवर और जटा धारण कर वन चले गए और मुझे सन्ताप दे गए । १६९ यह तो जानता हूँ कि परमात्मा व्यापक हैं (वे ही सब कुछ करते हैं), फिर भी मेरे शोक को दूर करनेवाला कोई नहीं है ।

परमात्मा विभु से अछि ज्ञान। शोक अरोक दैव बलवान ॥ १७० ॥

॥ सवैयाछन्दः ॥

रामचन्द्र राज्याभिषेकमे केकयि कयलनि जे अविचार ॥ १७१ ॥
सम्मत हमर मनस्पथहुँ जौं जननिक कठिन कपट व्यवहार ॥ १७२ ॥
ब्राह्मण-शतहत्याक जनित पड़ पातक सभटा हमरहि माँथ ॥ १७३ ॥
गुरु वसिष्ठ ओ अरुन्धतीकाँ खड्गहिँ मारी करि जौं लाथ ॥ १७४ ॥

॥ चौपाइ ॥

खड्गहि कटितहुँ केकयि माँथ। उचित न कहता श्रीरघुनाथ ॥ १७५ ॥
कहि हा रघुनन्दन रघुनाथ। जननी-चरण भरत धर माँथ ॥ १७६ ॥
भरत शपथ कर वारंवार। राम नृपति हम किङ्कर चार ॥ १७७ ॥
कौशल्या कह शुनु सुत भरत। केओ ने अनुचित अहँकाँ कहत ॥ १७८ ॥
अति सुशील भरतक सन भरत। अहाँक बराबरि के जन करत ॥ १७९ ॥
हम जनइत छी अहँक स्वभाव। अहँक सुयश भलमानुष गाव ॥ १८० ॥
अयला भरत शुनल जन कान। गुरु प्रधान तत कयल प्रयाण ॥ १८१ ॥
कहलनि गुरु जनु करु मनखेद। थिक कर्त्तव्य लिखल जे वेद ॥ १८२ ॥
ज्ञानी सत्य-पराक्रम वृद्ध। दशरथ छल छथि विश्व-प्रसिद्ध ॥ १८३ ॥

भाग्य बलवान होता है। १७० रामचन्द्र के तिलक में कैकेयी ने जो अनुचित विघ्न डाला है और माता कैकेयी ने जो कपटपूर्ण क्रूर आचरण किया है उसमें यदि मेरी सहमति सपने में भी रही हो तो सौ ब्राह्मणों का वध करने से जो पाप होता है वह मेरे सिर पर पड़े। १७१-१७३ यदि इसमें मैं कोई छल करता हूँ तो गुरुपत्नी अरुन्धती-सहित गुरु वसिष्ठ का तलवार से वध करने का पाप मुझे लगे। १७४ मैं तो तलवार से कैकेयी का सर ही उड़ा देता; पर राम इसे उचित नहीं कहेंगे।" १७५ फिर भरत ने 'हा रघुनन्दन', 'हा रघुनाथ' कहकर माता कौशल्या के चरणों पर अपना सर रख दिया। १७६ भरत बारंबार शपथपूर्वक कहते हैं— "राम मेरे राजा हैं और मैं उनका सेवक दास हूँ।" १७७ कौशल्या ने कहा— "बेटा भरत, सुनो। तुम्हें कोई अपराधी नहीं कहेगा। १७८ तुम परम सच्चरित्र हो। भरत-सा भरत ही है। भरत की बराबरी कौन कर सकता? १७९ मैं तुम्हारा स्वभाव जानती हूँ। सभी लोग तुम्हारा यश गाते हैं।" १८० भरत आये, यह खबर तुरत लोगों में फैल गई। प्रधान गुरु वहाँ पहुँच गए। १८१ गुरु ने भरत से कहा— "शोक मत कीजिए। वेद के विधान के अनुसार अब आगे का कर्तव्य निभाना है। १८२ राजा दशरथ ज्ञानी थे, सत्यवीर थे, विश्वविख्यात थे और बूढ़े हो चुके थे। १८३ उन्होंने प्रचुर दक्षिणा दे-देकर अनेक अश्वमेध यज्ञ

बहुत दक्षिणा दय कय बेर। अश्वमेध मख कयलनि ढेर ॥ १८४ ॥
इत सुख भोग अमरपति सङ्ग। एकासन-संस्थित सुर रङ्ग ॥ १८५ ॥
आत्मा नित्य एक छथि शुद्ध। जनन मरण व्यवहार विरुद्ध ॥ १८६ ॥
जड़ अपवित्र विनश्वर देह। मृतक कहाबथि निस्सन्देह ॥ १८७ ॥
पिता तनय मरणोत्तर लोक। मूढ़ मृषा कर मनमे शोक ॥ १८८ ॥
जनिकर जनन मरण हो तनिक। मिलन सर्व्वदा मानक क्षणिक ॥ १८९ ॥
नष्ट होइछ ब्रह्माण्डो कोटि। स्थितिक भावना थिकि अति छोटि ॥१९०॥
मेरु भसम हो सिन्धु शुखाय। से की वस्तु काल नहि खाय ॥ १९१ ॥
कालहिँ उतपति कालहिँ नाश। कालहिँ होइछ भोग बिलास ॥ १९२ ॥
चल दलपर जलकण चल जेहन। आयुक गति मानक थिक तेहन ॥ १९३ ॥
दुख सुख हो कर्म्मक अनुसार। निश्चय ज्ञानी करथि विचार ॥ १९४ ॥
नव पट पहिरथि त्यागि पुरान। देही देहक एहन विधान ॥ १९५ ॥
आत्मा मरथि न जनमथि जाय। षट विकार नहि ततय समाय ॥ १९६ ॥
भरत त्यागु मन बाढ़ल शोक। करु जँ तृप्त पितर परलोक ॥ १९७ ॥

किए। १८४ उन्होंने इस संसार में सुख-भोग किया। स्वर्ग में इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठकर देवताओं के साथ विलास किया। १८५ आत्मा अविनाशी है, एक है और शुद्ध है, अतः जन्म होना, मरण होना यह जो कहा-सुना जाता है वह वास्तविकता से परे है। १८६ शरीर जड़ (चेतन्य-रहित) है, गन्दा है और नाशवान् है। वही मृतक कहलाता है। १८७ पिता के या पुत्र के मरने पर ज्ञान-हीन लोग ही मन में निरर्थक शोक करते हैं। १८८ जिनका जन्म और मरण होता है उनका मिलना सदा ही क्षण मात्र हो सकता है। १८९ कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड भी प्रलय में नष्ट हो जाते हैं। किसी वस्तु के टिके रहने (स्थिति) की भावना बहुत छोटी होती है। १९० मेरु जैसा विशाल पर्वत भी जलकर राख हो जाता है और समुद्र भी सूख जाता है। ऐसी कौन वस्तु है जिसे काल खाता नहीं है। १९१ काल ही में सभी वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, काल ही में नाश होता है और काल ही में उन वस्तुओं से भोग-विलास किया जाता है। १९२ हिलते हुए पत्ते पर जैसे पानी की बूंद, वैसे ही मानव की आयु चंचल समझनी चाहिए। १९३ किसी को सुख या दुख उसके अपने कर्म के अनुसार ही भोगना पड़ता है, ज्ञानी लोग ऐसा ही सोचते हैं। १९४ जैसे पुराने कपड़े को त्यागकर लोग नया कपड़ा पहनते हैं उसी प्रकार देही (आत्मा) पुराने शरीर को छोड़ नया शरीर धारण करती है। १९५ आत्मा का न कभी जन्म होता है और न मृत्यु। आत्मा में छः प्रकार के विकारों में कोई विकार नहीं होता है। १९६ हे भरत, मन में छाये हुए शोक को छोड़िए और वह कर्म कीजिए जिससे परलोक में पितरों को तृप्ति हो।" १९७ उसके बाद तेल के

तैल-द्रोणि सौँ शव बहराय। यथा-कृत्य चिति अनल लगाय ॥ १९८ ॥
समुचित जेहन कहल गुरु-लोक। कयल भरत तखना नहि शोक ॥ १९९ ॥
ब्राह्मण वैदिक बहुत मँगाय। रुद्र-प्रमित दिन भोज्य कराय ॥ २०० ॥
नृपति निमित्त विप्र मे दान। गो-रत्नादि ग्राम सविधान ॥ २०१ ॥
वस्त्र बहुत देल बापक नाम। चिन्तित आठ पहर निज धाम ॥ २०२ ॥
राम राम हा गुणनिधि भाय। देलक बड़ दुख केकयि माय ॥ २०३ ॥

॥ मिथिला-संगीतरीत्या भैरव-छन्दः ॥

विधि हम सकल अनर्थक मूले ॥ २०४ ॥
हमरहि कारण केकयि जननी कयल कर्म्म प्रतिकूले ॥ २०५ ॥
रामचन्द्र लक्ष्मण शुभ-लक्षण वैदेही वन हयती ॥ २०६ ॥
नहि घर द्वार निवास नियत नहि कन्द मूल कोना खयती ॥ २०७ ॥
सदा प्रशंस वंश हंसक थिक केहनि केकयि अइली ॥ २०८ ॥
चट पट प्राण लेल प्राणेशक रामक शीर विशइली ॥ २०९ ॥
सानुज हमहु रामवत् बनिकँ ताहि विपिन मे जयबे ॥ २१० ॥
परमोदार जानकी-जानिक चरणक भृत्य कहयबे ॥ २११ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे अयोध्याकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

हौज से दशरथ का शव निकाला गया। तब विधान के अनुसार चिता सजाई गई। १९८ गुरुजनों ने जैसा-जैसा बताया, भरत ने शोक का त्याग करके वैसा-वैसा किया। १९९ बहुत-सारे वैदिक ब्राह्मण निमन्त्रित किए गए और ग्यारहवें दिन उन्हें भोजन कराया गया। २०० राजा के निमित्त विधान-पूर्वक गाय, रत्न, ग्राम आदि का दान ब्राह्मणों को दिया गया। २०१ पिता के निमित्त भरत ने बहुत से वस्त्रों का भी दान किया। भरत अपने भवन में दिन-रात चिन्तित रहने लगे। वे सोचते रहते थे। २०२ "हे गुणनिधि भ्राता राम, माता कैकेयी ने आपको बड़ा दुख दिया। २०३ हाय विधाता! सारे अनर्थ की जड़ मैं ही हूँ। २०४ मेरे खातिर ही माता कैकेयी ने यह कुकर्म किया। २०५ राम, लक्ष्मण और शुभ लक्षणोंवाली सीता —सभी वन में होंगे। २०६ न घर-द्वार का ठिकाना होगा, न वास का। वे कन्द-मूल-फल कैसे खाते होंगे। २०७ सूर्यवंश सदा ही प्रशंसित रहा है। उसमें कैकेयी-जैसी रानी कैसे आ गई। २०८ उन्होंने आनन-फानन पति के प्राण ले लिये और राम के सर पर दुख का पहाड़ रख दिया। २०९ हम दोनों भाई भी राम का-सा बाना बनाकर उसी वन में चले जाएँगे, २१० और परम उदार जानकी-पति राम के चरणों के दास कहलायेंगे।" २११

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिलाभाषा रामायण में अयोध्याकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनि वसिष्ठ मन्त्री-गण सहित। नृपतिक सभा गेला नृप-रहित ॥ १ ॥
सुरपति-सभा समान विराज। अतिशय शोभित विबुध समाज ॥ २ ॥
ब्रह्मा सन आसन-आसीन। धर्म्म-कर्म्म-रत धर्म्म-धुरीण ॥ ३ ॥
भरतहु काँ तत लेल बजाय। देश काल विधि कहल बुझाय ॥ ४ ॥
भरत सुमति शुनु कहल वसिष्ठ। कर्म्म शुभाशुभ काल बलिष्ठ ॥ ५ ॥
अहाँ महाशय महि सविवेक। करब अहाँक राज्य-अभिषेक ॥ ६ ॥
कैकयि-कहल रहल सिद्धान्त। कहि गेला छल भूप नितान्त ॥ ७ ॥
राजा राज्य करिय स्वीकार। सभ लोकक अछि सत्य विचार ॥ ८ ॥
भरत कहल शुनु शुनु ई राज। हमरा नहि सपनहुँ मे काज ॥ ९ ॥
हम किङ्कर राजा श्रीराम। अनुचित नृपति बनब एहि ठाम ॥ १० ॥
नृपवर किङ्कर नृपति भिखारि। सन्मार्गक जनु टूटल आरि ॥ ११ ॥
सत्य कहैछी भुजा उठाय। हम नहि करब राज्य अन्याय ॥ १२ ॥

आठवाँ अध्याय

भरत द्वारा राज्य की अस्वीकृति और राम को लौटाने का प्रयास

तब मन्त्रियों-सहित गुरु वसिष्ठ राज दरबार में गये जो राजा से सूना था। १ वह राजदरबार इन्द्र की सभा के समान विराजमान था, जहाँ विबुधों (पंडितों और देवताओं) की मंडली जुटी थी। २ वहाँ ब्रह्मा के समान आसन पर बैठे धर्म-कर्मपरायण धर्मोपदेशक मुनि वसिष्ठ ने भरत को भी वहाँ बुला लिया और उन्हें उपदेश दिया कि ऐसे अवसर में क्या करना है। ३-४ मुनि वसिष्ठ ने कहा— "हे समझदार भरत, सुनिए। कर्म के अनुसार ही अच्छा और बुरा-फल मिलता है। काल प्रबल होता है। ५ आप संसार में उदार और विवेकवान् हैं, अतः आपको तिलक दूँगा। ६ कैकेयी ने जो कहा वह अन्तिम रूप से तय हो गया। अन्त के समय राजा ऐसा ही कह गए हैं। ७ सभी लोगों का सचमुच में यही विचार है कि आप राजा होकर राज्य करिये।" ८ भरत ने कहा— "सुना जाय, यह राज्य मुझे स्वप्न में भी स्वीकार नहीं है। ९ मैं केवल सेवक हूँ। राजा तो रामचन्द्र हैं। यहाँ यदि मैं राजा बन बैठूँ तो वह अनुचित होगा। १० यदि सेवक राजा बन बैठे और राजा भिखारी हो जाय तब तो अच्छी परम्परा का बाँध ही टूट जाएगा। ११ मैं बाँहें उठाकर सच-सच कहता हूँ, मैं अन्यायपूर्वक राज्य नहीं करूँगा। १२

केकयि-सुत बुझि जे जे कहब। हम अपराधी से से सहब ॥ १३ ॥
लय अनितहु सत्वर तरुआरि। मन हो केकयि दीतहुँ मारि ॥ १४ ॥
पतित मातृहा शुनि रघुनाथ। परश हमर नहि करता हाथ ॥ १५ ॥
आनब तिनु जनकाँ घर फेरि। जायब जंगल प्रात सबेरि ॥ १६ ॥
जटिल वेष धरणोमे शयन। व्रतविधि देखब पंकजनयन ॥ १७ ॥
जे विधि बनि वन बड़का भाय। गेला तेहि गत हमहूँ जाय ॥ १८ ॥
पयरहि चलब वनी व्यवहार। कन्द मूल फल प्राणाधार ॥ १९ ॥
वन शत्रुघ्न सेहो चलताह। भवन सविघ्न वृथा रहताह ॥ २० ॥
चलु चलु गुरु तत होयब सहाय। अयबे करता बड़का भाय ॥ २१ ॥
कहि चुप रहला जखना भरत। सभ्य सकल कह एहन के करत ॥ २२ ॥
साधु कहल सज्जन-समुदाय। रघुनन्दन काँ समुचित भाय ॥ २३ ॥
बड़ गोट मनमे छल अछि त्रास। भरत पुरल सबहिक मन आस ॥ २४ ॥

॥ दोधय छन्द ॥

सगर नगरमे बाजल डङ्का, भरत न राजा हयता ॥ २५ ॥
आनय हेतु राम नृप-वरकाँ पयरहि सानुज जयता ॥ २६ ॥
सेना सभ तैयार चले सङ्ग साजल घोड़ा हाथी ॥ २७ ॥

मुझे कैकेयी का बेटा समझकर जो कुछ भी दुर्वचन कहेंगे वह मैं चुपचाप सह लूँगा, क्योंकि मैं अपराधी हूँ। १३ मन तो होता है कि तुरत तलवार ले आऊँ और कैकेयी को मार डालूँ। १४ पर राम ऐसा सुनगे तो मुझे मातृघाती पतित समझकर मुझसे स्पर्श भी नहीं करेंगे। १५ तीनों को घर लौटा लाऊँगा। कल सबेरे जंगल जाऊँगा। १६ जटा धारण करूँगा, मिट्टी में सोऊँगा और व्रत का पालन करते हुए वन जाकर कमलनयन राम को देखूँगा। १७ जैसा बाना बनाकर मेरे बड़े भाई वन गए, उसी तरह मैं भी जाऊँगा। १८ वनवासियों की रीति से पैदल चलूँगा, प्राण की रक्षा के लिए केवल कन्द-मूल-फल खाऊँगा। १९ शत्रुघ्न भी मेरे साथ चलेगा। घर विघ्नों से ग्रस्त है, वहाँ बेकार रहेगा। २० हे गुरु महाराज, आप भी चलिए। आप मदद कीजिएगा। बड़े भाई राम अवश्य ही लौट आवेंगे।" २१ इतना कहकर जब भरत चुप हुए, तब सभासदों ने कहा— "ऐसा त्याग और कौन कर सकता है।" २२ सभा के लोगों ने 'वाह-वाह' की आवाज की और बोले— "भरत राम के अनुरूप भ्राता हैं। मन में बहुत बड़ा डर था। भरत ने सबों के मन की इच्छा पूरी की।" २३-२४ सारे नगर में डंके की आवाज़ के साथ यह खबर फैल गई कि भरत राजा नहीं होंगे। २५ वे लक्ष्मण-सहित राजा राम को लौटाने के लिए पैदल ही वन जाएँगे। २६ सेना तैयार हो साथ जाएगी। हाथी और घोड़े सजें। २७ गुरु वसिष्ठ, ब्राह्मण लोग तथा कौशल्या

गुरु वसिष्ठ द्विज-गण महरानी, कौशल्यादिक जाथी ॥ २८ ॥
चढ़लि पालकी केकयि रानी, सुमरि सुमरि निज करणी ॥ २९ ॥
जाइ पताल तेहन हो लज्जा, फाटि जाथि जौं धरणी ॥ ३० ॥
हा विधि गुणनिधि पुत्र पुतोहुक कयल दुर्दशा भारी ॥ ३१ ॥
रघुनन्दन लक्ष्मण की कहता, कि कहति जनक-दुलारी ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

गजरथ गोरथ तुरगरथ, शिविका सैन्य-समूह ॥ ३३ ॥
गुह शुनलनि भरतागमन, मन मन कर किछु ऊह ॥ ३४ ॥
जौं हम देखब राज्य-मद, तौं न उतारब पार ॥ ३५ ॥
रामक कारण कण्ठ दय, समर करब अनिवार ॥ ३६ ॥

॥ चौपाइ ॥

शृङ्गवेरपुर दल विशराम । छल छथि जेहि थल लक्ष्मण राम ॥ ३७ ॥
गुहजन यदपि निषादक जाति । साँठल भारहि भार उपाति ॥ ३८ ॥
कन्द मूल फल लागल ढेर । आगाँ राखल मिलइक बेर ॥ ३९ ॥
भरत स्वरूप देखल गुह जखन । संशय मनक मेटायल तखन ॥ ४० ॥
चीराम्बर धर श्याम-शरीर । जटा-मुकुट धर जनु रघुबीर ॥ ४१ ॥

आदि महारानियाँ भी चलीं । २८ रानी कैकेयी अपनी करनी याद कर-करके ग्लानि में डूबी पालकी पर चल पड़ीं । २९ उन्हें ऐसी लज्जा हो रही थी कि यदि धरती फट जाए तो वह उसमें समा जातीं । ३० वह मन में कहती— "हाय विधाता, मैंने गुणवान् पुत्र और पतोहू की भारी दुर्दशा की । ३१ राम और लक्ष्मण क्या कहेंगे और जनकनन्दिनी सीता क्या कहेंगी ?" ३२ हाथीवाले रथ, बैलवाले रथ, घोड़ेवाले रथ, पालकियाँ और सैनिकों के दल चल पड़े । ३३ निषादराज गुह को खबर हुई कि भरत आ रहे हैं । सुनते ही वे तरह-तरह के तर्क-वितर्क करने लगे । ३४ "अगर मैं उनमें राज्य का मद (राजा हो जाने का अभिमान) देखूँगा तो मैं उन्हें पार नहीं जाने दूँगा, बल्कि राम के खातिर प्राण देकर दुर्दम्य युद्ध ठान दूँगा । ३५-३६ दल ने शृंगवेरपुर में आकर विश्राम किया जहाँ राम और लक्ष्मण टिके थे । ३७ यद्यपि गुह लोग निषाद जाति के थे तथापि वे भारों में लादकर उपाति (भोजन-सामग्री) सजा-सजाकर ले आए । ३८ कन्द-मूल-फल के अम्बार लग गए और भेंट के समय ये वस्तुएँ उनके सामने रखी गयीं । ३९ गुह ने ज्योंही भरत का बाना देखा त्योंही उनके मन की आशंका दूर हो गई । भरत श्यामवर्ण के शरीर में चीवर धारण किए हुए थे । जटा को मोड़कर मुकुट बनाया हुआ था । लगते थे जैसे स्वयं रामचन्द्र हों । ४०-४१ उनके मन में राजसत्ता के दर्प का लेश

लेश न मनमे राजस रोच। राम राम रट मन बड़ शोच ॥ ४२ ॥
सीता लक्ष्मण नाम उचार। अकपट निकट देखल व्यवहार ॥ ४३ ॥
गुरु वसिष्ठ मन्त्री मिलि सङ्ग। संस्थित सानुज रामक रङ्ग ॥ ४४ ॥
कयल प्रणाम कहल गुह नाम। भरत हमर अछि निकटहि गाम ॥ ४५ ॥
गुह अँह थिकहुँ कहैत उठि जाय। लेल भरत झट हृदय लगाय ॥ ४६ ॥
कुशल क्षेम अछि पुछल अनेक। मित्र अहाँकाँ विसद विवेक ॥ ४७ ॥
रामचन्द्र परमेश अनन्य। तनिसौं मिललहुँ अहँ अतिधन्य ॥ ४८ ॥
रघुनन्दन सौं वार्त्तालाप। गुह अहँ नियत भेलहुँ निष्पाप ॥ ४९ ॥
सीता सहित छला जत राम। मित्र शीघ्र चलु लय से ठाम ॥ ५० ॥
नयन सजल थल देखितहिँ जाय। शयन कयल जत घास ओछाय ॥ ५१ ॥
सीताभरणक कनकक बिन्दु। कहुँ कहु खण्ड खसल जनु इन्दु ॥ ५२ ॥
मन अति दुखित तखन भेल भरत। कह विधि विपति हमर कोना टरत ॥ ५३ ॥
अति सुकुमारि कुशासन शयन। मन बड़ व्याकुल देखइत नयन ॥ ५४ ॥
हमर निमित्त राम काँ कष्ट। केकयि-सुत बनि भेलहुँ नष्ट ॥ ५५ ॥
धन्य सुमित्रा लक्ष्मण धन्य। जनि काँ अछि रामक सौजन्य ॥ ५६ ॥

नहीं था। राम-राम रट रहे थे। मन में गहरी पीड़ा थी। ४२ सीता और लक्ष्मण का नाम ले रहे थे। गुह ने शुद्ध हृदय से नज़दीक से उनका आचरण देखा। ४३ वे गुरु वसिष्ठ और मन्त्रियों के साथ अनुज शत्रुघ्न-सहित विराजमान हैं। उनका आभास राम-सा लगता है। ४४ गुह ने प्रणाम किया और बोले— "हे भरत, मैं गुह हूँ। मेरा गाँव पास में ही है।" ४५ "आप गुह हैं? ऐसा कहते हुए भरत उठकर खड़े हो गए और तुरत उन्हें छाती से लगा लिया। ४६ बारंबार पूछा— "कहिए हे मित्र, कुशल-क्षेम तो है? आप बड़े विवेकी (ज्ञानवान्) हैं। ४७ रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर हैं। उनसे आप मिले, इसलिए आप धन्य हैं। ४८ हे गुह, आपने रघुनन्दन राम से बातें कीं, इसलिए आप अवश्य ही पापहीन हो गए। ४९ हे मित्र, मुझे जल्द उस जगह ले चलिए जहाँ सीता-सहित राम टिके थे।" ५० जाकर उस स्थल को देखते ही, जहाँ राम ने घास बिछाकर शयन किया था, भरत की आँखों में आँसू भर आए। ५१ घास के उस बिछावने पर कहीं-कहीं सीता के गहनों की बिंदियाँ गिरी हुई थीं, जो लगती थीं जैसे चाँद के टुकड़े बिखरे हों। ५२ तब यह देखकर भरत का मन परम दुखी हो गया। वे बोले— "हाय विधाता, मेरी विपदा कैसे टलेगी। ५३ अत्यन्त कोमलांगी सीता कुश के आसन पर सोईं, यह देख मेरे नयन बड़े व्याकुल हो गए। ५४ मेरे चलते ही राम को ये सारे कष्ट झेलने पड़े। मैं कैकेयी का लड़का होकर बरबाद हो गया। ५५ धन्य हैं सुमित्रा, और धन्य हैं लक्ष्मण, जिन्हें राम के प्रति अपार स्नेह है। ५६ राम के

रामक सङ्ग सुयश सभ ठाम। भल के कहता केकयि नाम ॥ ५७ ॥
हम रामक दासक जे दास। तनिको दास एक मन आश ॥ ५८ ॥
छथि प्रभु कतय अहाँ काँ ज्ञात। मित्र कहू हम चलब प्रभात ॥ ५९ ॥
हमरे कारण सभ किछु दोष। रघुनन्दन मन तदपि न रोष ॥ ६० ॥
घुरि घर चलता कहबनि कानि। होयत न हमर मनोरथ हानि ॥ ६१ ॥
रघुपति-भक्त भरत अहँ धन्य। सकल-लोक-सम्मानित गण्य ॥ ६२ ॥
एहन न भक्ति शुनल छल कान। अपनें काँ देखि भेल प्रमान ॥ ६३ ॥

॥ दोहा ॥

चित्रकूट मन्दाकिनी, निकट कुटी निर्म्माय ॥ ६४ ॥
सानुज सीताराम छथि, कहब देब पहुचाय ॥ ६५ ॥

॥ चौपाइ ॥

भरत कहल सुरसरिता तरिय। मित्र उपाय तेहन अहँ करिय ॥ ६६ ॥
गुह कह भरत विलम्ब न आब। कयलहुँ वृत्त पाँच शय नाव ॥ ६७ ॥
राज-नाव एक अपनहि खेबि। गुह आनल सभसौँ भल टेबि ॥ ६८ ॥
कौशल्यादिक सानुज भरत। गुरु वसिष्ठ एहिसौँ सन्तरत ॥ ६९ ॥
सकल सैन्य गण उतरल पार। घोड़ा हाथी भरिया भार ॥ ७० ॥
उठइत चलइत पथ विश्राम। कहल सकल जन सीताराम ॥ ७१ ॥

साथ हर जगह सुयश है। कैकेयी को कौन भला कहेगा। ५७ मेरे मन में एक यही कामना है कि मैं राम के दास का दास बनूं। ५८ हे मित्र गुह ! बताइए, क्या आपको मालूम है कि राम कहाँ हैं ? मैं सुबह वहाँ जाऊँगा। ५९ सारा अनर्थ मेरे खातिर ही हुआ है, फिर भी राम के मन में मेरे प्रति कोई क्रोध नहीं है। ६० रो-रोकर मनाऊँगा। वे फिर घर लौट जाएँगे। मेरा मनोरथ विफल नहीं होगा।" ६१ तब गुह ने कहा— "हे रघुपतिभक्त भरत, आप धन्य हैं। सारे संसार में आपका सम्मान है, ६२ आपकी प्रतिष्ठा है। ऐसी भक्ति तो कहीं सुनी ही नहीं थी। आपको देखकर ही विश्वास हुआ कि ऐसी भी भक्ति हो सकती है। ६३ चित्रकूट में गंगा के किनारे कुटी बनाकर लक्ष्मण-सहित सीता और राम रहते हैं। आज्ञा हो तो पहुँचा दूं।" ६४-६५ भरत ने कहा— "हे मित्र, आप ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि मैं गंगा पार करूँ।" ६६ गुह ने कहा— "हे भरत, इसमें अब देर क्या ? पाँच सौ नावें तैयार हैं।" ६७ गुह उन नावों से एक राजनाव चुनकर खुद खेकर ले आए। ६८ इस नाव से कौशल्या आदि महिलाएँ, शत्रुघ्न-सहित भरत और गुरु वसिष्ठ पार उतरे। ६९ सारे सैनिक, हाथी, घोड़ा, कुली और असबाब सभी पार उतरे। ७० उठते-चलते, रास्ते में विश्राम करते सभी लोग 'सीता-राम' की

॥ दोहा ॥

भरद्वाज-आश्रम निकट, सभ कयलनि विश्राम ॥ ७२ ॥
गेला सानुज भरत तत, मुनि-पद कयल प्रणाम ॥ ७३ ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनिकें केकयि-तनय चिन्हार। कुशल क्षेम पुछलनि व्यवहार ॥ ७४ ॥
कहु कहु भरत अहाँ महराज। आयलछी की मुनिक समाज ॥ ७५ ॥
की अहँ जटा बनाओल केश। हँसी करत जे देखत देश ॥ ७६ ॥
रामक सन बलकल की धयल। भूपति भय अति अनुचित कयल ॥ ७७ ॥
कन्द मूल फल निःफल खाइ। जङ्गल जङ्गल जनु बौआइ ॥ ७८ ॥
भरत अहाँ घुरिकें घर जाउ। बड़ गोट राज्यक सुखकें पाउ ॥ ७९ ॥

॥ सोरठा ॥

सभ अपनें काँ ज्ञात, कृपा करिय कारुणिक मुनि ॥ ८० ॥
कहि नहि होइछ तात, सजल-नयन कहलनि भरत ॥ ८१ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयल राम-राज्यक अभिघात। केकयि से हमरा नहि ज्ञात ॥ ८२ ॥
मुनि हम छलछी मामक ग्राम। वन अयला सानुज श्रीराम ॥ ८३ ॥
कहइतछी छुबि अपनें क चरण। हमरा नहि कलहक आचरण ॥ ८४ ॥

रट लगाते चले। ७१ भरद्वाज के आश्रम के पास आकर सबों ने विश्राम किया। ७२ शत्रुघ्न और भरत दोनों भाई आश्रम गए और भरद्वाज मुनि के चरणों में सिर झुकाये। ७३ कैकेयी के पुत्र भरत को मुनि भरद्वाज पहचानते थे। उन्होंने शिष्टाचार के अनुसार कुशल-क्षेम पूछा। ७४ वे बोले, "हे भरत ! बताइए, महाराज दशरथ कहाँ हैं ? आप मुनियों की मंडली में क्यों आए हैं ? ७५ आपने सिर पर जटा क्यों बनाई ? देश के लोग देखेंगे तो हँसी करेंगे। ७६ आपने राम की भाँति बल्कल क्यों पहन रखा है ? आपने राजा होकर यह अनुचित काम किया। ७७ कन्द-मूल-फल व्यर्थ खाते हैं। आप वन-वन मत भटकिए। ७८ हे भरत ! आप लौटकर घर जाइए। आपका राज्य बहुत बड़ा है, जाकर राज्यसुख भोगिए।" ७९ आँसू भरी आँखों से भरत ने कहा— "हे मुनि ! क्या कहूँ। कहा नहीं जाता है। आपको तो सब मालूम ही है। हे करुणानिधान मुनि ! मुझ पर कृपा कीजिए। ८०-८१ राम के राज्याभिषेक में कैकेयी ने जो विघ्न किया, वह मुझे नहीं मालूम था। ८२ हे मुनि ! मैं तो मामा के घर गया था। उसी बीच लक्ष्मण-सहित राम वन चले आये। ८३ मैं आपके पाँव छूकर कहता हूँ, यह विरोध का काम मैंने

ई कहि मुनिपद छुइलनि जाय। अपनें सौं मन कि रह नुकाय ॥ ८५ ॥
जनइत छी हम पाप अपाप। अनुचित कयलनि माता बाप ॥ ८६ ॥
हमरा नहि राज्यक अधिकार। प्रभु-पद-किङ्कर एहन विचार ॥ ८७ ॥
रामचन्द्र-पद मन आरोपि। राज्य-भार हुनकहि देब सोंपि ॥ ८८ ॥
हमरा मनमे मुनि दृढ़ टेक। रामक करब एतहि अभिषेक ॥ ८९ ॥
छथि गुरुजन पुरजन समुदाय। सङ्ग नगर कर्त्तव्य सहाय ॥ ९० ॥
प्रभुकाँ अपन नगर लय जयब। तनि चरणक किङ्कर हम हयब ॥ ९१ ॥
मुनि कह साधु साधु अहाँ भरत। अपथ कि अहँक हृदय सञ्चरत ॥ ९२ ॥
रघुनन्दनक अहाँ महाभक्त। सौमित्रिहुँ सौं मन अनुरक्त ॥ ९३ ॥
हम आतिथ्य करब किछु आइ। बाबू भरत आइ जनु जाइ ॥ ९४ ॥
ज्ञान-नयनसौं सभ अछि ज्ञात। कयल अमर-गण सभ उतपात ॥ ९५ ॥
स्मरण कयल मुनि भारद्वाज। कामधेनु करु समुचित काज ॥ ९६ ॥
आयल छथि पाहुन बड़ गोट। भोज्य वस्तु वर्षण हो ओट ॥ ९७ ॥
एकर मर्म्म आन नहि जान। दिव्य वस्तु भोजन विधि पान ॥ ९८ ॥
कामधेनु-कृत सभ सम्पन्न। जनिकाँ जेहन तेहन तत अन्न ॥ ९९ ॥

नहीं किया है।" ८४ इतना कहकर भरत ने मुनि भरद्वाज के पाँव छुए और फिर बोले— "आपके मन से क्या छुपा हुआ है। ८५ मैं जानता हूँ कि क्या पाप है और क्या पुण्य। मेरी माता और पिता ने अनुचित किया। ८६ मुझे राज्य पाने का हक़ नहीं है। मैं तो अपने को प्रभु राम के चरण का सेवक मानता हूँ। ८७ मन में रामचन्द्र के पद को रखकर उन्हीं को यह राज्य सौंप दूँगा। ८८ मैंने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि यहीं राम का तिलक कर दूंगा। ८९ गुरुजन, नगरनिवासी लोग इस काम में साथ देनेवाले यहाँ मौजूद ही हैं। ९० प्रभु रामचन्द्र को मैं अपने नगर ले जाऊँगा। मैं उनके चरण का दास होऊँगा।" ९१ मुनि ने कहा— "वाह-वाह भरत! आपका हृदय कभी कुमार्ग में नहीं जाएगा। ९२ आप राम के बड़े भक्त हैं। लक्ष्मण से भी आपको प्यार है। ९३ बबुआ भरत, आज मैं आप लोगों का आतिथ्य करूँगा। आप आज मत जाइए। ९४ ज्ञान रूपी आँख से मैं सब कुछ देखता हूँ। ये सारे उपद्रव देवताओं ने किये हैं।" ९५ तब मुनि भरद्वाज ने अपनी कामधेनु का स्मरण किया और कहा— "हे कामधेनु! अब जो उचित है वह काम करो। ९६ बहुत बड़े अतिथि आये हैं। खाने-पीने की चीज़ों की अपार वर्षा करो। ९७ इस तरह बरसाना कि किसी को लक्षित न हो। नाना प्रकार के दिव्य भोज्य और पेय बरसाइए।" ९८ कामधेनु ने सब कुछ पूरा कर दिया। जिसको जैसा भोजन चाहिए उसको वैसा मिल गया। ९९ सबों ने उस रात मुनि के भेजे हुए दिव्य भोजन सुख

मुनिक पठाओल दिव्य उपाति। सुखसौँ सभ जन खयलनि राति॥ १०० ॥
कयल वसिष्ठक मुनि सत्कार। तखन भरत-वर्गक व्यवहार॥ १०१ ॥
कयल भरत उठि मुनिक प्रणाम। सुखसौँ एतय कयल विशराम॥ १०२ ॥
भोर भेल आज्ञा देल जाय। सभ जन चलब महेश मनाय॥ १०३ ॥
भरद्वाज मुनि कहलनि जाउ। रघुनन्दन सौँ दर्शन पाउ॥ १०४ ॥

॥ चौपय छन्दः ॥

सानुज भरत सुमन्त सङ्ग मे, गुह निषाद अनुरागी॥ १०५ ॥
चित्रकूट पर्व्वत तट गेला, जतय बहुत मुनि त्यागी॥ १०६ ॥
सैन्य सकल गिरि नीचहि राखल, कयलनि भरत पुछारी॥ १०७ ॥
बासा कतय कयल रघुनन्दन, लक्ष्मण जनक-दुलारी॥ १०८ ॥
आम सफल भल भल फल कटहर, केरा धौड़िहि पाकल॥ १०९ ॥
कोविदार चम्पा बकुलादिक, बहुत जतय जे ताकल॥ ११० ॥
मन्दाकिनि गङ्गासौँ उत्तर, गिरिसौँ पश्चिम आशा॥ १११ ॥
सीता सहित सलक्ष्मण रामक, श्रीधर सुन्दर बासा॥ ११२ ॥

॥ सोरठा ॥

मुनिगन देल देखाय, श्रीरघुनन्दन-वन-भवन॥ ११३ ॥
भरत चलल अगुआय, बहुत हर्ष उत्कर्ष मन॥ ११४ ॥

से पाये। १०० मुनि भरद्वाज ने पहले मुनि वसिष्ठ का सत्कार किया, तब भरत आदि का आचारानुसार सम्मान किया। १०१ भरत ने उठकर मुनि भरद्वाज को प्रणाम किया, फिर उस आश्रम में सुविधापूर्वक विश्राम किया। १०२ सुबह हुई। भरत ने मुनि भरद्वाज से कहा— "अब जाने की आज्ञा दीजिए। शिव को मनाकर हम लोग अब प्रस्थान करेंगे।" १०३ भरद्वाज मुनि ने कहा— "जाइए और राम के दर्शन पाइए।" १०४ छोटे भाई शत्रुघ्न, सुमन्त और प्रेमी निषादराज गुह के साथ भरत चित्रकूट पर्वत के किनारे पहुँचे, जहाँ बहुत-से संन्यस्त मुनियों के आश्रम थे। १०५-१०६ भरत ने सारी सेना को पर्वत के नीचे ही रखा। स्वयं अन्वेषण करने चले कि लक्ष्मण और सीता के साथ राम का आश्रम कहाँ है। १०७-१०८ देखा कि आम और कटहल के पेड़ फलों से लदे हैं। केले के फल पेड़ों में ही पके हैं। १०९ कचनार, चम्पा, बकुल आदि के पेड़ जहाँ-तहाँ नजर आते हैं। ११० मन्दाकिनी गंगा से उत्तर की ओर, पर्वत से पश्चिम लक्ष्मण और सीता-सहित राम का सुन्दर आवास है। १११-११२ मुनियों ने राम की वन-कुटी दिखा दी। ११३ देखकर उनका मन हर्षित हो उठा और वे आगे बढ़ते चले। ११४ दूर से ही शत्रुघ्न-सहित भरत ने राम की सुन्दर कुटी देखी,

मुनिजन-सेवित धाम, तरु लटकल वलकल अजिन ॥ ११५ ॥
राम-भवन अभिराम, सानुज देखल दूरसौं ॥ ११६ ॥

॥ इति श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे
अयोध्याकाण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

श्रीरघुनन्दन सुन्दर चरण। महि मे अङ्कित विधिगण-शरण ॥ १ ॥
कुलिश कमल ध्वज धूलि मे रेख। अकलुष अदुख भरत से देख ॥ २ ॥
आज धन्य भेल हमरो भाग। प्रभु-दर्शन-उतकण्ठा लाग ॥ ३ ॥
शञ्च शञ्च प्रभु आश्रम जाय। हरष नोर सौं भरत नहाय ॥ ४ ॥
दूर्वादल-श्यामल वर अङ्ग। सौदामिनि-छवि जानकि सङ्ग ॥ ५ ॥
जटा किरीटी वल्कल चीर। तरुण-अरुण-मुख श्रीरघुबीर ॥ ६ ॥
नयन विशाल भाल भल भ्राज। लक्ष्मण-सेवित चरण समाज ॥ ७ ॥

जहाँ बहुत से मुनियों का निवास था, और मुनियों के परिधान पेड़ की छाल और मृगचर्म पेड़ों से लटके हुए थे। ११५-११६

॥ श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में
अयोध्याकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

नौवाँ अध्याय

राम की भरत से भेंट

भरत ने देखा कि धरती पर राम के सुन्दर चरणों के छाप पड़े हुए हैं, जो चरण ब्रह्मा-विष्णु-महेश का अवलम्ब हैं। धूल में वज्र, कमल के फूल और ध्वजा के चिह्न हैं (जो चक्रवर्ती राजा के लक्षण हैं)। ये चरण-चिह्न पापों और कष्टों से दूर करनेवाले हैं। १-२ (देखकर भरत बोले—) "आज मैं बड़भागी हुआ। अब राम के दर्शन के लिए उत्कंठित हूँ।" ३ भरत शान्ति-पूर्वक राम के आश्रम गये। हर्ष से इतने आँसू बहे कि वे नहा गए। ४ भरत ने देखा, राम का सुन्दर शरीर दूब के पत्ते के समान साँवला है। बिजली की चमक जैसी छविवाली जानकी उनके साथ में हैं। ५ राम जटा, किरीट और पेड़ के छाल का परिधान लगाए हुए हैं और उनका मुँह उदयकाल के लाल सूर्यबिम्ब की तरह चमक रहा है। ६ आँखें बड़ी-बड़ी हैं। ललाट चमकीला है। पाँव के पास बैठे लक्ष्मण सेवा में लगे हैं। ७

वंदेही सौ वचन-विनोद। सदनसँ शत गुण परम प्रमोद ॥ ८ ॥
देखल भरत खसल प्रभु-चरण। दीनबन्धु कहि संकट-हरण ॥ ९ ॥
रामक नयन नोर बढ़िआय। दुहु भुज सौँ लेल हृदय लगाय ॥ १० ॥
मिलिमिलि पुन मिल मन अति हर्ष। देखि मुनि नयन जेहन घनवर्ष ॥ ११ ॥
जननि न जानथि श्रम गिरि बाट। खसब पड़ब की गड़ पद काँट ॥ १२ ॥
कत छथि कहि कहि दौड़लि जाय। सर-बर जेहनि पिआसलि गाय ॥ १३ ॥
रघुनन्दन सभ जननी जानि। कयल प्रणाम बहुत सन्मानि ॥ १४ ॥
गुरुपद कय साष्टाङ्ग प्रणाम। धन्य धन्य हम कहलनि राम ॥ १५ ॥
लक्ष्मण क्रमक्रम कयल प्रणाम। यथायोग्य गुरुजन जे नाम ॥ १६ ॥
शाशु पुतोहु अङ्क मे राखि। जिबइत मुह देखल ई भाखि ॥ १७ ॥
लाजहि केकयि रहल सशंक। विधि देल हमरहि माँथ कलंक ॥ १८ ॥
आगत जे पुरलोक छलाह। यथायोग्य सभ जन बैसलाह ॥ १९ ॥
कहु गुरु पिता-कुशल की रीति। हमरा सभ पर पुरब पिरीति ॥ २० ॥
राम-वचन शुनि कहल वसिष्ठ। कालक गति अछि बहुत बलिष्ठ ॥ २१ ॥
कहयक विषय रहय के चूप। सुरपुर गेला दशरथ भूप ॥ २२ ॥

वे सीता के साथ मधुरालाप कर रहे हैं। राजभवन से भी सौ गुना प्रसन्न हैं। ८ भरत देखते ही 'हे दीनबन्धु, हे संकटहरण!' कहकर राम के पाँवों पर गिर पड़े। ९ राम की आँखों में आँसू की बाढ़ आ गई। उन्होंने दोनों बाँहों से भरत को गले लगा लिया। १० अत्यन्त हर्ष के साथ भरत राम से बार-बार मिले। यह मिलाप देखकर मुनि वसिष्ठ की आँखें बादल की तरह बरसने लगीं। ११ कौशल्या आदि माताएँ पहाड़ी रास्ते की मिहनत को भूल गईं। उन्हें यह भी होश न रहा कि गिर पड़ेंगी या पाँव में काँटे चुभ जाएँगे। १२ वे "कहाँ हैं? कहाँ हैं?" यह कहते हुए उसी तरह दौड़ चलीं जिस तरह प्यासी गाय सरोवर की ओर दौड़ती है। १३ राम ने माताओं को देखते ही बड़े आदर के साथ प्रणाम किया। १४ फिर गुरु वसिष्ठ के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके बोले— "मैं धन्य, धन्य हूँ।" १५ फिर क्रमानुसार लक्ष्मण ने यथोचित गुरुजनों को प्रणाम किया। १६ सास पतोहू को गोद में बैठाकर बोली— "जीते जी फिर मुँह देख पाई।" १७ लाज से कैकेयी सहमी हुई थी कि क्या विधाता ने इसका कलंक मेरे ही माथे पर लगाया। १८ नगर के जो-जो लोग आये थे वे सभी अपनी-अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार बैठ गए। १९ फिर राम ने पूछा— "कहिए गुरुजी, पिताजी कुशल से तो हैं? हम लोगों पर उनका स्नेह पूर्व की भाँति बना तो है?" २० राम की बात सुनकर वसिष्ठ बोले— "काल की गति बहुत बलवान होती है। २१ जो बात कहना जरूरी है उसके बारे में चुप कैसे रहा जा

राम राम कहि कहि सौमित्रि। अयि कत गेलहुँ विदेहक पुत्रि ॥ २३ ॥
कनइत एहिगत गत नृप-प्राण। शुनल राम श्रुति-शूल समान ॥ २४ ॥
मुइलहुँ ई कहि खसला कानि। लक्ष्मण राम करुण-रस सानि ॥ २५ ॥
हम अनाथ के करत दुलार। रहि गेल मनक मनोरथ भार ॥ २६ ॥
सीता सती होथि नहि चूप। कहि कहि गुणनिधि सकरुण भूप ॥ २७ ॥
अहँ वियोग-वश त्यागल प्राण। हमर हृदय भेल कुलिश समान ॥ २८ ॥
रामक कनइत सभ जन कान। तनि सौं त्रिभुवन भिन्न न आन ॥ २९ ॥
कानय केओ नहि कहथि वसिष्ठ। कालपुरुष अनिवार्य्य बलिष्ठ ॥ ३० ॥
कनलय नृप नहि अओता घूरि। की हो कहू कपारे चूरि ॥ ३१ ॥
मन्दाकिनि जल कयल स्नान। क्रम क्रम देल तिलाञ्जलि दान ॥ ३२ ॥
फल इङ्गुदी तथा पिण्याक। पिण्डदानमे कहइत थाक ॥ ३३ ॥
हम जे अन्न पितर से अन्न। पितरदेव मन होउ प्रसन्न ॥ ३४ ॥
गेला कुटी पुन कयल स्नान। क्रन्दन करुण बधिर जनु कान ॥ ३५ ॥
तेहि दिन सभ कयलनि उपवास। गज-तुरगादि न खयलक घास ॥ ३६ ॥
भेल अशौचक काण्ड समाप्त। दोसर दिवस जखन सम्प्राप्त ॥ ३७ ॥

सकता है। राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गए। २२ 'हा राम, हा राम! हा सुमित्रानन्दन लक्ष्मण! हा पुत्री वैदेही! सभी कहाँ चले गए!' २३ इस तरह विलाप करते हुए राजा दशरथ के प्राण चले गए।" राम के कान में बात बरछे के समान पड़ी। २४ 'मरे-मरे!' कहते हुए करुणा-मग्न राम और लक्ष्मण गिर पड़े और बोले। २५ "अब हम अनाथ हो गए। कौन प्यार करेगा? मन के सारे अरमानों पर पानी फिर गए।" २६ सती सीता की रुलाई बन्द ही न होती थी, और वह बिलखती —"हे गुणनिधि दयालु राजा, आपने हमारे बिछोह में प्राण छोड़ दिए। पर मेरा हृदय तो वज्र के समान कठोर हो गया जो अब भी नहीं फटता।" २७-२८ राम को रोते देख सभी रोने लगे, क्योंकि तीनों लोकों में कोई भी राम से भिन्न नहीं है। २९ तब वसिष्ठ ने कहा— "कोई नहीं रोइए। काल-पुरुष (भवितव्यता) अटल और बलवान् होता है। ३० रोने से राजा लौट तो नहीं आवेंगे। फिर कहिए तो, सर पटककर ही क्या होगा।" ३१ सबों ने गंगा नदी में स्नान किया। बारी-बारी से सबों ने तिलांजलि दी। ३२ राम ने इंगुदी और पिण्याक फल से यह कहते हुए पिंडदान किया कि 'मैं जो खाता हूँ, वही पितरों को दे रहा हूँ। हे पितर लोग, मुझ पर प्रसन्न होइए।' ३३-३४ कुटी जाकर फिर स्नान किया। इतना करुण क्रन्दन हुआ कि सबों के कान बहरे हो गए। ३५ उस दिन सबों ने उपवास किया। हाथियों-घोड़ों तक ने घास खाना छोड़ दिया। ३६ इस प्रकार अशौच का क्रम समाप्त

मन्दाकिनि जल सकल नहाय। बैसल राम सभाजन जाय ॥ ३८ ॥
भरत तहाँ उठि जोड़ल हाथ। हम किछु कहब देव रघुनाथ ॥ ३९ ॥
सभ जन अनुमति उचित विवेक। अपनौँक होय एतहि अभिषेक ॥ ४० ॥
मुनिजन बहुत अपन गुरु सङ्ग। देखि पड़ितहि अछि पुरजन रङ्ग ॥ ४१ ॥
जेहन पिता तेहन जेठ भाय। क्षत्रिय-धर्म्म सनातन न्याय ॥ ४२ ॥
पिता-राज्य पालन करु देव। सकल प्रजा मे यश बड़ लेब ॥ ४३ ॥
वन-वासक नहि सम्प्रति बेरि। वन-विनोद-मन अयबे फेरि ॥ ४४ ॥
बहुत यज्ञ विधिवत गोदान। करि उत्पन्न पुत्र गुणवान ॥ ४५ ॥
ज्येष्ठ पुत्रकाँ दय लेब राज। पुन आयब वन वनी-समाज ॥ ४६ ॥
केकयि-कृत मन नहि किछु धरिय। पालन हमर नाथ प्रभु करिय ॥ ४७ ॥

॥ दोहा ॥

श्रीरघुनन्दन-चरण पर, भरत धयल निज माँथ ॥ ४८ ॥
कयल दण्डवत भक्तिसौँ, त्राहि त्राहि रघुनाथ ॥ ४९ ॥

॥ चौपाइ ॥

स्नेह-सजल-लोचन श्रीराम। शुनु शुनु भरत कहल गुणधाम ॥ ५० ॥
त्वरित उठाय लगाओल अङ्क। भक्तिभाव अहँकाँ निश्शङ्क ॥ ५१ ॥

हुआ। जब अगला दिन आया तब ३७ सबों ने गंगा नदी में स्नान किया और राम सभा लगाकर बैठे। ३८ वहाँ खड़े हो हाथ जोड़कर भरत बोले—"हे राजा राम, मैं कुछ कहना चाहता हूँ। ३९ सबों की अनुमति है और न्यायतः उचित भी है कि यहाँ आपका अभिषेक किया जाय। ४० बहुत-से मुनि लोग हैं। अपने कुलगुरु वसिष्ठ भी साथ में हैं। नगरवासी लोग भी उल्लास में हैं। ४१ क्षत्रिय के धर्म में सदा से यह न्याय चलता आया है कि बड़े भाई वैसे ही हैं जैसे पिता। ४२ हे देव, आप पिता के राज्य का पालन कीजिए और इस प्रकार प्रजा में सुयश पाइए। ४३ अभी वनवास का अवसर नहीं है। यदि वन में विनोद करने की इच्छा होगी तो फिर आइएगा। ४४ विधि-पूर्वक बहुत से यज्ञ और गोदान कीजिएगा और उसके फलस्वरूप गुणवान् पुत्र उत्पन्न कीजिएगा। ४५ तब बड़े पुत्र को राज्य सौंपकर फिर वनवासियों के समाज में आइएगा। ४६ कैकेयी ने जो कुछ किया उसे भूल जाइए। हे प्रभु, आप मेरा पालन कीजिए।" ४७ इतना कहकर भरत ने रघुनन्दन राम के पाँवों पर अपना सिर रख दिया और ४८ "त्राहि-त्राहि" कहकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया। ४९ सुनकर स्नेहवश राम की आँखों में आँसू आ गए और भरत को तुरत उठाकर गले से लगा लिया और बोले— "हे भरत, सुनो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुमको मुझ पर

भरत अहाँक वचन निर्व्याज। बनि बनलहुँ पितृ-वचनक काज ॥ ५२ ॥
माय बाप आज्ञा अनुसार। पिता-वचन-प्रतिपाल विचार ॥ ५३ ॥
चौदह वर्ष वनहि मे रहब। भ्रमहुँ भरत मिथ्या नहि कहब ॥ ५४ ॥
अहँकाँ राज्य देलें छथि बाप। थोड़बहि दिनमे की सन्ताप ॥ ५५ ॥
दण्डक-वन हमरा देल राज। जनितहि छथि गुरु सकल समाज ॥ ५६ ॥
पिता-वचन हम माँथा धयल। अहँ की भरत अनादर कयल ॥ ५७ ॥
मान न पिता वचन अज्ञान। से जिबितहि छथि मृतक समान ॥ ५८ ॥
तनिका अन्त नरकमे वास। बापक जनिकाँ नहि मन त्रास ॥ ५९ ॥
भेँट भेल से भल भेल काज। अहँ छी विदित बनल महराज ॥ ६० ॥
कर गय राज्य वृथा निर्व्वेद। अहँइक चिन्ता सभकाँ खेद ॥ ६१ ॥

॥ दोहा ॥

भरत कहल स्त्री-जित पिता, कामुक बुद्धि-विहीन ॥ ६२ ॥
मृत्यु-निकट उन्मत्त-मति, मन नहि अपन अधीन ॥ ६३ ॥

॥ चौपाइ ॥

तेहन न पिता जेहन अहँ कहल। सत्य-सन्ध नृप सभ किछु सहल ॥ ६४ ॥

भक्तिभाव है। ५०-५१ हे भरत, तुमने जो कहा है वह शुद्ध भाव से कहा है। मैं तो पिता के वचन का पालन करने के लिए ही वनवासी बना हूँ। ५२ माता और पिता की आज्ञा सदा माननी चाहिए। अत: मैं पिता के वचन के पालन के लिए चौदह साल वन में ही रहूँगा। हे भरत, भूलकर भी मैं ग़लत नहीं कहूँगा। ५३-५४ पिता ने तुमको राज्य दिया है। थोड़े ही दिनों की तो बात है। इसमें दु:ख की क्या बात है ? ५५ मुझे दण्डक-वन का राज दिया है। यह बात गुरु जानते हैं और सारा समाज जानता है। ५६ पिता के वचन को मैंने सर पर रखा। क्या भरत, तुमने कभी उनके वचन का अनादर किया ? ५७ जो मूढ़ पुरुष पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है वह जिन्दा भी मुर्दे के समान है। ५८ जिसके मन में पिता का भय न हो उसे अन्त में नरक जाना पड़ता है। ५९ भेंट हुई यह तो अच्छा हुआ। सभी जानते हैं कि तुम महाराज बनाए जा चुके हो। ६० तुम राज्य करो। नाहक दु:ख मत करो। यदि चिन्ता करोगे तो उससे सबों को दुख होगा।" ६१ भरत ने कहा— "पिताजी स्त्री के वश में हो गए थे, काम के वश में हो गये थे, उनकी बुद्धि समाप्त हो चुकी थी, मौत उनके पास आ चुकी थी, और उनका अपना मन भी अपने वश में नहीं था।" ६२-६३ राम ने कहा— "पिताजी वैसे नहीं थे जैसा तुमने कहा है! राजा सत्यव्रती थे इसलिए उन्हें सब कुछ सहना पड़ा। ६४ उनका हृदय अधर्म से बड़ा डरता था। धर्म की रक्षा के ख़ातिर

हृदय अधर्मक अतिशय त्रास। बरु मानथि वर नरक-निवास ॥ ६५ ॥
कहल देल वर सत्य विचारि। केकयि शकलि न नृपव्रत टारि ॥ ६६ ॥
सत्य-वचन नृप त्यागल प्राण। रहि गेल धर्म्माधार प्रमाण ॥ ६७ ॥
तनिक वचन काँ कय देब त्याग। रामचन्द्र काँ अनुचित लाग ॥ ६८ ॥
कि करति केकयि कहत की लोक। कर्म्म शुभाशुभ रह की रोक ॥ ६९ ॥
कहलनि भरत देव रघुनाथ। सभ कृति प्रभुवर अपनेंक हाथ ॥ ७० ॥
हमहिँ रहब वन चौदह वर्ष। अपनैं राज्य करू मन हर्ष ॥ ७१ ॥
शुनु शुनु भरत कहल पुन राम। मन बड़ गड़बड़ करु थिर ठाम ॥ ७२ ॥

॥ षट्पद छन्दः ॥

सजल-नयन कह भरत नाथ हम नहि घुरि जायब ॥ ७३ ॥
लक्ष्मण सन वन रहब सङ्ग दुख दिवस गमायब ॥ ७४ ॥
नहि रखबे जौं सङ्ग प्राण हम सत्वर त्यागब ॥ ७५ ॥
बड़ गोट अयश कपार राज झंझट नहि लागब ॥ ७६ ॥
धयल कुशासन रौदमे पद्मासन पूर्व्वाभिमुख ॥ ७७ ॥
हठ भरतक दृढ़ देखिकें इन्द्रादिक मन बहुत दुख ॥ ७८ ॥
रामचन्द्र मन बुझल भरत अविचल हठ ठानल ॥ ७९ ॥

वे नरक भोगना भी अच्छा समझते थे। ६५ जो वर स्वीकार किया हुआ था, वह सत्य की रक्षा के खातिर दे दिया। ऐसा वर माँगकर भी कैकेयी राजा को अपनी सत्यनिष्ठता से विचलित न कर सकी। ६६ वचन की सच्चाई को निभाने के लिए राजा ने प्राण गँवाये। सत्यवादिता का प्रमाण छोड़ गए। ६७ ऐसे राजा के वचन को तोड़ देना रामचन्द्र को उचित नहीं प्रतीत होता है। ६८ माता कैकेयी क्या कहेंगी? लोग क्या कहेंगे? भले या बुरे कर्म-फलों को कौन रोक सकता है?" ६९ यह सुनकर भरत ने कहा— "हे प्रभु राम, सब कुछ आप ही के हाथ में है। ७० मैं ही चौदह बरस वन में रहूँगा। आप प्रसन्न मन से राज्य कीजिए।" ७१ फिर राम ने कहा— "हे भरत, आपका मन बहुत घबराया हुआ है। उसे स्थिर कीजिए।" ७२ तब आँसू-भरे नयनों से भरत ने कहा— "हे प्रभु, मैं नहीं लौटूंगा। ७३ जैसे लक्ष्मण हैं वैसे ही आपके साथ रहूँगा और कष्ट का काल बिताऊंगा। ७४ यदि आप मुझे अपने साथ वन में नहीं रखेंगे तो मैं तुरत प्राणत्याग कर दूंगा। ७५ बहुत बड़ी बदनामी सर पर लेकर राज्य के झंझट में नहीं पड़ूंगा।" ७६ इतना कहकर भरत धूप में कुश की चटाई पर पूरब की ओर मुँह करके पद्मासन लगा बैठ गए। ७७ भरत के इस हठ को देखकर इन्द्र आदि देवता चिन्तित हो उठे। ७८ राम ने मन में सोचा कि भरत ने तो अटल हठ ठान दिया। समझाने-बुझाने पर भी एक

कहलहु कथा बुझाय वचन एकगोट न मानल ॥ ८० ॥
गुरु वसिष्ठ काँ देल वामनेत्रान्त इसारा ॥ ८१ ॥
ई नहि ककरो शक्य बैल अपनहि काँ भारा ॥ ८२ ॥
कहलनि गुरु एकान्तमे भरत कठिन हठ परिहरिय ॥ ८३ ॥
हेतु कहैछी से शुनिय सत्य वचन श्रुति मे धरिय ॥ ८४ ॥

॥ चौपाइ ॥

अज अव्यय नारायण जैह। रामचन्द्र काँ जानब सैह ॥ ८५ ॥
ब्रह्मा बहुत प्रार्थना कयल। दशरथ-भवन पुत्र बनि अयल ॥ ८६ ॥
रावण-वध-कारण अवतार। पृथिविक हरण काज सभ भार ॥ ८७ ॥
प्रभुवर-माया सीता-रूप। लक्ष्मण थिकथि अनन्त अनूप ॥ ८८ ॥
केकयि-कृत सौँ मन जे खेद। कहइतछी तकरो हम भेद ॥ ८९ ॥
रामचन्द्र जौँ करता राज। बुझल देवता हयत न काज ॥ ९० ॥
विघ्न शारदा कयलनि जाय। केकयि रानिक कण्ठ समाय ॥ ९१ ॥
निर्दय-हृदय कहल निश्शङ्क। केकयि काँ छल लिखल कलङ्क ॥ ९२ ॥
ई तीनू जन दण्डक जयत। धर्म्म-विमुख दशमुख तत अयत ॥ ९३ ॥
निज अपराध पाबि संहार। हयता रावण अवनिक भार ॥ ९४ ॥
सकुल सबल रावण केँ जीति। घुरि अओता करताह सुनीति ॥ ९५ ॥

नहीं सुनी। ७९ फिर बायीं आँख से गुरु वशिष्ठ को इशारा किया कि इन्हें और कोई नहीं समझा सकता, अब समझाने-मनाने का भार आप ही पर है। ८०-८२ गुरु वसिष्ठ ने एकान्त में भरत को समझाया— "हे भरत, इस अटल हठ को छोड़िए। मैं जो तर्क कहता हूँ, वह सुनिए। जो वास्तविक तथ्य है उस ओर ध्यान दीजिए। ८३-८४ अजन्मा, अविनाशी नारायण को ही रामचन्द्र समझिए। ८५ ब्रह्मा ने बहुत प्रार्थना की। तब नारायण दशरथ के घर में उनके पुत्र बनकर आये। ८६ ईश्वर की माया ही सीता के रूप में अवतीर्ण हुई है। लक्ष्मण शेषनाग के अनुपम अवतार हैं। ८७-८८ कैकेयी की करनी से जो आपके मन में व्यथा है, उसका भी रहस्य मैं बताता हूँ। ८९ देवताओं ने सोचा, यदि राम राज्य करेंगे तो काम नहीं बनेगा। ९० इसलिए देवी सरस्वती ने रानी के कंठ में प्रविष्ट होकर राज्याभिषेक में विघ्न डाला। ९१ कैकेयी के सिर पर कलंक लिखा था, इसलिए सरस्वती ने निष्ठुर और निःशंक होकर कहा। ९२ ये तीन दंडक-वन जाएँगे। वहाँ अधर्म-चारी रावण आयेगा। ९३ अपने कुकर्मों से रावण धरती का बोझ हो जाएगा और संहार पायेगा। ९४ रावण को कुल-परिवार और सेना-समेत जीतकर राम लौट आयेंगे और न्यायपूर्वक राज्य करेंगे। ९५ हे भरत, आप

आग्रह त्यागि भरत घुरि जाउ। अन्नपानि सुखसौं अहँ खाउ ॥ ९६ ॥
एतय वृथा सभ जन मन दैन्य। जाउ अयोध्या लयकें सैन्य ॥ ९७ ॥

॥ दोहा ॥

गुरुक वचन शुनलनि भरत, अति विस्मित मन भेल ॥ ९८ ॥
सजल-नयन आनन्द-घन, राम निकट पुनि गेल ॥ ९९ ॥

॥ चौपाइ ॥

चरणक खरओं देव देल जाय। सेवा करब धरब मन लाय ॥ १०० ॥
दुहुटा खरओं राम दय देल। भरत भक्ति माँथा धय लेल ॥ १०१ ॥
जगमग जोति विभूषित-रत्न। देव-समान धयल बड़ यत्न ॥ १०२ ॥
करथि प्रदक्षिण करथि प्रणाम। कहथि अवधि दिन आयब गाम ॥ १०३ ॥
आयब अवधिक दिवस गमाय। भस्म होयब हम अनल समाय ॥ १०४ ॥
नीक नीक कहलनि श्रीराम। डङ्का पड़ल चलल जन धाम ॥ १०५ ॥
कनइत केकयि प्रभुसौं कहल। किछु कर्त्तव्य शिष्ट की रहल ॥ १०६ ॥
रामचन्द्र बेटा मन आश। हमरे भेल विश्व उपहास ॥ १०७ ॥
अहँक भरोश बहुत मन धयल। सभ जन-रव हम कहबे कयल ॥ १०८ ॥

हठ छोड़कर लौट चलिए। सुखपूर्वक खाइए-पीजिए। ९६ यहाँ किसी कारण के बिना ही सबों के मन में विषाद है। सेना लेकर अयोध्या जाइए।" ९७ गुरु वसिष्ठ की बातें सुनकर भरत को बड़ा विस्मय हुआ। ९८ आँखों में आँसू भर आये और गहरे आनन्द में लीन हो राम के पास गये। ९९ राम से कहा— "हे प्रभु, अपने पाँव के खड़ाऊँ मुझे दीजिए। मैं उसी की सेवा करूँगा और उसे यत्नपूर्वक रखूँगा।" १०० राम ने दोनों खड़ाऊँ लाकर दे दिए और भरत ने भक्तिपूर्वक उन्हें सिर पर रख लिया। १०१ उनसे चमकीली ज्योति निकल रही थी, क्योंकि उनमें रत्नखचित थे। ऐसे खड़ाऊँ को भरत ने देवता की मूर्ति के समान बड़े यत्न से रखा। १०२ उनका प्रदक्षिण करते, प्रणाम करते और कहते— "क्या अवधि पूरी होने पर राम लौट आएँगे? १०३ यदि वे अवधि के दिन को बिताकर नहीं आये तो मैं विरह की आग में जलकर राख हो गया रहूँगा।" १०४ राम ने अच्छे-अच्छे उपदेश दिये। नगाड़े बज उठे। सभी लोग अपने नगर अयोध्या विदा हुए। १०५ लौटते समय कैकेयी ने राम से कहा— "मेरे कर्तव्य में क्या कुछ बाकी रह गया है? १०६ मन में आशा लगी थी कि रामचन्द्र मेरा बेटा है (पर मैं विफल हुई)। सारी दुनिया में मेरी बदनामी हुई। १०७ मन में आपका बहुत भरोसा था। प्रजा-जन जो बोलते हैं वह तो मैंने सारा सुना ही दिया। १०८ आपने मुझे कैसी पिशाचिनी लगा

केहन पिशाची देल लगाय। हमहूँ थिकहुँ मान्य ससमाय ॥ १०६ ॥
अपनहि कयल सकल रघुनाथ। तदपि कहिय हम जोड़िय हाथ ॥ ११० ॥
करब क्षमा प्रभु सब अपराध। लोक-विदित सुख कयलहुँ बाध ॥ १११ ॥
अहँ परमेश्वर विश्व-स्वतन्त्र। हम की मानी वानी मन्त्र ॥ ११२ ॥

॥ दोहा ॥

हँसि कहलनि रघुनाथ, देवि सत्य अपनैं कहल ॥ ११३ ॥
वर-नृप-आज्ञा लाथ, देव-कार्य्य कर्त्तव्य छल ॥ ११४ ॥

॥ सोरठा ॥

त्यागु देवि सन्ताप, होएब कर्म्म सौं लिप्त नहि ॥ ११५ ॥
विगत त्रिविध तन-ताप, रहब हर्षिता निज भवन ॥ ११६ ॥
से शयबार प्रणाम, कयल धयल प्रभु-ध्यान मन ॥ ११७ ॥
धन्य धन्य श्रीराम, कहि चलली केकयि पुरी ॥ ११८ ॥

॥ चौपाइ ॥

यथायोग्य मिलि मिलि सभ लोक। गेल अयोध्या परिहरि शोक ॥ ११६ ॥
भरत मिलन सौं मन सन्तोष। मन मन केकयि पर बड़ रोष ॥ १२० ॥
गुरु मन्त्री परिजन गण आन। भरतक सङ्गहि कयल प्रयाण ॥ १२१ ॥

दी। मैं भी आपकी आदरणीया सौतेली माता हूँ। १०६ हे राम! लीला तो आपकी ही की हुई है। फिर भी मैं हाथ जोड़कर कहती हूँ। ११० हे प्रभु, आप मेरा सारा अपराध माफ़ कर दीजिए। सभी जानते हैं कि मैंने आपके सुख में बाधा डाली है। १११ आप परम ईश्वर हैं, संसार में जो चाहें सब कर सकते हैं। मैं कैसे यह मानूँ कि शारदा ने मुझे ऐसा मन्त्र दिया था।" ११२ राम ने हँसकर कहा— "हे माता, आपने ठीक कहा है। ११३ वरदान और राजा की आज्ञा तो निमित्त (बहाना) मात्र है। असल में देवताओं का काम करना था। ११४ हे महारानी, आप पछतावा न करें। इस कर्म में आप लिप्त नहीं होंगी। ११५ तीनों प्रकार के दुखों से रहित हो आप सुख से अपने रनिवास में रहें।" ११६ कैकेयी सौ बार राम को प्रणाम करके, उनका ध्यान हृदय में धारण करके, और 'राम धन्य हैं, धन्य हैं' कहकर अपने नगर अयोध्या को चलीं। ११७-११८ फिर सभी लोग औचित्यानुसार विदाई के वक्त मिल-मिलकर और दुख को भुलाकर अयोध्या चले। ११६ भरत की भेंट से सबों के मन में सन्तोष हुआ। पर, भीतर ही भीतर कैकेयी के प्रति बहुत गुस्सा रहा। १२० गुरु वसिष्ठ, मन्त्री और अन्यान्य परिजन भरत के साथ विदा हुए। १२१ 'सीतापति की जय',

जय सीतापति जय रघुनाथ। कनइत कनइत कर गुण-गाथ ॥ १२२ ॥
मिथिलेशक कन्या बुधिआरि। छल भल सङ्ग भाग्य दिन चारि॥ १२३ ॥
सकल पूर्व्ववत ठामहि ठाम। विरत भरत गेल नन्दिग्राम ॥ १२४ ॥
राखल खरओँ सिंहासन थापि। पूजा-विधि नहि छूट कदापि ॥ १२५ ॥
नित पूजन षोड़श उपचार। राज-भोग बन बहुत प्रकार ॥ १२६ ॥
राज-काज जत जे जे आब। राम समर्प्पण सिद्ध स्वभाव ॥ १२७ ॥
अवधिक दिन गणयित दिन जाय। मुनि-व्रत कन्द-मूल-फल खाय ॥ १२८ ॥
भूमि शयन सानुज नित करथि। अनुरत राम-चरण मन धरथि ॥ १२९ ॥
राज-काज किछु रहय न बन्न। व्रती भरत सभ कर सम्पन्न ॥ १३० ॥
चित्रकूट गिरि पर श्रीराम। बुझलक लोक घराघरि गाम ॥ १३१ ॥
एक घुरि आबथि एक पुनि जाथि। रामचन्द्र मन मन अगुताथि ॥ १३२ ॥
ग्राम-जनक आगमने तोड़ि। दण्डक-वन गेला गिरि छोड़ि ॥ १३३ ॥
जाय अत्रि काँ कयल प्रणाम। हम छी धन्य कहल श्रीराम ॥ १३४ ॥

'रामचन्द्र की जय' बोलते हुए, रो-रोकर सभी राम के गुण गाने लगे। १२२ "बड़े भाग्य से मिथिला के राजा जनक की बुद्धिमती कन्या सीता का चार दिनों का साथ था।" १२३ सभी कुछ जैसे के तैसे पड़े रहे, पर भरत सबों से विरक्त हो नन्दिग्राम चले गये। १२४ वहाँ सिंहासन स्थापित कर उस पर खड़ाऊँ को बिठा दिया। उन खड़ाऊँ की पूजा नियमित रूप से करने लगे। १२५ नित्य सोलहों उपचारों द्वारा उनकी पूजा करते। तरह-तरह के राजभोग बनाए जाते थे और पूजा में चढ़ाये जाते थे। १२६ राज-काज के सिलसिले में जहाँ कहीं जो कुछ भी आता उसे राम को समर्पित कर देते, स्वयं सिद्धयोगी की भाँति रहते। १२७ अवधि के दिन गिनते-गिनते ही समय बिताते। कन्द-मूल-फल मात्र खाते हुए मुनियों के समान व्रत में लीन रहते। १२८ छोटे भाई शत्रुघ्न-सहित सदा मिट्टी में ही सोते। प्रेमपूर्वक राम के चरण का सदा ध्यान करते रहते। १२९ कोई भी राजकाज बन्द नहीं रहता। व्रतनिष्ठ भरत सब सम्पन्न करते। १३०

राम का चित्रकूट से दंडक वन जाना और अत्रि से भेंट

लोगों को घर-घर में मालूम हो गया कि राम चित्रकूट पर्वत पर रहते हैं। १३१ एक लौटकर जाता तो दूसरा आ जाता। राम मन-मन आजिज होते थे। १३२ इस तरह गाँव के लोगों का ताँता लगा रहता कि राम उस पर्वत को छोड़ दण्डकवन चले गए। १३३ वहाँ जाकर राम ने अत्रि को

वनवासक छल अयलहुँ एतय। दुःखक लेश देश नहि जतय ।। १३५ ।।
रामक वचन मधुरतर शुनि। विधिवत पूजा कयलनि मुनि ।। १३६ ।।
बैसला राम मुनिक व्यवहार। भल फल वन्य आनि सत्कार ।। १३७ ।।
सीता लक्ष्मण बैसल जानि। मुनि कहलनि परमात्मा मानि ।। १३८ ।।

।। अनुष्टुप् छन्दः ।।

अनसूया महावृद्धा गृहमध्य तपस्विनी ।। १३९ ।।
छथि राम ततै जाथु मैथिली श्रीयशस्विनी ।। १४० ।।
गेली सीता ततै साध्वी राम आज्ञानुसार सौँ ।। १४१ ।।
प्रणाम तनिकाँ कैल मैथिली सद्विचार सौँ ।। १४२ ।।

।। दोधक छन्दः ।।

कहलनि अनसूया हम वृद्धा पति सँग करी तपस्या ।। १४३ ।।
अहँ जानकि सभलोकक जननी शिव-विधि-प्रभृति-नमस्या ।।१४४।।
ई कहि अङ्क लगाओल तनिकाँ छबि देखल भरि आँखी ।। १४५ ।।
हर्षहि हृदय भरल अछि होइछ दुहू आँखि मे राखी ।। १४६ ।।

।। तोटक छन्दः ।।

तन हो न मलान कदापि कहूँ ।। १४७ ।।
अँगराग लगाओल अत्रि-बहू ।। १४८ ।।

प्रणाम किया और कहा— "आपके दर्शन से मैं धन्य हुआ। १३४ वनवास के बहाने मैं यहाँ आया, जिस जगह दुःख का नाम मात्र नहीं है।" १३५ मुनि अत्रि ने राम का परम मधुर वचन सुनकर उनकी विधिवत् पूजा की। १३६ राम उनके आश्रम में बैठे और अत्रि ने मुनियों की परिपाटी के अनुसार अच्छे-अच्छे जंगली फल लाकर उनका आतिथ्य किया। १३७ सीता और लक्ष्मण को बैठे देख मुनि अत्रि उन्हें ईश्वर समझकर बोले । १३८ हे राम, घर में परम वृद्धा तपस्विनी अनसूया है, यशस्विनी सीता वहाँ जायँ।" १३९-१४० राम की आज्ञा पाकर सीता वहाँ गईं और जाकर सच्चे भाव से उन्हें प्रणाम किया। १४१-१४२ अनसूया ने कहा— "मैं बूढ़ी हो गई हूँ और पति के साथ यहाँ तपस्या करती हूँ। १४३ हे जानकी, आप सबों की माता हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवता आपको प्रणाम करते हैं।" १४४ इतना कहकर अनसूया ने सीता को गले से लगा लिया और छककर उनकी शोभा देखी और कहा। १४५ "हर्ष से हृदय भर गया है और मन करता है कि आपको दोनों आँखों में रख लूँ।" १४६ फिर अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया ने सीता के शरीर में एक ऐसा अंगराग (उबटन)

पहिरावल से पट जे नितहू ।। १४९ ।।
नव भव्यद फाट न जे कतहू ।। १५० ।।

।। प्रज्झटिति छन्द ।।

घर जाथु कुशलसौँ अहँक संग, वनमे आयल छथि अछि प्रसङ्ग ।। १५१ ।।
मुनि वन्य कन्द फल आनि देल, सानुज सीतापति तृप्त भेल ।। १५२ ।।
मुनि कहल भुवन अपनैं बनाय, प्रतिपाल करै छी विभु कहाय ।। १५३ ।।
गुण-कृत न दोष अहँमे समाय, विभुसौँ माया मोहिनि डराय ।। १५४ ।।

कवि-प्रार्थना

।। उक्त छन्द ।।

जयजय रघुनन्दन देवदेव, हृत-धरणि-भार कृत-विपिन-सेव ।। १५५ ।।
जय दलित-भवानीनाथ-चाप, दूरी-कृत-मिथिला-मनस्ताप ।। १५६ ।।
जयजय पुरुषोत्तम गुणातीत, श्रित-भूमि-तनय मुनि-गण-विनीत ।। १५७ ।।
जय दाशरथे नानावतार, मां पालय पालन दयागार ।। १५८ ।।

।। इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा-रामायणे अयोध्याकाण्डे नवमोऽध्यायः ।।

।। इति अयोध्याकाण्ड ।।

लगा दिया जिससे उनका शरीर कभी म्लान न होगा। १४७-१४८ और एक ऐसा वस्त्र पहना दिया जो सदा सुन्दर और नवीन रहनेवाला है, कभी फटनेवाला नहीं है। १४९-१५० फिर कहा— "सीता, जो संयोगवश आपके साथ वन में आई हुई हैं, कुशल-पूर्वक घर लौटें, यह मेरा आशीर्वाद है।" १५१ मुनि अत्रि ने जंगली कन्द-मूल-फल ला दिए, जिन्हें पाकर लक्ष्मण-सहित सीतापति राम तृप्त हुए। १५२ तब मुनि ने स्तुति की— "आप तीनों भुवनों का सृजन और पालन करते हैं। आप विभु (व्यापक ईश्वर) कहलाते हैं। १५३ सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से उत्पन्न होनेवाला विकार आप में नहीं होता है। आपके विभु रूप से कुहकिनी माया भी डरती है। १५४ हे रघुनन्दन, देवताओं के भी देवता, आपकी जय हो, जय हो! आपने धरती का भार दूर करने के लिए वनवास लिया। १५५ आपने शिवजी के धनुष को तोड़ा; आपकी जय हो। आपने धनुष तोड़कर मिथिला की चिन्ता को दूर किया। १५६ आपकी जय हो, जय हो। आप पुरुषोत्तम हैं। आप तीनों गुणों से परे हैं। आपने धरती की बेटी सीता को अपनाया। आप मुनियों के प्रति नम्र हैं। १५७ हे दशरथ के पुत्र राम, आपकी जय हो। आप तरह-तरह के अवतार लेते हैं। हे दयामय, आप मेरा पालन कीजिए।" १५८

।। मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा-रामायण के
अयोध्याकाण्ड में नौवाँ अध्याय समाप्त ।।

।। अयोध्याकाण्ड समाप्त ।।

आरण्यकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ शिखरिणी छन्दः ॥

भ्रमन्तौ कान्तारे क्षपितदनुजौ त्यक्तनगरौ ॥ १ ॥
किशोरौ सद्वीरौ जनकतनया-रक्षणपरौ ॥ २ ॥
जटावन्तौ वान्तौ करकमल-चापाशुगधरौ ॥ ३ ॥
सदापायास्तास्मो दशरथतनूजौ नरवरौ ॥ ४ ॥

॥ चौपाइ ॥

एकदिन रहि प्रभु पुन चललाह । अरिआतय मुनि सङ्ग चललाह ॥ ५ ॥
राम कहल अपनै घुरि जाउ । कृपाकुक्त वन-बाट देखाउ ॥ ६ ॥
सुनि मुनि कहलनि होमहि बूझ । अपनै काँ प्रभु कतय न सूझ ॥ ७ ॥
हमर शिष्य लौकिक व्यवहार । बाट देखौता उचित विचार ॥ ८ ॥
चलला एक कोश प्रभु भूमि । अत्रिशिष्यसौं कहलनि घूमि ॥ ९ ॥

पहला अध्याय

दशरथ के पुत्र किशोर, वीरवर, पराक्रमी, पुरुष-श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण हमारा पालन करें जो राक्षसों को मारकर, नगर छोड़ वन में घूम रहे हैं, जनकसुता जानकी की रक्षा में तत्पर हैं, सिर में जटा धारण किये हुए हैं और कर-कमलों में तीर-धनुष लिये हुए हैं। १-४

विराध की मुक्ति

एक दिन वहाँ विश्राम कर भगवान् रामचन्द्र फिर आगे बढ़े। मुनि अत्रि अगवानी के लिए कुछ दूर उनके साथ लग गये। ५ राम ने कहा— "आप कृपया लौट जाएँ, केवल वन का रास्ता हमें बता दें।" ६ मुनि ने सुनकर कहा— "यह तो भला रहा। हे प्रभु ! आपको कौन जगह अज्ञात है ? ७ फिर भी मेरे ये शिष्य दुनिया की रीति के अनुसार आपका यथोचित मार्गदर्शन करेंगे।" ८ प्रभु रामचन्द्र एक कोस रास्ता चले, तब पीछे मुड़कर अत्रि मुनि के शिष्यों से बोले। ९ "देखता हूँ कि आगे अथाह नदी है। जगह निर्जन है।

देखि पड़ै अछि नदी अथाहि। निर्ज्जन भेट नाव की ताहि॥ १०॥
शिष्य कहल प्रभु अछि भल नाव। देखब खेबि लबै छिय आब॥ ११॥
तिनु जनकाँ लेल नाव चढ़ाय। क्षणमे देलनि पार लगाय॥ १२॥
अपने लोक कयल बड़ काज। गेल जाय मुनि अत्रि-समाज॥ १३॥
विपिन भयङ्कर सह सह साप। सिंह बाघ वन-जन्तु कलाप॥ १४॥
झिल्ली करय घोर झंकार। राक्षस बिकट विकट संचार॥ १५॥
शुनु लक्ष्मण कहलनि रघुवीर। यतनहि चलिय सज्ज धनुतीर॥ १६॥

॥ दोहा॥

आगाँ हम पाछाँ अहाँ, सीता माझहि ठाम॥ १७॥
ब्रह्म जीव माया जेहनि, चलु दण्डक बन नाम॥ १८॥

॥ चौपाइ॥

सभ दिश लक्ष्मण तकितहि रहब। आवय दुष्ट शीघ्र से कहब॥ १९॥
कहइत योजन डेढ़ प्रमान। जाय देखल एक दिव्य स्थान॥ २०॥
शोभासीम अनूप तड़ाग। सुन्दर वारि अमृत सम लाग॥ २१॥
उत्पल कमल कुमुद कह्लार। जल-पक्षी कर विविध बिहार॥ २२॥

क्या ऐसी सूनी जगह में नाव मिल सकती है?" १० शिष्यों ने कहा— "हे प्रभु! किनारे में नाव तो है। देखिए, मैं अभी खेकर ले आता हूँ।" ११ शिष्यों ने नाव लाकर उस पर राम, लक्ष्मण और सीता तीनों को चढ़ा लिया और क्षण भर में उस पार पहुँचा दिया। १२ तब राम ने शिष्यों से कहा— "आप लोगों ने बड़ी मिहनत की। अब आप लोग अत्रि मुनि के पास जा सकते हैं।" १३ फिर राम ने लक्ष्मण से कहा— "वन : डरावना है। जहाँ-तहाँ साँप दिखायी देते हैं। शेर, बाघ आदि जंगली जानवरों की भरमार है। १४ झिल्लियाँ तेज आवाज कर रही हैं। बड़े-बड़े डरावने राक्षस घूम रहे हैं। १५ अतः हे लक्ष्मण! तीर-धनुष लिये सावधानी के साथ चलना। १६-१७ आगे-आगे मैं रहूँगा; पीछे तुम रहना और बीच में सीता रहेगी, उसी तरह जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया रहती है। १८ हे लक्ष्मण! चारों तरफ नज़र रखना। ज्योंही कोई दुष्ट राक्षस आये, तुरत मुझे बता देना।" १९ इस तरह कहते हुए जब डेढ़ योजन के क़रीब आगे बढ़े तब राम ने एक मनोरम स्थान देखा। २० हद दर्जे की शोभावाला एक अनुपम तालाब था। उसका सुन्दर जल लगता था, जैसे अमृत हो। २१ उस तालाब में लाल कमल, श्वेत कमल, कुमुद, कल्हार आदि फूल लगे थे और जलचर, पक्षी केलि कर रहे थे। २२ तीनों उस तालाब के पास गये, कुछ पानी पिया

जाय समीप पीबि किछु पानि। बैसला तरुवर छाया जानि ॥ २३ ॥
अबइत देखल एक उतपात। वदन भयङ्कर भयकर गात ॥ २४ ॥
गर्ज प्रचण्ड मेघ समतूल। कत मानुष गाँथल छल शूल ॥ २५ ॥
महिष बाघ गज शूकर खाय। चटचट हाड़ समेत चिबाय ॥ २६ ॥
सुनु लक्ष्मण कहलनि रघुबीर। धनु कोदण्ड हाथ कह तीर ॥ २७ ॥
आबि गेल राक्षस बड़ गोट। दौड़ल अबइत अछि बड़ मोट ॥ २८ ॥
जानकि जनु मन मानब त्रास। हितकर एहिखन करब विनाश ॥ २९ ॥
राम बाण धय अचल समान। ठाढ़ भेला ओकरे दिश ध्यान ॥ ३० ॥
ओ प्रभु निकट विकट हँसलाह। जयबह कतय आब फसलाह ॥ ३१ ॥
मुनिसन वेष धनुष शर हाथ। अति निर्भय मन करह न लाथ ॥ ३२ ॥
स्त्री-सहाय छह युगल कुमार। हे सुन्दर के देल विचार ॥ ३३ ॥
अयला बन नहि बचतौ प्राण। हमरा मुह तोँह ग्रास प्रमाण ॥ ३४ ॥
कह कह बनमे छौ की काज। ई दण्डक-वन दनुजक राज ॥ ३५ ॥
राम कहल सुन राक्षस वीर। कतय पड़यबह पकड़ल चोर ॥ ३६ ॥

और पेड़ के नीचे छाँव देखकर बैठ गए। २३ इतने ही में एक उत्पात (आफ़त) को आते देखा। उसका चेहरा विकराल और तन भयानक था। २४ वह बादल की भाँति प्रचण्ड गर्जन करता था। कई मनुष्यों को अपने बरछे में गूँथे हुए था। २५ भैंसा, बाघ, हाथी और सूअर मार-मारकर खाता और हड्डी-सहित कड़कड़ा कर चबाता था। २६ रामचन्द्र ने यह देख लक्ष्मण से कहा—"हे लक्ष्मण! सुनो। अब तीर-धनुष हाथ में लो। २७ बहुत भारी राक्षस आ गया। वह विशालकाय राक्षस इधर ही दौड़ता आ रहा है। २८ हे जानकी! तुम मन में भय मत करो। मैं इसको तुरत नाश कर दूँगा।" २९ इतना कहकर राम पर्वत के समान अटल होकर तीर हाथ में लिये उसी की ओर नज़र करके खड़े हो गए। ३० वह राक्षस प्रभु राम के पास आया और अट्टहास करते हुए बोला—"अब तुम जाओगे कहाँ? बुरी तरह फँस गये हो। ३१ तुम्हारा बाना तो मुनि-जैसा लगता है, फिर भी हाथ में तीर और धनुष लिये हुए हो। तुम्हारे मन में तनिक भी डर नहीं है क्या? मुझ से छल मत करना। ३२ तुम सिर्फ़ दो आदमी हो, वह भी कच्ची उम्र के और साथ में औरत है। हे सुन्दर! किसने विचार दिया कि तुम जंगल में आये? ३३ अब तो तुम्हारे प्राण बचने को नहीं। मेरे विशाल मुँह के लिए तो तुम एक कौर के बराबर हो। ३४ कहो, कहो तो, इस वन में आने की तुम्हें क्या ज़रूरत पड़ी? जानते हो, यह दंडक-वन है। यहाँ राक्षसों का राज है।" ३५ राम ने उत्तर दिया—"अरे चोर राक्षस! सुनो। तुम भागकर जाओगे कहाँ? मैंने चोर को पकड़ लिया। ३६ मेरा

हमर नाम कहइछ जन राम। पिता-वचन सौं छोड़ल धाम॥ ३७॥
लक्ष्मण भ्राता हमर कनिष्ठ। त्रिभुवन-विजयी वीर बलिष्ठ॥ ३८॥
प्राण-वल्लभा सीता नाम। काज शुनह अयलहुँ एहिठाम॥ ३९॥
तोर सन जन रण-शिक्षा देब। मुनिक मण्डली मे यश लेब॥ ४०॥
राम-वचन शुनि हँसल से घोर। देखब राम केहन बल तोर॥ ४१॥
शूल हाथ दौड़ल मुह बाय। देखितहिँ सभकाँ जयबहु खाय॥ ४२॥
जनयित नहि छह नाम विराध। मृग-मुनि-जनक वनक हम व्याध॥ ४३॥
कत कत मुनिकाँ गेलहुँ खाय। बाँचल से जे गेल पड़ाय॥ ४४॥
त्यागि अस्त्र दुनु बन्धु पड़ाह। सीताकाँ हमरा बय जाह॥ ४५॥
जौँ जिबइक इच्छा संसार। सत्वर करह यहन व्यवहार॥ ४६॥
बल लेब जानकि दौड़ल डाँटि। शरसौँ राम तनिक भुज काटि॥ ४७॥
हँसइत मन नहि कोपक लेश। श्रीरघुनन्दन प्रबल नरेश॥ ४८॥
मुह बओलेँ दौड़ल खल फेरि। पयर काटि लेलथिनि तहि बेरि॥ ४९॥
ससरल आबय करय प्रलाप। मुह बओलेँ जनु अजगर साप॥ ५०॥
अर्द्ध-चन्द्र-बाणेँ तनि माँथ। चटपट काटल श्रीरघुनाथ॥ ५१॥

नाम राम है। मैं पिता की आज्ञा से नगर छोड़ यहाँ आया हूँ। ३७ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। यह ऐसा वीर-बलिष्ठ है कि तीनों लोकों को जीत सकता है। ३८-३९ यह मेरी प्राण-प्यारी है, जिसका नाम सीता है। अब सुनो कि मैं किस काम से यहाँ आया हूँ। ४० मैं तुम-जैसे (उद्दण्ड) व्यक्तियों को लड़ाई की सीख दूँगा और (नाश करके) मुनियों के समाज में यश पाऊँगा।" ४१ राम की बात सुनकर वह राक्षस ज़ोर से हँस पड़ा (और बोला—) "राम, अब मैं लड़कर देखूँगा कि तुम्हारे कितनी ताक़त है।" ४२ इतना कहते हुए वह हाथ में बरछा लिये मुँह बाए दौड़ा (और बोला—) "मैं देखते ही तुम सबों को खा जाऊँगा। ४३ जानते नहीं हो, मेरा नाम विराध है। मृग रूपी मुनियों के जंगल का मैं व्याध हूँ। कितने सारे मुनियों को मैं चट कर गया। वे ही मुनि बच पाये जो भाग निकले। ४४-४५ हथियार डालकर तुम दोनों भाई भाग जाओ और सीता मुझे सौंप जाओ। ४५ यदि इस संसार में तुम्हें जीने की इच्छा है तो ऐसा काम करो।" ४६ इस प्रकार दहाड़कर वह बलजोरी सीता को पकड़ने के लिए दौड़ा। राम ने तीर से उसकी बाँह काट ली। ४७ वे मुस्कुरा रहे थे। उनके मन में नाम मात्र क्रोध नहीं था। राम बड़े पराक्रमी राजा थे। ४८ फिर वह बदमाश मुँह फैलाकर दौड़ा और इस बार राम ने उसकी टाँगें काट लीं। ४९ तब वह अजगर की तरह मुँह बाए रेंगते और पराक्रम करते हुए बढ़ा। ५० राम ने अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसका सर काट दिया। ५१

पृथिवी-तल ककरहु नहि टेर। से खल खसल रुधिर भेल ढेर ॥ ५२ ॥
प्रभु-महिमा किछु कहल न जाय। सीता प्रभु-तन गेलि लपटाय ॥ ५३ ॥
दिवि दुन्दुभि निर्भीति बजाव। अप्सरादि नाचथि कय भाव ॥ ५४ ॥
गाबथि किन्नर-गण गन्धर्व्व। धन्य धन्य प्रभुकाँ कह सर्व्व ॥ ५५ ॥

॥ दोहा ॥

भेल विराधक देह सौं, दिव्य पुरुष उत्पन्न ॥ ५६ ॥
दिव्य वसन भूषण कनक, रवि-रुचि गुण-सम्पन्न ॥ ५७ ॥

॥ चौपाइ ॥

बद्धाञ्जलि रामक लग ठाढ़। नाथ छोड़ाओल सङ्कट गाढ़ ॥ ५८ ॥
बेरि बेरि से करथि प्रणाम। कहि सानुज सीतापति राम ॥ ५९ ॥
हम विद्याधर विमल-प्रकाश। देखल नयन भरि पूरल आश ॥ ६० ॥
दुर्व्वासा मुनि देल छल शाप। क्रोध-विवश थापल छल पाप ॥ ६१ ॥
अपनैंक चरण मध्य स्मृति रहय। रसना रामनाम नित कहय ॥ ६२ ॥
प्रभु-गुण-कीर्त्तन शुन नित कान। कर सेवा कर कर्म्म न आन ॥ ६३ ॥
प्रभु-पद पङ्कज पर पड़ माँथ। करुणागार देव रघुनाथ ॥ ६४ ॥

जो धरती पर किसी को टेरता नहीं था वह बदमाश गिर पड़ा और लहू से लथपथ हो गया। ५२ राम की महिमा कही नहीं जा सकती। सीता डरकर राम के शरीर से लिपट गई। ५३ अप्सराएँ भय से मुक्त हो आकाश में नगाड़े बजाने लगीं और हाव-भाव के साथ नाचने लगीं। ५४ किन्नर और गन्धर्व लोग गाने लगे तथा सभी राम के जय-जयकार का नारा लगाने लगे। ५५ तब उस विराध के शरीर से एक दिव्य मनुष्य निकला। ५६ उसके वस्त्र और स्वर्णभूषण अलौकिक थे और वह गुणवान् एवं सूरज-सा चमकीला था। ५७ वह हाथ जोड़कर राम के पास खड़ा हो गया। और बोला। "हे प्रभु, आपने भारी संकट से मेरा उद्धार किया।" ५८ उसने बार-बार प्रणाम किया और लक्ष्मण-सहित सीतापति राम से बताया। ५९ "मैं विमलप्रकाश नाम का विद्याधर हूँ। आपके भरपूर दर्शन पाकर मेरी आशा पूरी हुई। ६० मुझे दुर्वासा नामक ऋषि ने गुस्से में आकर शाप दिया था और मेरे सर पर पाप सवार कर दिया था। ६१ (अब मेरी कामना है कि) मेरा चित्त सदा आपके चरणों में लगा रहे। मेरी जीभ सदा राम-नाम की रट लगाती रहे। ६२ मेरे कान सदा आपके गुणों का कीर्तन सुनते रहें। मेरे हाथ सदा आपकी सेवा करते रहें, और कोई कर्म न करें। ६३ मेरा माथा सदा आपके पाँव पर झुका रहे। हे भगवान् राम, आप करुणा के सागर हैं। ६४ हे प्रभु, मैं फिर स्वर्ग जाऊँ और वहाँ माया में न पड़ूँ,

देव-लोक माया नहि व्याप। से प्रभु अपनेक मुख्य प्रताप ॥ ६५ ॥
रघुनन्दन कह सुखसौं जाउ। अहँ मायामे जनु लपटाउ ॥ ६६ ॥
हमर दर्शनें अहँ कैँ मुक्ति। दुर्लभ तेहन हमर दृढ़ भक्ति ॥ ६७ ॥
शीघ्र जाउ आज्ञा शिर मानि। भक्ति भाव सम्पन्नें जानि ॥ ६८ ॥

॥ दोहा ॥

रामचन्द्र-करसौं मरण, छूटल मुनि-कृत शाप ॥ ६९ ॥
चरित मुक्ति-वर-प्रद कहथि, सकल भुवन यश व्याप ॥ ७० ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा-रामायणे आरण्यकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

स्वर्गत भेला जखन विराध। तखन गगन सुरजन सम्बाध ॥ १ ॥
प्रभु सानुज वैदेही सङ्ग। गेला ततय जतय शरभङ्ग ॥ २ ॥
आयल छथि वन श्रीभगवान। मुनि जानल साधन विज्ञान ॥ ३ ॥
सत्वर विधि विष्टर देल नीक। पूजा कयल विहित जे थीक ॥ ४ ॥

यह आप ही की महिमा से हो सकता।" ६५ राम ने कहा— "मजे में जाओ और माया में मत फँसो। ६६ मेरे दर्शन से तुम्हें मुक्ति मिल गई। मुझमें तुम्हारी जैसी दृढ़ भक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ६७ मेरी आज्ञा मानकर और अपने को भक्तिभाव से भरा समझकर शीघ्र स्वर्ग जाओ।" ६८ राम के हाथ से मृत्यु हुई, इसके फलस्वरूप दुर्वासा मुनि का शाप दूर हुआ। ६९ जो लोग विराध को मुक्ति देने की यह कथा कहेंगे उनका यश सारे संसार में फैल जाएगा। ७०

॥ श्री चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में आरण्यकाण्ड का प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय अध्याय

शरभंग ऋषि की मुक्ति और सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम जाना

जब विराध स्वर्ग गया, उस समय आकाश में देवता लोगों की भीड़ लग गई थी। १ तब लक्ष्मण और सीता-सहित राम वहाँ गए जहाँ शरभंग ऋषि का आश्रम था। २ मुनि को अपने अलौकिक ज्ञान के सहारे मालूम हो गया कि भगवान् राम वन में आए हुए हैं। ३ ऋषि ने वैदिक विधि के अनुसार तुरत एक अच्छा विष्टर (कुशासन) लाकर दिया और यथाविहित

प्रिय आतिथ्य कन्द फल मूल। कहल आइ दिन अति अनुकूल ॥ ५ ॥
एतय बहुत दिन तप जे कयल। पुण्यकर्म्म जे जे अछि धयल ॥ ६ ॥
अपनैं विषय समर्प्पण भेल। दुर्ल्लभ दर्शन अपनैं देल ॥ ७ ॥
फल-विरक्त हम पायब मुक्ति। एक कहक थिक वचन सुयुक्ति ॥ ८ ॥
सकल-हृदय-गृह नव घनश्याम। सरसिज-लोचन रघुवर राम ॥ ९ ॥
चीराम्बर धर जटा-कलाप। सानुज श्रीपति हरु सन्ताप ॥ १० ॥
चिता चढ़ल योगीश्वर बाज। हे रघुनन्दन देखू आज ॥ ११ ॥
देह दग्ध कय हम ब्रह्मत्व। जाइत छी अपनैंक समक्ष ॥ १२ ॥

॥ दोहा ॥

वाम अङ्कमे जानकी, घन चपला समतूल ॥ १३ ॥
पुरी-अयोध्या-पति रहथु, हृदय सदा अनुकूल ॥ १४ ॥
मुनि पुन आगि पजारिकैं, कयलनि दग्ध शरीर ॥ १५ ॥
दिव्य-देह लोकेश-पद, गेला कहि रघुवीर ॥ १६ ॥

॥ चौपाइ ॥

कत मुनिवर आयल तहिठाम। सभकाँ तिनु जन कयल प्रणाम ॥ १७ ॥
आशिष दय कहलनि प्रभु वेश। अयलहुँ छूटल मुनिक कलेश ॥ १८ ॥

रीति से उनकी पूजा की। ४ कन्द-मूल-फल से अपने प्रिय अतिथि का सत्कार किया और बोले— "मेरा आज का दिन बड़ा शुभ हुआ। ५ यहाँ मैंने जो दीर्घ काल तक तपस्या की और जो कुछ भी पुण्य संचित किया, वे सभी मैं आज आपको समर्पित करता हूँ। आपने मुझे दर्शन दिया, जो दुर्लभ है। ६-७ फल की कामना को छोड़ आज मैं मुक्ति पाऊँगा। केवल एक बात युक्तिपूर्वक कहना चाहता हूँ। ८ हे कमलनयन रघुश्रेष्ठ राम, आप सभों के हृदय रूपी आँगन में नये बादल-से हैं। ९ चीर और जटा धारण किए, लक्ष्मण और सीता-समेत हे राम, आप मेरे सन्तापों का हरण करें।" १० चिता पर चढ़े हुए योगिराज शरभंग कहते हैं— "हे राम, देखिए; आज मैं आपके सामने अपने शरीर को दग्ध करके ब्रह्मत्व प्राप्त करता हूँ। ११-१२ जिनके बायें अंग में सीता उस प्रकार विराजमान हैं, जिस प्रकार बादल में बिजली, ऐसे अयोध्यापति रामचन्द्र सदा मेरे हृदय में दाहिने रहें।" १३-१४ इतना कहकर मुनि ने चिता जलाई और शरीर को उसमें दग्ध किया। १५ फिर दिव्य शरीर में प्रकट हो राम का नाम लेकर ब्रह्मपद (ब्रह्मत्व) को प्राप्त हो गए। १६ वहाँ बहुत-से मुनि जुट गए। सबों को तीनों ने प्रणाम किया। १७ सबों ने आशीर्वाद दिया और कहा— "प्रभो, भला हुआ कि आप आए। अब मुनियों का कष्ट दूर हुआ। १८ हमने शरभंग ऋषि की

मुनि शरभङ्गक देखल प्रयाण। प्रभुसौँ सबहिक हो कल्याण ॥ १९ ॥
टहलि घूमि बन देखल जाय। होयत ज्ञात घोर अन्याय ॥ २० ॥
अस्थि कपाल पड़ल छल ढेर। राम पुछल की विषय अन्धेर ॥ २१ ॥
मुनि कह मृत मुनि लोकक हाड़। हिनका खयलक राक्षस राड़ ॥ २२ ॥
करुणासौँ परिपूरित आँखि। श्री रघुनन्दन उठला भाखि ॥ २३ ॥
कयल प्रतिज्ञा प्रभु विख्यात। कयलक अछि जे जे उतपात ॥ २४ ॥
सभ राक्षसक करब संहार। विजय सुयश त्रिभुवन विस्तार ॥ २५ ॥
मुनिजन चिन्ता करु जनु आब। कि कहब अड़ड़ा लागल नाव ॥ २६ ॥
नाम सुतीक्ष्ण अगस्तिक शिष्य। शुचि संयम आहार हविष्य ॥ २७ ॥
रामक मन्त्रोपासक एक। भक्ति अनन्य धन्य सविवेक ॥ २८ ॥
तनिकर आश्रम गेला राम। सभ ऋतु कयल जतय बिसराम ॥ २९ ॥
शुनल सुतीक्ष्ण अबै छथि राम। विधिवत पूजन कयल प्रणाम ॥ ३० ॥
मन्त्रोपासक भक्त सिनेह। अपनहि अयलहुँ हमरा गेह ॥ ३१ ॥
विश्व-अगोचर देखल नयन। सकल लोक मानस-गृह शयन ॥ ३२ ॥
अपनेक मन्त्र-विमुख-मति जैह। माया-मोहित होइछ सैह ॥ ३३ ॥

मुक्ति देखी। आपसे ऐसे ही सबों का कल्याण होवे। १९ अब घूम-फिरकर यह तपोवन देखा जाए। देखने से मालूम होगा कि यहाँ कितना घोर अनर्थ होता रहा है।" २० सामने ही खोपड़ियों का अम्बार लगा था। राम ने पूछा—"किस बात का अनर्थ ?" २१ मुनियों ने कहा—"यह मारे गए मुनियों की हड्डियों का अम्बार है। इन्हें दुष्ट राक्षसों ने मार-मारकर खाया है। २२ करुणा से राम की आँखें भर आईं और वे बोल उठे। २३ उन्होंने पक्का प्रण किया—"जिन-जिन राक्षसों ने ऐसा उत्पात किया है, उन सबों का मैं संहार करूँगा। मेरी जीत का यश तीनों लोकों में फैलेगा। २४-२५ हे मुनियो, अब आप लोग चिन्ता न करें। क्या कहूँ, अब मानों नाव किनारे लग गई है।" २६ अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण नाम के एक ऋषि थे। वे पवित्रता और संयम से रहते थे। केवल हविष्य वस्तु खाते थे। २७ एक मात्र राम-मन्त्र के उपासक थे। राम में उनकी अनन्य भक्ति थी। उनका विवेक प्रशंसनीय था। २८ राम उनके आश्रम में पधारे, जहाँ सभी मौसम एक साथ मौजूद रहते थे। २९ राम आए, यह जानते ही सुतीक्ष्ण ने विधिवत् प्रणाम करके उनका पूजन किया। ३० उन्होंने कहा— "आप अपने मन्त्र के उपासक भक्त के प्रति (अर्थात् मेरे प्रति) स्नेह के कारण स्वयं मेरे आश्रम में पधारे हैं। ३१ जिसे संसार भर में कोई नहीं देख सकता उसे, और जो सभी लोगों के मन रूपी घर में सोनेवाला है, उसे मैंने अपनी आँखों से देखा। ३२ जिसका मन आपके मन्त्र

जल-गत दिनकर-बिम्ब समान । मायामोहित जन-धन-धाम ॥ ३४ ॥
विभु अपूर्व्व देखल से रूप । माया-मानुष सुन्दर भूप ॥ ३५ ॥
कोटि-काम-छवि अति कमनीय । चाप बाण धरइत रमणीय ॥ ३६ ॥
दया-सरस सुन्दर मुख-हास । हरथु हमर रघुवर भव-त्रास ॥ ३७ ॥
अमल अजिन पट सीतासङ्ग । सेवक लक्ष्मण प्रीति अभङ्ग ॥ ३८ ॥
गुणानन्त नीलोत्पल-कान्ति । वीर-धुरन्धर मानस-शान्ति ॥ ३९ ॥
ब्रह्म राम चिद्घन कह वेद । बसथि मुनिक मन अति निर्व्वेद ॥ ४० ॥
देखल जे हम रूप समक्ष । हृदय बसथु से प्रभु परतक्ष ॥ ४१ ॥
मुनिक विनय शुनि कहलनि राम । वचन कहैछी हम अभिराम ॥ ४२ ॥
हमरा मन्त्रोपासक भक्त । हमरहि विषय सतत अनुरक्त ॥ ४३ ॥
हमरा दर्शन सौँ हो मुक्त । भक्ति-भावना सौँ संयुक्त ॥ ४४ ॥
दर्शन हमर न दुर्लभ ताहि । विश्व तनिका हम सत्य निबाहि ॥ ४५ ॥
कहलनि राम नयन-जलजाभ । होयत हमर सायुज्यक लाभ ॥ ४६ ॥
गुरु अगस्ति मुनि नाथ अहाँक । शिष्य तपस्वी वृद्ध जहाँक ॥ ४७ ॥

के जप में नहीं लगता है वही माया में फँसा रहता है। ३३ जैसे जल के भीतर सूरज की परछाईं अवास्तविक है वैसे ही ये स्वजन, सम्पत्ति और घर-बार माया के कारण दिखाई देते हैं। ३४ लीलावश सुन्दर मानव-देह धारण कर राजा के रूप में अवतीर्ण व्यापक प्रभु का अद्भुत स्वरूप मैंने देखा। ३५ करोड़ों कामदेवों की शोभावाले, धनुष-बाण धारण किए, परम रमणीय और कमनीय, दयालु-हृदय, मुँह में मधुर मुसकान वाले रघुवर मेरे जन्म-मरण के भय को नष्ट करें। ३६-३७ जो निर्मल मृगचर्म पहने हुए हैं, साथ में सीता हैं, लक्ष्मण सेवा करते हैं, उन पर अटूट प्रीति है; ३८ जिनके गुणों का अन्त नहीं है, जिनके शरीर का रंग नीलकमल-सा है, जो वीरों के अग्रणी हैं और जिनके मन में परम शान्ति है, ३९ वेदों का कहना है कि वे ही राम हैं, चिद्घन हैं और वे ही मुनियों के मन में निर्वेद (वैराग्य) के रूप में निवास करते हैं। ४० यह रूप मैंने जो अभी प्रत्यक्ष देखा है उसी रूप में प्रभु मेरे हृदय में बसें।" ४१ मुनि सुतीक्ष्ण की स्तुति सुनकर राम ने कहा— "मैं रोचक बात कहता हूँ। ४२ जो मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाला भक्त है और हमेशा मुझमें रमा रहता है, मेरे प्रति भक्तिभाव रखता है, वह मेरे दर्शन से मुक्ति पाता है। ४३-४४ उसे मेरा दर्शन आसानी से मिल जाता है, उसे मैं अवश्य ही तार देता हूँ।" ४५ कमलनयन राम ने फिर कहा— "आपको मेरा सायुज्य प्राप्त होगा। ४६ आपके गुरु मुनिवर अगस्ति तपस्वी शिष्यों के साथ जहाँ रहते हैं, मैं कुछ दिन वहाँ जाकर रहूँगा। वहाँ का रास्ता आप मुझको दिखा

किछु दिन ततय रहब हम जाय। तकर बाट अहँ देब देखाय ॥ ४८ ॥
भेल बहुत दिन हमहूँ जयब। गुरुदर्शन कय पुनि एत अयब ॥ ४९ ॥
प्रात भेल प्रभु कहि चललाह। सीता लक्ष्मण सङ्ग छलाह ॥ ५० ॥
मुनि अगस्ति कें छोटका भाय। मुनि सुतीक्ष्ण सभ देल देखाय ॥ ५१ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनि सभकाँ जानल व्यवहार। सत-स्वागत फलमूलाहार ॥ १ ॥
प्रभु एक दिन तहि थल रहलाह। प्रात भेल कहि कहि चललाह ॥ २ ॥
मुनि अगस्ति-मण्डली प्रवेश। सभ ऋतु फल फुल लागल बेश ॥ ३ ॥
मृग नानाविध कत तेहि थान। पक्षी करय विलक्षण गान ॥ ४ ॥
तहाँ देव ब्रह्मर्षि बहुत। आबि न शकथि जतय यमदूत ॥ ५ ॥
नन्दन-वन सन शोभा लाग। ब्रह्मलोक जनु दोसर भाग ॥ ६ ॥
शुनु सुतीक्ष्ण कहलनि रघुवीर। मुनिकें कहब देखि पड़ भीर ॥ ७ ॥
हम आयल छिअ दर्शन काज। कहू जाय अहाँ मुनिक समाज ॥ ८ ॥

दीजिए। ४७-४८ यहाँ रहते बहुत दिन हो गए। अब मैं जाऊँगा। गुरु अगस्ति का दर्शन करके फिर यहाँ आऊँगा।" ४९ सुबह होते ही प्रभु रामचन्द्र विदा लेकर चले। साथ में सीता और लक्ष्मण थे। ५० अगस्ति मुनि के छोटे भाई सुतीक्ष्ण मुनि ने साथ चलकर उन्हें रास्ता दिखाया। ५१

॥ श्री चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में आरण्यकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

राम का अगस्ति के आश्रम में जाना

अगस्ति के आश्रम के पास के मुनि लोग बड़े व्यवहारज्ञ थे। उन्होंने फल, मूल आदि आहार से अच्छा सत्कार किया। १ राम एक दिन वहाँ रहे। सुबह होने पर विदा ले-लेकर चल पड़े। २ तब वे मुनि अगस्ति के आश्रम के घेरे में पहुँचे। वहाँ सभी मौसमों के अच्छे-अच्छे फल और फूल लगे थे। ३ तरह-तरह के हरिण थे और चिड़ियाँ सुहावने स्वर में चहक रही थीं। ४ बहुत से देवगण और ऋषिगण घूम रहे थे, पर यमदूत का प्रवेश नहीं था। ५ उसकी शोभा नन्दनवन की-सी लगती थी, मानो ब्रह्मलोक का ही एक दूसरा भाग हो। ६ राम ने कहा— "हे सुतीक्ष्ण, अगस्ति के यहाँ बड़ी भीड़ दिखायी देती है। ७ अतः आप आगे जाकर

॥ सोरठा ॥

विधिवत कयल प्रणाम, जाय सुतीक्ष्ण अगस्ति-पद ॥ ९ ॥
सीता लक्ष्मण राम, आश्रम बाहर ठाढ़ छथि ॥ १० ॥
कहयित शिष्यक कान, तन्मन्त्रार्थ विचार हम ॥ ११ ॥
कयलहि छलछो ध्यान, शीघ्र लाउ कहलनि गुरू ॥ १२ ॥

॥ चौपाइ ॥

अपनहु चलला मुनि-गण सङ्ग। मुनिकें हर्ष समाय न अङ्ग ॥ १३ ॥
रामचन्द्र प्रभु आयल जाय। बड़ गोट अतिथिक नाम कहाय ॥ १४ ॥
कयल दण्डवत तिनु जन आबि। कहल सकल उत्तम फल भावि ॥ १५ ॥
मुनि लेल प्रभुकाँ हृदय लगाय। हर्षक नोर हृदय बढ़ि आय ॥ १६ ॥
रामचन्द्र-कर करसौं धयल। आश्रम आनि प्रियातिथि कयल ॥ १७ ॥
बड़ सेवा पूजा विस्तार। जेहन अकार तेहन व्यवहार ॥ १८ ॥
वन फल भोजन अपनहुँ ठाढ़। उचिती मध्य हर्ष मन बाढ़ ॥ १९ ॥
सुख एकान्त जखन बैसलाह। मुनि अगस्ति पुन ततय गेलाह ॥ २० ॥
कहल कृताञ्जलि शुनु मायेश। एतबहि लय बसलहुँ ई देश ॥ २१ ॥

कहें कि मैं उनके दर्शन के लिए आया हूँ।" ८ सुतीक्ष्ण मुनि अगस्ति मुनि के पास गए और उनके चरण में यथाविधि प्रणाम करके बोले। ९ "गुरु महाराज, सीता और लक्ष्मण-सहित राम आश्रम के बाहर खड़े हैं।" १० कान में शिष्य सुतीक्ष्ण के इतना कहते ही गुरु अगस्ति ने कहा— "अरे! उनके मन्त्र के अर्थ का विवेचन करते हुए मैंने अभी तो उनका स्मरण किया था। उन्हें जल्द लेते आइए।" ११-१२ अगस्ति मुनियों के साथ स्वयं भी अगवानी के लिए चल पड़े। उन्हें इतना हर्ष हुआ कि हृदय में समा न रहा था। १३ अगस्ति ने कहा— "हे प्रभु राम! पधारिए। अतिथि का नाम बहुत बड़ा कहा जाता है।" १४ तीनों ने आ करके दण्डवत् प्रणाम किया और ऋषि ने आशीर्वाद दिया, "आप लोगों को सारा शुभ फल मिलेगा।" १५ अगस्ति ने राम को गले से लगाया और हर्ष के आँसू हृदय तक बढ़ चले। १६ राम के हाथ को अपने हाथ से पकड़कर उन्हें अपने आश्रम का प्रिय अतिथि बनाया। १७ बड़े विस्तार के साथ सेवा और पूजा की। कहावत है कि जैसा आकार रहता है वैसा व्यवहार मिलता है। १८ वन के फल भोजन कराया और सतत स्वयं भी खड़े रहे। उचिती (विनय वचन) कहने में मन में अपार हर्ष होता था। १९ जब भोजनादि के बाद राम एकान्त में विश्राम के लिए सुख से बैठे, तब अगस्ति मुनि फिर वहाँ पहुँचे; २० और हाथ जोड़कर बोले— "हे मायापति राम! सुनिए।

क्षीर-समुद्र विधाता जाय। स्तुति कय कहलनि होउ सहाय॥ २२॥
सहइत छथि नहि धरणी भार। लेल जाय अपने अवतार॥ २३॥
सभ जीवक धरणी आधार। रावण-मरणक मुख्य विचार॥ २४॥
कहल से कयल मनोरथ पूर। दर्शन देल कष्ट गेल दूर॥ २५॥
प्रथम एकसौँ बाढ़लि सृष्टि। रविसौँ जेहन होइ अछि वृष्टि॥ २६॥
अपनैँक माया-कृत संसार। शास्त्र बहुत कह बहुत विचार॥ २७॥
स्तुति करइत-करइत भेल बेर। धनुष ग्रहण करु कहलनि फेर॥ २८॥
सुरपति एहि थल गेला राखि। देव रामकाँ ई सम्भाषि॥ २९॥
अक्षय बाण तेहन तूणीर। अपनैँक योग्य वस्तु रघुवीर॥ ३०॥
रत्न-विभूषित वर तरुआरि। एहिसौँ करब भयङ्कर मारि॥ ३१॥
निज-माया-कृत नर-आकार। लेल यदर्थ देव अवतार॥ ३२॥
दुइ योजन एतसौँ से ठाम। पञ्चवटी कहइछ जन राम॥ ३३॥
गोदावरी विमल तट जाउ। कार्य्य हेतु किछु काल गमाउ॥ ३४॥

मैं इस स्थान में इसी के लिए बसा हूँ कि आपका दर्शन हो। २१ ब्रह्मा ने क्षीर-समुद्र में जाकर स्तुति करके कहा कि आप हम देवताओं की सहायता कीजिए। २२ अब धरती भार सँभाल नहीं सकती; आप अवतार लें। २३ धरती सभी प्राणियों का आधार है अतः उसे बचाना जरूरी है। इसके लिए रावण का वध मुख्य कर्तव्य है। २४ ब्रह्मा ने आपसे जो कहा आपने उनके मनोरथ को पूरा किया। आपने दर्शन दिया। मेरे सभी दुख दूर हो गए। २५ आरम्भ में केवल एक आप थे, उन आप ही से सारी सृष्टि फैली है, जिस प्रकार सूरज से वृष्टि होती है। २६ यह संसार आप ही ने माया द्वारा रचा है। बहुत से शास्त्रों में आपके बारे में बहुत सारी बातें कही गयी हैं।" २७ इस प्रकार स्तुति करते-करते बहुत समय बीत गया। तब अगस्ति ने कहा— "हे प्रभु! यह धनुष ग्रहण करें। २८ इसे इन्द्र 'राम को दीजिएगा' यह कहकर यहाँ रख गए थे। २९ इसके साथ जो तरकस है उसके तीर कभी खत्म नहीं होते। हे राम! यह आप ही के लायक है। ३० और यह रत्नों से जड़ा खड्ग है। इससे आप भयंकर युद्ध करेंगे। ३१ इसी युद्ध के लिए तो आपने अपनी ही माया के प्रभाव से मनुष्य के रूप में अवतार लिया है। ३२ जिसे लोग पंचवटी कहते हैं वह स्थान यहाँ से दो योजन पर है। ३३ वहाँ आप गोदावरी नदी के तट पर जाइए और अपने इष्ट कार्य के लिए

॥ सोरठा ॥

जखना ई बजलाह, मुनि अगस्ति भगवान शुनि ॥ ३५ ॥
तिनु जन प्रभु चललाह, पञ्चवटी उद्देश्य कय ॥ ३६ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

शैलशृङ्ग सन एकटा गृद्ध। देखलनि राम बाट पर वृद्ध ॥ १ ॥
मुनि-भक्षक राक्षस सन लाग। असुआयल अछि तेँ नहि जाग ॥ २ ॥
लक्ष्मण धनुष हाथ कय देब। चटपट प्राण हिनक हम लेब ॥ ३ ॥
शुनि भय-विकल कहल खगराज। कयल जाय प्रभु एहन न काज ॥ ४ ॥
हम दशरथ भूपालक मित्र। मुनिजन मे अछि हृदय पवित्र ॥ ५ ॥
नाम जटायु सकल जन जान। हम खग दुष्ट न शुनु भगवान ॥ ६ ॥
पञ्चवटी हम अपनैँक काज। रहब निरन्तर हे रघुराज ॥ ७ ॥
सभ दिश टकटक तकितहि रहब। अरि-आगमन प्रथम हम कहब ॥ ८ ॥

कुछ समय वहाँ ठहरिए।" ३४ जब अगस्ति मुनि ऐसा बोले, तब भगवान् राम वह सुनकर लक्ष्मण और सीता-सहित पंचवटी की ओर चल पड़े। ३५-३६

॥ श्री चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में आरण्यकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय

राम की जटायु से भेंट : लक्ष्मण को ज्ञानोपदेश

राम ने देखा, सड़क पर पहाड़ की चोटी-जैसा एक गीध था। १ वह मुनियों को खानेवाला राक्षस-जैसा लगता था। अलसाया हुआ था, इसलिए जग नहीं रहा था। २ राम ने कहा— "लक्ष्मण, जरा धनुष देना; मैं इसका प्राण तुरत हर लेता हूँ।" ३ यह सुनकर भय से व्याकुल हो खगराज ने कहा— "हे प्रभु! ऐसा काम मत कीजिए। ४ मैं राजा दशरथ का मित्र हूँ तथा मुनियों के प्रति मेरी पवित्र भावना है। ५ मेरा नाम जटायु है जो सभी लोग जानते हैं। हे भगवान्! मैं दुष्ट पक्षी नहीं हूँ। ६ हे राम! मैं आपके काम से बराबर पंचवटी में रहूँगा। ७ चारों ओर चौकसी के साथ देखता रहूँगा। दुश्मन के आने की सूचना मैं पहले ही दे दूँगा। ८

मृगयार्थी लक्ष्मण वन जयत। आश्रम शून्य तखन जौँ हयत॥ ९॥
हम सीताकाँ रहब अगोरि। दुष्ट हृदयकाँ मारब झोरि॥ १०॥
शुनल जटायु-वचन रघुवीर। साधु कहल जानल अहाँ धीर॥ ११॥
वृद्ध एक जन राखक सङ्ग। तेँ नहि होअ मनोरथ भङ्ग॥ १२॥
अङ्क लगाय निमन्त्रित कयल। पञ्चवटी मे डेरा धयल॥ १३॥
ततय कयल मन्दिर विस्तार। लक्ष्मण बीर महा बुधियार॥ १४॥
गङ्गा उत्तर थल भल जानि। निर्जन निरुपद्रव मन मानि॥ १५॥
केरा कटहर बड़हर आम। फल अनेक वन कत कहु नाम॥ १६॥
कन्द मूल फल लक्ष्मण आन। भोज्य वस्तु हो अमृत समान॥ १७॥
सगर राति जागल बिति जाय। कोटबार धन्वी छोट भाय॥ १८॥
तिनु जन सङ्गहि सङ्गहि जाथि। नदी गौतमी नीर नहाथि॥ १९॥
लक्ष्मण आनथि भरि भरि वारि। रघुनन्दन आज्ञा नहि टारि॥ २०॥
तिनु जन सुखसौँ कयलनि वास। गृहसौँ शतगुण विपिन-विलास॥ २१॥

॥ सोरठा ॥

श्रीप्रभुसौँ लक्ष्मण कहल, एकान्तहि कर जोड़ि॥ २२॥
ज्ञान सहित विज्ञान कहि, हिअ मन संशय तोड़ि॥ २३॥

जब हरिण के शिकार में लक्ष्मण वन जाएँगे और आश्रम सूना हो जाएगा, तब मैं सीता की रखवाली करता रहूँगा और बुरी नीयत से आनेवाले को पकड़कर मारूँगा।" ९-१० राम जटायु की बात सुनकर बोले— "मैं जान गया। आप साधु हैं तथा गम्भीर विचारवाले हैं। ११ साथ में एक बूढ़े व्यक्ति को रखना चाहिए। इससे काम बिगड़ता नहीं।" १२ इतना कहकर राम ने जटायु को साथ रहने के लिए आमन्त्रित किया और पंचवटी में निवास किया। १३ वहाँ वीर और होशियार लक्ष्मण ने आश्रम बनाया। १४ वहाँ से उत्तर में गंगा बहती है, यह जानकर राम ने मन में सोचा कि इस निर्जन जगह में कोई उपद्रव नहीं होगा। १५ वन में केला, कटहल, बड़हर, आम आदि अनेक फल थे, कितने का नाम गिनाऊँ। १६ लक्ष्मण कन्द-मूल-फल ले आते, जो खाने में अमृत-जैसे स्वादिष्ट लगते थे। १७ धनुर्धर लक्ष्मण सारी रात जागते हुए रखवाली करते। १८ तीनों साथ जाकर गौतमी नदी में स्नान करते। १९ लक्ष्मण पानी भर-भरकर लाते और राम की आज्ञा को कभी नहीं टालते। २० तीनों सुख से रहने लगे। उन्हें जंगल में रहना, घर में रहने की अपेक्षा सौ गुना अच्छा लगने लगा। २१ एक दिन एकान्त में हाथ जोड़कर लक्ष्मण ने प्रभु राम से कहा— "प्रभो, कुछ ज्ञान और विज्ञान कहिये, जिससे मन का संशय दूर हो।" २२-२३ श्रीराम

गोपनीय उपदेश शुनु, तखन कहल श्रीराम ॥ २४ ॥
जे सुनला सौँ लोकका, भ्रमतम नहि तहि ठाम ॥ २५ ॥

॥ रूपमाला ॥

प्रथम माया-रूप कहि हम ज्ञान-साधन कहब ॥ २६ ॥
जानि ज्ञेय परात्मकाँ मन भयरहित नित रहब ॥ २७ ॥
आत्मबुद्धि शरीर आदिमे करथि जे व्यवहार ॥ २८ ॥
सैह बुद्धिक नाम माया ताहि सौँ संसार ॥ २९ ॥

॥ चौपाइ ॥

देखल शुनल स्मरण हो भाव। से अनित्य मानक थिक आब ॥ ३० ॥
स्वप्न मनोरथ वितथ समान। ई शरीर मे आत्म-ज्ञान ॥ ३१ ॥
तरु संसार मूल थिक गेह। मानि लेब मन निस्सन्देह ॥ ३२ ॥
तकर मूल सुत-वनिता-बन्ध। सनयन जन मानिय मन अंध ॥ ३३ ॥
नाम जनिक जानल ई गात्र। स्थूलभूत से पँचतन्मात्र ॥ ३४ ॥
अहङ्कार मति इन्द्रिय सर्व्व। चिदाभास मन प्रकृतिक पर्व्व ॥ ३५ ॥
हिनकर नाम क्षेत्र करु ज्ञान। जीव विलक्षण एहिसौँ आन ॥ ३६ ॥
ओ परमात्मा आमय-रहित। ज्ञान तनिक शुनु साधन सहित ॥ ३७ ॥

ने कहा— "सुनो, मैं तुम्हें गुप्त उपदेश सुनाता हूँ। २४ इसे सुनकर लोगों के मन से भ्रम रूपी अँधेरा खत्म हो जाता है। २५ सर्वप्रथम मैं माया का स्वरूप बताऊँगा। उसके बाद ज्ञान-साधना कहूँगा। २६ एक मात्र परमात्मा (ईश्वर) ज्ञेय अर्थात् जानने की वस्तु है, यह समझ लेने से मन सदा निर्भय रहेगा। २७ जो कोई शरीर आदि को ही आत्मा समझकर चलते हैं, ऐसी ही गलत समझ का नाम माया है और माया से ही यह संसार(भव)-बन्धन है। २८-२९ जो कुछ देखते, सुनते या स्मरण करते हो वे सभी भाव क्षणभंगुर हैं। ३० शरीर को आत्मा समझना स्वप्न के मनोरथ के समान अवास्तविक है। ३१ मन में यह निश्चय कर लो कि यह संसार एक पेड़ के समान है। घर इसकी जड़ है। ३२ तथा इसकी जड़ में सन्तान, पत्नी और समाज हैं। आँख के रहते भी लोग अन्धे होते हैं। ३३ हम लोग जिसे शरीर कहते हैं वह और कुछ नहीं, सांख्यदर्शन की पाँच तन्मात्राओं का मूर्त विपरिणाम है। ३४ अहंकार, बुद्धि और ग्यारह इन्द्रियाँ— ये सभी प्रकृति के परिणाम हैं और मन चैतन्यवान्-सा प्रतीत होता है। ३५ इन सबों को क्षेत्र समझो। जीव इन सबों से भिन्न कुछ और ही है। ३६ वह परमात्मा-स्वरूप है और निर्विकार है। अब सुनो कि इस परमात्मा का ज्ञान किन साधनों से हो सकता है। ३७ जीव और परमात्मा में कोई भेद नहीं है,

जीव परात्मा काँ नहि भेद। निश्चय ज्ञात रहय नहि खेद ॥ ३८ ॥
हिंसा-शून्य दया-संलीन। अहङ्कार - दम्भादि - विहीन ॥ ३९ ॥
अकुटिल सकल अपन व्यवहार। सहथि परक आक्षेप प्रहार ॥ ४० ॥
गुरु-सेवन मन वचनें काय। भीतर बाहर शुद्ध बनाय ॥ ४१ ॥
उत्तम कर्म्म मे थिरता वेश। मनमे हो न अधर्म्मक लेश ॥ ४२ ॥
हम हम ई मति सत्वर छोड़ि। भ्रमसौं सर्प होइ अछि जौड़ि ॥ ४३ ॥
करयित करयित-सज्जन संग। तखना हो ज्ञानोदय रंग ॥ ४४ ॥
ज्ञानोदय सौं संशय दूर। तिमिर रहय की उगलें सूर ॥ ४५ ॥
स्वर्ग-वास ज्ञानामृत शर्म्म। सकल मूल थिक केवल धर्म्म ॥ ४६ ॥
सदाचार जे जे सद्ग्रन्थ। मुक्ति युक्ति गुरु-सेवा पन्थ ॥ ४७ ॥
श्रद्धा-हीन भक्ति नहि पाब। भक्ति-विमुख मे ज्ञान न आब ॥ ४८ ॥
ज्ञान-रहित कें दुर्ल्लभ मुक्ति। हमरे सेवा साधन युक्ति ॥ ४९ ॥
विधिसन जौं उपदेशक आब। सकल त्याग विनु मोक्ष न पाब ॥ ५० ॥

यह समझ लेने पर कोई दुख नहीं रह जाता है। ३८ जिनके मन में हिंसा लेशमात्र न हो, जो दया से भरे हों, तथा अहंकार, घमण्ड आदि से दूर हों; ३९ अपने सभी व्यवहारों में सदा सीधे हों; दूसरों के आक्षेप-प्रहार (निन्दा) बरदाश्त करने में समर्थ हों; ४० तन, मन और वचन से गुरु की सेवा करते हों; भीतर और बाहर से साफ़ रहते हों; ४१ अच्छे कर्मों में लगन रखते हों; मन में नाममात्र भी अधर्म न रखते हों; वही आत्मज्ञान पाते हैं। ४२ शरीर ही आत्मा है, इस भ्रम को शीघ्र दूर करो। जिस तरह लोग भ्रमवश रस्सी को साँप समझ लेते हैं, उसी तरह शरीर को आत्मा मान बैठते हैं। ४३ जब बहुत दिनों तक सत्संग करते रहोगे तब ज्ञान का उदय होगा। ४४ ज्ञान का उदय होने पर संशय दूर हो जाएगा। सूरज के उगने पर क्या अँधेरा टिक सकता है? ४५ स्वर्ग मिलना, ज्ञान रूपी अमृत मिलना और आनन्द मिलना, सबों का मूल है धर्मानुष्ठान। ४६ अच्छे ग्रन्थों में जो सदाचार वर्णित हैं उन्हें अपनाओ तथा गुरु की सेवा करो, यही मुक्ति का मार्ग है। ४७ जिसके मन में श्रद्धाभाव नहीं होगा उसे भक्ति नहीं मिलेगी। भक्ति के बिना कोई ज्ञान नहीं पा सकता है। ४८ जिसे ज्ञान नहीं होगा, उसके लिए मुक्ति दुर्लभ है। ऐसे लोगों के लिए यही रास्ता है कि वह अपने साधन के अनुसार मेरी पूजा करे। ४९ यदि ब्रह्मा के समान गुरु मिल जाएँ तो भी सभी कुछ त्यागे बिना मोक्ष नहीं मिल सकता है।" ५० इस प्रकार रामचन्द्र-जैसे वक्ता ने ज्ञान का उपदेश दिया और

सुनल अनन्त शेष भगवान। रामचन्द्र सन वक्ता ज्ञान ॥ ५१ ॥
प्राकृत जन की बर्णन करत। स्मृति पुराण अनुमति सञ्चरत ॥ ५२ ॥

॥ दोहा ॥

कयल बहुत उपदेश प्रभु, लक्ष्मण मन आनन्द ॥ ५३ ॥
किछु विषाद नहि चित्तमे, तुष्ट पुष्ट निर्द्वन्द ॥ ५४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

पञ्चवटी गोदावरि कात। आइल सूर्पनखा उत्पात ॥ १ ॥
कमल कुलिश अंकुश यव-रेख। अङ्कित अवनि रमनि से देख ॥ २ ॥
जनु जगतीपति कयल निवास। सूर्पनखा मन काम विलास ॥ ३ ॥
गेलि कुटीतट गमयित भाज। बन्द कि रहय भावि विधि-काज ॥ ४ ॥
काम-सदृश सुन्दर-छवि राम। सीता-लक्ष्मण-युत घन-श्याम ॥ ५ ॥
ओ पूछल राघवकाँ जाय। की दण्डक वन अयलहुँ हाय ॥ ६ ॥

भगवान् शेषनाग के अवतार लक्ष्मण ने वह उपदेश सुना। ५१ साधारण मनुष्य उनका वर्णन क्या करेगा ? जिनके अनुसार स्मृति, पुराण आदि धर्मग्रन्थ भी चलते हैं। ५२ प्रभु राम ने लक्ष्मण को प्रचुर ज्ञानोपदेश दिया। सुनकर लक्ष्मण का मन प्रसन्न हो गया। ५३ उनके मन में कुछ शंका न रह गयी, वे पूरी तरह सन्तुष्ट हो गये। ५४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

शूर्पणखा का नाक-कान काटा जाना और खर-दूषण-वध

शूर्पणखा, एक उत्पात के रूप में, पंचवटी में गोदावरी नदी के तट पर आयी। १ उसने धरती पर कमल, वज्र और अंकुश के चिह्नवाले पाँवों के छाप देखे। २ शायद किसी राजा ने यहाँ निवास किया है, यह सोचकर शूर्पणखा के मन में काम-भावना जगी। ३ वह सुराख पाती हुई कुटी के पास गयी। ब्रह्मा द्वारा बदा हुआ काम क्या रुक सकता है। ४ उसने वहाँ कामदेव के समान सुन्दर राम को और उनके साथ सीता और लक्ष्मण को देखा। ५ उसनें राम के पास जाकर पूछा— "किस कारण से आप दण्डकवन में पधारे

के नृप थिकहुँ कहू की काज। मुनि सन वेष लेष नहि लाज ॥ ७ ॥
परिचय-निश्चय हमर शुनु कान। कवि-मुह काव्य कहत की आन ॥ ८ ॥
दशमुख-बहिनि थिकहुँ की लाथ। पतिक मरण रण रावण हाथ ॥ ९ ॥
खर दूषण छथि सतत सहाय। दल बल सहित समन्धिक भाय ॥ १० ॥
भाय देल दण्डक-वन राज। रानी अयलहुँ अहँक समाज ॥ ११ ॥
सूर्पनखा भ्राताक दुलारि। आज्ञा हमर शकथि नहि टारि ॥ १२ ॥
कहलनि रावण वन निर्व्वाहि। अभ्यागत मुनि मृगकेँ खाहु ॥ १३ ॥
परिचय अपन कहल हम बेश। के तिनु जन पाहुन एहि देश ॥ १४ ॥
दशरथ-नृपति-तनय हम राम। हे वर-सुन्दरि जानिय नाम ॥ १५ ॥
वैदेही थिकि वनिता मोर। अनुज हमर अनुरक्त किशोर ॥ १६ ॥
हमरा लोकसौँ अछि की काज। दण्डक-स्वामिनि कहु निर्व्याज ॥ १७ ॥
कामक किङ्कर केँ कत लाज। लाजेँ अपन सिद्धि नहि काज ॥ १८ ॥
कामरूपिणी जानिय देव। स्वामिक सुख सम्बन्धेँ लेब ॥ १९ ॥
भाग्य परस्पर पुण्यहि पाब। समुचित भोग विरञ्चि मिलाब ॥ २० ॥
काम-विवश मन किछु न सोहाय। करु विहार गिरि-गहवर जाय ॥ २१ ॥

हैं ? ६ आप कहाँ के राजा हैं ? किस काम से आये हैं ? अपका वेष मुनि-सा है, इसलिए मैं शरमाती नहीं हूँ। ७ मेरा परिचय मुझसे ही सुनिए। काव्य तो कवि के मुँह से ही सुनने का है, दूसरा क्या सुनायेगा। ८ सच बताती हूँ। मैं रावण की बहिन हूँ। मेरे पति रावण के हाथ लड़ाई में मारे गये। ९ खर और दूषण मेरे भाई लगते हैं, जो अपने पूरे दल-बल के साथ मेरी रक्षा करते हैं। १० भाई ने इस दण्डक वन का राज मुझे दे दिया है। रानी होकर मैं आपके पास आयी हूँ। ११ मैं अपने भाई की दुलारी हूँ। वह मेरी कोई भी आज्ञा टाल नहीं सकता। १२ रावण ने कहा है, वन में रहो और आनेवाले मुनियों व जानवरों को खाओ। १३ मैंने अपना परिचय सुना दिया। अब आप बताइए कि यहाँ पधारनेवाले आप तीनों कौन हैं ?" १४ राम ने उत्तर दिया— "हे सुन्दरी ! मैं राजा दशरथ का बेटा हूँ। मेरा नाम राम है। १५ यह वैदेही मेरी पत्नी है। यह किशोर मेरा छोटा भाई है। १६ हे दण्डकवन की रानी ! आप साफ़-साफ़ बताइए, हम लोग आपकी क्या सेवा करें ?" १७ सूर्पनखा ने कहा— "वासना की आग में जलते को लज्जा क्या ? लज्जा करने से काम नहीं चलता। १८ मैं कामवासना की आग में जल रही हूँ। आपसे पति का सुख चाहती हूँ। १९ ऐसे प्रेममिलन का सौभाग्य दोनों के परस्पर पुण्य से ही मिलता है। विधाता ने यथोचित भोग-विलास के लिए ही हम दोनों को मिलाया है। २० मेरा मन काम-भावना से व्याकुल हो गया है, कुछ भी भाता नहीं है। चलें, पर्वत

कुसुमित वन वनप्रिय कल गान। सुख इन्द्राणी इन्द्र समान ॥ २२ ॥
उदित भाव तन मन नहि हाथ। धक धक छाती कर रघुनाथ ॥ २३ ॥
निज वन निज मन विहरब घूमि। सुधा सरस अधरासव चूमि ॥ २४ ॥
हृदयवेध कर कामक बाण। आलिङ्गन दय राखिय प्राण ॥ २५ ॥
भेल मात्र छल हमर विवाह। दशकन्धर-कर मृत मोर नाह ॥ २६ ॥
कि करब सुख हम दैवक धाड़। अलप वयस मे भेलहुँ राँड़ ॥ २७ ॥
गेओले गीत कहाँ धरि गाउ। राम काम-दुख हमर मेटाउ ॥ २८ ॥

॥ सोरठा ॥

कहलनि हँसि रघुनाथ, सुनु भुवनाधिक-सुन्दरी ॥ २९ ॥
करब हेतु की लाथ, सङ्गहि नारि पतिव्रता ॥ ३० ॥
बाहर छथि छोट भाय, अभिप्राय तनिकहि कहब ॥ ३१ ॥
ओ उठता खिसिआय, मानब नहि हठ करब तत ॥ ३२ ॥

॥ चौपाइ ॥

सूर्पनखा लक्ष्मण सौँ कहल। कत अपमान कामिनी सहल ॥ ३३ ॥
कुल विशुद्ध दशमुख मोर भाय। वनिता एहन भाग्य-फल पाय ॥ ३४ ॥
ऋतुपति घटक काम पँजिआर। जेठ भाय पुन देल विचार ॥ ३५ ॥

की गुफा में जाकर विलास करें। २१ वन में फूल खिले हुए हैं और कोयल कूक रही है। हम दोनों का मिलन इन्द्र और शची के मिलन के समान सुखकर होगा। २२ कामवेग से मेरे तन-मन मेरे वश में नहीं रहे। हे रघुनाथ, मेरी छाती धड़क रही है। २३ अपने वन में अपने मन से घूम-घूमकर विहार करूँगी और अमृत के समान अधर-रस पियूँगी। २४ कामदेव के बाण ने मेरे हृदय को घायल कर दिया है। आप छाती से लगाकर मेरे प्राण बचाइए। २५ मेरी शादी हुई ही थी कि रावण ने मेरे पति को मार दिया। २६ मैं कोई सुख न भोग सकी; कच्ची उम्र में ही विधवा हो गयी। २७ गाये हुए गीत मैं कब तक गाती रहूँ। हे राम! अब आप मेरी कामवेदना को दूर कीजिए।" २८ राम ने हँसकर कहा— "हे विश्वसुन्दरी, यह मेरी पतिव्रता पत्नी साथ में है; मैं उससे क्या बहाना करूँ? २९-३० बाहर मेरा छोटा भाई है। उसी से अपना निवेदन कीजिए। वह क्रोधित हो उठेगा, पर आप तब भी मत मानिएगा, अपना हठ जारी रखिएगा।" ३१-३२ तब शूर्पणखा ने लक्ष्मण से कहा— "मैं कामवश बहुत अपमान सह चुकी हूँ। ३३ मैं अच्छे घराने की हूँ। रावण मेरे भाई हैं। मेरी-जैसी स्त्री भाग्य से ही मिलती है। ३४ वसन्तऋतु घटक (अगुआ) बने हुए हैं। कामदेव पंजीकार हैं। आपके बड़े भाई राम ने अनुमति दे दी है। ३५ मैं दण्डकवन की रानी

दण्डक-वनक विदित मलिकानि । हो सिद्धान्त भाग्य मन मानि ।। ३६ ।।
ई सुख समय रमय चलु नाथ । तन मन धन अर्पित अहँ हाथ ।। ३७ ।।
हम अबला शुनु सुन्दर शूर । करु करु हमर मनोरथ पूर ।। ३८ ।।
कहलनि लखन सुमित्रा-तनय । सुन्दरि सुमुखि विदुषि शुनु विनय ।। ३९ ।।
हम रघुनन्दन-चरणक दास । अहँकाँ यहि सम्बन्धसौँ हास ।। ४० ।।
रानीसौँ बानी बनि जयब । पाछाँ अहाँ बहुत पछतयब ।। ४१ ।।

।। सोरठा ।।

कहल राम सौँ फेरि, सूर्पनखा कामातुरा ।। ४२ ।।
वञ्चक करहु अंधेरि, हम कि अवज्ञा-योग्य जन ।। ४३ ।।

।। चौपाइ ।।

जनि बलसौँ जितइत छहु काम । प्रथमहि तनिकहिं खायब राम ।। ४४ ।।
एतगोट दर्प हमर वन वास । हमर न मन मध्र मानथि त्रास ।। ४५ ।।
सीतापर दौड़लि मुह बाय । धारण कयल भयङ्कर काय ।। ४६ ।।
चेष्टहि सूचित कर रघुनाथ । लक्ष्मण तीक्ष्ण खड्ग लेल हाथ ।। ४७ ।।
रह रह ठाढ़ि कोपसौँ डाँटि । नाक कान तनिकर लेल काटि ।। ४८ ।।
लखन पड़ाइलि मन बड़ त्रास । धर धोकड़ी नहि भीखिक आस ।। ४९ ।।
खसइत पड़इत दौड़लि जाय । कनइत कनइत कहु गेल भाय ।। ५० ।।

हूँ । अतः अपना अहोभाग्य समझकर मुझसे विवाह करने का निर्णय कीजिए । ३६ यह सुखद समय आ पहुँचा है । हे नाथ ! मुझसे रमण करने के लिए चलिए । ३७ हे वीर सुन्दर ! मैं अबला हूँ । मेरी लालसा पूरी कीजिए ।" ३८ लक्ष्मण ने कहा— "हे बुद्धिमान सुन्दरी ! मेरी विनती सुनिए । ३९ मैं राम के चरण का दास हूँ । मुझसे विवाह करने से आपका उपहास होगा । ४० आप रानी से दासी हो जाएँगी और बाद में पछतावा करेंगी ।" ४१ काम-वेदना से विकल शूर्पणखा ने फिर राम से कहा । ४२ "क्या मैं अवहेलना करने लायक हूँ जो तुम मुझसे छल-प्रपंच कर रहे हो ? ४३ हे राम ! जिसके बल पर तुम अपनी काम-वासना को बलपूर्वक दबाये हुए हो, उसी को मैं पहले खा जाऊँगी । ४४ तुम्हारा इतना घमंड ! मेरे ही वन में रहना और मुझसे ही डरना नहीं ।" ४५ इतना कहकर उसने भयंकर रूप धारण किया और मुँह बाकर सीता की ओर दौड़ी । ४६ राम ने इशारा किया । लक्ष्मण ने एक तेज तलवार उठायी और क्रोधपूर्वक बोले— "अरे ! ठहर तो जरा ।" और झटपट उसके नाक-कान काट लिये । ४७-४८ वह विकल हो भागी । कहावत है, जिसके तन पर कपड़ा नहीं उससे भीख की आशा नहीं करनी चाहिए । ४९ वह गिरती-पड़ती दौड़ी, भाई के पास गयी और, ५०

बौड़ दौड़ रे कटलक नाक। सूर्पनखा कानथि दय हाक ॥ ५१ ॥
आयल काल हमर वन तीनि। नाक कानसौँ कयलक हीनि ॥ ५२ ॥
खर दूषण त्रिशिरा नहि आनि। डुबि मर डुबि मर ठेहुनहि पानि ॥ ५३ ॥
खर आगांमे खसली जाय। छाती पिटि कह तोर बल छाय ॥ ५४ ॥
मुनि वन मे हम छलहुँ निशङ्क। कत गोट लागल वंश कलङ्क ॥ ५५ ॥
दशवदनक शमनहुँ के त्रास। भेल भुवन भरि बड़ उपहास ॥ ५६ ॥
शोणित लपटल सकल शरीर। गिरि गेरुक झरना गम्भीर ॥ ५७ ॥
खर-दल हलचल देखि शुनि कान। रावणसौँ अतिबल के आन ॥ ५८ ॥
क्षण वेदन सह कह की हाल। पुछथि कुपित खर लोचन लाल ॥ ५९ ॥
के कयलक दुर्गति तोर आज। बुझि पड़ अपढ़ बताहक काज ॥ ६० ॥
चुप रह चुप रह की हो कानि। तनिकाँ मारि शीघ्र देब आनि ॥ ६१ ॥
अछि कोन ठाम पता काँ पाय। हमरासौँ कत बचत पड़ाय ॥ ६२ ॥
पुछता दशमुख होयब अवाक। सूर्पनखाक भेल की नाक ॥ ६३ ॥
बड़ अपराध कयल मति हीन। मति-नहि रहय आयु जौँ क्षीन ॥ ६४ ॥

॥ षट्पद छन्दः ॥

राम नाम थिक तनिक नारि वैदेही सङ्गहि ॥ ६५ ॥

रा-रोकर चिल्लाई— "दौड़ो-दौड़ो ! मेरी नाक कट गयी ! ५१ मेरे वन में तीन उत्पाती आ गये हैं, उन्होंने मुझे नाक-कान से हीन कर दिया। ५२ हे खर ! हे दूषण ! हे त्रिशिरा ! तुम्हें कोई आन नहीं है ? तुम लोग घुटने भर पानी में डूब मरो !" ५३ इतना कहकर वह खर के आगे जा ,गिरी और छाती पीट-पीटकर बिलखने लगी— "लानत है तुम्हारे पौरुष को। ५४ मैं मुनि-वन में निश्चिन्त रहती थी। अब वंश पर बहुत बड़ा कलंक लग गया। ५५ रावण का डर यमराज को भी होता है; पर इस घटना से तो सारी दुनिया में भारी उपहास हो गया।" ५६ उसका पूरा शरीर लहू-लुहान हो गया था; लगता था जैसे पहाड़ से गेरुआ झरना गिर रहा हो। ५७ खर के दल में हलचल मच गया। रावण से बढ़कर कौन बलवान है ? ५८ क्षण भर दुख को दबाकर खर आँख लाल किये बोला— ५९ "किसने आज तुम्हारी यह दुर्गति की है ? लगता है यह किसी मूर्ख या पागल का काम है। ६० तुम चुप होओ। रोने से क्या लाभ होगा। जिसने यह हाल किया है उसे मैं मारकर ला दूंगा। ६१ वह किस जगह है ? उसका पता कहो, हमसे बचकर वह जाएगा कहाँ ? ६२ रावण जब पूछेगा कि शूर्पणखा की नाक क्या हुई तो मैं क्या जवाब दूँगा ? ६३ किसी बुद्धिहीन ने यह बहुत बड़ा अपराध किया है। आयु शेष हो जाने पर बुद्धि साथ नहीं देती।" ६४ शूर्पणखा ने कहा— "उसका नाम राम है। उसके साथ उसकी पत्नी वैदेही

लक्ष्मण भ्राता सहित अवनि-पति जानल रङ्गहि ॥ ६६ ॥
बसथि गौतमी-तीर पञ्चवटि आश्रम सुन्दर ॥ ६७ ॥
सची सहित जनि आबि गेल छथि अवनि-पुरन्दर ॥ ६८ ॥
लक्ष्मण रामक अनुज-कृत बड़ दुर्गति भेल को कहू ॥ ६९ ॥
विकट शपथ तोहरा थिकहु मारि आनि दय ओ दुहू ॥ ७० ॥

॥ रोला छन्दः ॥

तनिक करब हम रुधिर पान कट कट कय खायब ॥ ७१ ॥
नहि तौं छाड़ब प्राण हठहि यमपुर चलि जायब ॥ ७२ ॥
सीताकाँ लय आनि दशानन काँ हम देबनि ॥ ७३ ॥
होयता भाय प्रसन्न बहुत धन सम्पति लेबनि ॥ ७४ ॥
चौदह सहस सकोप चललि खर-दूषण-सेना ॥ ७५ ॥
प्रलय-काल जीमूत प्रबल मारुतयुत जेना ॥ ७६ ॥
एक कहय चल गमहि बाज नहि विजयक डङ्का ॥ ७७ ॥
जायत दूर पड़ाय मानि मन मे मृति-शङ्का ॥ ७८ ॥

॥ चौपाइ ॥

राम कहल लक्ष्मण शुनु शब्द । प्रलय-कालमे जेहन अब्द ॥ ७९ ॥
अबइत अछि राक्षस-बल घोर । मार मार धर धर कर सोर ॥ ८० ॥
युद्ध भयङ्कर सम्प्रति हयत । खर-दल सकल विकल भय जयत ॥८१॥

और भाई लक्ष्मण है। रंग-ढंग से लगा कि वह राजा है। ६५-६६ गौतमी नदी के किनारे पंचवटी एक सुन्दर आश्रम है। वह वहीं रहता है। ६७ लगता है जैसे शची के साथ इन्द्र धरती पर आ बसे हों। ६८ राम का जो छोटा भाई लक्ष्मण है उसी ने यह दुर्गति की है। ६९ तुम्हें कसम है, उन दोनों को मारकर ला दो।" ७० खर-दूषण ने कहा— "मैं उसका लहू पी जाऊँगा और कड़कड़ाकर उसे खा जाऊँगा। ७१ नहीं तो मैं अपने प्राण त्याग कर यमपुरी चला जाऊँगा। ७२ सीता को पकड़कर रावण को सौंप दूँगा। ७३ इससे भाई प्रसन्न होंगे और उनसे मैं इनाम में धन-सम्पत्ति लूँगा।" ७४ खर और दूषण की चौदह हजार सेना क्रोध के साथ चल पड़ी, जैसे प्रलय-काल का बादल तेज हवा के साथ उमड़ पड़ा हो। ७५-७६ कोई कहता था— "धीरे से चलो, विजय का डंका मत बजाओ। हो सकता है कि वह मौत के डर से दूर भाग जाय।" ७७-७८ राम ने लक्ष्मण से कहा— "यह आवाज़ सुनो। प्रलय-काल के बादल के समान 'मारो-मारो', 'पकड़ो-पकड़ो' का शोर करते हुए राक्षस-दल आ रहा है। ७९-८० अब घनघोर लड़ाई होगी और उसमें खर की सारी सेना बरबाद होगी। ८१ तुम साथ में

अहाँ सङ्ग मन मे न डराथु। सीता गिरिगह्वर मे जाथु ॥ ८२ ॥
झटपट सबहिक जयतनि प्राण। ई कहि राम धनुष लेल बाण ॥ ८३ ॥
अक्षय भरल तीर तूणीर। सुप्रसन्न-मुख श्रीरघुबीर ॥ ८४ ॥
गिरि-गह्वर पति-आज्ञा पाय। गेलि सीता सौमित्रि-सहाय ॥ ८५ ॥
पहुँचलि सेना बजरल मारि। अस्त्र शस्त्र चल शर तरुआरि ॥ ८६ ॥
केओ राक्षस कर धर पाषाण। गाछ उपारय केओ बलवान ॥ ८७ ॥
रामचन्द्र पर से सभ फेक। प्रभु-कर-शर उपरहि से टेक ॥ ८८ ॥
फेकलक अस्त्र सकल एक झोक। रामचन्द्र शरसौँ सभ रोक ॥ ८९ ॥
लीलासौँ सभ काटल राम। अस्त्र-विहीन कि कर सङ्ग्राम ॥ ९० ॥
राम चलाओल बाण हजार। विषधर सन के रोकय पार ॥ ९१ ॥
जनिकाँ लागय रामक बाण। पलमे सङ्कलित लय प्राण ॥ ९२ ॥
खर दूषण त्रिशिरा खिसिआय। आयल युद्ध करब सभ भाय ॥ ९३ ॥
आध पहर धरि कयलक मारि। खसल समर-महि नयन निड़ारि ॥ ९४ ॥
लक्ष्मण सीता देखल नयन। राक्षस विकट युद्ध-महि शयन ॥ ९५ ॥
अति विस्मय मन हर्ष अपार। देखल पति-कृत रण-व्यवहार ॥ ९६ ॥
जानकि रघुपति मिलि निज हाथ। रण-व्रण पोछथि कर गुण-गाथ ॥ ९७ ॥

रहो, सीता डरे नहीं; वह पहाड़ की गुफा में चली जाए। ८२ तुरत मैं सबों को मौत के घाट उतारूँगा।" इतना कहकर राम ने धनुष-बाण हाथ में लिये। ८३ कभी खत्म न होनेवाले तीरों से तरकस भरा हुआ था। राम का चेहरा चमक रहा था। ८४ स्वामी की आज्ञा पाकर सीता, लक्ष्मण के साथ पहाड़ की गुफा में चली गयीं। ८५ राक्षसों की सेना आ धमकी। लड़ाई मच गयी। अस्त्र-शस्त्रों, तीरों और तलवारों से युद्ध होने लगा। ८६ कोई राक्षस हाथ में पत्थर उठा लेता तो कोई पेड़ उखाड़ लेता। ८७ वे सभी रामचन्द्र पर फेंकते थे, जिन्हें प्रभु राम का तीर आसमान में ही रोक लेता था। ८८ सभी राक्षसों ने अपने-अपने अस्त्र एक ही साथ चलाना शुरू किया, जिन्हें राम तीरों से रोकते गये। ८९ राम ने अपनी लीला से सभी अस्त्रों को काट दिया। फिर अस्त्र-विहीन राक्षस लड़ेंगे कैसे ? ९० राम ने हजार बाण चलाये। विषधर जैसे बढ़ते उन बाणों को कौन रोक सकता था ? ९१ जिसे राम का बाण लगता उसके प्राण पल में चले जाते। ९२ खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर आये कि सभी भाई मिलकर लड़ाई करेंगे। ९३ आधे पहर तक लड़ाई करने के बाद वे तीनों युद्ध के मैदान में आँखें निकालकर गिर गये। ९४ लक्ष्मण और सीता ने देखा, विकट राक्षस युद्ध-भूमि में सोये हुए हैं। ९५ पति का युद्ध-कौशल देख सीता के मन में परम आश्चर्य और अपार हर्ष हुआ। ९६ सीता राम के पास आकर अपने हाथ से लड़ाई के

सूर्पनखा देखइत छलि मारि। विकल पड़ाइलि निज जन हारि ॥ ९८ ॥
पाछाँ घुरि घुरि तकितहि जाय। आतुरि लङ्का गेलि समाय ॥ ९९ ॥
दशमुख बैसल सभा लगाय। कह निज दुर्गति लाज न काय ॥ १०० ॥
लागलि चरणक निकट लोटाय। हमर एहन गति अपनें भाय ॥ १०१ ॥
कह रावण उठ कह की काज। इन्द्र-वरुण-यम-कृत की काज ॥ १०२ ॥
की कुबेर-कृत अनुचित कर्म्म। लेब खलबाय तनिक तन-चर्म्म ॥ १०३ ॥
सूर्पनखा कह शुनु गुरु-भाय। से प्रताप गेल कतय मिझाय ॥ १०४ ॥
कि कहब दुःख अपन हम आन। देखु बिशलोचन नाक न कान ॥ १०५ ॥
वनिता-विजित बहुत मद्य-पान। नृपति प्रकृति-पर रह कत ज्ञान ॥ १०६ ॥
चारनयनसौं नृपति विहीन। देखितहि दिन से कौड़िक तीन ॥ १०७ ॥
हरि आनह मन-इच्छित नारि। बल अभिमान करत के मारि ॥ १०८ ॥
व्यसनाकुल राजा दशकण्ठ। सतत बनल सङ्ग दश बिश लण्ठ ॥१०९॥
देखल हम रण रामक रङ्ग। सबल सकल खर-दूषण भङ्ग ॥ ११० ॥
राक्षस बहुत राम एक गोट। सभकाँ कय देखल लोट पोट ॥ १११ ॥
जनस्थानवासी मुनि लोक। मन प्रसन्न वन रोक न टोक ॥ ११२ ॥

घाव पोंछते हुए गुण-गान करने लगीं। ९७ उधर शूर्पणखा लड़ाई देख रही थी। अपने लोगों की हार होने पर वह व्याकुल होकर भागी। ९८ डर से पीछे मुड़-मुड़कर देखती हुई व्याकुल-सी लंका चली गयी। ९९ वहाँ रावण सभा लगाये बैठा था। शूर्पणखा तुरत अपनी दुर्गति सुनाने लगी। उसके शरीर में लज्जा नहीं रही। १०० वह रावण के पाँव पर लोटने लगी और बोली— "आप मेरे भाई हैं, फिर भी मेरी ऐसी हालत हो ?" १०१ रावण ने कहा— "उठो ! कहो, तुम्हें क्या चाहिए ? तुम्हारा क्या इन्द्र ने, वरुण ने या यम ने यह हाल किया है ? १०२ या कुबेर ने यह अनुचित काम किया है ? मैं उनके शरीर से चमड़ा उतरवा लूंगा।" १०३ शूर्पणखा ने कहा— "हे बड़े भाई ! सुनिए। आपका वह प्रताप कहाँ बुझ गया ? १०४ मैं अपना और दुःख क्या कहूँ ? बीसो आँखों से देख लीजिए, मेरे नाक-कान जाते रहे। १०५ जो राजा स्त्री के वश में रहता है और बहुत शराब पीता है उसे प्रजा पर क्या ध्यान रहेगा। १०६ जिस राजा के खुफिया रूपी आँख न हो, वह देखते ही देखते कौड़ी का तीन हो जाता है। १०७ मनचाही नारी को हर लाइए। आपको बल का घमंड है। आपसे युद्ध कौन करेगा ? १०८ हे दशानन ! आप राजा होकर कामादि व्यसन में डूबे हुए हैं, और दस-बीस गुण्डे सदा आपके साथ रहते हैं। १०९ मैंने राम का रण-कौशल देखा। उसके आगे सारी सेना-सहित खर-दूषण टिक न सके। ११० राक्षस बहुत-सारे थे, पर राम अकेले थे। फिर भी राम ने सबों के दाँत खट्टे कर दिये। १११ जनस्थान

रावण कहल स्पष्ट कह वाक। कि कहब अनुनासिक नहि नाक ॥ ११३ ॥
धयलह साप जानि जिब जौड़ि। छूटत कलङ्क कि खर्चहु कौड़ि ॥ ११४ ॥
के थिक राम समर खर जीत। की बल दण्डक फिर कि निमित्त ॥ ११५ ॥
की तों कयल तनिक अपराध। कहह अशुद्ध न अक्षर आध ॥ ११६ ॥
सत्य कहै छो बड़का भाय। नदी गौतमी गेलहुँ नहाय ॥ ११७ ॥
पञ्चवटी नामक मुनि-गाम। ततहि नियत बस सानुज राम ॥ ११८ ॥
धनुष बाण कर धर श्रीमान। तेहन न सुन्दर त्रिभुवन आन ॥ ११९ ॥
जटा सुवल्कल सुन्दर देह। पिता-वचन सौं त्यागल गेह ॥ १२० ॥
अपनें जेहन तेहन छोट भाय। सीता-रूप कहल नहि जाय ॥ १२१ ॥
देखल न आँखि शुनल नहि कान। लक्ष्मी-रूप देल भगवान ॥ १२२ ॥
रामचन्द्र काँ कहल बुझाय। काल देश क्रम सकल सुझाय ॥ १२३ ॥
हम माँगल निज वनिता देह। धन सम्पत्ति यथेच्छित लेह ॥ १२४ ॥
लङ्केश्वर छथि हमरा भाय। देब उपायन ततय पठाय ॥ १२५ ॥

में रहनेवाले मुनि लोग बड़े प्रसन्न हैं और वे बिना रोक-टोक के रहते हैं। ११२ रावण ने कहा— "क्या बकती जा रही हो ? साफ़-साफ़ बोलो।" (शूर्पणखा ने उत्तर दिया—) "साफ़-साफ़ क्या खाक बोलूँगी। जब नाक ही नहीं है तब नकियाकर ही तो बोलूँगी।" ११३ रावण ने कहा— "तुमने साँप को रस्सी समझकर पकड़ लिया। क्या यह कलंक लाखों खर्च करने पर मिटेगा ? ११४ राम कौन है, जिसने लड़ाई में खर को पछाड़ दिया ? उसकी कितनी शक्ति है ? किस कारण से वह दंडक-वन में भटक रहा है ? ११५ तुमने उसका क्या अपराध किया ? ठीक-ठीक बताओ, आधा अक्षर भी गलत मत कहना।" ११६ शूर्पणखा ने कहा— "हे बड़े भाई! मैं सच-सच बताती हूँ। मैं गौतमी नदी में नहाने को गयी। ११७ जहाँ पंचवटी नाम का मुनियों का गाँव है। वहीं लक्ष्मण-सहित राम टिके हुए हैं। ११८ वे हाथ में धनुष और बाण लिये रहते हैं। उनका जैसा सुन्दर तो तीनो लोकों में और कोई नहीं दिखाई देता है। ११९ सिर पर जटा है। तन में बल्कल पहने हैं। शरीर बड़ा सुन्दर है। पिता की आज्ञा से वे घर छोड़कर आये हैं। १२० जैसे राम हैं वैसे ही राम के छोटे भाई लक्ष्मण भी हैं। सीता के सौन्दर्य का तो वर्णन करना भी कठिन है। १२१ ऐसा रूप न तो आँखों से कहीं देखा और न कानों से कहीं सुना। मानों भगवान ने उन्हें लक्ष्मी का रूप दे रखा है। १२२ मैंने रामचन्द्र को स्थान, काल और स्थिति का बोध कराते हुए उन्हें समझाया १२३ और कहा कि 'हे राम ! आप जितनी चाहें उतनी धन-सम्पत्ति ले लीजिए और अपनी स्त्री दे दीजिए। १२४ लंका के राजा रावण मेरे भाई हैं। मैं इस सीता को उन्हें भेंट करूँगी।' १२५ इतना

सीता बल सौँ लेबय चहल। काल-विवश मन ज्ञान न रहल ॥ १२६ ॥
लक्ष्मण रामक छोटका भाय। रामक अभिमत ओ खिसिआय ॥ १२७ ॥
ओ काटल मोर नासा कान। क्षत्रिय जाति शूर मन मान ॥ १२८ ॥
खर घर कहल गेलाहो जूमि। आयल एक न रणसौँ घूमि ॥ १२९ ॥
आँखि देखल हम युद्धक रीति। चाहथि लेथि त्रिलोकक जीति ॥ १३० ॥
करु जनु साहस दण्डक जाय। राम-शरानल शलभ समाय ॥ १३१ ॥
कोटि रती छबि जीतनिहारि। हुनि सङ्ग एक मनोहरि नारि ॥ १३२ ॥
माया-छल-बल लाउ चोराय। प्रकट हयब तौँ प्राणे जाय ॥ १३३ ॥

॥ सोरठा ॥

सुनल वचन लङ्केश, दान मान सन्तोष दय ॥ १३४ ॥
निज गृह कयल प्रवेश, सूर्पनखा लङ्का रहलि ॥ १३५ ॥
निद्रा आँखि न राति, रावण-मन चिन्ता भरल ॥ १३६ ॥
राम मनुज एक जाति, खर-दूषण-गण नाश कर ॥ १३७ ॥
थिकथि मनुष्य न राम, परमात्मा अव्यय अमल ॥ १३८ ॥
हमर विनाशक काम, विधि-प्रार्थित नररूप धर ॥ १३९ ॥

कहकर मैंने बलजोरी सीता को लेना चाहा। दुर्भाग्य से मेरा मन ज्ञानहीन हो गया। १२६ इस पर राम के छोटे भाई लक्ष्मण राम की शह पाकर क्रुद्ध हो उठे, १२७ और उन्होंने मेरी नाक और कान काट लिये। वे वीर क्षत्रिय थे। उनके मन में आन थी। १२८ मैंने भाई खर के घर जाकर उनसे कहा और वे तुरत आ भी धमके। पर हाय ! लड़ाई के मैदान से एक भी नहीं लौटा, सभी मारे गये। १२९ मैंने अपनी आँखों युद्ध का रंग देखा। लगता था, चाहें तो वे तीनों लोकों को जीत लें। १३० दंडक-वन जाने का साहस मत कीजिए वर्ना राम के बाण रूपी आग में परवाने की तरह जल जाइएगा। १३१ उनके पास एक रूपवती स्त्री है जो करोड़ों रतियों की शोभा को जीतनेवाली है। १३२ माया के छल से उस नारी को चुरा लाइए। प्रकट रूप से जाइएगा तो प्राण गँवाइएगा।" १३३ लंकेश रावण ने शूर्पणखा की उपर्युक्त बात सुनी। उस पर प्रसन्न हो उसे धन-सम्पत्ति दे और सम्मान कर सन्तुष्ट किया। १३४ तब वे अपने भवन चले गये और शूर्पणखा लंका में ही रह गयी। १३५ रावण को रात भर आँखों में नींद न आयी। उसका मन चिन्ता से भर गया। १३६ क्या मनुष्य जाति का होकर अकेले राम ने खर और दूषण के दल को समाप्त कर दिया ? १३७ नहीं, राम मनुष्य नहीं है। वह अवश्य ही निर्विकार, अविनाशी, परमात्मा का अवतार है। १३८ मेरे विनाश के लिए ही ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर मानव का रूप धारणकर अवतरित हुआ है। १३९ यदि उसके हाथ से मृत्यु हो जाय तो वैकुण्ठ प्राप्त

जौँ मृति तनिकहि हाथ, राज्य करब बैकुण्ठ मे ॥ १४० ॥
नहि तौँ सहित समाज, लङ्कापति बनले रहब ॥ १४१ ॥
प्रभुसौँ करब विरोध, लड़ब भिड़ब रणमे मरब ॥ १४२ ॥
से करता जौँ क्रोध, बनत काज सभटा हमर ॥ १४३ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

रथमे जोड़ घोड़ बड़ जोर। चलल दशानन चिन्तित भोर॥ १ ॥
जत मारीच समुद्रक पार। पहुचलाह सत्वर अविचार॥ २ ॥
छल समाधि-गत ओ मारीच। से न जान जग ऊच कि नीच॥ ३ ॥
मुनि-सन कयल सकल व्यवहार। निर्गुण ब्रह्म ध्यान विस्तार॥ ४ ॥
छुटल समाधि देखल मारीच। रावण बैसल आँगन बीच॥ ५ ॥
उठि मिलि कय पूजा उपचार। बैसला भेल कथा सञ्चार॥ ६ ॥

कर वहीं राज्य करूँगा। १४० अगर नहीं, तो सारे दलबल के साथ लंका का राजा बना रहूँगा। १४१ मैं प्रभु का विरोध करूँगा। लड़कर रणभूमि में उनके हाथ मरूँगा। १४२ यदि उन्हें मुझ पर क्रोध आ जाय तो मेरा सारा काम बन जाएगा। १४३

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

रावण का मारीच के पास जाना और मारीच का माया-मृग रूप धारण करना

चिन्ता में डूबा हुआ रावण सुबह होते ही अतिबलवान घोड़ों को रथ में जोतकर वहाँ चल पड़ा जहाँ समुद्र के किनारे मारीच तप कर रहा था। वह बिना किसी सोच-समझ के उसके पास पहुँचा। १-२ वह मारीच उस समय समाधि लगाये हुए था। उसे क्या मालूम कि संसार ऊँचा है या नीचा। वह तो संसार से बेफ़िक्र था। ३ वह मुनियों का जैसा सारा व्यवहार कर रहा था और व्यापक निर्गुण ब्रह्म के ध्यान में डूबा हुआ था। ४ रावण के पहुँचने से उसकी समाधि टूट गयी। उसने देखा, बीच आँगन में रावण बैठा हुआ है। ५ वह उठकर रावण से मिला। उसका आवभगत किया। फिर बैठकर बातचीत करने लगा। ६ उसने पूछा— "आज आपका मन बड़ा

अति चिन्ता मन की थिक आज। एकसर अयलहुँ हमर समाज॥ ७॥
काज हमर जे होयत हाथ। से कय देब करब नहि लाथ॥ ८॥
न्याय कहब जे होय न पाप। बिनु बुझलें जिब थर थर काँप॥ ९॥
रावण कहल अहाँ हित भाय। कयलक शत्रु बहुत अन्याय॥ १०॥
पुरी अयोध्या दशरथ नाम। तनिकर जेठ तनय छथि राम॥ ११॥
बनवासक आज्ञा देल बाप। वन आयल छथि सत्य-प्रताप॥ १२॥
वनिता-सहित सुहित सङ्ग भाय। पञ्चवटी वन कुटी बनाय॥ १३॥
खर-दूषण-त्रिशिरा बल गोल। सभकाँ मारल बसि मुनिटोल॥ १४॥
कहइक पड़ल वचन लज्जाक। सूर्पनखा काँ कान न नाक॥ १५॥
एहि सँ होयत की अपराध। समर-निहत भेल वीर बिराध॥ १६॥
मुनि निर्भय कर जयजयकार। कुल-लज्जा सबहिक शिर भार॥ १७॥
तनिकर गृहिणी लेब चोराय। अहँ साधक बनि रहब सहाय॥ १८॥
माया-हेम-हरिण बनि जाउ। चञ्चल सञ्चरि रूप देखाउ॥ १९॥
आश्रम बाहर लक्ष्मण राम। साधब अपन काज ओहि ठाम॥ २०॥

चिन्तित दिखाई देता है। अकेले मेरे पास आये हैं। क्या बात है? ७ मेरे वश का जो काम होगा वह मैं कर दूँगा। इसमें कोई बहाना नहीं करूँगा। ८ जायज काम कहना ताकि उसे करने में कोई पाप न हो। जब तक बताइएगा नहीं, तब तक दिल धड़कता रहेगा।" ९ यह सुनकर रावण ने कहा— "तुम मेरे हितकर भाई हो। दुश्मन ने मेरे साथ बड़ा बुरा बरताव किया है। १० अयोध्या नाम की नगरी में दशरथ नाम का एक राजा है। उसका बड़ा लड़का 'राम' नाम का है। ११ उसे बाप ने वनवास की आज्ञा दी है। अतः वह सच्चा पराक्रमी दण्डकवन आया हुआ है। १२ साथ में स्त्री है और हितकारी भाई है। वह पंचवटी में कुटिया बनाकर रहता है। १३ उसने मुनियों की बस्ती में रहते हुए खर-दूषण और त्रिशिरा सबों को सेना-सहित मार डाला है। १४ ऐसी बात कहने में लज्जा आती है, फिर भी कहनी पड़ती है कि शूर्पणखा की नाक और कान उसने काट लिये हैं। १५ इससे बढ़कर अपराध क्या होगा? वीर विराध भी लड़ाई में मारा गया। १६ मुनि लोग निर्भय हो उसका जय-जयकार कर रहे हैं। यह हमारे कुल के लिए लज्जा की बात है। इसका दायित्व हम सबों के सिर पर है। १७ मैं बदले में उसकी स्त्री का हरण कर लूँगा। तुम इसमें साधक होकर मेरी मदद करो। १८ तुम माया के बल पर सोने का हिरन बन जाओ और अपने रूप की छटा दिखाते हुए छलाँग भरो। १९ राम और लक्ष्मण तुम्हारे पीछे आश्रम से बाहर निकल जाएंगे और मैं वहीं अपना काम पूरा कर लूँगा।" २० यह

॥ सोरठा ॥

के देलक उपदेश, सर्व्वनाशकर बचन सौं ॥ २१ ॥
सुनु सुनु नृप लङ्केश, अरि थिक से जन बध्य थिक ॥ २२ ॥

॥ चौपाइ ॥

रामक कि कहब सहज स्वभाव। थर थर तन ओ मन पड़ि आब ॥ २३ ॥
कौशिक लयला हिनका सङ्ग। हम देखल नेनहि मे रङ्ग ॥ २४ ॥
फेकल से शर तेहन तानि। शर-बश खसलहुँ जलनिधि-पानि ॥ २५ ॥
शत योजन पर अद्भुत बात। भय थरथर तन चलदल-पात ॥ २६ ॥
स्मरण मात्र सौं हम गत-गर्व्व। रामाकार देखि पड़ सर्व्व ॥ २७ ॥
दण्डक वन गेलहुँ मन आनि। हरिण-स्वरूप बनल रिपु जानि ॥ २८ ॥
तन विचित्र अति तीब बिषाण। परशहि रह नहि प्राणी प्राण ॥ २९ ॥
देखितहि तिनु जन काँ हम आँखि। मारय दौड़लहुँ मन किछु राखि ॥ ३० ॥
कपट चिन्हल ईश्वर रघुवीर। हृदयमध्य मोरा मारल तीर ॥ ३१ ॥
मुह सौं शोणित खसल भभाय। खसलहुँ उदधि मध्य हम आय ॥ ३२ ॥
सतत बनल भय रामक रहय। अयला अयला जनि केओ कहय ॥ ३३ ॥
सपनहु मे हम देखी राम। जगितहु ठाढ़ देखैछी ठाम ॥ ३४ ॥

सुनकर मारीच ने कहा— "सर्वनाश करनेवाली बात कहकर किसने आपको यह सलाह दी है? २१ हे लंकाधीश! सुनिए; ऐसी सलाह देनेवाला तो आपका दुश्मन है; जान से मार देने लायक है। २२ राम की सहज स्वाभाविक वीरता का बखान क्या करूँ। उनकी याद आते ही थर्राने लगता हूँ। २३ उन्हें ऋषि विश्वामित्र अपने साथ ले आए थे। मैं उनकी करामात लड़कपन में ही देख चुका हूँ। २४ उन्होंने खींचकर ऐसा तीर छोड़ा कि लगते ही मैं समुद्र के पानी में सौ योजन दूर जा गिरा। डर से शरीर हवा में चंचल पत्ते की तरह काँपने लगा। २५-२६ याद करते ही मेरा सारा घमंड चूर-चूर हो गया। मुझे डर से यत्र-तत्र-सर्वत्र राम ही राम दिखाई देने लगे। २७ मन में वैर ठानकर मैं हिरन का रूप धारण कर दण्डकवन गया। २८ मेरा शरीर अनोखा था और मेरे सींग इतने तेज़ थे कि छूते ही प्राणी के प्राण उड़ जाते थे। २९ तीनों को आँख से देखते ही मैं मन में कुछ बात रखकर उन्हें मारने के लिए दौड़ा। ३० भगवान राम ने मेरे कपट-रूप को पहचान लिया और मेरे हृदय में एक तीर मारा। ३१ तीर लगते ही मेरे मुँह से धारा-प्रवाह लहू गिरने लगा और मैं समुद्र में जा गिरा। ३२ तब से मुझे हमेशा राम का त्रास बना रहता है। लगता है जैसे कोई कह रहा हो, वह राम आया, वह आया। ३३ सपने में भी मैं राम को ही देखता हूँ और जगते भी उन्हीं को सामने खड़ा देखता हूँ। ३४ मेरी चित्तवृत्ति राम की भावना करते-करते

रामाकार भेल मन-वृत्ति । बाहर वृत्तिक गमन निवृत्ति ॥ ३५ ॥
तनिसौँ आग्रह तजि घर जाउ । बलसौँ प्रबल काल न जगाउ ॥ ३६ ॥
तजि विरोध बनु रघुपति-दास । लङ्केश्वर तौँ छूटत त्रास ॥ ३७ ॥
मुनि-मुख शुनल विभुक अवतार । अन्तर बहुत विरञ्चि विचार ॥ ३८ ॥
दशमुख जें विधि मारल जाय । निक थिक से कर्त्तव्य उपाय ॥ ३९ ॥
मन नहि मानव मानव राम । नारायण अव्यय सुखधाम ॥ ४० ॥
जाउ बूझि घर परिहरु मारि । गेलहुँ वर्षा बाँधिय आरि ॥ ४१ ॥

॥ दोहा ॥

कहल जखन मारीच तहँ, रावण हित उपदेश ॥ ४२ ॥
उत्तर कहलनि से तकर, कहइत छह तोँह वेश ॥ ४३ ॥

॥ चौपाइ ॥

परमात्मा जौँ जन्मल राम । तनिकाँ हमर निधन मन-काम ॥ ४४ ॥
ब्रह्महु काँ मन मे निक लाग । कि करब आयल हमर अभाग ॥ ४५ ॥
संकल्पक तनिकाँ नहि हानि । सीता हरब मरब हठ ठानि ॥ ४६ ॥
रण-महि-मरण अमर-पद जाइ । राक्षसेन्द्र रण-विमुख नुकाइ ॥ ४७ ॥

राममय हो गई है और चित्त में बाहर की ओर कोई भावना घुसने ही नहीं पाती है। ३५ उनके साथ रार छोड़कर घर चले जाइए। हठात् प्रबल काल को मत जगाइए। ३६ वैर छोड़कर राम का दास बन जाइए। हे लंकेश, इसी से आप निर्भय होकर रहेंगे। ३७ मैंने मुनियों के मुंह से सुना है कि ईश्वर ने राम के रूप में अवतार लिया है। ब्रह्मा ने मन में बहुत सोचा-विचारा कि क्या किया जाय। ३८ और निश्चय किया कि जिससे रावण मारा जाय ऐसा उपाय करना ही ठीक होगा। ३९ इसलिए आप मन में ऐसा मत मानिए कि राम मानव है। वह साक्षात् नारायण है, अविनाशी है और आनन्द का खजाना है। ४० ऐसा समझकर आप वैर छोड़कर घर चले जाइए। वर्षा समाप्त हो जाने पर भी लोग मेड़ बाँधकर खेत का पानी बचाते हैं।" ४१ जब मारीच ने रावण को इस प्रकार हितकर सलाह दी, तब रावण ने जवाब दिया— "तुम ठीक कहते हो। ४२-४३ यदि वास्तव में राम के रूप में ईश्वर ने अवतार लिया है और उनका लक्ष्य मेरी मृत्यु है और यही ब्रह्मा को भी भाता है तो मैं क्या कर सकता हूँ। मेरा दुर्भाग्य आ पहुँचा है। ४४-४५ ब्रह्मा जो संकल्प मन में कर लेते हैं उसमें अन्यथा नहीं होता है। फिर भी मैं सीता-हरण करूँगा और रार ठानकर मर मिटूँगा। ४६ दो रास्ते हैं, चाहूँ तो लड़ाई के मैदान में मरकर मोक्ष पाऊँ, या राक्षसों का नेता होकर भी लड़ाई के मैदान से भागकर कहीं छुप जाऊँ। ४७ यदि लड़ाई में

रामक विजय होयत सङ्ग्राम। हमरो सुयश विदित सभ ठाम ॥ ४८ ॥
दुइ मे एक सत्य शुनु हयत। सीता-लाभ जीव की जयत ॥ ४९ ॥
मृग विचित्र बनु सत्वर तात। जौँ हो दुनु जन आश्रम कात ॥ ५० ॥
ठकयित आश्रम दूर लं जाह। इच्छा तोहर तखन पड़ाह ॥ ५१ ॥
कहल हमर एतबा टा करह। आश्रम सदा सुखित-मन रहह ॥ ५२ ॥
जौँ नहि करबह भय सौँ काज। घुरि नहि जयबह अपन समाज ॥ ५३ ॥
देखह हाथ तीष अरुआरि। बड़ पाखण्ड देबहु हम मारि ॥ ५४ ॥
शुनि मन कर मारीच विलाप। रावण-कर-मरणै अति पाप ॥ ५५ ॥
रामक कर मरणैँ श्रुति-युक्ति। साधन बिनु हम पायब मुक्ति ॥ ५६ ॥
कह मारीच शुनिय लङ्केश। कहल करब चलु चलु ओ देश ॥ ५७ ॥
रावण रथ मारीच चढ़ाय। रामाश्रम रथ गेल बढ़ाय ॥ ५८ ॥
मायामृगक कनक-वर रङ्ग। रजत-बिन्दु सौँ शोभित अङ्ग ॥ ५९ ॥
नील रत्न सन सुन्दर आँखि। चल-चञ्चल जनु उड़ बिनु पाँखि ॥ ६० ॥
रत्नश्रृङ्ग मणिमय सभ खूर। चपला वदन चमक परिपूर ॥ ६१ ॥
आश्रम निकट टहल घुमि घूमि। गगन निहारि निहारय भूमि ॥ ६२ ॥

राम की ही जीत हो जाती है, तथापि मेरी भी सर्वत्र बड़ाई होगी। ४८ अब दोनों में कोई एक बात होगी, चाहे तो सीता हाथ लगेगी या प्राण जाएँगे। ४९ इसलिए हे भाई, तुम झटपट एक अजब रंग का हिरन बन जाओ। अगर राम और लक्ष्मण आश्रम के पास हों तो उन्हें तुम छलपूर्वक आश्रम से दूर ले जाना। फिर अपनी इच्छा के अनुसार भाग जाना। ५०-५१ तुम इतना-सा मेरा काम कर दो, फिर सुखपूर्वक अपने आश्रम में रहो। ५२ अगर तुम राम के डर से यह काम नहीं कर दोगे तो फिर लौटकर अपने लोगों के पास न जा पाओगे। ५३ देखो, मेरे हाथ में यह तीखी तलवार है। तुम बहुत बकवास करोगे तो जान से मार डालूँगा।" ५४ यह सुनकर मारीच मन में सोचने लगा— 'यदि रावण के हाथ से मारा जाता हूँ तो भारी पाप होगा। ५५ यदि राम के हाथ से मारा जाता हूँ तो जैसा कि शास्त्र में कहा गया है बिना किसी साधना के मैं मोक्ष पाऊँगा।' ५६ ऐसा सोचकर मारीच ने कहा— "हे लंकेश, सुनिए। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। चलिए उस जगह।" ५७ रावण ने मारीच को अपने रथ पर चढ़ा लिया और रथ को बढ़ाकर राम के आश्रम ले आया। ५८ मारीच माया का हिरन बन गया। उसका रंग सोने का था और उस पर चाँदी के रंग की चित्तियाँ थीं। ५९ उसकी आँखें नीलम की थीं। वह इतना उछल-कूद करता था कि लगता था पाँखों के बिना ही उड़ रहा हो। ६० सींग रत्नों के और खुर मणियों के थे। मुँह में मानों बिजली की चमक भरी हो। ६१ वह घूम-घूमकर आश्रम के पास

मायामृग कर तेहन उपाय। सीता-मन मोहित भय जाय ॥ ६३ ॥
क्षणमे निकट क्षणहिमे दूर। करथि दशानन-आज्ञा पूर ॥ ६४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ।

राम बुझल दशवदन-प्रपञ्च। वैदेहीकें कहलनि शञ्च ॥ १ ॥
अहँ एक माया-देह बनाउ। कुटी-मध्य कल कौशल जाउ ॥ २ ॥
एक वर्ष रहु अग्नि समाय। पुन आयब लेब सङ्ग लगाय ॥ ३ ॥
रावण-बधक निकट अछि काल। होयत माया-चरित विशाल ॥ ४ ॥
प्रभु-माया माया विस्तारि। मायामयि बनि गेली नारि ॥ ५ ॥
हेम-हरिण शुनलहुँ नहि कान। को रचना-कारक भगवान ॥ ६ ॥
सीता हँसि कहलनि प्रभु आज। मृग एक आयल अपन समाज ॥ ७ ॥
हेमक हरिण रत्न तन विन्दु। पकड़ल जाय अवनि-गत इन्दु ॥ ८ ॥

विचरण करता। आसमान की ओर देखकर तुरत धरती की ओर देखता। ६२ माया-मृग ऐसी चाल चलता, जिससे सीता का मन मोहित हो जाय। ६३ क्षण ही में पास आ जाता और क्षण ही में दूर चला जाता। इस प्रकार वह रावण की आज्ञा का पालन करने लगा। ६४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

रावण द्वारा सीता का हरण

राम समझ गये कि यह रावण की चाल है। उन्होंने धीरे से सीता से कहा। १ "तुम माया का शरीर बना लो और चुपके से कुटी के भीतर चली जाओ। २ एक साल तक आग के बीच समाई रहो। उसके बाद मैं आऊँगा और तुम्हें अपने साथ कर लूँगा। ३ रावण के वध का समय आ गया है। अब माया-चरित्र की लम्बी लीला करनी होगी।" ४ प्रभु ने अपनी शक्ति से माया को फैलाया और सीता मायामय नारी बन गई। ५ माया की सीता ने हँसकर कहा— "हे स्वामी, सोने का हिरन होता है, यह यह तो कभी कान से सुना नहीं। भगवान् ने यह क्यों अजब मृग बनाया है? ६-७ हिरन की देह सोने की है। उस पर रत्नों की चित्तियाँ हैं। धरती पर गिरे इस चाँद को पकड़ा जाय। ८ इसे मैं पालूँगी; आश्रम में

पालब आश्रम राखब बाँधि। देब भक्ष जल लेब से काँधि ॥ ९ ॥
धनुष बाण लय चलला हाथ। लक्ष्मण काँ कहलनि रघुनाथ ॥ १० ॥
वैदेही-रक्षा अहाँ करब। नहि आश्रम बाहर सञ्चरब ॥ ११ ॥
अति मायावी राक्षस घोर। दण्डक वनमे बसइछ चोर ॥ १२ ॥

॥ छन्द हरिपद—गीत काफी ॥

कनक-मृग कतहु शुनल नहि कान ॥ १३ ॥
थिक मारीच कपटसौं आयल शुनु भ्राता भगवान ॥ १४ ॥
राम कहल तनिकहु हम मारब हयता जौं मारीच ॥ १५ ॥
होयत हरिण हरषि हम आनब बाँधब आँगन बीच ॥ १६ ॥
सीता-रक्षा मध्य दक्ष रहु ई कहि चलला राम ॥ १७ ॥
माया-मृगपर मायाधीश्वर जनिकाँ रूप न नाम ॥ १८ ॥
भक्त-काज लीला विस्तारथि पूर्णकाम परमेश ॥ १९ ॥
मृगसौं ओ वनितासौं तनिका अछि नहि काजक लेश ॥ २० ॥
क्षण-क्षण निकट दूर मृग दौड़य तखन चलाओल तीर ॥ २१ ॥
थिक राक्षस निश्चय मन मानल रामचन्द्र रघुवीर ॥ २२ ॥

॥ गीत ॥

कपट-मृग खसल मही मे घूमि ॥ २३ ॥

बाँधकर रखूँगी; खाना खिलाऊँगी, पानी पिलाऊँगी; कन्धे पर उठाऊँगी।" ९ राम यह सुनकर हाथ में धनुष-बाण ले विदा हुए और जाते हुए लक्ष्मण से कहा। १० "हे लक्ष्मण, तुम वैदेही की रक्षा करना। आश्रम के बाहर मत जाना। ११ राक्षस भारी मायावी होते हैं और दण्डक वन में चोर रहते हैं। १२ यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—"हे पूज्य भ्राता, सुनिए। सोने का हिरन तो कहीं सुना नहीं है। यह लगता है, मारीच कपट वेष धारण कर आया है।" १३-१४ राम ने कहा— "अगर यह मारीच होगा तो उसे भी मैं मारूँगा। १५ और, यदि सच्चा हिरन होगा तो प्रसन्नतापूर्वक उसे पकड़ लाऊँगा और आश्रम में बाँधकर रखूँगा। १६ तुम सीता की रक्षा में होशियार रहना।" इतना कहकर राम चले गए। १७ माया के ईश्वर राम, जो नाम और रूप से परे हैं, उस माया-मृग के पीछे चले। १८ ईश्वर स्वयं निष्काम होते हुए भी भक्तों के काम से अपनी लीला फैलाते हैं। १९ उन्हें न तो रंच मात्र भी उस हरिण से कोई प्रयोजन है और न उस नारी से। २० हिरन कभी नजदीक पड़ता तो कभी दूर हो जाता। तब राम ने तीर चला दिया। २१ क्योंकि उन्होंने सोचा कि यह निश्चय ही राक्षस है। २२ वह सोने का हिरन चक्कर काटकर धरती पर गिर गया। २३

रामचन्द्र-शर तनिकाँ लागल पल विलम्ब नहि जूमि ॥ २४ ॥
हा हम मुइलहुँ लक्ष्मण दौड़ू कहि कहि मरतो बेरि ॥ २५ ॥
से मारीच अपन तन धयलक जनन मरण नहि फेरि ॥ २६ ॥
राम नाम उच्चारण हो जौँ जनकाँ मरणक काल ॥ २७ ॥
प्रभु-सायुज्य-प्राप्ति हो तनिकाँ कि कहब भाग्य विशाल ॥ २८ ॥
तनिकहि देखइत तनिकहि शरसौँ देल से प्राण गमाय ॥ २९ ॥
असुरदेह सौँ तेज-पुञ्ज बढ़ि प्रभु-तन गेल समाय ॥ ३० ॥
अमर सकल विस्मय मन मानल मुनि-हिंसक छल चोर ॥ ३१ ॥
रामाकार वृत्ति भेल तनिकाँ मुक्ति सुयश भेल शोर ॥ ३२ ॥

॥ सोरठा ॥

चिन्तातुर-मन राम, कयल हमर अनुकरण खल ॥ ३३ ॥
शुनि सीता तहि ठाम, की करती हमरा बिना ॥ ३४ ॥

॥ हरिपदछन्द-गीत काफी ॥

जनकजा शुनलनि अपनहि कान ॥ ३५ ॥
हा लक्ष्मण दौड़ू हम मुइलहुँ रहल उपाय न आन ॥ ३६ ॥
अयि देवर असुरार्दित भ्राता छथि शुनु आतुर हाक ॥ ३७ ॥
जाउ विलम्ब पलो भरि करु जनु पड़ब चहै अछि डाक ॥ ३८ ॥

पल भर में ही जाकर राम का तीर उस मृग को लग गया। २४ "हाय! मैं मरा! हे लक्ष्मण, दौड़ो!" ऐसा बोलकर मारीच ने मरते वक़्त अपना वास्तविक राक्षस का रूप धारण किया। फिर वह अगले जन्म और मरण के चक्र से मुक्त हो गया। २५-२६ यदि कोई मरते वक़्त राम-नाम का उच्चारण करे तो उसे प्रभु राम का सायुज्य प्राप्त होता है। वह मारीच बड़ा भाग्यवान् था। २७-२८ क्योंकि उसने राम को ही देखते हुए राम के ही शर से अपने प्राण छोड़े। २९ उसके उस राक्षस रूपी मृतक शरीर से एक तेज:पुंज निकला और रामचन्द्र के शरीर में लीन हो गया। ३० सभी देवों को यह देख बड़ा विस्मय हुआ, क्योंकि जो मारीच मुनियों की हिंसा करनेवाला चोर था उसी को राम का सायुज्य और मोक्ष मिला। उसकी ख्याति फैल गई। ३१-३२ राम के मन में चिन्ता हुई— 'अरे, इस दुष्ट ने तो मेरी आवाज़ की नक़ल की। ३३ वहाँ कुटी में मेरे परोक्ष बैठी सीता क्या करेगी, कौन कहे।' ३४ जानकी ने अपने ही कानों से सुना— 'हाय! लक्ष्मण, दौड़ो। मैं मरा।' सीता ने कोई दूसरा उपाय न देख लक्ष्मण से कहा। ३५-३६ हे मेरे देवर, तुम्हारे भाई को राक्षस ने घायल कर दिया है। उनकी करुण चीख़ सुनो। ३७ जाओ, पल भर भी देर मत करो। अनर्थ हो रहा

लक्ष्मण कहल वृथा चिन्ता मन असुर मुइल बलवान ।। ३९ ।।
तीनि-लोक-नाशक बल जनिकाँ के अछि राम समान ।। ४० ।।
दीन वचन रघुनन्दन कहता हो नहि चित्त प्रतीति ।। ४१ ।।
परमेश्वर-दारा वैदेही जनु करु मन भय-भीति ।। ४२ ।।

।। गीत मलार ।।

सकल कपट हम जानल मनमे ।। ४३ ।।
स्त्रीहर्त्ता अहँकैं रघुनन्दन नहि जनइत छल छथि हा सपनमे ।। ४४ ।।
भेल मनोरथ लाभ अहाँकाँ भरत शिखाय पठाओल वनमे ।। ४५ ।।
भरत अहाँक अधीनि होयब नहि बरु हम प्राण त्यागि देब छनमे ।। ४६ ।।
हा गुणनिधि विधि बड़ दुख देलहु मृतक मारि यशलाभ कि जनमे ।। ४७ ।।
झरि झरि पात खसय तरुलति सौं सकरुण सीता कोप-रोदनमे ।। ४८ ।।
जाय मिलब हम सौदामिनि सनि रामचन्द्र नवसुन्दर घनमे ।। ४९ ।।
जनक जनक मिथिला-महि नैहर ज्ञानभूमि सभ लोक सुजनमे ।। ५० ।।

।। चौपाइ ।।

सुनि लक्ष्मण मूनल दुहु कान । बड़ अनर्थ दुख देल भगवान ।। ५१ ।।

है।" ३८ लक्ष्मण ने कहा— "आप मन में नाहक चिन्ता करती हैं। वह बलवान् राक्षस मार डाला गया। ३९ जिन्हें तीन लोकों को नाश करने की शक्ति है, ऐसे राम के समान दूसरा कौन है ? ४० मन में विश्वास नहीं होता है कि रघुनन्दन राम इस तरह आर्त स्वर से चीखेंगे। ४१ हे सीता, आप परमेश्वर राम की पत्नी होकर इस तरह घबराइए नहीं।" ४२ यह सुनकर सीता ने कहा— "तुम्हारे मन में जो कपट (पाप) है वह सब मैं जान गई। ४३ राम सपने में भी यह नहीं जानते थे कि तुम उनकी स्त्री को हड़पनेवाले हो। ४४ भरत ने यह सब सिखा-पढ़ाकर तुम्हें वन भेजा। आज तुम्हारा वह मनोरथ पूरा हो गया। ४५ भरत और तुम्हारे अधीन में रहने से पहले ही मैं प्राण त्याग दूँगी। ४६ हे गुणवान् विधाता, तुमने मुझे बहुत सताया। मरे हुए को मारने से अब तुम्हें संसार में क्या यश होगा।" ४७ सीता का इस प्रकार करुण क्रन्दन सुनकर शोकवश पेड़ों और लताओं से पत्ते गिरने लगे। ४८ सीता ने कहा— "मैं रामचन्द्र रूपी सुहावने नये बादल में विद्युत् की तरह समा जाऊँगी। ४९ मेरे जनक जैसे पिता हैं, मिथिला जैसी ज्ञानभूमि पीहर है और सभी सम्बन्धी भले लोगों में गिनने जाते हैं।" ५० सुनते ही लक्ष्मण ने दोनों कान मूँद लिये। बोले— "भारी अनर्थ हुआ। विधाता ने मुझे बड़ा दुख दिया। ५१ आज धिक्कार है

धिक धिक कोपमूर्त्ति काँ आज। बितथ वचन बजयित नहि लाज ॥ ५२ ॥
आगत बिपति सुमति-गति भङ्ग। समय विनाशक बुझि पड़ रङ्ग ॥ ५३ ॥
ई कहि वनदेवी सौँ कहल। वचन-बाण वैदेहिक सहल ॥ ५४ ॥
हम कहइत छी दुहु कर जोड़ि। सीताकाँ जाइत छी छोड़ि ॥ ५५ ॥
सोंपि देल अछि अपनँक हाथ। हम चललहुँ जत छथि रघुनाथ ॥ ५६ ॥
धनुष-रेख-बाहर जनि जाउ। वञ्चक-वचन न किछु पतिआउ ॥ ५७ ॥

॥ सवैया छन्दः ॥

आश्रम-शून्य जानिकेँ रावण, अयला दण्डो वेष बनाय ॥ ५८ ॥
शिखी उपानहि दिव्य कमण्डलु, पहिरल गेरुआ वस्त्र रंगाय ॥ ५९ ॥
भिक्षुक जानि भक्ति सौँ जानकि, कयलनि विनय-प्रणति कय वार ॥ ६० ॥
कन्द मूल फल भोजन देलनि, स्वागत पुछल अतिथि-व्यवहार ॥ ६१ ॥
भोजन कयल जाय सुखसौँ मुनि, अबितहिँ छथि हमरा प्राणेश ॥ ६२ ॥
तनिकहु अपने आशिष देबनि, निकटहि छथि नहि देश विदेश ॥ ६३ ॥
तनिकासौँ प्रिय आदर होयत, ज्ञान-कथादिक विविध विचार ॥ ६४ ॥
शमस्वभाव अपने काँ कि कहब, नारायणमय सभ संसार ॥ ६५ ॥

कोप-भरी सीता को कि उन्हें झूठी बात बोलते शर्म नहीं आयी ! ५२ जब विपत्ति आती है तब अच्छी मति भी काम नहीं देती है। लगता है विनाश का समय आ गया है।'' ५३ इतना कहकर फिर लक्ष्मण ने वनदेवी से कहा— "देखिए, मैंने सीता के तीर-जैसे तीखे वचन बर्दाश्त कर लिये। ५४ मैं दोनों हाथ जोड़कर कहता हूँ, आप सुनिए। मैं सीता को अकेली छोड़कर जाता हूँ।'' ५५ फिर उन्होंने सीता से कहा— "मैं धनुष से लकीर खींच देता हूँ, आप उस लकीर से बाहर मत जाइए। ५६ और ठगों की बात पर विश्वास मत कीजिएगा।'' ५७ आश्रम सूना हो गया, यह जानकर रावण संन्यासी का वेष बनाकर वहाँ आ पहुँचा। ५८ सर में जटा, पाँव में खड़ाऊँ, हाथ में सुन्दर कमण्डल लिये गेरुआ रंग में रँगा वस्त्र पहने हुए था। ५९ जानकी ने उसे भिखारी संन्यासी समझकर भक्तिभाव से बार-बार विनयपूर्वक प्रणाम किया। ६० कन्द-मूल-फल खाने के लिए दिया, आने का समाचार पूछा, और अतिथि बनाया। ६१ सीता ने कहा— "हे मुनि, सुखपूर्वक भोजन कीजिए। मेरे पति आ ही रहे होंगे। ६२ आने पर उन्हें भी आशीर्वाद दीजिएगा। पास में ही गये हुए हैं, कहीं देश-विदेश नहीं गये हैं। ६३ वे आपका प्यार के साथ आदर करेंगे और आपसे नाना प्रकार के ज्ञान की बातचीत करेंगे। ६४ आप तो शान्ति-मार्गी हैं, आपसे क्या कहना। आपके लिए तो सारी दुनिया नारायणमय है।'' ६५

॥ दोधय छन्द ॥

के अहँ थिकहुँ कमल-दल-लोचनि, थिकथि कहू के भर्त्ता ॥ ६६ ॥
कानन की कारण सौं अयलहुँ, कानन आबि कि कर्त्ता ॥ ६७ ॥
बड़ बड़ घोर निशाचर सञ्चर, पद पद आपद धयले ॥ ६८ ॥
अपन देश कारण की त्यागल, सुमुखि उचित नहि कयले ॥ ६९ ॥
सीता कहल अयोध्याधिप नृप, छल छथि दशरथ-नामा ॥ ७० ॥
तनिकर तनय सर्व्ववर-लक्षण-लक्षित पति गुण-धामा ॥ ७१ ॥
राम नाम ओ तनि लघु भ्राता, लक्ष्मण सन के आने ॥ ७२ ॥
पिता-वचन सौं दण्डक अयला, चौदह वर्ष प्रमाणे ॥ ७३ ॥
हम पौलस्त्य अमर-अरि रावण, अहँक नाम शुनि अयलहुँ ॥ ७४ ॥
राज्यपाट सौं रहित राम छथि, तनिक सङ्ग की धयलहुँ ॥ ७५ ॥
रथ पर चढ़ू चलू अहँ जानकि, क्षणमे लङ्का जायब ॥ ७६ ॥
लङ्का-विभव कहब की अहँकाँ, रानी मान्य कहायब ॥ ७७ ॥
शुनल वचन सीता भीता सनि, कहल दुष्ट रे मरबें ॥ ७८ ॥
रघुनन्दन-शर-अनल-राशि मे, शलभ जकाँ पड़ि जरबें ॥ ७९ ॥
शश वश करथि सिंह-गृहिणी काँ, तेहन तोर मन आशा ॥ ८० ॥
रामक निकट ठाढ़ खल रहबह, देखत लोक तमाशा ॥ ८१ ॥

रावण ने कहा— "हे कमल की पंखुड़ी जैसी आँखोंवाली, आप कौन हैं ? और आपके पति कौन हैं ? ६६ किस कारण से वन आयी हुई हैं ? आपके पति वन आकर क्या करेंगे ? ६७ इस वन में बड़े-बड़े भयानक राक्षस घूमते रहते हैं। यहाँ तो क़दम-क़दम पर खतरा है। ६८ किस कारण से आपने अपने देश को छोड़ा ? हे सुन्दरी, यह आपने ठीक नहीं किया।" ६९ सीता ने कहा— "अयोध्या के अधिपति दशरथ नाम के राजा थे। ७० उनके पुत्र मेरे पति हैं। वे सभी शुभ लक्षणों से समन्वित और बड़े गुणवान् हैं। ७१ उनका नाम राम है। उनके छोटे भाई का नाम लक्ष्मण है। उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। ७२ वे पिता की आज्ञा से चौदह वरस के लिए वन में आये हैं।" ७३ तब रावण ने अपना परिचय कहा— "मैं पुलस्ति-वंश का असुर रावण हूँ। आपका नाम सुनकर यहाँ आया हूँ। ७४ राम के जब राजपाट नहीं रहा, तब आप उनका साथ क्यों पकड़े हुए हैं ? ७५ हे जानकी, आप चलिए, मेरे रथ पर सवार होइए। क्षण भर में लंका पहुँच जाइएगा। ७६ लंका की जो ठाट है वह मैं आपसे क्या कहूँ ? वहाँ आप सम्मान के साथ रानी कहलायेंगी।" ७७ सीता यह बात सुनकर डर गई और बोली— "अरे दुष्ट, तुम्हारे सर पर मौत आ गई है। ७८ राम के तीर की आग की लपट में तुम पतंगे की तरह जलोगे। ७९ तुम्हारा मनोरथ वैसा ही है जैसे खरहा

॥ चौपाइ ॥

रावण लखन उठल खिसिआय। अपन भयङ्कर रूप देखाय॥ ८२॥
दश मुख विश भुज अति विस्तार। प्रलय-काल-घन सन छवि-भार॥ ८३॥
वनदेवीगण गेलि पड़ाय। बहुत त्रास ओ खाय न जाय॥ ८४॥
नखसौं धरणि विदारण कयल। सीताधार मही रथ धयल॥ ८५॥
निज कल्याण-कल्पतरु काट। रथ लय उड़ल अकाशक बाट॥ ८६॥
हा रघुनन्दन सीता भाष। अहँ बिनु प्राण हमर के राख॥ ८७॥
हा लक्ष्मण कहि कहि कत कानि। अवनि निहारथि भय मन मानि॥ ८८॥
सीता-क्रन्दन शुनि खगराज। कहल अनर्थ भेल विधि आज॥ ८९॥
पर्व्वत सौं दौड़ल तिख-लोल। रह खल ठाढ़ कयल से घोल॥ ९०॥
लोकनाथ-गृहिणी कोँ हरल। जयलह कतय दृष्टि जे पड़ल॥ ९१॥
आश्रम छथि नहि एको भाय। तस्कर सीता हरलय जाय॥ ९२॥
पुरोड़ाश श्वानक जनु भक्ष। उड़य पिपील गगन लय पक्ष॥ ९३॥

सिंहनी को अपने वश में करना चाहे। ८० जब तुम राम के सामने पड़ोगे तब लोग तमाशा देखेंगे।" ८१ यह सुनते ही रावण आगबबूला हो गया। उसने अपना डरावना रूप धारण किया। ८२ उसके दस मुँह थे और बड़ी-बड़ी बीस बाँहें थीं। उसका रंग प्रलयकाल के बादल-सा विकराल लगता था। ८३ डर से वनदेवियाँ भाग गईं। वे बड़ी आतंकित थीं कि वह राक्षस कहीं उन्हें खा न जाय। ८४ रावण ने अपने नाखूनों से धरती को चीर दिया। धरती के गर्भ में रथ रखा हुआ था। ८५ उसने मानों अपने कल्याण के कल्पवृक्ष को अपने हाथों से काट दिया। सीता को रथ पर चढ़ाकर आकाश के रास्ते निकल पड़ा। ८६

रावण का जटायु से युद्ध

सीता रथ पर विलाप करने लगी— "हा रघुनन्दन! आपके बिना मेरी प्राण-रक्षा कौन करेगा!" ८७ फिर वह लक्ष्मण के नाम पुकार-पुकारकर रोती त्रस्त हो धरती की ओर देखने लगी। ८८ सीता का विलाप सुनकर पक्षिराज जटायु ने कहा— "हा विधाता! आज ग़ज़ब हो गया।" ८९ वह तीखे चोंचवाला पक्षी पर्वत से दौड़ा और ललकारा— "अरे दुष्ट! ठहरो तो जरा। ९० तुमने त्रिभुवनपति रामचन्द्र की पत्नी का हरण किया है। अब जाओगे कहाँ? मेरी नज़र तुम पर पड़ चुकी है। ९१ आश्रम में एक भी भाई नहीं है। इसीलिए तो तुम चोर की तरह सीता को चुराकर भागे जा रहे हो। ९२ अरे यज्ञ के हविष्य को कुत्ता खायेगा! पाँख होने पर चींटियाँ आकाश में उड़ने लगती हैं।" ९३ बार-बार झपट्टा मार-मारकर

लोल चलाओल से घुरिघूरि। दशवदनक स्यन्दन देल चूरि॥ ९४॥
चरणहि सौं मारल सभ घोड़। चाप चुरल बल कयल न थोड़॥ ९५॥
सीता कों रावण देल छाड़ि। दौड़ल खल तरुआरि उखाड़ि॥ ९६॥
पक्षहीन रावण-कृत गृद्ध। हुक हुक प्राण करथु की वृद्ध॥ ९७॥
सीता कों दोसर रथ आनि। उड़ल चढ़ाय राम-भय मानि॥ ९८॥
हा रघुनन्दन मूनल आँखि। प्रभुता अपन देल कत राखि॥ ९९॥
जगन्नाथ हमरा प्राणेश। से हम जायब राक्षस-देश॥ १००॥
हा लक्ष्मण किछु अहँक न दोष। भल कहइत हम कयलहुँ रोष॥ १०१॥
तीर चलाउ अहाँ रघुनाथ। पड़लहुँ आबि कसाइक हाथ॥ १०२॥
दशकन्धर खल हरलथ जाय। मारू खलकें बाण चढ़ाय॥ १०३॥
अलङ्करण किछु अपन उतारि। बाँधल खण्ड उत्तरी फारि॥ १०४॥
सीता कनइत देल खसाय। चिह्न सन्देश राम-तट जाय॥ १०५॥
छल पर्व्वत पर बानर पाँच। बालि-बन्धु-कृत मन अति आँच॥ १०६॥
से सुग्रीव देल रखबाय। ओ रथ उच्च गमन-पथ जाय॥ १०७॥
उतरल सागर लङ्का वास। मनमे त्रास उपर मुख हास॥ १०८॥

उसने चोंच से प्रहार किया और रावण के रथ को चूर-चूर कर दिया। ९४ फिर अपने चंगुल से रथ के सभी घोड़ों को मार डाला। धनुष को तोड़ डाला। उसने कम पराक्रम नहीं दिखाया। ९५ तब रावण सीता को छोड़कर म्यान से तलवार निकालकर दौड़ा। ९६ तलवार से रावण ने गृध्रराज की पाँखें काट डालीं। उसके प्राण निकलने लगे। बेचारा बूढ़ा गीध क्या करे। ९७ तब रावण दूसरा रथ ले आया और सीता को उस पर चढ़ाकर उड़ गया। उसे राम का डर जो था। ९८ सीता विलाप करने लगी— "हाय राम! आपने न जाने क्यों आँखें फेर लीं। आपने अपना पराक्रम कहाँ रख दिया। ९९ मेरे पति सारे संसार के स्वामी हैं। वही मैं राक्षसों के देश जाऊँगी। १०० हाय लक्ष्मण! तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। तुमने भला कहा, पर मैं नाहक गुस्सा गई। १०१ हे रघुनाथ, आप तीर चलाइए। मैं क़साई के हाथ में पड़ गई हूँ। १०२ मुझे दुष्ट रावण हरण करके लिये जा रहा है। धनुष पर बाण चढ़ाकर इस दुष्ट को मारिए।" १०३ फिर सीता ने अपने कुछ गहने उतारे, अपने दुपट्टे को फाड़ उसके एक टुकड़े में उन्हें बाँध दिया; १०४ और रोते हुए उसे नीचे गिरा दिया ताकि वह पहचान के तौर पर राम के पास पहुँच जाय। १०५ वहाँ पहाड़ पर पाँच बन्दर बैठे थे। भ्राता वालि की करनी से उनके मन में सन्ताप था। १०६ उनमें से एक बन्दर सुग्रीव ने उस गठरी को रखवा दिया। उधर वह रावण का रथ ऊँचे आकाश-मार्ग से निकल गया। १०७ समुद्र को पार कर लंका पहुँचा।

॥ दोवय छन्द ॥

जाय अशोकवाटिका रावण, राक्षसि लोकक पहरा ॥ १०९ ॥
सीता कैं सभ तकइत रहिहै, आबथि ओ नहि बहरा ॥ ११० ॥
मान्यबुद्धि मन मानि दशानन, गेल छोड़ि अनठाम ॥ १११ ॥
कृशतनु शुष्कवदनि कह सीता, हा रघुनन्दन राम ॥ ११२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ रूपमाला ॥

कपट-मृग मारीच मारल, घुरल घर रघुराय ॥ १ ॥
बेखल अबइत दूरसौं मन-विकल लक्ष्मण भाय ॥ २ ॥
कयल लीला सकल अपनहिं, करथि अपनहिं शोच ॥ ३ ॥
ई मनुष्य-चरित्र विस्तृत, करथि लोकक रोच ॥ ४ ॥
त्यागि कैं प्राणेशि अयलहुँ, वत्स कहु की काज ॥ ५ ॥
दुष्ट खयलक जानकी कैं, गेल लय की आज ॥ ६ ॥

रावण के मन में तो डर था, पर ऊपर-ऊपर मुँह में मुस्कान थी। १०८ तब रावण अशोक वाटिका गया, वहाँ सीता को राक्षसियों के पहरे में रख दिया और उनसे कहा— "तुम लोग सीता की रखवाली करते रहना। वह कहीं बाहर न निकलने पावे।" १०९-११० तब वह इत्मीनान के साथ सीता को छोड़ स्वयं अन्यत्र चला गया। १११ सीता का शरीर क्षीण हो गया और चेहरा सूख गया। वह 'हा रघुनन्दन! हा राम!' पुकार-पुकारकर बिलखती रही। ११२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

आठवाँ अध्याय

जटायु की मृत्यु

राम माया-मृग रूपी मारीच को मारकर घर लौटे। भाई लक्ष्मण ने दूर से ही आते देखा। उनका मन विकल था। १-२ उन्होंने स्वयं सारी लीला की, फिर स्वयं सोच भी करते हैं। ३ लोगों के अनुरोध से वे विस्तार पूर्वक मानव की लीला करते हैं। ४ उन्होंने लक्ष्मण से पूछा— "लक्ष्मण, तुम प्राणेश्वरी जानकी को छोड़ किसी काम से आये हो? ५ क्या आज दुष्ट

छिल सोंपि विदेहजाकाँ, दोष सकल अहीँक ॥ ७ ॥
बहुत राक्षस भ्रमय वनमे, चोर अति निर्भीक ॥ ८ ॥
कहल दुहु कर जोड़ि लक्ष्मण, नाथ हमरे दोष ॥ ९ ॥
कहल सीता वचन जे जे, तीर सौं से चोख ॥ १० ॥
प्रभुक आगाँ कहि न होइछ, सहल हम भरि पोख ॥ ११ ॥
कानि कानि अनर्थ कहलनि, कयल दुस्सह रोख ॥ १२ ॥
दौड़ु लक्ष्मण यहन राक्षस-वचन पड़ितहिँ कान ॥ १३ ॥
की कहू से बताहि जेहन, कहथि आनक आन ॥ १४ ॥
देवि चिन्ता कयल जाय न, बहुत कहल बुझाय ॥ १५ ॥
कहथि सङ्कट नाथ पड़ला, जाय होउ सहाय ॥ १६ ॥
की कहब रघुनाथ हमरा, वचन भेल न शूनि ॥ १७ ॥
चाप शर लय शीघ्र चललहुँ, कान आँगुरि मूनि ॥ १८ ॥
राम कहल तथापि लक्ष्मण, बहुत अनुचित भेल ॥ १९ ॥
स्त्री-कथा की सत्य मानल, किछु विचारि न लेल ॥ २० ॥

॥ सोरठा ॥

चित चिन्तातुर राम, देखल आश्रम शून्य से ॥ २१ ॥
हा जानकि यहिठाम, त्यागि कतय गेलहुँ विकल ॥ २२ ॥

राक्षस ने जानकी को खा लिया, या पकड़कर ले गया ? ६ मैंने तो जानकी को तुम्हारे जिम्मे सौंप दिया था। यदि कुछ हुआ तो इसमें सारा दोष तुम्हारा होगा। ७ वन में बहुत-से राक्षस घूमते रहते हैं; बड़े निडर चोर भी हैं।" ८ दोनों हाथ जोड़कर लक्ष्मण ने कहा— "हे प्रभु, मेरा ही दोष है। ९ सीता ने मुझे जो-जो बात कही वह तीर से भी तीखी थी। १० वह बात आपके सामने बोलने का भी मुझे साहस नहीं है। जहाँ तक हो सका, मैंने बर्दाश्त किया। ११ वे रो-रोकर बहुत अनाप-शनाप बोलीं और बेहद गुस्से में आ गयीं। १२ 'हे लक्ष्मण, दौड़िये।' —यह बात राक्षस के मुँह से सुनते ही ये, क्या कहें, पागल की तरह अंटबंट बकने लगीं। १३-१४ मैंने बहुत समझाया-बुझाया कि 'हे देवी, नाहक चिन्ता मत कीजिए।' १५ फिर भी उन्होंने कहा— 'स्वामी संकट में पड़े हुए हैं; जाओ, उनकी मदद करो।' १६ हे रघुनाथ, मैं क्या कहूँ। मुझसे उनका कटु वचन सुना नहीं गया। १७ मैं उँगलियों से कान बन्द कर धनुष-बाण लिये तुरत चल पड़ा।" १८ राम ने कहा— "फिर भी, हे लक्ष्मण, तुमने यह बड़ा गड़बड़ किया। महिला की बात को सच समझ लिया। कुछ विचारा नहीं।" १९-२० आश्रम को सूना देखकर राम का मन चिन्ता से व्याकुल हो उठा। २१ वे बोले— हा जानकी,

॥ गीत ॥

॥ वाचिनी छन्द ॥

हाय रे कतै गेली विदेह-भूप-बाला ॥ २३ ॥
वन-दुख अनुभूत आइ शून्य पर्णशाला ॥ २४ ॥
विधिओ नहि निधन दैथि वृद्धि आधि-माला ॥ २५ ॥
विपतिहु मे विपति घोर दुर्दशा विशाला ॥ २६ ॥

॥ गीत ॥

हा हंसगती विधि देल वनमे बड़ विपती ॥ २७ ॥
हेम-हरिण पाछाँ हम दौड़लहुँ जानि पड़ल नहि एक रती ॥ २८ ॥
पिता उचित कयलनि वन देलनि पुरी अयोध्या वर नृपती ॥ २९ ॥
मृग पक्षी वनतरु वनदेवी कहु कहुँ सीता देखल सती ॥ ३० ॥
जिव सनि धनि हा हमर हेड़ाइलि दैव हरल मोर सकल मती ॥ ३१ ॥
धिक धिक प्रभुता धिकधिक जीवन निज मति भय गेल बहुत छती ॥ ३२ ॥
राम-'चन्द्र' कह हा प्रिय जानकि एत गोट दुःख कोना सहती ॥ ३३ ॥

॥ चौपाइ ॥

प्रभु सर्व्वज्ञ देखथि सभ नयन । परमानन्द वियोग अचयन ॥ ३४ ॥
निरहङ्कार अखण्डानन्द । निर्म्मल अचल चलथि निर्द्वन्द्व ॥ ३५ ॥

इस जगह को छोड़ तुम कहाँ चली गई ? २२ हाय-हाय ! राजा जनक की बेटी कहाँ चली गई ? २३ आज पहले-पहल वनवास का दुःख मालूम हुआ । २४ आज यह कुटिया सूनी हो गयी । हाय, विधाता मौत भी नहीं देता । मन में वेदना बढ़ती जा रही है । २५ विपत्ति में यह और भारी विपत्ति आ पहुँची । हमारी बुरी हालत हो गयी । २६ हा हंसगमना सीता, विधाता ने वन में मुझे भारी फेर में डाल दिया । २७ मैं सोने के हिरन के पीछे दौड़ा । तनिक भी भान नहीं हुआ कि यह वंचना है । २८ अयोध्या के राजा पिता दशरथ ने मुझ जैसे नासमझ को वनवास दिया, यह अच्छा ही किया । २९ हे मृगो, हे पक्षियो, हे वन के वृक्षो, हे वनदेवियो, बताइए, कहीं आपने सती सीता को देखा है ? ३० प्राण-जैसी प्यारी मेरी पत्नी खो गयी । विधिता ने मेरी सारी सुध-बुध हर ली । ३१ मेरे प्रभुत्व-पौरुष को धिक्कार है । मेरी ज़िन्दगी को धिक्कार है । ऐसी भारी क्षति अपनी ही बेवकूफ़ी से हो गयी । ३२ चन्द्रकवि कहते हैं, प्रिया जानकी इतना बड़ा दुःख कैसे सहेगी ?" ३३ ईश्वरावतार राम सब कुछ जानते हैं, अपनी आँखों से सब कुछ देखते हैं, परमानन्द स्वरूप हैं, फिर भी अपनी स्त्री के विछोह से व्याकुल हैं । ३४ वे अहम की भावना से रहित हैं, अखंड आनन्द-स्वरूप हैं, सत्त्व-रजस् आदि विकारों से रहित हैं, चलते हुए भी

भाया हमर इ करथि विलाप । निज माया-विस्तार-प्रलाप ॥ ३६ ॥
वन वन फिरथि न मन विसराम । तकयित सीता विरही राम ॥ ३७ ॥
देखल टूटल रथ पथ बेश । उजड़ल पुजड़ल जत तत केश ॥ ३८ ॥
लक्ष्मण देखु भेल छल मारि । नाना अस्त्र चलल तरुआरि ॥ ३९ ॥
शोणित सौँ धरणी गेलि पाटि । काक शृगाल शकल नहि चाटि ॥ ४० ॥
टूटल धनुषक देखिय खण्ड । युद्ध भेल अछि एतय प्रचण्ड ॥ ४१ ॥
सीता कां जे हरलथ जाय । तनि सौँ जनि लेल आन छोड़ाय ॥ ४२ ॥
पर्वत सन शोणित भरि अङ्ग । विकल पड़ल मूछित रण-रङ्ग ॥ ४३ ॥
सुनु लक्ष्मण राक्षस ई सेह । सीताकेँ हरि खयलक जेह ॥ ४४ ॥
सुप्त शयन कर निज्जंन आबि । देत दुःख पुन अवसर पाबि ॥ ४५ ॥
धनुष बाण अहँ सत्वर लाउ । हिनकां यमपुर झटिति पठाउ ॥ ४६ ॥
सुनि जटायु कहलनि हे राम । रावण सौँ हमरा सङ्ग्राम ॥ ४७ ॥
थिकहुँ जटायु निकट प्रभु आउ । वर्त्तमान वार्त्ता बुझि जाउ ॥ ४८ ॥
रावण हरलक सीता हाय । गगनक पथ रथ चलल उड़ाय ॥ ४९ ॥
सीता-करुण-वचन शुनि कान । दौड़लहुँ हरब दशानन-प्रान ॥ ५० ॥

अचल (कूटस्थ) हैं, सुख-दुःख से परे हैं। ३५ फिर भी जो वे 'मेरी पत्नी' ऐसा कहते बिलखते-फिरते हैं, वह तो उनकी अपनी ही माया-शक्ति की लीला है। ३६ विरह व्याकुल राम सीता को खोजते हुए वन-वन भटक रहे हैं। उनके मन में चैन नहीं है। ३७ राम ने देखा, रास्ते में एक अच्छा-सा रथ टूटा पड़ा है और जहाँ-तहाँ बाल उजड़े पड़े हैं। ३८ देखकर बोले—"लक्ष्मण, देखो, यहाँ पर लड़ाई हुई थी। तलवार आदि तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र चले हैं। ३९ लहू से धरती भीगी हुई है। लहू इतना चला है कि कौवे और सियार चाटकर खत्म न कर सके। ४० टूटे हुए धनुष का एक टुकड़ा दिखाई देता है। यहाँ घनघोर लड़ाई हुई थी। ४१ लगता है जिसने सीता का हरण किया, उससे किसी और ने छीन लिया है। ४२ लहू से लथपथ यह पहाड़-सा शरीर रणभूमि में अचेत पड़ा हुआ है। ४३ हे लक्ष्मण, सुनो, यह वही राक्षस होगा, जो सीता को हरकर खा गया है। ४४ सीता के मांस से तृप्त हो निर्जन स्थान में सोया हुआ है। मौका पाकर यह फिर चोट करेगा। ४५ इसलिए तुम झटपट धनुष-बाण लाओ, इसे तुरत यमलोक भेज दूँ।" ४६ राम की बात सुनकर जटायु ने कहा— "हे राम, मुझसे रावण से लड़ाई हुई थी। ४७ मैं जटायु हूँ। हे प्रभु, आप मेरे नजदीक आइए और हाल मालूम कीजिए। ४८ सीता का हरण रावण ने किया है। वह सीता को ले आकाश-मार्ग से रथ को उड़ाकर चला। ४९ सीता का करुण-क्रन्दन सुनकर मैं रावण को मारने के लिए दौड़ा। ५० रथ को चूर-चूर कर दिया,

रथ देल चूरि मारि देल घोड़। तोड़ल धनुष प्रताप न थोड़॥ ५१॥
सीता छीनि लेल हम नाथ। विकल भेलहुँ तरुआरिक हाथ॥ ५२॥
रे विपक्ष कयलक विनु-पक्ष। प्रभु सपक्ष विभु-धाम समक्ष॥ ५३॥
मन प्रभु-चरण-कमल अनुरागि। इच्छा होइछ तन विअ त्यागि॥ ५४॥
हम छी गृद्ध वृद्ध भेल देह। समुचित त्यागी विश्व-सिनेह॥ ५५॥
मरण-समय प्रभु सोझाँ ठाढ़। होयब मुक्त विपति छुट गाढ़॥ ५६॥
चरणेँ परस हमर करु नाथ। मरण शरण श्रीप्रभु गुणगाथ॥ ५७॥
हँसि परसन प्रभु परसल गात। वृद्ध मान्य जिमि दशरथ तात॥ ५८॥
वृद्ध गृद्ध तत त्यागल प्राण। यहन सभाग्य विश्व के आन॥ ५९॥
लक्ष्मण काष्ठ-चिता निर्म्माय। अनल आनि पुन देल लगाय॥ ६०॥
स्नान कयल विधि दूनू भाय। कहयित छल छथि हमर सहाय॥ ६१॥
गुणगण कहिकहि कर प्रभु शोच। प्रभु काँ बड़ मन भक्तक रोच॥ ६२॥
खण्ड खण्ड कय हरिणक मास। सत्वर वितरल पक्षिक ग्रास॥ ६३॥
बहुत पक्षि मिलि सुखसौँ खाथु। खगपति तृप्त परम-गति जाथु॥ ६४॥
बिष्णुक सम खगपति तन पाबि। परमेश्वर-स्तुति कर से गाबि॥ ६५॥

घोड़ों को मार दिया और धनुष को तोड़ दिया। कोई कम पराक्रम नहीं किया। ५१ सीता को उससे छीन लिया। पर जब रावण ने तलवार चलायी तो मैं घायल हो गया। ५२ दुश्मन ने मेरी पाँखें काट दीं। आप मुझ पर अनुकूल हैं, सामने स्वर्ग रखा हुआ है। ५३ मन आपके चरण में अनुरक्त है। भला इससे अच्छा अवसर कौन होगा? इसलिए अब शरीर को छोड़ देने की इच्छा होती है। ५४ मैं गीध हूँ। शरीर जराजीर्ण हो चुका है। अब यही उचित है कि दुनिया से नाता तोड़ लूँ। ५५ मरने के समय आप सामने खड़े हैं। मैं मुक्ति पाऊंगा। भारी कष्ट से छुटकारा मिल जाएगा। ५६ हे प्रभु, मुझे अपने पाँव का स्पर्श करा दीजिए। हे यशस्वी प्रभु, मरने के समय आप मेरी शरण होइए।" ५७ प्रभु राम ने प्रसन्न हो मुस्कराकर उसके शरीर का स्पर्श कर लिया, जो उनके पिता दशरथ के समान सम्मान्य था। ५८ बूढ़े गीध ने वहाँ प्राण-त्याग कर दिया। ऐसा सौभाग्यशाली दुनिया में और कौन होगा? ५९ लक्ष्मण ने लकड़ी बटोरकर चिता सजायी और आग लाकर उसे जला दिया। ६० दोनो भ्राताओं ने विधिपूर्वक स्नान किया और बोले कि ये हमारे बड़े मददगार थे। ६१ राम उसके गुणों का बखान करते हुए शोक प्रकट करते। ईश्वर को अपने भक्त का बड़ा खयाल रहता है। ६२ फिर एक हिरन के मांस को टुकड़े-टुकड़े करके पक्षियों के बीच ग्रास बाँटे। ६३ प्रभु की कामना थी कि बहुत-सारे पक्षी मिलकर इस ग्रास को खायें, जिससे कि पक्षिराज जटायु की आत्मा तृप्त हो और वे परमगति (मोक्ष) प्राप्त करें। ६४ मरकर गृध्रराज ने विष्णु के समान

॥ हरपद छन्दः गीतम् ॥

कमला-रमणम् । नाभि-सरोरुह्-विधि-शरणम् ॥ ६६ ॥
नौमि महेन्द्रविबुधतस्सततं संसेवित-पङ्कज-चरणम् ॥ ६७ ॥
धरणी-भार-विनाश-हेतवे सङ्कल्पित-रावण-मरणम् ॥ ६८ ॥
अप्रमेयमगणितगुणमीशं पितृवचनेन वनभ्रमणम् ॥ ६९ ॥
मायानिज-लीलाबिस्तारं हतखरदूषणसंसरणम् ॥ ७० ॥
अचलमगोचरमणुतोप्यणुमथ माया-हेम-हरिण-हरणम् ॥ ७१ ॥
त्वामिह राम जने किल मादृशि गुणनिधिमतुलकृपाकरणम् ॥ ७२ ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म-सुपूजित-पद तखन, खगपति से गेलाह ॥ ७३ ॥
रामाज्ञा सौँ हर्ष मन, बिस्मित सुर भेलाह ॥ ७४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥

दिव्य शरीर प्राप्त किया और गा-गाकर प्रभु रामचन्द्र की स्तुति करने लगे। ६५ "भगवान् लक्ष्मीपति को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनकी नाभि से निकला हुआ कमल का फूल ब्रह्मा का आसन है, ६६ जिनके चरण-कमल की सेवा चारों ओर से इन्द्र आदि देवता जुटकर करते हैं, ६७ जिन्होंने धरती के भार को दूर करने के लिए रावण को मारने का संकल्प किया है, ६८ जो असीम हैं, असंख्य गुणों से युक्त हैं प्रभु अर्थात् सब कुछ करने में समर्थ हैं और पिता की आज्ञा से वन में घूम रहे हैं, ६९ जो अपनी माया के सहारे नाना तरह की लीला करते हैं, जिन्होंने खर और दूषण के प्राण हरे हैं, ७० जो अचल हैं, अगोचर हैं, अणु से भी अणु-रूप हैं और जो मायावश सोने के हिरन को पकड़ने के लिए उद्यत हैं। ७१ हे गुणनिधि राम, तुम मुझ जैसे लोगों पर अपार कृपा करनेवाले हो। ऐसे तुमको मैं प्रणाम करता हूँ।" ७२ तब पक्षिराज जटायु राम से आज्ञा लेकर हर्षितचित्त से ब्रह्मलोक पहुँचे। यह देख देवता लोग विस्मित हो उठे। ७३-७४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

॥ दोधय छन्द ॥

रामचन्द्र वैदेही-विरही प्राप्त वनान्तर जखना ॥ १ ॥
घोर कबन्ध बाहु योजन भरि राक्षस देखल तखना ॥ २ ॥
पड़ला तकरा बाहुपाशमे सानुज देखल आँखी ॥ ३ ॥
की कर्त्तव्य कहू कहु लक्ष्मण प्रभु उठला ई भाखी ॥ ४ ॥
चरण-मौलि सौं रहित लोथ अछि, वक्ष-स्थलमे आनन ॥ ५ ॥
आन उपाय रहल नहि सम्प्रति, खाय चहै अछि कानन ॥ ६ ॥
लक्ष्मण कहल खड्ग सौं हिनकर, बाहु दुहूटा काटी ॥ ७ ॥
यहन निशाचर शुनल कान नहि, की विश्वक परिपाटी ॥ ८ ॥
रामचन्द्र तनिकर दक्षिण भुज, लक्ष्मण काटल बामा ॥ ९ ॥
विस्मित दैत्य पुछल भुज-कर्त्तक, के दुहु जन गुणधामा ॥ १० ॥
पुरी अयोध्या दशरथनन्दन, राम लखन दुहु भ्राता ॥ ११ ॥
एतय विपिन सौं प्राणवल्लभा हरलक खल दुखदाता ॥ १२ ॥
तनिकहि तकइत तकइत यहि वन,तुअ भुज-पञ्जर अयलहुं ॥ १३ ॥

नौवाँ अध्याय

कबन्ध-वध

सीता से बिछुड़े हुए राम जब दूसरे वन में गये, तब उन्होंने कबन्ध नामक एक भयावने राक्षस को देखा, जिसकी बाँहें एक योजन (चार कोस) के बराबर लम्बी थीं। १-२ दोनो भाईयों ने देखा कि वे उस राक्षस के बाहुपाश में फँस गये हैं। ३ तब राम बोले— "हे लक्ष्मण, कहो-कहो। अब क्या किया जाए? ४ इसके न पाँव हैं, न सिर। यह लोथ (संचारहीन) पड़ा हुआ है। इसका मुँह छाती में है। ५ अब और कोई उपाय नहीं रहा। यह तो सारे जंगल को ही खा जाना चाहता है।" ६ लक्ष्मण ने कहा— "तलवार से इसकी दोनो बाहें काट डालिए। ७ ऐसा राक्षस तो कहीं सुना ही नहीं था। दुनिया की अजब-अजब चालें हैं।" ८ राम ने उसकी दाहिनी बाँह काटी और लक्ष्मण ने बायीं बाँह। ९ तब राक्षस ने चकित होकर पूछा— "मेरी बाँहें काटनेवाले आप दोनों कौन हैं?" १० राम ने उत्तर दिया— "अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र, हम राम और लक्ष्मण दोनो भाई हैं। ११ यहाँ इस वन से एक दुखदायी बदमाश ने मेरी प्राणप्यारी को हर लिया है। १२ उसी प्राणप्यारी को खोजते-खोजते इस वन में आकर तुम्हारे

प्राण-त्राण हेतु भुज काटल, सङ्कट सौं बहरयलहुँ ॥ १४ ॥
विकट-रूप तों के छह से कह, यहन देखल हम आजे ॥ १५ ॥
श्रवणहुँ नहि छल तोहर रूप ई, देखल कानन-राजे ॥ १६ ॥
हम गन्धर्व्व-राज शुनु हे प्रभु, यौवनदर्पित भेलहुँ ॥ १७ ॥
अष्टावक्र देखल हम जखना, तखना हम हँसि देलहुँ ॥ १८ ॥
शाप देल तें राक्षस भेलहुँ, तुष्ट कहल भल हयब: ॥ १९ ॥
त्रेता रामचन्द्र-दर्शन सौं, अपन रूप कौं पयब: ॥ २० ॥
इन्द्रक हम अपराधी भेलहुँ, कयलनि अशनि-प्रहारे ॥ २१ ॥
माथ पयर सभ पेट समायल, बाहु रहल व्यवहारे ॥ २२ ॥
हम अवध्य ब्रह्माक देल वर, मुइलहुँ नहि तत्काले ॥ २३ ॥
जठर मध्य मुह हयतौ तोहरा, कहलनि इन्द्र दयाले ॥ २४ ॥

॥ चौपाइ ॥

भल भेल भल भेल कटि गेल बाँहि । रामचन्द्र प्रभु देल निवाहि ॥ २५ ॥
मोर मुह काठें भरि दिअ आब । तहिमे अनलक सङ्गति पाब ॥ २६ ॥
जरि जायब हम पायब रूप । पूर्व्व जेहन छल हे विभु-भूप ॥ २७ ॥
लक्ष्मण तेहन कयल तत्काल । भेल पुरुष एक कान्ति विशाल ॥ २८ ॥

बाहुपाश में पड़ गया हूँ। १३ मैंने अपने प्राण बचाने के लिए तुम्हारी बाँह काटी। इस तरह मैं इस संकट से उबरा। १४ ऐसी विकट आकृतिवाले तुम कौन हो? ऐसा तो मैंने आज ही देखा है। १५ तुम्हारा यह रूप सुना भी नहीं था, सो आज इस वन में देख लिया।" १६ कबन्ध ने उत्तर दिया— "हे प्रभु, सुनिए। मैं गन्धर्वराज हूँ। मैं एक समय जवानी की मस्ती में था। १७ मैंने जब अष्टावक्र ऋषि को देखा तो हँस दिया। १८ उन्होंने मुझे शाप दे दिया। मैं राक्षस हो गया। फिर अनुनय-विनय से मैंने उन्हें प्रसन्न किया और उन्होंने कहा— 'तुम ठीक हो जाओगे। १९ त्रेतायुग में जब रामचन्द्र का दर्शन होगा, तब तुम्हें फिर अपना गन्धर्वरूप प्राप्त हो जाएगा।' २० फिर मैंने इन्द्र का अपराध किया। उन्होंने मुझ पर वज्र से प्रहार किया। २१ उससे मेरा सिर और पैर पेट में चले गये, काम के लिए केवल बाहें रह गयीं। २२ ब्रह्मा ने वर दिया था कि मुझे कोई मार नहीं सकेगा, इसलिए मैं तुरत मर नहीं गया। २३ दयालु इन्द्र ने कहा— 'तुम्हें पेट में ही मुँह हो जाएगा।' २४ भला हुआ, भला हुआ कि मेरी बाहें कट गयीं। प्रभु रामचन्द्र ने मुझे पार लगा दिया। २५ अब आप मेरे मुँह में लकड़ी भर दीजिए और उसमें आग लगा दीजिए। २६ मैं जल जाऊँगा। हे परमेश्वर राजा राम, उसके बाद फिर गन्धर्व का वह स्वरूप पा जाऊँगा जो पहले था।" २७ लक्ष्मण ने तुरत ऐसा ही किया। जलने पर उस

सर्व्वाभरण-विभूषित देह। मनसिज सन सुन्दर छवि-गेह ॥ २९ ॥
नत साष्टाङ्ग भक्ति-मति-धाम। रामचन्द्र काँ कयल प्रणाम ॥ ३० ॥
स्तुति कत कयल हाथ दुहु जोड़ि। परमेश्वर देल बन्धन तोड़ि ॥ ३१ ॥
धनुर्व्बाणधर श्याम शरीर। जटिल सुवल्कल भूषण वीर ॥ ३२ ॥
जेहन देखि पड़ अविरल ध्यान। तेहन सतत रह लोभ न आन ॥ ३३ ॥
प्रभु शबरी सिद्धा यहिठाम। कहइक छोटि जाति ई नाम ॥ ३४ ॥
भक्तिस्वरूपा से बड़ बूढ़ि। प्रभु-सेवा मे अति आरूढ़ि ॥ ३५ ॥
रामचन्द्र कहलनि अहँ जाउ। मुनिजन-गम्य धाम काँ पाउ ॥ ३६ ॥
शुनि प्रभु-वचन चलल गन्धर्व्व। तनिकर पूर्ण मनोरथ सर्व्व ॥ ३७ ॥

॥ सोरठा ॥

चढ़ि रथ भानु समान, राम राम रटयित रसन ॥ ३८ ॥
धन्य धन्य भगवान, जे तारल खल अधम काँ ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे नवमोऽध्यायः ॥

आग से एक दीप्तिमान् विशाल पुरुष निकला। २८ उसका अंग-अंग गहनों से सजा था। वह कामदेव-जैसा सुन्दर लगने लगा। २९ परम् भक्त और ज्ञानवान् उस गन्धर्व ने रामचन्द्र को दण्डवत् प्रणाम किया। ३० दोनों हाथ जोड़कर बहुत स्तुति की— "हे परमेश्वर, आपने मुझे भव-बन्धन से मुक्त कर दिया। ३१ हाथ में धनुष-बाण लिये, जटा धारण किये, सुन्दर बल्कल पहने, श्यामवर्ण शरीरवाले आप अभी जिस वीररूप में दिखायी दे रहे हैं, वैसे ही रूप का ध्यान निरन्तर बना रहे, यही मेरी कामना है। मुझे और कोई लोभ नहीं है। ३२-३३ हे प्रभु, एक सिद्ध शबरी यहाँ रहती है। कहने के लिए तो शबरी नीच जाति की है। ३४ पर वह परम् वृद्धा, बड़ी भक्त है और ईश्वर की आराधना में लगी रहती है।" ३५ तब राम ने कहा— "आप जाइए और वह पद पाइए, जहाँ ऋषि-मुनि लोग पहुँचते हैं।" ३६ राम की बात सुनकर गन्धर्व चला गया। उसकी सारी कामना पूरी हो गयी। ३७ सूर्य के समान चमकते हुए रथ पर चढ़कर जिह्वा से राम-राम रटते हुए वह चला गया। ३८ भगवान् राम धन्य हैं, जिन्होंने (कबन्ध जैसे) दुष्ट और नीच प्राणी को भी उबारा। ३९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में अरण्यकाण्ड का नौवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ दशमोऽध्याय: ॥

॥ चौपाइ ॥

ओ वन छोड़ि वनान्तर प्राप्त। सीता-विरह-अग्नि मन व्याप्त॥ १ ॥
शबरी देखल प्रभुक स्वरूप। आइलि आनन्दमयि चुपचूप॥ २ ॥
मन एकाग्र सनक सन केश। दिनकर-कान्ति तपस्विनि-वेश॥ ३ ॥
राम-चरण पर धयलनि माथ। कह जय जय सानुज रघुनाथ॥ ४ ॥
पुलक शरीर नयन बह नोर। कह जय जय जय श्यामल गोर॥ ५ ॥
निकटहि कुटि देखक थिक ओह। नाथ परशमणि हम छी लोह॥ ६ ॥
हम कुवस्तु जन जन विख्यात। प्रभु रवि-चन्द्र-किरण-संघात॥ ७ ॥
शबरी-भक्ति-विवश श्रीराम। हर्षित गेला तनिकर धाम॥ ८ ॥
भल भल जल लय पयर धोआब। से जल लय लय माथ चढ़ाब॥ ९ ॥
कन्द मूल फल भल भल आन। अतिशय प्रेम-मगन भगवान॥ १० ॥
खाथि कहथि अमृतक अभिमान। हरल यहन रसना रस जान॥ ११ ॥

॥ गीत दोबय छन्द: ॥

कि कहब करणी, हे प्रभु, हम शबरक घरणी ॥ १२ ॥
चारू पन हम वनहि गमाओल, विषय-व्याध हम जनु हरिणी ॥ १३ ॥

दसवाँ अध्याय

शबरी से भेंट और उसकी मोक्ष-प्राप्ति

सीता के विरह की आग से सन्तप्त-हृदय राम उस वन को छोड़कर दूसरे वन में आये। १ वहाँ शबरी ने प्रभु राम का स्वरूप देखा और आनन्द-विभोर हो चुपके से उनके पास दौड़ आयी। २ उसने राम के पाँवों पर अपना शिर रख दिया और बोली— "अनुज-सहित रघुनाथ की जय हो।" ३ उसकी देह में रोंगटे खड़े हो गये। आँखों से आँसू बहने लगे। वह जयकार करने लगी— "श्याम और गौरवर्ण वाले राम और लक्ष्मण की जय हो! ४-५ वह पास में ही मेरी कुटिया है, ज़रा देखिए। प्रभु, आप पारस हैं और मैं लोहा हूँ। ६ मैं नाचीज़ हूँ, यह हर कोई जानता है। आप तो सूर्य और चन्द्र के किरण-पुंज के समान देदीप्यमान हैं।" ७ शबरी की भक्ति से विवश हो राम हर्ष के साथ उसके घर गये। ८ उसने पानी लेकर अच्छी तरह उनके पाँव पखारे और पाँव का पानी लेकर अपने माथे पर छिड़का। ९ अच्छे-अच्छे कन्द-मूल-फल ले आयी। भगवान राम बड़े ही प्रेम में मग्न हो खाते और कहते— "अरे, ये तो अमृत के भी घमंड को चूर करते हैं, जीभ को ऐसा ही स्वाद लग रहा है।" १०-११ शबरी ने कहा— "मैं अपनी करनी क्या कहूँ? हे प्रभु, मैं तो शबर-जाति की स्त्री ठहरी। १२ जीवन की चारों

ई संसार-समुद्र तरब हम, पायोल प्रभुक चरण तरणी ॥ १४ ॥
माया-मानुष भूप-शिरोमणि, श्याम गौर छवि की बरणी ॥ १५ ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण बनि अयलहुँ, मन आनन्द अमर घरणी ॥ १६ ॥
योग-अनल जरि तत्पद पायोब, जतय न फेरि जनन मरणी ॥ १७ ॥
जय जय रामचन्द्र जय लक्ष्मण, मायापन्नगि हम मरणी ॥ १८ ॥

॥ चौपाइ ॥

गुरु महर्षि छल छथि यहि ठाम। से सब गेला ब्रह्मक धाम ॥ १९ ॥
चलयित तनिकाँ कयल प्रणाम। ओ कहलनि थिर रह यहि ठाम ॥ २० ॥
राक्षस लोक क मारण काम। अयोता रघुनन्दन यहिठाम ॥ २१ ॥
सम्प्रति चित्रकूट गिरि वास। भक्तिमती तोर पूरत आस ॥ २२ ॥
यावत आबथि विभु रघुवीर। तावत राखह अपन शरीर ॥ २३ ॥
तनिकर दर्शन जे छन प्राप्त। जयबह तत्पद देह समाप्त ॥ २४ ॥
जेहन कहल छल सुगुरु महान। तेहन कयल छल अपनँक ध्यान ॥ २५ ॥
पुरल मनोरथ देखल आँखि। हम कृत्यकृत्य वृथा की भाखि ॥ २६ ॥

अवस्थाओं को मैंने जंगल में ही बरबाद किया। मैं हिरन के समान रही और विषय रूपी व्याध मेरा शिकार करते रहे। १३ अब मैं इस संसार रूपी समुद्र को पार कर जाऊँगी, क्योंकि आपका चरण रूपी जहाज़ मिल गया है। १४ आप माया के ज़रिए मनुष्य का रूप धारणकर श्रेष्ठ राजा बने हुए हैं। आप दोनों के श्याम और गौरवर्ण की छटा का वर्णन कहाँ तक करूँ। १५ आप निर्गुण ब्रह्म होकर भी सगुण-साकार बनकर आये। मेरा मन आनन्दित हो गया। घर अमर हो गया। १६ अब मैं योग की आग में जलकर उस परम पद को प्राप्त करूँगी, जहाँ जाकर फिर जन्म और मरण नहीं होते। १७ रामचन्द्र की जय हो! लक्ष्मण की जय हो! मैं माया रूपी नागिन की डँसी हूँ। १८ गुरु, महर्षि लोग यहाँ रहते थे। वे सभी ब्रह्मलोक चले गये। १९ जाते समय उन्हें मैंने प्रणाम किया। उन्होंने कहा— 'तुम यहीं टिको। २० राक्षसों का संहार करने के लिए राम यहाँ आएँगे। २१ अभी तुम चित्रकूट पर्वत पर रहो। हे भक्तिमती, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। २२ जब तक परमेश्वर राम यहाँ आएँ, तब तक तुम अपने शरीर को कायम रखो। २३ जिस क्षण उनका दर्शन हो जाएगा, उसी क्षण तुम्हारा शरीर समाप्त हो जाएगा और तुम उनके पद को (राम के सायुज्य) प्राप्त करोगी।' जैसा महान् सद्गुरु ने कहा था, मैंने वैसा ही किया और आपका ध्यान लगाये रही। २४-२५ आज अपनी आँखों से आपको देखा। मेरी कामना पूरी हो गयी। मैं कृतकृत्य हो गयी। अधिक कहकर क्या होगा? २६ मैं नीच जाति की हूँ, अतः आपकी दासी बनने का मुझे अधिकार

नहि दासीत्व विषय अधिकार। तदपि कयल प्रभु हमर उधार ॥ २७ ॥
यावत योग-अनल हम जरब। प्रभु रहु निकट विकट तम तरब ॥ २८ ॥

॥ सोरठा ॥

प्रभु पम्पासर जाउ, किष्किन्धा सुग्रीव छथि ॥ २९ ॥
सीता-वार्ता पाउ, करु चरित्र माया-रचित ॥ ३० ॥
प्रभुपद-कमल निहारि, महाभक्ति सम्प्राप्त से ॥ ३१ ॥
योग-अग्नि तन जारि, भक्तिमती कयलनि तथा ॥ ३२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे आरण्यकाण्डे दशमोऽध्यायः ॥

॥ इति आरण्यकाण्ड ॥

नहीं है। फिर भी आपने मेरा उद्धार किया। २७ जब तक मैं योग की आग में जलती हूँ, तब तक आप कृपाकर मेरे निकट रहिए। मैं आज घने अन्धकार को पार करूँगी। २८ हे प्रभु, आप पम्पासर जाइए। वहाँ किष्किन्धा में सुग्रीव रहते हैं। २९ वहाँ सीता की खोज कीजिए। वहाँ मायावश मानव की लीला कीजिए।" ३० इतना कहकर शबरी ने राम के चरण-कमल का दर्शन किया और भक्ति के सागर में निमग्न हो गयी। ३१ फिर योग की आग में शरीर को जलाकर उस भक्तशिरोमणि ने वैसा ही किया जैसा कहा गया था। ३२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में
अरण्यकाण्ड का दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अरण्यकाण्ड समाप्त ॥

किष्किन्धाकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ पृथ्वीछन्दः ॥

भ्रमन्निबिड़काननम्बहुलभोगिपञ्चाननं ॥ १ ॥
सतीजनशिरोमणिञ्जनकजां हि पृथ्वीजनिम् ॥ २ ॥
स्मरन्नतुलविक्रमः श्रितकनिष्ठबन्धूत्तमो ॥ ३ ॥
ददातु कुशलं सदा जगति वत्तमायाभ्रमः ॥ ४ ॥
सुग्रीवबान्धवभयोत्थितघोरदुःख- ॥ ५ ॥
पाथोधिशोषणमहाबलकुम्भयोनिः ॥ ६ ॥
श्रीमद्रघूत्तमविलोकनदुःखशेषः ॥ ७ ॥
पायात्स मारुतसुतो धृतविप्रवेषः ॥ ८ ॥

॥ चौपाइ ॥

लक्ष्मण-सहित राम रणधीर। गेला पम्पा-सरबर-तीर ॥ ९ ॥
मन विस्मययुत भेल तहिठाम। सानुज प्रभु कयलनि विश्राम ॥ १० ॥
एक कोश परिपूरित वारि। हंसप्रभृति खग बस जलचारि ॥ ११ ॥

पहला अध्याय

राम का पम्पासर जाना

सर्पों और सिंहों से भरे घने जंगलों में घूमते हुए, सतीशिरोमणि भूमि-सुता जानकी के स्मरण में लीन, छोटे भाई को साथ में लिये, अनुपम पराक्रमी, माया का भ्रम फैलानेवाले भगवान रामचन्द्र हमारा कल्याण करें। १-४ विप्र का रूप धारण किये पवनसुत हनुमान हमारा पालन करें, जो सुग्रीव के मित्र रामचन्द्र के भयजन्य, घोर दुःख रूपी समुद्र को सोखने में महाबली अगस्त्य के समान हैं, और जिनके सारे दुःख रामचन्द्र का दर्शन करते ही दूर हो जाते हैं। ५-८ रणबाँकुरे रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ पम्पासर के किनारे गये। ९ पहुँचते ही मन प्रसन्न हो गया और अनुज-सहित रामचन्द्र ने वहाँ विश्राम किया। १० एक कोस तक पानी फैला हुआ था। उसमें हंस आदि जलचर

नित्यकृत्य कए कृत-जलपान। पुनि उठि दुहुजन कयल प्रयाण ॥ १२ ॥
ऋष्यमूक पर्व्वत लग गेल। कपि सुग्रीव से देखयित भेल ॥ १३ ॥
गिरि-शिखरस्थ बहुत भय पाय। के ई थिकथि बुझल नहि जाय ॥ १४ ॥
वल्कल वसन जटा शिर राज। तर्कयित तरुवन की अछि काज ॥ १५ ॥
धनुष बाण कर वीर महान। की वृत्तान्त न हो अनुमान ॥ १६ ॥
मन्त्री चारि विचारिय मन्त्र। अबयित छथि दुओ वीर स्वतंत्र ॥ १७ ॥
की जनुवैरि पठाओल बालि। जयता हमर जीव की घालि ॥ १८ ॥
जाउ निकट वटु बनि हनुमान। साधु असाधु करू मन ज्ञान ॥ १९ ॥
जौं अनिष्ट बुझलासौं आब। युगुतिहि तेहन जनायब भाव ॥ २० ॥
गमहि पठायब राखब प्राण। से शुनि ततय गेला हनुमान ॥ २१ ॥
ब्राह्मण वेष सुलेख बनाय। विनय सदय गुणमय सन्न्याय ॥ २२ ॥
पुछल अमल के पुरुष पुराण। अहँ कहु विश्ववीज भगवान ॥ २३ ॥
ईश्वर-लक्षण-लक्षित वेष। माया-मानुष रूप विशेष ॥ २४ ॥
भूमि-भार-हारक अवतार। दुहु जन मुहसँ परम उदार ॥ २५ ॥

पक्षी भरे थे। ११ सुबह उठकर दोनों भाइयों ने नित्यकर्म करके जलपान किया, फिर उठकर घूमने चल पड़े। १२ जब दोनों ऋष्यमूक पर्वत के पास आये, तब कपिराज सुग्रीव ने उन्हें देखा। १३ वे पर्वत की चोटी पर बैठे डरकर (सोचने लगे—) 'अरे, ये दोनों कौन हैं? कुछ समझ में नहीं आता। १४ दोनों पेड़ के खाल पहने हुए हैं, सिर पर जटा शोभित है और जंगल में कुछ खोज रहे हैं। न जाने क्या काम है? १५ दोनों महान वीर लगते हैं क्योंकि दोनों के हाथों में तीर और धनुष हैं। बात क्या है, कुछ समझ नहीं पड़ता। १६ चारों मन्त्रियों को बुलाकर नीतिविषयक विचार किया जाए। ये दोनों स्वतन्त्र वीर इधर ही आ रहे हैं। १७ क्या वालि नें दुश्मनों को भेजा है? क्या ये हमारे प्राण लेने आये हैं?' १८ ऐसा सोचकर सुग्रीव ने हनुमान से कहा— "हे हनुमान, आप वटु (ब्राह्मणकुमार) का रूप धारण कर उनके पास जाइए और यह मालूम कीजिए कि इनकी नीयत भली है या बुरी। १९ यदि कोई अनिष्टाशंका हो तो युक्ति से ही अपना भाव प्रकट करना। २० अपनी जान बचाना और शान्तिपूर्वक उन्हें भेज देना।" इतना सुनकर हनुमान वहाँ चल पड़े। २१ वे ब्राह्मण (वटु) का आकर्षक बाना बनाये हुए थे तथा विनय, दया, विवेक आदि गुणों से युक्त थे। २२ जाकर हनुमान ने उन दोनों से पूछा— "आप दोनों कौन हैं? मुझे तो लगता है कि आप विश्व के बीज-स्वरूप, निर्मल आदिपुरुष भगवान हैं। २३ आपके वेष में ईश्वर के लक्षण दिखायी देते हैं। शायद आपने मायावश मनुष्य का रूप बना रखा है। २४ आपने धरती के भार को दूर करने के लिए अवतार लिया है। २५ हे संसार के स्वामी, आप

जगन्नाथ क्षत्रिय तन धयल। भ्रमयित वन आनन्दित कयल ॥ २६ ॥
अपनें नारायण नहि आन। हमरा यहन होइछ अनुमान ॥ २७ ॥
प्रतिपालक प्रभु धर्म्मक सेतु। एत आगमनक बुझल न हेतु ॥ २८ ॥
से शुनि प्रभु लक्ष्मण सौं कहल। तखनुक उचित समय जे रहल ॥ २९ ॥
ई वटु पटु पण्डित बुधि बेश। सुवचन-रचन अशुद्ध न लेश ॥ ३० ॥
ई कहिकें तनिकां दिश ताक। शुनु वटु उत्तर दैछि अहाँक ॥ ३१ ॥
दशरथ नृपक पुत्र हम राम। अनुज हमर ई लक्ष्मण नाम ॥ ३२ ॥
अयलहुँ दण्डक कहलनि तात। सङ्ग सती सीता विख्यात ॥ ३३ ॥
तनिकां छलसौं हरलक चोर। प्राणाधिक प्रयसि से मोर ॥ ३४ ॥
हुनका तकइत अयलहुँ आज। के अहँ ककर कहू की काज ॥ ३५ ॥
से शुनि विहित वचन कह फेरि। श्याम गौर मुख-नीरज हेरि ॥ ३६ ॥
ई गिरि पर छथि से कपिराज। चारि मन्त्रिवर तनिक समाज ॥ ३७ ॥
वालिक भाय नाम सुग्रीव। देह दूइ एके जनु जीव ॥ ३८ ॥
काम कालगति कहल न जाय। सोदर कयल अकथ अन्याय ॥ ३९ ॥
जेठ भाय लेल सम्पति नारि। विकल पड़ल छथि बालिसौं हारि ॥ ४० ॥

बड़े उदार हैं। आपने क्षत्रिय का रूप धरकर वन में भ्रमण करते हुए हमें आनन्दित किया। २६ मुझे तो ऐसा अनुमान होता है कि आप कोई और नहीं, साक्षात् नारायण हैं। २७ हे प्रभु, आप धर्म के सेतु की रक्षा करनेवाले हैं। हमें यह नहीं समझ में आया कि आप यहाँ किस काम से आये ?" २८ यह सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा, जैसा कि उस वक्त उचित था। २९ "यह लड़का पक्का पंडित है। इसकी बुद्धि अच्छी है। सुन्दर वचन बोलता है। गलती कहीं नहीं होती।" ३० यह कहकर राम उसकी ओर नज़र करके बोले— "हे वटु, सुनिए आपका जवाब मैं देता हूँ। ३१ मैं राजा दशरथ का बेटा हूँ। यह लक्ष्मण मेरा छोटा भाई है। ३२ पिता की आज्ञा से मैं दंडकवन आया। साथ में मेरी साध्वी पत्नी सीता भी थी। ३३ उसको एक चोर ने ठगकर हर लिया। वह मुझे प्राण से भी बढ़कर प्यारी थी। ३४ उसी को खोजते मैं आज यहाँ आया हूँ। आप कौन हैं, किनके आदमी हैं और क्या काम है ?" ३५ यह सुनकर तथा राम और लक्ष्मण के क्रमशः साँवले और गोरे चेहरे को देखकर हनुमान उचित वचन बोले। ३६ "इस पर्वत पर एक कपिराज अपने चार मन्त्रियों के साथ रहते हैं। ये वालि के भाई हैं। इनका नाम सुग्रीव है। ३७ दोनों भाइयों में बड़ी मैत्री थी, मानों दो शरीर एक प्राण हों। ३८ काम-वासना की लीला कही नहीं जा सकती। सगे भाई ने ऐसा अन्याय किया जो कहा नहीं जा सकता। ३९ बड़े भाई ने इनके राज्य और पत्नी का हरण कर लिया। वे वालि से हारकर विकल पड़े हुए हैं। ४०

ऋष्यमूक गिरि शापक भीति। एतय न तैं कय शकथि अनीति ॥ ४१ ॥
पवनक तनय नाम हनुमान। हम सुग्रीवक मन्त्रि प्रधान ॥ ४२ ॥
तनिक सङ्ग प्रभु मैत्री करिय। मित्र मित्र मिलि आपद तरिय ॥ ४३ ॥
प्रभु हम सत्वर चललहुँ ततय। रुचि हो तौं चलि ओ छथि जतय ॥ ४४ ॥
कहल राम हम मैत्री करब। तनिकर कष्ट विकट झट हरब ॥ ४५ ॥
अकपट प्रकट रूप सभ कहल। सुग्रीवक वृत्तान्त जे रहल ॥ ४६ ॥
हमरा काँध चढ़िअ दुहु भाय। कपिपति निकट देब पहुचाय ॥ ४७ ॥
प्रभु सौं जेहन कहल हनुमान। सानुज तेहन कयल भगवान ॥ ४८ ॥
पर्व्वत-शिखर उपर श्रीराम। जाय कयल तरुतर विसराम ॥ ४९ ॥

॥ दोहा ॥

मुदित मनोरथ-सिद्धि सन, अति हर्षित मन आज ॥ ५० ॥
महावीर कहु कहु कुशल, पुछल चकित कपिराज ॥ ५१ ॥

॥ चौपाइ ॥

हाथ जोड़ि कहलनि हनुमान। छथि अनुकूल विष्णु भगवान ॥ ५२ ॥
आधिक अवधि अन्त दिन आज। से प्रभु अयला अहक समाज ॥ ५३ ॥
करु करु मैत्री कपिपति जाय। आनल हम निज काँध चढ़ाय ॥ ५४ ॥

यह ऋष्यमूक पर्वत है, यहाँ आने में वालि को शाप का डर है, इसलिए वे यहाँ आकर अन्याय नहीं कर रहे हैं। ४१ मैं वायु का बेटा 'हनुमान' हूँ और राजा सुग्रीव का प्रधान मन्त्री हूँ। ४२ हे प्रभु, आप उनके साथ मैत्री कीजिए और दोनों मित्र मिलकर पत्नी-हरण रूपी विपत्ति का प्रतिकार कीजिए। ४३ हे प्रभु, मैं तुरत अपने प्रभु के पास चला, यदि आपकी भी इच्छा हो तो उनसे मिलने के लिए चलिए।" ४४ राम ने कहा— "मैं ज़रूर उनसे दोस्ती करूँगा और उनके कष्ट को तुरत दूर करूँगा।" ४५ इतना सुनकर हनुमान अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए और सुग्रीव का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ४६ फिर बोले— "आप दोनों भाई मेरे कन्धों पर चढ़ जाइए; मैं कपिराज सुग्रीव के पास पहुँचा दूँगा।" ४७ हनुमान ने राम से जैसा कहा, भाई-सहित भगवान राम ने वैसा किया। ४८ तब राम ने पहाड़ी की एक चोटी पर एक पेड़ के नीचे विश्राम किया। ४९ लौटे हुए हनुमान से कपिराज सुग्रीव ने विस्मय-सहित पूछा— "हे महावीर, आज लगता है कि काम बनने से आपका मन अति हर्षित है। कहिए, क्या हाल है ?" ५०-५१ – तब हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा— "भगवान विष्णु अनुकूल हैं। ५२ आज दुख की घड़ी का अन्तिम दिन है। वे दोनों महानुभाव आपके पास आये हैं। ५३ हे कपिराज, आप उनसे मिलकर मैत्री कीजिए। मैं दोनों को अपने कन्धों पर

साक्षी अनल बनल रहु मित्र। सकल अमानुष राम-चरित्र ॥ ५५ ॥
संक्षेपहि कहलनि हनुमान। सानुज राम थिकथि भगवान ॥ ५६ ॥
निर्भय चलू मित्रता करिय। बालिक गर्व्व सर्व अहँ हरिय ॥ ५७ ॥
मन अति हर्षित ततय कपीश। गेला जतय राम जगदीश ॥ ५८ ॥
तरु-वर-शाखा लय कँहु हाथ। देल ताहि बैसक रघुनाथ ॥ ५९ ॥
कुशल सकल बुझि बैसला दान्त। लक्ष्मण कहल सकल वृत्तान्त ॥ ६० ॥
शुनि सुग्रीव रामकें कहल। सब विधि करब सकल हम टहल ॥ ६१ ॥
वैदेही जैं विधि जे देश। अति सत्वर बुझि कहब सन्देश ॥ ६२ ॥
सतत सहाय महा रण काज। अपनें सौं सपनहुँ नहि व्याज ॥ ६३ ॥

॥ शार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥

रे रे चोर कठोर छोड़ हमरा कानैत भीता छली ॥ ६४ ॥
हा आकाशक पन्थ राक्षस बली से दुष्ट-नीता छली ॥ ६५ ॥
हा नैं जानल गेल दुष्ट धरितौं श्रीविश्वमाता छली ॥ ६६ ॥
मन्त्री सङ्ग यथार्थ देखल रमा सौन्दर्य्य सीता छली ॥ ६७ ॥

चढ़ाकर ले आया हूँ। ५४ अग्नि को साक्षी करके आप उनके मित्र बने रहिए। राम का सारा चरित्र अलौकिक है।" ५५ हनुमान ने संक्षेप में ही कहा—"छोटे भाई लक्ष्मण-सहित ये राम साक्षात् भगवान हैं। ५६ बेधड़क चलिए, उनसे मैत्री कीजिए और उनकी सहायता से वालि के सारे घमंड को चूर कीजिए।" ५७ यह सुनते ही कपिराज सुग्रीव परम हर्ष के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान् राम विराजमान थे। ५८ राम ने एक सुन्दर पेड़ की टहनी हाथ में लेकर सुग्रीव को बैठने के लिए दी। ५९ सुग्रीव कुशल पूछकर शान्तचित्त से बैठ गये। तब लक्ष्मण ने सारा वृत्तान्त सुनाया। ६० सुग्रीव ने सुनकर राम से कहा— "मैं हर तरह से आपकी सेवा करूँगा। ६१ जानकी जिस किसी स्थान में जिस तरह होगी, उसका पता लगाकर आपको मालूम कराऊँगा। ६२ घोर लड़ाई के काम में भी मैं सदा मददगार रहूँगा। आपसे सपने में भी कोई व्याज न करूँगा। ६३ मैंने मन्त्री के साथ सचमुच देखा था। एक बलवान राक्षस एक महिला को हरकर आकाश-मार्ग से जा रहा था। वह त्रस्त हो ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी— 'अरे, अरे कठोर चोर ! छोड़, मुझे छोड़ दे !' पर खेद ! मैं जान न सका कि वह वही जगज्जननी लक्ष्मी-सी सुन्दरी सीता थी। यदि जान पाता तो उसी समय उसे पकड़ लेता। ६४-६७ बाज़ के गिरफ़्त में पड़ी बटेर-जैसी सीता बार-बार चिल्लाती

॥ वसन्ततिलका छन्दः ॥

हा रामचन्द्र रघुनाथ अनन्त बेरी ॥ ६८ ॥
कानैत बाजक अधीनि जना बटेरी ॥ ६९ ॥
दिव्योत्तरी पट विभूषण फेकि देल ॥ ७० ॥
से कन्दरा-मध सुयत्न सौँ राखि लेल ॥ ७१ ॥

॥ चौपाइ ॥

से शुनितहिँ माँगल रघुबीर । लयला अपनहि कपिपति चीर ॥ ७२ ॥
प्रभु चिन्हितहि लेल हृदय मेँ राखि । हा हा जानकि जानकि भाखि ॥ ७३ ॥
कयल विलाप कहय के पार । करुणामय करुणा विस्तार ॥ ७४ ॥
से द्वितीय पट पाओल आज । दुःख कहै छी परिहरि लाज ॥ ७५ ॥
जुआ एकान्त धरथि से काँति । कण्ठपाश क्रीड़ारस राति ॥ ७६ ॥
क्रीड़ा-श्रम हर व्यजन रतान्त । शय्या प्रणयक कलह नितान्त ॥ ७७ ॥
लक्ष्मण कहल धैर्य्य धरु नाथ । उत्पति स्थिति लय प्रभु हाथ ॥ ७८ ॥
वानरेन्द्र बलवान सहाय । सुख दुख भोग देहकाँ पाय ॥ ७९ ॥
भेटतिहि सीता थोड़हि काल । अरिगण मरता गर्व्व विशाल ॥ ८० ॥
प्रभु-विलाप शुनि कहल कपीश । मन करु थिरतर प्रभु जगदीश ॥ ८१ ॥
हम मारब दशकन्धर जाय । सीता आनब अवसर पाय ॥ ८२ ॥

थी— 'हा रामचन्द्र ! हा रघुनाथ !' उन्होंने अपना क़ीमती दुपट्टा और गहनें फेंक दिए । मैंनें उन्हें गुफा में हिफ़ाजत से रख लिया है ।" ६८-७१ इतना सुनते ही राम ने चीर माँगा और सुग्रीव ने स्वयं तुरत ला दिया । ७२ उसे पहचानते ही राम ने उसे छाती से लगा लिया और बिलखने लगे— 'हा जानकी !' ७३ उन्होंने जैसा विलाप किया उसका वर्णन कौन कर सकता है ? करुणामय की करुणा की सीमा कौन बता सकता है ? ७४ राम बोले— "वह दुपट्टा फिर आज मिला । वेदनावश मैं लाज छोड़कर कहता हूँ । ७५ सीता एकान्त में जुआ खेलते समय इसे बाज़ी रखती थी; रात में केलि के समय यह कंठपाश होता था । ७६ केलि के अन्त में यह थकान को दूर करनें का पंखा बन जाता था । प्रणय-कलह में यह बिछावना बन जाता था ।" ७७ लक्ष्मण बोले— "हे प्रभु, धैर्य धारण कीजिए । उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों आपके हाथ में हैं । ७८ कपिराज बलवीर सुग्रीव सहायक हैं । शरीर पाने पर सुख और दुख का भोग तो सबको करना ही पड़ता है । ७९ जल्द ही सीता मिल जाएगी और घमंडी दुश्मनों का अन्त होगा । ८० प्रभु रामचन्द्र का बिलखना सुनकर कपिराज सुग्रीव बोले— "हे प्रभु जगदीश्वर, ढाढ़स बाँधिए । ८१ मौक़ा मिलते ही मैं दशानन रावण को

अग्नि साक्षि मारुत-सुत आन। युगल सख्य भेल जीव समान ॥ ८३ ॥
कपट-रहित मिलि मिलि एकठाम। बैसला कपिवर रघुवर राम ॥ ८४ ॥
करब मित्र हम यत्न बहुत। महि सभठाम पठाओब दूत ॥ ८५ ॥
रघुवर पुछलनि कहु कहु मित्र। दैव देल की विपति चरित्र ॥ ८६ ॥
कहयित छी हम बन्धु-कुचालि। हमरा जेठ भाइ छथि बालि ॥ ८७ ॥
एक समय उपगत उतपात। मयसुत मायावी विख्यात ॥ ८८ ॥
किष्किन्धा आयल अधराति। ललकारल निर्भय खल जाति ॥ ८९ ॥
शुनल बालि रावण-अरि कान। कोप-विवश चलला बलवान ॥ ९० ॥
मारल एक मुक्का तहँ गाढ़। राक्षस बिकल रहल नहि ठाढ़ ॥ ९१ ॥
बालिक बल बुझि खल भय पाय। भूधर-विवर समायल जाय ॥ ९२ ॥
विवरहुमे ओ कयल प्रवेश। हमरा देलनि यहन निदेश ॥ ९३ ॥
अंह यहिठाम रहू भरि पक्ष। रण-रिपु-मारण मे हम दक्ष ॥ ९४ ॥
अवधिक अधिक दिवस बिति जाय। तौं जानब रण हारल भाय ॥ ९५ ॥
स्नेह-विवश रहलहुँ भरिमास। विवरैं रुधिर बहल भेल त्रास ॥ ९६ ॥

मारूँगा और सीता को ले आऊँगा।" ८२ पवन-सुत हनुमान साक्षी के रूप में अग्नि ले आये और अग्नि के सामने दोनों में एक-दूसरे के प्राण के समान दोस्ती हुई। ८३ तब राम और सुग्रीव दोनों निश्छल हृदय से हिल-मिल कर एक जगह बैठे। ८४ फिर सुग्रीव बोले— "हे मित्र, मैं भरपूर कोशिश करूँगा। दुनिया भर में हर जगह दूत भेजूँगा।" ८५ तब राम ने पूछा— "हे मित्र, बताइए तो, विधाता ने यह कैसी विपत्ति आपको दी है।" ८६ सुग्रीव ने कहा— "मैं अपने भाई की बुरी चाल सुनाता हूँ। वालि मेरे बड़े भाई हैं। ८७ एक समय एक उत्पात उठा। मय नामक राक्षस का विख्यात लड़का मायावी आधी रात के वक़्त किष्किन्धा में आया। उस निर्भय दुष्ट ने ललकार दी। ८८-८९ रावण के शत्रु वालि ने उसकी यह ललकार सुनी। बलवान् वालि क्रुद्ध हो चल पड़े। ९० उन्होंने वहीं उस राक्षस को एक जोरदार मुक्का लगाया। वह विकल हो गिर पड़ा। ९१ वालि के बल को देखकर वह दुष्ट डर गया और धरती की खोह में जा घुसा। ९२ वालि ने खोह में भी घुसकर पीछा किया और घुसते समय मुझे यह बता गये। ९३ "तुम पखवारे भर मेरी प्रतीक्षा में यहाँ रहना। मैं लड़ाई में शत्रु को मारने में कुशल हूँ। ९४ जब पखवारे की अवधि बीत जाए, तब तुम यह समझना कि तुम्हारा भाई लड़ाई में हार गया।" ९५ मैं महीना भर स्नेह-वश उनकी प्रतीक्षा करता रहा। खोह से लहू की धारा बहने लगी। देखकर मैं डर गया। ९६ तब मैंने एक पत्थर के टुकड़े से उस खोह के मुँह को बन्द कर दिया

शिलाखण्ड सौँ मूनल द्वार। गर्भाहि गेलहुँ पुरभय विस्तार ।। ९७ ।।
मन्त्री-गण मिलि से मति धयल। कपि राजा हमरा एत कयल ।। ९८ ।।
किछु दिन बितला अयला गाम। के कह के शुन के कर साम ।। ९९ ।।
विकट विकट निकटहिँ पढ़ि गारि। मारल बिनु बुझलहि बड़ मारि ।। १०० ।।
सर्व्वस्व नारि लेल छीनि। हम भय रहलहुँ कौड़िक तीनि ।। १०१ ।।
के रक्षा कर के दे वास। सभकाँ मनमे बालिक त्रास ।। १०२ ।।
केवल यहि गिरिपर नहि आब। मुनि मातङ्ग क शाप प्रभाव ।। १०३ ।।

।। सोरठा ।।

बालिक बुझि अन्याय, सुग्रीव क बुझि साधुता ।। १०४ ।।
अछि लघु सहज उपाय, श्रीरघुनन्दन कहल तहँ ।। १०५ ।।

।। चौपाइ ।।

अति अनुचित कर अहँ काँ भाय। कत दिन निबहत ई अन्याय ।। १०६ ।।
खलबल बालि वीर हम मारि। अहँ कपिपति भोगब सुख नारि ।। १०७ ।।
कह सुग्रीव बालि-रण-रङ्ग। रावण जनि तट कीट पतङ्ग ।। १०८ ।।
जनि भुजबल अनुभव शुनु राम। त्रिभुवन के कर जन सङ्ग्राम ।। १०९ ।।

और सन्त्रस्त हो, वहाँ से चुपके ही निकल गया। ९७ तब वालि के मन्त्रियों ने मिलकर विचार-विमर्श किया और यहाँ मुझे वानरों के राज्य का राजा बना दिया। ९८ थोड़े दिनों के बाद वालि घर लौट आये। न कुछ कहा और न कुछ सुना और शान्ति की बात कौन करता है। ९९ सामने ही तीखी-तीखी गालियाँ सुनाने लगे और बिना समझे-बूझे मेरी बुरी तरह पिटाई की। १०० उन्होंने मेरी सारी सम्पत्ति और स्त्री भी छीन ली। मैं डर के मारे उनके आगे 'कौड़ी के तीन' के बराबर नाचीज रह गया। १०१ कौन रक्षा करता है ? कौन शरण देता है ? सबका मन तो वालि के डर के मारे त्रस्त है। १०२ केवल यही पर्वत ऐसा है जहाँ वालि मातंग मुनि के शाप के प्रभाव से पैर नहीं रख सकता है। इसीलिए मुझे यहाँ शरण मिली है।" १०३ तब वालि का अन्याय और सुग्रीव की शुद्धता जानकर राम ने कहा— "इसका बड़ा आसान हल मेरे पास है। १०४-१०५ आपके भाई ने बड़ा अनुचित काम किया। यह अन्याय कब तक चल सकता है ? १०६ मैं इस दुष्ट की सेना के साथ वीर वालि को मार डालूँगा और आप वानरों के राजा होकर राज्य-सुख और पत्नी दोनों का भोग करेंगे।" १०७ सुग्रीव ने कहा— "हे राम, वालि का रण-रंग (युद्ध-कौशल) क्या कहा जाए ? जिनके सामने रावण भी कीट-पतंग के बराबर है। १०८ और रावण भी जिनके बाहुबल का मजा चख चुके हैं। उनके साथ तीनों लोकों में कौन लड़ाई ठान सकता

दुन्दुभि नामक राक्षस घोर। महामहिष उनमत अति जोर॥ ११०
रात्रि-समर-प्रिय वचन कठोर। दुर्ब्बल बालि वधिक हम तोर॥ १११
किष्किन्धा आयल भेल मारि। बालिक कतहु समर नहि हारि॥ ११२
सत्वर जाय भाय खल धयल। हे प्रभु अकथ पराक्रम कयल॥ ११३
सिंह पकरि हरि धरणि पछारि। तनिक लेल तहँ मौलि उखारि॥ ११४
चरणेँ चाबि तनिक लेल काय। फेकल तनिकर माथ घुमाय॥ ११५
योजन पर भय खसल से जाय। मातङ्गाश्रम बुझल न भाय॥ ११६

॥ सोरठा ॥

जानल मुनि मातङ्ग, बालि कुचालिक कर्म्म थिक॥ ११७॥
देलनि शाप अभङ्ग, मुनि आश्रम दुर्वृत्ति कर॥ ११८॥

॥ चौपाइ ॥

रुधिर महिष-शिर देखल जाय। कहल बालि केँ मुनि खिसिआय॥ ११९।
जौँ यहि गिरिपर अयबह पुनि। रहतौ माथ न जनबह मुनि॥ १२०।
यहि गिरिपर तेँ निर्भय बास। बहरयलेँ बालिक बड़ त्रास॥ १२१।
कयल प्रतिज्ञा अहँ रघुनाथ। बालिक वध नहि कालहु हाथ॥ १२२।

है? १०९ दुन्दुभी नाम का एक भयानक राक्षस परम बलवान, विशाल भैंसे की शक्ल का था। ११० उसे रात में लड़ाई ठानना अच्छा लगता था। उसने कठोर स्वर में ललकारा— "अरे बुज़दिल वालि, मैं तुम्हारा खून पीने वाला हूँ।" १११ इस तरह ललकारते हुए वह किष्किन्धा आया। भारी लड़ाई हुई। लड़ाई में कहीं भी वालि हारनेवाले नहीं हैं। ११२ मेरे भाई वालि ने जाकर उस दुष्ट को पकड़ लिया। हे प्रभु राम, उन्होंने अवर्णनीय पराक्रम किया। ११३ उस महिष रूपी राक्षस को सींग पकड़कर घसीट लाये, धरती पर पछाड़ दिया और दोनों सींग उपाड़ लिये। ११४ फिर उसके शरीर को पाँव से चाँपा और माथा पकड़कर घुमाकर फेंक दिया। ११५ वह राक्षस एक योजन दूर मातंग मुनि के आश्रम में जा गिरा। मेरे भाई को यह मालूम न हुआ। ११६ मुनि मातंग को मालूम हुआ कि यह हरकत वालि की है। ११७ तब मुनि के आश्रम में इस तरह की हरकत करनेवाले उस राक्षस को उन्होंने अटल शाप दिया। ११८ लहू से लथपथ उस भैंसे के सिर को जाकर देखा और क्रुद्ध हो वालि से कहा। ११९ "यदि इस पर्वत पर तुम कभी फिर पाँव रखोगे तो तुम्हारा सिर जाता रहेगा। मुनि की महिमा जान जाओगे।" इसलिए इस पर्वत पर वास करना मेरे लिए निरापद है। १२० अगर इस पर्वत से बाहर जाऊँ तो वालि का बड़ा डर है। १२१ हे राम, आपने वालि का वध करने की भारी प्रतिज्ञा की, क्योंकि वालि को

दुन्दुभि-अस्थि देखायोल जाय। हिनका मारल हमरा भाय ॥ १२३ ॥
प्रभु हसि चरण-अङ्गुष्ठ लगाय। फेकल खसल दश योजन जाय ॥ १२४ ॥
बल आश्चर्य बुझल सुग्रीव। ई सामान्य थिकथि नहि जीव ॥ १२५ ॥
तखन देखायोल सातो तार। रामक बाण बेधि भेल पार ॥ १२६ ॥
कपिपति हर्षित शम-मति भाष। हे प्रभु मन नहि किछु अभिलाष ॥ १२७ ॥
केवल भक्ति भजन नित करब। भव-समुद्र सुखसौँ सन्तरब ॥ १२८ ॥
हे प्रभु कहइत हो मन लाज। नहि विभूति बनिता-सुख काज ॥ १२९ ॥
कतय ज्ञान-सुख कत सुख-राज। सुत वित बन्धन सकल समाज ॥ १३० ॥
कपिवर रघुवर-पद अनुरागि। विषय-वासना देलनि त्यागि ॥ १३१ ॥
मन विराग सुख दुःख समान। कपिपति पायोल उत्तम ज्ञान ॥ १३२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

मारना काल के वश में भी नहीं है।" १२२ इतना कहकर सुग्रीव ने राम को दुन्दुभी नामक राक्षस की हड्डियाँ दिखायीं और कहा— "हे राम, मेरे भाई ने ऐसे विकट राक्षस को मारा है।" १२३ तब राम ने हँसकर उन हड्डियों को अपने पाँव के अँगूठे की ठोकर से फेंका और वह अस्थिपंजर दस योजन दूर जाकर गिरा। १२४ तब सुग्रीव को राम की अद्भुत शक्ति का बोध हुआ और विश्वास हुआ कि ये सामान्य पुरुष नहीं हैं। १२५ उन्होंने ताड़ के सात पेड़ दिखाये और राम का बाण सातों को बेधकर निकल गया। १२६ तब सुग्रीव हर्षित और शान्तचित्त हो प्रार्थना करने लगे— "हे प्रभु, मेरे मन में कुछ भी अभिलाषा नहीं है। १२७ केवल भक्तिपूर्वक आपका भजन करता रहूँगा और उसकी बदौलत आसानी से भवसागर पार कर जाऊँगा। १२८ हे प्रभु! कहने में मन में लज्जा होती है, फिर भी मन की भावना व्यक्त करता हूँ। न मुझे ऐश्वर्य चाहिए, न स्त्री-सुख। १२९ जो सुख ज्ञान से मिलता है वह राज्य-साम्राज्य से कहाँ? पुत्र, धन-सम्पत्ति और परिजन केवल बन्धन हैं।" १३० वानरराज सुग्रीव को राम के चरण में अनुराग हो गया और उन्होंने विषय-वासना का त्याग कर दिया। १३१ जब मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया, तब उनके लिए सुख और दुःख दोनों समान हो गये। वानर-राज सुग्रीव को उत्तम ज्ञान मिल गया। १३२

॥ श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

कहलनि रघुवर शुनु कपिनाथ। बालिक वध अछि हमरा हाथ ॥ १ ॥
माया-मय थिक ई संसार। अति अगम्य विधि ज्ञान-विचार ॥ २ ॥
ठामहि ठाम बालि जौं रहत। हमर अकीर्त्ति विश्व भरि कहत ॥ ३ ॥
रघुपति जौं सुग्रीवक मित्र। बिदित न वसुधा बीर-चरित्र ॥ ४ ॥
रामक बाली काँ नहि त्रास। वृथा प्रतिज्ञा सुयश हरास ॥ ५ ॥
हसता बानर-निकर समाज। ज्ञान कृपाकर कातर काज ॥ ६ ॥
करु करु युद्ध बालि सौं आज। निर्भय भय चलु भाय समाज ॥ ७ ॥
बालिक मरण करण एक बाण। अहँका अनायास कल्याण ॥ ८ ॥

॥ सोरठा ॥

कपिपति बिनत बिचार, ज्ञान कतय बलवान विधि ॥ ९ ॥
अकथनीय संसार, भावि न भेलें बिनु रहय ॥ १० ॥

॥ चौपाइ ॥

निर्भय सौं रघुपति बल पाय। किष्किन्धा उपवन मे जाय ॥ ११ ॥
कयलनि ततय शब्द बड़ घोर। शुनितहि दौड़ल बालि कठोर ॥ १२ ॥

दूसरा अध्याय

बालि और सुग्रीव का युद्ध तथा बालि का वध

राम ने कहा—"हे कपीश, सुनिए। वालि का वध मेरे हाथ से होनेवाला है। १ यह संसार केवल माया है। ज्ञान का विवेचन बड़ा ही कठिन है। २ यदि वालि जैसे है वैसे ही जीता रहेगा तो वह मेरी बदनामी सारी दुनिया में फैलाएगा। ३ जब रघुपति (मैं) सुग्रीव का (आपका) मित्र हो गया तो सुग्रीव-जैसा वीर इस धरती पर कौन है ? ४ राम को वालि का डर नहीं है। यदि मैं झूठी प्रतिज्ञा करूँ तो दुनिया में मेरी प्रतिष्ठा गिर जाएगी। ५ वानरों के समाज में मेरा उपहास होगा। ज्ञान के (सैद्धान्तिक) आधार पर शत्रु के प्रति कृपा करना कायर का काम है। ६ इसलिए आप आज ज्ञान के फेर में न पड़कर वालि से लड़ाई कीजिए और निर्भय होकर भाई का सामना कीजिए। ७ मेरे एक ही बाण से वालि का अन्त हो जाएगा और आपको आसानी के साथ त्राण मिल जाएगा।" ८ यह सुनकर सुग्रीव विनम्र हो विचार करने लगे। ज्ञान प्राप्त करना दूर है। विधाता बलवान होता है। ९ संसार में क्या होगा, यह कहा नहीं जा सकता है। होनी होकर ही रहती है। १० राम का अवलम्ब पाकर सुग्रीव तुरत किष्किन्धा के उपवन में गये ११ और वहाँ घनघोर गर्जन किया। सुनते ही निष्ठुर वालि दौड़ा

बालिक हृदय मुष्टिका हनल। बन्धु-विरुद्ध बैरिता बनल ॥ १३ ॥
चलल परस्पर मुष्टामुष्टि। विधि विपरीत विपर्य्यय सृष्टि ॥ १४ ॥
युगल बन्धु से रूप समान। रघुपति तैं न चलायोल बाण ॥ १५ ॥
सहि नहि शकला मुष्टिक मारि। पुन सुग्रीव पड़यला हारि ॥ १६ ॥
भभकि भभकि शोणित हो बान्ति। भेल विवर्ण सकल तन कान्ति ॥ १७ ॥
बालि बिजयि गेल अपना धाम। कपिपति कहल विपति शुनु राम ॥ १८ ॥
बन्धु न बालि काल जनु थीक। ततय पठायोल गेलहुँ अहींक ॥ १९ ॥
वृथा करायोल दुस्सह घात। यहि सौं अयश लोक विख्यात ॥ २० ॥
अपनहि शर मारू रघुनाथ। कय न समर्पण कालक हाथ ॥ २१ ॥
सुग्रीवक देल देह हसोथि। अशनि-कठोर जोर जैं होथि ॥ २२ ॥
एक बार सत्वर अहूँ जाउ। निष्कण्टक भय निर्भय आउ ॥ २३ ॥
शपथ बालिकाँ निश्चय मारि। अहँक सकल सङ्कट देब टारि ॥ २४ ॥
लक्ष्मण प्रभु-आज्ञा कों पाय। फूलमाला देल गल पहिराय ॥ २५ ॥
लक्ष्मण अति आदर सौं फेरि। जाउ जाउ कहलनि कय बेरि ॥ २६ ॥
पुन सुग्रीव जाय तहि ठाम। आबह कहल करह संग्राम ॥ २७ ॥

हुआ आया। १२ सुग्रीव ने वालि की छाती में एक मुट्ठी जमायी। भाई-भाई में लड़ाई ठन गयी। १३ आपस में मुट्ठी पर मुट्ठी बजने लगी। यदि विधाता वाम रहता है तो दुनिया उलटी हो जाती है। १४ लड़ाई में दोनों भाई बराबर-बराबर थे, इसलिए राम ने बाण नहीं चलाया। १५ पर सुग्रीव वालि की मुट्ठी की चोट बर्दाश्त न कर सके और हारकर भाग गये। १६ मुँह से बार-बार लहू निकलने लगा। सारे शरीर का रंग फीका पड़ गया। १७ वालि जीतकर अपने घर चला गया। तब सुग्रीव ने राम से कहा— "हे राम, सुनिए। १८ यह वालि मेरा भाई नहीं, यह तो मानों मेरे लिए काल है। आप ही के भेजने से मैं वहाँ गया। १९ यह दुःसह प्रहार आप ही के कारण मुझे मिला। इससे दुनिया में मेरी भारी अप्रतिष्ठा फैलेगी। २० आप अपने ही शर से मेरे प्राण ले लीजिए, पर मुझे इस काल के हाथ में मत सौंपिए।" २१ राम ने सुग्रीव के शरीर पर अपना हाथ फेर दिया, ताकि वह वज्र-सा कड़ा हो जाय। २२ फिर उन्होंने कहा— "एक बार जल्द ही आप और जाइए और बिना किसी भय के निष्कंटक होकर आइए। २३ शपथपूर्वक कहता हूँ, मैं वालि को मारकर आपको संकट से अवश्य उबार लूँगा।" २४ तब लक्ष्मण ने राम की आज्ञा पाकर फूल की एक माला सुग्रीव के गले में डाल दी। २५ फिर परम आदर के साथ बार-बार कहा— "जाइए, जाइए।" २६ तब सुग्रीव फिर उस जगह गये और ललकार कर कहा— "अब आकर लड़ो मुझसे!" २७ यह सुनकर वालि

से सुनि मन मन बालि बिचार। की कनिष्ठ हमरा ललकार॥ २८॥
धयल हाथ तारा तहि ठाम। उचित न चललहुँ हठ संग्राम॥ २९॥
मृत छल छथि अयला घुरि फेरि। अभ्यन्तर अति बल यहि बेरि॥ ३०॥
कहल बालि उत्तर अति रुष्ट। की पुन आयल सत्वर पुष्ट॥ ३१॥
तनिक सहाय समर के शूर। क्षण रण हमर मनोरथ पूर॥ ३२॥
घर अरि हमर समर निश्शङ्क। घर घुसि की शिर लेब कलङ्क॥ ३३॥
अल्प कालमे अरि रण जीति। तखन करब गृह-सम्पत्ति प्रीति॥ ३४॥
तहँ तारा कह शुनु प्राणेश। अवसर मानक हित उपदेश॥ ३५॥
अङ्गद गेला खेलाय सिकार। निश्चय शुनलनि हुनक विचार॥ ३६॥
दशरथ बचन मानि दुइ बन्धु। बन भ्रमइत छथिछथि बल-सिन्धु॥ ३७॥
कोशलेश-सुत अयला शाम। तनिक शुनल हम बड़ गोट नाम॥ ३८॥
कालहु काँ विजयक सामर्थ्य। रण कारण जायब थिक व्यर्थ॥ ३९॥
के जानय प्रभु अन्तःकरण। दण्डक बन बैदेही-हरण॥ ४०॥
तनि अन्वेषण मानस लीन। माया-मानव विरहित दीन॥ ४१॥

ने मन में सोचा, क्या छोटा भाई मुझे ललकार रहा है ? फिर लड़ने को चल पड़ा। २८ वहीं तारा ने वालि के हाथ पकड़ लिये और कहा— "हे नाथ, आप सहसा लड़ने को चले, यह उचित नहीं किया। २९ वे तो मर गये थे और फिर लौटकर आये हैं। इससे लगता है उनके भीतर इस बार कोई अलौकिक शक्ति समायी है।" ३० यह सुनकर वालि गुस्से से भर गया और बोला— "क्या फिर वह तगड़ा हो लौट आया है ? ३१ लड़ाई में उसका साथ देनेवाला वीर कौन है ? उससे तो क्षण भर ही मेरी युद्ध-कामना पूरी होगी। ३२ शत्रु निःशंक हो लड़ाई करने के लिए मेरे घर में घुस आया है, तब यदि मैं डर से घर में घुस जाऊँ तो सिर पर कलंक का टीका लग जाएगा। ३३ देखो, थोड़ी ही देर में लड़ाई में शत्रु को जीत लेता हूँ, उसके बाद ही फिर घर और धन-सम्पत्ति की चिन्ता करूँगा।" ३४ फिर तारा ने कहा— "हे प्राणपति, सुनिए। संकट के समय हितैषियों की सलाह माननी चाहिए। ३५ अंगद शिकार करने गया था, वहीं उसने उनका पक्का इरादा सुना। ३६ राजा दशरथ की आज्ञा मानकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई वन में घूम रहे हैं। दोनों मानों शक्ति के समुद्र हैं। ३७ राजा दशरथ के पुत्र राम हमारे गाँव आये हुए हैं। मैंने उनका बड़ा नाम सुना है। ३८ उन्हें इतनी ताकत है कि काल को भी जीत लें। लड़ाई के लिए उनके सामने जाना बेकार है। ३९ प्रभु राम के मन में क्या बात है, यह कौन जान सकता है ? वे दंडकवन आये जहाँ राम की पत्नी सीता का हरण हो गया। ४० उन्हीं की खोज में उनका मन लगा हुआ है। वे लगता है

अचल सख्य सुग्रीवक सङ्ग। ओ समर्थ सङ्कल्प अभङ्ग॥ ४२॥
बजला बालि मारि देब राज। जे कहलनि से करता काज॥ ४३॥
भीरु बन्धु पुर निकट न आब। आब प्रबल रण राम प्रभाब॥ ४४॥
प्रेमहि बन्धु बौँसि घर लाउ। अवसर चुकलेँ जनु पछताउ॥ ४५॥
अपन अनुज कँ करु युवराज। शीघ्र जाउ सीतेश-समाज॥ ४६॥

॥ मिथिलासंगीतानुसारेण योगियाछन्दः॥

तारा चरण धयल नाथक ॥ ४७॥
कलपि कलपि कानथि कहथि, सिन्दूर राखू माँथक॥ ४८॥
बान्धव फूटल बैरी लुटल छूटल सुखक आशा॥ ४९॥
होयता अङ्गद कुमर दूगर, नगर विपति वासा॥ ५०॥
यहन पाहुन भाग्यहि पाबिय, लाबिय गरिम गेहे॥ ५१॥
अनुज-सहित, विपति-रहित, रहब सुचित नेहे॥ ५२॥
त्रासहि भरल लङ्का परल, बैरी से बिश-बाहु॥ ५३॥
रावण मुदित उदित होयत, दशहु बदन राहू॥ ५४॥

मायावश मानव रूप धारणकर दीन विरही बने हुए हैं। ४१ सुग्रीव के साथ उनकी अटूट मैत्री हो गयी है। वे शक्तियों से सम्पन्न हैं और उनका संकल्प विफल नहीं हो सकता है। ४२ वे बोल चुके हैं कि वालि को मारकर सुग्रीव को राज देंगे। वे जो बोलें सो कर दिखाएँगे। ४३ जो तुम्हारा डरपोक भाई तुम्हारे नगर के पास नहीं भटकता था, वही अब राम के प्रभाव से लड़ने के लिए समर्थ हो गया है। ४४ प्रेमभाव से अपने भाई को मनाकर घर ले आइए। वक्त पर चूककर पछताइए नहीं। ४५ अपने छोटे भाई को युवराज बनाइए। झटपट सीता-पति राम के पास जाइए। ४६ तारा ने अपने पति वालि के पाँव पकड़ लिये। ४७ बिलख-बिलखकर रोती और कहती— "मेरी माँग का सिन्दूर बचाइए। ४८ भाई में फूट हुई; दुश्मनों की फबा और सुख की आशा जाती रही। ४९ कुमार अंगद बेसहारा हो जाएगा और नगर में विपत्ति का बसेरा हो जाएगा। ५० ऐसे अतिथि भाग्य से मिलते हैं। उन्हें आदरपूर्वक घर ले आइए। ५१ अपने भाई के साथ स्नेहपूर्वक निरापद रूप से घर में रहिए। ५२ बीस बाँहों वाला आपका दुश्मन रावण डर के मारे लंका में पड़ा हुआ है। ५३ आपको विपत्ति में पाकर वह रावण प्रसन्न हो उठेगा और आपके लिए मानों दसों मुँह राहु के समान उदित हो उठेंगे।" ५४ यह सुनकर युद्ध-प्रिय वालि ने तारा को

॥ दोहा ॥

हे तारे तारेश-मुखि, स्त्रीस्वभाव की त्रास ॥ ५५ ॥
हृदय लगाय लगाय कह, बाली समर-विलास ॥ ५६ ॥

॥ रोला छन्द ॥

॥ लावण्या ॥

कहल कलावति कुशल, करुण-कृश-कोमल-काये ॥ ५७ ॥
नारायणसौँ नेह-निमह, निबहय से न्याये ॥ ५८ ॥
भावी भेले चाह, अभय बर भयकर भाये ॥ ५९ ॥
प्रबल दैववश विबुध अबुध, नहि बुद्धि सहाये ॥ ६० ॥
सोदर सौँ सदभाव, आब करितौँ युवराजे ॥ ६१ ॥
रघुबर-डरसौँ सन्धि, सिद्धि हँसि कहल समाजे ॥ ६२ ॥
समदर्शी श्रीराम, धाम अनितहुँ नहि हानी ॥ ६३ ॥
विद्यमान विद्वेषि, बन्धु-बध करितौँ फानी ॥ ६४ ॥
सकल लोक मे सूर, सुयश की करब मलाने ॥ ६५ ॥
प्रेयसि धसि सङ्ग्राम, राम-रण अर्पब प्राणे ॥ ६६ ॥
अङ्गद अङ्गज हमर, समर हरि-अरि-करि दारुण ॥ ६७ ॥
विधिक विधेय बलिष्ठ, विबुध के कर वारण ॥ ६८ ॥
फरक नयन मोर वाम, वाम विधि कि करत काजे ॥ ६९ ॥

बार-बार गले से लगाकर समझाया— "हे चन्द्रमुखी तारा, तुम महिला हो इसलिए नाहक डरती हो।" ५५-५६ तब दुबले-पतले नाजुक शरीर वाली कलावती तारा ने उत्तर दिया— ५७ "नारायण-रूपी राम से मैत्री बनी रहे, यही उचित होगा। ५८ होनी होकर रहेगी। भाई सुग्रीव राम से अभय पाकर खतरा पैदा करनेवाला हो गया है। ५९ भाग्य जब विपरीत हो जाता है तब विद्वान् भी मूर्ख हो जाता है और बुद्धि काम नहीं देती है।" ६० सगे भाई सुग्रीव से मेल करता और तब उसे युवराज बनाता। ६१ पर इस बात पर समाज में हँसी होगी कि मैंने राम से डरकर भाई से मेल किया। ६२ राम समदर्शी हैं, उन्हें अपने यहाँ लाऊँ इसमें तो कोई हानि नहीं है। ६३ पर अपना भाई जो शत्रु होकर खड़ा है, पहले उसका वध कर लेना चाहता हूँ। ६४ मै सारी दुनिया में शूर माना जाता हूँ। इस सुयश को मैं मलिन कैसे होने दूं? ६५ हे प्रिये, मैं साहसपूर्वक राम के साथ लड़ाई में कूद पड़ूँगा और युद्ध में अपने प्राण दे दूँगा। ६६ मेरा बेटा अंगद शत्रु रूपी हाथी को मारने में खूँखार शेर है। ६७ विधाता का विधान अटल होता है; दुनिया में उसे कौन टाल सकता है? ६८ मेरी बायीं आँख फड़कती है।

तारे महि-विस्तार-भार-हारक रघुराजे ॥ ७० ॥
बध जौं हमर विधि देथि, बन्धु सुग्रीवक बूतें ॥ ७१ ॥
बान्धिय तौं मातङ्ग, कमल-नालक कृश सूतें ॥ ७२ ॥

॥ चौपाइ ॥

सुग्रीवक बध मानस धयल। बलसौं बालि गमन रण कयल ॥ ७३ ॥
अबइत तनिकाँ देखि कपीश। फनला निर्भय भायिक दीश ॥ ७४ ॥
बालिक उपर दु मुष्टि प्रहार। मारि परस्पर एक न हार ॥ ७५ ॥
युगल बन्धु बल रण घनघोर। मारा-मारि सुमुख नहि मोर ॥ ७६ ॥
प्रभु तरु ओत धनुष ओ बाण। अशनि समान कयल सन्धान ॥ ७७ ॥
बालिक वक्ष प्रवेशल बाण। से खसला महि मे अज्ञान ॥ ७८ ॥
चेतल छूटल मूर्छा गाढ़। देखल आगु राम प्रभु ठाढ़ ॥ ७९ ॥
जटा मकुट शोभा विस्तार। कमल-नयन सुन्दर सुकुमार ॥ ८० ॥
धनुष वाम कर दक्षिण तीर। नव दुर्व्वादल रुचिर शरीर ॥ ८१ ॥
कपिवर लक्ष्मण पार्श्व समाज। शोभा-घर रघुवर छविराज ॥ ८२ ॥
बालि कहल शुनु विभु अवतार। हम न कदापि कयल अपकार ॥ ८३ ॥

भाग्य विपरीत जान पड़ता है। न जाने क्या करेगा ? ६९ हे तारा, रघुनाथ राम सारी दुनिया के भार को हरण करनेवाले हैं। ७० यदि विधाता मुझे भाई सुग्रीव के हाथ मृत्यु दिलाए तो समझना कमल के पतले रेशे से हाथी बाँध दिया गया।" ७१-७२ सुग्रीव का वध करना मन में ठानकर बालि हठात् लड़ाई के लिए चल पड़ा। ७३ सुग्रीव उसे आते देख निःशंक हो भाई की ओर कूद पड़े। ७४ उन्होंने भाई बालि के ऊपर दो मुट्ठियाँ जमा दीं। फिर आपस में मार शुरू हो गयी। कोई हारनेवाला नहीं। ७५ दोनों भाई बड़े बलवान थे। घनघोर लड़ाई चली। परस्पर प्रहार होने लगा। कोई मुँह मोड़नेवाला नहीं था। ७६ तब प्रभु राम ने पेड़ की ओट से वज्र के समान अपना बाण धनुष पर चढ़ाकर चलाया। ७७ बाण निकलकर बालि की छाती में चुभ गया। बालि बेहोश हो धरती पर गिर पड़ा। ७८ मूर्च्छा खत्म होने पर चेतना आयी। देखा कि प्रभु राम सामने खड़े हैं। ७९ जटा और मुकुट अपार शोभा पा रहे थे। आँखें कमल-जैसी थीं। वे सुन्दर और सुकुमार दिखायी देते थे। ८० बायें हाथ में धनुष और दाहिने में बाण था। शरीर का रंग नई दूब का-सा मनोरम श्यामल था। ८१ सुग्रीव और लक्ष्मण बगल में खड़े थे। राम की छवि शोभा की खान-जैसी लगती थी। ८२ बालि ने कहा— "हे विष्णु के अवतार राम, मैंने तो आपका कोई अहित नहीं किया। ८३ तब आपने छुपकर पेड़ की ओट से मुझे क्यों मारा ? आपका

वृक्षखण्डसौँ की चुपचाप। मारल जानल सुयश प्रताप॥ ८४॥
मनुक वंश क्षत्रिय दायाद। तस्कर-सम सभ गत-मर्याद॥ ८५॥
लड़ि नहि शकलहुँ समर समक्ष। समदर्शी सुग्रीवक पक्ष॥ ८६॥
से की कयल अहँक उपकार। हम की कयल शत्रु-व्यवहार॥ ८७॥
दण्डक वनसौँ हे भगवान। सीता-हरण शुनल हम कान॥ ८८॥
की कर हमर भीरु ई भाय। जनिकर हेतु एहन अन्याय॥ ८९॥
अबइत दशमुख बाँधल आज। पबितहुँ प्रभु मनवांछित काज॥ ९०॥
हमरो बल किछु देखितहुँ राम। प्राण चलल जहि पल संग्राम॥ ९१॥
शोच प्राण ई जाइछ छूटि। लबयित देखल न लङ्का लूटि॥ ९२॥
वानर मारि गेल सद्धर्म्म। मांस अभक्ष्य कयल की कर्म्म॥ ९३॥
कहल बहुत प्राणक अवसान। चरण निरीक्षण सौँ भेल ज्ञान॥ ९४॥
किछु नहि मन मध हर्ष विषाद। राम कहल शुनु गतमर्याद॥ ९५॥
बहिनि कन्यका अनुजक नारि। पुत्र-वधू नहि लेथि विचारि॥ ९६॥
कामातुर कर रति अन्याय। अयतायी जानक समुदाय॥ ९७॥

सुयश और प्रताप मुझे मालूम है। ८४ आपका जन्म मनु के वंश में और क्षत्रियों की बिरादरी में हुआ है। फिर भी आपने मर्यादा का त्याग कर चोर के समान यह काम किया। ८५ आप युद्ध में मुझसे सामना-सामनी लड़ नहीं सके। समदर्शी होकर भी आपने सुग्रीव का पक्षपात किया। ८६ उसने आप की कौन-सी भलाई की और मैंने क्या दुश्मनी की? ८७ हे भगवान् राम, मैंने सुना है कि दंडकवन से आपकी पत्नी सीता का हरण हुआ। ८८ मेरा यह कायर भाई इसमें आपकी क्या मदद कर सकेगा, जिसके वास्ते आपने ऐसा अन्याय किया है? ८९ आज रावण बँधा हुआ आपके सामने लाया जाता। हे प्रभु, आप की चाह पूरी हो जाती। ९० हे राम, कुछ मेरा बल भी तो देखते। लड़ाई शुरू होते ही आपके बाण से मेरे प्राण चले गये। ९१ मुझे दुःख है कि मेरी जान जा रही है। आप लंका को लूटकर लाते हुए मुझे नहीं देख सके। ९२ मुझ बन्दर को मारने से आपको भारी अधर्म हुआ। बन्दर का तो मांस भी नहीं खाया जाता, फिर आपने ऐसा काम क्यों किया?" ९३ इस प्रकार प्राण छोड़ते समय वालि ने बहुत-सी बातें कहीं। फिर राम के चरण का दर्शन पाकर उन्हें ज्ञान मिल गया। ९४ तब तो मन में न हर्ष रहा, न विषाद। राम ने कहा— "हे वालि, तुमने मर्यादा का त्याग किया। ९५ बहिन, बेटी, छोटे भाई की पत्नी और पतोहू इन्हें विचारवान् व्यक्ति ग्रहण नहीं करते। ९६ जो कामातुर हो अन्यायपूर्वक इनके साथ रमण करता है, वह आततायी जाना जाता है। ९७ ऐसे प्राणी को चांडाल समझना चाहिए। विषयों से इन्द्रियों को बचाये रखना

से प्राणी जानब चण्डाल। विषम विषयि इन्द्रिय प्रतिपाल ॥ ९८ ॥
बलसौं देल हम तोहरा मारि। तों भोगह निज अनुजक नारि ॥ ९९ ॥
परमेश्वर साक्षी सर्वज्ञ। बालि न बुझलह वानर अज्ञ ॥ १०० ॥

॥ रोला छन्द ॥

॥ लावण्या ॥

बालि कहल हम कहल वहल, अनुचित अज्ञाने ॥ १०१ ॥
क्षमा करिय क्षिति-भार-हरण-कारक भगवाने ॥ १०२ ॥
तीर्थ-मूल-कर-तीर-विद्ध ई त्याग शरीरे ॥ १०३ ॥
निरखि निरखि नव-नीरदाभ अभयद रघुवीरे ॥ १०४ ॥
हम चललहुँ प्रभु-धाम तनय अङ्गद हित मानब ॥ १०५ ॥
हमर तुल्य बल बुद्धि दनुज-गहनानल जानब ॥ १०६ ॥
हृदय उपर धरु हाथ तीर बाहर करु उरसौं ॥ १०७ ॥
चिरञ्जीव सुग्रीव जीव जाइछ सुखपुर सौं ॥ १०८ ॥
तथा कयल रघुनाथ हाथ शीतल देल छाती ॥ १०९ ॥
जयजय धुनि कर गगन सगण सुरपति सुर-पाँती ॥ ११० ॥

बड़ा कठिन होता है। ९८ मैंने जान-बूझकर तुम्हें मारा है क्योंकि तुमने अपने छोटे भाई की स्त्री को रख लिया। भगवान सब कुछ जानते और सभी कर्मों के साक्षी होते हैं। ९९ हे वालि, तुम अज्ञानी बन्दर हो, तुम्हें अपना कुकर्म समझ में नहीं आता है।" १०० वालि ने कहा— "हे राम, मैंने अज्ञान-वश बहुत-कुछ अनुचित कह दिया। १०१ हे धरती के भार को दूर करनेवाले ईश्वर, मुझे क्षमा कीजिए। १०२ जो हाथ सभी पुण्यतीर्थों का मूल है उससे छूटे हुए बाण से घायल इस शरीर को छोड़कर और नये बादल-जैसे श्यामवर्ण अभयदाता रामचन्द्र की छवि बार-बार देखकर मैं परमधाम चला। आप कृपाकर अंगद को अपने हित समझें। १०३-१०५ यह अंगद बल और बुद्धि में मेरे बराबर है और यह राक्षस-रूपी वन के लिए मानों अग्नि है। १०६ मेरे हृदय पर हाथ रखिए और छाती में चुभे तीर को निकाल दीजिए। १०७ सुग्रीव चिरजीवी होवे। मेरे प्राण भोगाश्रय शरीर से निकल रहे हैं।" १०८ राम ने वैसा ही किया। छाती पर शीतल हाथ रखा। १०९ आकाश में इन्द्र-सहित सदल-बल देवगण जय-जय-ध्वनि करने लगे। ११०

बालिसौं बनि बिबुधेश-रूप चलला दिव्य-धामे ॥ १११ ॥
मुनि दुर्लभ-गति-देनिहार सीतापति रामे ॥ ११२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे
द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ दोधक छन्दः ॥

वानरवृन्द बालि-बध देखल विकल कहल सुनु रानी ॥ १ ॥
रामक बाण विधुन्तुद निगलित बालि पूर्ण विधु जानी ॥ २ ॥
कोट-कपाट द्वार ठिक ठोकब वानर रोकब बाटे ॥ ३ ॥
वानरेन्द्र अङ्गदकाँ मानब सुग्रीवक कुल काँटे ॥ ४ ॥
सचिव सकल सह रहस विचारिय सोदर-द्रोही मारू ॥ ५ ॥
वीरबधू प्रिय-विरहिणि विकले विश्व अनित्य विचारू ॥ ६ ॥
सकल कला लय काल क्रूर जौँ करता कलह कठोरे ॥ ७ ॥
वानरेन्द्र-विश्लेषित वानर समर नाम नहि बोरे ॥ ८ ॥

वालि देवरूप होकर स्वर्ग-धाम सिधारे। १११ सीता-पति राम, ऐसी गति देने में समर्थ हैं जो मुनियों के लिए भी दुर्लभ है। ११२

॥ श्री मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड
का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

तारा का विलाप, राम द्वारा उपदेश

वानरों ने वालि का वध देख दुखी होकर रानी तारा से कहा— "राम के बाण रूपी राहु ने वालि रूपी पूर्णचन्द्र को ग्रस लिया। १-२ किले का फ़ाटक ठीक से बन्द कर दिया जाएगा। वानरों को रास्ते में ही रोक दिया जाएगा। ३ अंगद को वानरों का राजा माना जाएगा। वे सुग्रीव के वंश के लिए काँटा होंगे। ४ सारे मन्त्रियों से एकान्त में राय-मशविरा किया जाय कि कैसे सगे भाई के दुश्मन सुग्रीव को मारा जाए। ५ हे वीरवधू, आप पति के विरह से विकल हैं, पर इस शोक को 'यह संसार अनित्य है' ऐसा सोचकर छोड़ दीजिए। ६ यदि क्रूर काल भी अपनी पूरी ताकत लगाकर हमसे लड़ाई छेड़ेंगे तो वानरराज वालि के चले जाने पर भी वानरदल लड़ाई में अपना नाम नहीं बुड़ाएगा। ७-८ वालि के मरने का

॥ सोरठा ॥

बालि-मरण शुनि कान, विपतलि निपतित क्षिति मुरुछि ॥ ९ ॥
तारा तारा भान, प्रात जहन अरुणित गगन ॥ १० ॥

॥ चौपाइ ॥

मुरुछि मुरुछि क्षण मन विनु ज्ञान। कह विधि बुधि सुधि आनक आन ॥ ११ ॥
दुहु कर पोटथि छाती माँथ। धिक धिक जीवन आज अनाथ ॥ १२ ॥
वानरेन्द्र कत गेला त्यागि। हमहूँ जायब तनि संग लागि ॥ १३ ॥
फुजल केश नयन जलधार। चललि विकलि प्रिय-शव अभिसार ॥१४॥
शोणित धूलि अङ्ग परिपूर। देखल मृतक स्वामि-तन शूर ॥ १५ ॥
हा हा नाथ नाथ कहि चरण। धयल कयल पूरण रस करुण ॥ १६ ॥
तारा ततय राम दिशि ताक। करुणाकर किछु अछि कहबाक ॥ १७ ॥
बालि-वक्ष बेधल जे बाण। तहि सौं लय-लिय पापिनि-प्राण ॥ १८ ॥
तकयित हयता तारा-बाट। वल्लभ-विप्रयोग हिय फाट ॥ १९ ॥
बिनु दारा दुख जे परिणाम। अनुभव सब अपनहुँ का राम ॥ २० ॥
बालिक वदन विलोकब जाय। रघुनन्दन-शर शरण उपाय ॥ २१ ॥
अहँ सुग्रीव कयल भल काज। रुमा-सहित सुख भोगू राज ॥ २२ ॥

समाचार सुन विपत्ति में पड़ी तारा मूर्च्छित हो उसी तरह निष्प्रभ हो धरती पर गिर पड़ी जिस प्रकार अरुणोदय होने पर प्रातःकाल का तारा। ९-१० वह बार-बार मूर्च्छित होती। उसे होश-हवाश न रहा। हा विधाता, तुम्हें क्या सूझा। तुमने क्या से क्या कर दिया। ११ तारा दोनों हाथों से छाती और सर पीटती और कहती— "हाय, इस जीवन को धिक्कार है! आज मैं अनाथ हो गई। १२ कपिराज वालि मुझको छोड़ कहाँ चले गये? मैं भी उनका साथ पकड़कर जाऊँगी। १३ बाल बिखर गए। आँखों से आँसू की धारा गिरने लगी। वह विकल हो अपने पति के शव से मिलने चल पड़ी। १४ जाकर तारा ने अपने मरे हुए वीर पति के शव को देखा जो धूल और लहू से भरा हुआ था। १५ "हा नाथ! हा नाथ!" कहती हुई उसने पति के चरण पकड़ लिये और करुण रस को परिपूर्ण कर दिया। १६ तब तारा ने वहाँ खड़े राम की ओर निहारा और बोली— "हे दयालु प्रभु, मैं कुछ कहना चाहती हूँ। १७ जिस बाण से आपने वालि की छाती को विद्ध किया, उसी से कृपा कर मुझ पापिन के प्राण भी हर लें। १८ वालि तारा की राह जोहते होंगे। प्रिय-विरह से मेरा कलेजा फट रहा है। १९ प्रिय पत्नी के बिना कैसा दुख होता है इसका अनुभव तो हे राम, स्वयं आपको भी है। २० मैं अपने पति वालि का मुँह देखूँगी, और इसका सीधा उपाय है आप (राम) के बाण की शरण में जाना। २१ हे सुग्रीव, आपने भला काम किया। अब

॥ बोधय छन्द ॥

हरि हरि से हरि-केहरि किय हरि, हरल सकल सुख-सारा ॥ २३ ॥
किष्किन्धाक कलाकर-कामिनि, हम प्रदोष-तुष-तारा ॥ २४ ॥
विबुध-वैरि-रावण-मद-वारण-विद्रावण मृगराजे ॥ २५ ॥
शिव-शिवशयित समर से उर शर-शल्लित श्रीहत आजे ॥ २६ ॥

॥ वानिमी छन्द ॥

कहल रघुवीर धीर शोक रोक तारा ॥ २७ ॥
दृश्य काँ अनित्य जान वालि के बेचारा ॥ २८ ॥
पूर्व जन्म बालिबधू पूर्ण भक्ति तोरा ॥ २९ ॥
दरशन तेँ हमर भेल सुयश लोक सोरा ॥ ३० ॥

॥ बोधय छन्द ॥

बलाराति-बालक तोर वल्लभ वानरेन्द्र छल बाली ॥ ३१ ॥
वासव-रूप बनल रणविजयी सुरपुर बस बलशाली ॥ ३२ ॥
आत्मा अव्यय निर्भय सुखमय देहक दुर्गति खाली ॥ ३३ ॥
देख विचार-तत्त्व सौँ तारा के तोँ कह दुख-वाली ॥ ३४ ॥

रुमा के साथ आप सुखपूर्वक राज का भोग करें। २२ हाय-हाय ! वानरों में सिंह के समान पराक्रमी मेरे पति को हरकर आपने मेरे सुख की जड़ को ही क्यों उजाड़ दिया ? २३ मैं जो किष्किन्धा की पूर्णिमा रूपी कामिनी थी, वह शाम का तुच्छ तारा हो गई। २४ जो मेरे पति देवताओं के शत्रु रावण के मद रूपी हाथी को भगाने में सिंह के समान थे वे आज हाय-हाय ! शोभा-हीन हो रणभूमि में सोये हुए हैं और उनके हृदय में बाण चुभा हुआ है।" २५-२६ राम ने कहा— "हे धैर्यवती तारा, शोक दूर कीजिए। २७ संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह सब अनित्य है। फिर बेचारा वालि कौन है जो सदा जीवित रहे ? २८ आप पिछले जन्म में वालि की स्त्री थीं और उनके प्रति आपकी पूरी भक्ति थी अर्थात् आप पतिव्रता थीं। २९ इसी पुण्य से आपको मेरा दर्शन हुआ और आपका नाम पतिव्रता के रूप में दुनिया भर में विख्यात हुआ। ३० आपके पति वानरराज वालि इन्द्र के पुत्र थे। ३१ वे इस शरीर को त्याग इन्द्र हो गए हैं और युद्ध में सदा विजयी और परम बलवान इन्द्र बनकर स्वर्गलोक में वास कर रहे हैं। ३२ आत्मा अव्यय (नित्य, अविनाशी) है और सदा सुखमय है। दुख की अवस्था में केवल शरीर पहुँचता है। ३३ इसलिए तात्त्विक विचार करके देखिए और कहिए तो दुःख पानेवाली आप कौन होती हैं ?" ३४ जहाँ केवल ज्ञान-मार्ग से जानने योग्य स्वयं राम उपदेश

॥ सोरठा ॥

ज्ञान-ज्ञेय रमेश, उपदेष्टा रघुवीर जहँ ॥ ३५ ॥
तारा विगत-कलेश, उदित शान्त करुणान्तरस ॥ ३६ ॥

॥ द्रुतगति छन्द ॥

॥ लावण्या ॥

जगत जनन पालन प्रचण्ड लय कर्त्ता ॥ ३७ ॥
धयल मनुज-अवतार दनुज-संहर्त्ता ॥ ३८ ॥
अबला कों की ज्ञान वियोगिनि आर्त्ता ॥ ३९ ॥
त्राहि त्राहि जगदीश जलधिजा-भर्त्ता ॥ ४० ॥
फरकल मोर दृग दक्ष नाथ दृग-वामा ॥ ४१ ॥
देवर दृग दुहु गोट शकुन सिधि ठामा ॥ ४२ ॥
देल जाय प्रभु चरण-भक्ति अभिरामा ॥ ४३ ॥
माँगब आन कि वीर-वधू निष्कामा ॥ ४४ ॥
श्री रघुवर घन-कान्ति शान्ति उपदेशें ॥ ४५ ॥
तारा तखन निराश मृतक प्राणेशें ॥ ४६ ॥
शुनल सकल सुग्रीव रहित से क्लेशें ॥ ४७ ॥
घनधुनि मुदित मयूरि श्रवन-परवेशें ॥ ४८ ॥

देनेवाले हुए, तारा के सारे क्लेश दूर हो गए और उसके हृदय में करुणा के ऊपरवाला शान्त रस उदित हुआ और वह प्रार्थना करने लगी। ३५-३६ "हे राम, आप संसार को रचने, पालने और उजाड़नेवाले हैं। ३७ आपने राक्षसों के संहार के लिए मानव अवतार ग्रहण किया है। ३८ अबला ज्ञानहीन होती है। मैं पति के विरह से व्याकुल हूँ। ३९ हे जगदीश्वर लक्ष्मीपति भगवान! मेरा त्राण कीजिए। ४० मेरी दाहिनी आँख और मेरे पति की बायीं आँख फड़की थीं। ४१ और मेरे देवर सुग्रीव की दोनों आँखें फड़की थीं। यह शुभ शकुन है जिसका फल आपका दर्शन मिला। ४२ हे प्रभु, अब आप अपने चरण में भक्ति दीजिए। ४३ मैं वीर की पत्नी अब कामनाओं से हीन हो गयी हूँ; और क्या माँगूँ?" ४४ पति के मरने से निराश तारा ने तथा सभी क्लेशों से मुक्त सुग्रीव ने बादल से साँवले राम के मुँह से शान्ति के उपदेश सुने और उसी प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार कान में बादल की आवाज़ पड़ने पर मयूरी प्रसन्न होती है। ४५-४८

॥ रूपक चौपाइ ॥

कहल राम हे धीर कपीश। किछु देखक थिक लौकिक दीश ॥ ४९ ॥
बालिक हो दाहादिक काज। अङ्गद आबथु सहित समाज ॥ ५० ॥
पुष्पक ततय विचित्र बनाय। वानरेन्द्र काँ शयन कराय ॥ ५१ ॥
नाना तरहक बाजन बाज। शभ विधि जे भूपति साम्राज ॥ ५२ ॥
सेनापति मन्त्री परिवार। अङ्गद तारा सैन्य अपार ॥ ५३ ॥
यथाविहित दाहादिक कर्म्म। कयल सकल मिलि जे हो शर्म्म ॥ ५४ ॥
स्नानोत्तर मिलि सभ्य समाज। रघुपति-चरण धयल कपिराज ॥ ५५ ॥
राज्य प्रभुक सुखसौं करि भोग्य। हम चरणक दासत्वक योग्य ॥ ५६ ॥

॥ सोरठा ॥

कहल ततय श्रीराम, सुग्रीवक शुनि प्रार्थना ॥ ५७ ॥
समुचित जे यहि ठाम, से कर्त्तव्य विचार थिक ॥ ५८ ॥

॥ चौपाइ रूपक ॥

अहँ राजा अङ्गद युवराज। थिक विचार निक कहत समाज ॥ ५९ ॥
जाउ झटिति राजा बनि आउ। दिन दिन नव नव कीर्ति बढ़ाउ ॥ ६० ॥
हम न करब व्रत नगर प्रवेश। कयल प्रतिज्ञा पिता-निदेश ॥ ६१ ॥

सुग्रीव का राजा होना

तब राम ने कहा— "हे धीर वानरराज सुग्रीव ! अब लौकिक व्यवहार की ओर भी ध्यान देना है। ४९ सभी बन्धुवर्गों के साथ अंगद आवें और वालि का दाहादि संस्कार हो।" तब वहाँ सुन्दर पुष्पक बनाया गया और वानरराज वालि को उस पर सुलाया गया। ५०-५१ तरह-तरह के बाजे बजे। राजा की ठाट के लायक हर तरह से कार्रवाई की गयी। ५२ सेनापति, मन्त्री, परिवार के लोग, अपार सेना, अंगद और तारा सबों ने मिलकर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उनका दाह-संस्कार किया जिससे कि उन्हें सद्‌गति हो। ५३-५४ फिर स्नान के बाद कपिराज सुग्रीव ने परिजन-समेत राम के चरण गहे और बोले। ५५ हे प्रभु ! यह राज्य आपका है, आप सुख के साथ इसका भोग करें। हम लोग तो आपके चरणों के केवल दास होने के योग्य हैं।" ५६ सुग्रीव की प्रार्थना सुनकर वहाँ राम ने कहा। ५७ "यहाँ क्या करना उचित होगा, यह विचार किया जाय। ५८ आप राजा बनें और अंगद को युवराज बनायें यही विचार ठीक होगा और इसे ही समाज अच्छा कहेगा। ५९ जाइए, जल्दी राजा बनकर आइए। रोज-रोज नयी-नयी कीर्ति पाते रहिए। ६० व्रत (प्रतिज्ञा) के कारण मैं नगर-प्रवेश नहीं कर

लक्ष्मण जयता नहि सन्देह। मित्र अपन प्रिय परिजन गेह ॥ ६२ ॥
किछु दिन सुखपुर करब निवास। आयब मन नहि करब उदास ॥ ६३ ॥
सीता-अन्वेषण मे रहब। विषय बहुत अहँ काँ की कहब ॥ ६४ ॥
एहि गिरिवर हम बासा करब। गिरि कानन सुखसौँ सञ्चरब ॥ ६५ ॥
लक्ष्मण काँ लेल सङ्ग लगाय। आज्ञा पाबि अपन घर जाय ॥ ६६ ॥
कयल सकल आज्ञा अनुसार। लक्ष्मण-पूजन बिविध प्रकार ॥ ६७ ॥
राम निकट लक्ष्मण अयलाह। किष्किन्धा-वार्त्ता लयलाह ॥ ६८ ॥
रामचन्द्र-पद कयल प्रणाम। राम कहल कयलनि विशराम ॥ ६९ ॥
कयल प्रवर्षण-गिरि पर बास। ततय बिताबथि चातुर्मास ॥ ७० ॥
रहला गह्वर सुन्दर जानि। न पड़ पराभव रौदेँ पानि ॥ ७१ ॥
लग लग मिल भल कन्द सुमूल। पल्लव-जल मोती समतूल ॥ ७२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे
किष्किन्धाकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

सकता हूँ। मैंने पिता की आज्ञा से ऐसा व्रत लिया है। ६१ आप हमारे मित्र हैं, अपने प्रिय परिजन हैं, इसलिए लक्ष्मण आपके घर अवश्य जाएगा। ६२ कुछ दिन सुख के साथ अपने नगर में रहिएगा। मन उदास मत कीजिएगा। फिर लौटकर मेरे पास आइएगा। ६३ सीता की खोज में लगे रहिएगा। बातें बहुत हैं, आपसे कहाँ तक कहें। ६४ मैं इस पहाड़ी पर वास करूँगा और सुख के साथ पहाड़ों व जंगलों में घूमा करूँगा। ६५ सुग्रीव राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण को साथ लेकर अपने घर गये। ६६ राम की आज्ञा के अनुसार सब कुछ किया और हर तरह से लक्ष्मण की पूजा-परिचर्या की। ६७ फिर लक्ष्मण वहाँ से लौटकर राम के पास आए, और किष्किन्धा का हाल सुनाया। ६८ रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम किया। फिर राम की आज्ञा से विश्राम किया। ६९ वहाँ राम ने प्रवर्षण नामक पहाड़ी पर डेरा डाला। वहाँ बरसात के चार महीने बिताने थे। ७० वह एक सुन्दर गुफा देख उसमें निवास किया, जहाँ धूप या वर्षा से कोई तकलीफ़ न होनेवाली थी। ७१ पास में ही अच्छे-अच्छे कन्द-मूल-फल मिलते। पत्तों से पानी मोती जैसे टपकते। ७२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिल-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का
तीसरा अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ रूपक चौपाइ ॥

योगारूढ़ समाधि विराम। सय्यँमशील निरन्तर राम॥ १ ॥
लक्ष्मण पूछल पूजा-रीति। कहल राम बुझि अनुज सप्रीति॥ २ ॥
वेद तन्त्र पूजाक प्रकार। संक्षिप्ताक्षर विधि विस्तार॥ ३ ॥
पुन प्राकृत बनि विरही राम। विलप कलप लय सीता नाम॥ ४ ॥
सगरि रजनि निद्रा नहि आब। मानस-बनक वियोगज-दाव॥ ५ ॥
किष्किन्धा मन्त्री हनुमान। ओतय कहल सुग्रीवक कान॥ ६ ॥
राम अहाँक कयल उपकार। पाओल सम्पति सुख प्रिय दार॥ ७ ॥
अहँ कृतघ्न बिसरल वृत्तान्त। होयत की कल्याण नितान्त॥ ८ ॥
भुवन-विदित बाली जे वीर। से मरि गेला एकहि तीर॥ ९ ॥
राज्य अकण्टक तारा पाय। दिन अज्ञात राति बिति जाय॥ १० ॥
से पर्व्वत पर अहँ घर सूति। व्यर्थ करी जनु तेसर जूति॥ ११ ॥
ओ तकयित नित मित्रक बाट। अहँ कि सुचित घर ठोकि कपाट॥ १२ ॥
कामातुर वानर अज्ञान। त्यागू राज्य-विषय अभिमान॥ १३ ॥

चौथा अध्याय

सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में दूत भेजा जाना

राम निरन्तर संयम के साथ रहते हुए योगी हो समाधि लगाए रहने लगे। १ एक दिन लक्ष्मण ने पूजा की विधि पूछी। राम ने अपना प्रिय अनुज समझकर उन्हें वैदिक और तान्त्रिक पूजा की विधि थोड़े शब्दों में सविस्तार बताई। २-३ फिर वियोगी राम सामान्य मनुष्य की भाँति सीता का नाम ले-लेकर बिलखने लगे। ४ सारी रात जागकर बिताते। उनके मन रूपी वन में विरह रूपी आग लगी थी। ५ उधर किष्किन्धा में मंत्री हनुमान ने राजा सुग्रीव के कान में कहा। ६ "हे राजा, राम ने आपकी सहायता की जिसके बदौलत आपने सम्पत्ति, सुख और प्रिय पत्नी पायी। ७ आप कृतघ्न की तरह उनकी खबर लेना भूल गये। इससे परिणाम में आपका अकल्याण हो सकता है। ८ वालि, जो जगत में विख्यात वीर थे, राम के एक ही बाण से मर गये। ९ आप निष्कंटक राज्य और तारा-सी पत्नी पाकर यों ही दिन और रात को बिताए जा रहे हैं। १० उधर राम पहाड़ी पर हैं, इधर आप महल में सोते हैं। नाहक ग़ैर मत बनिए। ११ वे रोज़ अपने मित्र की राह जोह रहे हैं, पर आप दरवाज़े बन्द किए घर में सोये रहें, क्या यह उचित होगा? १२ आप वानर हैं, काम में आसक्त और ज्ञानहीन हो गए हैं। राज्य

कुपथ गमन सौं मुइला बालि। अहुँउ धयल भल प्रबल कुचालि ॥ १४ ॥
ई शुनि भय-विह्वल कपिराज। वचन कहल मनमे भेल लाज ॥ १५ ॥
दश हजार चर वानर जाय। आनय वानर भालु बजाय ॥ १६ ॥
सातहु द्वीपक वानर विकट। पनरह दिनमे आबथु निकट ॥ १७ ॥
जे करताह व्यवस्था-हानि। तनिकाँ हम मारब अरि जानि ॥ १८ ॥
कहि सुग्रीव गेला घर घूरि। मारुत-सुत दैल आज्ञा पूरि ॥ १९ ॥
अतुलित-गुण बल दश दिश गेल। कयल विलम्ब न त्रासक लेल ॥ २० ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय तहि गिरिमणि-सानु। विरही राम चरम-गिरि भानु ॥ १ ॥
असह विरह लक्ष्मण कौं कहल। सीता हरलक राक्षस रहल ॥ २ ॥
छथि वा नहि जिबयित के जान। हृदय हमर थिक कुलिश समान ॥ ३ ॥

का अभिमान छोड़िए। १३ बे-रास्ता चलने के कारण बालि मारे गये। आप भी उसी बुरी चाल में लगे।" १४ यह सुनकर वानरों के राजा सुग्रीव डर गये; मन में लज्जा आ गयी और बोले। १५ "वानरों और भालुओं को बुलाकर लाओ। दूत बनकर दस हज़ार वानर जाएं। १६ जितने वीर वानर हैं वे सभी सातों द्वीपों में सीता की खोज कर पन्द्रह दिन में मेरे पास लौटें। १७ इस आदेश का जो उल्लंघन करेगा से मैं दुश्मन समझकर मार डालूंगा।" १८ इतना कहकर सुग्रीव अपने महल में चले गये और हनुमान ने उनकी आज्ञा का पालन किया। १९ बेजोड़ गुणों वाले जवान दसों दिशाओं में दौड़ चले। डर के मारे तनिक भी विलम्ब नहीं किया। २०

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

राम का किष्किन्धा में चातुर्मास्य बिताना और विरह-वर्णन

एक समय सबसे ऊँचे पर्वत पर उदित सूर्य के समान प्रतापी विरह-व्याकुल राम उस पर्वत की चोटी पर बैठे। १ वे अपनी असह्य विरह-वेदना लक्ष्मण से सुनाने लगे— "हाय, सीता को राक्षस ने हर लिया है। २ कौन जानता है कि वह जीती होगी या नहीं। मेरा हृदय वज्र-सा कठोर है। ३ यदि कोई कह दे कि वह जीती है, तब मैं उसे लौटाने का उचित प्रयास

छथि जिवयित केओ कहि जाय। तखन करब हम उचित उपाय॥ ४॥
हठ सौँ हम हुनका छिनि लेब। सुधा-पयोनिधि मथि जनु देब॥ ५॥
अरि बल पुत्र सकल देब मारि। हरलक जे सीता सति नारि॥ ६॥
महामत्त-गज घन-विस्तार। विरहिनि बधय भ्रमय संसार॥ ७॥
चपला-कसा सुरेश्वर मार। अम्बरमे घन शब्द उचार॥ ८॥
बड़ जलभार वलाका सङ्ग। अग अग अटकथि बाहिक रङ्ग॥ ९॥
निद्रा केशव-तन लपटाथि। सरित सकल सुख सागर जाथि॥ १०॥
बिशद वलाका गगन समाथि। बिरही जन मन मन अकुलाथि॥ ११॥
चिन्ता-खेद विरहि-मन व्याप। शिखरिशिखरिशिखिऋषभ अलाप॥ १२॥
बढ़ित रस नहि रहल संभार। चललि नदी नदिपति अभिसार॥ १३॥
गगन न देखिय घन परिपूर। तारा तारापति नहि सूर॥ १४॥
पङ्कज मुद्रित खग नीड़स्थ। विकसित मालति दिनपति अस्त॥ १५॥
दिन रजनिक मन हो अनुमान। कोक अशोक शोकसौँ भान॥ १६॥
नृप नृपकाँ घन कलह घटाय। वर्षा सेना देल अटकाय॥ १७॥

करूंगा। ४ मैं हरणकर्ता से बलपूर्वक उसे छीन लूंगा, मानों समुद्र को मथकर अमृत निकाल लूंगा। ५ जिससे सीता-जैसी सती नारी का हरण किया उसे सारी सेनाओं और पुत्रों-सहित मार डालूँगा। ६ देखो, यह फैला हुआ बादल महामत्त हाथी की तरह विरहियों का वध करने के लिए संसार में मँड़रा रहा है। ७ देवताओं के राजा इन्द्र इस मतवाले हाथी को बिजली की चाबुक से पीटते हैं, जिससे वह आकाश में चिघाड़ रहा है। ८ बगलों की पाँत रूपी डोरी में बँधी जल की गठरी उठाए कुली के समान बादल पर्वत-पर्वत पर अटकता है। ९ निद्रा भगवान विष्णु के शरीर से लिपट गई अर्थात् हरिशयनी एकादशी आ गयी। नदियाँ आनन्दपूर्वक समुद्र से मिलने निकल पड़ीं। १० बगलों की पाँतें बादल से लिपट रही हैं। विरही लोग देख-देखकर मन में व्याकुल हो रहे हैं। ११ विरहियों के मन में चिन्ता और व्यथा व्याप्त है। पर्वत-पर्वत पर श्रेष्ठ मोर शब्द कर रहे हैं। १२ नदियों में रस (पानी और कामोद्वेग) बढ़ गया और वे उसे सँभाल (दबा) न सकीं, अतः वे अपने पति समुद्र की ओर निकल पड़ीं। १३ आकाश दिखायी नहीं देता, सर्वत्र बादल भरा हुआ है। न तारे दिखायी देते, न तारापति चन्द्रमा और न सूर्य। १४ कमल मुँद गये। पक्षी अपने-अपने घोंसलों में चले गए। मालती खिली। सूर्य अस्त हो गये। १५ दिन है या रात इसका अनुमान यह देखकर ही सम्भव था कि चकवा पक्षी विरह-अवस्था में है या मिलन-अवस्था में। १६ बादल ने राजा-राजा के बीच संघर्ष को घटा दिया, क्योंकि वर्षा के कारण सभी सेनाएँ रुकी पड़ी थीं। १७ मेढक टर्र-टर्र आवाज कर रहे हैं, मानों

भेक अनेक वचन उच्चार। जनु पटु बटु रटु श्रुतिस्वर-सार॥ १८॥
घन सुख सुग्रीवहि कें प्राप्त। दार-सहित अरि शूर समाप्त॥ १९॥

॥ हंसगति छन्दः ॥

॥ जाज ॥

हमर बिना वैदेहि विषम दुख सहती॥ २०॥
राक्षस-घरमे जाय हाय की रहती॥ २१॥
प्राणेश्वरी कहाय हाय की कहती॥ २२॥
शय शय संशय आब दुर्दशा महती॥ २३॥

॥ रोला ॥

॥ लावण्या ॥

सीता-चरण-सरोज-परश-शीतलता तोरा॥ २४॥
रे शशि बनु जनु भानु दहन करु जनु तनु मोरा॥ २५॥
हरि हरि हरि हरु हृदय-ताप तुय हृदय कठोरा॥ २६॥
वैदेही-मुख पूर्णचन्द्र मोर नयन चकोरा॥ २७॥

॥ बाला छन्द ॥

राखि नहि भेल की अपन नारी॥ २८॥
वंश मे लक्ष्म हा पड़ल भारी॥ २९॥
राक्षसागारमे जनक-बाला॥ ३०॥
हाय रे आँखि की जलदमाला॥ ३१॥

ब्रह्मचारी वटु वेद की ऋचाएँ रट रहे हों। १८ बादल से सुग्रीव सुखी हुए हैं, क्योंकि उन्हें पत्नी मिल गई है और उनके वीर दुश्मन वालि का अन्त हो गया है।" १९ फिर राम कहने लगे— "हाय! मेरे विरह में सीता को बड़ी वेदना होती होगी। २० वह राक्षस के घर में जाकर कैसे रहती होगी। २१ उसे मैं प्राणेश्वरी कहता था, सो अब वह क्या सोचेगी? २२ अब मेरे मन में सौ-सौ आशंकाएँ हो रही हैं। बड़ी दुर्दशा में पड़ा हुआ हूँ। २३ हे चाँद, तुममें जो शीतलता है वह सीता के चरण-कमल के स्पर्श से प्राप्त हुई है। (अर्थात् तुम उतने ही शीतल थे जितना सीता का चरण)। २४ तुम मेरे लिए सूरज मत बनो; मेरे शरीर को मत जलाओ। २५ हाय-हाय! तुम मेरा सन्ताप दूर करो। लगता है तुम्हारा हृदय कठोर है (इसीलिए मुझे जलाते हो)। हे पूर्णचन्द्र, तुम सीता के मुख के समान हो, इसीलिए तो मेरी आँखें तुम्हारे लिए चकोर बनी हुई हैं। २६-२७ हाय, मैं अपनी स्त्री को भी बचाकर न रख सका। २८ कुल में भारी कलंक लग गया। २९ राजा जनक की पुत्री आज राक्षस के घर में है। ३० हाय, मेरी आँखें तो बदली

॥ तरल-नयन छन्द ॥

हमरहि पड़ल विपति-तति, कत छथि जनक-कुमरि सति ॥ ३२ ॥
अविरल नयन बहय जल, पल भरि पड़य न मन कल ॥ ३३ ॥
शशि नहि थिकथि विषम फणि, उडु-तति थिक तनि फण-मणि ॥ ३४ ॥
लह लह रसन किरण-गण, अतिशय मलिन गरल घन ॥ ३५ ॥
डसयित विरहि गलित तन, अछि बचि रहल धवल फन ॥ ३६ ॥
फणपति कुलक धवल छथि, विषधर गणक प्रबल छथि ॥ ३७ ॥
छथि कत रमणि जौं सुनितहुँ, शमनहुँ हनि तनि अनितहुँ ॥ ३८ ॥

॥ चौपाइ ॥

हत हृतदार भोग्य नहि राज। सीता बिनु जीवन को काज ॥ ३९ ॥
कतय बलाहक कतय बलाक। हर्ष मयूरक शति चपलाक ॥ ४० ॥
इन्द्र छोड़ाओल पृथिवि पियास। जीवन-दायक जनिकर दास ॥ ४१ ॥
घन वारण प्रस्रवण मयूर। सभहिक नाद गेल चल दूर ॥ ४२ ॥
वन वन सम्प्रति काश फुलाय। घन ऋतु क्रम क्रम गेल बुढ़ाय ॥ ४३ ॥
मूक मयूर हंस-स्वन सुनि। गलित-पक्ष अरि-परिभव गुनि ॥ ४४ ॥

बन गईं। ३१ मुझ पर ही सारी विपत्ति आ पड़ी। जनकपुत्री सती सीता कहाँ है? ३२ आँखों से लगातार आँसू बरस रहे हैं। मन में क्षण भर भी चैन नहीं है। ३३ आसमान में यह चाँद नहीं है, यह तो सफ़ेद मनिहार साँप है। ये तारे नहीं उस साँप की मणियाँ हैं। ३४ उस साँप की किरण रूपी जीभ लह-लह कर रही है। उस साँप में जहर भरा हुआ है जो गहरे काले धब्बे के रूप में दिखाई देता है। ३५ विरहियों को डँसते-डँसते उसका शरीर तो पाप से गल गया है, केवल सफ़ेद फन बचा हुआ है। ३६ वह साँप बड़े निर्मल कुल का है और विषधरों में बड़ा तेज है। ३७ यदि खबर होती कि प्रिया सीता कहाँ है तो यम को भी मारकर उसे ले आता। ३८ मेरी स्त्री चली गई, मेरा राज चला गया। अब सीता के बिना मेरा जीवन किस काम का? ३९ कहाँ बादल और उससे बहुत दूर बलाका (बगलों की पाँत)? कहाँ दूर बादल में बिजली के चमकने से मोर का मन हर्षित हो गया है। ४० इन्द्र ने, जीवनदाता पानी जिसके वश में है, पृथ्वी की प्यास को दूर कर दिया। ४१ शरद बीतने से बादल, झरने और मोर सबों की आवाज दूर चली गयी। ४२ अब बन-बन में कास खिले हुए हैं। वर्षा ऋतु धीरे-धीरे बूढ़ी हो गयी। ४३ हंसों की आवाज सुनकर मोर चुप हो गये। शत्रुओं से पराभव पाकर मोरों के पक्ष झर गये। ४४ शरद की नदी

।। दोहा ।।

शरद-सरित सुन्दर पुलिन, थोड़ थोड़ दरशाब ।। ४५ ।।
नव-सङ्गम-लज्जावतिक, जघनक उपमा पाब ।। ४६ ।।

।। चौपाइ ।।

तारा भूषण विधु मुख थाक । तिमिर तनिक अलकावलि नीक ।। ४७ ।।
सन्ध्यारुण पट कुसुमक रङ्ग । हो परतक्ष न संशय अङ्ग ।। ४८ ।।
देखि पड़ अम्बर-दर्पण माँझ । राति कि सीता-छाया साँझ ।। ४९ ।।
गगन न थिकथि उदधि मन मान । तारा-तति भव फेन समान ।। ५० ।।
शशि न कुण्डलित थिकथि फणीश । अङ्क न शयित विष्णु जगदीश ।। ५१ ।।
पावस विगत शरद अवतार । नहि चर हमर कतहु सञ्चार ।। ५२ ।।
की थिति सीता छथि कोन देश । के हित आनत तनिक सन्देश ।। ५३ ।।
कपिपति कृपा कयल परित्याग । पाछिल दिन मन पड़ि के जाग ।। ५४ ।।
कामी राज्य-मदैं की सूझ । आनक सुख दुख कतहु कि बूझ ।। ५५ ।।
आब होइछ मन बालिक सोच । मारल तनिका हिनके रोच ।। ५६ ।।
आमिष भक्षण मदिरा पान । कतय ततय रह सदसत ज्ञान ।। ५७ ।।

अपना सुन्दर तट थोड़ा-थोड़ा प्रकट करती, जिस तरह लजीली नवयौवना नायिका रति में अपनी जाँघ प्रकट करती है। ४५-४६ ताराएँ सीता के भूषण हैं, चाँद उसका मुँह है, अन्धकार उसके बाल हैं, और शाम की छाई हुई लाली कुसुम रंग की उसकी साड़ी है। इस तरह शरद के आकाश रूपी दर्पण में रात या शाम को सीता की स्पष्ट छाया दिखाई दे रही है। ४७-४९ यह आकाश नहीं है, यह तो समुद्र-सा लगता है। ताराएँ नहीं, ये समुद्र में बिखरे फेन हैं। ५० यह चाँद नहीं, यह तो चक्कर मारकर बैठा शेषनाग है। यह काला धब्बा नहीं, यह तो उस पर विराजमान भगवान विष्णु हैं। ५१

सुग्रीव पर लक्ष्मण का कुपित होना

वर्षा ऋतु बीत गयी और शरद ऋतु आ गयी। पर सीता को खोजने के लिए मेरे चर (भेदिये) कहीं न भेजे गये। ५२ सीता किस अवस्था में, किस देश में है— यह सन्देशा मेरा कौन हित व्यक्ति ला देगा ? ५३ वानरराज सुग्रीव ने भी कृपा करना छोड़ दिया। पिछले दिनों को याद कर सदा कौन जागरूक रहता है ? ५४ जो कामी है और राज्य के मद में चूर है, उसे क्या सूझेगा ? गैर के सुख या दुःख का भान उसे क्या होगा ? ५५ अब वालि के लिए मन में पछतावा होता है। उसे तो इन सुग्रीव के खातिर ही मारा था। ५६ जो मांस खाये और मद्य पिये उसे भले-बुरे कर्म का ज्ञान कैसे रहेगा ? ५७ रति के अन्त में प्रबल नींद आती होगी और अक्सर सोये रहते

अधिक निन्दवश रति-अवसान। जगलहु जलपथि आनक आन ।। ५८ ।।
ओ कपटी छथि मारय योग्य। बालिक बधसौँ ई आरोग्य ।। ५९ ।।
बुझला जाइछ तेहन कुठाठ। धयल चरण जनु बाली-बाट ।। ६० ।।
से शुनि लक्ष्मण मन अति कोप। अनुमति हो करि कपि-पति-लोप ।। ६१ ।।
हमरा हो जौँ आज्ञा नाथ। सुग्रीवक थिति हमरा हाथ ।। ६२ ।।
ई कहि लेल धनुष कर बाण। प्रभु-रुचि पाबथि करथि प्रयाण ।। ६३ ।।

।। तोटक छन्द ।।

शुनु लक्ष्मण सत्वर जाउ अहाँ ।। ६४ ।।
भयभीत करू कपिनाथ तहाँ ।। ६५ ।।
परित्यागथि बालि-कुचालि जना ।। ६६ ।।
नहि मारब मित्र करैछी मना ।। ६७ ।।

।। चौपाइ ।।

स्फुरित अधर लोचन अति लाल। चलल रौद्र रस जेहन विशाल ।। ६८ ।।
ई प्रभु माया अपन पसार। निर्गुण सगुण सुगुण अवतार ।। ६९ ।।
नगरक निकट धनुष-टङ्कार। कयलनि लक्ष्मण कोप अपार ।। ७० ।।
से शुनि प्राकृत कीश सगर्व। पाथर तरु कर दौड़ल सर्व ।। ७१ ।।

होंगे। जागने पर भी अनाप-शनाप ही बकते होंगे। ५८ सुग्रीव कपटी निकले। उन्हें मारना उचित होता। पर वालि के वध से तो वे निष्कंटक हो गये। ५९ ऐसा कुरंग लगता है मानों सुग्रीव ने भी वालि के रास्ते पर ही पाँव रखे।" ६० इतना सुनते ही लक्ष्मण के मन में भारी क्रोध जाग उठा। वे बोले— "हे राम, यदि आपकी अनुमति हो तो मैं वानरराज सुग्रीव का अन्त कर दूँ! ६१ हे प्रभु, मुझे केवल आज्ञा चाहिए। सुग्रीव का अस्तित्व मेरे हाथ में है।" ६२ इतना कहकर लक्ष्मण धनुष और बाण हाथ में ले तैयार हो गये कि राम की अनुमति पाते ही प्रयाण कर दें। ६३ राम ने कहा— "हे लक्ष्मण, तुम जल्द जाओ। ६४ वहाँ जाकर वानरराज सुग्रीव को डराओ-धमकाओ जिससे कि वह वालि की तरह बुरा रास्ता न पकड़े। ६५-६६ पर मैं मना करता हूँ, उसे जान से मत मारना, क्योंकि वह मेरा मित्र है।" ६७ लक्ष्मण के होंठ फड़कने लगे। आँखें लाल हो गयीं, मानों प्रबल रौद्र-रस चल पड़ा हो। ६८ पर वास्तव में यह राम ने, जो निर्गुण होते हुए भी सगुण हो आदर्श पुरुष के रूप में अवतीर्ण हैं, अपनी माया फैलायी। ६९ लक्ष्मण किष्किन्धापुरी के पास आये और परम क्रुद्ध हो धनुष को टंकारा। ७० उसकी आवाज़ सुनकर मामूली बन्दर अभिमान के साथ हाथ में पत्थर और पेड़ ले-लेकर दौड़े। ७१ जब लक्ष्मण ने बन्दरों का

लक्ष्मण देखल वानर रङ्ग। बाढ़य लागल कोप अभङ्ग॥ ७२॥
अङ्गद दौड़ला करयित घोल। कहि अवाच्य रोकल कपि-गोल॥ ७३॥
वानर-बल हठि दूर पड़ाह। कोपक विकट निकट नहि जाह॥ ७४॥
अङ्गद आबि प्रार्थना कयल। लक्ष्मण-चरण शरण कहि धयल॥ ७५॥
अङ्गद काँ लेल हृदय लगाय। कहलनि कहू पितीकेँ जाय॥ ७६॥
रघुनाथक आज्ञा अनुसार। हे युवराज करब व्यवहार॥ ७७॥
एतय पठाओल रौद्रक मूर्त्ति। कयल व्यवस्था कयल न पूर्ति॥ ७८॥
सुनि से सत्वर अङ्गद जाय। सभय पितीकेँ कहल बुझाय॥ ७९॥
पुरी-द्वार लक्ष्मण छथि ठाढ़। उचित क्रोध हुनका मन बाढ़॥ ८०॥
सुनितहि कपिपति बहुत डराय। हनूमान काँ कहल बजाय॥ ८१॥
हनूमान संगेँ युवराज। लक्ष्मण करिय कोप कृश आज॥ ८२॥
शञ्च शञ्च निज भवनहिँ लाउ। कोप रहितसौँ भेंट कराउ॥ ८३॥
ताराकाँ कहलनि कपिराज। अहुँउ जाउ सौमित्रि-समाज॥ ८४॥
कोमल वचनेँ करु परितोष। मिलब हमहु जखना नहि रोष॥ ८५॥
तारा पहुँचलि मध्यम कक्ष। यहि पथ अओता हयब समक्ष॥ ८६॥
अङ्गद विनय-युक्त हनुमान। कयल प्रणाम कहल कल्यान॥ ८७॥

यह रंग-ढंग देखा तब उनका अटल कोप और बढ़ने लगा। ७२ अंगद चिल्लाते हुए दौड़े और फटकारते हुए वानरों के दल को मना किया। ७३ "बन्दरो, तुरत यहाँ से दूर भागो। लक्ष्मण के विकट क्रोध के सामने मत जाना।" ७४ फिर अंगद लक्ष्मण के पास आये और क्षमा-प्रार्थना करके यह कहते हुए उनके पाँव गहे कि 'ये चरण ही मेरा अवलम्ब हैं'। ७५ तब लक्ष्मण ने अंगद को छाती से लगा लिया और बोले— "जाकर चाचाजी से कहो। ७६ हे युवराज, राम ने जैसा कहा है वैसा मुझे करना है। ७७ राम ने परम क्रुद्ध हो मुझको सुग्रीव से यह कहने के लिए यहाँ भेजा है कि उन्होंने जो वचन दिया था उसको पूरा नहीं किया। ७८ यह सुनकर अंगद ने झटपट जाकर अपने चाचा को समझाकर संवाद सुना दिया। ७९ "नगर के फ़ाटक पर लक्ष्मण खड़े हैं और उनके मन में उचित ही बहुत क्रोध है।" ८० सुनते ही सुग्रीव बहुत डर गये और हनुमान को बुलाकर कहा। ८१ "हे हनुमान, आप युवराज अंगद के साथ जाइए और आज लक्ष्मण के क्रोध को शान्त कीजिए। शान्तिपूर्वक उन्हें अपने राजभवन में बुला लाइए और क्रोधरहित अवस्था में उनसे मेरी मुलाक़ात कराइए।" ८२-८३ फिर सुग्रीव ने अपनी पत्नी तारा से कहा— "तुम भी लक्ष्मण के पास जाओ। ८४ कोमल वचन कह-कहकर उन्हें प्रसन्न करो। जब उनका क्रोध उतर जाएगा तब मैं भी उनसे मिलूँगा।" ८५ तारा बीच वाले दरवाज़े पर पहुँची कि इसी मार्ग से वे गुज़रेंगे, यहाँ आते ही सामने हो जाएगी। ८६ अंगद और विनीत हनुमान

हे सौमित्रि अपन थिक गेह। चलल जाय मन निस्सन्देह ॥ ८८ ॥
देखब राजदार कपिराज। अपनें सौं के जनि कर लाज ॥ ८९ ॥
तखन जेहन आज्ञा से करब। अपनहुँ दोर्घ दोष परिहरब ॥ ९० ॥
लक्ष्मण कर धय कह हनुमान। चलु अन्तःपुर बुद्धि-निधान ॥ ९१ ॥
क्रम क्रम गेला मध्यम कक्ष। तारा चन्द्रानना समक्ष ॥ ९२ ॥
मद-अरुणित दृग भूषण-राजि। नमस्कार कयलनि हँसि बाजि ॥ ९३ ॥
रक्षा करिय अपन जन जानि। कपिपतिसौं नहि हो हित-हानि ॥ ९४ ॥
अपनहि कयल विषय आरोप। मृत्य भक्त कपिवर पर कोप ॥ ९५ ॥
दुर्दशा छला दशा भल पाबि। भोग-विवश इच्छित सुख भाबि ॥ ९६ ॥
छथि उद्योगहि भक्त कपीश। अन्तर्यामी प्रभु जगदीश ॥ ९७ ॥
बहुतो दूत पठाबल दूरि। बहुत शीघ्र अबयित अछि घूरि ॥ ९८ ॥
जौं दशकन्धर-कृत अन्याय। विद्यमान बल बालिक भाय ॥ ९९ ॥
तारा-विनय-वचन सुनि कान। अन्तःपुर पुनि कयल प्रयाण ॥ १०० ॥

॥ सोरठा ॥

रुमा-अङ्क निशङ्क, मदावस्थ मातङ्ग सम ॥ १०१ ॥

ने लक्ष्मण को प्रणाम किया और कल्याणपूर्वक कहा। ८७ "हे लक्ष्मण, यह आपका अपना घर है, बेखटक चलिए। ८८ आप रानी तारा और राजा सुग्रीव से मिलेंगे। आप से कौन स्त्री लज्जा करेगी ? ८९ तब आप जो आज्ञा देंगे हम उनका पालन करेंगे और आप भी हम लोगों के भारी अपराध को माफ़ कीजिएगा।" ९० हनुमान ने लक्ष्मण का हाथ पकड़कर कहा— "हे बुद्धिमान, राज-भवन के भीतर चलिए।" ९१ धीरे-धीरे वे लोग बीच वाले दरवाज़े पर पहुँचे जहाँ चन्द्रमुखी तारा सामने खड़ी थी। ९२ मद्य से लाल आँखों वाली और भूषणों से शोभित तारा ने मुस्कुराते हुए नमस्कार किया और बोली। ९३ "हमें अपने लोग समझकर हमारी रक्षा कीजिए। राजा सुग्रीव आपकी भलाई करने में नहीं चूकेंगे। ९४ आपने ही तो उन्हें भोग का अवसर दिया। फिर आप ही क्यों वानरराज पर नाराज़ होते हैं जो आपके भक्त सेवक हैं ? ९५ दुर्दशा में पड़े हुए थे, आप ही की मदद से अच्छी दशा में आये और इष्ट सुख-सामग्री पाकर भोग में लीन हो गये। ९६ कपिराज आपके लिए कोशिश में लगे ही हैं। हे प्रभु, आप तो सबों के हृदय की बात जाननेवाले ईश्वर हैं। ९७ राजा सुग्रीव ने बहुत-सारे दूतों को दूर-दूर भेजा है। वे सभी जल्द ही लौटकर आनेवाले हैं। ९८ यदि यह अन्याय (सीता-हरण) रावण ने किया है तो कोई चिन्ता नहीं, बालि के भ्राता को उनका बल मालूम ही है।" ९९ तारा का नम्रतापूर्ण वचन सुनकर लक्ष्मण ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। १०० उधर हाथी के समान मदमत्त हो रुमा की गोद में मणिमय

बैसल मणिपर्य्यङ्क, देखल लक्ष्मणकेँ सतय ॥ १०२ ॥
सत्वर उठल डराय, लज्जित मद-घूर्णित नयन ॥ १०३ ॥
रामानुज खिसिआय, कहल बहुत निन्दित कथा ॥ १०४ ॥
रे वानर दुर्वृत्त, बिस्मृत श्रीरघुनाथ किय ॥ १०५ ॥
भावी बहुत निमित्त, बालि सदृश मरणेच्छ की ॥ १०६ ॥
प्रभुतादिक मद पाब, धन-मद गुण-तारुण्य-मद ॥ १०७ ॥
मद मद महिला आब, विधिहुक बुत नहि से बुझथि ॥ १०८ ॥
समय कहल हनुमान, लक्ष्मण-योग्य न वचन थिक ॥ १०९ ॥
कपिपति भक्ति समान, अपनहुँ नहि रघुनाथ मे ॥ ११० ॥
करथि प्रभुक हित काज, वानरेश रघुनाथ-प्रिय ॥ १११ ॥
वानर सैन्य समाज, आबि गेल देखू अहाँ ॥ ११२ ॥
सकल सैन्य लय संग, सीतान्वेषण मे निरत ॥ ११३ ॥
करता शत्रुक भङ्ग, नहि विलम्ब सन्नद्ध बल ॥ ११४ ॥
निज अनुचित मन मानि, लज्जित रामानुज तहाँ ॥ ११५ ॥
अर्घ्यादिक सम्मानि, कपि-राजा भिललाह तहाँ ॥ ११६ ॥
हम श्रीरामक दास, ओ रक्षा कयलनि हमर ॥ ११७ ॥
तनिकहु अनकर आश, हम सहाय नामक ध्रुव ॥ ११८ ॥

पलंग पर चैन से पड़े सुग्रीव ने लक्ष्मण को वहाँ देखा। १०१-१०२ नशे से घूमती आँखों वाले सुग्रीव देखते ही लज्जित और भयभीत हो उठे। १०३ तब लक्ष्मण ने क्रुद्ध हो बहुत-सी खरी-खोटी सुनाई। १०४ "अरे दुराचारी बन्दर, तुम श्री रघुनाथ को कैसे भूल गये ? १०५ लक्षण लगता है कि तुम भी वालि की तरह मरना चाहते हो। १०६ जो प्रभुता आदि का मद पाता है, धन का मद पाता है, गुणों का मद पाता है, जवानी का मद पाता है, मदिरा का मद पाता है और महिला का मद पाता है, उसे ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते हैं। १०७-१०८ ऐन मौके पर हनुमान ने कहा— "ऐसा कहना आपके लिए शोभा नहीं देता। १०९ राम में जैसी भक्ति सुग्रीव को है वैसी आपको भी नहीं है। ११० राम के प्रिय वानरराज सुग्रीव उनके हित के लिए सचेष्ट हैं। १११ यह देखिए, वानरों की सेना आ ही गयी है। ११२ अब सारी सेना को साथ ले सीता की खोज में लगे सुग्रीव शत्रु का संहार करेंगे। प्रयाण के लिए सेना तैयार है। अब इसमें विलम्ब नहीं है। ११३-११४ तब राम के अनुज लक्ष्मण को मालूम हुआ कि उन्होंने अनुचित किया, अतः लज्जित हो गये। ११५ वानरराज सुग्रीव अर्घ्य आदि से सत्कार करके लक्ष्मण से मिले। ११६ सुग्रीव ने कहा— 'मैं राम का दास हूँ। उन्होंने मेरी रक्षा की है। ११७ अरे, उनको क्या दूसरे की मदद की जरूरत होगी। फिर भी नाम

क्षमा करब अपराध, कहल प्रणय सौँ कटु वचन ॥ ११९ ॥
अँह प्रिय गुणक अगाध लक्ष्मण ततक्षण कहल पुन ॥ १२० ॥
सीता-विरही राम, एकाकी कानन बसथि ॥ १२१ ॥
हम न करब विश्राम, सेव्य निकट सेवक सुखी ॥ १२२ ॥

॥ चौपाइ ॥

भल विचार चलला कपिराज । रथ चढ़ि लक्ष्मण सह प्रभु-काज ॥ १२३ ॥
नीलाङ्गद हनुमान प्रधान । सेना सङ्गहि कयल प्रयाण ॥ १२४ ॥
बाजन नाना तरहक बाज । राज-चिन्ह छत्रादि विराज ॥ १२५ ॥
प्रभुक निकट सब सज्जित जाय । मुदित राम देखल समुदाय ॥ १२६ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ रूपक घनाक्षरी ॥

॥ तीरभुक्तिसंगीतरीत्या कानरा-राजविजय छन्दः ॥

अजिन-वसन शुचि नवघन-सम रुचि, कमल-नयन हसयित मुख परसन ॥ १ ॥
रघुवर गिरिगुहा पुर थिक छला भन, वैदेही-विरह-जर तनु जरजर सन ॥ २ ॥

मात्र के लिए मैं उनका सहायक हूँ ।" ११८ तुरत लक्ष्मण ने उत्तर दिया— "मेरा अपराध क्षमा करें, मैंने प्रेमवश कटु वचन कहा । आप हमारे परम गुणवान प्रेमी हैं । ११९-१२० सीता के विरह से व्याकुल राम अकेले वन में हैं । मैं यहाँ रुकूँगा नहीं । सच्चे सेवक को अपने प्रभु के निकट रहने में ही सुख मिलता है ।" १२१-१२२ "अच्छा विचार है ।" ऐसा कहकर सुग्रीव लक्ष्मण-सहित रथ पर चढ़कर राम के काम से चल पड़े । १२३ उधर नील, अंगद, हनुमान आदि सेनापतियों ने अपनी-अपनी सेना के साथ प्रयाण किया । १२४ तरह-तरह के बाजे बजने लगे । सेना पताका, छत्र आदि राजचिह्नों से सुसज्जित थी । १२५ सभी बन-ठनकर प्रभु राम के निकट पहुँचे । राम ने प्रसन्न हो सैन्य-मंडल को देखा । १२६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

सुग्रीव द्वारा अपनी सेना का परिचय राम को कराना और सेना का प्रस्थान

स्वच्छ मृगचर्म पहने हुए हैं, नये बादल-सा साँवला रंग है, कमल-जैसी आँखें हैं, मुँह मुसकान-भरा प्रसन्न है, सीता के विरह से शरीर जर्जर-सा है,

लक्ष्मण कपिवर चरण प्रणति कर, वानर-निकर प्रमुदित शुभ-दरशन ॥ ३ ॥
जटिल सुभग-तन-रुचि रवि-शशिसन खग मृग प्रमुदित प्रभु रघुवर सन ॥ ४ ॥

॥ रूपमाला ॥

चरण पड़ल निहारि कपि-पति हृदय लेल लगाय ॥ ५ ॥
कुशल पुछलनि राम प्रभु, बैसलाह आज्ञा पाय ॥ ६ ॥
तखन पुन रघुनाथ काँ से, कहल बुहु कर जोड़ि ॥ ७ ॥
चमू आइलि बानरी रघुनाथ अछि नहि थोड़ि ॥ ८ ॥
काम-रूपी द्वीप द्वीपक, विकट मर्कट लोक ॥ ९ ॥
पर्व्वतोपम युद्धमे, अरि कय शकथि नहि रोक ॥ १० ॥
देव-सम्भव अमित-बल सम, अभय नानाकार ॥ ११ ॥
युद्ध करबाँ सतत उद्यत, सहि न शकु महि भार ॥ १२ ॥
प्रभुक आज्ञा पाल फल दल, मूल सभकाँ भक्ष्य ॥ १३ ॥
दैत्य दानव प्रभृति हिनका, युद्धमे नहि लक्ष्य ॥ १४ ॥
जाम्बवान सुबुद्धि ऋक्षक, अधिप मन्त्रि महान ॥ १५ ॥
कोटिशः भल्लूक वशमे, आन कहल कि मान ॥ १६ ॥
वायु-पुत्र पवित्र मन्त्री, हिनक अद्‌भुत कार्य्य ॥ १७ ॥
वायु-बलक समान-बल छथि, समर मे अनिवार्य्य ॥ १८ ॥

ऐसे रामचन्द्र पर्वत की गुहा में भलीभाँति विराजमान थे। १-२ लक्ष्मण और हनुमान चरणों पर प्रणत हैं, वानरों का दल कल्याणकारी दर्शन पाकर प्रसन्न है, सिर पर जटा है, सुन्दर शरीर सूरज और चाँद के समान चमक रहा है, पशु और पक्षी भी प्रमुदित हैं। मालिक हो तो राम-जैसा हो। ३-४ कपीश सुग्रीव को प्रभु राम ने पाँव पर पड़े देख छाती से लगा लिया, और कुशल पूछा। सुग्रीव आज्ञा पाकर बैठ गये। ५-६ तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर राम से कहा। ७ "प्रभु वानरों की भारी सेना आ गई है। ८ ये वानर सैनिक विभिन्न द्वीपों से आए हैं और बड़े विकट हैं। ९ लड़ाई में ये पहाड़ के समान अचल हैं। इन्हें दुश्मन रोक नहीं सकता। १० इन सबों को देवताओं से असीम बल मिला हुआ है, तरह-तरह के अभय मिले हुए हैं। ११ ये सदा लड़ाई करने के लिए तैयार रहते हैं। पृथ्वी इनका भार नहीं सह सकती। १२ ये सभी आपकी आज्ञा का पालन करनेवाले हैं। ये कन्द-मूल-फल, और पत्ते खाकर रहते हैं। १३ लड़ाई में दैत्य-दानव आदि कोई भी हो इनका सामना नहीं कर सकता। १४ ये भालू जाम्बवान हैं जो बुद्धिमान हैं और मेरे महामन्त्री हैं। १५ इनके वश में करोड़ों भालू हैं जो किसी और की आज्ञा नहीं मानते। १६ ये पवनसुत हनुमान हैं। ये मेरे परम विश्वसनीय मन्त्री हैं। इनकी करतूत अद्‌भुत है। १७ इनका बल वायु के बराबर है। लड़ाई

नील नल गवयादि अङ्गद, मादनादि सुवीर ॥ १९ ॥
शरभ मैन्दव गज पनस ओ, बली दधिमुख धीर ॥ २० ॥
तार नाम सुषेण केसरि, विश्व के नहि जान ॥ २१ ॥
महाबल जनिके कहल छल, पुत्र छथि हनुमान ॥ २२ ॥
एक एकक कोटि सेना, कहल यूथप नाम ॥ २३ ॥
ई प्रधानें कहल अछि छथि, अति कुशल सङ्ग्राम ॥ २४ ॥
बालिपुत्र महाबली छथि, हिनक समुचित चालि ॥ २५ ॥
थिकथि राक्षस कुलक अन्तक, सोपि गेला बालि ॥ २६ ॥
सकल सेना सहित प्रज्ञा, करथि आज्ञा नाथ ॥ २७ ॥
हमर नाम निमित्त मात्रक, विजय प्रभुवर हाथ ॥ २८ ॥
राम शुनि हर्षाश्रुलोचन, कहल हृदय लगाय ॥ २९ ॥
मित्र सभटा अहूँ जनैछी, करक तकर उपाय ॥ ३० ॥
तखन शुनि सुग्रीव दश दिश, कपि पठावल वीर ॥ ३१ ॥
कहल दक्षिण दिश विशेषें, जाथि सभ रणधीर ॥ ३२ ॥
बालि-सुत-युत मरुत-सुत ओ, जाम्बवान महान ॥ ३३ ॥
नल सुषेण ओ शरभ मैन्दव, द्विविद करथु प्रयाण ॥ ३४ ॥
यत्नसों सभ जानकी कें, ताकि कें भरि मास ॥ ३५ ॥
अन्यथा दिन एक बीतत, प्राणकाँ बुझु त्रास ॥ ३६ ॥

में इन्हें कोई रोक नहीं सकता है। १८ इनके अलावा नील, नल, गवय, अंगद, मादन, शरभ, मैन्दव, गज, पनस, दधिमुख आदि धीर-वीर सैनिक हैं। १९-२० सिंह के समान सुषेण हैं, जिनका नाम विश्व में कौन नहीं जानता है। इन्हीं के पुत्र महाबली हनुमान हैं। २१-२२ एक-एक के अधीन एक-एक करोड़ सेना है, मैंने तो केवल सेनापतियों के नाम गिनाये हैं। २३ ये नाम भी मुख्य-मुख्य के ही कहे गए हैं जो लड़ाई में बहुत कुशल हैं। २४ ये हैं वालि के पुत्र परमबलवान् अंगद, जो सदा सन्मार्ग पर चलनेवाले हैं। २५ ये राक्षस-कुल को समाप्त करनेवाले हैं। वालि इन्हें सौंप गए हैं। २६ यह सारी सेना समझदार है। आप जैसी आज्ञा करेंगे यह उसका पालन करेगी। २७ मेरा नाम तो निमित्त मात्र है। विजय आपके हाथ में है।" २८ राम ने सुग्रीव की बातें सुनीं। हर्ष से उनकी आँखों में आँसू छलक गये। हृदय से लगाकर उन्होंने कहा : २९ "हे मित्र, आप सब कुछ जानते हैं। अब जो उपाय करना हो सो कीजिए।" ३० यह सुनकर सुग्रीव ने दसों दिशाओं में वीर वानरों को भेजा। और उनसे कहा। ३१ "आप लोग दक्षिण देश में विशेष रूप से जाएँ। ३२ वालि के पुत्र अंगद, पवन के पुत्र हनुमान, जाम्बवान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्दव और द्विविद ये सभी प्रयाण करें। ३३-३४ सब कोई यत्नपूर्वक जानकी को खोजकर एक मास के भीतर ख़बर करें; इससे आगे एक

॥ चौपाइ ॥

बानर-वीर कपीश पठाय। बइसला विनत राम लग जाय ॥ ३७ ॥
मारुत-सुत काँ कहलनि राम। ई मुद्रा अछि अङ्कित नाम ॥ ३८ ॥
यतनें सौं लिय सङ्ग लगाय। देब जनकजाकाँ अहँ जाय ॥ ३९ ॥
अहँ का सतत रहत कल्याण। अहँक समान सूझ नहि आन ॥ ४० ॥
अपन नीक जानब से करब। कालहुँ सौं संग्राम न डरब ॥ ४१ ॥
प्रभु-आशिष मारुति फल पाब। विश्व-विजय बल पाओल आब ॥ ४२ ॥
अङ्गद आदि चलल मिलि सङ्ग। कोटि कोटि गुण बल बढ़ अङ्ग ॥ ४३ ॥
फिरइत बन राक्षस जे भेट। तनिक प्राण हर मार चपेट ॥ ४४ ॥
श्रमसौं क्षुधा-तृषातुर भाख। आब प्राण परमेश्वर राख ॥ ४५ ॥
देखल सभ गह्वर बड़ बेश। लता गुल्म तृण आवृत देश ॥ ४६ ॥
क्रौञ्च हंसगण तीतल पाँखि। देखल सभ जन निज निज आँखि ॥ ४७ ॥
तेहि अभ्यन्तर जल अनुमान। पैशल विवर आगु हनुमान ॥ ४८ ॥
बहुत दूर छल निविड़ अन्धार। हाथें हाथ धयल गेल पार ॥ ४९ ॥

दिन भी बीतेगा तो जान पर खतरा समझें।" ३५-३६ सुग्रीव वीर वानरों को प्रयाण करने की आज्ञा देकर नम्र हो राम के पास बैठे। ३७ राम ने जाते समय हनुमान से कहा— "यह अँगूठी लीजिए। इसमें मेरा नाम खुदा हुआ है। ३८ इसे हिफ़ाज़त से अपने पास रखिएगा और जाकर जानकी को दीजिएगा। ३९ आपका सदा कल्याण होगा। आपके समान सूझ-बूझवाला दूसरा नहीं है। ४० जिसमें अपना हित देखना वही कीजिएगा। लड़ाई में काल से भी नहीं डरिएगा।" ४१ पवनसुत हनुमान ने राम के आशीष के अनुरूप फल पाया और अब उनमें दुनिया को जीतने की ताक़त आ गयी। ४२ अंगद आदि मिलकर चले और उनके शरीर में बल करोड़ों गुना बढ़ गया। ४३ वन में घूमते समय उन्हें जो भी राक्षस मिलता था उसे चपत जमाकर जान से मार डालते थे। ४४

स्वयंप्रभा को राम का दर्शन और मोक्ष

थककर सभी वानर भूख और प्यास से व्याकुल हो बोलने लगे, "हे ईश्वर, अब हमारी जान बचाओ।" ४५ सबों ने एक बहुत बड़ी गुहा देखी जो झाड़-फूस और लताओं से छाई हुई थी। ४६ वहाँ सबों ने अपनी आँखों से क्रौंचों और हँसों की पाँखें भीगी हुई देखीं। ४७ इससे अनुमान हुआ कि गुहा के भीतर कहीं जलाशय है। हनुमान को आगे करके सभी उस गुहा में घुसे। ४८ बहुत दूर तक घना अँधेरा छाया हुआ था। हाथों से हाथ जोड़कर सभी उस अंधेरे के पार गये। ४९ तब एक जलाशय देखा, जिसका पानी

देखल जलाशय मणि-सम नीर। कल्पवृक्ष-सम तरुवर तीर ॥ ५० ॥
फलसौं नमित भरल मधुभार। कपि-सेनागन हर्ष अपार ॥ ५१ ॥
सभ गुण भरल देखल एक गाम। एक गोट नहि लोकक नाम ॥ ५२ ॥
कनकासन बैसलि एक नारि। अपन कान्ति सौं जोति पसारि ॥ ५३ ॥
ध्यानावस्थ योगिनी जानि। की थिक विषय कि बुझ अनुमानि ॥ ५४ ॥
भक्ति भीति सौं कयल प्रणाम। के अहाँ थिकहुँ कहू निज नाम ॥ ५५ ॥
त्यागि समाधि सुबुद्धि विचारि। सभकाँ देखल पलख उघारि ॥ ५६ ॥
देखितहि कहल दिव्य अवतारि। आश्रम करु जनु हमर उजारि ॥ ५७ ॥
कहँसौं ककर पठावल दूत। लोचन-गोचर वीर बहूत ॥ ५८ ॥
शुनि कहलनि उत्तर हनुमान। पुरी अयोध्याधिप श्रीमान ॥ ५९ ॥
दशरथ नृपक जेठ सुत राम। शुनितहि होयब हुनकर नाम ॥ ६० ॥
पिता-वचन वन नारि-समेत। अयला सानुज सत्य-निकेत ॥ ६१ ॥
रावण हरलक तनिकर नारि। किछु दिन बितलय होयत मारि ॥ ६२ ॥
सुग्रीवक सँग मैत्री बेश। सभ चललहुँ सीताक उदेश ॥ ६३ ॥
धन्यतमा अपनें कें जानि। आश्रम अयलहुँ पीबय पानि ॥ ६४ ॥
के अपनें देवि कारण कोन। कहू तखन करु साधब मौन ॥ ६५ ॥

नीलम-सा हरा था। उसके किनारे कल्पवृक्ष के समान अच्छे-अच्छे पेड़ लगे थे। ५० वे पेड़ मीठे फलों से लदे थे। देखकर वानरी सेना को बड़ी खुशी हुई। ५१ वहाँ सभी सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा एक गाँव देखा, पर वहाँ एक भी आदमी नहीं था। ५२ केवल एक महिला सोने के आसन पर बैठी थी और अपने सौन्दर्य से चमक फैला रही थी। ५३ उन्होंने उसे ध्यान में लीन योगिनी समझा, पर बात क्या है, यह अनुमान से समझ न सके ? ५४ डरते हुए भक्ति-भाव से उसे प्रणाम किया और पूछा— "हे देवी, आप कौन हैं ? अपना नाम बताइए।" ५५ उसने समाधि तोड़कर और पलक उठाकर मनोयोग से सबको देखा। ५६ देखते ही कहा— "हे दिव्य अवतार वालो, मेरे आश्रम को आप लोग उजाड़िए नहीं। ५७ आप बहुत-सारे वीर लोग मेरे सामने आये हैं। आप लोग कहाँ से आये हैं ? किसने भेजा है ?" ५८ यह सुन करके हनुमान ने उत्तर दिया— "अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम हैं जिनका नाम आपने सुना ही होगा। ५९-६० वे सत्यनिष्ठ राम पिता की आज्ञा से स्त्री और छोटे भाई के साथ वनवास करने आये हैं। ६१ रावण ने उनकी स्त्री का हरण कर लिया। अब कुछ दिन में लड़ाई ठनेगी। ६२ राजा सुग्रीव के साथ उनकी घनी दोस्ती हुई। हम सभी सीता को खोजने चले हैं। ६३ आपको परम धन्य समझकर हम लोग पानी पीने के लिए आपके आश्रम में आये। ६४ हे देवी, "आप कौन हैं ?

कहल यथेच्छ फल भल खाउ। कहब स्वस्थ जल पिबि पिबि आउ ॥ ६६ ॥
फलाहार कै पिउलनि पानि। अयलहुँ सभ जन योगिनि जानि ॥ ६७ ॥
सभ जन नम्र जोड़ि दुहु हाथ। देवि सत्य कहु कए जनु लाथ ॥ ६८ ॥
विश्वकर्म्म कां हेमा नाम। पुत्री जानथि उत्तम साम ॥ ६९ ॥
नृत्य-तुष्ट शङ्कर वृषकेतु। ई पुर देलनि हेमा हेतु ॥ ७० ॥
बश अयुतायुत बसयित भेलि। तदुपरि ब्रह्मपुरी चलि गेलि ॥ ७१ ॥
चलयित हमरा से सन्मानि। विष्णु-भक्ति-रति सहचरि जानि ॥ ७२ ॥
कहलनि सखि तप कर यहिठाम। लाभ तपस्या-फल परिणाम ॥ ७३ ॥
त्रेतायुग रामक अवतार। हरता से प्रभु पृथिवी-भार ॥ ७४ ॥
सीतान्वेषक वानर जखन। देखब पूर्ण मनोरथ तखन ॥ ७५ ॥
योगि-गम्य श्रीविष्णुक गेह। जायब अथि सखि निस्सन्देह ॥ ७६ ॥
एकसरि रहलहुँ सखि-उपदेश। अपनहुँ अयलहुँ कयलहुँ बेश ॥ ७७ ॥
स्वयम्प्रभा थिक हमरो नाम। देखब जाय आइ श्रीराम ॥ ७८ ॥
मुद्रित करु कपि सभ जन आँखि। तप-बल हम देब बाहर राखि ॥ ७९ ॥

किस कारण यहाँ तपस्या कर रही हैं ? हमें इतना बता दीजिए, फिर अपनी तपस्या में लीन हो जाइएगा।" ६५ महिला ने कहा— "पहले आप लोग जी भरकर फल खाइए और पानी पीकर स्वस्थ हो लीजिए तब बताऊँगी।" ६६ वानरों ने फल खा-खाकर पानी पिया। फिर हनुमान ने कहा— "हम लोग आपको योगिनी समझकर यहाँ आये। ६७ हम सभी हाथ जोड़ नम्र हो आपके सामने खड़े हैं। आप बिना किसी दुराव के सत्य-सत्य बताएँ।" ६८ उस महिला ने कहा— "सुनिए। विश्वकर्मा को हेमा नाम की एक बेटी थी। वह साम-गान में प्रवीण थी। ६९ उसके नृत्य से प्रसन्न हो भगवान शिव ने यह नगर उसे दिया। ७० उसने इस नगर में करोड़ों वर्ष निवास किया, उसके बाद ब्रह्मलोक चली गयी। ७१ जाते समय उसने मुझे विष्णु की भक्ति में लगी अपना सहचरी समझकर सम्मानपूर्वक कहा— ७२ 'हे सखी, तुम यहाँ रहकर तपस्या करो, अन्त में इस तपस्या का उत्तम फल मिलेगा। ७३ त्रेतायुग में राम अवतार लेंगे और पृथ्वी का भार हरण करेंगे। ७४ जब तुम सीता की खोज में निकले वानरों को देखोगी तब तुम्हारी कामना पूरी हो जाएगी। ७५ हे सखी, तुम अवश्य ही विष्णु-लोक को प्राप्त करोगी जहाँ योगी लोग ही पहुँच सकते हैं।' ७६ सहचरी के इस उपदेश के अनुसार मैं यहाँ अकेली रहने लगी। आप यहाँ आए, सो बड़ा अच्छा किया। ७७ मेरा नाम है स्वयंप्रभा। मैं आज जाकर श्रीराम का दर्शन करूँगी। ७८ हे वीर वानरो, आप सभी आँखें मूँद लीजिए, मैं तप के बल से आप सबों को बाहर पहुँचा दूँगी।" ७९ इस प्रकार सबों ने वह वन देखा और हेमा की अद्भुत

यहि गति सभ जन से वन देख। हेमा-कर्म्म अलौकिक लेख ॥ ८० ॥
से पहुँचलि सानुज जत राम। भक्ति प्रदक्षिण कयल प्रणाम ॥ ८१ ॥

॥ मौक्तिकदाम छन्दः ॥

हरे रघुनन्दन सानुज राम, विभा कमनीयतनो जितकाम ॥ ८२ ॥
अनन्यवदान्यतयावितभक्त, स्वयञ्च जगत्स्वनुरक्तविरक्त ॥ ८३ ॥

॥ दोहा ॥

भक्ति-योग-लाभें बसलि, बदरीवन तप लागि ॥ ८४ ॥
गेलि दिव्य गति योगिनी, अन्त देह परित्यागि ॥ ८५ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ सोरठा ॥

चिन्ता-दुर्ब्बल देह, सीतान्वेषण मे भ्रमित ॥ १ ॥
छूटल निज निज गेह, वन-तरु-शाखा-स्थित सकल ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

अङ्गद कहल अपन मन-ताप। मरि गेला बालिक सन बाप ॥ ३ ॥

करनी देखी। ८० स्वयंप्रभा वहाँ पहुँच गई जहाँ लक्ष्मण-सहित राम थे। भक्तिपूर्वक राम को प्रदक्षिण करके प्रणाम किया। ८१ "हे हरि, हे रघुनन्दन लक्ष्मण-सहित राम, चमक से तुम्हारा शरीर सुन्दर लगता है, तुमने काम को जीता है, ८२ तुम असाधारण उदारता से अपने भक्तों का पालन करते हो, तुम स्वयं संसार में अनुरक्त नहीं हो, बल्कि रागहीन हो।" ८३ स्वयंप्रभा को भक्तियोग मिला और वह बदरीवन में जाकर तप करने लगी। ८४ अन्त में वह योगिनी देह का त्याग करके दिव्य धाम पहुँची। ८५

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

घबराये अंगद को हनुमान का उपदेश

सीता की खोज में भटकते-भटकते सभी शरीर से दुबले हो गये। १ सबों का अपना-अपना घर छूटा, सभी वनों में पेड़ों की डाल पर रहते-रहते ऊब गये। २ अंगद ने अपने मन की व्यथा सुनाई— "वालि-जैसे मेरे पिता मर

पितौ करैं छथि निन्दित काज। माइक अनुचित कहइत लाज॥ ४॥
हुनका नहि पुन मारथि राम। दुइ रीति अछि एकहि गाम॥ ५॥
कामी मलिन चलथि की नीति। हमरा विषय कतय हो प्रीति॥ ६॥
गह्वर घुमयित गत भेल मास। रामक रक्षित हम निस्त्रास॥ ७॥
यहि जीवन सौं मरणे नीक। अयश श्रवण नित बाप पितीक॥ ८॥
कनइत तनिकाँ देल सन्तोष। एतहि रहु सभ जन निर्दोष॥ ९॥
से शुनि कहल वीर हनुमान। एहन न करिय बालि-सुत ज्ञान॥ १०॥
अहँ कपीश के प्राण समान। अङ्गद जनु करु संशय आन॥ ११॥
लक्ष्मण सौं अहँमे अतिप्रीति। राखथि रघुवर धर्म्म सुनीति॥ १२॥
मानुष मानल अहँ मन राम। देखल पराक्रम अपनहि ठाम॥ १३॥
नारायण मानुष अवतार। छल-बल हरता अवनी-भार॥ १४॥
सत्य कहैछी निश्चय मानि। सीता विष्णुक माया जानि॥ १५॥
लक्ष्मण थिकथि शेष-अवतार। नर-लीला कर लोकाचार॥ १६॥
हमरहु सबहि लेल अवतार। थिकहुँ देवता चरित उदार॥ १७॥
अङ्गद काँ कयलनि सन्तुष्ट। करु संहार दनुज जे दुष्ट॥ १८॥

गये। ३ चाचा सुग्रीव निन्दनीय कर्म कर रहे हैं। माता जो कुकर्म कर रही है वह बोलते भी शर्म होता है। ४ फिर भी राम सुग्रीव को नहीं मारते। वे तो एक ही गाँव में दो तरह के रिवाज करते हैं। ५ सुग्रीव कामी हैं, कुकर्मी हैं; वे सन्मार्ग पर कैसे चलेंगे। मुझ पर उनका कभी स्नेह नहीं हो सकता है। ६ गुफा-गुफा भटकते-भटकते महीना गुजर गया। राम हमारी रक्षा करते हैं, इसलिए निर्भीक हैं। ७ लेकिन इस तरह जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। रोज बाप और चाचा की निन्दा सुनते हैं।" ८ इस तरह रोते-बिलखते अंगद को हनुमान ने ढाढ़स दिया— "निःशंक हो सभी यहीं रहिए।" ९ फिर वीर हनुमान ने कहा— "हे अंगद, ऐसा मत सोचिए। १० आप सुग्रीव को प्राण के समान प्यारे हैं। हे अंगद! किसी तरह की अन्यथा शंका मत कीजिए। ११ धर्म और नीति पर चलनेवाले राम को आप पर भरत से भी अधिक प्यार है। १२ आपने भ्रमवश राम को मानव समझ लिया है। आप ने तो अपने घर में ही उनका पराक्रम देख लिया है। १३ वे नारायण हैं। उन्होंने मनुष्य के रूप में अवतार लिया है। वे माया द्वारा धरती का भार दूर करेंगे। १४ मैं सच बताता हूँ, इसे पक्का समझिए। सीता को विष्णु की माया समझिए। १५ लक्ष्मण शेषनाग के अवतार हैं। ये दुनिया की रीति के अनुसार मानव-लीला कर रहे हैं। १६ हम लोग भी वास्तव में उदारचरित्र देवता हैं और सबों ने नाना रूप में अवतार लिया है।" १७ इस तरह हनुमान ने अंगद को ढाढ़स दिया और कहा कि दुष्ट

क्रम क्रम जाय महोदधि-तीर। से देखि ककरो मन नहि थीर॥ १९॥
कतहु देखि पड़ नहि किछु लक्ष। कि करब विधि जलनिधिक समक्ष॥ २०॥
गुहा भ्रमित बीतल ई मास। अतिशय अछि सुग्रीवक त्रास॥ २१॥
देखितहुँ कतहु दशानन नयन। अवश करबितहुँ अवनी-शयन॥ २२॥
सीताकाँ देखितहुँ कहुँ आँखि। कहितहुँ थिति रघुपति संभाखि॥ २३॥
बिनु देखलें जायब घर घूरि। कपि-पति देता चरणहि चूरि॥ २४॥
ई कहि कहि कुश घास ओछाय। वानर सभ बैशल पछताय॥ २५॥

॥ सवैया छन्दः॥

तखन महेन्द्राचलक गुहा सौं शञ्च शञ्च बहरायल गृद्ध॥ २६॥
पर्व्वत सन से सभ वानर काँ कहलनि मांसप्रिय अतिवृद्ध॥ २७॥
दिन दिन एक एक काँ खायब से शुनि वानर सकल डराय॥ २८॥
कहल जटायु धन्य खग छल छथि पाओल मुक्ति गृद्ध-तन पाय॥२९॥
शुनि सम्पाति जटायुक चर्च्चा कर्णामृत सन मन मन मानि॥ ३०॥
कहल कहू निर्भय भय कपि-कुल करब न ककरो जीवन-हानि॥ ३१॥

राक्षसों का संहार किया जाए। १८ होते-हवाते वे महासागर के तीर पहुँचे। अगाध समुद्र को देख किसी का मन दृढ़ न रहा। वे चिन्ता करने लगे। १९ कहीं कोई लक्ष्य नहीं दिखायी पड़ता। इस समुद्र के सामने क्या किया जाए? २० गुहा में घूमते-घूमते यह महीना बीत गया। सुग्रीव का भारी डर है। २१ यदि कहीं रावण को आँखों से देखता तो उसे मारकर अवश्य ही धरती पर सुला देता। २२ यदि सीता को कहीं देखता तो राम को खबर कर देता। २३ यदि बिना देखे घर लौटूँगा तो सुग्रीव लात के प्रहार से कचूमर निकाल देंगे।" २४ ऐसा कह-कहकर बन्दर लोग कुश और फूस बिछाकर बैठ पछताने लगे। २५

सम्पाति से भेंट और लंका का पता चलना

उसके बाद महेन्द्र गिरि से धीरे-धीरे एक गीध निकला। वह पहाड़-सा विशाल और बूढ़ा था। मांस उसे प्यारा था। उसने कपियों से कहा। २६-२७ "रोज एक-एक बन्दर मैं खाऊँगा।" यह सुनकर सभी बन्दर डर गये। २८ कपियों ने आपस में कहा— "धन्य थे जटायु जिन्होंने गीध का तन पाकर भी मुक्ति पाई।" २९ उस गीध ने, जिसका नाम सम्पाति था, जटायु की चर्चा सुनी। वह उसके कान में अमृत के समान लगी। ३० उसने कहा— "हे कपिगण, आप निर्भय हो अपना परिचय कहिए। मैं किसी को भी नहीं मारूँगा।" ३१ तब अंगद ने पास जाकर कहा— "सुनिए, मैं सारा

जाय समीप कहल अङ्गद सभ शुनु हम कहइतछी वृत्तान्त ॥ ३२ ॥
पृथिवी-भार-हरण कारण विभु अवतरला महि लक्ष्मीकान्त ॥ ३३ ॥

॥ चौपाइ ॥

सीता-सह सानुज रघुनाथ। अयला वन पितृ-आज्ञा लाथ ॥ ३४ ॥
रावण छलसौं सीता-हरण। कयलकध्रुव तनिकर लग मरण ॥ ३५ ॥
शुनितहिँ वैदेहीक विलाप। कयल जटायु गतायु प्रताप ॥ ३६ ॥
युद्ध विरुद्ध कयल से घोर। कहि कहि दुष्ट दशानन चोर ॥ ३७ ॥
रावण तनिकाँ मारल बाण। मूछित खसला तन धर प्राण ॥ ३८ ॥
मोक्ष जटायुक अन्त चरित्र। रामचन्द्र काँ कपिपति मित्र ॥ ३९ ॥
बालि-निधन सुग्रीवक राज। अयलहुँ सभहुँ तनिक हित काज ॥ ४० ॥
सीता तकइत तकइत आज। अयलहुँ एहि गह्वरक समाज ॥ ४१ ॥
बहुत बिलम्ब बितल एक मास। सुग्रीवक हो अतिशय त्रास ॥ ४२ ॥
लवणोदधिक आबिकेँ तीर। जायत प्राण कि रहत शरीर ॥ ४३ ॥
वृद्ध गृद्ध अहँ काँ दुर सूझ। हमरा सबहिक आधि के बूझ ॥ ४४ ॥
जनक-नन्दिनी छथि जे गाम। कहू दयामय मन बय ठाम ॥ ४५ ॥
अङ्गद-वचन शुनल से गृद्ध। कहलनि भ्राता छल छथि वृद्ध ॥ ४६ ॥
कति सहस्र बीतल अछि वर्ष। वार्त्ता शुनि मन बाढ़ल हर्ष ॥ ४७ ॥

हाल बताता हूँ। ३२ पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए परमेश्वर विष्णु ने अवतार लिया है। ३३ पिता की आज्ञा के बहाने सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन आये। ३४ रावण नें छल से सीता का हरण कर लिया। उसकी मौत अब निकट ही है। ३५ सीता का विलाप सुनते ही वृद्ध जटायु ने बड़ा पराक्रम किया। ३६ दुष्ट रावण को चोर कह-कहकर उससे घोर लड़ाई की। ३७ रावण ने उन्हें एक बाण मारा। वे मूच्छित हो गिरे और प्राण त्याग दिए। ३८ जटायु को जीवन के अन्त में मोक्ष मिला। उसके बाद राम को सुग्रीव से मित्रता हुई। ३९ वालि मारा गया। सुग्रीव को राज्य मिला। हम लोग उन्हीं राम की मदद के लिए निकले हैं। ४० सीता को खोजते-खोजते आज इस गुहा में पहुँचे हैं। ४१ बहुत समय लग गया। एक महीना बीत गया। अब सुग्रीव का बड़ा डर लगता है। ४२ अब लवण-सागर के किनारे आकर असमंजस में पड़ गया हूँ, कौन कहे, जान बचेगी कि चली जाएगी। ४३ हे बूढ़े गीध, आपको बहुत दूर तक सूझता है। हम लोगों की चिन्ता और कौन समझेगा। ४४ हे दयामय, कृपा कर यह बताइए कि जनकपुत्री सीता कहाँ हैं ?" ४५ अंगद की बात सुनकर वे गृध्र बोले—"बूढ़े जटायु मेरे भाई थे। ४६ कई हज़ार वर्षों के बाद आज उनका समाचार सुनकर मैं प्रसन्न हुआ। ४७ मैं केवल वचन से सहायता करूँगा, यह बता

कहब जतय छथि वचन सहाय। जलक समीप दिअओ पहुचाय ॥ ४८ ॥
पहुचाओल समुद्रक कात। देल तिलाञ्जलि कहि सहजात ॥ ४९ ॥
पुनि पहुचाओल पहिलहि ठाम। कहल लखन किछु समय विराम ॥ ५० ॥
गिरि त्रिकूट पर लङ्का नाम। पुरी अशङ्क दशानन-धाम ॥ ५१ ॥
छथि वैदेही विपिन अशोक। कोटवार अछि राक्षसि लोक ॥ ५२ ॥
योजन शत कत जलचर पानि। से समुद्र जे जयता फानि ॥ ५३ ॥
से सीता कीं देखथि जाय। सत्य कथा हम देल जनाय ॥ ५४ ॥
रावण-वध करबा हम दक्ष। कि करब सम्प्रति नहि गति पक्ष ॥ ५५ ॥
गृद्ध लोकका सूझय दूर। करु उपाय उत्तम जे फूर ॥ ५६ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

शत योजन जलनिधि सुख फानथि, लङ्कापुरी अशङ्कित जाय ॥ ५७ ॥
वैदेहीक कुशल सभ जानथि, समाचार सन्तोष शुनाय ॥ ५८ ॥
फानथि पुन निर्भयसौं जलनिधि, छथि के यहिमे करू विचार ॥ ५९ ॥
होयत कार्य्य-सिद्धि निश्चय अछि, श्री नारायण-कृपा अपार ॥ ६० ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

दूँगा कि सीता कहाँ हैं। मुझे समुद्र के किनारे पहुँचा तो दीजिए।" ४८ तब उन्हें समुद्र के किनारे लाया गया। उन्होंने सोदर भ्राता कहकर जटायु को तिलांजलि दी। ४९ फिर वे पूर्व स्थान पर लाये गये, तब कुछ देर रुककर उन्होंने कहा। ५० त्रिकूट पर्वत पर लंका नाम का एक नगर है। वहीं रावण निरापद रूप से रहता है। ५१ वहाँ सीता अशोक वाटिका में रखी हुई हैं। राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। ५२ जो सौ योजन में फैले, तरह-तरह के जलचरों और जलराशिवाले समुद्र को लाँघकर उस पार पहुँच सकेगा वही व्यक्ति जाकर सीता को देख सकता है। सच्ची बात मैंने बता दी। ५३-५४ मैं तो रावण को मारने में समर्थ हूँ, पर क्या करूँ, अब मेरी पाँखें बेकार हो गयी हैं। ५५ गृध्र पक्षी को दूर तक सूझता है। अब वैसा उपाय कीजिए जो सबसे उत्तम समझ में आवे। ५६ इनमें कौन ऐसे वीर हैं जो सौ योजन में फैले समुद्र को लाँघ सकें, निःशंक हो लंकापुरी में प्रवेश कर सकें, फिर सीता का कुशल जानकर और उनको ढाढ़स देकर फिर उस समुद्र को निर्भय हो पार कर सकें? ५७-५९ काम अवश्य बनेगा क्योंकि नारायण की बड़ी कृपा है।" ६०

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

उड़लहुँ हम जटायु दुहु भाय। रवि-रथ रोकब सत्वर जाय॥ १ ॥
भ्राता युगल अतुल बल मानि। तरुण अवस्था गुणल न हानि॥ २ ॥
घुरला बन्धु असह्य विचारि। हम नहि मानल मनमे हारि॥ ३ ॥
दिनकर निकट जरल दुहु पक्ष। दिनकर देव देव परतक्ष॥ ४ ॥
खसलहुँ विन्ध्यगिरिक पाषाण। तीनि दिवस धरि छल अज्ञान॥ ५ ॥
खसलें लागल छल बड़ चोट। पक्ष-विहीन भेल मन छोट॥ ६ ॥
बचत जीव शिव कौन प्रकार। बिकल सतत मन शोच अपार॥ ७ ॥
सदय महान चन्द्रमा नाम। दुर्गति से मुनि देखल ठाम॥ ८ ॥
ओ परिचित पुछलनि की भेल। पक्ष अहाँक कतय जरि गेल॥ ९ ॥
अपन कहल छल जे अज्ञान। दुःख-मूल केवल अभिमान॥ १० ॥
बहुत प्रकार देल सन्तोष। ज्ञान शिखाओल से परिपोष॥ ११ ॥

॥ षट्पद ॥

देह-मूल थिक दुःख, देह कर्म्महि सौं उदभव॥ १२ ॥
अहं-बुद्धि सौं कर्म्म, पुरुब देह-स्थित अनुभव॥ १३ ॥

आठवाँ अध्याय

सम्पाति की आत्मकथा और अध्यात्मिक उपदेश

सम्पाति फिर कहने लगे— "हम और जटायु दोनों भाई तेजी से जाकर सूरज के रथ को रोकने के लिए उड़ चले। १ दोनों भाइयों को बेजोड़ बलशाली होने का घमंड था। जवानी की उम्र थी। खतरे की कोई परवाह नहीं की। २ मेरे भाई तो सूर्य के तेज को बर्दाश्त न कर लौट गये, पर मैं हार माननेवाला नहीं। ३ सूरज के पास पहुँचते ही मेरी दोनों पाँखें जल गयीं। भगवान सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। ४ मैं विन्ध्य पर्वत की चट्टान पर गिर पड़ा। तीन दिनों तक बेहोश रहा। ५ गिरने से गहरी चोट लगी। पाँखें जाती रहीं, इससे मन में और भी दुख हुआ। ६ मैं भारी: चिन्ता में पड़ गया; हे शिव, अब किस प्रकार मेरी जान बचेगी? ७ चन्द्रमा नाम के एक मुनि ने, जो परम दयालु थे, वहाँ आकर मेरी दुर्गति देखी। ८ वे मुझसे परिचित थे। उन्होंने पूछा— 'आपकी पाँखें कहाँ जल गईं? ९ मैंने अपनी नादानी उन्हें बताई। घमंड का फल कष्ट ही होता है। १० उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ढाढ़स दिया और भरपूर ज्ञान की शिक्षा दी। ११ सारे दुःख की जड़ यह शरीर है। शरीर कर्म के फल को भोगने के लिए होता है। १२

अहङ्कार जड़ अति अनादि, माया परकासल ॥ १४ ॥
चिच्छायासम्युंक्त तप्त, लोहक सन भासल ॥ १५ ॥
तनिका सौँ ई देह कैँ, भेल एकता देह हम ॥ १६ ॥
यहन बुद्धि लय चेतना-सहित देहकैँ विविध भ्रम ॥ १७ ॥

॥ सोरठा ॥

तनिक मूल संसार, साधक सुख दुख उभय सब ॥ १८ ॥
आत्मा रहित-विकार, मिथ्यातादात्म्यें सदा ॥ १९ ॥
हम शरीर कर नर्म्म, कर्म्मक कर्त्ता हमहि सभ ॥ २० ॥
जीव करथि सभ कर्म्म, तत्फल बाँधल से विवश ॥ २१ ॥
पापपुण्ययुत भेल, भ्रमित होथि उद्धर्वाध नित ॥ २२ ॥
यज्ञ कयल धन देल, सुख-भोक्ता हम स्वर्ग मे ॥ २३ ॥
ई सङ्कल्पाध्यास, भोग कयल चिर स्वर्ग-सुख ॥ २४ ॥
क्षीण-पुण्य सन्त्रास, मर्त्य-लोक मे पुन बसथि ॥ २५ ॥
विधुमण्डल कैँ पाबि, शीत सङ्ग ब्रीह्यादि मे ॥ २६ ॥
तखन पुरुष तन आबि रेतरूप स्त्री-योनि गत ॥ २७ ॥
योनि-रक्त-संयुक्त, वेष्टित भेल जरायु सौँ ॥ २८ ॥

लोग अहंकार से कर्म में प्रवृत्त होते हैं। शरीर में जो कुछ होता है उसी का अनुभव पुरुष करता है। १३ अहंकार जड़ है, अनादि है। उसी से माया की सृष्टि होती है। १४ चैतन्य-स्वरूप जीवतत्त्व से संयुक्त होकर वह अहंकार तप्त लोहा जैसा चमकता है। १५ उसी माया के प्रभाव से जीव और शरीर की एकता का भान होता है। लोग समझते, देह ही मैं हूँ। १६ इसी भ्रम को पाकर देह में चैतन्य का भ्रम होता है। १७ यह संसार उसी माया से उत्पन्न है और यही संसार सुख और दुख दोनों को उत्पन्न करनेवाला है। १८ आत्मा तो सदा विकारहीन रहता है। देह और आत्मा में अभेद का भ्रम रहता है। १९ जैसे मैं ही शरीर हूँ, मैं ही सुख-भोग करता हूँ, और सारा कर्म मैं ही करता हूँ। २० सारा कर्म जीव करता है। वह उस कर्म के फल से बँधा विवश रहता है। २१ वह पाप और पुण्य का बोझा अपने सर पर लिये ऊपर-नीचे भटकता रहता है। २२ मैंने यज्ञ किया, मैंने धन का दान किया, मैं स्वर्ग में सुख भोगूँगा —इसे संकल्पाध्यास कहते हैं। इससे कुछ समय स्वर्ग-सुख का भोग तो होता है, २३-२४ पर ऐसे जीव को पुण्य समाप्त हो जाने का त्रास बना रहता है और भोग के अन्त में पुण्य समाप्त होने पर वह मर्त्यलोक में आ गिरता है। २५ जीव स्वर्ग से पहले चन्द्रमंडल पर आता है। वहाँ से ओस-कण के साथ अनाज के पौधों में आता है। २६ तब अनाज के खाने से पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है और फिर शुक्र बनकर स्त्री की योनि

एक दिवस भेल भुक्त, कलल भेल आरूढ़ पुन ॥ २९ ॥
भेल बुदबुदाकार, पाँच रातिमे सेह पुन ॥ ३० ॥
सात राति सञ्चार, धयल पेशिताकार कौँ ॥ ३१ ॥
पनरह दिन बिति जाय, से पेशी शोणित-युता ॥ ३२ ॥
राति पचीश बिताय, पेशी सौँ अङ्कुर बनय ॥ ३३ ॥

॥ चौपाइ ॥

ग्रीवा माथ काँध ओ पीठि। वंश उदर एक मासेँ सृष्टि ॥ ३४ ॥
पाणि चरण पाँजर कटि जानु। दूइ मासमे उतपति मानु ॥ ३५ ॥
अङ्ग-सन्धि बितला तिनि मास। चारि मास अंगुली-प्रकास ॥ ३६ ॥
नाक कान लोचन बनि जाय। मास पाँच कौँ समय बिताय ॥ ३७ ॥
दन्त-पाँति नह गुह्याधार। पचमा मासेँ होय प्रचार ॥ ३८ ॥
नाक कान मे छिद्र प्रकास। बीति जाय जखना षट मास ॥ ३९ ॥

॥ पादाकुलक दोहा ॥

नाभि उपस्थ लिङ्ग ओ पायुक उतपति मासेँ सात ॥ ४० ॥
सकल अवयव रोम शिर मे कच अष्टमास विख्यात ॥ ४१ ॥
स्त्रीक जठर मे गर्भे बाढ़थि पाँच मास चैतन्य ॥ ४२ ॥
जीव पर्व छथि ई अद्भुत गति कर्त्ता प्रभु से धन्य ॥ ४३ ॥

में जाता है। २७ योनि में रज से संयुक्त हो जरायु (गर्भ की झिल्ली) से वेष्टित हो जाता है। एक दिन बीतने के बाद वह कलल (मांसपिंड) में लीन हो जाता है, और पाँच रातों में बुलबुला जैसा हो जाता है। २८-३० सात रातों के बाद मांस-पेशी का आकार धारण करता है। ३१ पन्द्रह दिन के बाद उस पेशी में लहू भर जाता है। पचीस रात बीतने पर पेशी अंकुर का रूप धारण करती है। ३२-३३ एक मास पूरा होने पर गरदन, माथा, कन्धा, पीठ, रीढ़ और पेट ये अंग बनते हैं। ३४ दो मासों में हाथ, पाँव, करवट, कमर और टाँग ये अंग बनते हैं। ३५ तीन मासों के बीतने पर एक अंग से दूसरे अंग जुड़ते हैं। चार मासों में अँगुलियाँ प्रकट होती हैं। ३६ पाँच मास बीतने पर नाक, कान और आँखें बनती हैं। ३७ दाँतों की पाँतें, नाखून और मलत्याग के अंग पाँच मासों में प्रस्फुट होते हैं। ३८ जब छः महीने बीत जाते हैं तब नासिका-विवर और कर्ण-विवर बनते हैं। ३९ सात महीनों के बीतने पर नाभि, जननेन्द्रिय और गुदा —इन अंगों की उत्पत्ति होती है। ४० आठ मासों में सभी अंगोपांग हो जाते, रोएँ हो जाते और सिर में बाल उग आते हैं, यह प्रसिद्ध है। ४१ जीव पाँच महीनों में स्त्री के पेट के बीच गर्भ में बढ़ता है। ४२ जीव इस प्रकार अद्भुत अवस्थाएँ पाता है। इसके कर्ता ईश्वर धन्य हैं। ४३ जीव गर्भ में माता के खाए हुए अन्न से पोषण पाता है। गर्भ

॥ चौपाइ ॥

मातृ-भुक्त अन्नादिक खाथि। वर्धित गर्भ विकल पछताथि॥ ४४॥
पूर्व जन्म मन पड़लय ताप। देखल विविध माय ओ बाप॥ ४५॥
विविध भक्ष्य नाना-स्तन-पान। कयल कतहु नहि पावल ज्ञान॥ ४६॥
कति बेरि विधि-कृत धारण देह। प्रज्ञा हरल विषय-मध नेह॥ ४७॥
मिलि कुटुम्ब मे भेलहुँ प्रचण्ड। गर्भवास मे कर्मक दण्ड॥ ४८॥
कयल सकल हम अनुचित काज। विषयि कुटुम्बक सङ्ग समाज॥ ४९॥
नाना योनि विविध व्यवहार। कयल न भल मन कतहु विचार॥ ५०॥
अनुभव कत दुख योनि कुयन्त्र। करिय यहन हम सम्प्रति मन्त्र॥ ५१॥
साङ्ख्य-योग सौँ करब न आन। जौँ करता बाहर भगवान॥ ५२॥
गर्भवास सौँ बाहर भेल। स्मरण-ज्ञान माया हरि लेल॥ ५३॥
आत्मा सभ तन सौँ छथि आन। से जानथि जनिकाँ दृढ़ ज्ञान॥ ५४॥
होथि चिदात्मा जौँ परिज्ञात। मोह तिमिर हर भानु प्रभात॥ ५५॥
सुख दुख ज्ञानी सम मति मान। देह-स्थिति प्रारब्ध प्रमाण॥ ५६॥

में बढ़ते हुए वह पश्चात्ताप करता रहता है। ४४ जब उसे पूर्वजन्म की बात याद आती है तब बड़ा सन्ताप होता है। कितनी माताओं और कितने पिताओं को देखा, ४५ कितने तरह के भोजन पाए, कितने स्तनों में दुग्ध-पान किया, पर कहीं भी ज्ञान न प्राप्त हुआ। ४६ विधिवश कितनी बार शरीर धारण किया। किन्तु भोग की वस्तुओं में आसक्ति के कारण ज्ञान लुप्त रहा। ४७ परिवार के लोगों में मिलकर पागल-सा हो गया। अपने कर्मों की सजा के रूप में बार-बार गर्भवास मिलता रहा। ४८ मैंने सभी अनुचित कर्म किये। विषय में लिप्त परिवार के लोगों के साथ रहा। ४९ अनेक योनियों में तरह-तरह का आचरण किया। मन में वास्तविक कल्याण की बात कभी नहीं सोची। ५० जब योनि के घेरे में भारी कष्ट का अनुभव होता है तब मैं ऐसा संकल्प करता कि ५१ यदि मुझे ईश्वर इस गर्भ से बाहर कर देंगे तो सांख्ययोग के अभ्यास के सिवा और कुछ नहीं करूँगा। पर, ज्योंही गर्भ से बाहर निकल जाता कि माया में पड़ सारी स्मरणशक्ति खो बैठता। ५२-५३ आत्मा शरीर से भिन्न है यह बात वही समझते हैं जिनको दृढ़ ज्ञान रहता है। ५४ यदि चैतन्य-स्वरूप आत्मा का ज्ञान भलीभाँति हो जाए तो मोह रूपी अन्धकार उसी प्रकार दूर हो जाता है जिस प्रकार सुबह में सूरज का उदय होने पर अँधेरा दूर हो जाता है। ५५ ज्ञानवान् लोगों को सुख और दुख दोनों में समान अनुभव होता है। शरीर का होना प्रारब्ध (पूर्वकृत कर्म) का प्रतिफल है। ५६ शरीर ही मैं हूँ, ऐसा मिथ्या ज्ञान दुख का कारण है।

देह थिकहुँ हम ई अध्यास। दुखदायक कर नर क विनाश ॥ ५७ ॥
कञ्चुक कञ्चुकि बुझ निज काय। कञ्चुक-रहित न ततय समाय ॥ ५८ ॥
रहू अहाँ प्रारब्ध विचार। मिथ्या मानू ई संसार ॥ ५९ ॥

॥ सवैया ॥

दण्डक-वन रावण-वध कारण, जनकनन्दिनी लक्ष्मण सङ्ग ॥ ६० ॥
अयोता करता माया-मानुष, लीला-मारीचक तन भङ्ग ॥ ६१ ॥
रावण तस्कर बनि सीताकाँ, हरता तनि अन्वेषण काज ॥ ६२ ॥
सुग्रीवक प्रेषित वानर सभ, अयोता जखना अँहक समाज ॥ ६३ ॥
तनिका सभकाँ अहाँ कहब सब, सीता छथि लङ्का जेहि देश ॥ ६४ ॥
नव नव कोमल पक्ष अहाँकाँ, अनायास होएत गय बेश ॥ ६५ ॥
भेल सत्य जे कहल चन्द्रमा, देखू सभ जन जनमल पाँखि ॥ ६६ ॥
हम जाइत छी दश दिन बितलय, दशमुख-दुर्गति देखब आँखि ॥६७॥

॥ रूपमाला ॥

नाम जपि जपि जनिक जन, भव-जलधि उतरथि पार ॥ ६८ ॥
तनिक दूत अहाँ सबहिकाँ सिन्धु कति विस्तार ॥ ६९ ॥

यही अज्ञान मनुष्य का विनाश करता है। ५७ केंचुआवाला साँप केचुए को अपना शरीर समझ लेता है; जब केचुए को निकाल देता है, तब उस केचुए में फिर घुसता नहीं है। ५८ आप प्रारब्ध को समझिए और इस संसार को अवास्तविक मानिए। ५९ चन्द्रमा ऋषि ने कहा था— जब रावण का वध करने के लिए सीता और लक्ष्मण के साथ राम दंडकवन आयेंगे, माया-मानव की लीला करेंगे और मारीच का वध करेंगे, ६०-६१ फिर रावण चोरी से सीता का हरण करेगा, उनको ढूँढ़ते हुए सुग्रीव द्वारा भेजे गये कपिगण आपके पास आएँगे, ६२-६३ और आप उन सबों को बताइएगा कि लंका में सीता कहाँ हैं; तब आपको यों ही नई-नई कोमल पाँखें फिर हो जाएँगी। ६४-६५ उन ऋषि चन्द्रमा का कथन सत्य हुआ। आप सभी लोग देखिए, मेरी पाँखें फिर पैदा हो गयी हैं। ६६ मैं दस दिन बिताने जाता हूँ। दशमुख रावण की दुर्गति मैं अपनी आँखों से देखूँगा। ६७ जिनका नाम जप-जपकर लोग भवसागर पार करते हैं, उन्हीं के दूत आप सबों के लिए यह समुद्र कौन-सा बड़ा है। ६८-६९ साहस कीजिए,

यत्न करु जलराशि सन्तरु, देखि सीता आउ ।। ७० ।।
कहल जे सन्देश प्रभु से, सकल सुचित शुनाउ ।। ७१ ।।

।। इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा-रामायणे किष्किन्धाकाण्डे अष्टमोऽध्यायः ।।

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

।। चौपाइ ।।

सम्पातिक सभ जनमल पाँखि । सभ जन वानर देखल आँखि ।। १ ।।
ओ खग मुदित गगन-पथ गेल । वानर सभ मन हर्षित भेल ।। २ ।।
दुर्गं जलधि सन्तरण विचार । अछि अगम्य के जायत पार ।। ३ ।।
अङ्गद कहल अहाँ सभ गोट । प्रबल शूर सभ सुयश न छोट ।। ४ ।।
राज-काज मन दय के करत । ई जलनिधि कहु कहु के तरत ।। ५ ।।
रघुपति कपिपति पालक हयत । निर्भय लङ्कापुर जे जयत ।। ६ ।।
सुनल सर्व्वं जन रहल अवाक । सभक परस्पर मुह सभ ताक ।। ७ ।।
उचित न यहि अवसर चुपचाप । कहक अपन बल करक प्रताप ।। ८ ।।
वानर सकल अपन बल कहल । अभ्यन्तर किछु गड़बड़ रहल ।। ९ ।।

समुद्र को पार कर जाइए और सीता को देख आइए, और ७० प्रभु राम ने जो सन्देश सुनाने को कहा है वह भलीभाँति सुना आइए।" ७१

।। मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

नौवाँ अध्याय

हनुमान को लंका विदा करना

सम्पाति की सभी पाँखें उग आयीं, यह सभी कपियों ने अपनी आँखों से देखा। १ पक्षी सम्पाति आकाश-मार्ग से उड़कर चले गये। कपियों का मन हर्षित हुआ। २ अब दुर्गम समुद्र को पार करने का प्रश्न आया। यह तो अगम्य है, इसे कौन पार करेगा। ३ अंगद ने कहा— "आप सभी बड़े-बड़े शूर हैं। आप सबों का बड़ा नाम है। ४ राजा का यह काम मन से कौन करने को तैयार है ? इस समुद्र को कौन पार कर सकता है ? ५ जो निर्भय हो लंकापुरी जाएगा वह राम और सुग्रीव दोनों की रक्षा करनेवाला होगा।" ६ सबों ने सुना और सुनकर चुप रह गये। सभी सबों के मुँह जोहने लगे। ७ यह देख अंगद ने कहा— "ऐसे मौके पर चुप्पी साधना उचित नहीं होगा। सभी अपना-अपना बल बताएँ कि कौन कितनी करामात दिखा सकते हैं ?" ८ सभी वानरों ने अपना-अपना बल बताया, पर बीच में कुछ

तखन कहल अङ्गद युवराज। लङ्का जाय करब प्रभु-काज ॥ १० ॥
शतयोजन जलनिधिकाँ मानि। जायब मनमे होइछ हानि ॥ ११ ॥
किछु गड़बड़ सन घुरती बेरि। आयब शीघ्र कि लागत बेरि ॥ १२ ॥
जाम्बवान बजला बड़ वृद्ध। नहि युवराज दूत परसिद्ध ॥ १३ ॥
हम अति वृद्ध करब की जाय। हम मँगितहुँ नहि एक सहाय ॥ १४ ॥
बलि-बञ्चन वामन-अवतार। भेल तखन हम छलहुँ कुमार ॥ १५ ॥
बढ़इत देल प्रदक्षिण सात। अगणित योजन प्रवह बसात ॥ १६ ॥
कि करब काज जरासौं ग्रस्त। करितहुँ नहि ककरो मन व्यस्त ॥ १७ ॥
अङ्गद शोच करू जनु चित्त। से छथि संगहि कार्य्य निमित्त ॥ १८ ॥
कहलनि तखन शुनू हनुमान। यहन काज के करता आन ॥ १९ ॥
हरता रघुवर धरणी-भार। तनिक सहाय अहुँक अवतार ॥ २० ॥
जहि लय उतपति से दिन आज। की बिलम्ब सत्वर करु काज ॥ २१ ॥
जन्ममात्र दिनकर फल जानि। गगन गेलहुँ शत योजन फानि ॥ २२ ॥
खसलहुँ भूमि अतुल बल-बीर। व्यथा-लेश नहि भेल शरीर ॥ २३ ॥
उठु उठु करु रघुनन्दन-काज। हमरा सभहिक राखू लाज ॥ २४ ॥

गड़बड़ी रह गयी। ९ तब युवराज अंगद ने स्वयं कहा— "मैं लंका जाकर राजा सुग्रीव का काम करूँगा। १० सौ योजन के समुद्र को पार तो कर जाऊँगा, पर मन में कुछ शंका होती है। ११ लौटने में कुछ गड़बड़ लगता है। कौन कहे तुरत लौट सकूँगा कि कुछ देर लग जाए।" १२ तब परम वृद्ध जाम्बवान बोले— "युवराज स्वयं दूत बनकर जाएँ यह परिपाटी नहीं है। १३ मैं तो अब बहुत बूढ़ा हो गया, अब करूँ क्या। मैं कोई मददगार भी नहीं माँगता। १४ वामन अवतार के समय जब बलि को ठगा गया था, उस समय मैं किशोर था। १५ उस समय मैंने प्रवह वायु के बीच अनगिनत योजनों तक बढ़ते-बढ़ते सात चक्कर लगाए थे। १६ आज क्या करूँ, बुढ़ापे से मजबूर हूँ। मैं किसी के मन में चिन्ता न होने देता। १७ हे अंगद, आप मन में चिन्ता मत कीजिए। यह काम जो कर सकते हैं वे आपके साथ ही हैं।" १८ तब उन्होंने हनुमान से कहा— "हे हनुमान, सुनिए। आपको छोड़ कौन दूसरा है जो ऐसा काम कर सकता है। १९ राम धरती का भार हरेंगे। इसमें उनकी सहायता करने के लिए आपका अवतार हुआ है। २० जिसके लिए आपने जन्म लिया है वह दिन आज आ पहुँचा है। अब देर क्या, जल्द वह काम पूरा कीजिए। २१ जन्म होते ही आप सूरज को पका हुआ फल समझकर आकाश में सौ योजन कूद गये थे। २२ हे अतुलनीय बलवाले वीर, आप वहाँ से धरती पर गिरे, फिर भी आपके शरीर में तनिक भी पीड़ा न हुई। २३ आप उठिए और राम का काम कीजिए। हम सबों की इज्जत

शुनि हर्षित बढ़ित हनुमान। नाद कयल घन सिंह समान ॥ २५ ॥
सकल सृष्टि फाड़क भ्रम कयल। पर्व्वत सन तन वामन धयल ॥ २६ ॥

॥ कड़खा छन्द ॥

जानकी-जानि-पद हृदय मे ध्यान करि ॥ २७ ॥
सुरभिपद-तुल्य जल-राशिकेँ फानबे ॥ २८ ॥
रोकि शकताह के बाट हम वायुसुत ॥ २९ ॥
प्रवह सौँ अधिक जव-दर्प मन मानबे ॥ ३० ॥
प्रभुक सन्देश कहि स्वामिनी देखि केँ ॥ ३१ ॥
शत्रु दशमौलिकेँ बाँधि हम आनबे ॥ ३२ ॥
जाइ लङ्कापुरी मारि वैरीन्द्र-दल ॥ ३३ ॥
सकल जन तखन बल हमर किछु जानबे ॥ ३४ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

देखादेखी मध्य हम बारिनिधि फानि फेरि ॥ ३५ ॥
सदल सकुल दशवदन केँ मारिकेँ ॥ ३६ ॥
समर समक्ष प्रतिपक्ष लक्ष कोन अछि ॥ ३७ ॥
पवन प्रतक्ष बल लङ्कापुर जारिकेँ ॥ ३८ ॥
"चन्द्र" भन रामचन्द्र परसन हेतु आगाँ ॥ ३९ ॥
भूधर सहित लङ्का धरब उखारिकेँ ॥ ४० ॥

बचाइए।" २४ यह सुनकर हनुमान हर्षित हुए और बढ़कर विशाल हो गये। उन्होंने सिंह के समान गर्जन किया। २५ ऐसा लगा जैसे उन्होंने सारी सृष्टि को फाड़ दिया हो। छोटे-से अपने शरीर को पर्वत-सा बना लिया। और बोले, २६ "हृदय में जानकीपति राम का ध्यान करके मैं समुद्र को गाय के खुर के बराबर समझकर लाँघ जाऊँगा। २७-२८ मुझे रास्ते में कौन रोक सकेगा? मैं वायु का पुत्र हूँ। मैं अपने मन में प्रवह वायु से भी अधिक बल होने का घमंड रखूँगा। २९-३० मैं स्वामिनी सीता को खोजकर प्रभु राम का सन्देश उन्हें पहुँचाऊँगा और शत्रु रावण को बाँधकर ले आऊँगा। ३१-३२ जब मैं लंकापुरी जाऊँगा और शत्रु के दल को पछाड़ूँगा, तब सभी लोग मेरे बल का कुछ आभास पाएँगे। ३३-३४ अल्प ही आयास में मैं समुद्र को लाँघ जाऊँगा और सेनाओं व गोतियों-सहित रावण को मार डालूँगा। ३५-३६ लड़ाई में मेरे सामने लाख शत्रु-सेना क्या है? वायु-जैसा प्रत्यक्ष मेरा वेग है और मैं आग लगा लंकापुरी को जला डालूँगा। ३७-३८ 'चन्द्र' कवि कहते हैं, रामचन्द्र को प्रसन्न करने के लिए मैं पर्वत-सहित लंका को उखाड़कर उठा लूँगा और उनके सामने रख दूँगा। ३९-४० हे जाम्बवान, हे अंगद, कहिए

जाम्बवान युवराज कहु की करब काज ॥ ४१ ॥
आनि देब विनु श्रम जनक-कुमारिकें ॥ ४२ ॥

॥ चौपाइ ॥

जाम्बवान अङ्गद मन हर्ष। कि कहब वीरक मन उत्कर्ष ॥ ४३ ॥
अँहइ पुरब रघुपति-मन-आश। हमरा सभकाँ दृढ़ विश्वास ॥ ४४ ॥
जिबइत सीता छथि देखि लेब। से रघुनन्दन काँ कहि देब ॥ ४५ ॥
राम-सहित रण पौरुष करब। समुचित जेहन तेहन अनुसरब ॥ ४६ ॥
सतत करथु अहँकाँ कल्याण। व्योम-विहार पिता पवमान ॥ ४७ ॥
आशीर्व्वचन कहल पढ़ि मन्त्र। उड़ि चलला हनुमान स्वतन्त्र ॥ ४८ ॥

॥ सोरठा ॥

स्वर्ण-वर्ण मुख लाल, महाफणीन्द्राकार भुज ॥ ४९ ॥
महानगेन्द्र विशाल, प्राप्त महेन्द्राचल उपर ॥ ५० ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे किष्किन्धाकाण्डे नवमोऽध्यायः ॥

क्या काम है ? मैं बिना मिहनत सीता को ला दूँगा।" ४१-४२ यह सुनकर जाम्बवान और अंगद का मन हर्षित हो उठा और बोले— "आपकी वीरता की बड़ाई क्या कहूँ। ४३ हमें पक्का विश्वास हो गया है कि आप ही राम के मन की आशा पूरी करेंगे। ४४ सीता जीती हैं, यह देख लीजिएगा और यह संवाद राम को सुना दीजिएगा। ४५ राम को साथ में लेकर रण में वीरता दिखाइएगा। फिर जैसा उचित होगा वैसा कीजिएगा। ४६ आकाश में विचरण करनेवाले आपके पिता वायु आपका सदा कल्याण करें।" ४७ जाम्बवान और अंगद ने मन्त्र पढ़-पढ़कर हनुमान को आशीर्वाद दिया और हनुमान स्वच्छन्द रूप से उड़ चले। ४८ उनका मुँह सोना-सा लाल था। उनकी बाँहें विशाल शेषनाग-सी लम्बी थीं। ४९ उनका शरीर पर्वतराज हिमालय-सा विशाल था। ऐसे हनुमान उड़कर महेन्द्र पर्वत पर पहुँचे। ५०

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में किष्किन्धाकाण्ड का नौवाँ अध्याय समाप्त ॥

कवि-प्रार्थना

श्लोकौ

श्रीमत्करुणावतारमिन्दुखण्डभालम् ।
वन्दे घनसारगौरमाश्रितैणबालम् ॥
परशुवराभीतिकरं व्यालराजमालम् ।
सर्व्वदा प्रसन्नमुखं कालकालकालम् ॥
व्याघ्रचर्मवाससं समस्तविश्वसारम् ।
निर्ज्जरनिवहैः स्तुतं वृशा विनष्टमारम् ॥
पञ्चाननमादिदेवमाधिहं त्रिनयनम् ।
प्रलये जगतां ध्रुवं दयालुतासदनम् ॥

॥ किष्किन्धाकाण्ड समाप्त ॥

सुन्दरकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ द्रुतविलम्बित छन्द ॥

धुतनगेऽम्बरगे परमोत्सवे,
चकितभानुगणे जितमन्मथे ॥ १ ॥
जनकजाधिविनाशिमनोगतौ,
प्रणतिरस्तु हनूमति मारुतौ ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

जयजय राम नवल-घनश्याम । सकललोक-लोचन अभिराम ॥ ३ ॥
मनमे तनिक ध्यान दृढ़ राखि । मारुतनन्दन उड़ला भाखि ॥ ४ ॥
शतयोजन वारिधि विस्तार । लाँघब हम मन हर्ष अपार ॥ ५ ॥
रघुनायक-कर जनु शर मुक्त । तथा हमहुँ जायब मुदयुक्त ॥ ६ ॥
देखथु कपिगण जाइत गगन । शोभित जेहन प्रवहमे भगण ॥ ७ ॥
देखैहो हम देखब आज । दोसर यहन आन को काज ॥ ८ ॥

पहला अध्याय

हनुमान का लंका जाना; सुरसा, सिंहिका और लंकिनी से मुक़ाबला

पहाड़ को हिलानेवाले, आकाश में उड़नेवाले, परम उल्लास-भरे, सूर्य-चन्द्रादि को चकित करनेवाले, कामदेव को जीतनेवाले, जानकी की व्यथा हरनेवाले, मन-जैसे तेज चलनेवाले पवनसुत हनुमान को प्रणाम । १-२ नये बादल-जैसे श्यामवर्ण, सभी लोगों की आँखों में भानेवाले राम की जय हो, जय हो । ३ मन में ऐसे राम का ध्यान करके पवनसुत हनुमान यह कहते हुए उड़ चले— ४ "परम हर्ष के साथ मैं सौ योजन में फैले समुद्र को लाँघूँगा । ५ राम के हाथ से छूटे तीर की तरह मैं आनन्दपूर्वक निकल पड़ूँगा । ६ मुझे वानर लोग आकाश में जाते उसी तरह देखेंगे जिस तरह प्रवह वायु में ग्रह-नक्षत्र चलते दिखाई देते हैं । ७ आज मैं सीता को देखूँगा । इससे बढ़कर और दूसरा कौन काम होगा ? ८ राम को उनका समाचार सुनाऊँगा । जल्द ही लौट

रघुनन्दन काँ वार्ता कहब। सत्वर घुरब अनत नहि रहब ॥ ९ ॥
नामस्मरण अन्त एक बार। जनिकाँ भव-जलनिधि से पार ॥ १० ॥
प्रभुक मुद्रिका हमरा सङ्ग। होयत न हमर मनोरथ भङ्ग ॥ ११ ॥
जायब लङ्का दनुज-समाज। प्रभुप्रताप साधब सब काज ॥ १२ ॥

॥ सोरठा ॥

उड़ि चलला हनुमान, ध्यान राम-पद मे सतत ॥ १३ ॥
प्रबल प्रलय पवमान, रौद्र-मूर्त्ति लङ्काभिमुख ॥ १४ ॥

॥ चौपाइ ॥

लङ्का जाइत छथि हनुमान। की बल की मति से के जान ॥ १५ ॥
सुरसा काँ सुर सत्वर कहल। सर्प-जननि करु सुरहित टहल ॥ १६ ॥
बहुत दिवस धरि मानब गुन। जाउ शीघ्र घुरि आयब पुन ॥ १७ ॥
रोकब बाट कहब नहि मर्म्म। बूझब की करइत छथि कर्म्म ॥ १८ ॥
कहल कयल से नभ पथ रोकि। चललहुँ कतय ततय देल टोकि ॥ १९ ॥
हमरा आनन सत्वर आउ। विहित भक्ष्य अन्यत्र न जाउ ॥ २० ॥

॥ सवैया छन्द ॥

मारुत-सुत कहलनि शुनु माता, राम-काज कय आयब घूरि ॥ २१ ॥
सीता-विषय कहब श्रीप्रभुकाँ अहँक देब प्रत्याशा पूरि ॥ २२ ॥

आऊँगा। बाहर टिकूँगा नहीं। ९ अन्त में एक बार फिर उन प्रभु का नाम स्मरण करता हूँ जिनकी कृपा से समुद्र क्या, भव-सागर को भी लोग पार करते हैं। १० प्रभु की मुद्रिका मेरे साथ है। मेरे मन की कामना विफल नहीं होगी। ११ राक्षसों के पास लंका जाऊँगा और राम के प्रताप से सारा काम पूरा करूँगा।" १२ इतना कहकर विकटाकार हनुमान राम के चरण में निरन्तर ध्यान लगाये प्रलय-काल के प्रबल वायु की तरह लंका की ओर उड़ पड़े। १३-१४ देवताओं ने सोचा, हनुमान लंका जा रहे हैं। उनका क्या बल है और क्या बुद्धि है यह जानना चाहिए। १५ उन्होंने तुरत सुरसा से कहा—"हे सर्पों की माता, तुम देवताओं के खातिर एक काम करो। हम बहुत दिनों तक आभारी रहेंगे। जल्द जाओ और फिर लौट आओ। १६-१७ तुम हनुमान का रास्ता रोकना, पर वास्तविक बात मत कहना। यह देखना कि वे क्या उपाय करते हैं।" १८ सुरसा देवताओं की आज्ञा के अनुसार चल पड़ी और रास्ता रोककर बोली— "तुम चले कहाँ ? अब जल्द मेरे मुँह में आओ। तुम मेरा आहार होओगे। भागो नहीं।" १९-२० हनुमान ने कहा— "हे माता, सुनो। मैं राम का काम करके लौट आऊँगा, राम को सीता का हाल कहूँगा, तब तुम्हारी इच्छा पूरी कर

सुरसा देवि होइ अछि अरसा, कल जोड़ैछी छाडू बाट ॥ २३ ॥
अभिनत मारुति कहल न मानल, नमस्कार कय भेलहुँ आँट ॥ २४ ॥
सुरसा कहल शून रे बाबू नहि छोड़ब विनु खयलें ॥ २५ ॥
एखनहुँ धरि जीवन-प्रत्याशा, हमरा मुहमे अयलें ॥ २६ ॥
बहुत दिनासौं हम भूखलि छी, विनु आहारें मरबे ॥ २७ ॥
हाथक मुसरी बिर्यार मे दय कड़े कड़े नहि करबे ॥ २८ ॥

॥ चौपाइ ॥

मारुति कहल देबि मुह बाउ। खाय शकी तौं हमरा खाउ ॥ २९ ॥
योजन भरि विस्तर कर काय। सुरसा मुह दश कोश बनाय ॥ ३० ॥
तकर द्विगुण हनुमानो कयल। बिश योजन मुख सुरसा धयल ॥ ३१ ॥
योजन तीस वदन हनुमान। योजन हुनक पचाश प्रमान ॥ ३२ ॥
अति लघु बनि मुह बाहर जाय। नमस्कार हँसि कहल शुनाय ॥ ३३ ॥
बहरयलहुँ देवि आनन पैसि। हम जाइत छी रहब न बैसि ॥ ३४ ॥

॥ दोहा ॥

सुरसा सन्तुष्टा कहल, सत्वर लङ्का जाय ॥ ३५ ॥
राम-कार्य्य साधन करू, हम छी सर्पक माय ॥ ३६ ॥

दूँगा। २१-२२ हे सुरसादेवी, मुझे देर हो रही है। हाथ जोड़ता हूँ, रास्ता छोड़ दो।" २३ प्रणाम करते थक गये, पर सुरसा ने विनीत हनुमान का कहा न सुना। २४ सुरसा ने कहा— "सुन रे बबुआ, तुम्हें खाये बिना न छोड़ूँगी। २५ अभी तक तुम जीने की आशा करते हो। अब तो मेरे मुँह में आ गये। २६ मैं बहुत दिनों से भूखी हूँ। आहार के बिना मैं मर जाऊँगी। २७ क्या मैं हाथ के चूहे को बिल में छोड़कर 'आ रे, आ रे' रटूँगी? २८ हनुमान ने कहा— "अच्छा तो हे देवी, मुँह बाओ। यदि खा सकती हो तो मुझे खा लो।" २९ इतना कहकर उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाकर एक योजन का बना लिया। सुरसा ने अपने मुँह को दस कोस के बराबर बढ़ा लिया। ३० फिर हनुमान ने भी अपने शरीर को उसका दूना कर लिया। सुरसा ने अपना मुँह बीस योजन कर लिया। ३१ हनुमान का शरीर तीस योजन का हो गया तो सुरसा का मुँह पचास योजन का। ३२ तब हनुमान बहुत ही छोटा रूप धारणकर उसके मुँह में घुस गये और बाहर हो हँसते हुए प्रणाम करके बोले— ३३ "हे देवी, मैं तुम्हारी आज्ञा के अनुसार मुँह में घुसा और बाहर भी आ गया। अब मैं चला। यहाँ रुकना नहीं है।" ३४ सुरसा प्रसन्न होकर बोली— "जल्द लंका जाकर राम का काम पूरा करो। मैं सर्पों की माता हूँ। ३५-३६ देवताओं ने मुझे भेजा है तुम्हारी परीक्षा के

देव पठावल बुझल बल, सीता देखू जाय ॥ ३७ ॥
कुशल फिरब सीता-कुशल, रघुवर देब सुनाय ॥ ३८ ॥
तखन चलल हनुमान पुन, गरुड़-गमन आकाश ॥ ३९ ॥
जलधि तहाँ मैनाक सौँ, कयलनि वचन प्रकाश ॥ ४० ॥

॥ चौपाइ ॥

कयल सगर-कुल बड़ उपकार। तनिक बढ़ायोल भेलहुँ अपार ॥ ४१ ॥
तनिकहि वंश राम अवतार। हुनक दूत जाइत छथि पार ॥ ४२ ॥
जलनिधि कहल जहन हित वाक। जलसौँ उच्च भेला मैनाक ॥ ४३ ॥
काञ्चन-मणि-मय शृङ्ग अनूप। ततय पुरुष एक दिव्य स्वरूप ॥ ४४ ॥
हे कपि हमर नाम मैनाक। जलधि भितर डर मन मघवा क ॥ ४५ ॥
मारुत-नन्दन करु विशराम। खाउ अमृत सन फल यहि ठाम ॥ ४६ ॥
पथ विशराम न भोजन आज। अछि कर्त्तव्य राम-प्रिय काज ॥ ४७ ॥
शिखरक परश हाथ सौँ कयल। गगन-मार्ग पक्षी जकँ धयल ॥ ४८ ॥

॥ दोहा ॥

धयलक छाया-ग्राहिणी, कयलक गमनक रोध ॥ ४९ ॥
हनुमानक मनमे तखन, बाढ़ल अतिशय क्रोध ॥ ५० ॥

लिए, मुझे तुम्हारी बल-बुद्धि मालूम हो गयी। अब जाकर सीता को देखो। ३७ तुम कुशलपूर्वक लौटोगे और सीता का कुशल-समाचार राम को सुनाओगे।" ३८ तब हनुमान पुनः गरुड़ की भाँति आकाश में उड़ते हुए चले। ३९ यह देख समुद्र ने मैनाक पर्वत से कहा— ४० "राजा सगर के वंशजों ने मेरा बड़ा उपकार किया है। उन्हीं के बढ़ाने से मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। ४१ उन्हीं के ंश में राम का अवतार हुआ है। उनके दूत हनुमान पार जा रहे हैं, उनकी सहायता करनी चाहिए।" ४२ समुद्र ने जैसा हितकर वचन कहा, उसके अनुसार मैनाक पर्वत समुद्र के जल-स्तर से ऊपर उठ आया। ४३ उसकी चोटी स्वर्ण और रत्नों से अनुपम शोभा पा रही थी। उस चोटी पर दिव्य स्वरूपवाला एक पुरुष प्रकट हुआ और बोला— ४४ "हे महावीर, मेरा नाम मैनाक है। मैं इन्द्र के डर से समुद्र के भीतर छुपा रहता हूँ। ४५ हे पवनसुत, यहाँ विश्राम कीजिए; यहाँ के फल अमृत-से होते हैं, खाइए।" ४६ हनुमान ने कहा— "आज मुझे रास्ते में न विश्राम करना है और न भोजन। मुझे राम का वांछित कार्य करना है।" ४७ इतना कहकर हनुमान ने हाथ से उस चोटी का स्पर्श कर दिया और पक्षी की भाँति आकाश-मार्ग को पकड़ा। ४८ तब छाया को पकड़कर खानेवाली एक राक्षसी ने हनुमान का रास्ता रोक दिया। ४९ इस

घोरस्वरूपा सिंहिका, छाया धय धय खाय ।। ५१ ।।
नभचरकाँ ओ राक्षसी, गगन-गमन जे जाय ।। ५२ ।।
देखल तनिकाँ मरुतसुत, मारल झट दय लात ।। ५३ ।।
पुनि उड़ि के चललाह से, शान्ति भेल उतपात ।। ५४ ।।

।। हरिपद ।।

।। पादाकुल दोहा वा ।।

गिरि त्रिकूट पर लङ्कानगरी नाना तरु फल बेश ।। ५५ ।।
नाना खग मृग गण सौँ शोभित पुष्पलतावृत देश ।। ५६ ।।
दुर्ग दुर्ग मे रोकत टोकत चिन्तित मन-हनुमान ।। ५७ ।।
करब प्रवेश राति कय तहि पुर दिवा युक्ति नहि आन ।। ५८ ।।

।। चौपाइ ।।

राम-चरण-सरसिज कय ध्यान । सूक्ष्मरूप भेला हनुमान ।। ५९ ।।
पुरी-प्रवेश कयल निशि जखन । बुझलक लङ्का नगरी तखन ।। ६० ।।
कहलक गमहि चलल छी चोर । हम करइत छी गञ्जन तोर ।। ६१ ।।
बुझल न अछि दशकण्ठ-प्रताप । चललहुँ कतय अहा चुपचाप ।। ६२ ।।
चुप रह कहलें पढ़लक गारि । चट दय लात चलौलक मारि ।। ६३ ।।
वाम मुष्टि हरि हनल सुतारि । खसली अवनीमे ओ हारि ।। ६४ ।।

पर हनुमान के मन में क्रोध की लहर दौड़ गयी । ५० विकट आकृति वाली सिंहिका नाम की यह राक्षसी आकाश-मार्ग से गुजरनेवाले जन्तुओं की छाया को पकड़कर छायाकारी जन्तुओं को खा जाती थी । ५१-५२ पवनसुत हनुमान ने उसे देखा और तुरत एक लात लगा दिया । ५३ इस तरह वह उत्पात शान्त हो गया और हनुमान अकाश-मार्ग से आगे बढ़े । ५४ हनुमान ने देखा, त्रिकूट पर्वत पर लंकापुरी है । वहाँ तरह-तरह के उत्तम पेड़ और फल हैं । ५५ तरह-तरह के पशु-पक्षी उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं । सारा प्रदेश फूलों और लताओं से छाया हुआ है । ५६ हनुमान मन में सोचने लगे— "यहाँ तो हर क़िले में मेरी रोक-टोक होगी । ५७ इसलिए रात को प्रवेश करूँगा । दिन में घुसने की कोई युक्ति नहीं है ।" ५८ राम के चरणकमल का ध्यान करके और सूक्ष्म रूप धारण करके हनुमान ने रात होने पर लंका में प्रवेश किया । प्रवेश करते ही लंकिनी को मालूम हो गया । ५९-६० उसने कहा— "अरे चोर, तुम चुपके से चले हो । अभी मैं तुम्हारी दुर्दशा करती हूँ । ६१ क्या तुम्हें रावण का प्रताप मालूम नहीं है ? तुम चुपके से कहाँ चले हो ? ६२ जब हनुमान ने कहा— "चुप रहो ।" तो उसने उसका जवाब गाली में दिया और तुरत लात चला बैठी । ६३ सावधानी से हनुमान ने एक मुक्का मारा और

शोणित बान्ति करय कय बेरि। करति कि यहन उपद्रव फेरि ॥ ६५ ॥
लङ्का देवी विकला कान। बरिया काँ नहि लागय बान ॥ ६६ ॥
पूर्व्व विरञ्चि कहल छल जेह। अनुभव होइछ भेल की सेह ॥ ६७ ॥

॥ षट्पद ॥

नारायण अवतार राम त्रेता मे हयता ॥ ६८ ॥
पिता-वचन वन-बन्धु जानकी सङ्गहि जयता ॥ ६९ ॥
माया-सीता ततय मूढ़ दशकन्धर हरता ॥ ७० ॥
बालि मारि सुग्रीव सङ्ग प्रभु मैत्री करता ॥ ७१ ॥
अहँ काँ तनिकर दूत कपि, मारि मुका विकला करत ॥ ७२ ॥
कहलनि विधि शुनु लङ्किनी, तखन बुझब रावण मरत ॥ ७३ ॥

॥ चौपाइ ॥

वनिता-उपवन अरुण अशोक। महा भयङ्करि राक्षसि लोक ॥ ७४ ॥
जनक-नन्दिनी छथि तहि ठाम। शोभित वृक्ष शिंशपा नाम ॥ ७५ ॥
कि कहब शोभा देखब जाय। हमहूँ धन्या दर्शन पाय ॥ ७६ ॥
विजय बनल अछि यश अवदात। हमरा हानि कि सहि आघात ॥ ७७ ॥
देखब राम नवल-घनश्याम। अथोता शीघ्र रहब यहि ठाम ॥ ७८ ॥
शुनि हरि हँसल चलल उत्साह। घरहिक भेदिया लङ्का डाह ॥ ७९ ॥

वह हारकर धरती पर गिर पड़ी। ६४ बार-बार लहू कै करने लगी। फिर ऐसी हरकत कर न सकी। ६५ लंकादेवी बिलखकर रोने लगी—'अपने से बलवान के आगे तीर नाकामयाब होता है। ६६ पूर्व समय में ब्रह्मा ने जो कहा था, लगता है आज वही सत्य हो गया। ६७ 'त्रेतायुग में भगवान विष्णु राम का अवतार लेंगे। ६८ पिता की आज्ञा से स्त्री और भाई-सहित वन जायेंगे। ६९ वहाँ नासमझ रावण माया-स्वरूपा (नकली) सीता का हरण करेंगे। ७० राम बालि को मारकर सुग्रीव से मित्रता करेंगे। ७१ उनका दूत हनुमान मुक्का लगाकर आपको व्याकुल कर देगा; ७२ ब्रह्मा ने कहा था, हे लंकिनी, सुनो; तब समझना कि अब रावण की मौत आ गयी।' ७३ लाल अशोक का एक महिला-उद्यान है। वहाँ बड़ी डरावनी राक्षसियाँ रहती हैं। ७४ उसी जगह एक शीशम के पेड़ के नीचे जानकी हैं। ७५ उनकी शोभा क्या कहूँ, जाकर देखना। उनका दर्शन पाकर मैं भी धन्य हो गयी। ७६ तुम्हारी विजय होगी। निर्मल यश फैलेगा। मुझे तुम्हारे आघात से कुछ नहीं हुआ। ७७ मैं तो अब नये बादल-से साँवले राम का दर्शन पाऊँगी। वे शीघ्र आवेंगे। मैं यहाँ उनकी राह जोहती रहूँगी।" ७८ लंकिनी की यह बात सुनकर हनुमान उत्साहपूर्वक आगे बढ़े। कहावत है

जखन पवन-सुत रघुपति-चार। दुर्ग-महोदधि उतरल पार॥ ८० ॥
दशमुख वाम अङ्ग भुज नयन। फरकय लाग अभागक अयन॥ ८१ ॥
भल मन्द सगुन सकल फल जान। कालक त्रास न दशमुख मान॥ ८२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे सुन्दरकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ षट्पद ॥

मारुत-नन्दन तखन सूक्ष्म-तन, निशिमे धय कहुँ ॥ १ ॥
लङ्का कयल प्रवेश भ्रमित अतिगुप्ते भय कहुँ ॥ २ ॥
सीता तकयित तलय दशानन-मन्दिर गेला ॥ ३ ॥
देखि विभव-विन्यास बहुत मन विस्मित भेला ॥ ४ ॥
देखल लङ्का सकल थल, नहि प्रदेश बाँकी रहल ॥ ५ ॥
देखलनि नहि सीता कतहु, स्मरण भेल लङ्किनि-कहल ॥ ६ ॥

॥ दोधय छन्द ॥

अरुण अशोक देवद्रुम-सोदर, तरु-तति आनत फलसौँ ॥ ७ ॥
उत्तम मणि-सोपान वापिका, पूरित निर्म्मल जलसौँ ॥ ८ ॥

'घर का ही भेदिया लंका को जलाता हैं'। ७९ जब ही राम के दूत पवनसुत हनुमान दुर्गम समुद्र को पारकर उतरे, तभी से रावण का बायाँ अंग, भुजा और आँख सभी फड़कने लगे, जो दुर्भाग्य का सूचक है। ८०-८१ भले-बुरे शकुन का फल सब कोई जानते हैं, लेकिन रावण तो काल से भी डरता नहीं। ८२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में सुन्दरकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

दूसरा अध्याय

खोज में निकले हनुमान का रावण के महल में घूमना

उसके बाद पवनसुत हनुमान ने रात में सूक्ष्म शरीर धारण कर गुप्त रूप से लंका में प्रवेश किया। १-२ सीता की खोज में घूमते-घूमते वहाँ रावण के महल में पहुँचे। ३ वहाँ का ठाट-बाट देख परम विस्मित हो गये। ४ लंका के चप्पे-चप्पे को छान चुके, कोई स्थान देखना बाक़ी न रहा। ५ कहीं भी सीता दिखाई न पड़ीं। तब लंकिनी की कही बात याद आयी। ६ कल्पवृक्ष के समान लाल अशोक के पेड़ क़तारों में लगे, फलों से लदे हुए थे। ७ अच्छे-अच्छे रत्नों से बनी सीढ़ियों वाली वापियाँ निर्मल जल से भरी हुई थीं। ८

कञ्चन महल कहल नहि जाइछ, चुम्बित जलधर-माला ।। ९ ।।
मणिस्तम्भ-शतसौं अतिशोभित, खग-मृग-परिवृत शाला ।। १० ।।

।। चौपाइ ।।

बिस्मित-मन सन मारुत-पूत । देखयित जाथि रघूत्तम-दूत ।। ११ ।।
कनक विहंगम जतय अनेक । वृक्ष शिशपा देखल एक ।। १२ ।।
अति रमणीय निविड़ तरु-छाह । मारुत-नन्दन ततय गेलाह ।। १३ ।।
तेहि तरु ऊपर बैसला जखन । सीता कौं देखल से तखन ।। १४ ।।
भूतल देवी आबि कि गेलि । राक्षस-पुरी बिकल-मन भेलि ।। १५ ।।
वेणी एक मलिन अति चीर । दीना दुर्ब्बलि मृदुल शरीर ।। १६ ।।
लङ्का-विषय यहनि के आन । सीता थिकि निश्चय अनुमान ।। १७ ।।
राम राम मुख करथि उचार । भूमि-लुठित मन दुःख अपार ।। १८ ।।
तहि तरु-मूल जानकी जानि । अपन भाग्यकौं उत्तम मानि ।। १९ ।।
अति कृतार्थ भेजहुँ देखि आज । हम साधल रघुनायक-काज ।। २० ।।

।। दोहा ।।

अन्तःपुर बाहरक शुनि, कल कल शब्द महान ।। २१ ।।
वृक्ष-खण्ड-संलीन-तन, कर विचार हनुमान ।। २२ ।।

सोने का महल कहा नहीं जा सकता कि कितना सुन्दर है। वह मानों बादल को चूमता था । ९ सौ-सौ रत्न-स्तम्भ उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चारों ओर मृग और पक्षी विराजमान थे । १० विस्मय के साथ राम के दूत हनुमान देखते गये । ११ उन्होंने शीशम का एक पेड़ देखा, जहाँ अनेकानेक सुनहले पक्षी थे । १२ उस पेड़ की घनी छाया परम रमणीय थी। पवनसुत वहाँ गये । १३ जब वे उस पेड़ के ऊपर चढ़कर बैठे तब सीता को देखा । १४ क्या कोई देवी धरती पर आ गयी है और राक्षसों की नगरी जान व्याकुल हो गयी है ? १५ एक मात्र चोटी है। चीर मलिन है । कोमल शरीर दुबला हो गया है। दीन-सी लगती है । १६ अरे ! लंका में ऐसी और कौन हो सकती है ? उन्होंने अनुमान किया कि हो न हो यही सीता हैं। १७ वह राम-राम रट रही थीं। मिट्टी में लेटी हुई थीं। मन में अपार व्यथा थी । १८ उस पेड़ के नीचे जानकी हैं, यह विश्वास करके तथा अपने को परम भाग्यवान समझकर उन्होंने सोचा— 'आज मैं सीता का दर्शन पाकर परम कृतार्थ हुआ। मैंने राम का काम पूरा कर दिया ।' १९-२० तब हनुमान ने रनिवास के बाहर भारी शोरगुल होते सुना, २१ और पेड़ की डालों के बीच अपने को छुपाकर सोचने लगे कि क्या करें ? २२

॥ चौपाइ ॥

दशमुख वनिता-वृन्दक सङ्ग। आयल कज्जल-गिरि-वर रङ्ग ॥ २३ ॥
किङ्किनि-नूपुर-शिञ्जित शूनि। दुष्ट निशाचर-आगम गूनि ॥ २४ ॥
विश भुज लोचन दश गोट मुण्ड। सह सह सङ्ग राक्षसी-झुण्ड ॥ २५ ॥
अति विस्मित मन कह हनुमान। देखल शुनइत छलहुँ जे कान ॥ २६ ॥
रहला द्रुम-दल दबकि नुकाय। अछि आगाँ कर्त्तव्य उपाय ॥ २७ ॥
कर विचार रावण मन अपन। पूर्व्व रात्रि जे देखल सपन ॥ २८ ॥
राम पठाओल वानर दूत। कामरूप बल बुद्धि बहूत ॥ २९ ॥
टक टक ताकय तरु पर बैशि। बुझलक घाट बाट पुर पैशि ॥ ३० ॥
कयल बहुत हम रामक दोष। एखनहु धरि हुनका नहि रोष ॥ ३१ ॥
कहिया मरण राम-कर हयत। माया-पाप-काय छुटि जयत ॥ ३२ ॥
एखनहु धरि नहि आबथि राम। कहिया होयत दिव्य संग्राम ॥ ३३ ॥
मनमे ज्ञान उपर अभिमान। चकमक भीतर आगि समान ॥ ३४ ॥
वचन-बाण तेहन अनुसरब। सीता-मन अति कलुषित करब ॥ ३५ ॥
स्वप्न सत्य तौँ कपि देखि लेत। रामचन्द्र काँ सभ कहि देत ॥ ३६ ॥

अशोक वाटिका में रावण द्वारा सीता को डर दिखाना

रावण महिलाओं के एक झुंड के साथ वहाँ आया। उसका रंग काजल के पहाड़ का-सा था। २३ घुँघरू और पैंजनी की खनक सुनकर उन्हें मालूम हुआ कि निशाचर रावण यहाँ आया है। २४ उसके बीस बाँहें, बीस आँखें और दस सिर थे। साथ में अनगिनत राक्षसियों का दल था। २५ परम विस्मय के साथ हनुमान आप ही आप बोले, 'जो कान से सुनता था, वह आज आँखों से देखा।' २६ वे पेड़ के झुरमुट में छिप गये, देखें आगे काम का क्या रास्ता निकलता है। २७ उधर रावण अपने मन में विचार कर रहा है— पिछली रात एक सपना देखा था। २८ 'राम ने एक बन्दर को दूत बनाकर भेजा है। वह दूत इच्छानुसार अपना स्वरूप बदलने में समर्थ है तथा परम बलवान व बुद्धिमान है। २९ वह पेड़ पर बैठे घूर रहा है। नगर में पैठकर उसने सारा ठौर-ठिकाना जान लिया है। ३० मैंने राम का बहुत अपराध किया। पर अब भी उनको मुझ पर क्रोध नहीं हुआ है। ३१ कब मेरा मरण राम के हाथ से होगा, जिससे कि माया, पाप और शरीर इन सबों से छुटकारा मिल जाय। ३२ अब मैं भीतर-भीतर तो ज्ञान रखूँगा, पर बाहर-बाहर अभिमान दिखाऊँगा, जिस तरह भीतर में चमक और बाहर राख वाली आग। ३३-३४ ऐसा वचन रूपी बाण छोड़ूँगा, जिससे सीता का मन कलुषित हो जाए। ३५ अगर मेरा सपना सच्चा है तो बन्दर ऐसा करते देखेगा और सारी बात राम

जौँ कपि होयता कहता जाय। लयोता सानुज राम बजाय ॥ ३७ ॥
ई मन गुनिकेँ सीता निकट। पहुँचल दशमुख दुर्म्मद विकट ॥ ३८ ॥
सीता-दशा कहल नहि जाय। आत्ममध्य जनु रहलि समाय ॥ ३९ ॥

॥ दोहा ॥

रावण सीता काँ कहल, सुमुखि सत्य वृत्तान्त ॥ ४० ॥
राम न अयोता काज किछु, मनमे कर सिद्धान्त ॥ ४१ ॥

॥ चौपाइ ॥

वैदेही परिहरु सन्ताप। उचित कयल नहि अहँकाँ बाप ॥ ४२ ॥
रामक हाथ देल की जानि। कानन-वास अकारण हानि ॥ ४३ ॥
हेम-हरिण देखयित भेल लोभ। लङ्का देखि त्यागु मन क्षोभ ॥ ४४ ॥
शिव शिव आब कि रामक आश। लङ्का छोट हाथ उनचास ॥ ४५ ॥
जौँ नहि निर्गुण रहितथि राम। तौँ बसितथि नृप-दशरथ-धाम ॥ ४६ ॥
राम बसथि वनचर-गण संग। हमहुँ शुनल छल कथा-प्रसंग ॥ ४७ ॥
बहुत तकायोल लोक पठाय। नहि भेटला रहलाह नुकाय ॥ ४८ ॥
जौँ हुनका अहँ मे किछु प्रीति। अबितथि लय जइतथि रण जीति ॥ ४९ ॥
पामर रामक त्यागू आश। विद्यमान लङ्केश्वर दास ॥ ५० ॥

को बता देगा। ३६ अगर बन्दर होगा तो वह राम को अपने भाई के साथ बुला लाएगा।' ३७ मन में ऐसा सोचकर परम अभिमानी रावण सीता के पास पहुँचा। ३८ सीता की हालत कही नहीं जा सकती। लगता था जैसे वह आपे में समा गयी हों। ३९ रावण ने सीता से कहा— "हे सुन्दरी, मैं सच्ची बात कहता हूँ। ४० रामचन्द्र कुछ भी काम न आएगा। इस बात को तुम पक्का समझ लो। ४१ हे विदेहसुता, तुम सन्ताप छोड़ो। पिता जनक ने तुम्हारे लिए उचित नहीं किया। ४२ क्या सोचकर उसने तुम्हें राम के हाथ सौंपा, जिससे तुम्हें नाहक वनवास भोगना पड़ा। ४३ तुम तो सोने के हिरण को देखते ही लुभा गयी, फिर सोने की लंका को देखकर भी क्षोभ क्यों करती हो ? ४४ हाय, अब राम का कौन भरोसा। कहावत है— लंका में जो सबसे छोटा होता है, वह भी उनचास हाथ लम्बा होता है। ४५ यदि राम में कुछ गुण रहता तो राजा दशरथ के घर में ही उसका वास होता। ४६ राम तो वनचरों के बीच रहता है। मैंने भी बातचीत के क्रम में उसका हाल सुना था। ४७ कई दूतों को भेजकर उसकी खोज की, पर वह मिला नहीं, छुप रहा। ४८ यदि तुमसे उसे कुछ प्यार होता तो वह जरूर आता और लड़ाई में जीतकर तुम्हें छुड़ा ले जाता। ४९ कायर राम का भरोसा छोड़ो। लंका का राजा रावण तुम्हारे दास के रूप में सामने खड़ा

हरि आनल अहँकाँ कत दूरि। एको बेरि की तकलनि घूरि॥ ५१॥
बड़ कपटी छथि ज्ञान घमण्ड। दैवो देलथिन समुचित दण्ड॥ ५२॥
सकल सुरासुर-नारि समाज। सभक स्वामिनी होयब आज॥ ५३॥
सीता मन जनु करु किछु छोट। भाग्य अहाँक भेल बड़ गोट॥ ५४॥
तृण-अन्तरित अधोमुखि रुष्ट। रावण-वचनक उत्तर पुष्ट॥ ५५॥
जे शिर शिवकाँ अर्प्पण कयल। प्रबल पाप चरणो तत धयल॥ ५६॥
धिक धिक रावण तोहर ज्ञान। काल-निकट अनहित हित मान॥ ५७॥
जनिक त्रास बनि भिक्षुक रूप। हरि हरि हरि लयला की चूप॥ ५८॥
कुक्कुर जनु मख-घृत लय जाय। मरबह खल पाछाँ पछताय॥ ५९॥
मानुष मानह श्रीरघुवीर। परिचय मन तन लगलय तीर॥ ६०॥
अयोता सानुज प्रभु रघुनाथ। विचलत गर्व्व तोर दश-माथ॥ ६१॥
बाणक तेज समुद्र सुखाय। सायक-सेतु उदधि बन्धवाय॥ ६२॥
अयोता निश्चय होयत मारि। निश्चय तोहर रणमे हारि॥ ६३॥
मरबह पुत्र-विकट-बल-सहित। आयल निकट तेहन दिन अहित॥ ६४॥

है। ५० इतनी दूर से मैं तुम्हें हर करले आया, पर एक बार भी उसने तुम्हारी खोज की? ५१ वह बड़ा ही कपटी और घमंडी है। दैव ने भी उसे उचित सजा दी है। ५२ आज तुम सभी देवियों, असुर सुन्दरियों और नारियों के बीच सबों की स्वामिनी बनोगी। ५३ हे सीता, तुम अपने को दीन मत समझो। तुम्हारा भारी भाग्योदय हो गया।" ५४ इतना सुनकर सीता ने बीच में तिनका रखकर नज़र झुकाये रुष्ट हो रावण के वचन का करारा जवाब दिया। ५५ "तुमने जो सिर शिव को अर्पित किया उसी पर भारी पाप ने भी अपना पाँव जमा दिया (अर्थात् पाप का कलंक लग गया है)। ५६ हे रावण! तुम्हारे ज्ञान को धिक्कार है। जब काल पास आ जाता है तब अहित कर्म में ही हित दिखाई देने लगता है। ५७ हाय, तुम तो राम के डर से भिक्षुक का वेष बनाकर मुझे चोरी से हर लाये, ५८ जिस तरह कुत्ता यज्ञकर्म का घी ले जाता है। दुष्ट, तुम पीछे पछतावे से मरोगे। ५९ तुम राम को मानव समझते हो। तुम्हें उनकी पहचान तब होगी जब तुम्हारे शरीर में उनका तीर लगेगा। ६० जब लक्ष्मण-सहित राम आवेंगे तब हे दशकन्धर, तुम्हारा घमंड चूर हो जाएगा। ६१ बाणों के तेज से समुद्र को सुखाकर और समुद्र में बाणों का पुल बनवाकर वे अवश्य आएँगे, लड़ाई होगी और उसमें अवश्य ही तुम हारोगे। ६२-६३ तुम अपने पुत्रों और सेनाओं-समेत मरोगे। तुम्हारा वह बदनसीब वक़्त आ पहुँचा है।" ६४ सीता का कठोर वचन सुनकर रावण

॥ दोहा ॥

सीता-वचन कठोर शुनि, रावण लय तरुआरि ॥ ६५ ॥
यहन कथा हमरा कहति, सद्यः हम देब मारि ॥ ६६ ॥

॥ चौपाइ ॥

मन्दोदरी कहल शुनु नाथ । अबला-वध की अपनैं हाथ ॥ ६७ ॥
विदित वीर अपनैं ई नारि । अपयश पाप देब जौं मारि ॥ ६८ ॥
अबला ऊपर एतटा रोष । कड़रिक तरु पर शिलुआ चोष ॥ ६९ ॥
कृपणा मलिना दुर्ब्बल देह । हिनका जीबहु मे सन्देह ॥ ७० ॥
अन्न पानि कयलनि अछि त्याग । नहि करती पर-जन-अनुराग ॥ ७१ ॥
अहँकाँ कोन कमी प्राणेश । जीतल भुज-बल सकलो देश ॥ ७२ ॥
सुर गन्धर्व्व सकल जन नाग । कन्या लयलैं मनता भाग ॥ ७३ ॥
कन्या-जन मद-घूर्णित-नयन । अपनहि सुखसौं अउती शयन ॥ ७४ ॥

॥ दोहा ॥

रावण राक्षसि सौं कहल, उत्कट त्रास देखाय ॥ ७५ ॥
अनुकूला सीता करह, जे बल बुद्धि उपाय ॥ ७६ ॥
दुइ मासमे करति ई, जौं हमरासौं प्रेम ॥ ७७ ॥
सकल राज्य-रानी हयति, हिनका सभ सुख क्षेम ॥ ७८ ॥

ने तलवार उठाई और सीता से कहा, ६५ "क्या तुम ऐसी बात मेरे सामने बोलोगी ? मैं तुरत जान से मार दूँगा।" ६६ यह सुनकर मन्दोदरी ने कहा— "हे नाथ, सुनिए। अपने हाथ से क्या अबला का वध करेंगे। ६७ आप प्रख्यात वीर हैं और ये नारी हैं। यदि आप इनका वध करेंगे तो आपको स्त्री-वध का पाप भी होगा और बदनामी भी। ६८ अबला पर आपका इतना गुस्सा शोभा नहीं देता। कहावत है कि केले के पौधे पर सीप भी तेज़ धार वाला कहलाता है। ६९ ये तो दीन और मलिन अवस्था में पहुँचकर दुबली-पतली हो चुकी हैं। इनके जीने में भी अब सन्देह है। ७० इन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया है। ये पराये पुरुष से कभी प्रेम नहीं कर सकती हैं। ७१ हे प्राणनाथ, आपको कौन-सी कमी है ? आप ने अपने बाहुबल से सारे देशों को जीत लिया है। ७२ देव, गन्धर्व, नाग और मानव, जिनकी भी कन्या आप ग्रहण करेंगे वे अपना सौभाग्य समझेंगे। ७३ मतवाली आँखोंवाली कन्याएँ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक आपके घर आएँगी।" ७४ तब रावण नें राक्षसियों से कहा— "घोर भय दिखा-दिखाकर अपने-अपने बल, बुद्धि और युक्ति से सीता को राज़ी करती जाओ। ७५-७६ यदि यह दो महीनों में मुझसे प्रेम करेगी तो सारे राज्य की रानी होगी और इसका कल्याण होगा तथा सारा

बहुत बुझौलय नहि बुझथि, बीति जाय दुइ मास ॥ ७९ ॥
हम आज्ञा दय देल अछि, हिनकर करब विनाश ॥ ८० ॥

॥ चौपाइ ॥

अन्तःपुर गेला दश-भाल । वनिता-परिवृत गर्व्व विशाल ॥ ८१ ॥
विकटादिक सीता तट जाय । भयभीता कर स्वाङ्ग बनाय ॥ ८२ ॥
व्यर्थ तोर तन यौवन आस । भेल न दशमुख सौं सहवास ॥ ८३ ॥
केओ कह हिनक अङ्ग सभ काट । केओ कह जीह सँ शोणित चाट ॥ ८४ ॥
अपने हठ अपने सुख खाय । होयत की पाछाँ पछताय ॥ ८५ ॥
केओ तरुआरि तेज लय हाथ । काटि लिअ हम हिनकर माथ ॥ ८६ ॥
केओ दौड़य बड़ गोट मुह बाय । की बिलम्ब हम जाइछि खाय ॥ ८७ ॥
त्रिजटा कहल करह अन्याय । सीता नहि जानह असहाय ॥ ८८ ॥
हिनकर निकट भ्रमहुँ जनु जाह । अपने अपने तन बरु खाह ॥ ८९ ॥
यहि खन हम देखल अछि सपन । होयत सत्य बुझल मन अपन ॥ ९० ॥

॥ रूपमाला ॥

चढ़ल ऐरावतक ऊपर, राम लक्ष्मण सङ्ग ॥ ९१ ॥
दग्ध लङ्कापुरी भय गेल, समर रावण भङ्ग ॥ ९२ ॥

सुख मिलेगा । ७७-७८ यदि यह बहुत समझाने-बुझाने पर भी न समझे, और दो महीने की अवधि बीत जाए तो मैं आज्ञा दिये देता हूँ, इसका अन्त कर देना !" ७९-८० इतना कहकर नारियों से घिरा रावण भारी घमंड के साथ अन्तःपुर चला गया । ८१ विकटा आदि राक्षसियाँ तरह-तरह के स्वाँग रच-रचकर उन्हें डराने-धमकाने लगीं । ८२ वे कहतीं— "यदि तुमने रावण से संग नहीं किया तो तुम्हारे शरीर में यह यौवन बेकार चला जाएगा ।" ८३ कोई राक्षसी कहती— "इसका एक-एक कर सभी अंग काट दो ।" कोई कहती— "जीभ से इसके शरीर का सारा लहू चाट लो । ८४ यह तो अपने ही जिद्द से अपने ही सुख को खा रही है । पीछे पछताकर क्या होगा ।" ८५ कोई तेज़ तलवार हाथ में ले कहती— "क्या मैं अभी इसका सर काट लूँ ?" ८६ कोई बहुत मुँह बाकर दौड़ती और कहती— "देर क्यों करती हो ? कहो तो मैं तुरत खा जाऊँ ।" ८७ त्रिजटा नाम की एक राक्षसी ने कहा— "तुम लोग अन्याय करती हो । सीता को असहाय मत समझना । ८८ भूल से भी इनके पास मत जाना; भले ही अपनी देह को आप खा जाओ । ८९ अभी मैंनें सपना देखा है । मुझे लगता है, वह सच्चा होगा । ९० देखा कि लक्ष्मण के साथ राम ऐरावत पर सवार हैं । ९१ लंका जल गयी है । युद्ध में रावण हार चुका है । ९२ लंका का राज्य पाकर विभीषण राम की सेवा

राम-सेवा कर विभीषण राज्य लङ्का पाय ॥ ९३ ॥
जानकी ई राम-अङ्क-स्थिता भेली जाय ॥ ९४ ॥

॥ चौपाइ ॥

दशमुख नग्न सकल परिवार। तेल लगओलय भरल विकार ॥ ९५ ॥
गोबर डाबर मध्य नहाथि। खर पर चढ़ल याम्य दिश जाथि ॥ ९६ ॥
रावण मरता सहित समाज। प्राप्त विभीषण कां भेल राज ॥ ९७ ॥
राम जानकी मिलि घर जयत। दुखमय लङ्का सत्वर हयत ॥ ९८ ॥
करत अनर्थ अखण्डित नोर। धन्य धन्य सीता हिय तोर ॥ ९९ ॥
कह कए धैरज कहब कि आन। मुठिएक धूरि न चान मलान ॥१००॥

॥ कवित्त घनाक्षरी ॥

॥ गीत ॥

त्रिजटा कहल शुनु जानकी नवीन कथा ॥ १०१ ॥
वानर-विशेष वर वाटिका उजारलक ॥ १०२ ॥
रक्षक प्रबल रण-दक्ष लक्ष लक्ष खेत ॥ १०३ ॥
मुइल मुर्च्छित कतो रावण पुकारलक ॥ १०४ ॥
"चन्द्र" भन यहन न देखल शुनल छल ॥ १०५ ॥
अक्षयकुमार कां पटकि झट मारलक ॥ १०६ ॥
कतहुं न हारलक वीरता प्रचारलक ॥ १०७ ॥
रावण-पालित हाय लङ्कापुर जारलक ॥ १०८ ॥

कर रहे हैं। ९३ यह जानकी राम के पास चली गयी हैं। ९४ सारे परिवार-सहित रावण नंगा है। विकार (मैल) से भरा और तेल लगाये हुए है। ९५ गोबर से भरे गड्ढे में नहा रहा है। गधे पर चढ़ा दक्षिण की ओर जा रहा है। ९६ परिवार-सहित रावण की मृत्यु होगी। विभीषण को राज्य मिलेगा। ९७ राम जानकी को साथ करके घर जाएँगे। लंका तुरत दुख में डूब जाएगी। ९८ आपकी अविच्छिन्न अश्रुधारा अनर्थ कर डालेगी। हे सीता, आपका हृदय धन्य है। ९९ और क्या कहूँ, धीरज धरिए। मुट्ठी भर धूल से चाँद म्लान नहीं हो सकता है।" १०० त्रिजटा ने कहा— "हे जानकी, सपनें की और-और नयी बात सुनिए। १०१ एक बन्दर ने अशोक वाटिका को उजाड़ दिया। १०२ लड़ाई में माहिर लाख-लाख बलवान रक्षकगण खेत आये। १०३ बहुत से रक्षक मूर्च्छित हो गये। कुछ रावण को पुकारने चले। १०४ चन्द्र कवि कहते हैं कि ऐसा न कभी देखा, न सुना था। १०५ उस बन्दर ने अक्षयकुमार को पछाड़कर मार डाला। १०६ कहीं भी हारा नहीं अपनी वीरता का डंका पीट गया, और १०७ रावण द्वारा रक्षित लंकापुरी को जला डाला।" १०८ सपने की बात सुनकर

॥ सवैया छन्दः ॥

स्वप्न-कथा राक्षसि-गण शुनिकेँ ॥ १०९ ॥
त्यागि उपद्रव गेलि डराय ॥ ११० ॥
मद-मातलि छलि जागलि थाकलि ॥ १११ ॥
निन्द-विवश भेलि जहँ तहँ जाय ! ॥ ११२ ॥
सीता लखन विकलि मन-भीता ॥ ११३ ॥
दुःख-मूछिता रहित-उपाय ॥ ११४ ॥
कनयित कलपि कहथि की करु विधि ॥ ११५ ॥
प्रातहि राक्षसि जाइलि खाय ॥ ११६ ॥

॥ गीत काफी ॥

सपन हम देखल अचिन्तित राति ॥ ११७ ॥
विद्रुम-रक्त-वदन तेजोमय, अद्भुत वानर जाति ॥ ११८ ॥
प्रभु-प्रेषित पाथोनिधि सन्तरि, लङ्का-परिचय पावि ॥ ११९ ॥
हम विधिहता शुनल शुभ वार्त्ता, इष्ट अनिष्ट कि भावि ॥ १२० ॥
जे दिन लङ्का प्रलय होइछ नहि, से दिन पापिक भाग ॥ १२१ ॥
ई अन्याय घोर लङ्कामे, पानिसौँ आगि न लाग ॥ १२२ ॥
सुरपति-सुतक पराभव-दायक, कोशल कौशल भूप ॥ १२३ ॥
से शर से कर से रघुवर वर, कत बैसल छथि चूप ॥ १२४ ॥

राक्षसियाँ डर गईं और सीता को सताना छोड़ दिया। १०९-११० राक्षसियाँ, जो मदमाती, जगी और थकी थीं, जहाँ-तहाँ जाकर नींद के मारे सो गयीं। १११-११२

सीता का विलाप

तब विकल, भयभीत, निरुपाय और वेदना से छटपटाती सीता रोती और बिलखती हुई कहने लगी— "हाय विधाता, क्या करूँ ? मुझे तो सुबह होते ही राक्षसियाँ खा जाएँगी। ११३-११६ मैंने आज रात अजीब सपना देखा। एक अद्भुत जाति का बन्दर था, जिसका मुँह मूँग-जैसा लाल और चमकीला था। ११७-११८ प्रभु राम का भेजा हुआ वह बन्दर समुद्र पारकर लंका का हाल जान गया है। ११९ दुर्भाग्य की मारी मैंने यह शुभ समाचार स्वप्न में सुना। कौन जाने इस सपने का फल भला होनेवाला है या बुरा। १२० जिस दिन लंका में प्रलय नहीं होता, उस दिन समझें कि पापी भाग्यवान है। १२१ लंका में यह घोर अन्याय हो रहा है। पानी से कहीं आग लगे ? १२२ इन्द्र के पुत्र जयन्त के दाँत खट्टा करने के कौशलवाले कोशल के वही राजा राम हैं, वही बाण है और वही उनका हाथ है; फिर वे चुपचाप

॥ गीत ॥

से दिन कोना होयत मनोरथ पूर ॥ १२५ ॥
रघुनन्दन-बल प्रलय पवन सम, अधम निशाचर तूर ॥ १२६ ॥
देवर-तीर जेहन प्रलयानल, रावणगण वन झूर ॥ १२७ ॥
के हम थिकहुँ ककर हम कामिनि, परिचय पओता क्रूर ॥ १२८ ॥
सकल तमीचर तामस तम सम, श्रीरघुनन्दन सूर ॥ १२९ ॥
हमर यहन गति दैव बेखे छथि, नहि उपाय किछु फूर ॥ १३० ॥
तीरक तेज समुद्र सुखायत, जल थल ऊड़त धूर ॥ १३१ ॥
कोटि शनैश्चर सहित सङ्कटा, लङ्का घर घर घूर ॥ १३२ ॥

॥ गीत ॥

केहन विधि लिखल विपति-तति भाल ॥ १३३ ॥
कुल पवित्र कुल-कामिनि हमरहि, कठिन विपति जंजाल ॥ १३४ ॥
रघुनन्दन पति देवर लक्ष्मण, जनि डर काँपय काल ॥ १३५ ॥
चोर दशानन त्रास देखाबय, अनुचित कह वाचाल ॥ १३६ ॥
दनुज-वधू कह मारब काटब, चाटब शोणित लाल ॥ १३७ ॥
यहि अवसर जौं ओ प्रभु आबथि, देखथि सभटा हाल ॥ १३८ ॥

बैठे कहाँ हैं ? १२३-१२४ ऐसे दिन का मेरा मनोरथ कैसे पूरा होगा ? १२५ प्रलयंकर पवन-सम राम का बल नीच राक्षस को रुई की तरह उड़ाएगा। १२६ प्रलयाग्नि-सम देवर लक्ष्मण का तीर रावण रूपी वन को जलाएगा। १२७ मैं कौन हूँ और किसकी पत्नी हूँ, यह क्रूर नहीं जान पाता। सूर्य के समान श्रीराम तामसी राक्षस रूपी सारे अन्धकार को हर लेंगे। १२८-१२९ विधाता मेरी ऐसी दुर्गति देख रहे हैं। कोई उपाय नहीं दिखाई देता है। १३० राम के बाण की ज्वाला से सारा समुद्र सूख जाएगा, जल और स्थल दोनों जगह समान रूप से धूल उड़ने लगेगी। १३१ एक करोड़ शनिग्रह के साथ संकटा नाम की योगिनी लंका में घर-घर घूमेगी। १३२ विधाता ने मेरे भाल में क्या-क्या विपत्तियाँ लिखी हैं ? १३३ मैं पवित्र कुल में पैदा हुई हूँ और पवित्र कुल में ब्याही गयी हूँ; फिर मेरे ही सर पर यह विपत्ति क्यों आ पड़ी है ? १३४ राम मेरे पति हैं और लक्ष्मण मेरे देवर हैं, जिनके डर से काल भी थर्राता है। १३५ फिर भी यह चोर रावण मुझे डरा-धमका रहा है और अनुचित कहता है। १३६ राक्षसियाँ कहती हैं, मार डालूँगी, काट डालूँगी, तुम्हारा लाल लहू चाट लूँगी। १३७ ऐसे मौके पर यदि मेरे प्रभु राम आवें तो सारा हाल अपनी आँखों से देखेंगे। १३८ वह सोने का हिरन नहीं, वह काल-दूत

काल-दूत जनि हेम-हरिण छल, छल न बुझल ततकाल ।। १३९ ।।
कालहि सिंह-घरणि लट निर्भय, गरवित सरब शृगाल ।। १४० ।।

।। गीत ।।

हमर विधि प्राण अपन भेल भार ।। १४१ ।।
की सुख भुजि छथि ओ ई देहमे, कतहु कि नहि आधार ।। १४२ ।।
जौँ आबथि रघुनन्दन सानुज, लीला-सागर पार ।। १४३ ।।
गृद्धझुण्ड दशमुण्ड-मुण्ड पर कर खर नखर प्रहार ।। १४४ ।।
ककरा कहब केओ नहि मानुष, नहि कारुणिक चिन्हार ।। १४५ ।।
रक्षा करथि अरक्षित जनकाँ, केवल धर्म्म उदार ।। १४६ ।।
कठिन विषय विष तिष नहि भेटय, खड़्ग न लग तिष-धार ।। १४७ ।।
शिव शिव जीव-घात वर मानल, धिक जीवन संसार ।। १४८ ।।
रामचन्द्र-चन्द्रिका थिकहुँ हम, सपन न मन व्यभिचार ।। १४९ ।।
विधि बुधि विरहिणि व्याकुलि एकसरि चित चिन्ता विस्तार ।।१५०।।

।। सवैया मुदिरा ।।

हा रघुनाथ अनाथ जकाँ, दशकण्ठ-पुरी हम आइलि छी ।। १५१ ।।
सिंहक त्रास महावनमे हरिणीक समान डराइलि छी ।। १५२ ।।
चन्द्र-चकोरि अहँक सदा, हम शोक-समुद्र समाइलि छी ।। १५३ ।।
देवर-दोष कहू हम की, अपना अपराध सँ काइलि छी ।। १५४ ।।

था, यह बात उस समय समझ में न आयी। १३९ कालवश सिंहिनी के पास सियार घमंड के साथ बेधड़क आकर शोर मचा रहा है। १४० हे विधाता! मेरा अपना प्राण ही भार हो गया। १४१ कौन सा सुख भोगने के लिए यह प्राण मेरे शरीर में टिका हुआ है? कहीं कोई सहारा नहीं है? १४२ यदि अनायास समुद्र को पारकर लक्ष्मण-सहित राम यहाँ आएँ तो रावण के मुंड पर गीधों का झुंड अपने तेज नाखूनों से प्रहार करेगा। १४३-१४४ किससे कहूँ, कोई मनुष्य नहीं मिलता! कोई दयालु परिचित व्यक्ति नहीं है। १४५ ऐसे अरक्षित की रक्षा केवल उदार धर्म ही कर सकता है। १४६ बड़ा कठिन सवाल है। तेज जहर नहीं मिलता। तेज धारवाली तलवार नहीं मिलती। १४७ हाय! मैंने तो आत्महत्या कर लेना ही अच्छा समझ लिया है। संसार में इस तरह की ज़िन्दगी को धिक्कार है। १४८ मैं राम रूपी चाँद की चाँदनी हूँ, सपने में भी मेरा मन राम से विचलित नहीं होता है। १४९ विधिवश मैं वियोगिनी अकेली व्याकुल हो अथाह चिन्ता-सागर में पड़ी हूँ। १५० हा रघुनाथ, मैं अनाथ जैसी यहाँ लंकापुरी में आयी हूँ। १५१ मैं उसी तरह त्रस्त हूँ जिस तरह भारी जंगल में सिंह के सामने हिरणी। १५२ मैं सदा आपकी ही चन्द्रचकोरी रही और आज शोक-सागर में डूबी हुई हूँ। १५३ मैं

॥ दोहा ॥

जनक जनक जननी अवनि, रघुनन्दन प्राणेश ॥ १५५ ॥
देवर लक्ष्मण हमर छथि, नैहर मिथिला देश ॥ १५६ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे सुन्दरकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

सीता सुनथि सुनय नहि आन। शञ्च शञ्च कह तहँ हनुमान ॥ १ ॥
राजा दशरथ काँ सुत चारि। जेठ राम काँ सीता नारि ॥ २ ॥
शिव-धनु तोड़ल मिथिला जाय। जनक देल कन्या से न्याय ॥ ३ ॥
परशुराम अयला कय कोप। तनिकर भय गेल गर्वक लोप ॥ ४ ॥
भूमि-भार-संहारक काज। विघ्न कयल बड़ देव-समाज ॥ ५ ॥
बारह वर्ष राम वनवास। कैकयि परवश कयल प्रयास ॥ ६ ॥
हरल शारदा कैकयि-ज्ञान। ककरो कहल कि रानी मान ॥ ७ ॥
वर न्यासित दशरथ सौँ लेल। दशरथ प्राण-रहित भय गेल ॥ ८ ॥

देव को क्या दोष दूँ, खुद ही अपना अपराध स्वीकार करती हूँ। १५४ राजा जनक जैसे मेरे पिता हैं, धरती जैसी मेरी माता हैं, राम जैसे मेरे पति हैं, १५५ लक्ष्मण जैसे मेरे देवर हैं और मिथिला जैसा मेरा ननिहाल है, फिर भी मेरी यह दुर्गति। १५६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में सुन्दरकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

हनुमान-सीता-संवाद

सीता सुनती हैं और कोई नहीं सुनता, इस तरह हनुमान धीरे-धीरे कहते हैं— १ "राजा दशरथ के चार बेटे हैं। बड़े का नाम राम है, जिनकी स्त्री सीता हैं। २ राम ने मिथिला जाकर शिव जी का धनुष तोड़ा। जनक ने न्यायपूर्वक उन्हें अपनी कन्या दी। ३ परशुराम क्रुद्ध होकर आये, पर उनका घमंड चूर हो गया। ४ धरती के भार को दूर करने के उद्देश्य से देवताओं ने भारी विघ्न किया। ५ दूसरे के उकसाने से कैकेयी ने प्रयास किया कि राम को बारह वर्ष का वनवास हो। ६ शारदा ने कैकेयी का ज्ञान हर लिया। क्या नारी किसी की बात सुनती है? ७ थाती किया हुआ वर उन्होंने राजा दशरथ से माँग लिया। दशरथ के प्राण चले गये। ८ सीता

लक्ष्मण सीता संगँ राम। पंचवटी मे कैलनि धाम॥ ९॥
भिक्षुक बनि रावण सञ्चरल। शून्याश्रम सौँ सीता हरल॥ १०॥
दश-भालक संग लड़ल जटाउ। दुष्ट कथा हम कते शुनाउ॥ ११॥
कानन-कथा सकल से कहल। विरहो विकल राम दुख सहल॥ १२॥
किष्किन्धा मे यहन चरित्र। बालि घालि सुग्रीव सुमित्र॥ १३॥
सुग्रीवक हम मन्त्रि प्रधान। नाम हमर कह जन हनुमान॥ १४॥
वानर दूत फिरय सभ देश। सीतान्वेषण मुख्य निदेश॥ १५॥
तहि मे हमहुँ पयोनिधि फानि। अयलहुँ लङ्का जानकि जानि॥ १६॥
वृद्ध गृध्र कहलनि सम्पाति। घुरि फिरि देखल लङ्का राति॥ १७॥
दबकल दबकल यहि तरु कात। देखल शुनल गञ्जन उतपात॥ १८॥
हम कृतार्थ भेलहुँ अछि आज। हमहि कयल रघुनन्दन-काज॥ १९॥
जनक-नन्दिनी देखल आँखि। अयलहुँ सङ्गी पारहि राखि॥ २०॥

॥ षट्पद छन्द ॥

नहि अछि आज्ञा तेहन, जेहन हम कौतुक करितहुँ॥ २१॥
लङ्कापुरी उखाड़ि प्रभुक पद लग लय धरितहुँ॥ २२॥
दशमुख सौँ कय बेरि अपन दुहु पयर धरबितहुँ॥ २३॥
लाँगड़ि मे लपटाय बाँधि सभ लोक फिरबितहुँ॥ २४॥

और लक्ष्मण को साथ ले राम ने पंचवटी में आश्रम बनाया। ९ वहाँ भिखारी बनकर रावण आया। उसने सूने आश्रम से सीता को हर लिया। १० रावण के साथ जटायु ने युद्ध किया। देखी हुई कहानी मैं कितनी सुनाऊँ।" ११ फिर हनुमान वन की सारी कहानी सुनाकर कहने लगे—"विरह से राम ने बहुत दुःख सहे। १२ किष्किन्धा में यह सब काण्ड हुआ। राम ने वालि को मारकर सुग्रीव को मित्र बनाया। १३ मैं सुग्रीव का प्रधान मन्त्री हूँ। लोग मुझे हनुमान कहते हैं। १४ बहुत से वानरों को खास तौर से सीता का अन्वेषण करने का आदेश हुआ है और वे लोग दूत बनकर देश-देश में घूम रहे हैं। १५ उन्हीं दूतों में मैं भी एक हूँ। जानकी लंका में हैं, यह खबर पाकर मैं समुद्र लाँघकर आया हूँ। १६ बूढ़े गृध्र सम्पाती ने रास्ता बताया। रात में घूम-घूमकर मैंने लंका देखी। १७ इसी पेड़ के बगल में दुबके हुए मैंने सारे उत्पात देखे और सारे गंजन सुने। १८ आज मैं कृतकृत्य हो गया। राम का काम मैंने ही सिद्ध किया। १९ जनक की पुत्री अर्थात् आपका दर्शन पाया। मैं साथियों को उसी पार छोड़कर आया हूँ। २० मुझे आज्ञा ही नहीं है वर्ना मैं कुछ करामात दिखाता। २१ लंकापुरी को उखाड़कर प्रभु रामचन्द्र के चरणों के आगे रख देता। २२ रावण से भिड़कर अपने दोनों पैर

जननि थोड़ दिन विपति अछि, सकुल सदल रावण मरत ॥ २५ ॥
गृद्ध काकगण मगन मन, लङ्कापुर डेरा करत ॥ २६ ॥

॥ चौपाइ ॥

धयलें छली अशोकक डारि । शुनल सकल मन रहलि विचारि ॥ २७ ॥
कहयित के अछि कथा चिन्हार । देखितहुँ लोचन बह जल धार ॥ २८ ॥
दुःख अपार निन्द नहि आब । गगन वचन हित हमर शुनाव ॥ २९ ॥
मरइत राखि लेल जे प्राण । वचन शुनाओल अमृत समान ॥ ३० ॥
दया करथु से दर्शन देथु । सुकृति-समाज सहज यश लेथु ॥ ३१ ॥
शञ्च शञ्च से कयल प्रणाम । हृदय राखि रघुनन्दन राम ॥ ३२ ॥
सीता-वचन शुनल हनुमान । प्रकट भेल कलविङ्क-प्रमाण ॥ ३३ ॥
पीत वर्ण मुख अतिशय लाल । बद्धाञ्जलि मन हर्ष विशाल ॥ ३४ ॥
आगाँ आबि प्रणत कपि रहल । देखइत सीता मनमे कहल ॥ ३५ ॥
वानर-रूप धयल दशकण्ठ । हमरा मोहय कारण चण्ठ ॥ ३६ ॥
रहलि अधोमुखि विकलि अवाक । रावण-भ्रम सँ कतहु न ताक ॥ ३७ ॥
मानिय हमरा जननि न आन । हम रघुपतिक दास हनुमान ॥ ३८ ॥
पवनक तनय विनययुत जानि । सज्जन थिकथि हृदय अनुमानि ॥ ३९ ॥

धराता । २३ पूँछ की लपेट में बाँध अपने सभी लोगों को वापस ले जाता । २४ हे माता, अब विपत्ति के दिन थोड़े रह गये हैं । कुल, परिवार और सेना-सहित रावण की मौत होगी । २५ गीध और कौए खुशी हो लंका में बसेरा करेंगे ।" २६ सीता अशोक की डाल पकड़े खड़ी थीं । उन्होंने सारी बात सुनीं और सोचने लगीं— २७ "यह परिचित कहानी कौन सुना रहा है ? आँखों से उसे देखती, पर हाय ! उनमें तो खारा जल बह रहा है । २८ भारी पीड़ा है जिससे नींद नहीं आती । यह तो आकाश से मेरे हित की बात सुना रहा है । २९ इसने तो अमृत-समान वचन सुनाकर मरते-मरते मेरे प्राण बचा लिये । ३० ऐसा वचन सुनानेवाले दया करके दर्शन दें और पुण्यवानों के बीच समुचित यश पावें ।" ३१ तब हृदय में राम को रखकर धीरे-धीरे सीता ने उन्हें प्रणाम किया । ३२ हनुमान सीता की बात सुनकर गौरेया जैसा छोटा रूप बनाकर सीता के सामने प्रकट हुए । ३३ उनका रंग पीला था, मुँह गाढ़े लाल रंग का था । हाथ जोड़े हुए थे । मन में भारी हर्ष था । ३४ हनुमान सामने आकर झुककर खड़े हो गये । उन्हें देखते हुए सीता मन में सोचने लगीं— ३५ "मुझे ठगने के लिए निष्ठुर रावण ने वानर का रूप धारण किया है ।" ३६ ऐसा सोचकर सीता घबराई-सी मुँह झुकाए चुपचाप खड़ी रहीं । रावण के भ्रम से कहीं झाँक नहीं रही थीं । ३७ तब हनुमान ने कहा— "हे माता, मुझे गैर मत मानिए । मैं राम का दास हनुमान

॥ दोहा ॥

शाखामृग निश्चय अहाँ, हमरा मन विश्वास ॥ ४० ॥
नर-वानर-संघटन-विधि, कारण करू प्रकाश ॥ ४१ ॥

॥ चौपाइ ॥

दूर-स्थित कहलनि हनुमान। जननि कहब हम वचन प्रमाण ॥ ४२ ॥
लक्ष्मण-सहित राम घनश्याम। धनुर्बाण धर छवि अभिराम ॥ ४३ ॥
ऋष्यमूक लग अयला जखन। दृष्टि पड़ल सुग्रीवक तखन ॥ ४४ ॥
हमरा ततय पठौलनि विकल। इष्ट अनिष्ट बुझू विधि सकल ॥ ४५ ॥
इष्ट मानि मन दूनू भाय। लय गेलहुँ हम काँध चढ़ाय ॥ ४६ ॥
अचल सख्य सुग्रीवक सङ्ग। थोड़बहि दिनमे सङ्कट भङ्ग ॥ ४७ ॥
रामक कर-शर बालिक मरण। भव-जलनिधि बाली सन्तरण ॥ ४८ ॥
से सुग्रीव पठाओल दूत। दशदिश वानर वीर बहूत ॥ ४९ ॥
चलयित कहलनि श्रीरघुनाथ। कार्य्य-सिद्धि कपि अहँइक हाथ ॥ ५० ॥
सानुज हमर कुशल सम्भाषि। देव मुद्रिका आगाँ राखि ॥ ५१ ॥
रामक चर प्रभु-मुद्रा सङ्ग। रावण-गण मन कीट पतङ्ग ॥ ५२ ॥
यहि मे तनिक लिखल अछि नाम। देल चिन्हारय कारण राम ॥ ५३ ॥

हूँ।" ३८ फिर सीता ने पवनसुत हनुमान को विनीत देखकर यह अनुमान किया कि ये सज्जन हैं। फिर बोलीं— ३९ "आप वानर हैं, यह विश्वास तो मेरे मन में हो गया, ४० पर यह बताइए कि नर और वानर के बीच यह मेल किस तरह हुआ ?" ४१ दूर रहते हुए ही हनुमान ने उत्तर दिया— "हे माता, मैं पक्की बात बताऊँगा। ४२ धनुष-बाण लिये हुए बादल जैसे श्याम-सुन्दर राम लक्ष्मण-सहित जब ऋष्यमूक पर्वत के पास आये तब सुग्रीव ने उन्हें देखा। ४३-४४ तब घबराए हुए सुग्रीव ने मुझे वहाँ भेजा कि मैं भलीभाँति जान आऊँ कि ये दोस्त हैं या दुश्मन। ४५ मैं दोनों भाइयों को इष्ट (हित) मानकर अपने कन्धे पर लादकर ले गया। ४६ उन्हें सुग्रीव के साथ गहरी मित्रता हो गयी और थोड़े ही दिनों में सुग्रीव के सारे संकट दूर हुए। ४७ राम के हाथ के बाण से वालि का मरण हुआ और वह भव-सागर पार कर गया। ४८ उन्हीं सुग्रीव ने अनगिनत वानरों को दूत बनाकर दसों दिशाओं में भेजा। ४९ विदा होते समय राम ने मुझसे कहा था— "मेरा काम आप ही के हाथ से बनेगा। ५० सीता को लक्ष्मण-सहित मेरा कुशल सुनाइएगा और यह मुद्रिका आगे रख दीजिएगा। ५१ मैं राम का दूत हूँ। उनकी मुद्रा (अँगूठी) मेरे साथ है। मैं रावण के दल को कीड़ा-पतिंगा समझता हूँ। ५२ इस मुद्रा में राम का नाम लिखा हुआ है। यह राम ने पहचान के रूप में दिया है। ५३ चाहें तो कुबेर को निर्धन बना दें और निर्धन को कुबेर बना

॥ षट्पद ॥

निर्धन करथि कुबेर, कुबेर करथि प्रभु निर्धन ॥ ५४ ॥
जे चाहथि से करथि, देव कौशल्या-नन्दन ॥ ५५ ॥
हम आयल छी सिन्धु फानि, देखल लङ्का-भट ॥ ५६ ॥
हमरहु ई सामर्थ्य, दशानन मारी चटपट ॥ ५७ ॥
लेल जाय प्रभु-मुद्रिका, मानी जनु किछु आन मन ॥ ५८ ॥
प्रणत ठाढ़ दय मुद्रिका, हाथ जोड़ि रहला तखन ॥ ५९ ॥

॥ चौपाइ ॥

चिन्हल मुद्रिका माथा धयल। कत विलाप कनइत तत कयल ॥ ६० ॥
कियक कयल रघुवर-कर त्याग। हमरे सन की भेल अभाग ॥ ६१ ॥
राम भवन वन हम अहँ बाट। सभ जनि स्नान कयल एक घाट ॥ ६२ ॥
के कर वनिता-जन विश्वास। कहु कहु मुद्रा वचन प्रकाश ॥ ६३ ॥
प्राण-दान कपि कयलहुँ आय। मरितहुँ एहिखन सङ्कट पाय ॥ ६४ ॥
प्रभुकाँ अहँक सदृश नहि आन। हमरहु भेल विदित अनुमान ॥ ६५ ॥
हमरा निकट पठाओल नाथ। देल मुद्रिका अहँइक हाथ ॥ ६६ ॥
गञ्जन दुःख देखल प्रत्यक्ष। कहबनि सानुज प्रभुक समक्ष ॥ ६७ ॥
दया करथु आबथु रघुनाथ। यम-घर पहुँच शीघ्र दशमाथ ॥ ६८ ॥
दुइ मास जखना बिति जयत। नहि जौं अयोता राक्षस खयत ॥ ६९ ॥

दें। ५४ कौशल्या के पुत्र राम जो चाहें सो कर सकते हैं। ५५ मैं समुद्र लाँघकर आया हूँ। लंका के सैनिकों को देख लिया है। ५६ मुझमें भी इतनी ताक़त है कि रावण को चटपट मार डालूँ। ५७ राम की मुद्रिका लीजिए। मन में किसी तरह की शंका मत कीजिए।" ५८ इतना कहकर हनुमान हाथ जोड़े और सिर झुकाये खड़े रहे। ५९ सीता ने मुद्रिका को पहचाना। उसे सिर पर रखा। फिर बहुत रोने-बिलखने लगीं। ६० "हे मुद्रिका, तुमने राम के हाथ को क्यों छोड़ा ? क्या तुम्हें भी मुझ जैसा अभाग्य हो गया ? ६१ राम के घर में, वन में और रास्ते में हम और तुम सबों ने एक ही घाट में स्नान किया। ६२ नारी पर कौन विश्वास कर सकता है ? हे मुद्रिका, बोलो और मुझे बतलाओ। ६३ हे कपि, आपने मेरी जान बचायी। संकट से घबराकर मैं अभी मर जाती। ६४ अब मुझे भी अनुमान से यह समझ में आ गया कि राम के लिए आप-जैसा कोई दूसरा नहीं है। ६५ राम ने आपको मेरे पास भेजा और आप ही के हाथ यह मुद्रिका दी। ६६ आपने मेरा गंजन और दुःख अपनी आँखों से देख लिया। लक्ष्मण-सहित राम को यह सब मालूम करा दीजिएगा। ६७ अब राम दया करके आवें और रावण जल्द यमपुर पहुँचे। ६८ दो महीने बीत जाने पर यदि नहीं आएँगे तो राक्षस मुझे

कपिपति सहित सैन्य समुदाय। लय आबथु सङ्कट छुटि जाय॥ ७०॥
यावत नहि रावण-संहार। तावत हमरा कारागार॥ ७१॥
तेहन उपाय करब हनुमान। सत्वर रावण त्यागय प्राण॥ ७२॥
मारुत-सुत कह शुनु जगदम्ब। हमरा जयबा धरिक विलम्ब॥ ७३॥
ककरा रावण कयल न आट। हुनका यमघर गेलहिँ बाट॥ ७४॥
सायुध अयोता लक्ष्मण राम। अहँ काँ लय जयता निज धाम॥ ७५॥
पुछल जानकी कहु कहु कीश। कुशल करथु अहँ काँ जगदीश॥ ७६॥

॥ चरणकुल दोहा॥

लाँघि समुद्र सहित कपिसेना, सानुज करुणागेह॥ ७७॥
अयोता कोन उपाय कहू कपि, हमरा मन सन्देह॥ ७८॥

॥ चौपाइ॥

हमरा काँध चढ़ल दुहु बन्धु। अयोता लाँघि अगम्य कि सिन्धु॥ ७९॥
सैन्य सहित कपि बालिक भाय। सभकेँ लओता गगन उड़ाय॥ ८०॥
से कर रावण सगण विनाश। हुनका नहि रण कालक त्रास॥ ८१॥
आज्ञा देल जाय हम जाउ। रावणारि केँ सत्वर लाउ॥ ८२॥
देल मुद्रिका परिचय काज। प्रत्यय-पात्र हमहुँ तेँ आज॥ ८३॥
परिचायक किछु भेटय तेहन। कहब शुनल देखल अछि जेहन॥ ८४॥

खा जाएँगे। ६९ सुग्रीव के साथ सेना लेकर आवें, ताकि मुझे संकट से त्राण मिले। ७० जब तक रावण मारा नहीं जाएगा तब तक मैं क़ैद में रहूँगी। ७१ हे हनुमान, आप ऐसा उपाय करें जिससे जल्द रावण प्राण त्याग करे।" ७२ हनुमान ने कहा— "हे माता, सुनिए। मेरे जाने भर की देर है। ७३ रावण ने किसको तबाह नहीं किया। अब उसको यमपुर जाना ही है। ७४ हथियारों के साथ राम और लक्ष्मण आएँगे और आपको लौटाकर ले जाएँगे।" ७५ फिर जानकी ने पूछा— "हे कपि, कहिए। ईश्वर आपका कल्याण करे। ७६ परम दयालु राम वानरी सेना और भाई लक्ष्मण के साथ किस तरह समुद्र पार करके आ सकेंगे, इसके बारे में मेरे मन में संशय होता है।" ७७-७८ हनुमान ने कहा— "दोनों भाई मेरे कन्धों पर सवार हो समुद्र लाँघकर आ जाएँगे। मेरे लिए समुद्र अगम्य नहीं है। ७९ बालि के भाई सुग्रीव सेना-सहित सबों को आकाश-मार्ग से उड़ाकर लावेंगे। ८० वे सदल-बल रावण का नाश करेंगे। युद्ध में उनको काल का भी डर नहीं होता। ८१ आज्ञा दीजिए ताकि मैं जल्द जाऊँ और रावण के शत्रु राम को शीघ्र ले आऊँ। ८२ पहचान के लिए राम ने मुझे मुद्रिका दी जिससे आज मैं आपका विश्वासपात्र हुआ। ८३ ऐसी ही कोई पहचान की वस्तु मुझे दीजिए। मैं

चूड़ामणि देल सहित विचार। दीना दीनदयालुक दार ॥ ८५ ॥
कागत मसि नहि अछि यहि ठाम। कोटि कोटि कहि देब प्रणाम ॥ ८६ ॥
जिबइत छथि जानकि तहि देश। दशमुख विशभुज बस असुरेश ॥ ८७ ॥
चित्रकूट गिरि जखन निवास। गुप्त-कथा कहि देब प्रकाश ॥ ८८ ॥
शयित छला प्रभु हमरा अङ्क। सुख सुषुप्ति प्रिय काँ निशङ्क ॥ ८९ ॥
इन्द्रक बालक कालक फेर। काक बनल आयल ओहि बेर ॥ ९० ॥
चरणाङ्गुष्ठ मे चञ्चु प्रहार। अबितहिँ कयलक रहित-विचार ॥ ९१ ॥
के दुख देलक अहँकाँ दुष्ट। जगला लगला पूछय रुष्ट ॥ ९२ ॥
अपनहुँ देखल तखनहुँ काक। उड़ि उड़ि आबय निर्भय ताक ॥ ९३ ॥
चहलक पुन हम मारब लोल। उठल निवारण कारण घोल ॥ ९४ ॥
तृणकाँ लय दिव्यास्त्र बनाय। तनिकाँ ऊपर देल चलाय ॥ ९५ ॥
देखलनि ज्वलित अबै अछि बाण। कि कहब उड़ला लै के प्राण ॥ ९६ ॥
इन्द्रादिक नहि रक्षा कयल। फिरि घुरि पुन प्रभु-शरणे धयल ॥ ९७ ॥
त्राहि त्राहि राखू एहि बेरि। करब उपद्रव हम नहि फेरि ॥ ९८ ॥

राम को वह सब बताऊँगा जैसा मैंने यहाँ देखा और सुना है।" ८४ यह सुनकर दीनदयालु राम की दीन पत्नी ने मन में विचार करके हनुमान को अपना टीका उतार कर दे दिया और कहा। ८५ "यहाँ काग़ज़ और स्याही नहीं है, इसलिए ज़ुबानी ही मेरा कोटि-कोटि प्रणाम कहिएगा। ८६ और कहिएगा कि जानकी उस देश में जीती है जहाँ दस मुँह और बीस भुजाओं वाला राक्षसराज रावण रहता है। ८७ जब हम लोग चित्रकूट पर्वत पर रहते थे, उस समय की एक घटना उन्हें याद करा दीजिएगा। ८८ राम मेरी गोद में सोए हुए थे। वे निःशंक हो सुखपूर्वक निद्रा में लीन थे। ८९ काल के फेर में पड़कर इन्द्र का लड़का जयन्त उस समय कौए का रूप धारणकर वहाँ आया। ९० उसने बिना सोचे-विचारे मेरे पाँव के अँगूठे में चोंच मारा। ९१ राम की नींद टूट गई और वे क्रुद्ध हो पूछने लगे— "किस दुष्ट ने तुमको यह कष्ट दिया?" ९२ मैंने स्वयं भी देखा, वह कौआ तब भी निडर हो देखते हुए बार-बार उड़-उड़कर आता था। ९३ उसने फिर चोंच मारना चाहा। रोकने पर वह हुड़दंग मचाने लगा। ९४ तब राम ने एक तिनके को उठाया और उसे दिव्य अस्त्र बनाकर उस कौए पर छोड़ दिया। ९५ कौए ने देखा कि जलता हुआ बाण आ रहा है, क्या कहूँ, देखते ही जान लेकर भागा। ९६ इन्द्र आदि देवता भी उस बाण से उस कौए की रक्षा नहीं कर सके। फिर वह लौटकर राम की शरण में आ गिरा। ९७ बोला— "त्राहिमाम्। इस बार मुझे बचा दीजिए। फिर मैं कभी ऐसा उपद्रव नहीं करूँगा। ९८

चरण न छोड़ गेल लपटाय। अस्त्र अमोघ वृथा नहि जाय॥ ९९॥
इन्द्रक बालक कौआ जाह। एक आँखि कय देबहु कनाह॥ १००॥
काक-स्वरूप ज्ञात संसार। आकृति जेहन तेहन व्यवहार॥ १०१॥
से पौरुष से प्रभु रघुनाथ। अजगुत जिबितहिँ अछि दशमाथ॥ १०२॥
ई शुनि कहल लखन हनुमान। अयोता शीघ्र राम भगवान॥ १०३॥
लङ्का नगरी सकल उजारि। अयता घर घुरि रावण मारि॥ १०४॥

॥ दोहा ॥

कहल जानकी अहिँक सन, कपिदल शूक्ष्म-शरीर॥ १०५॥
युद्ध असम्भव असुर सौँ, नहि होइछ मन थीर॥ १०६॥

॥ कुण्डलिया ॥

शुनइत सीता-वचन कपि, पूर्व्व-रूप बनि गेल॥ १०७॥
कनक शैल-शंकाश तन, मन अति हर्षित भेल॥ १०८॥
मन अति हर्षित भेल, कहल सभ गुण अहँ आगर॥ १०९॥
मेरु सदृश अहँ मथित, करब रावण-बल-सागर॥ ११०॥
देखति राक्षसि लोक, एखन धरि नहि अछि जनइत॥ १११॥
कुशल प्रभुक तट जाउ, कहब जे छल छी शुनइत॥ ११२॥

वह राम के चरणों से लिपट गया और छोड़ता नहीं। पर राम का अस्त्र तो बेकार जानेवाला नहीं। ९९ राम ने कहा—"हे इन्द्र के पुत्र काक, तुम जाओ। तुम एक आँख से काने हो जाओगे। १०० तुम कौए के रूप में संसार में प्रख्यात हो जाओगे। तुम्हारी जैसी भद्दी सूरत है, वैसा ही भद्दा आचरण होगा। १०१ पौरुष वही है, राम वही हैं, पर आश्चर्य की बात है कि रावण अभी तक जीता ही है।" १०२ यह सुनकर हनुमान ने कहा—"भगवान राम शीघ्र ही आवेंगे। १०३ सारी लंकापुरी को उजाड़कर और रावण को मारकर घर लौटेंगे।" १०४ जानकी ने कहा—"वानरों की सेना में तो सभी बन्दर आप ही की तरह अति छोटे-छोटे कद के होंगे। १०५ राक्षसों से उनकी लड़ाई असम्भव लगती है। इसी से मेरे मन में विश्वास नहीं होता।" १०६ सीता की यह बात सुनते ही हनुमान ने फिर अपना पिछला रूप धारण कर लिया। १०७ उनका शरीर सोने के पर्वत के समान हो गया। यह देखकर सीता हर्षित हो उठीं। १०८ उनका मन हर्षित हुआ, और उन्होंने कहा—"आप सभी गुणों के खजाने हैं। १०९ रावण की सेना रूपी समुद्र को मेरु की तरह मथ डालेंगे। ११० राक्षसियाँ, जो अभी तक आपका आना नहीं जानती हैं, देख लेंगी। १११ आप कुशलपूर्वक प्रभु राम के पास जाइए और जो कुछ सुना है, उन्हें सुनाइएगा।" ११२

॥ कवित्त रूपक घनाक्षरी ॥

बड़ हम भूखल चलल नहि जाइ अछि ॥ ११३ ॥
आज्ञा देल जाय जाय फल किछु खाय लेब ॥ ११४ ॥
'चन्द्र' भन रामचन्द्र-चरण-भरोस मन ॥ ११५ ॥
अपनैंक पदधूरि माथ मे लगाय लेब ॥ ११६ ॥
चलल प्रबल पवमान हनुमान वीर ॥ ११७ ॥
मनमे कहल फल खाय कें अघाय लेब ॥ ११८ ॥
प्रभुक विमुख दश-मुखक सम्मुख जाय ॥ ११९ ॥
शूरता देखाय नाम अपन बजाय लेब ॥ १२० ॥
तड़पि तड़पि तत तरु तड़ तड़ तोड़ि ॥ १२१ ॥
रोक के अशोक-वर-वाटिका उजाड़ि देल ॥ १२२ ॥
रहल न चैत्य तरु महल ढहल कत ॥ १२३ ॥
सीताक निवास शिंशपाक तरु छाड़ि देल ॥ १२४ ॥
पकड़ पकड़ कपि जाय न पड़ाय कहूँ ॥ १२५ ॥
कहल तनिकाँ मारि पृथिवी मे पाड़ि देल ॥ १२६ ॥
लङ्कापुर जाय जहाँ सङ्गी न सहाय ॥ १२७ ॥
तहाँ मारुत-नन्दन रौद्र वीरता उघाड़ि देल ॥ १२८ ॥

हनुमान का बाग में जाकर फल खाना, पेड़ तोड़ना और मेघनाद द्वारा बाँधा जाना

हनुमान ने कहा— "हे माता मैं बड़ा भूखा हूँ। भूख से चला नहीं जाता है। ११३ आज्ञा मिले तो बाग में जाकर कुछ फल खा लूँ। ११४ चन्द्र कवि कहते हैं, मन में राम के चरण का भरोसा है। ११५ आपके चरण की धूल सर में लगा लूँगा।" ११६ इतना कहकर प्रबल वायु के समान वीर हनुमान चल पड़े और मन में सोचा कि "जी भर फल खाऊँगा। ११७-११८ राम के शत्रु रावण के सम्मुख जाकर शूरता दिखाकर अपना नाम कर लूँगा।" ११९-१२० इतना सोच हनुमान छलाँग मार-मारकर तड़ातड़ पेड़ तोड़ने लगे। कौन रोक सकता था। उन्होंने सुन्दर अशोक वाटिका को उजाड़ दिया। १२१-१२२ वहाँ एक भी चैत्य तरु न बचा। अनगिनत महल ढह गये। केवल वह शीशम का पेड़ छोड़ दिया गया जहाँ सीता टिकी हुई थीं। १२३-१२४ जो रक्षक 'पकड़ो! बन्दर को पकड़ो! कहीं भाग न जाए।' इस तरह कहते हुए आये, उन्हें मार-मारकर धरती पर लिटा दिया। १२५-१२६ किसी साथी या मददगार के बिना लंकापुरी जाकर पवनसुत हनुमान ने अपनी भयानक वीरता दिखा दी। १२७-१२८ विकटा

॥ चौपाइ ॥

विकटा-गण मन गेलि डराय। कल कौशल सीता लग जाय ॥ १२९ ॥
कहु कहु जानकि कपि निर्भीक। बुझला जाइछ थिकथि अहींक ॥ १३० ॥
बजइत छलहुँ कलपि किछु शङ्क। चुप चुप कयल कि अहाँ प्रपञ्च ॥ १३१ ॥
हमरा त्रास अहाँ निस्त्रास। मन मे जनु दृढ़ भय गेल आश ॥ १३२ ॥
कनइत छलहुँ भेलहुँ अछि चूप। देखि पड़ आनन हर्षक रूप ॥ १३३ ॥
जानकि कहू करी जनु लाथ। कहिया अओता पति रघुनाथ ॥ १३४ ॥
सभ जनि शुनु विपतलि की बाज। थिक प्रपञ्च किछु राक्षस-राज ॥ १३५ ॥
अपनहिँ सभहिँ कहू की थीक। राक्षस माया-ज्ञान अधीक ॥ १३६ ॥
राक्षसि-दशा कहल की जाय। गमहि गमहि सभ गेलि पड़ाय ॥ १३७ ॥

॥ दोहा ॥

सीता कारागार मे, यामिक दनुजी जानि ॥ १३८ ॥
दशमुख पुछलनि कह कुशल, भयभीता अनुमानि ॥ १३९ ॥

॥ दोवय छन्द ॥

त्रास देखाय करू वश सीता, कहल भेल की अयलहुँ ॥ १४० ॥
सीताकाँ एकसरि की त्यागल, एको जनि उचित न कयलहुँ ॥ १४१ ॥

आदि राक्षसियाँ डर गयीं और धीरे से सीता के पास जाकर पूछने लगीं— १२९ "जानकी, बताइए तो यह बन्दर जो बड़ा निडर मालूम होता है, आप ही का है क्या ? १३० आप तो बिलख-बिलख कर धीरे-धीरे बोलती थीं। चुपके से कोई चाल तो नहीं रची है ? १३१ हम लोग तो डर गयी हैं, पर आपका डर जाता रहा। लगता है आपके मन में कोई पक्की आशा जग गयी है। १३२ आप रोती रहती थीं, अब चुप हो गयी हैं। आपके चेहरे पर हर्ष का आभास दिखायी देता है। १३३ हे जानकी, बताइए; हम लोगों से छुपाइए नहीं। आपके पति राम कब आनेवाले हैं ?" १३४ सीता ने उत्तर दिया— "सब कोई सुनिए। विपत्ति में फँसी हुई मैं क्या बोलूँ ? यह राक्षसराज रावण का कुछ प्रपंच मालूम होता है। १३५ आप लोग ही बता सकती हैं कि क्या बात है ? राक्षस लोगों को मायाजाल का ज्ञान अधिक रहता है।" १३६ राक्षसियों की जो हालत हुई वह क्या बताएँ ? एक-एक कर सभी भाग गयीं। १३७ सीता कैद में हैं और राक्षसियाँ पहरा करनेवाली हैं। १३८ यह जानकर रावण ने उन्हें डरी-सी देखकर पूछा— १३९ "मैंने तो कहा था कि डरा-धमकाकर सीता को राजी करो। फिर क्या हुआ कि यहाँ आयी हो ? १४० सीता को अकेली छोड़ दिया, कोई भी वहाँ न रही, यह अनुचित किया।" १४१ रावण की बात सुनकर उन्होंने कहा— "हम सेवा करते-करते

दशमुख-वचन शुनल से कहलनि, सेवा कयल अघयलहुँ ॥ १४२ ॥
मर्क्कट एहन बिकट नहि देखल, लय लय प्राण पड़यलहुँ ॥ १४३ ॥
रक्षक मध्य एको जन नहि छथि, तनिके वार्त्ता लयलहुँ ॥ १४४ ॥
सकल अशोक वाटिका उजड़ल, सीता निकट नुकयलहुँ ॥ १४५ ॥
राजकीय पन्थेँ के सञ्चर, उबटे पथ धय अयलहुँ ॥ १४६ ॥
सीता त्रास देखाबय गेलहुँ, अपनहिँ त्रासित भेलहुँ ॥ १४७ ॥

॥ चावाकुल दोहा ॥

सीता मन आनन्दित देखल, पुछलैँ कयलनि लाथ ॥ १४८ ॥
हुनकर रङ्ग तेहन सन देखल, लङ्का-जय जनु हाथ ॥ १४९ ॥
निर्भय कपि की सहजहिँ जायत, भिड़ता से मरताह ॥ १५० ॥
कालरूप कपि सङ्गर भेलँ, नहि घर केओ घुरताह ॥ १५१ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

जानकी निकट हम जायब कि घूरि पुन ॥ १५२ ॥
कनक-भूधर सन बानर बिशाल से ॥ १५३ ॥
कांच ओ पाकल फल एको न बचल हाय ॥ १५४ ॥
खाय सभ गेल कत गोट मुह गाल से ॥ १५५ ॥
आयल कहाँ सौँ कहाँ छल हम देखल न ॥ १५६ ॥
बाल दिनकर सन बड़ मुह लाल से ॥ १५७ ॥

आजिज हो गयीं। १४२ ऐसा डरावना बन्दर हमने कभी नहीं देखा। हम जान बचाकर भाग आयी हैं। १४३ रक्षकों में एक भी वहाँ नहीं रहा। उन्हीं का हाल बताने हम यहाँ आयी हैं। १४४ सारी अशोक वाटिका उजड़ गयी। हम सीता के पास जाकर छुप गयीं। १४५ राजमार्ग से चलने का कौन साहस करेगा? इसलिए हम बेरास्ते आयी हैं। १४६ हम सीता को त्रस्त करने चलीं पर स्वयं त्रस्त हो गयी हैं। १४७ सीता का मन बड़ा प्रसन्न देखा। पूछने पर उन्होंने बहाना कर दिया। १४८ उनका रंग ऐसा दिखायी दिया जैसे लंका-विजय उनके हाथ में हो। १४९ यह निडर बन्दर यों ही नहीं हटेगा। जो उससे भिड़ेगा वह मौत के घाट उतरेगा। १५० यह बन्दर तो मानों काल होकर आया है। लड़ाई होने पर कोई ज़िन्दा नहीं लौटेगा। १५१ अब हम फिर लौटकर जानकी के पास नहीं जाएँगी। १५२ वह बन्दर तो सोने के पहाड़-जैसा विशालकाय है। १५३ कच्चा या पका एक भी फल न बचा। १५४ वह सभी फल खा गया। कितना बड़ा उसका मुँह और गाल था! १५५ वह कहाँ से आया और कहाँ छुपा था, हमने कुछ नहीं देखा। १५६ उसका मुँह उदयकाल के सूरज-जैसा लाल था। १५७ हे

देखू दशभाल की अशोक-वन हाल भेल ।। १५८ ।।
मारि गेल रक्षक बेहट्ट कपि काल से ।। १५९ ।।

।। दोधय छन्दः ।।

सुनितहिँ शीघ्र पठाओल सेना, बहुत निकट भट गेला ।। १६० ।।
लोहदण्ड-धर जहँ उदण्ड कपि, तनिकर सन्मुख भेला ।। १६१ ।।
सिंहनाद कय सभकाँ मारल, नहि रण मे कपि हारल ।। १६२ ।।
अर्द्ध-मरण सम भेल कतो जन, रावण निकट पुकारल ।। १६३ ।।
महाकाल बानर-तन धयलनि, लङ्का-नाशक कारण ।। १६४ ।।
क्षणमे विपिन अशोक उजाड़ल, फल-चय कयलनि पारण ।। १६५ ।।
साहस लङ्का निर्भय आयल, के करताह निवारण ।। १६६ ।।
लङ्कापति अपनहुँ चलि देखू, की थिक करु निर्धारण ।। १६७ ।।

।। रूपमाला ।।

गेल छल सङ्ग्राम किङ्कर, निहत सुनि दशभाल ।। १६८ ।।
कोप सौँ सत्वर पठाओल, पाँच सेना-पाल ।। १६९ ।।
स्तम्भ लौहक हाथ लयकँ, तनिक तेहन हाल ।। १७० ।।
कयल मारुत-तनय विजयी, समरमे तत्काल ।। १७१ ।।

रावण, देखिए, अशोक वाटिका का क्या हाल हो गया है ? १५८ रखवाले मर गये और वह बन्दर काल-जैसा अडिग है ।" १५९ सुनते ही रावण ने तुरत सेना भेजी । बहुत से बड़े-बड़े योद्धा गये । १६० वे योद्धा लोग वहाँ पहुँचे जहाँ लोहे का डंडा लिये उद्दंड हनुमान थे । वे उनके सामने आये । १६१ सिंह की भाँति दहाड़कर हनुमान ने सबको मार डाला । वे हारनेवाले नहीं थे । १६२ कई अर्द्धमृत-से हो भागकर रावण के पास जाकर चिल्लाने लगे— १६३ "महाकाल ने मानों लंका को नाश करने के लिए बन्दर का रूप धारण कर लिया है । १६४ उसने क्षण भर में अशोक वाटिका को उजाड़ दिया, फलों को चट कर गया । १६५ साहस के साथ बिना किसी डर के वह लंका आ गया है, उसे कौन रोक सकता है ? १६६ हे लंकापति रावण, आप स्वयं भी चलकर देखिए और गौर कीजिए कि यह क्या है ?" १६७ लड़ाई में जो सैनिक भेजे गये थे वे सभी मारे गये, यह सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा और तुरत पाँच सेनापतियों को भेजा । १६८-१६९ ये सेनापति लोग लौह-दण्ड हाथ मे लेकर मैदान में उतरे । हनुमान ने लोहे के डंडे से उनका भी वही हाल किया और वे लड़ाई में तुरत जीत गये । १७०-१७१ तब मन्त्रियों के सात बेटे लड़ाई

तखन मन्त्रिक सात बालक, युद्ध-उद्यत भेल ॥ १७२ ॥
क्रोध सौं रावण पठाओल, गेल ईर्ष्या लेल ॥ १७३ ॥
सकल जनकें मारि मारुत-तनय पुन तहि ठाम ॥ १७४ ॥
स्तम्भ लौहक अस्त्र एकटा, जितल भल संग्राम ॥ १७५ ॥

॥ चौपाइ ॥

अगुआ चलला अक्षयकुमार। कयल बहुत सेना सहिआर ॥ १७६ ॥
ततय बाट तकितहिँ हनुमान। के पुन अओता जयतनि प्राण ॥ १७७ ॥
अबइत देखल अक्षयकुमार। मनमन मानल हर्ष अपार ॥ १७८ ॥
मुदगर कर लय उड़ल अकाश। सत्वर हिनकर करब विनाश ॥ १७९ ॥
मुदगर लय कर लगले घूरि। रावण-सुलक माथ देल चूरि ॥ १८० ॥
रणमे माँचल हाहाकार। मुइला मुइला अक्षयकुमार ॥ १८१ ॥
कन्नारोहट उठ बड़ घोल। लड़त कहाँ के भभरल गोल ॥ १८२ ॥
सेना लड़ि लेलक भरिपोष। के सह मारुत-नन्दन रोष ॥ १८३ ॥
वार्ता विदित भेल दरबार। नहि छथि जिबइत अक्षयकुमार ॥ १८४ ॥
शुनि रावणमन पैशल शोक। बाहर छल भल बुझय न लोक ॥ १८५ ॥
छल छथि अतिबल प्रबल प्रताप। रावण सन जनिकाँ छथि बाप ॥ १८६ ॥
मेघनाद सन जनिकाँ भाय। वानर-हाथ मरण अन्याय ॥ १८७ ॥

के मैदान में आये। क्रुद्ध हो रावण ने उन्हें भेजा और वे ईर्ष्या के साथ मदान में उतरे। १७२-१७३ हनुमान ने एक मात्र अस्त्र लोहे के डंडे से वहाँ सबों को मार दिया और लड़ाई जीत गये। १७४-१७५ तब अक्षयकुमार भारी सेना सजाकर चले। १७६ उधर हनुमान राह जोह ही रहे थे कि अब कौन आता और प्राण गँवाता है ? १७७ अक्षयकुमार को आते देख हनुमान मन ही मन खूब खुश हुए। १७८ वे हाथ में मुग्दर ले आकाश में उड़ गये ताकि तुरंत इनका अन्त कर दें। १७९ मुग्दर हाथ में लिए तुरत आकाश से लौटे और रावण के पुत्र अक्षयकुमार के माथे को चकनाचूर कर दिया। १८० रणभूमि में हाहाकार मच गया कि अक्षयकुमार मारा गया ! १८१ सर्वत्र करुण क्रन्दन की आवाज़ छा गयी। कौन कहाँ लड़ता है ? सेना के दल में भगदड़ मच गयी। १८२ सेना अपनी ताकत भर लड़कर हार गयी। हनुमान का गुस्सा कौन बरदाश्त कर सकता था ? १८३ इस बात की ख़बर रावण के दरबार में पहुँची कि अक्षयकुमार ज़िन्दा नहीं रहे। १८४ सुनते ही रावण के मन में शोक समा गया पर बाहर से वह गम्भीर बना रहा, ताकि लोग उसके शोक को न जानें। १८५ अक्षयकुमार परम बलवान और प्रबल पराक्रमी था। जिसे रावण-जैसा पिता हो और मेघनाद-जैसा भाई हो उसकी मृत्यु बन्दर के हाथ हो यह बड़ा गड़बड़ हुआ। १८६-१८७ लंकेश्वर रावण के मन में

लङ्कापति-मन कोप अपार। मेघनाद सौं कयल विचार ॥ १८८ ॥
कय बेरि बजला भेल अन्धेरि। हम अपनहिँ जायब एहि बेरि ॥ १८९ ॥
अक्षयकुमारक अरि जहिठाम। ततय जाय जीतब सङ्ग्राम ॥ १९० ॥
मारब अथवा बाँधब जाय। अहँइक लग हम देब पहुँचाय ॥ १९१ ॥
मेघनाद कहलनि शुनु तात। वानर कयलक अछि उतपात ॥ १९२ ॥
शोक-वचन जनु बाजल जाय। हम जिबइतछी अक्षयक भाय ॥ १९३ ॥
आनब अपनेक निकट बझाय। हमर पराक्रम देखल जाय ॥ १९४ ॥

॥ चरणाकुल दोहा ॥

ई कहि रथ चढ़ि राक्षस भट लय, मेघनाद चललाह ॥ १९५ ॥
मारुत-नन्दन शत्रु-निकन्दन, कपिवर जतय छलाह ॥ १९६ ॥

॥ चौपाइ ॥

की रावण रावण-सन आन। अबइछ होइछ मन अनुमान ॥ १९७ ॥
गरजल गरुड़ जकाँ नभ जाय। स्तम्भ महामोट हाथ उठाय ॥ १९८ ॥
घुमइत गगन छला हनुमान। रावण-पुत्र चलौलक बाण ॥ १९९ ॥
आठ हृदयमे माथा पाँच। युगल चरण मे छयो नाराच ॥ २०० ॥
पुच्छ मध्य मारल एक बाण। मारि कयल धुनि सिंह-समान ॥ २०१ ॥

भारी क्रोध जगा। उसने मेघनाद से विचार-विमर्श किया। १८८ रावण कई बार बोले— "अँधेरा हो गया! इस बार मैं खुद जाऊँगा। १८९ जहाँ अक्षयकुमार का शत्रु है वहाँ जाकर युद्ध में विजय प्राप्त करूँगा। १९० या तो मार डालूँगा या बाँधकर तुम्हारे ही पास पहुँचा दूँगा।" १९१ यह सुनकर मेघनाद ने कहा— "हे पिता जी सुनिए। बन्दर ने उपद्रव किया है। १९२ शोकवश ऐसा मत बोलिए। अक्षयकुमार का भाई मेघनाद मैं जीता ही हूँ। १९३ मैं इस बन्दर को बाँधकर आपके पास लाऊँगा। मेरा पराक्रम देखिए।" १९४ इतना कहकर मेघनाद रथ पर सवार हो राक्षस योद्धाओं को साथ ले वहाँ चल पड़ा जहाँ शत्रु का संहार करनेवाले पवनसुत हनुमान थे। १९५-१९६ उधर हनुमान मेघनाद को आते देख सोचने लगे— इसे आते देख लगता है कि या तो यह खुद रावण या रावण के समान ही कोई और है। १९७ फिर हाथ में एक बहुत बड़ा खम्भा उठाये गरुड़ की भाँति आकाश में उड़ गये और गर्जन किया। १९८ हनुमान आकाश से नीचे की ओर लौट ही रहे थे कि रावण के पुत्र मेघनाद ने बाण चलाये। १९९ आठ बाण उनके हृदय में लगे, पाँच माथे में और छः-छः दोनों पैरों में। २०० एक बाण उनकी पूँछ में लगा। इस प्रकार बाण मारकर मेघनाद ने सिंहगर्जन किया। २०१

कोप-विवश मारुत-सुत घूरि। रथ घोड़ा सारथि देल चूरि ॥ २०२ ॥
दोसर रथ चढ़ि आयल फेरि। कहल तोहर दुर्गति यहि बेर ॥ २०३ ॥
नहि जीतब मन बूझल जखन। ब्रह्मास्त्रें कपि बाँधल तखन ॥ २०४ ॥
ब्रह्मास्त्रक कपि राखल मान। अपनहि बझला मन किछु आन ॥ २०५ ॥
बाँधल बाँधल भय गेल सोर। यहन विश्व नहि घातो चोर ॥ २०६ ॥
बाँधल अछि लय चलु दरबार। करब तेहन जे दशक विचार ॥ २०७ ॥
जीवन्मुक्त थिकथि हनुमान। कि करत तनिका बन्धन आन ॥ २०८ ॥
राम-चरण-पङ्कज मन धयल। मारुत-सुत बड़ लीला कयल ॥ २०९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे सुन्दरकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

बाँधल कों पुरजन मिलि मार। कौतुक पहुँचल दशमुख-द्वार ॥ १ ॥
त्रास-हीन हर्षित हनुमान। केवल कौशलेश-पद ध्यान ॥ २ ॥

हनुमान गुस्से के साथ आकाश से लौटे और मेघनाद के रथ, घोड़ों और सारथी को चूर-चूर कर दिया। २०२ फिर मेघनाद दूसरे रथ पर चढ़कर आया और बोला— "इस बार तुम्हारी दुर्दशा होगी।" २०३ जब मेघनाद को यह मालूम हो गया कि लड़ाई में जीत नहीं सकूँगा, तब उसने ब्रह्मास्त्र चलाकर हनुमान को बाँध दिया। २०४ हनुमान ने ब्रह्मास्त्र का मान रखा और मन में कुछ और बात सोचकर खुद उसमें बँध गये। २०५ शोर मच गया— बाँधा ! बाँधा ! मेघनाद बोले— "ऐसा विनाशकारी चोर तो दुनिया भर में नहीं है। २०६ इसे बाँध लिया है। ले चलिए रावण के दरबार में। वहाँ दस लोगों का जैसा विचार होगा वैसा किया जाएगा।" २०७ हनुमान तो जीवनमुक्त हैं, उन्हें और कोई क्या बाँध सकेगा ? २०८ तब हनुमान ने मन में राम के चरण-कमल का ध्यान किया और अजब लीला की। २०९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में
सुन्दरकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय

रावण के दरबार में हनुमान का उससे संवाद

बाँधे हुए हनुमान को नगर के लोग मिलकर पीटते हैं और यह तमाशा रावण के दरबार में पहुँचा। १ पर हनुमान को कोई डर नहीं है, वे केवल राम के चरण का ध्यान करते हुए प्रसन्न हैं। २ सबों की पिटाई और गाली

मारि गारि सबहिक सहि लेथि। पामर काँ नहि उत्तर देथि॥ ३॥
मेघनाद कहलनि शुनु तात। कयलक ई बानर उतपात॥ ४॥
ब्रह्मास्त्रें हम जीतल जखन। बानर वशमे आयल तखन॥ ५॥
कहल जाय की समुचित मन्त्र। बानर काँ नहि करब स्वतन्त्र॥ ६॥
लौकिक बानर सन नहि कर्म्म। अपनहिँ जानब हिनकर मर्म्म॥ ७॥
ताकि प्रहस्त सचिव सौँ कहल। विषय विचार करक जे रहल॥ ८॥
पुछु बानर कें मन्त्रि प्रहस्त। बौआयल कपि कालक ग्रस्त॥ ९॥
की आयल अछि की अछि काज। बानर सौँ बजइत हो लाज॥ १०॥
कथि लय कयलक उपवन नाश। राक्षस वध करइत नहि त्रास॥ ११॥
कहलनि मन्त्रि प्रहस्त प्रकाश। कपि मनमे नहि मानब त्रास॥ १२॥
प्रेषित ककर कहब से साँच। प्राण अहाँक अवश्ये बाँच॥ १३॥
कहलनि हरि बड़ गोट मोर भाग। दूरक ढोल सोहाओन लाग॥ १४॥

॥ दोधय छन्दः॥

भूखल छलहुँ सङ्ग नहि खर्चा, तोड़ि तोड़ि फल खयलहुँ॥ १५॥
रक्षक लण्ठ प्राण लेबा पर, बहुत नेहोरा कयलहुँ॥ १६॥
कान कपार एक नहि बूझल, पातैं पात नुकयलहुँ॥ १७॥

बरदाश्त किए जाते हैं। उन नासमझों को कुछ उत्तर नहीं देते। ३ मेघनाद ने कहा— 'हे पिता, सुनिए। इसी बन्दर ने उत्पात मचाया है। ४ जब मैंने ब्रह्मास्त्र चलाकर इसे जीता तब यह क़ाबू में आया है। ५ अब कहिए कि क्या करना उचित होगा? इस बन्दर को स्वतन्त्र नहीं छोड़ूँगा। ६ इसकी चाल सामान्य बन्दर की-सी नहीं है। इसका रहस्य आप ही जानिएगा।" ७ फिर मेघनाद ने प्रहस्त नामक मन्त्री की ओर देखकर कहा कि क्या विचार करना है? ८ "हे मन्त्री प्रहस्त, काल से ग्रसित हो भटकते हुए आये इस बन्दर से पूछिए— ९ वह क्यों आया है और उसे क्या काम है? मुझे तो बन्दर से बतियाते भी शर्म आती है। १० पूछिए कि इसने अशोक वाटिका क्यों उजाड़ी? राक्षसों को मारते इसे डर न लगा?" ११ मन्त्री प्रहस्त ने पूछा— "हे कपि, मन में भय मत कीजिए। १२ सच-सच बताइए कि आपको किसने भेजा है? आपके प्राणों पर कोई खतरा नहीं है।" १३ हनुमान ने कहा— "मैं बड़ा भाग्यवान हूँ। दूर से आयी ढोल की आवाज़ मीठी लगती है। १४ मैं भूखा था, साथ में राह खर्च नहीं था, इसलिए तोड़-तोड़कर फल खाया। १५ आपके रक्षक लोग बड़े बदमाश हैं, बहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर भी वे मेरी जान लेने पर उतारू हो गये। १६ वे जहाँ-तहाँ मुझ पर प्रहार करने लगे और मैं पत्तों-पत्तों में छुपता रहा। १७

अपन स्वरूप धयन हम सभकाँ, कालक धाम पठयलहुँ ॥ १८ ॥
पहिलय मारि बहुत हम सहलहुँ, पाछाँ अनुचित कयलहुँ ॥ १९ ॥
दश-मस्तक लङ्कपति राजा, की अपने खिसिअयलहुँ ॥ २० ॥
एक गोट वानर पर एते, सेना व्यर्थ पठयलहुँ ॥ २१ ॥
धर्म्म-शास्त्र-वेत्ता अपनें सन, न्याय करू अगुतयलहुँ ॥ २२ ॥

॥ रावणोक्ति ॥

॥ वसन्त-तिलका छन्दः ॥

के तों थिकाँहि कत सौं यत आबि गेलें ॥ २३ ॥
की नाम ताहर निशाचर-भक्ष्य भेलें ॥ २४ ॥
आज्ञा-विहीन फल तोड़ि बहुत खलें ॥ २५ ॥
निर्हेतु रक्षक तहाँ किय मारि देलें ॥ २६ ॥

॥ हनुमानक उक्ति ॥

रे दुष्ट लागल क्षुधा फल तोड़ि खेलौं ॥ २७ ॥
केलें उपद्रव ततें तरु तोड़ि देलौं ॥ २८ ॥
हेतौ बहुत नहि सम्प्रति विघ्न भेलौं ॥ २९ ॥
अस्त्र-प्रहार कयलें हम प्राण लेलौं ॥ ३० ॥

॥ मालिनी-छन्दः ॥

रघुपतिक पठौलें लाँघि कें सिन्धु ऐलौं ॥ ३१ ॥
तनिक कुशल-वार्त्ता जानकी कें शुनेलौं ॥ ३२ ॥

फिर मैंने अपना स्वरूप धारण किया और सबों को मौत के घाट उतारा। १८ पहले तो मैंने ही बहुत मार खायी पर बाद में मैंने तोड़-फोड़ का बुरा काम किया। १९ हे लंकेश्वर दशकन्धर राजा, आप क्यों गुस्साए? २० एक मात्र असहाय बन्दर पर इतनी सेना क्यों भेजी? २१ आप तो धर्मशास्त्र जानते हैं, न्याय कीजिए। उकता क्यों गये?" २२ रावण ने पूछा— "तुम कौन हो? यहाँ कहाँ से आये हो? २३ तुम्हारा नाम क्या है? अब तुम राक्षसों का भक्ष्य हो गये हो। २४ बिना हुक्म के तुमने बहुत से फल तोड़कर खाये, सो तो किया पर बिना कारण वहाँ रक्षकों को क्यों मारा? २५-२६ हनुमान ने कहा— "अरे दुष्ट, भूख लगी थी इसीलिए तोड़कर फल खाये। २७ तुम लोगों ने वहाँ उपद्रव किया, इसीलिए मैंने पेड़ों को तोड़ा। २८ अभी क्या हुआ है? आगे और भी बहुत बरबादी होगी। २९ मुझ पर हथियार छोड़ोगे तो मैं जान ले लूंगा। ३० राम का भेजा हुआ मैं समुद्र लाँघकर यहाँ आया हूँ। ३१ उनका कुशल समाचार जानकी को सुनाया। ३२ बहुत भूख लगी इसलिए फल खाये। ३३ मेरा

क्षुधित बहुत भेलैं तैं फलाहार कैलौ ॥ ३३ ॥
मरुत-सुत हनूमन्नाम की बाँधि लेलौ ॥ ३४ ॥
किछु दिन रहि लङ्का सिन्धु कें फानि जैबे ॥ ३५ ॥
जनक-नृपति-पुत्री दुःख-वार्त्ता शुनैबे ॥ ३६ ॥
प्रबल सकल सेना सङ्ग लै फेरि ऐबे ॥ ३७ ॥
तखन बुझब जे छी से अहाकाँ बुझैबे ॥ ३८ ॥

॥ भुजङ्गप्रयात छन्दः ॥

चिन्हारे अहाँ छी बिरञ्चि-प्रपौत्रे ॥ ३९ ॥
कुकर्म्मी अहाँ छी करैछो की श्रौत्रे ॥ ४० ॥
गिरीशार्च्चना छोड़ि ई की करै छी ॥ ४१ ॥
परस्त्री अहाँ छद्म सौं की हरैछी ॥ ४२ ॥

॥ चौपाइ ॥

लङ्कापति हमछी निर्भीत। फेरि गबैछी गओले गीत ॥ ४३ ॥
ब्रह्म विष्णु रामक अवतार। के गुण कहत हुनक विस्तार ॥ ४४ ॥
वेद न पाबथि कहयित पार। जनिकर सिरजल थिक संसार ॥ ४५ ॥
तनिकर माया सीता-रूप। हरि आनल बनसौं चुप चूप ॥ ४६ ॥
गञ्जन बन्धन कर्म्मक भोग। अयलहुँ नदिया-नाव-संयोग ॥ ४७ ॥

नाम हनुमान है। मैं वायु का पुत्र हूँ। तुम लोगों ने मुझे नाहक बाँध रखा है। ३४ कुछ दिन लंका में रहकर समुद्र को फाँदकर मैं चला जाऊँगा। ३५ राजा जनक की पुत्री सीता का दुख-दर्द राम को सुनाऊँगा। ३६ सारी ताकतवर सेना के साथ फिर यहाँ आऊँगा। ३७ तब तुमको समझ में आ जायेगा कि मैं क्या हूँ? ३८ तुम तो जाने-पहचाने ही हो। तुम ब्रह्मा के परपोता हो। ३९ तुम तो कुकर्म में रत हो। वेद-विहित कर्म क्यों करते हो? ४० शिव की पूजा छोड़ यह क्या करते हो? ४१ परायी स्त्री छल से क्यों हरते हो?" ४२ रावण ने कहा— "मैं लंकापति रावण हूँ। मैं फिर वही बात दुहराता हूँ कि मुझे किसी का डर नहीं है।" ४३ ब्रह्मा और विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया है। उनके गुणों का पूरा-पूरा वर्णन कौन कर सकता है? ४४ जिनके गुणों का वर्णन करते हुए वेद भी पार नहीं पाता है और जो इस दुनिया का सर्जन करनेवाले हैं, उनकी माया-स्वरूपा स्त्री को चुपचाप हर लाये हो। ४५-४६ मुझे जो गालियाँ सुननी पड़ी हैं और जो बन्धन में पड़ गया हूँ, वह तो केवल नदी-नाव-संयोग अर्थात् आकस्मिक घटना है और मेरे पूर्व जन्म के कर्म का फल है। ४७ उनके दूत मुझको तुमने चोर समझकर पकड़

तनिकर दूत चोर हम धयल। करब उपाय एखन की कयल ॥ ४८ ॥
अनुभव बाली-बल विस्तार। तनिक राम कयलनि संहार ॥ ४९ ॥
दीनक भीर देखल दरबार। अयलहुँ दबि छपि सागर पार ॥ ५० ॥
राम-सख्य सुग्रीवक सङ्ग। किछु दिन बितलहि देखब रङ्ग ॥ ५१ ॥
कपिपति सचिव थिकहुँ हनुमान। अञ्जनि जननि जनक पवमान ॥ ५२ ॥
वानर चर फिरइछ सभ ठाम। हम लङ्का अयलहुँ सुनि नाम ॥ ५३ ॥
नीति धर्म्म हम देल सुनाय। सत्य कहय से मारल जाय ॥ ५४ ॥
हृदय अहाँक अधिक अछि मैल। झिटुकी सौं फूटि जाइछ घैल ॥ ५५ ॥
प्रभुक कुशल सीता सँ भाषि। लोभ भेल एक फल कैं चाखि ॥ ५६ ॥
लोभहिँ पतन कहय संसार। हमरा अपनहि पड़ल कपार ॥ ५७ ॥
बड़ गोट वंश ओ विस्तर राज। अयशक नहि किछु मनमे लाज ॥ ५८ ॥
करब न अहँसौं किछु हम लाथ। अहँक नीक रघुनन्दन-हाथ ॥ ५९ ॥
पण्डित वेश कुपथ की धयल। हाथी सौं हथि-बेसन कयल ॥ ६० ॥
हमरा मारल बाँधल बेश। बुद्धि-वृद्धि हो लगलें ठेस ॥ ६१ ॥
हँसि बजला तखना दशकण्ठ। ई वानर अछि बड़का लण्ठ ॥ ६२ ॥

लिया। इसका उपाय करूँगा, अभी क्या किया है? ४८ तुमको मालूम है कि बालि कितना बलवान था। उसका भी राम ने संहार किया। ४९ तुम्हारे दरबार में दीनों का जमघट देखा। लुक-छिपकर समुद्र के पार आया हूँ। ५० राम ने जो सुग्रीव के साथ मित्रता की है उसका रंग कुछ दिन बीतने पर मालूम होगा। ५१ मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूँ। मेरी माता का नाम 'अंजनि' है और मेरे पिता वायु हैं। ५२ दूत के रूप में वानर लोग जहाँ-तहाँ घूम रहे हैं। मैं नाम सुनकर लंका आया हूँ। ५३ नीति क्या है और धर्म क्या है? यह मैंने समझा दिया। कहावत है कि सच्ची बात बतानेवाला मारा जाता है। ५४ आपका हृदय अधिक मलिन है। कहा जाता है कि एक ठीकुरी से घड़ा फूट जाता है। ५५ राम का संदेश जब सीता को सुना दिया तो फल चखने का लोभ हो गया। ५६ संसार में यह जाहिर है कि लोभ से ही पतन होता है। यह कहावत तो मेरे अपने ही सिर पड़ी। ५७ आपका कुल बहुत बड़ा है। आपका राज्य विस्तृत है। फिर भी आपके मन में बदनामी की शर्म नहीं है। ५८ आपसे मैं कुछ भी दुराव नहीं करूँगा। आपका कल्याण राम के हाथ में है। ५९ विद्वान का रूप पाकर आपने कुमार्ग पर पाँव क्यों रखा? आपने हाथी से हथिबेसन किया। ६० मुझे पीटा और बाँधा, इसका फल बाद में चखिएगा। कहावत है, ठेस लगने से बुद्धि बढ़ती है।" ६१ तब रावण हँसकर बोला—"यह बन्दर बड़ा बदमाश है। ६२

मृतसम बाँधल मन अभिमान। हमरहु निकट छटै अछि ज्ञान ॥ ६३ ॥
मानुष राम गहन मे वास। हमरा तकर देखावै त्रास ॥ ६४ ॥
तनिका मारब दनुज पठाय। वानर बिलटत रहित-सहाय ॥ ६५ ॥
सीता-कारण अछि उतपात। करब तनिक हम प्राणक घात ॥ ६६ ॥
सनकल अछि कपि बड़ बाचाल। हिनका माथ नचै अछि काल ॥ ६७ ॥
मारुत-नन्दन उत्तर कहल। रावण-कुवचन एक न सहल ॥ ६८ ॥

॥ द्वितीय त्रिभंगी छन्दः ॥

दशमुख-वचन शुनल कपि कहलनि ॥ ६९ ॥
चुप रह रे अभिमानी, करतौ हानी, कटु बानी ॥ ७० ॥
प्रभुकर-शरक निकर बिषधर सन ॥ ७१ ॥
लगलें के बच प्रानी, शठ अज्ञानी, बक-ध्यानी ॥ ७२ ॥
अपनहिं मन नृप बनल सनल छह ॥ ७३ ॥
कहतौ के गुरु तोरा, शुनु स्त्री-चोरा, कुल-बोरा ॥ ७४ ॥
हित अनहित अनहित हित कयलह ॥ ७५ ॥
प्रभुक न कयल निहोरा, मति-घोरा, शुभ थोरा ॥ ७६ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

सत्य हनुमान तौं प्रमाण ई वचन जान ॥ ७७ ॥
मर्कट विकट भालु-भट वश परबें ॥ ७८ ॥

मुर्दे के समान बँधा हुआ है, फिर भी इसके मन में अभिमान भरा है। मेरे सामने भी ज्ञान बघारता है। ६३ राम, जो मनुष्य है और वन में रहता है, उसी का डर यह मुझको दिखाता है। ६४ राक्षसों को भेजकर मैं उस राम को मार डालूँगा। तब यह बन्दर बे-सहारा हो बिलखता रहेगा। ६५ यह खुराफात सीता के कारण ही हुई है, इसलिए उसी को अब जान से मार देना है। ६६ यह बन्दर बड़ा बक्की और पागल-सा है। इसके सर पर काल मँड़रा रहा है।'' ६७ हनुमान ने सबका उत्तर दिया। रावण के एक भी दुर्वचन को बरदाश्त नहीं किया। ६८ उसका वचन सुनते ही हनुमान ने कहा— "अरे अभिमानी, तुम चुप रहो। बड़ी बात बोलने से तुम्हें मजा चखना पड़ेगा। ६९-७० राम के हाथ से छूटे विषैले सर्पों के समान तीरों के लगने से कौन बच सकता है रे पाखंडी, दुष्ट, नादान ? ७१-७२ अरे स्त्री चुराने और कुल को बुड़ानेवाले रावण, तुम तो अपने ही मन से राजा बन बैठे हो। तुम्हें कौन बड़ा कहेगा ? ७३-७४ अरे मतिमन्द अभागे, तुमने हित को अहित और अहित को हित समझा। राम की प्रार्थना नहीं की। ७५-७६ यदि मैं वास्तव में हनुमान हूँ तो यह बात

प्रभु-दल प्रबल जखन उतरत इत ॥ ७९ ॥
दशमुख तखन उपाय कोन करबँ ॥ ८० ॥
मुष्टिका-आघात लात-घात-सन्निपात वश ॥ ८१ ॥
शोचबश रण मे त्राहि त्राहिकँ कहरबँ ॥ ८२ ॥
'चन्द्र' भन रामचन्द्र सर्व्वनाश-हाथ-तीर ॥ ८३ ॥
लगतहु जखन तखन मूढ़ मरबँ ॥ ८४ ॥

॥ चौपाइ ॥

मारुत-वचन सुनल लङ्केश । क्रोध-विवश जन देल निदेश ॥ ८५ ॥
हम कटु वचन शुनै छी कान । वानर बजइछ आनक आन ॥ ८६ ॥
हिनका मारय लय कय खण्ड । हिनकर सभ छूटय पाखण्ड ॥ ८७ ॥
कपिकाँ मारय दौड़ल जखन । अयला सभा विभीषण तखन ॥ ८८ ॥
कहलनि नीतिशास्त्र-अनुसार । चारक वध नहि अछि व्यवहार ॥ ८९ ॥
दूत बेचारा मारल जयत । रामचन्द्र सौँ युद्ध न हयत ॥ ९० ॥
अङ्कित हयता कहता जाय । राखक नहि थिक दूत बझाय ॥ ९१ ॥
नीति विभीषण कहलहुँ नीक । मानल वचन सदर्थ अहीँक ॥ ९२ ॥

निश्चित समझो कि तुम दारुण वानर-भालू सैनिकों के पंजे में पड़ जाओगे । ७७-७८ राम की प्रबल सेना यहाँ उतरेगी तब अरे रावण, तुम क्या उपाय करोगे ? ७९-८० उन सैनिकों का मुक्के पर मुक्का और लात पर लात खा-खाकर शोक से 'बचाओ-बचाओ' चिल्लाने लगोगे । ८१-८२ चन्द्र कवि कहते हैं कि जब सारी दुनिया को नाश करने में समर्थ राम के हाथ से तीर लगेगा तब अरे नादान, तुम्हारी मौत हो जाएगी । ८३-८४

हनुमान की पूंछ में आग लगाया जाना और लंका का जलना

रावण हनुमान की बात सुनकर आगबबूला हो गया और अपने सेवकों को आदेश दिया— ८५ "मैं तीखी-तीखी बातें अपने कानों से सुन रहा हूँ । यह बन्दर अंट-संट बकता जा रहा है । ८६ इसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दो ताकि इसका पाखंड दूर हो ।" ८७ सेवक लोग कपि को मारने के लिए दौड़े किन्तु ऐसे मौके पर दरबार में विभीषण पहुँच गये । ८८ उन्होंने कहा— "प्रभु, नीतिशास्त्र कहता है कि दूत अवध्य होता है । ८९ बेचारा दूत मारा जाएगा तो रामचन्द्र से युद्ध कैसे होगा ? ९० इसे यदि कोई दाग़ लगाकर छोड़ दिया जाए तो यह जाकर रामचन्द्र से कहेगा । दूत को बाँधकर रखना ठीक नहीं है ।" ९१ रावण ने कहा— "हे विभीषण, आपने अच्छी नीति कही । माना कि आपका ही

शण मन बहुत वस्त्र घृत तेल। ढेर भेल नृप आज्ञा देल ॥ ९३ ॥
कपि वालधि मे सभ लपटाब। कौतुक करइत नृपति हसाब ॥ ९४ ॥
किछु तहि ऊपर आगि लगाब। के बुझ भावी काल स्वभाव ॥ ९५ ॥
मारथि गारि देथि कय बेरि। योगी सौं कयलनि धुरखेरि ॥ ९६ ॥
नाना तरहक बाजन बाज। प्रबल चोर काँ पकड़ल आज ॥ ९७ ॥
पश्चिम द्वार पवन-सुत जाय। बन्धन लेलनि सहज छाड़ाय ॥ ९८ ॥
सूक्ष्मरूप सौं गेल बहराय। सभ राक्षस-मन देल शुखाय ॥ ९९ ॥
सभ जन हृदय कदलि सन काँप। जनु कप भेल चोटाओल साप ॥ १०० ॥
कपिकाँ मन मे आछ बड़ रोष। करत उपद्रव पुन भार पोष ॥ १०१ ॥
रावण-सभा उठल घमलौड़। ऐठन जरल न जरि गेल जौड़ ॥ १०२ ॥
के थिक केहन न कयल विचार। मूर्खक लाठी माँझ कपार ॥ १०३ ॥
के कह कपि कपि-रूपी काल। नहि बुझ लङ्कापति दशभाल ॥ १०४ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

अग्निमान त्रिकूट-अचल अनुमान भेल ॥ १०५ ॥
धूम-धार नभ घन प्रलय समान रे ॥ १०६ ॥

कहना जायज है।" ९२ अनेकों मन पटसन, कपड़ा, घी और तेल जमा किया गया और राजा रावण ने आज्ञा दी— ९३ "यह सब इस बन्दर को पूँछ में लपेट दो और आग लगा दो ताकि यह बन्दर नाच-तमाशा करके राजा को हँसाये।" कौन जानता था कि इसका क्या नतीजा होगा ? ९४-९५ लोग उसे पीटने और गाली देने लगे। मानों वे योगी से ही होली खेलने लगे। ९६ तरह-तरह के बाजे बजने लगे और खुशी मनाने लगे कि आज भारी चोर को पकड़ा। ९७ तब हनुमान पश्चिमी दरवाज़े पर गये और अनायास बन्धन को हटा दिया। ९८ फिर अति लघु रूप धारणकर निकल गये सभी राक्षसों का मन घबरा गया। ९९ सबों का कलेजा केले के पत्ते की भाँति काँपने लगा। मानों वह बन्दर चोट खाया हुआ साँप हो गया हो। १०० हनुमान के मन में बड़ा रोष था। वे फिर भारी उपद्रव मचाएँगे। १०१ रावण की सभा में हो-हल्ला मचने लगा। रस्सी तो जल गयी पर ऐंठन न जली। १०२ यह कौन है, कैसा है, कुछ भी विचार न किया गया ? यह मूर्खतापूर्ण काम हुआ। कहावत है— 'मूरख की लाठी ठीक माथे पर बजती है।' १०३ कौन कहे कि यह बन्दर है या बन्दर की शक्ल में काल आया है ? लंकेश्वर रावण की समझ में नहीं आया। १०४ लगता था कि त्रिकूट पर्वत आग का बना हो। धुआँ जो आकाश में गया तो मानों प्रलय का बादल छा गया। १०५-१०६ पानी भी आग-आग हो

आगि आगि पानि भेल धह धह छानि भेल ॥ १०७ ॥
कपि-मन आनि भेल सङ्ग पवमान रे ॥ १०८ ॥
वानर न जानि भेल हसयित हानि भेल ॥ १०९ ॥
हास्य राजधानि भेल रावण मलान रे ॥ ११० ॥
आनही सौं आन भेल सर्व्व सावधान भेल ॥ १११ ॥
रावण-प्रताप हर हरि हनुमान रे ॥ ११२ ॥

॥ चौपाइ ॥

बहल बहल तत प्रलय बिहाड़ि । जनु पर्व्वत कौं बेत उखाड़ि ॥ ११३ ॥
कपिक पूछ मे धधकल आगि । विकल पड़ायल सभ घर त्यागि ॥ ११४ ॥
गोपुर ऊपर कपि चढ़ फानि । सभ मन छटल मारिक बानि ॥ ११५ ॥
गरजि गरजि कपि ठोकल ताल । राड़क असँघ जिवक जञ्जाल ॥ ११६ ॥

॥ रूपक घनाक्षरी ॥

गगन अनिल ओ अनल जल महि विश्व ॥ ११७ ॥
सिरिजल जनिक तनिक दूत जरबहु ॥ ११८ ॥
कोटि कोटि रावण समान गण लड़बह ॥ ११९ ॥
मृग-गण-मारक मृगेन्द्र जकाँ पड़बहु ॥ १२० ॥

गया। छप्पर धह-धह जलने लगे। १०७ हनुमान के मन में बड़ी आन हुई। हवा ने उनका साथ दिया। १०८ यह वानर क्या है ? यह बात समझ में न आई। हँसी-हँसी में ही सर्वनाश हो गया। १०९ राजधानी में लोग उपहास करने लगे। रावण का मन उदास हो गया। ११० क्या से क्या हो गया ? सभी सावधान हो गये। १११ ऐसा मालूम हुआ कि यह वानर हनुमान रावण की महिमा को समाप्त करनेवाला है। ११२ वहाँ प्रलयकाल-सी ऐसी आँधी आयी मानों पहाड़ों को उखाड़ फेंकेगी। ११३ हनुमान की पूंछ में ज्यों ही आग की लपट उठी कि घबराकर घर-द्वार छोड़ सभी भाग गये। ११४ हनुमान छलाँग मारकर नगर के द्वारभवन पर चढ़ गये। सबों के मन में मार-पीट की भावना जाती रही। ११५ वे गरज-गरज कर ताल ठोंकने लगे। कहावत है— 'सेवक का विद्रोह खतरनाक होता है।' ११६ आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये सभी पदार्थ जिनका सरजा हुआ है, उन्हीं के दूत को तुम लोग जलाना चाहते हो। ११७-११८ यदि रावण के तुल्य करोड़ों जवान मिलकर लड़ोगे तो भी मैं मृगों को मारने के लिए जैसे सिंह छूटता है वैसे ही भिड़ जाऊंगा। ११९-१२० तुम लोगों ने युद्ध

देखल प्रचण्ड रण हमर उदण्ड बल ॥ १२१ ॥
भेल आब कोप अभिमान लोप करबहु ॥ १२२ ॥
कालहुक काल विकराल सौं नै भीति अछि ॥ १२३ ॥
तोहरा लोकनि बुतें हम कतें मरबहु ॥ १२४ ॥

॥ चौपाइ ॥

जरय न कपि जरइत अछि गाम । कह जन भेल विधाता वाम ॥ १२५ ॥
लोह-स्तम्भ कपिक अछि हाथ । जे लग भिड़थिन फोड़थिन माँथ ॥ १२६ ॥
सगर नगर अनल क सञ्चार । बिना बिभीषण घर ओ द्वार ॥ १२७ ॥
धर धर कहथि निकट नहि जाथि । हाथी कुक्कुर रीति डराथि ॥ १२८ ॥
पीटथि छाती वनिता कानि । कपि-उतपात भेल सभ हानि ॥ १२९ ॥
जरल कनक-मणिमय बर गेह । सम्पति रह की पाप-सिनेह ॥ १३० ॥
दूत-पराक्रम कहल न जाय । भाग्यवान काँ भूत कमाय ॥ १३१ ॥
कपि कह लङ्का करब विनाश । घैल काँच कें मुगरक आश ॥ १३२ ॥
धिक रावण आनन न मलान । चोरक मुह जनु चमकय चान ॥ १३३ ॥
दशकन्धर की रहबह चैन । भल-घर-मध देलह अछि बैन ॥ १३४ ॥
हनुमानक लग कें ओ न जाय । मारिक डर सौं भूत पड़ाय ॥ १३५ ॥

में मेरा प्रचंड पराक्रम देख लिया। अब मैं गुस्से में आ गया हूँ। तुम लोगों का घमंड चूर कर दूँगा। १२१-१२२ विकराल काल के काल से भी मुझे कोई डर नहीं है। तुम लोगों की क्या ताकत कि मुझे मार सको? १२३-१२४ बन्दर नहीं जलता बल्कि बस्तियाँ ही जल रही हैं। लोग कहते विधाता प्रतिकूल हो गये। १२५ लोहे का डंडा कपि के हाथ में है। जो उससे भिड़ेगा उसका वह सर फोड़ देगा। १२६ सारे नगर में आग फैल गयी। केवल विभीषण का घर-द्वार बचा रहा। १२७ सब लोग 'पकड़ो-पकड़ो' की आवाज़ लगाते पर डर से पास नहीं जाते; जैसे हाथी से कुत्ते, उसी तरह डरकर भागते। १२८ महिलाएँ रो-धोकर छाती पीटतीं— हाय, बन्दर के उत्पात से सब चला गया। १२९ सोने और रत्नों के बने अच्छे-अच्छे भवन जल गये। पाप में लगाव रहने पर क्या सम्पत्ति बच सकती है? १३० दूत ऐसी वीरता दिखाए यह अजीब बात है। कहावत है, 'भूत भी भाग्यवान का काम कर देता है दूत की कौन कहे।' १३१ हनुमान कहते— "मैं लंका को ध्वस्त कर दूँगा। कहावत है, 'कच्चे घड़े को मुँगरा ही चाहिए।' १३२ धिक्कार है रावण को, इतना होने पर भी जिसका मुँह मलिन नहीं हुआ। कहावत है— 'चोर का मुँह चाँद-सा चमकता है।' १३३ हे रावण, अब तुम कैसे चैन पाओगे? तुम तो भले घर में सौगात भेज चुके हो अर्थात् अपने से अधिक बलवान को चुनौती दे चुके हो।" १३४ हनुमान के पास

॥ घनाक्षरी ॥

अनुचित भल न विचार दृढ़ कय लेल ॥ १३६ ॥
छोड़ि देल बानर विकट अधबध कें ॥ १३७ ॥
दिन भेल वक्र आब ककरो न शक अछि ॥ १३८ ॥
एक छानि आगि सौं हजार घर धधकै ॥ १३९ ॥
प्रलय-कृशानु सन तखनुक भानु सन ॥ १४० ॥
बीर हनुमान सनमुख जित-युधकें ॥ १४१ ॥
ताल घहराय के वारण करै आय जत ॥ १४२ ॥
कयल अन्याय फल रावण अबुध कें ॥ १४३ ॥

॥ शिखरिणी छन्दः ॥

अरे बाबा दावानल-सदृश लङ्का जरइयै ॥ १४४ ॥
अधर्मी लङ्केशे तनिक सभ पापे करइयै ॥ १४५ ॥
पड़ा रे रे बाबू किछु न मन काबू परइयै ॥ १४६ ॥
विना पानी लङ्का-नृपति-पट-रानी मरइयै ॥ १४७ ॥

॥ नाराच ॥

पड़ा पड़ा बड़ा बड़ा गृहाट्ट जारि देलकौ ॥ १४८ ॥
विदेह-कन्यका-विपत्ति जानि कानि लेलकौ ॥ १४९ ॥
बहुत छोट बानरे सभेक हाल फेलकौ ॥ १५० ॥
प्रचण्ड दण्ड-देनिहार दूत चोर धेलकौ ॥ १५१ ॥

कोई नहीं जाता? कहावत है, 'मार के डर से भूत भी भागता है।' १३५ यह अनुचित हुआ। भलाभाँति सोच-विचारकर काम नहीं किया गया। विकट बन्दर को चोट देकर जिन्दा छोड़ दिया गया। १३६-१३७ अब बुरे दिन आये। किसी का वश न चलेगा। १३८ एक छप्पर में आग लगने पर हजार घर जल जाते हैं। १३९ प्रलयकाल की आग और प्रलयकाल के सूरज के समान वीर हनुमान के सामने लड़ाई में कौन जीतनेवाला है? १४०-१४१ घहराती हुई बाढ़ को कौन रोक सकता है? नादान रावण ने जितना पाप किया उसे उतना फल भुगतना ही होगा। १४२-१४३ अरे बाप! यह लंका दावानल की भाँति जलती है। १४४ लंकेश्वर रावण बड़ा पापी है। उसी के पाप से यह सब कुछ हो रहा है। १४५ अरे भाइयो, भागो-भागो! अब स्थिति काबू में न रही। १४६ लंकाधिपति रावण की पटरानी भी अब पानी के बिना मर रही है। १४७ भाइयो, भागो-भागो! इसने बड़े-बड़े महलों को जला डाला। १४८ जनक की बेटी सीता को सताने का बदला लिया। १४९ बित्ते भर के

॥ समानिका ॥

मेघनाद की कहू, बुद्धि-हीन छी अहूँ ॥ १५२ ॥
बाप पाप कैल की, मृत्यु-मार्ग धैल की ॥ १५३ ॥

॥ दोधय छन्द ॥

हरि-पद-बिमुख कतहु सुख पावथि, धिक धिक दशमुख-ज्ञाने ॥ १५४ ॥
दुर्गति कय कपि लङ्को जारय, धयलहिँ छथि अभिमाने ॥ १५५ ॥
एहि सौँ आब कि गञ्जन देखता, मरणाधिक अपमाने ॥ १५६ ॥
के कपि पकड़ लड़य के कालसौँ, नहि कपि-वीर समाने ॥ १५७ ॥

॥ चौपाइ ॥

लङ्का-नगर सगर कपि डाहि। स्वामि-कार्य्य शूरत्व निबाहि ॥ १५८ ॥
कुदि खसला सागर मे जाय। पुच्छल बाँधल आगि मिझाय ॥ १५९ ॥
स्वस्थ-चित्त भेला हनुमान। यहन पराक्रम कर के आन ॥ १६० ॥
सीता-आशिष-बल नहि जरल। लङ्कापतिक गर्व्व सभ हरल ॥ १६१ ॥
अग्नि वायु दुनु थिकथि इयार। जरल न सखि-सम्बन्ध विचार ॥ १६२ ॥
जनिक नाम जपि छुट तिन पाप। भवकृत-दोष-लेश नहि व्याप ॥ १६३ ॥

इस बन्दर ने सबों की यह दुर्दशा कर दी। १५० इस चोर दूत ने कड़ी सजा देनेवाले को ही मजा चखाया। १५१ हे मेघनाद, आपसे क्या कहें ? आप भी नासमझ ठहरे। १५२ आपके पिता ने पाप किया उसी से आप मौत के घाट उतरे। १५३ जो भगवद्भक्ति से विमुख रहेगा वह कहीं सुख पाएगा ? हे रावण, तुम्हारे ज्ञान को धिक्कार है। १५४ वानर दुर्दशा करके लंका को जला रहा है, इतने पर भी रावण का अभिमान टूटा नहीं है। १५५ इससे बढ़कर तौहीनी और क्या होगी ? अपमान तो मरण से भी बढ़कर है। १५६ इस बन्दर को कौन पकड़ेगा ? काल से कौन लड़ने जाये ? इस बन्दर के बराबर हममें कोई वीर नहीं है। १५७

हनुमान का सीता से विदा लेना, मधुवन उजाड़ना और राम के पास लौटना

हनुमान सारी लंकापुरी को जलाकर, स्वामी राम का काम पूरा कर, समुद्र में कूद पड़े और आग बुझाकर पूँछ समेटी। १५८-१५९ इसके बाद उन्हें चैन मिला। ऐसा पराक्रम और कौन कर सकता है ? १६० सीता के आशीर्वाद के प्रभाव से उनकी पूँछ न जली। उन्होंने लंकापति रावण का घमण्ड चूर कर दिया। १६१ अग्नि और वायु दोनों दोस्त हैं। इसलिए अग्नि ने हनुमान को अपने दोस्त का लड़का समझकर जलाया नहीं। १६२ जिनके नाम के जप से कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के पाप

तनि रघुबरक दूतबर जानि। प्राकृत अनल कयल नहि हानि ॥ १६४ ॥
हनुमानक डर केओ नहि बाज। जनु कपि पायोल रामक राज ॥ १६५ ॥
जनकनन्दिनी छलि जहि ठाम। घुरि पुन तनिकर कयल प्रणाम ॥ १६६ ॥
सानुज प्रभुवर अयता तखन। जननि ततय पहुँचब हम जखन ॥ १६७ ॥
तीनि प्रदक्षिण ई कहि देल। आगाँ ठाढ़ जोड़ि कर भेल ॥ १६८ ॥
जे किछु बनल कयल हम काज। दशकन्धर निर्ल्लज्ज कि बाज ॥ १६९ ॥
कहल जानकी शुनु कपि धीर। सकल-नियन्ता श्रीरघुबीर ॥ १७० ॥
तनिकर इच्छा होयत जेहन। कार्य्य-सिद्धि होयत शुभ तेहन ॥ १७१ ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

(श्री सीताक प्रति हनुमानक वचन तिरहुति)

ओरे से दिन बीतल। नयनक नोर तोर वसन तितल ॥ १७२ ॥
आबि एक गोट कपि रावण जितल। करमक लिखल कतहु नहि चल ॥ १७३ ॥
करु करु जानकी जी हृदय शीतल। लङ्कापुर जर छ प्रलय अनल ॥ १७४ ॥
सुखपाख सभ जन रावण हीसल। "चन्द्र" भन ठाढ़ जनु प्रतिमा लिखल ॥ १७५ ॥

॥ षट्पद छन्दः ॥

हम किङ्कर हनुमान, देवि चिन्ता चित परिहरु ॥ १७६ ॥

दूर होते हैं और सांसारिक दोष नाम मात्र नहीं लगता है, उन राम के श्रेष्ठ दूत समझकर पार्थिव अग्नि ने उनका कोई नुकसान नहीं किया। १६३-१६४ अब हनुमान के डर से कोई कुछ नहीं बोलता। मानों हनुमान ने ही राम का राज्य पा लिया हो। १६५ हनुमान लौटकर फिर वहाँ गये जहाँ जानकी थीं और फिर उन्हें प्रणाम किया। १६६ उन्होंने कहा— "हे माता, जब ही मैं राम के पास पहुंचूंगा, लक्ष्मण-सहित राम आ जाएंगे।" १६७ इतना कहकर उन्होंने तीन बार प्रदक्षिणा किया, हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए और बोले— १६८ "मुझसे जो कुछ बन पाया, मैंने किया। अब बेहया रावण क्या बोलेगा?" १६९ जानकी ने कहा— "हे धीर कपि, सुनिए। सब कुछ श्रीराम के हाथ में है। १७० उनकी जैसी इच्छा होगी, उसी के अनुसार काम बनेगा।" १७१ हनुमान ने कहा— "अहो, वे दुख के दिन अब बीत गये, जब आँखों के आंसू से आपके कपड़े भीगे रहते थे। १७२ एक कपि आया और उसने रावण को जीत लिया। भाग्य में जो लिखा रहता है वह टल नहीं सकता है। १७३ हे जानकी, अब अपने हृदय को शीतल कीजिए। प्रलयाग्नि में लंकापुरी जल रही है। १७४ सभी नगरवासियों का और रावण का भी हृदय दहल गया है। 'चन्द्र' कवि कहते हैं, वे सभी लिखी हुई प्रतिमा-जैसे हक्के-बक्के हैं। १७५ हे देवी, मैं हनुमान आपका सेवक हूं। आप चिन्ता छोड़िए। १७६ मेरे कन्धे पर चढ़कर इस समुद्र को पार

हमरा काँधा चढ़लि, घोर सागर काँ सन्तरु ॥ १७७ ॥
क्षण मे श्री रघुनाथ निकट कौशल पहुँचायब ॥ १७८ ॥
आज्ञा प्रभुसौं पाबि, फेरि लङ्का धुरि आयब ॥ १७९ ॥
प्रलय करब लङ्कापुरी, हमरा के रोकत सुभट ॥ १८० ॥
जौँ ई रुचि हो स्वामिनी, देल जाय आज्ञा प्रगट ॥ १८१ ॥
शरसौँ शोषि समुद्र सेतु, शर-निकरक करता ॥ १८२ ॥
सानुज से प्रभु आबि, रावणक प्राणे हरता ॥ १८३ ॥
सुग्रीवक सभ सैन्य, आबि लङ्का कै लूटै ॥ १८४ ॥
सुयश लोक मे होयत, अचल लङ्कागढ़ टूटै ॥ १८५ ॥
हम मारुत-सुत प्राण काँ, कोनहुँ यत्न राखब एतय ॥ १८६ ॥
कुशलक्षेम सौँ जाउ अहँ, श्री रघुनन्दन छथि जतय ॥ १८७ ॥

॥ दोबय ॥

कयल प्रणाम अनेक बार कपि, पर्व्वत पर चढ़ि गेला ॥ १८८ ॥
योजन तीश प्रमाण उच्च गिरि, समभूमिक सम भेला ॥ १८९ ॥
पर्व्वत वायु वेग सौँ महितल, दबि गेल तत्काले ॥ १९० ॥
सागर तरथि घोर धुनि करइत, धम्मक सोर पाताले ॥ १९१ ॥

कीजिए। १७७ मैं क्षण भर में कुशलपूर्वक राम के पास पहुँचा दूँगा। १७८ राम की आज्ञा पाकर लंका लौट आऊँगा। १७९ लंकापुरी में मैं प्रलय मचा दूँगा। कौन योद्धा मुझे रोक सकेगा? १८० यदि मेरा यह प्रस्ताव आप को पसन्द हो तो स्पष्ट आदेश दीजिए।" १८१ यह सुनकर सीता ने कहा—"राम बाण से समुद्र को सोख लेंगे और बाणों का पुल बना लेंगे। १८२ फिर उस पुल से लक्ष्मण-सहित आकर रावण का प्राण हरेंगे। १८३ सुग्रीव की सेना आकर लंका को लूटे। १८४ दुनिया में राम का यश फैले और लंका का मजबूत गढ़ ध्वस्त हो। १८५ हे पवनसुत हनुमान, मैं तब तक जैसे-तैसे अपना प्राण बचाये रखूँगी। १८६ आप कुशलपूर्वक वहाँ जाइए जहाँ श्रीराम हैं।" १८७ हनुमान ने बार-बार प्रणाम किया, फिर पर्वत पर चढ़ गये। १८८ पर्वत तीस योजन ऊँचा था, पर वह भूमि के समान तल में आ गया। १८९ ज्यों ही हनुमान उस पर चढ़े त्यों ही वह दबकर भूमितल के बराबर हो गया। १९० घोर ध्वनि करते हुए वे समुद्र तैरने लगे। उनकी आवाज पाताल तक पहुँच गयी। १९१ आवाज सुनकर अंगद आदि अनुमान करने लगे कि प्रसन्न हो हनुमान लौट रहे हैं। १९२ क्योंकि अमृत के समान कान में प्रिय लगनेवाला ऐसा शब्द और

॥ चौपाइ ॥

अङ्गदादि कयलनि अनुमान। आबइल छथि हर्षित हनुमान ॥ १९२ ॥
शब्द एहन करता के आन। श्रवण-सुखद वर अमृत समान ॥ १९३ ॥
एलहु सकल कपि बालि-किशोर। हर्षक शब्द कयल नहि थोर ॥ १९४ ॥
गिरि पर पहुँचि गेला हनुमान। मृतक देह जनु पलटल प्राण ॥ १९५ ॥
कार्य्यसिद्धि होइछ अनुमान। हर्षक सुख मुख-शोभा आन ॥ १९६ ॥
शस्त्रक क्षत कत देखिय अङ्ग। भेल समर जनि लगइछ रङ्ग ॥ १९७ ॥
महावीर कह शुनु प्रिय सर्व्व। प्रभु-प्रताप किछु हमर न गर्व्व ॥ १९८ ॥
देखि जनकजा विपिन उजारि। रक्षक जनकेँ रण मे मारि ॥ १९९ ॥
कि करब ततय पड़ल अड़ मारि। राम-प्रताप कतहु नहि हारि ॥ २०० ॥
दशकन्धर सौँ बाद विवाद। बचलहुँ श्री रघुनाथ-प्रसाद। २०१ ॥
अयलहुँ बहुत सुभट केँ मारि। रावण-पालित लङ्का जारि ॥ २०२ ॥
राम-कपीशक तट हम जयब। एखनहि ततहि स्वस्थ हम हयब ॥ २०३ ॥
वानर-वृन्द मिलल भरि अङ्क। जेहन परशमणि पाबथि रङ्क ॥ २०४ ॥
पूछ चूमि गुणगण सभ बाँच। हरषि हरषि हरिगण भल नाँच ॥ २०५ ॥

॥ सारवती छन्दः ॥

राम कहू पुन राम कहू, मारुत-नन्दन धन्य अहूँ ॥ २०६ ॥
आब चलू छथि नाथ जहाँ, की सुख लाभ अनन्त तहाँ ॥ २०७ ॥

कौन कर सकता है? १९३ यहाँ भी वालि के पुत्र अंगद और अन्य कपियों ने जोर-जोर से हर्ष-ध्वनि की। १९४ हनुमान पवत पर पहुँच गये। मरे हुए शरीर में मानों प्राण लौट आये। १९५ लगता है कार्य सिद्ध हो गया है क्योंकि अन्तर में हर्ष रहने पर चेहरे का रंग कुछ और हो जाता है। १९६ उनके शरीर पर अस्त्रों के कई घाव दिखायी देते हैं, इससे लगता है कि लड़ाई हुई थी। १९७ पहुँचकर महावीर ने कहा— "सभी प्रिय संवाद सुनिए। सब कुछ राम के प्रताप से हुआ। इसमें मेरा कुछ श्रेय नहीं है। १९८ जानकी को देखकर, अशोक वाटिका उजाड़कर और युद्ध में रक्षकों को मारकर मैं आ गया। १९९ क्या कहूँ, वहाँ बहुत लड़ाई हुई, पर राम के प्रताप से मेरी कहीं हार न हुई। २०० रावण से वाद-विवाद हो गया, उसमें भी राम के प्रताप से मैं बच गया। २०१ बहुत भारी-भारी योद्धाओं को मारकर और रावण द्वारा रक्षित लंकापुरी को जलाकर मैं आ गया। २०२ अभी मैं राम और सुग्रीव के पास जाऊँगा, तभी चैन की साँस लूँगा।" २०३ कपि लोग गले से गले लगाकर मिले, जैसे रंक को पारस मिल गया हो। २०४ हनुमान की पूँछ को चूमकर सभी उनका गुण-वर्णन करने लगे। वह वानरों का दल हर्ष के मारे नाचने लगा। २०५ वानरों ने कहा— "राम-राम

॥ सोरठा ॥

चलल वीर-समुदाय, महावीर अगुआय चल ॥ २०८ ॥
प्रस्रवणाचल जाय, कपिपति-मधुवन प्राप्त सभ ॥ २०९ ॥

॥ बोवय छन्द ॥

वानर सकल कहल अङ्गद काँ, अहँ छी भूपक बालक ॥ २१० ॥
आज्ञा देल जाय मधुवन-फल, खायब अपनें पालक ॥ २११ ॥
जनितहि छी सभ जन छी भुखले, फलमधु यहन न पायब ॥ २१२ ॥
खाय पीबि सन्तुष्ट चित्तसौं, प्रभुक निकट मे जायब ॥ २१३ ॥

॥ चौपाइ ॥

अङ्गद कहल सुखित फल खाउ। किछु नहि ककरो डरें डराउ ॥ २१४ ॥
कपि फल खाथि करथि मधुपान। रक्षक हटल पटल नहि मान ॥ २१५ ॥
दधिमुख-अनुशासन काँ पाय। देल रक्षक समकँ लाठआय ॥ २१६ ॥
अतिबल वानर भूखल घूरि। सभ रक्षक काँ देलनि चूरि ॥ २१७ ॥
दधिमुख-मुख भय गेल मलान। कुपित न बजला से मतिमान ॥ २१८ ॥
सभ रक्षक कँ संग लगाय। कपिपति काँ कहि देल देखाय ॥ २१९ ॥
तारा-तनय हठी हनुमान। जेहन आगि कें पवन दिबान ॥ २२० ॥
मधुवन फल भल खयलथ जाथि। किछु नहि अपनैक त्रास डराथि ॥ २२१ ॥

कहिए। हे पवनसुत, आप धन्य हैं. अब वहाँ चलिए जहाँ प्रभु राम हैं। वहाँ अपार आनन्द मिलेगा। २०६-२०७ सभी वीर गण चल पड़े। हनुमान आगे-आगे चले। २०८ सभी प्रस्रवण पर्वत पर चढ़कर सुग्रीव के निवास मधुवन पहुँचे। २०९ सभी कपियों ने अंगद से कहा— "आप राजकुमार हैं, आप इस मधुवन के संरक्षक हैं। आज्ञा हो तो हम इसके फल खाएं। २१०-२११ आप तो जानते ही हैं, हम लोग भूखे हैं। ऐसे मीठे फल और कहाँ पाएँगे? २१२ खा-पीकर प्रसन्न मन से प्रभु राम के पास जाएँगे। २१३ अंगद ने कहा— "मजे से फल खाइए। किसी का कोई डर नहीं। २१४ कपि लोग फल खाने और मधु पीने लगे। रक्षक लोगों की मनाही कुछ न सुनी। २१५ तब दधिमुख की आज्ञा पाकर रक्षक सभी बन्दरों पर लाठी चलाने लगे। २१६ बड़े बलवान कपि लोग, जो भूखे थे, लौटे और सभी रक्षकों को पीट दिया। २१७ यह हाल देखकर दधिमुख का मुँह अपना-सा हो गया। वह गुस्से से भर गया पर समझदार था, इसलिए कुछ नहीं बोला। २१८ वह सभी रक्षकों को साथ लेकर गया और सुग्रीव को दिखाकर कह दिया— २१९ "तारा के पुत्र अंगद और जिद्दी हनुमान, जैसे अग्नि के साथी वायु होते दोनों मिलकर मधुवन के फल खाते जा रहे हैं। आपका उन्हें कोई डर नहीं है। २२०-२२१ अब मैं बाग की रखवाली नहीं करूँगा।

हम नहि करब विपिन रखबारि। किछु बजितौं तौं खइतहुँ मारि ॥ २२२ ॥
मधुवन फल राखल छल ढेर। लूटि भेल ककरहु नहि टेर ॥ २२३ ॥
युवराजक हनुमान प्रधान। विपिन विनाशक कि कहब ज्ञान ॥ २२४ ॥
हम छी कपि-भूपालक माम। नहि घूरि जायब गञ्जन ठाम ॥ २२५ ॥
सत्य कहै छी शुनु कपिनाथ। मर्य्यादा रह अपनहिँ हाथ ॥ २२६ ॥
मधुवन फल मधु कयलक नाश। भूतक घर सन्ततिक निवास ॥ २२७ ॥
शुनल वचन कहलनि जे माम। कपिपति-मन नहि कोपक ठाम ॥ २२८ ॥
हर्षक नोर भरल दुहु आँखि। अयला अयला उठला भाखि ॥ २२९ ॥
सीता देखि आयल हनुमान। हमरा मन से निश्चय ज्ञान ॥ २३० ॥
से शुनि पुछलनि अपनहिं राम। मारि भेल अछि की कोन ठाम ॥ २३१ ॥
की कहयित छथि कपिपति माम। लेल कि जनकनन्दिनी नाम ॥ २३२ ॥
कहलनि गेल जे दक्षिण देश। आयल सभ जन रहित कलेश ॥ २३३ ॥
कार्य्यसिद्धि कयलनि हनुमान। मधुवन फल के चाखल आन ॥ २३४ ॥
दधिमुखकाँ कहलनि अहँ जाउ। सभ जनकाँ सत्वर लय आउ ॥ २३५ ॥
बहुत शीघ्र से वन मे जाय। अङ्गदादि काँ कहल बुझाय ॥ २३६ ॥
रामचन्द्र लक्ष्मण कपिराज। बड़ सन्तुष्ट भेल छथि आज ॥ २३७ ॥
शीघ्र बजौलनि करू प्रयाण। भाग्य ककर तुल अहँक समान ॥ २३८ ॥

अगर कुछ बोलता तो मार खाता। २२२ मधुवन में ढेरों फल सुरक्षित थे। लूट हो गयी। किसी को टेरा नहीं। २२३ युवराज अंगद के जो प्रधान साथी हनुमान हैं वे बाग उजाड़ने में बड़े माहिर हैं। २२४ मैं कपिराज का मामा हूँ। मैं उस अपमानजनक जगह पर फिर लौटकर नहीं जाऊँगा। २२५ हे कपिराज, मैं सत्य बताता हूँ, प्रतिष्ठा तो अपने बचाए ही बचती है। २२६ मधुवन में जो फल और मधु थे, सबों को नाश कर दिया। कहावत है, सन्तानों (बाल-बच्चों) का निवास भूत का घर हो जाता है।" २२७ मामा ने जो कहा वह सुग्रीव ने सुन लिया। उनके मन में तनिक भी क्रोध न हुआ। २२८ दोनों आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। बोल उठे— "आ गये! आ गये! २२९ मेरे मन में यह पक्का विश्वास हो गया कि हनुमान सीता को देखकर आ गये।" २३० यह सुनकर राम ने स्वयं पूछा— "क्या, कौन जगह लड़ाई हुई है? २३१ राजा सुग्रीव के मामा क्या कहते हैं? क्या आपने जानकी का नाम लिया है?" २३२ सुग्रीव ने कहा— "जो कपि दक्षिण देश गये थे वे सभी सकुशल लौटे। २३३ हनुमान कार्य सिद्ध करके आये हैं। उनके सिवा मधुवन का फल और कौन चखेगा।" २३४ फिर उन्होंने दधिमुख से कहा— "आप जाइए और सबों को तुरत ले आइए।" २३५ दधिमुख बड़ी तेजी से बाग गये और अंगद आदि को समझाकर कहा— २३६ "राम, लक्ष्मण और सुग्रीव आज बहुत प्रसन्न हैं। २३७ आप लोगों को जल्द बुलाया।

शुनितहिँ चलल सकल जन तुष्ट। प्रभुक समक्ष मुदित-मन पुष्ट॥ २३९॥
अङ्गद आदि सहित हनुमान। प्रणति कहल हरिभक्त-प्रधान॥ २४०॥
मारुत-नन्दन जोड़ल हाथ। कृपा-जलधि जय जय रघुनाथ॥ २४१॥
वैदेही हम देखल आँखि। कुशल प्रभुक विधिवत सभ भाखि॥२४२॥

॥ दोधय छन्दः॥

मलिनवसन एक-वेणी अतिदुख, निराहार दुबराइलि॥ २४३॥
राम राम रट सकरुण धुनि कय, शुद्ध समाधि समाइलि॥ २४४॥
अहह अशोकबाटिकाभ्यन्तर, वृक्ष-शिशुपा छाया॥ २४५॥
लङ्कापुरी राक्षसी-घेड़लि, छथि प्रभु अपनें क माया॥ २४६॥

॥ चौपाइ॥

कि करब यत्न फुरल नहि आन। कयल लखन रघुपति-गुण-गान॥ २४७॥
जैं विधि प्रभु लेलनि अवतार। हरण हेतु पृथिविक खल-भार॥ २४८॥
धनुषभङ्ग परिणय जे रीति। सकल शुनाओल मङ्गल गीति॥ २४९॥
अवला प्रभु जे विधि वनवास। सकल कथा से कयल प्रकाश॥ २५०॥
आश्रमशून्य जानि लङ्केश। देवी हरि अनलक एहि देश॥ २५१॥
कथा शुनथि वैदेही कान। मन-मन करथि बहुत अनुमान॥ २५२॥
मैत्री जैं विधि कयल कपीश। अपनाओल प्रभु अपना दीश॥ २५३॥

है। विदा होइए। आप लोगों का-सा किसका भाग्य है।" २३८ सुनते ही सभी प्रसन्न हो प्रभु राम के पास पहुँचे। २३९ अंगद आदि के साथ प्रमुख भक्त हनुमान ने प्रणाम किया। २४० फिर पवनसुत हनुमान हाथ जोड़कर बोले— "हे कृपासागर रघुनाथ, आपकी जय हो जय हो। २४१ मैंने अपनी आँखों से सीता को देखा और उन्हें प्रभु का कुशल यथाविधि सुनाया। २४२ हे प्रभु, आपकी माया-सीता लंकापुरी में अशोक वाटिका के भीतर शीशम के एक पेड़ की छाया में राक्षसियों से घिरी हुई हैं। वे मैले कपड़े पहने, एक मात्र चोटी लटकाये, तीव्र विरह-वेदना से खाना-पीना छोड़ दुबली हो गयी हैं। करुण आवाज़ से राम-राम रटती आपके ध्यान में डूबी रहती हैं, जैसे शुद्ध समाधि में लीन हों। २४३-२४६ क्या करता, जब कोई और उपाय नहीं सूझा तब मैं राम का गुणगान करने लगा— २४७ "किस प्रकार प्रभु ने धरती पर से पापियों का भार हरने के लिए अवतार लिया? २४८ किस प्रकार धनुष-भंग और विवाह किया? इत्यादि कल्याणकारी गाथा सुनायी। २४९ फिर वह सारी कथा सुनायी कि प्रभु को कैसे वनवास मिला? २५० और कैसे आश्रम को सूना देख लंकापति रावण सीता को यहाँ हर लाया। २५१ सीता यह कहानी सुनती, मन ही मन तरह-तरह का अनुमान करती। २५२ फिर आगे सुनाया कि कपिराज सुग्रीव से राम ने मैत्री की और उन्हें अपने पक्ष

अनुज-नारि-रत बालि विचारि। तनिकाँ रघुपति सत्वर मारि ॥ २५४ ॥
से सुग्रीव विदित कपिराज। सम्प्रति प्रभु छथि तनिक समाज ॥ २५५ ॥
तनिक सचिव हम श्रीपति-दास। सीता देखक बहुत प्रयास ॥ २५६ ॥
से कोन देश कोन से ठाम। दूत पठाओल जतय न राम ॥ २५७ ॥
आज फलित भेल हमर प्रयास। मानस-दुःख-राशि भेल नाश ॥ २५८ ॥
तकलनि कहलनि अमृत-समान। वचन शुनाओल के ई कान ॥ २५९ ॥
लोचन-गोचर से भय जाथु। कहथु कथा नहि एखन नुकाथु ॥ २६० ॥
दूरहि सौं हम कयल प्रणाम। अञ्जलि-बद्ध ठाढ़ तहिठाम ॥ २६१ ॥
सूक्ष्म-रूप वानर-आकार। हम प्रभु-चरित कहल विस्तार ॥ २६२ ॥
परिचय पुछलनि पुछलनि नाम। नर-वानर-सङ्गति कोन ठाम ॥ २६३ ॥
स्वामिनि कथा पुछल जय बेरि। हमहुँ शुनाओल से सभ फेरि ॥ २६४ ॥
प्रत्ययमूल मुद्रिका देल। तखन प्रतीति तनिक मन भेल ॥ २६५ ॥

॥ घनाक्षरी छन्द: ॥

गञ्जन ताड़न राक्षसोक सहै पड़इछ, एहन विपति पड़उन जनु ककरा ॥ २६६ ॥
हमर विपति देखितहिँ छीय अपनहुँ, सपनहुँ चैन नहि दिन राति मनकाँ॥ २६७ ॥

में कर लिया। २५३ अपने छोटे भाई की पत्नी में वालि को अनुरक्त देखकर राम ने उनका वध किया। २५४ सुग्रीव कपियों के राजा हुए। राम अभी उन्हीं के साथ हैं। २५५ मैं उनका मन्त्री और राम का सेवक हूँ। सीता को खोजने का बहुत प्रयास हुआ। २५६ ऐसा कौन देश और कौन स्थान है जहाँ राम ने खोज के लिए दूत नहीं भेजा ? २५७ आज मेरा प्रयास सफल हुआ। मन में जो अपार दुःख था वह दूर हुआ।" २५८ तब सीता ने मेरी ओर निहारा और बोलीं— "किसने मेरे कान में यह अमृत-सा वचन सुनाया है ? २५९ जो भी हों, वे मेरी नजर के सामने आएँ और हाल सुनाएँ; वे अब छुपें नहीं।" २६० यह सुनकर मैंने दूर से ही प्रणाम किया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। २६१ छोटे बन्दर के रूप में मैंने राम का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाया। २६२ सीता ने मेरा परिचय और नाम पूछा तथा जिज्ञासा की कि मानव और बन्दर के बीच कहाँ संगति हुई ? २६३ सीता ने जितनी बार जो-जो हाल पूछा, मैंने पुनः-पुनः उन्हें सुना दिया। २६४ पहचान का प्रमाण मुद्रिका दी। तब सीता के मन में प्रतीति हुई। २६५ तब सीता ने मुझसे कहा— "मुझे राक्षसियों की डाँट-फटकार और मार-पीट सहनी पड़ती है। ऐसी विपत्ति किसी और को न पड़े। २६६ मेरी विपत्ति तो आप स्वयं भी देखते ही हैं, दिन-रात स्वप्न में भी चित्त शान्त नहीं होता है। २६७ राजा रामचन्द्र से निवेदन कर दीजिएगा कि वे मेरा कोई अपराध

जनु मन राखथु हमर अपराध किछु, निवेदन कय देब धरणी-धरण काँ ।। २६८ ।।
सकरुण सजल-नयन देवी कहलनि, कहबनि अहाँ काँप विपत्ति-हरण काँ ।।२६९।।

।। चौपाइ ।।

सीता-वचन करुण-परिपूर । शुनि शुनि कि करब से नहि फूर ।। २७० ।।
हे प्रभु कहलहुँ बहुत बुझाय । तनि घन-नयन न नोर सुखाय ।। २७१ ।।
कर औँठी कङ्कण प्रभु-हाथ । तुअ वियोग भृश कृश रघुनाथ ।। २७२ ।।
जायब अभिज्ञान काँ पाय । देल जाय श्रीजानकि माय ।। २७३ ।।
चूड़ामणि देलनि कहि कानि । कत हम कयल बिरञ्चिक हानि ।। २७४ ।।
वासवसुत वायस वनवास । खल छल पहुँचल मन निस्त्रास ।। २७५ ।।
फल भल पौलनि स्वामि-समीप । भय भ्रमि अयला सातो दीप ।। २७६ ।।
अति सामर्थ्य प्रभुक सभ काल । के थिक दुर्णय खल दशभाल ।। २७७ ।।
प्रभु-पत्नी पाबिय दुख घोर । जलधर जितल अखण्डित नोर ।। २७८ ।।
देवर काँ हम वचन कठोर । कहल तकर फल भेल न थोर ।। २७९ ।।
अनुचित क्षमा करत के आन । कहब दयामय देवर-कान ।। २८० ।।
संकट सौँ लय जाथि छोड़ाय । प्रभुक अनुज से करथु उपाय ।। २८१ ।।

मन में न रखें।" २६८ आँसू भरी आँखों से करुण स्वर में देवी ने कहा—"यह संवाद बिपत्ति को हरण करनेवाले राम से सुनाइएगा।" २६९ सीता की करुणा भरी बात सुन-सुनकर मैं समझ न पाया कि क्या करूँ? २७० हे राम, मैंने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया, पर उनकी आँखों में आँसू सूखने का नाम नहीं लेते। २७१ तब मैंने कहा— "राम के हाथ की अँगूठी अब उनका कंगन हो गयी है क्योंकि आपके विरह में राम बहुत-बहुत दुबले हो गए हैं। २७२ आपसे कुछ पहचान लेकर जाऊँगा। हे माता जानकी, कोई पहचान दीजिए।" २७३ यह सुनकर सीता ने रोते हुए चूड़ामणि (टीका) उतार कर दिया और कहा— "मैंने ब्रह्मा (बिधाता) का क्या बिगाड़ा है? २७४ वनवास के समय इन्द्र का बेटा दुष्ट जयन्त निर्भीक हो कौए के रूप में आया था। २७५ राम से उसे अच्छी सीख मिली। डर के मारे सातों द्वीप भटक आया। २७६ सभी कालों में राम का सामर्थ्य अपरम्पार है। उनके आगे कुविचारी दुष्ट रावण क्या है। २७७ उन्हीं राम की पत्नी हो मैं घोर दुख पा रही हूँ। मेरे अविरल अश्रु-प्रवाह ने बादल को जीत लिया। २७८ मैंने देवर लक्ष्मण को कटु वचन कहा था, उसी का यह बुरा फल भोग रही हूँ। २७९ राम के छोटे भाई लक्ष्मण अब ऐसा उपाय करें ताकि राम मुझे इस संकट से उबार कर ले जाएं।" २८०-२८१ वहाँ मुझे न चलते बनता था, न रहते। आज्ञा के बिना

चलि नहि रहि नहि हो तहिठाम। आज्ञा बिनु कत करु सङ्ग्राम ॥ २८२ ॥
विकल स्वामिनी-दशा निहारि। चलयित कयलहुँ बिपिन उजारि ॥ २८३ ॥
भेल लड़ाइ तहाँ घमसान। बहुत बीर समरहिँ निःप्रान ॥ २८४ ॥
दशवदनक सुत अक्षय कुमार। हमरहि सौँ तनिकर संहार ॥ २८५ ॥
मेघनाद आयल खिसिआय। रण-निर्ज्जित कयलक अन्याय ॥ २८६ ॥
ब्रह्मास्त्रक से कयल प्रयोग। बाँधल गेलहुँ कयल दुख-भोग ॥ २८७ ॥
लङ्का मे सञ्चित घृत तेल। हमरा बालधि अर्प्पित भेल ॥ २८८ ॥
सन ओ बसन लपेटल पूछ। मन जरि जायत बानर तूछ ॥ २८९ ॥
प्रभु-प्रताप नहिं मानल हारि। सगर नगर घर देल हम जारि ॥ २९० ॥

॥ सोरठा ॥

कर्म्म करत के आन, सुरदुर्ल्लभ हनुमान सन ॥ २९१ ॥
हित के अहँक समान, सजल-नयन रघुनाथ कह ॥ २९२ ॥
अतिसाहसधर बीर, अबिरल भक्तिक भवन अहँ ॥ २९३ ॥
पिता अहाँक समीर, जगत्प्राण-सुत उचित थिक ॥ २९४ ॥

लड़ाई भी कैसे ठानूँ। २८२ मैं सीता की दशा देख खिन्न हो गया और चलते-चलते अशोक वाटिका को उजाड़ दिया। २८३ वहाँ घमासान लड़ाई हुई। बहुत से वीर लड़ाई में खेत आये। २८४ रावण का बेटा अक्षयकुमार मेरे ही हाथ से मारा गया। २८५ तब क्रुद्ध हो मेघनाद आया और उसने अन्यायपूर्वक मुझे परास्त किया। २८६ उसने ब्रह्मास्त्र चला दिया। मैं उसमें बाँधा गया और दुख-भोग करने लगा। २८७ तब लंका में घी और तेल जमा किया गया। मेरी पूँछ में सन और कपड़ा लपेटा गया और उसे घी तथा तेल से भिगोया गया और यह सोचकर उसमें आग लगा दी गई कि यह तुच्छ बन्दर जल मरेगा। २८८-२८९ राम के प्रताप से मैं हारा नहीं। मैंने नगर भर के सारे भवनों को जला दिया।" २९० सुनकर राम की आँखों में हर्ष के आँसू भर गये और वे बोले— "आपने जैसा काम किया है वह आपके सिवा कौन कर सकता है? देवताओं के लिए भी ऐसा करना कठिन है। आपके समान मेरा हितकारी और कौन है? २९१-२९२ आप परम साहसी और वीर हैं। आप अटूट भक्ति की खान हैं। २९३ आपके पिता वायु हैं जो 'जगत-प्राण' कहलाते हैं। ऐसे पिता के पुत्र के लिए यह उचित ही है। २९४ नाव उपलब्ध नहीं है,

॥ घनाक्षरी ॥

नाव अरि लाव नहि, उतरक दाव नहि, ॥ २९५ ॥
एक बुद्धि आब नहि सागर अपार मे ॥ २९६ ॥
वीर अरि छोट नहि, सङ्ग एक गोट नहि, ॥ २९७ ॥
लङ्का लघु कोट नहि विदित संसार मे ॥ २९८ ॥
दनुज अबल नहि, पुरी गम्य थल नहि, ॥ २९९ ॥
प्रदेश अमल्ल नहि युद्धक विचार मे ॥ ३०० ॥
अहाँक समान महि वीर हनुमान नहि, ॥ ३०१ ॥
सर्व्वस्वक दान नहि तूल उपकार मे ॥ ३०२ ॥

॥ इति श्रीचन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे सुन्दरकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ इति सुन्दरकाण्ड ॥

पार उतरने का कोई रास्ता नहीं मिलता, इस अपार सागर में कोई बुद्धि काम नहीं आ रही है। २९५-२९६ दुश्मन मामूली वीर नहीं है; साथ देने वाला कोई नहीं है; संसार में प्रसिद्ध है कि लंका कोई छोटा किला नहीं है। २९७-२९८ राक्षस कमज़ोर नही है। लंकापुरी जाना आसान नहीं है। युद्ध के मामले में लंका मल्लों (वीरों) से खाली नहीं है। २९९-३०० हे हनुमान, आपके समान धरती में और कोई वीर नहीं है, और सर्वस्व-दान भी परोपकार के तुल्य नहीं होता है। ३०१-३०२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में सुन्दरकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

॥ सुन्दरकाण्ड समाप्त ॥

लंकाकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ श्लोक अनुष्टुप् ॥

मुकुन्दम्माधवं वन्दे समुद्रे सेतुकर्त्तारम् ॥ १ ॥
शयानन्दर्भशय्यायां दशग्रीवस्य हन्तारम् ॥ २ ॥
उमेशं सर्व्वदं वन्दे महाकालं गुणातीतम् ॥ ३ ॥
गरैः काकोदरैः प्रेतैः पिशाचाद्यैश्च निर्भीतम् ॥ ४ ॥

॥ चौपाई ॥

लङ्का-चरित कहल हनुमान । सुनि प्रसन्न-मन श्रीभगवान ॥ ५ ॥
दोसर यहन करत के आन । दुष्कर कर्म्म कयल हनुमान ॥ ६ ॥
शत योजन जलनिधि विस्तार । खग समान उड़ि गेलहुँ पार ॥ ७ ॥
बड़ प्रताप लङ्का मे कयल । रावण आबि पकड़ि नहि धयल ॥ ८ ॥
सभ जन रक्षक मारुत-पूत । दोसर यहन हयत के दूत ॥ ९ ॥
मन मे होइछ समुद्रक ध्यान । कोन गति उतरब थिर नहि प्रान ॥ १० ॥

पहला अध्याय

राम की सेना की तैयारी और लंका-प्रस्थान

समुद्र में पुल बनानेवाले मुकुन्द माधव की मैं वन्दना करता हूँ, जो कुश की शय्या पर सोए हुए हैं और रावण को मारनेवाले हैं। १-२ मैं सभी कामनाएं पूरी करनेवाले, गुणों से परे, महाकालस्वरूप, पार्वतीपति शिव की वन्दना करता हूँ जो विषों, सर्पों, पिशाचों आदि से निर्भीक हैं। ३-४ हनुमान ने लंका का वृत्तान्त सुनाया। सुनकर भगवान राम प्रसन्नचित्त हुए। ५ उन्होंने हनुमान से कहा— 'हे हनुमान, आपने जो दुष्कर काम किया है, वैसा दूसरा कौन कर सकता है? ६ आप सौ योजन में फैले समुद्र को पक्षी की तरह उड़कर पार कर गये। ७ आपने लंका में भारी पराक्रम दिखाया। रावण आपको पकड़कर क़ैद नहीं कर सका। ८ हे पवनसुत हनुमान, आप सभी लोगों के रक्षक हुए। दूसरा ऐसा दूत कौन होगा? ९ मन में जब समुद्र का ध्यान करता हूं तो चित्त घबरा जाता है, इसे किस तरह पार करूँगा? १० कैसे सीता को देखूंगा?

कोन परि देखब सीता जाय। रिपुकाँ मारब समर चढ़ाय ॥ ११ ॥
सुनि सुग्रीव प्रभुक मुख-उक्ति। कहलनि साध्य हमर अछि युक्ति ॥ १२ ॥
जलनिधि नक्र-झषाकुल तरब। लङ्का-गर्व्व सर्व्व हम हरब ॥ १३ ॥
जिबइत नहि छाड़ब दशभाल। हे रघुपति हम अरिगण-काल ॥ १४ ॥
चिन्ता जनु करु श्री रघुनाथ। विजय मानि लिय अपनहि हाथ ॥ १५ ॥
बानर भालु बहुत रण-शूर। तनिकाँ लङ्का अछि कत दूर ॥ १६ ॥
तरब समुद्र तकर मति करिय। रावण मृतक बहुत मन धरिय ॥ १७ ॥
धरब धनुष सन्मुख के हयत। जौं सम्मुख दुख यम-घर जयत ॥ १८ ॥
प्रभु समर्थ हमरा बिश्वास। श्रीरघुनन्दन विश्व-निवास ॥ १९ ॥
आगि पानि मे जाय समाय। बानर रहत न रण पछुआय ॥ २० ॥

॥ सोरठा ॥

मन-हर्षित रघुवीर, जलधि तरब से विधि करब ॥ २१ ॥
कह रह धनुष सुतीर, हनूमान-साहित्य रह ॥ २२ ॥
कहु लङ्काक सरूप, मारुत-नन्दन केहन से ॥ २३ ॥
रावण भारी भूप, तत प्रवेश दुस्साध्य विधि ॥ २४ ॥
हाथ जोड़ि हनुमान, कहल जेहनि लङ्कापुरी ॥ २५ ॥
सानुकूल भगवान, मारब रावण सहित-बल ॥ २६ ॥

कैसे लड़ाई ठानकर शत्रुओं को मारूँगा ?" ११ सुग्रीव ने राम के मुँह से यह बात सुनकर कहा—"इसका उपाय मैं कर सकता हूँ। १२ मगर, मछली आदि से भरे समुद्र को मैं पार कर जाऊँगा। लंका के सारे घमंड को मिटा दूँगा। १३ रावण को जीते नहीं छोड़ूँगा। हे राम, मैं शत्रुओं का काल हूँ। १४ हे रघुनाथ, आप चिन्ता मत कीजिए। मान लीजिए कि विजय अपने ही हाथ में है। १५ बहुत सारे बन्दर और भालू लड़ाई में दक्ष हैं। उनके लिए लंका कितनी दूर है ? १६ अब यह संकल्प कीजिए कि हम लोग समुद्र पार करेंगे। मान लीजिए कि रावण मर चुका। १७ मैं धनुष धरूँगा तो कौन मेरे सामने आएगा ? यदि आएगा भी तो यमपुरी पहुँचकर दुःख झेलेगा। १८ हे रघुनन्दन, विश्वव्यापी ईश्वर, आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। १९ पानी में आग लग सकती है, पर रण में वानर पीछे नहीं हो सकते हैं।" २० यह सुनकर राम प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—"जैसा आपने कहा वैसा करूँगा। समुद्र पार करूँगा। २१ धनुष-बाण हाथ में और हनुमान साथ में रहेंगे। २२ हे पवनसुत हनुमान, बताइए, लंका किस रूप की, कैसी है ? २३ रावण तो बड़ा पराक्रमी राजा है, अतः उस लंका में प्रवेश करना आसान नहीं होगा।" २४ हनुमान ने हाथ जोड़कर लंका का वर्णन सुनाया और कहा—

॥ चौपाइ ॥

गिरि त्रिकूट पर लङ्का केहनि । दोसर अमरपुरी हो जेहनि ॥ २७ ॥
सकल कनकमय दृढ़ प्राकार । मणिमय खम्भ सकल घरद्वार ॥ २८ ॥
परिखा शोभित निर्म्मल पानि । सुधा-मधुरताधिक पड़ जानि ॥ २९ ॥
उपवन वापी बहुत तड़ाग । पुर शोभा अति सुन्दर लाग ॥ ३० ॥
कय हजार शोभित गजवाह । पश्चिम द्वार न रिपु निर्वाह ॥ ३१ ॥
बहुत पदाति अश्व असवार । कय अर्ब्बुद जन गणय न पार ॥ ३२ ॥
पूर्ब्ब द्वारमे तेहने सर्ब्ब । चिउटी ससर न तेहन पर्ब्ब ॥ ३३ ॥
बहुत रथी रह दक्षिण द्वार । मध्य कक्ष अतिशय विस्तार ॥ ३४ ॥
अगणित महामत्त गजराज । विविध यान रथि तनिक समाज ॥ ३५ ॥
बहुत शतघ्नी बड़ बड़ अस्त्र । सभकाँ परिहन लोहक वस्त्र ॥ ३६ ॥
केवल प्रभुक प्रताप सहाय । चतुर्थांश बल मारल जाय ॥ ३७ ॥
लङ्का जारल विपिन उजारि । अक्षयकुमार आदिकाँ मारि ॥ ३८ ॥
लघु वानरक हमर ई काज । परमेश्वर अपनै महराज ॥ ३९ ॥
प्रभु-कुदृष्टि मात्रहि जरि जयत । के अछि तेहन समर थिर हयत ॥ ४० ॥
सत्वर कयल जाय प्रस्थान । अरि-जन-दहन राम भगवान ॥ ४१ ॥

"आपकी कृपा रहेगी; मैं सेना-सहित रावण का संहार करूँगा । २५-२६ त्रिकूट पर्वत के ऊपर से लंका ऐसी लगती है जैसे दूसरी स्वर्गपुरी हो । २७ वह सारी सोने की बनी हुई है। उसकी चहारदीवारी बड़ी मज़बूत है। सारे भवनों और द्वारों के खम्भे रत्नों के हैं। २८ गढ़ के चारों ओर की खाई में निर्मल जल है जो अमृत से भी अधिक मीठा लगता है । २९ बहुत से उपवन हैं, वापियाँ हैं और पोखरे हैं। नगर की शोभा बड़ी रमणीय है । ३० कई हज़ार हाथी वाले सैनिक हैं। पश्चिम दरवाज़े पर शत्रु के प्रवेश की गुंजाइश नहीं है। ३१ भारी संख्या में पैदल सैनिक हैं। उनकी संख्या अरबों होगी, कौन गिन सकता है ? ३२ पूरब के दरवाज़े में भी सब ऐसा ही है, वहाँ चींटी भी रेंगकर नहीं जा सकती है। ३३ दक्षिण दरवाज़े पर बहुत से रथारूढ़ सैनिक हैं। बीच का हिस्सा काफी फैला हुआ है । ३४ अनगिनत मत्त हाथी हैं, तरह-तरह के रथ और रथारोहियों का दल है । ३५ बहुत सी तोपें और बड़े-बड़े अस्त्र हैं। सभी लोहे का ज़िरहबख्तर पहने हुए हैं। ३६ केवल आप के प्रताप से उसकी एक चौथाई सेना को मैंने मार दिया । ३७ वाटिका को उजाड़कर और अक्षयकुमार को मारकर लंका को जला दिया । ३८ मैंने छोटा सा वानर होकर जो ऐसा काम किया सो हे परमेश्वर, आपकी ही महिमा है । ३९ आपकी क्रुद्ध दृष्टि पड़ते ही शत्रु जल जाएगा। ऐसा कौन है जो लड़ाई में डटा रहेगा ? ४० हे राम,

॥ सोरठा ॥

तखन कहल भगवान, शुनु कपीश सेना-निकर ॥ ४२ ॥
तत्क्षण कर प्रस्थान, उत्तम विजय-मूहूर्त्त अछि ॥ ४३ ॥

॥ षट्पद ॥

हमहुँ चलब यहि काल, काल दशभलहिँ मारब ॥ ४४ ॥
मारब बड़ बड़ दनुज, भार भूमीक उतारब ॥ ४५ ॥
तारब हम मुनिलोक, विदेह-तनूजा आनब ॥ ४६ ॥
नव नव चरित पवित्र, अमरगण गाओत मानव ॥ ४७ ॥
दक्षिणाक्ष अधभाग मे, स्फुरण होइ अछि बड़ सगुन ॥ ४८ ॥
चलु चलु यूथप सज्जसौँ, नहि कर्त्तव्य विचार पुन ॥ ४९ ॥

॥ विजया छन्दः ॥

इत मर्कटाधीश कय अर्व्व अक्षौहिणी ॥ ५० ॥
क्षोणिधर क्षोणि-संक्षोभ सौँ काँप ॥ ५१ ॥
तहँ दिग्गजोद्दण्ड महि शुण्डसम्पात कर ॥ ५२ ॥
चण्डरव दाँत महि कष्ट सौँ थाप ॥ ५३ ॥
गुरु पन्नगाधीश-फण फाट मन आँट भय ॥ ५४ ॥
कूर्मगणराट सह पीठ सन्ताप ॥ ५५ ॥

आप शत्रुओं के लिए मानों आग हैं। शीघ्र प्रस्थान कीजिए।" ४१ तब भगवान राम ने कहा— "हे सुग्रीव, सुनिए। तुरत सेना प्रस्थान करें। यह विजय-यात्रा के लिए उत्तम मुहूर्त है। ४२-४३ इसी समय मैं भी विदा होऊँगा। कालस्वरूप रावण को मारूँगा। ४४ बड़े-बड़े राक्षसों का संहार करूँगा। धरती का भार उतारूँगा। ४५ मुनिजनों का त्राण करूँगा। जानकी को ले आऊँगा। ४६ मेरे नये-नये चरित्रों (करामातों) की गाथा देव लोग और मानव लोग गाएँगे। ४७ दाहिनी आँख का निचला हिस्सा फड़क रहा है जो शुभ शकुन है। ४८ हे सेनापतियो, सभी तयार हो-होकर चलिए। अब क्या करें, यह सोचना नहीं है।" ४९ इधर वानरराज सुग्रीव कई अरब अक्षौहिणी सेना ले चले तो धरती डगमगाने लगी और उससे पहाड़ काँपने लगे। ५०-५१ उधर प्रचंड-दिग्गज लोग तिलमिला कर धरती पर सूँड़ पटक रहे हैं, घोर ध्वनि से चीख रहे हैं और बड़े कष्ट से अपने दाँतों से धरती को थामे हुए हैं। ५२-५३ उधर अति भार से शेषनाग का फन फटता जा रहा है और मन व्याकुल हो गया है। महाकच्छप अपनी पीठ पर धरती का भार बड़ी पीड़ा के साथ सहते हैं। ५४-५५ भगवान राम लंकापुरी पर विजय प्राप्त करने के लिए हाथ

वर विजय प्रस्थान भगवान श्रीराम प्रभु ॥ ५६ ॥
कयल लङ्कापुरी हाथ शरचाप ॥ ५७ ॥

॥ भुजङ्गप्रयात छन्दः ॥

चलू सर्व्वयूथेश लङ्केश मारू ॥ ५८ ॥
चतुर्दिक्षु सेनाक रक्षा सम्भारू ॥ ५९ ॥
लड़ाका बड़ा वीर दैत्येश भारी ॥ ६० ॥
महावञ्चनाधार सर्व्वत्रचारी ॥ ६१ ॥
हनूमान-कन्धस्थ श्रीराम भेला ॥ ६२ ॥
तथा अङ्गद-स्कन्ध सौमित्रि गेला ॥ ६३ ॥
विदा भेलि सेना युगान्ता घनाली ॥ ६४ ॥
सुपीतारुणा श्यामला वानराली ॥ ६५ ॥
कहै वीर पक्षी जकाँ जाइ लङ्का ॥ ६६ ॥
करी जाय शीघ्रे पुरीकेँ सलङ्का ॥ ६७ ॥
दशग्रीव को आबि कैँ युद्ध कर्त्ता ॥ ६८ ॥
कहू कीश कीनाशकेँ आबि धर्त्ता ॥ ६९ ॥

॥ रोला छन्दः ॥

गज गवाक्ष ओ गवय मैन्द, द्विविदादि चलल नल ॥ ७० ॥
नील सुषेण ओ जाम्बवान, सेनाधिप भल भल ॥ ७१ ॥
मर्कट कर किलकार, अपर्क-आच्छादित धूरा ॥ ७२ ॥
श्रीरघुवीर-प्रताप, कीश रणकोविद पूरा ॥ ७३ ॥

में धनुष-बाण ले प्रयाण कर रहे हैं। ५६-५७ आवाज होती है— "चलिए, सभी सेनापतियो, चलिए। लंकापति रावण को मारिए। चारों ओर सेना की सुरक्षा कीजिए। ५८-५९ राक्षसराज रावण भारी लड़ाकू वीर है। वह भारी माया जाननेवाला है, उसकी सर्वत्र गति है।" ६०-६१ राम हनुमान के कन्धे पर चढ़े तथा लक्ष्मण अंगद के कन्धे पर सवार हुए। ६२-६३ प्रलयकाल की मेघ-माला के समान सेना चली जिसमें पीले, लाल और काले रंगों के वानरों की पंक्तियाँ थीं। ६४-६५ वीर सैनिक लोग कहते— "पक्षियों की भाँति उड़कर लंका चलें और हम जल्द ही उसे आतंकित कर दें। ६६-६७ रावण आकर हम लोगों से क्या लड़ेगा? कपिगण आकर राक्षसों को पकड़ेंगे। ६८-६९ इस सेना में गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान योग्य सेनापति थे। ७०-७१ कपिगण किलकार करते थे। धूल से सूरज छिप गया। ७२ राम की महिमा से कपिगण युद्ध में बड़े प्रवीण हैं। ७३ सेना के बीच में सुग्रीव-सहित राम

॥ सोरठा ॥

सैन्य मध्य श्रीराम, शोभित कपिपति सहित तहँ ॥ ७४ ॥
कतहु न हो विश्राम, अतिशय-रण-उत्साह मन ॥ ७५ ॥

॥ चौबैया छन्दः ॥

लाँघल सह्याचल, मलय सकल-दल, फल मधु करइत भक्षण ॥ ७६ ॥
तरुवर बड़ भारी, लेल उखारी, बानर समर-विचक्षण ॥ ७७ ॥
लाँगड़ि महि पटकय, तरु तरु लटकय, भूधर पर चढ़ि फानय ॥ ७८ ॥
बानर-मय धरणी, चल नभ-सरणी, मन किछु त्रास न मानय ॥ ७९ ॥

॥ कुण्डलिया ॥

किलकि-किलकि कौतुक करय, कपि-कुल अति बाचाल ॥ ८० ॥
रघुनन्दन आगाँ कहय, के थिक खल दशभाल ॥ ८१ ॥
के थिक खल दशभाल, व्याल पर हम छी खगपति ॥ ८२ ॥
सत्वर सन्तरु उदधि पार, हम करब दनुज-गति ॥ ८३ ॥
दनुज-मत्त-मातङ्ग उपर मर्कट-मृगपति सिल ॥ ८४ ॥
बानर अनल समान, दनुज-कुल कानन थिक किल ॥ ८५ ॥

॥ सोरठा ॥

प्रलय-घटा-आटोप, अटकलि सेना सिन्धु-तट ॥ ८६ ॥
बानर-मन बड़ कोप, की विलम्ब जल-निधि तरू ॥ ८७ ॥
कहल राम भगवान, की प्रयास सागर तरब ॥ ८८ ॥

विराजमान हैं। ७४ कहीं ढिलाई नहीं है, सबों के मन में युद्ध करने का उत्साह है। ७५ फल और मधु चखते हुए कपिदल सह्याद्रि को तथा मलय को लाँघते हुए निकल पड़ा। ७६ युद्ध में दक्ष कपि लोग बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़ हाथ में ले लेते; ७७ पूँछ को धरती पर पटकते; पेड़ों पर लटकते और छलाँग मार-मारकर पर्वतों पर चढ़ जाते। ७८ लगता था कि सारी धरती पर बन्दर ही बन्दर हैं। वे आकाश-मार्ग से चलते और मन में कुछ भी डर नहीं करते। ७९ परम वाचाल कपिगण किलकारी मार-मारकर तमाशा करते और ८० राम के आगे कहते— "अरे वह दुष्ट रावण क्या है? वह साँप है तो हम गरुड़ हैं। ८१-८२ जल्द समुद्र को पार करें। हम राक्षसों की दुर्दशा कर देंगे। ८३ राक्षस-रूपी मतवाले हाथी पर कपि-रूपी सिंह टूट पड़ेंगे। ८४ राक्षस लोग जंगल हैं तो कपिगण आग।" ८५ प्रलयकाल के बादल-जैसे सेना समुद्र के किनारे ठहरी। ८६ कपियों के मन में बड़ा क्रोध था। वे कहते, "अब विलम्ब क्या, समुद्र पार किया जाए।" ८७ राम ने कहा— "हम किस युक्ति से समुद्र पार करेंगे? ८८ नावें

नहि देखी जल-यान, थिक विचार कर्त्तव्य की ॥ ८९ ॥
कपिपति आज्ञा पाबि, सन्निवेश सेना रहलि ॥ ९० ॥
की भेल सत्वर आबि, अति-अगाध बाधा कयल ॥ ९१ ॥
कर प्रभु विविध विलाप, हा जानकि सति प्रेयसी ॥ ९२ ॥
सभ मन हो सन्ताप, प्रजा तथा राजा यथा ॥ ९३ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे
लङ्काकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण मन मन कर अनुमान । लङ्का डाहि गेल हनुमान ॥ १ ॥
बड़ आश्चर्य्य कहू की आन । अक्षयकुमारक लेलक प्राण ॥ २ ॥
सभा कयल निज लोक हकारि । रावण-वचन देथि के टारि ॥ ३ ॥
तखन सभ्य सौं रावण कहल । गुप्त न हमर कतहु कृति रहल ॥ ४ ॥
की कर्त्तव्य भेल बड़ घोल । बजबहि पड़य गरा पर ढोल ॥ ५ ॥

नहीं दिखाई देती हैं। अब यह विचारा जाए कि क्या करें ?" ८९ सुग्रीव की आज्ञा पाकर सेना पड़ाव में टिक गयी। ९० सैनिक बोलने लगे, तेजी से आकर क्या हुआ ? भारी, गहरा समुद्र हमारी यात्रा में बाधक हो गया। ९१ राम तरह-तरह से विलाप करने लगे— "हा जानकी, हा सती सीता, हा प्रेयसी।" ९२ सबका मन दुखी हो गया। कहावत है— 'यथा राजा तथा प्रजा'। ९३

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का
पहला अध्याय समाप्त ॥

दूसरा अध्याय

रावण का हितैषियों के साथ विचार-विमर्श; विभीषण की चेतावनी

रावण मन में सोचता है, बन्दर लंका जला गया। १ बड़े आश्चर्य की बात है; और क्या कहा जाए, अक्षयकुमार का भी अन्त कर दिया। २ फिर उसने अपने हितैषियों की एक सभा बैठायी। रावण के वचन को कौन टाल सकता है ? ३ तब रावण ने सभासदों से कहा— "मैंने जो कुछ किया वह कहीं किसी से छुपा न रहा। ४ अब क्या कर्तव्य है ? इस विषय में बड़ी बहस हुई। अब कुछ न कुछ करना ही होगा, क्योंकि कहावत है, जब ढोल गले में पड़ता है तो बजाना ही पड़ता है। ५ मैं तो केवल नाम का राजा हूँ।

हम राजा छी केवल नाम। सभकाँ सुख धन सम्पति धाम ॥ ६ ॥
एक-मत रहू कहू जे नीक। समर-कार्य्यं कत्तव्ये थीक ॥ ७ ॥
नर वानर सौँ मानब हारि। एहि सौँ बढ़ि दोसर की गारि ॥ ८ ॥
सामक समय रहल नहि आब। भावी आगाँ आगाँ धाब ॥ ९ ॥
कहु कहु निज मति जे भल रीति। श्रवण करक भल जनकाँ नीति ॥ १० ॥
राक्षस बहुत कहल कर जोड़ि। देल जाय चिन्ता चित छोड़ि ॥ ११ ॥
सुरपति-विजयी सुत धननाद। अनका जय मध कोन विवाद ॥ १२ ॥
पुष्पक लेल कुबेरक छीनि। की सम्पति नहि अपन अधीनि ॥ १३ ॥
वरुण बेचारे मानल हारि। आज्ञा केओ सकथि नहि टारि ॥ १४ ॥
मय भय सौँ देल कन्या आनि। भययुत की अपनैँ मन हानि ॥ १५ ॥
वानर आबि कयल उतपात। रण-वीरत्व देखु रहु कात ॥ १६ ॥
नर-वानर सौँ पृथिवी हीन। कय देब लागत थोड़े दीन ॥ १७ ॥
आज्ञा प्रभुसौँ पाओत जैह। कार्य्य-सिद्धि कय आनत सैह ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

बुद्धि-विहीन कुमन्त्रणा, कुम्भकर्ण शुनि कान ॥ १९ ॥
कहल दशानन सौँ उचित, नयकोविद निज ज्ञान ॥ २० ॥

यह सुख-सम्पत्ति, यह धन-धाम आप सबों का है, मैं तो केवल नाम का राजा हूँ। ६ आप सभी मेल से रहिए और जो अच्छा रास्ता हो वह बताइए। अब लड़ाई तो करनी ही है। ७ मनुष्य और बन्दर से हार मानना, इससे बढ़कर और तौहीनी क्या होगी ? ८ अब साम (समझाने) का अवसर न रहा। जो भवितव्य होता है वह आगे-आगे दौड़ता जाता है, खुद द्रुत गति से घटता जाता है। ९ जिनकी समझ में जो अच्छा रास्ता हो, वह बताएँ। नीतिशास्त्र कहता है कि भले लोगों का विचार सुनिए। १० बहुत-से राक्षसों ने हाथ जोड़कर कहा— "हे रावण, मन में चिन्ता मत कीजिए। ११ जब इन्द्र तक को जीतनेवाले मेघनाद-जैसे आपके पुत्र हैं तब दूसरे को जीतने में क्या सन्देह है ? १२ आपने कुबेर से पुष्पक विमान छीना है। कौन सम्पत्ति आपके हाथ में नहीं है। १३ आपसे बेचारे वरुण भी हार मान गये। आपकी आज्ञा कोई टाल नहीं सकता है। १४ मय नामक राक्षस ने डर से आपको अपनी बेटा दी। फिर आप डर से मन छोटा क्यों करते हैं ? १५ बन्दरों ने उत्पात किया। इसके लिए आप अलग रहते हुए रण में हम लोगों की वीरता देखिए। १६ हम लोग पृथ्वी को मनुष्य-हीन और बन्दर-हीन कर डालेंगे। इसमें हमें बहुत समय नहीं लगेगा। १७ जिसको आपकी आज्ञा होगी, वही यह काम पूरा कर देगा।" १८ नासमझी से भरी यह बुरी सलाह सुनकर नीतिकुशल कुम्भकर्ण ने अपनी समझ के अनुसार रावण से

॥ रूपमाला छन्द ॥

चित्त दय दशकण्ठ प्रभु शुनु, कयल अहँ नहि नीक ॥ २१ ॥
कर्म्म सीता-हरण-रूपक, आत्म-नाशक थीक ॥ २२ ॥
रामचन्द्र अनन्त ईश्वर, काल-शासन बाण ॥ २३ ॥
धनुष सौँ छुटि जखन लागत, बचत अहँक कि प्राण ॥ २४ ॥
लेल अछि अवतार लक्ष्मी, राक्षसान्तक काज ॥ २५ ॥
काल-काली राम-सीता, प्राप्त अहँक समाज ॥ २६ ॥
कयल यद्यपि बहुत अनुचित, स्वस्थ-मन रहु भूप ॥ २७ ॥
कहब करब सुमन्त्र जेहन, भक्ति-भाव अनूप ॥ २८ ॥

॥ रोला छन्द ॥

शुनि सकोप कह मेघनाद की नीति विचारब ॥ २९ ॥
प्रभु-आज्ञा काँ पाबि राम लक्ष्मण काँ मारब ॥ ३० ॥
सुग्रीवादिक सकल प्रबल मर्कट संहारब ॥ ३१ ॥
मेघनाद हम पुत्र पिता-आज्ञा नहि टारब ॥ ३२ ॥

॥ घनाक्षरी ॥

कहल विभीषण विचार-सार बार बार ॥ ३३ ॥
करु न विरोध बन्धु राम भगवान सौँ ॥ ३४ ॥

कहा। १९-२० "हे रावण ध्यान देकर मेरी बात सुनिए। आपने अच्छा नहीं किया। २१ आपने जो सीता का हरण किया, वह मानो स्वयं अपना नाश किया। २२ रामचन्द्र अन्तहीन ईश्वर हैं। जब काल (यम) की आज्ञा के समान उनका बाण धनुष से छूटेगा तब क्या आपके प्राण बच पायेंगे ? २३-२४ लक्ष्मी ने राक्षसों के संहार के लिए सीता के रूप में अवतार लिया है। २५ राम कालस्वरूप होकर और सीता कालीस्वरूपा होकर आपके पास प्राप्त हैं। २६ यद्यपि आपने बहुत से अनुचित काम किये, तथापि आप निश्चिन्त रहिये। २७ मुझे आपके प्रति अनुपम भक्तिभावना है। आप जो भी भला विचार देंगे, उसके अनुसार मैं चलूँगा।" २८ यह सुनकर मेघनाद ने क्रोधपूर्वक कहा— 'इसमें क्या नीति का विचार करना है। २९ जब ही प्रभु की आज्ञा मिल जाए, राम और लक्ष्मण को मार डालूँगा। ३० सुग्रीव आदि सभी बलवान बन्दरों का संहार कर दूँगा। मैं आपका पुत्र मेघनाद हूँ, आपकी आज्ञा कभी न टालूँगा।" ३१-३२ तब विभीषण ने आग्रहपूर्वक अपना ठोस विचार कहा— ३३ "भगवान राम से विरोध मत कीजिए। ३४ हनुमान आपकी नगरी लंका को

दशमाथ-नगर अनाथ जकाँ जारि गेल ।। ३५ ।।
कत गोट अपमान भेल हनुमान सौं ।। ३६ ।।
एक गोट छोट भाय कहल कथल जाय ।। ३७ ।।
खलक कहल न शुनल जाय कान सौं ।। ३८ ।।
बाली बलशालीक कुचालि पावि आबि पुर ।। ३९ ।।
दिव्य गति देल मारि उर एक बान सौं ।। ४० ।।

।। अनुष्टुप् छंद ।।

धरित्री-पुत्रिका देवी, त्वया नीताश्च लङ्कायाम् ।। ४१ ।।
हरेर्म्माया जगन्माता, हनूमत्प्राप्तलङ्कायाम् ।। ४२ ।।
त्वया सा जानकी देया, न हेया सन्मतिर्बन्धो ।। ४३ ।।
अजेया वानरी सेना, समायाता तटे सिन्धोः ।। ४४ ।।
महेशः किङ्करो यस्य, विभोः श्रीरामचन्द्रस्य ।। ४५ ।।
प्रयासस्त्वल्लये कस्स्याद्दयाद्रश्चेन्मनो न स्यात् ।। ४६ ।।

।। चौपाइ ।।

काल विवश रावण हतज्ञान । धर्म्मकथा नहि धारण कान ।। ४७ ।।
उलटे भाइक ऊपर कोप । असमय धर्म्म-ज्ञान हो लोप ।। ४८ ।।
औषध सन्निपाति नहि खाय । अनट सनट रटि यमघर जाय ।। ४९ ।।
क्रोध दशानन पुन बजलाह । मुनि भ्राता घर हमर छलाह ।। ५० ।।

अनाथ की तरह जला गया। उसने कितना बड़ा अपमान किया। ३५-३६ छोटे भाई की एक बात सुनिए। दुष्टों की कही बात पर कान मत दीजिए। ३७-३८ राम ने बलवान बालि को कुकर्मरत पाकर उसके नगर में घुसकर छाती में एक बाण मारा और उसी से वह स्वर्गवासी हो गया। ३९-४० धरती की बेटी सीता को, जो भगवान विष्णु की मायाशक्ति हैं, जगत की जननी हैं, उन्हें आप हरकर यहाँ लंका में ले आये हैं और उस लंका को हनुमान ने आतंकित कर दिया है। ४१-४२ वह जानकी आप राम को लौटा दीजिए। हे भाई, आप सुध-बुध मत खोइए। ४३ न हारनेवाली बन्दरों की सेना समुद्र के किनारे पहुँच चुकी है। ४४ जिन रामचन्द्र के शिव स्वयं सेवक हैं, आपका अन्त करने में उन्हें क्या प्रयास लगेगा, यदि उनके मन में दया न आ जाए।" ४५-४६ काल के दबाये रावण की सुध-बुध जाती रही। उसने उचित सलाह पर ध्यान नहीं दिया। ४७ उल्टे अपने भाई के ऊपर क्रुद्ध हो उठा। जब बुरे दिन आते हैं तब उचित-अनुचित का ज्ञान लुप्त हो जाता है। ४८ सन्निपात का रोगी दवा न खाता, बल्कि अंट-संट बक कर मौत पाता है। ४९ फिर गुस्से में आकर रावण बोला— "मेरे घर में भ्राता मुनि थे। ५० यह सगा भाई विभीषण मेरे वंश को बदनाम करने

धिक कुल-दूषण सोदर भाय । अनुचित कयल जे कहल बजाय ॥ ५१ ॥
बड़ कातर जिअ थर थर काँप । जनु अन्हार घर साँपहि साँप ॥ ५२ ॥
अरि-उत्कर्ष हमर लग बाज । धिक घोरि पिउलक सभटा लाज ॥ ५३ ॥
हमरे लालित पालित पुष्ट । बुझल विभीषण मानस दुष्ट ॥ ५४ ॥
हमर नगर सौँ खल हो कात । प्राण हरब मारब हम लात ॥ ५५ ॥
छल भल दया सहोदर जानि । कुक्कुर-न्याय चढ़ल अछि छानि ॥ ५६ ॥
शुनल विभीषण मन बड़ आनि । लङ्का त्यागि चलल नभ फानि ॥ ५७ ॥
मन्त्री चारि चतुर जन सङ्ग । बड़का भाइक बिगड़ल रङ्ग ॥ ५८ ॥
गगन गदाकर धर्म्म पुकार । सर्व्व-विनाश बढ़ल व्यवहार ॥ ५९ ॥
काली काल लेल अवतार । हरब होयत अवनिक अति भार ॥ ६० ॥
तनि प्रेरित अहँकाँ नहि ज्ञान । निकट काल होइछ अनुमान ॥ ६१ ॥
नर वानर कर दनुजक नाश । दशमुख त्यागू जीवन-आश ॥ ६२ ॥
व्यापक ब्रह्म शुनै छी जेह । विधि-प्रार्थित अवतरला सेह ॥ ६३ ॥
विस्मित-मन रावण बजलाह । सोदर-सर्प सदन अधलाह ॥ ६४ ॥

वाला है। इसे बुलाकर मैंने जो विचार पूछा, वह ठीक नहीं किया। ५१ इसका दिल बड़ा कायर है, थर-थर काँप रहा है। कहावत है कि बुज़दिल को अँधेरे में साँप ही साँप नज़र आते हैं। ५२ मेरे सामने ही यह शत्रु की बड़ाई करता है। छिः, इसने लाज को घोलकर पी लिया। ५३ मेरा ही पालन-पोषण पाकर यह तगड़ा बना है। अब समझ में आया कि यह मन से दुष्ट है। ५४ अरे दुर्जन, तुम मेरे नगर से बाहर चले जाओ। लात मारते-मारते जान ले लूँगा। ५५ सगा भाई समझकर मैं बड़ी दया करता रहा। यह तो कुत्ते की तरह मेरे ही सिर पर सवार हो गया है।" ५६ यह बात सुनकर विभीषण के मन में भारी आन हुई। वे लंका को छोड़ छलाँग मारकर आकाश में चल पड़े। ५७ समझदार मन्त्री भी उनके साथ चले। बड़े भाई रावण का रंग बदल गया। ५८ विभीषण हाथ में गदा लिये आकाश में धर्म की पुकार करने लगे— चिल्लाकर सदुपदेश देने लगे— "सबको विनाश करनेवाली चालें चली जा रही हैं। ५९ काली ने और काल ने अवतार ले लिया है। अब धरती का भार दूर होगा। ६० हे रावण, आपका इस तरह नासमझ होना उन्हीं की प्रेरणा का फल है। लगता है काल नज़दीक आ गया है। ६१ नर और वानर राक्षसों का नाश करेंगे। हे रावण, अब जीवन की आशा छोड़िए। ६२ जो व्यापक ब्रह्म कहलाते हैं, विधाता की प्रार्थना से उन्होंने ही अवतार लिया है।" ६३ चकित हो रावण ने कहा— "सगा भाई और साँप का घर में रहना अच्छा नहीं है। ६४ समय पर मेल न हुआ तो अब क्या होगा? नाम के अनुरूप

समय सन्धि नहि कौसल आब। भीरु विभीषण नाम स्वभाव॥ ६५॥
कहल विभीषण भावी भङ्ग। जनि साहस खस अनल पतङ्ग॥ ६६॥
अद्यावधि हठ बल अभिमान। बिसरल नहि होयता हनुमान॥ ६७॥
रहितहुँ सहि घर कहितहुँ नीति। पुन पुर नाचय नटी कुरीति॥ ६८॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः॥

॥ हरिपद छन्द॥

साम विभीषण जन कहइत छथि, दशमुख-सोदर-भाय॥ १॥
चरण-शरण मे राखू दयानिधि, अयलहुँ विकल पड़ाय॥ २॥
बहुत कहल हम नीति सभा मे, नहि मानल दशभाल॥ ३॥
मेघनाद रावण-सुत मन्त्री, रावण-मत वाचाल॥ ४॥
विश्वजननि वैदेही देवी, रामचन्द्र भगवान॥ ५॥
तनिक विरोध कुशल नहि ककरहु, ककरो बचत न प्राण॥ ६॥

ही विभीषण डरपोक है।" ६५ विभीषण ने कहा— "आगे बुरा हाल होने वाला है। जैसे साहस कर परवाने आग में जलते हैं। ६६ आज भी आप बल के अभिमान से हठ किये हुए हैं। अभी हनुमान आपको भूल नहीं गये होंगे। ६७ बर्दाश्त करके भी मैं घर में रहता और उचित सलाह देता रहता; पर इस नगर में तो फिर कुरीति का नंगा नाच हो रहा है। ६८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त॥

तीसरा अध्याय

विभीषण का राम की शरण में आना और अभिषेक पाना

विभीषण बोले— "मुझको लोग विभीषण कहते हैं। मैं रावण का सगा भाई हूँ। १ हे दयासागर, मुझे अपने चरणों की शरण में रखिए। मैं दुखी हो भागकर आया हूँ। २ रावण के दरबार में उन्हें नीतिसम्मत उपदेश दिया, लेकिन रावण ने नहीं माना। ३ रावण का बेटा मेघनाद, जो उनका सलाहकार है, उनके समान ही मुँहजोर है। ४ मैंने उन्हें समझाया, सीता जगज्जननी हैं और रामचन्द्र ईश्वर हैं. ५ उनका विरोध करने से किसी का कल्याण नहीं; किसी के भी प्राण न बचेंगे, ६ तो मेरी यह बात सुनते ही

वचन हमर शुनितहिँ तहँ रावण, हाथ धयल तरुआरि ॥ ७ ॥
भयसौँ झटिति तनिक लट त्यागल, सहि नहि सकलहुँ मारि ॥ ८ ॥
मन्त्री हमर चारि जन सङ्गी, हिनकर उत्तम कर्म्म ॥ ९ ॥
विदित सकल विभु परमेश्वर काँ, सकल शुभाशुभ मर्म्म ॥ १० ॥

॥ चौपाइ ॥

के थिक के थिक भय गेल सोर । पकड़ पकड़ लङ्कापुर-चोर ॥ ११ ॥
कह सुग्रीव राम सौँ जाय । हिनकर विश्वासे अन्याय ॥ १२ ॥
रावण काँ लघु सोदर भाय । शान्त वेष की कारण पाय ॥ १३ ॥
आयल छथि मन्त्री सङ्ग चारि । कपट करत देत अहँ काँ मारि ॥ १४ ॥
धरु धरु बाँधि कहय किछु आन । राक्षस-गोलक बोल प्रमाण ॥ १५ ॥
हिनका सभ जन मारि खसाउ । शुभ संग्रामक सगुन बनाउ ॥ १६ ॥
शुनु कपि-वीर कहल हँसि राम । के हमरा जीतत संग्राम ॥ १७ ॥
उत्पति पालन लय सामर्थ्य । हमरा ककरो भय से व्यर्थ ॥ १८ ॥
हम देत अभय लाउ अरिआति । बड़ सज्जन छथि राक्षस जाति ॥ १९ ॥
हम छी अहँक शरण कहि धयल । सकृत प्रपन्न अभय जन कयल ॥ २० ॥
कहितथि रावण अपनहुँ आय । काल-कवल सौँ लितहुँ बचाय ॥ २१ ॥

रावण ने तलवार उठा ली । ७ मैं डरकर उनके पास से भागा । उनकी मार बरदाश्त न कर सका । ८ उनके चार मन्त्री, जो मेरे साथ आए हुए हैं, बड़े अच्छे आचरण वाले हैं । ९ आप व्यापक परमेश्वर हैं, आपको सारी बात मालूम ही रहती और सारे हित और अहित का तत्त्व ज्ञात ही रहता है ।" १० शोर मच गया कि कौन है, कौन है । पकड़ो-पकड़ो । यह तो लंका का चोर है । ११ सुग्रीव ने राम के पास जाकर उनसे निवेदन किया— "इनका विश्वास करना अनुचित होगा । १२ क्या कारण है कि रावण का सगा छोटा भाई शान्तिपूर्ण वेष और भावना के साथ चार मन्त्रियों-सहित आया है । लगता है, यह कोई प्रपंच करेगा और आपको मार देगा ।" १३-१४ कुछ और लोगों ने कहा— "इसे पकड़कर बाँध रखिए । पक्का यह राक्षसों के दल का है । १५ सब कोई मिलकर इसे मार गिराएँ, आगे की लड़ाई का शुभ सगुन बनायें ।" १६ राम ने हँसकर कहा— "लड़ाई में मुझसे कौन जीतेगा ? १७ सृजन, पालन और संहार तीनों शक्तियाँ मुझे प्राप्त हैं; फिर मुझे किसी से डर है, यह समझना निरर्थक है । १८ मैं उसे अभय देता हूँ, अगवानी करके ले आइए । राक्षस होते हुए भी वे बड़े सज्जन हैं । १९ 'मैं आपकी शरण में आया हूँ' यह कहकर इन्होंने मेरी शरण गही है । जो एक बार भी शरणापन्न हो जाता है उसे मैं अभय दे देता हूँ । २० यदि रावण स्वयं भी आकर इस तरह कहता तो मैं उसे भी काल के गाल से उबार लेता । २१ हे मित्र, मेरी

ई व्रत दृढ़तर हमरा मित्र। शतदोषी मन रहै पवित्र॥ २२॥
सुनि सुग्रीव गूढ़तर भाव। प्रभु-वचनक नहि उत्तर आव॥ २३॥
बड़ आनन्द ततय पुन जाय। निकट विभीषण देल बजाय॥ २४॥
कपिपति सङ्ग प्रभुक शुभ वास। अचला अचल-भक्ति निस्त्रास॥ २५॥
नयन सजल साष्टाङ्ग प्रणाम। कयल विभीषण कहि निज नाम॥ २६॥
धनुर्बाणधर शोभाधाम। देखल सानुज प्रभु घनश्याम॥ २७॥
परमेश्वर करता प्रतिपाल। स्मित-सुन्दर मुख नयन विशाल॥ २८॥

॥ पादाकुल ॥

महाराज सीता-मनरञ्जन, चण्ड चाप धर भक्त-दयानिधि॥ २९॥
शान्त अनन्त राम परमेश्वर, सुग्रीवक प्रभु मित्र स्वयंविधि॥ ३०॥
जगदुत्पत्ति पालना लय कर, तीनि-लोक-गुरु आदि सनातन॥ ३१॥
स्वेच्छाचार चराचर-संस्थित, बाहर भीतर भीति-रहित-मन॥ ३२॥
व्यापक व्याप्य विश्वमे भासित, देव जगन्मय समटा अनुमत॥ ३३॥
अपनेंक मायासौँ जग मोहित, पुण्य पाप-बश सकल गतागत॥ ३४॥

यह पक्की प्रतिज्ञा है। सौ अपराध करने पर भी यदि मन पवित्र रहे तो वह पवित्र ही समझें।" २२ सुग्रीव ने राम की बात सुनी और उसका भीतरी भाव समझा; फिर उनको कोई जवाब नहीं सूझा, वे कायल हो गये। २३ फिर बड़ी प्रसन्नता से वहाँ गये और विभीषण को अपने पास बुला लिया। २४ दृढ़ भक्ति से भरे और त्रास से रहित विभीषण सुग्रीव के साथ राम के कल्याणकारी आवास में आये। २५ विभीषण की आँखें आनन्दाश्रु से भर गयीं। उन्होंने अपना नाम बताकर बार-बार साष्टांग प्रणाम किया। २६ उन्हें राम का दर्शन हुआ; धनुष-बाण धारण किये हैं, बादल-जैसा श्याम वर्ण है, शोभा अपार है, साथ में लक्ष्मण विराजमान हैं, २७ मुँह में मुसकान है और बड़ी-बड़ी आँखें हैं। उन्हें विश्वास हुआ कि प्रभु राम उनकी रक्षा करेंगे। २८ विभीषण राम की स्तुति करने लगे— 'हे महाराज राम, आप सीता के मन को आनन्दित करनेवाले हैं, प्रचण्ड धनुष धारण करते हैं, भक्तों के लिए दया के सागर हैं; २९ शान्त हैं और अनन्त हैं, परमेश्वर हैं, सुग्रीव के प्रभु और मित्र हैं, स्वयं विधाता हैं। ३० आप संसार की सृष्टि, पालन और संहार तीनों करनेवाले हैं, तीनों लोकों के मालिक हैं, आदि हैं, सनातन हैं। ३१ आप अपनी इच्छा के अनुसार जो कुछ चाहें, कर सकते हैं। आप चर और अचर हर वस्तु में बाहर और भीतर भी व्याप्त हैं। आपके मन में भय नहीं है। ३२ आप इस संसार में व्यापक और व्याप्य दोनों रूपों में प्रतीत होते हैं और आप जगत्स्वरूप भी हैं, क्योंकि आप में सभी विरोधों का समन्वय है। ३३ आप ही की माया से यह दुनिया मोहित (अज्ञान में पड़ी) है और पाप एवं पुण्य का फल

तावत्सत्य विश्व भासित हो, रजत भ्रान्ति शुक्ति मे जेहन ॥ ३५ ॥
अपनेक दया ज्ञानसौँ छूटय, प्रभु-पद-भक्त धन्य जे तेहन ॥ ३६ ॥

॥ चौपाइ ॥

अपनहि विधि हरि हर सुर सर्व्व । हरण करिय जग दुष्टक गर्व्व ॥ ३७ ॥
अणुसौँ अणु थूलहुँ सौँ थूल । जननी जनक सकल जन मूल ॥ ३८ ॥
सभसौँ रहित सहित सन काज । स्तुति हम कि करब होइछ लाज ॥ ३९ ॥
सकल अगोचर विभु परमेश । हरण कयल प्रभु हमर कलेश ॥ ४० ॥
हम राक्षस सत्कर्म-विहीन । अयलहुँ चरण-शरण हम दीन ॥ ४१ ॥
भासित माया-मानव-रूप । रावणारि जय जय विभु भूप ॥ ४२ ॥
जे छल सञ्चित हमरा पाप । से क्षय भेल सेवाक प्रताप ॥ ४३ ॥
ज्ञानयोग प्रभुसौँ हो प्राप्त । लङ्का दुर्नय-दशा समाप्त ॥ ४४ ॥

॥ हरिपद ॥

कपट-रहित स्तुति कयल विभीषण शुनि प्रभु हर्षित-चित्त ॥ ४५ ॥
माँगू वर वरदानी हम छी जे अभीष्ट से वृत्त । ४६ ॥

भोगने के लिए जीव फिर-फिर जन्म लेते और मरते हैं। ३४ मिथ्या होते हुए भी यह संसार सच्चा प्रतीत होता है; जिस तरह सीप चाँदी समझ लिया जाता है। ३५ आप ही की दया से ज्ञान होने पर जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा मिलता है। जो आपका ऐसा भक्त है, वह धन्य है। ३६ आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता हैं। आप संसार में दुष्टों के घमंड को दूर कीजिए। ३७ आप लघु से भी लघु और महान से भी महान हैं, सभी लोगों के मूल (जन्मदाता) माता और पिता हैं। ३८ आप सभी गुणों से रहित हैं, फिर भी सगुण-रूप में काम करते हैं। मैं क्या स्तुति करूँ, स्तुति करते लज्जा होती है। ३९ आप सकल साधारण लोगों की समझ के बाहर हैं, व्यापक परमेश्वर हैं। हे प्रभु, आपने मेरे कष्ट को दूर किया। ४० मैं राक्षस हूँ, सत्यकर्मों से हीन हूँ, दीन हूँ; और आपके चरणों की शरण में आया हुआ हूँ। ४१ आप माया के बल मानव-स्वरूप धारण किये दिखाई देते हैं। हे रावण के शत्रु, विश्वव्यापी राजा, आपकी जय हो। ४२ जो पाप मैंने बटोरा था, वह आपके चरण की सेवा के फलस्वरूप सारे का सारा दूर हो गया। ४३ अब आपसे मुझे ज्ञान मिले और लंका में फैली बुरी नीति का अन्त हो। ४४ इस प्रकार विभीषण ने सच्चे हृदय से स्तुति की और राम सुनकर प्रसन्न हुए और बोले— ४५ "वर माँगिए, मैं वर देने को तैयार हूँ। आपकी जो भी इच्छा हो, वह पूरी होगी।" ४६ विभीषण ने कहा— "हे प्रभु, मैं धन्य हुआ। मेरे

कहल विभीषण देव धन्य हम भेल सकल सिधि काज ॥ ४७ ॥
प्रभु-पद-कमल नयन भरि देखल सत्य मुक्त हम आज ॥ ४८ ॥

॥ दोधक छन्द ॥

कर्म्मक बन्ध-विनाश हेतु हम, भक्तिज्ञान कौ पाबी ॥ ४९ ॥
देल जाय परमार्थ ध्यान निज, अपनेंक दास कहाबी ॥ ५० ॥
विषय-सुखक बैराग्य बनल रहु, अपनेंक पद थिर भक्ती ॥ ५१ ॥
अपनें सौं प्रभु किछु दुर्ल्लभ नहि, परमेश्वर बरशक्ती ॥ ५२ ॥
बिमल बिराग हमर जन योगी, शान्त हृदयमे बासा ॥ ५३ ॥
सीतासहित हमर अछि निश्चय, करब ध्यान प्रत्याशा ॥ ५४ ॥

॥ चौपाइ ॥

दर्शन हमर लाभ फल एक। सम्प्रति अहँक राज्य-अभिषेक ॥ ५५ ॥
लङ्कापति बनि भोगू राज। यावत गगन सूर्य्य द्विजराज ॥ ५६ ॥
शुनु कपीश जल घट भरि लाउ। हिनकाँ लङ्का-नृपति बनाउ ॥ ५७ ॥
घट भरि आयल सागर-पानि। भेल अभिषेक लग्न शुभ जानि ॥ ५८ ॥
देखि देखि जन जोड़ल हाथ। प्रणत-आर्त्ति-हर जय रघुनाथ ॥ ५९ ॥
अरि रावणक सहोदर भाय। करुणाकर लेलनि अपनाय ॥ ६० ॥

सारे काम सिद्ध हो गये, क्योंकि ४७ आपके चरण-कमल को नजर भर देखा; आज मैं वास्तव में मुक्त हो गया। ४८ मेरी कामना है कि ऐसी भक्ति और ज्ञान दीजिए जिससे मेरे कर्मों के बन्धन टूट जायें। ४९ निःस्वार्थ भाव से आपका ध्यान होता रहे और मैं आपका दास कहाऊँ, ऐसा वर दीजिए। ५० संसार की वस्तुओं के भोग से विरक्ति रहे और आपके चरणों में स्थिर भक्ति रहे। ५१ आपसे कुछ भी पाना कठिन नहीं है; आप परम शक्तिमान परमेश्वर हैं।" ५२ यह सुनकर राम ने कहा— "जो हमारे सेवक योगी हैं उनके निर्मल, रागहीन, शान्त हृदय में सीता-सहित मेरा निवास रहता है। आप आशा करें कि आपको मेरा ध्यान होगा। ५३-५४ मेरे दर्शन पाने का एक फल आपको यह मिला कि मैं सम्प्रति आपका राज्याभिषेक करता हूँ। ५५ आप लंका के राजा बनकर तब तक राज्य को भोगते रहिए, जब तक आकाश में सूरज और चन्द्रमा रहें।" ५६ फिर राम ने सुग्रीव से कहा— "हे कपिराज सुग्रीव, सुनिए। घड़े में जल भर लाइए और इनको लंका का राजा बनाइए।" ५७ समुद्र से घड़ा भर पानी लाया गया। शुभ लग्न जानकर तुरन्त अभिषेक किया गया। ५८ यह देख-देखकर चकित हो सभी हाथ जोड़ बोले— "चरण पर गिरे लोगों की आर्ति दूर करनेवाले रामचन्द्र की जय हो! ५९ अपने शत्रु रावण के सगे भाई को भी परम दयालु राम ने अपना बना लिया।" ६० फिर विभीषण

मिलि कपीश कह लङ्कानाथ। सानुकूल प्रभु श्रीरघुनाथ॥ ६१॥
रावण-बध मे होउ सहाय। किङ्कर-कोटि मे मुख्य कहाय॥ ६२॥
कहल बिभीषण सुनु कपिनाथ। सभ गति मति रघुनन्दन-हाथ॥ ६३॥
किङ्कर-कर्म्म कुशल हम करब। अपने सबहिक सह सञ्चरब॥ ६४॥
रावण दूत पठाओल चार। पर नर वानर बुझि व्यवहार॥ ६५॥
रुसि गेला अछि हमरा भाय। लङ्का किदहु दैता उलटाय॥ ६६॥
शुक नामक चर गगन उचार। सुनु सुग्रीव समय अनुसार॥ ६७॥
राक्षसेन्द्र कहलनि संवाद। नहि किछु कपिपति संग विवाद॥ ६८॥
भ्राता सदृश बंश बड़ गोट। कर्म्म उठाओल अछि की छोट॥ ६९॥
बनचर-राजा बड़ गोट नाम। आयल छी छि: की एहिठाम॥ ७०॥
राजकुमारक हृत भेल नारि। अहुँक दोष नहि कएल विचारि॥ ७१॥
घुरि सेना लय सबनहिँ जाउ। स्वेच्छाचार अमृत फल खाउ॥ ७२॥
वानर जीतय लङ्का हाथ। तौँ अकाल ध्रुव उदधि सुखाय॥ ७३॥
बनचर-राजा ई नहि ज्ञान। वञ्चक-बचन गमायब प्रान॥ ७४॥

से मिलकर सुग्रीव ने कहा— "हे लंका के राजा, आप पर भगवान राम अनुकूल हैं। ६१ आप रावण के वध में हमारे सहायक होइए और राम के सेवकों का मुखिया बनिए।" ६२ विभीषण ने कहा— "सभी काम और सभी बुद्धि राम के हाथ में हैं। ६३ मैं तो दक्षतापूर्वक केवल दास का काम करूँगा और आप लोगों के साथ-साथ चलूँगा।" ६४

रावण के गुप्तचर का राम की छावनी में आना

उधर रावण ने अपने दुश्मन, मनुष्य और बन्दर का हाल जानने के लिए और यह सोचकर कि भाई विभीषण रूठकर गया है, वह कहीं लंका का अहित न करे एक गुप्तचर दूत को भेजा। ६५-६६ शुक नाम का गुप्तचर आसमान में उड़ा और वहाँ से बोला— "हे सुग्रीव, समय के अनुरूप मेरी बात सुनिये। ६७ राक्षसराज रावण ने संवाद कहा है कि उन्हें सुग्रीव के साथ कोई झगड़ा नहीं है। ६८ आप भाई के समान हैं प्रतिष्ठित कुल के हैं, फिर यह छोटा काम क्यों अपने ऊपर लिया ? ६९ आप बनचरों के राजा हैं। आपका बड़ा नाम है। फिर छि: यहाँ क्यों आये हैं ? ७० राजकुमार की स्त्री का हरण हुआ, इसमें आपका दोष नहीं। सोच-विचार कर किया। ७१ सेना ले करके अपने घर लौट जाइए। इच्छानुसार सुख भोगिए। ७२ यदि बन्दर लंका को जीते तो निश्चय अकाल में ही समुद्र सूखा जाए। ७३ हे बनचरों के राजा, आपकी समझ में नहीं आया है। आप इन ठगों की बात में पड़कर जान गँवाएँगे। ७४ जहाँ देवता लोग भी हार मानते हैं, वहाँ ये नर

लतय अमरपति मानथि हारि। ततय करत नर आनर मारि।। ७५।।
वानर शुनल उड़ल कय गोट। शुक काँ पटाक कयल लोटपोट।। ७६।।
रामचन्द्र काँ कहथि शुनाय। आहि दूत नहि मारल जाय।। ७७।।
वानर हटल जाय महराज। प्राण लेबय चाहै अछि आज।। ७८।।
अपनेँक देखयित ई बड़ शोच। दाढ़ी मोछ कठिन कपि नोच।। ७९।।
रामचन्द्र हँसि देल छोड़ाय। शुक लङ्का मुख चलल पड़ाय।। ८०।।
पुन आकाश जाय संभाष। कपिपति रहल कहक अभिलाष।। ८१।।
लङ्केश्वर सौँ कि कहब जाय। कहल जाय से कथा शुनाय।। ८२।।
कह सुग्रीव कहबगथ सेह। बालिक गति भेलनि अछि जेह।। ८३।।
राक्षस-नगर निन्द्य व्यवहार। आबि करब हम अरि-संहार।। ८४।।
रामाङ्गना हरल खल चोर। जयबह कतय अन्त दिन तोर।। ८५।।
आज्ञा देल तखन रघुनाथ। बाँधि धरु हिनका दुनु हाथ।। ८६।।
रावण-दूत नाम शार्दूल। छल देखयित राक्षस प्रतिकूल।। ८७।।
कपि मे कपि बनि गेल मिझड़ाय। चिन्हल भेल तौँ गेल पड़ाय।। ८८।।
रावण सौँ कहलक से जाय। अनइत छी नहि दूत छोड़ाय।। ८९।।

और वानर क्या लड़ाई करेंगे।'' ७५ कपियों ने यह बात सुनी। कई बन्दर छलाँग लगाकर आकाश गये और शुक नामक दूत को पकड़कर धर दबाया। ७६ शुक रामचन्द्र को सुनाकर चिल्ला उठा— "हाय! दूत को मारना नहीं चाहिए। ७७ हे महाराज, आप इन बन्दरों को रोकिये। ये तो आज मेरी जान लेना चाहते हैं। ७८ आपकी नज़र के सामने यह हाल हो, यह बड़े दुख की बात है। ये कपि लोग तो मेरी दाढ़ी-मूँछ नोच रहे हैं।'' ७९ रामचन्द्र ने हँसकर छुड़ा दिया। बेचारा शुक जान लेकर लंका की ओर भागा। ८० फिर आकाश में जाकर बोला— "हे कपिराज, एक बात कहने को रह गयी। ८१ मुझे यह समझाकर कहिए कि मैं जाकर लंकापति रावण से क्या कहूँगा?'' ८२ सुग्रीव ने कहा— "यही कहना कि जो हाल वालि का हुआ वही आपका होगा। ८३ राक्षसों के नगर लंका में बुरा आचरण होता है, इसलिए मैं वहाँ आकर दुश्मनों का अन्त करूँगा। ८४ अरे चोर, तुमने राम की स्त्री का हरण किया। तुम जाओगे कहाँ? अब तुम्हारी मौत के दिन आ गये।'' ८५ तब राम ने आज्ञा दी कि इसे दोनों हाथ बाँधकर रखिये। ८६ यह शार्दूल नाम का रावण का गुप्तचर था, जो राक्षस-जैसा तनिक भी नहीं लगता था। ८७ यह कपियों में कपि बनकर शामिल हो गया था। ज्यों ही पहचान में आया त्यों ही उड़ भागा। ८८ उसने रावण से जाकर कहा— "आप दूत को छुड़ाकर नहीं लाते। ८९ मैं तो आज भाग्य से

भाग्यहिँ बचि अयलहुँ हम आज। प्राण के अर्पय काल-समाज॥ ९०॥
अतिचिन्तातुर नृप लङ्केश। अन्तःपुर मे कयल प्रवेश॥ ९१॥

॥ रूपमाला॥

देखल वारिधि तखन रघुवर कोप लोचन लाल॥ ९२॥
देखु लक्ष्मण दुष्ट वारिधि कयल गर्ब विशाल॥ ९३॥
हमर दर्शन हेतु ई नहि अबै छथि एक बेरि॥ ९४॥
हमर की करताह वानर मनुज ई मन टेरि॥ ९५॥

॥ जलहरण छन्द॥

अथ जलनिधि-तट कहु निज निज मत॥ ९६॥
कौन गति जलनिधि विकट तरू॥ ९७॥
कमलनयन कुशशयन बहुत दिन॥ ९८॥
अनशन व्रत प्रभु कयल बरू॥ ९९॥
लछुमन कहल कुपित भय सुनु सुनु॥ १००॥
निज कर शर-वर-धनुष धरू॥ १०१॥
जड़ जलनिधि नहि कहल करथि हठ॥ १०२॥
हिनक सकल जलहरण करू॥ १०३॥

ही बचकर आया हूँ। काल के पास जाकर अपनी जान कौन गँवाएगा।" ९० यह सुनकर लंकापति रावण भारी चिन्ता में पड़ा और रनिवास चला गया। ९१

समुद्र का मान-मर्दन और सेतु बनाने की तैयारी

राम ने आँखें लाल किये क्रोधपूर्वक समुद्र की ओर देखा और बोले—९२ "हे लक्ष्मण, देखिए, इस दुष्ट समुद्र को बड़ा घमंड हो गया है। ९३ यह मेरे दर्शन के लिए एक बार भी नहीं आया है। ९४ यह मन ही मन समझता है कि बन्दर मेरा क्या कर लेंगे। ९५ अब समुद्र के किनारे सभी लोग अपनी-अपनी राय कहिए कि इस बीहड़ समुद्र का लंघन कैसे किया जाए?" ९६-९७ कमल-नयन राम ने बहुत दिनों तक कुश के आसन पर सोकर अनशन-व्रत किया, पर समुद्र को कोई परवाह नहीं। ९८-९९ तब लक्ष्मण क्रुद्ध हो बोले— "सुनिए। अब आप धनुष-बाण अपने हाथ में लीजिए। १००-१०१ यह जड़ (चैतन्यहीन और मूर्ख) समुद्र हठी है, हमारी बात यों सुननेवाला नहीं है। १०२ अब तीर चलाकर इसके सारे पानी को सोख लीजिए।" १०३ राम ने कहा— "सचमुच में यह समुद्र भारी मूर्ख है। इसने

॥ मिथिला-संगीतानुसारेण केदार छन्दः ॥

कहल प्रभु जलनिधि महाजड़, कयल अति अपमान ॥ १०४ ॥
खनल हमरे पूर्व्व पुरुष, अहित हमरहि मान ॥ १०५ ॥
तुरत जल शोषण करब धय, बाण अनल-समान ॥ १०६ ॥
प्रीति भय बिनु कलहु प्रायः, शुनल अछि नहि कान ॥ १०७ ॥
कालकाल कराल शासन, धयल कर शर चाप ॥ १०८ ॥
शैल कानन सहित वसुधा-वलय भय-भर काँप ॥ १०९ ॥
एक योजन कूल त्यागल, जलधि मन सन्ताप ॥ ११० ॥
वारिचर-गण विकल-तर मन, करथि विकल विलाप ॥ १११ ॥

॥ चौपाइ ॥

डरसौं सागर थर थर काँप। देखल रामक प्रबल प्रताप ॥ ११२ ॥
दिव्यरूप धय मणि लय हाथ। गेला जतय राम रघुनाथ ॥ ११३ ॥
पदपङ्कज पर मणि देल राखि। त्राहि त्राहि पुन उठला भाखि ॥ ११४ ॥
हम बड़ जड़ खल-निकट निवास। एत दिन हम छल छी निस्त्रास ॥ ११५ ॥
समुचित हमरा होयहि बूझ। परमेश्वर जनिकाँ नहि सूझ ॥ ११६ ॥
नाश करू की राखू नाथ। अयलहुँ शरण करण प्रभु हाथ ॥ ११७ ॥
पुन नहि एहन करब हम दोष। परमेश्वर मन परिहरु रोष ॥ ११८ ॥

हमारा बड़ा अपमान किया। १०४ हमारे पूर्वज सगर ने ही इसे खोदकर बनाया है और यह हमें ही शत्रु समझता है। १०५ मैं आग के समान बाण चलाकर इसके सारे जल को सोख लूँगा। १०६ भय के बिना प्रीति होती, यह कहीं नहीं सुना गया है।" १०७ ऐसा कहकर काल के भी काल और कठोर शासन वाले राम ने धनुष-बाण हाथ में लिया। १०८ पहाड़ों और जंगलों-सहित सारी धरती डर से काँपने लगी। १०९ समुद्र को इतना सन्ताप हुआ कि किनारे को एक योजन दूर छोड़ चला। ११० जल-जन्तुओं का मन व्याकुल हो उठा और वे चीखने लगे। १११ राम का भारी प्रताप देखकर समुद्र डर से थर्राने लगा। ११२ वह दिव्य स्वरूप धारण करके हाथ में मणि का उपहार लिये वहाँ गया जहाँ राम थे। ११३ राम के पाँवों पर मणि रख दी और बोला, "बचाइए, मुझे बचाइए। ११४ मैं भारी जड़ हूँ। दुष्टों के बीच रहता हूँ। इतने दिनों तक मुझे घमंड था कि मुझे किसी से डर नहीं है। ११५ उचित दंड मुझे मिलना ही चाहिए, जिसे परमेश्वर नहीं दिखाई देते। ११६ अब आप चाहें तो मार दें या बचा लें। मैं शरण में आ गया। कुछ भी करना अब आपके हाथ में है। ११७ फिर मैं ऐसा अपराध कभी न करूँगा। हे ईश्वर, आप मन से क्रोध हटा लें।" ११८ इस प्रकार समुद्र की बात सुनकर

सागर-विनय शुनल प्रभु कान। मन प्रसन्न भेला भगवान ॥ ११९ ॥
अभय देल शरणागत जानि। जलधि तोहर नहि होयत हानि ॥ १२० ॥
हम जे चाप चढ़ाओल बाण। तकर कहू की नहि हो आन ॥ १२१ ॥
उत्तर देश नाम गिरि कुल्य। पापी बसइछ बहुत अतुल्य ॥ १२२ ॥
ततहि तीर प्रभु फेकल जाय। जें आभीर जरय समुदाय ॥ १२३ ॥
बाण-निपात ततय भेल आय। जारि घूरि तूणीर समाय ॥ १२४ ॥
पुन सागर कहलनि शुनु राम। सहज उपाय सङ्ग एहिठाम ॥ १२५ ॥
बहुत परिश्रम हो की हेतु। नल भल करता प्रस्तर-सेतु ॥ १२६ ॥
मर्य्यादा प्रभु राखू आज। अनायास मे होइछ काज ॥ १२७ ॥
कय प्रणाम गेल सागर पैशि। तखन विचार एतय भेल बैशि ॥ १२८ ॥
कपिपति लक्ष्मणयुत श्रीराम। नल बजबाय लेल एहिठाम ॥ १२९ ॥
शुनु नल शत योजन बन्ह सेतु। अगम जलधि लङ्का-जय हेतु ॥ १३० ॥
प्रभु भल कहल कहल नल वीर। चलल दल संगी प्रबल समीर ॥ १३१ ॥
कत अर्व्वुद वानर बलवान। लाबथि गिरिवर तोड़ि पखान ॥ १३२ ॥
नल काँ सभ छल पढ़ले पाठ। ढेर भेल पाथर ओ काठ ॥ १३३ ॥

भगवान राम हृदय से प्रसन्न हुए। ११९ शरण में आये जानकर समुद्र को अभय दिया— "हे समुद्र, आपका कोई अहित न होगा। १२० पर मैंने धनुष पर जो बाण चढ़ा दिया उसका अब दूसरा चारा क्या होगा सो बताइए ?" १२१ समुद्र ने कहा— "उत्तर में गिरिकुल्य नाम का एक देश है, जहाँ भारी पापी लोग बसते हैं। १२२ हे प्रभु, इस बाण को वहीं चलाइए जिससे वहाँ के निवासी आभीर लोग जल मरें।" १२३ राम ने बाण छोड़ा और वह वहाँ जाकर गिरा, आभीरों को जलाकर लौटा और पुनः राम के तरकस में घुस गया। १२४ फिर समुद्र ने कहा— "हे राम, सुनिए। यहाँ पार जाने का एक सहज उपाय है। १२५ बहुत परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। नल पत्थरों का शानदार पुल बना देंगे। १२६ हे प्रभु ! मेरी प्रतिष्ठा बचाइए। आपका काम आसानी से हो जाता है"। १२७ इतना कहकर समुद्र प्रणाम करके जलराशि में लीन हो गया। तब यहाँ बैठकर विचार-विमर्श किया गया। १२८ सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ राम बैठे और नल को वहाँ बुला लिया। १२९ राम ने कहा— "हे नल, सुनिए। लंका-विजय करने के लिए अगाध समुद्र में सौ योजन का पुल बनाया जाए।" १३० नल ने उत्तर दिया— "हे प्रभु ! आपने ठीक कहा।" इतना कहकर वे साथियों के दल के साथ वायु-जैसे प्रबल वेग से चल पड़े। १३१ अरबों वीर वानर पहाड़ तोड़-तोड़कर पत्थर लाने लगे। १३२ नल को सारा पाठ पढ़ा ही था। पत्थर और लकड़ी का अम्बार लग गया। १३३ पुल के निर्माण में कौन

अप्रधान के सतय प्रधान। राम-काज मे सकल समान ॥ १३४ ॥
वर प्रसाद नल लेलन्हि काँधि। शत योजनक बाँध लेब बाँधि ॥ १३५ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ सवैया छन्दः ॥

बाँधल भेल बाँध बारिधि मे, दशवदनक विजयक मन काज ॥ १ ॥
शिवरामेश्वर तत संस्थापन, कयल सविधि प्रभु श्रीरघुराज ॥ २ ॥
रामेश्वरक करथि जे दर्शन, सेतुबन्ध काँ करथि प्रणाम ॥ ३ ॥
ब्रह्मघात-आदिक पातक सौँ, छूटथि से कहलनि श्रीराम ॥ ४ ॥
वाराणसी जाथ गङ्गाजल, लय रामेश्वर कर अभिषेक ॥ ५ ॥
सेतुबन्ध-सागर कर मज्जन, ब्रह्म होथि सम्प्राप्त-विवेक ॥ ६ ॥
महिमा हिनक अनन्त कहब कत, सकल मनोरथ-दायक रुद्र ॥ ७ ॥
शङ्कर-ध्यान निरन्तर जे कर, कि करत तनिका पातक क्षुद्र ॥ ८ ॥

प्रधान था और कौन उपप्रधान, यह कहा नहीं जा सकता ? राम के काम में सभी बराबर थे। १३४ उन्हें जो वर मिला था, उसके बदौलत उन्होंने यह भार ले लिया कि सौ योजन का पुल बाँध लेंगे। १३५

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय

रामेश्वर शिव की स्थापना; पुल का निर्माण; गुप्तचर शुक के मुँह से राम की सेना का वर्णन

रावण को जीतने के उद्देश्य से समुद्र में बाँध बनाया गया। १ वहाँ राम ने रामेश्वर शिव की विधिपूर्वक स्थापना की। २ राम ने कहा—"जो रामेश्वर का दर्शन करेंगे और सेतुबन्ध को प्रणाम करेंगे, वे ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त होंगे। ३-४ जो वाराणसी जाकर, वहाँ से गंगा-जल लाकर रामेश्वर शिव का अभिषेक करेंगे और सेतुबन्ध के पास समुद्र में स्नान करेंगे, वे ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म में लीन होंगे। ५-६ रामेश्वर की महिमा का अन्त नहीं है, कितना वर्णन किया जाए। ये रुद्र सभी मनोकामना पूरी करनेवाले हैं। ७ जो सतत शंकर का ध्यान करते रहेंगे, उन्हें छोटे-छोटे पाप क्या करेंगे ?" ८ कपिवर नल ने एक दिन में चौदह योजन पुल बना लिया, दूसरे

॥ षट्पद छन्द ॥

एक दिन मे लेल सेतु बाँधि, चौदह योजन धरि ॥ ९ ॥
योजन बीस प्रमाण, दुसर दिन बाँधल नल हरि ॥ १० ॥
एकइस योजन सेतु, दिवस तेसर से कयलनि ॥ ११ ॥
बाइस योजन सेतु, चारि वासर निर्म्मयलनि ॥ १२ ॥
योजन तेंस प्रमाण पुन, पाँचम दिन बाँधल अचल ॥ १३ ॥
बाँधल बाँधल जलधिकाँ, जय रघुनन्दन धुनि मचल ॥ १४ ॥
थल सन नल-कृत सेतु, चढ़ल भल चलल सकल दल ॥ १५ ॥
डगमग मेदिनि डोल, कोल कच्छप अहि हलचल ॥ १६ ॥
चल भेल बड़बड़ अचल, प्रबल कपि मन घन कड़कल ॥ १७ ॥
कल कल कय कपि उड़ल, व्योम रवि-वाजी भड़कल ॥ १८ ॥
विकल-लोक लङ्कापुरी, तङ्काकुल डङ्का सुनल ॥ १९ ॥
नल बाँधल अछि उदधिकाँ, बानर-दल अबइछ अनल ॥ २० ॥

॥ रूपमाला ॥

पवन-नन्दन तथा अङ्गद काँध चढ़ि दुहु भाय ॥ २१ ॥
देखल लङ्का दुर्ग वेलाचल-शिखर पर जाय ॥ २२ ॥
ध्वज प्रसाद सुवर्ण तोरण स्वर्णमय प्राकार ॥ २३ ॥
किला परिखा ओ शतघ्नी बनल सभ हथियार ॥ २४ ॥

दिन उन्होंने बीस योजन बाँधा। तीसरे दिन इक्कीस योजन बनाया। चौथे दिन बाईस योजन बनाया। ९-१२ पाँचवें दिन तेईस योजन बाँधा गया। १३ इस प्रकार बाँध पूरा होते ही शोर मच गया— समुद्र बँध गया, बँध गया, रघुनन्दन राम का जय! १४ जब नल ने स्थल-जैसा सेतु बना दिया तब उससे होकर सारी सेना चल पड़ी। १५ धरती डगमग डोलने लगी। शूकर, कच्छप और शेषनाग घबरा गये। १६ बड़े-बड़े अचल (पर्वत) चल हो गये। कपियों के मन-रूपी बादल कड़कने लगे। १७ कपिगण किलकारी भरते हुए आकाश में उड़ चले। सूरज के घोड़े हड़कने लगे। १८ लंकापुरी के निवासी रणभेरी की आवाज सुनते ही आतंकित और विकल हो उठे। १९ उन्होंने सुना, नल ने समुद्र को बाँध दिया, और वानरी सेना आग की लपट के समान बढ़ती आ रही है। २० राम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओं ने क्रमशः हनुमान और अंगद के कन्धों पर सवार हो किनारे के पर्वत की चोटी पर चढ़ लंका-दुर्ग को देखा। २१-२२ वहाँ सोने की पताकाएँ थीं, सोने के महल और द्वार-भवन थे तथा सोने की चहारदीवारी थी। २३ गढ़ के चारों ओर खाई थी और तोप आदि सभी हथियार लगे थे। २४ वहाँ एक बड़ा-सा अपूर्व भवन था।

भवन एक विचित्र विस्तृत स्थित जतय दशभाल ॥ २५ ॥
दश किरीट अपूर्व्व चमकय दशो मौलि विशाल ॥ २६ ॥
काल-मेघ समान कान्तिक कज्जलाद्रि समान ॥ २७ ॥
रत्नदण्ड सितात पत्रें लसित अति अभिमान ॥ २८ ॥
सचिव सह लङ्केश करइत छला जतय विचार ॥ २९ ॥
राम देल छोड़ाय शुक काँ गेला निज दरबार ॥ ३० ॥
पुछल रावण कहू शुक बुध की ततय वृत्तान्त ॥ ३१ ॥
रङ्ग अदित सन, कहू की कहल सीताकान्त ॥ ३२ ॥

॥ चौपाइ ॥

दशमुख-वचन शुनल शुक कान । कहलनि ईश्वर राखल प्राण ॥ ३३ ॥
गेलहुँ सागर-उत्तर तीर । संस्थित जत सानुज रघुवीर ॥ ३४ ॥
शोभित पुरुष मुख्यतम चारि । मान न कालहु सौं से हारि ॥ ३५ ॥
सानुज राम नवल लङ्केश । कपिनायक देखल ओहि देश ॥ ३६ ॥
हम गगनस्थ कहल संवाद । कपि उड़ि धयलक कय हरिनाद ॥ ३७ ॥
कपि-कृत कत कहु की उतपात । सहल बहुत हम मूका लात ॥ ३८ ॥
बाँधल छलहुँ मनहुँ बड़ शोच । दाँत काट केओ नख सौं नोच ॥ ३९ ॥

दशमुख रावण विराजमान था । २५ उसके दसों मस्तक पर दसों किरीटों से दसों दिशाओं में अद्भुत चमक फैल रही थी । २६ रावण काले बादल के समान या कालिख के पहाड़ के समान दिखाई देता था । २७ रत्नमय डंडी वाला सफ़ेद छाता उसकी शोभा बढ़ा रहा था और वह अभिमान से फूला हुआ था । २८ राम ने क़ैद किए हुए दूत शुक को छोड़ दिया । वह अपने दरबार में पहुँचा जहाँ लंकापति रावण अपने मन्त्री से विचार-विमर्श कर रहा था । २९-३० रावण ने शुक से पूछा— "हे पण्डित शुक, कहिए, वहाँ का क्या हाल है ? चेहरा फीका-सा लगता है । बताइए, राम ने क्या कहा ?" ३१-३२ रावण की बात सुनकर शुक ने कहा— "यही ग़नीमत है कि ईश्वर ने मेरे प्राण बचा लिये । ३३ मैं समुद्र के उत्तरी किनारे गया जहाँ लक्ष्मण-सहित राम ठहरे थे । ३४ वहाँ सबसे प्रमुख चार व्यक्ति थे जो काल से भी हार मानने वाले नहीं हैं— प्रथम राम, द्वितीय लक्ष्मण, तृतीय नये लंकापति विभीषण और चौथे सुग्रीव । इन चारों को मैंने वहाँ देखा । ३५-३६ मैंने आकाश से ही आपका संवाद सुनाया कि कपियों ने सिंह-गर्जन करके उड़कर मुझे पकड़ लिया । ३७ कपियों ने मेरी क्या-क्या दुर्दशा की, वह कहाँ तक सुनाएँ । मुझे बहुत लात और मुक्के सहने पड़े । ३८ मैं बँधा हुआ था, मन में भी भारी व्यथा थी । कोई बन्दर दाँत से काटता था तो कोई नाखून से नोचता

हम देखल बल कयल विचार। वानर-मात्र दनुज संहार ॥ ४० ॥
राम समाद कहल श्रीमान। हम अयलहुँ शुनि अपनहि कान ॥ ४१ ॥
जे बल सीता कयलह हरण। समर देखाबह वीराचरण ॥ ४२ ॥
आब विजय मे नहि अछि देरि। भोरहि लङ्का हम लेब घेरि ॥ ४३ ॥
हमरहु हृदय भेल अछि रोष। बाण एक तोहर बल शोष ॥ ४४ ॥
अनकर कथा कहू की आज। अपनेक निन्दा बजितहिँ लाज ॥ ४५ ॥

॥ चौबेल छन्द ॥

कपि-मेला बेलाचल ऊपर, तरु तोड़ अछि लटकि लटकि ॥ ४६ ॥
लोचन-पथ लङ्काक लोक जौँ, तनिका मारय पटकि पटकि ॥ ४७ ॥
शुनु दशभाल काल दल जानू, चल अबइत अछि झटकि झटकि ॥ ४८ ॥
एको जन राक्षस नहि रहत, करत युद्ध रण अटकि अटकि ॥ ४९ ॥
सम्यक कयल उमेशाराधन, तथा चतुष्टय साधन ॥ ५० ॥
तप-प्रताप लङ्का गढ़ पाओल, सभ सौँ भेलहुँ महाधन ॥ ५१ ॥
जगदम्बा वन सौँ हरि आनल, कुल-मर्यादा बोरल ॥ ५२ ॥
मति विपरीति अनर्थ समय हो, पोखरिहि, माहुर घोरल ॥ ५३ ॥

था। ३९ मैंने उन लोगों की ताक़त देखी। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि राक्षसों का अन्त यह वानरी सेना ही कर सकती है। ४० हे प्रभु! राम ने जो संवाद कहा है वह स्वयं सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। ४१ उनका संवाद है कि 'जिस ताक़त से तुमने सीता का हरण किया वह वीरता तुम अब लड़ाई में दिखाओ। ४२ अब विजय में देर नहीं है। सुबह होते ही मैं लंका को घेर लूँगा। ४३ मेरे हृदय में भी क्रोध हुआ है। मेरा एक बाण ही तुम्हारी सेना को समाप्त कर देगा।' ४४ आज और की बात क्या कहूँ? आपकी निन्दा बोलने में भी मुझे लज्जा होती है। ४५ वेलाचल के ऊपर वानरों की भीड़ लटक-लटककर पेड़ों को तोड़ती है। ४६ यदि कोई लंकावासी उसके सामने पड़ता तो वह उसे पटक-पटककर मारती है। ४७ हे रावण! समझिए कि काल का दल बड़ी तेज़ी से चला आ रहा है। ४८ एक भी राक्षस ऐसा नहीं है जो उसके सामने अड़कर लड़ाई करे। ४९ आपने भलीभाँति शिव की आराधना की और चारों पुरुषार्थ प्राप्त किये। ५० तप के बल से लंका-जैसा गढ़ पाया। सबों से अधिक धनवान हुए। ५१ पर वन से जगज्जनी जानकी को हर लाया, यह ठीक नहीं किया। इससे आपके कुल की प्रतिष्ठा गिर गई। ५२ जब बुरा होना होता है तब बुद्धि उलट जाती है। आपने मानो पोखरे में ही ज़हर घोल दिया। ५३ वानरों की सेना पास आ गई है और

॥ सवैया छन्दः ॥

अगणित विकट कटक कर्कट भट आयल निकट विरचि बड़ व्यूह ॥ ५४ ॥
शङ्का-विरहित लङ्का-गढ़ कॉं लूटत करता के प्रत्यूह ॥ ५५ ॥
नहि प्रमाण प्रत्यक्ष मध्य किछु निज लोचन सौं देखल जाय ॥ ५६ ॥
जे जे वीर प्रधान ततय छथि तनिकाँ दै छी एखन चिन्हाय ॥ ५७ ॥

॥ षट्पद छन्दः ॥

गढ़ पर चाहथि कुदय राम-आज्ञा नहि पाबथि ॥ ५८ ॥
पर-दल-खण्डन-शील 'नील', कपि नाम कहाबथि ॥ ५९ ॥
शत सहस्र संग यूथपाल, अनलक बुझ बालक ॥ ६० ॥
सङ्गर-सुभट अजेय, त्रास हिनका नहि कालक ॥ ६१ ॥
सुग्रीवक सेनाधिपति, अव्याहत गति सकल थल ॥ ६२ ॥
लङ्कापति परिचय कहल, अचल उखाड़थि रण अचल ॥ ६३ ॥
विदित विश्व भरि छला, प्रबल अरिमर्दन बाली ॥ ६४ ॥
तनिक पुत्र युवराज नाम, 'अङ्गद' बलशाली ॥ ६५ ॥
कान्ति कमल-किञ्जल्क, पर्वताकार सुशोभित ॥ ६६ ॥
धरणि पटक लाङ्गूल शत्रु-कुल कर संक्षोभित ॥ ६७ ॥
सुनु लङ्केश्वर हिनक हम, कहब कहाँ धरि बुद्धिबल ॥ ६८ ॥
संग्रामक उत्साह मन, रघुपति-सेवक मन विमल ॥ ६९ ॥

गढ़ बना-बनाकर अनगिनत भयानक पड़ाव डाले हुए है। ५४ वह सेना निःशंक हो लंका-गढ़ को लूटेगी और इसमें कोई भी रोक-टोक नहीं सकेगा। ५५ प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या? चलिए, अपनी आँखों से देख लीजिए। ५६ वहाँ जो-जो मुख्य वीर हैं, उनकी पहचान अभी करा देता हूँ। ५७ लंका गढ़ पर अभी टूट पड़ना चाहते हैं पर राम की आज्ञा नहीं मिली है। ५८ शत्रु की सेना का संहार करना तो इन्हें स्वभावतः आता है। इन कपि का नाम है नील। ५९ ये सौ हजार सेना के नायक हैं। ये अग्नि के पुत्र हैं। ६० लड़ाई में अच्छा वीर भी इन्हें जीत नहीं सकता। इनको काल का भी डर नहीं है। ६१ ये सुग्रीव के सेनाध्यक्ष हैं और इनकी हर जगह अव्याहत गति है। ६२ हे लकापति रावण, मैंने इनका परिचय बताया। ये कहीं डिगनेवाले नहीं हैं। लड़ाई में पर्वत को भी उखाड़ सकते हैं। ६३ शत्रु के संहार में समर्थ वालि नामक जो विश्वविख्यात वीर थे, उन्हीं के ये बलवान् पुत्र युवराज अगद हैं। ६४-६५ इनके देह का वर्ण कमल के केसर-सा है। ये पर्वत जैसे विशालकाय हैं। ६६ ये जब धरती पर अपनी पूँछ पटकते हैं तो शत्रुओं के दल में खलबली मच जाती। ६७ हे लंकापति रावण, सुनिए। इनकी बुद्धि और बल का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ। ६८ इनके मन में सदा लड़ाई का जोश रहता है; इनका चित्त पवित्र

पवन-पुत्र 'हनुमान', ललकि लङ्का-पुर जारल ॥ ७० ॥
अछय ज्ञात बल अछय, अछय-दल कँ संहारल ॥ ७१ ॥
जे अशोक-वन जाय, स्वामिनी-दर्शन कयलनि ॥ ७२ ॥
कयल सकल रघुराज-काज, भल भल फल खयलनि ॥ ७३ ॥
सगर नगर घर घर जनिक, नाम शुनय कम्पित रहय ॥ ७४ ॥
स्वर्ण शैल-सङ्काश तन, रुद्रमूर्त्ति बल के कहय ॥ ७५ ॥

॥ रूपमाला ॥

श्वेत राजत-अवनिधर रुचि, प्रबल बुद्धि विशाल ॥ ७६ ॥
कपिपतिक तट गतागत कर, चतुरतर सभ काल ॥ ७७ ॥
'रम्भ' नामक अतुल-विक्रम-केसरी-संकाश ॥ ७८ ॥
बार बार विलोक, लङ्का करय चाहथि नाश ॥ ७९ ॥
'शरभ' नामक कोटि-यूथप, थिकथि नायक बीर ॥ ८० ॥
दृष्टि दय दशभाल देखल जाय, ई बड़ धीर ॥ ८१ ॥
देखि रहला पुरी लंका, दग्ध जनु करताह ॥ ८२ ॥
जखन युद्ध विरुद्ध, उद्यत रोकि के सकताह ॥ ८३ ॥

॥ सोरठा ॥

'पनस' महा-बलवान, 'मैन्द' द्विविद' बानर तथा ॥ ८४ ॥
कपि हनुमान समान, आन आन संख्या-रहित ॥ ८५ ॥

रहता है और राम के सेवक हैं। ६९ ये वायु के पुत्र हनुमान हैं। इन्होंने क्रुद्ध हो लंकापुरी को जलाया। ७० इन्होंने उस अक्षयकुमार के दल का संहार किया, जिनका बल अक्षय माना जाता है। ७१ इन्होंने ही अशोक वाटिका जाकर सीता का दर्शन किया। ७२ राम के सारे काम को पूरा किया और अच्छे-अच्छे फल खाये। ७३ सारी लंकापुरी में घर-घर में इनका नाम सुन-सुनकर लोग काँपने लगे। ७४ इनका शरीर सोने के पर्वत-जैसा है। तेज में रुद्र के समान हैं। इनके बल का बखान कौन कर सकता है। ७५ ये 'रम्भ' नामक कपि हैं। इनका शरीर चाँदी के पर्वत-सा उज्ज्वल है। ये भारी बलवान और बुद्धिमान हैं। ये बड़े ही चतुर हैं और सदा सुग्रीव के पास आते-जाते रहते हैं। ये सिंह के समान बेजोड़ पराक्रमी हैं। ये बार-बार लंका की ओर देख रहे हैं और चाहते हैं कि इसे ध्वस्त कर दूँ। ७६-७९ इनका नाम 'शरभ' है। ये एक करोड़ सैनिकों के वीर नायक हैं। ८० हे रावण ! गौर कर देखिए। ये बड़े धीर हैं। ८१ लंकापुरी को इस तरह घूर रहे हैं जैसे जला ही डालेंगे। ८२ जब ये युद्ध में खड़े होंगे तब इन्हें कौन रोक सकेगा ? ८३ 'पनस', 'मैन्द', 'द्विविद' आदि और भी बहुत से बड़े-बड़े बलवान योद्धा हैं, जो हनुमान की बराबरी करते हैं। अन्यान्य योद्धाओं को तो गिना

॥ घनाक्षरी ॥

बाणक प्रताप जलनिधि थर थर काँप ॥ ८६ ॥
एको जन आबि न चढ़ल बोर्ड तरणी ॥ ८७ ॥
वानर बहुत व्योम विहग समान ऊड़ ॥ ८८ ॥
रोकल न रहय कतहु कपि-सरणी ॥ ८९ ॥
वीर दशकन्ध नहि चलत प्रबन्ध किछु ॥ ९० ॥
निरधन्ध बुद्धि की वानरमय धरणी ॥ ९१ ॥
प्रबल जनिक बल विदित सकल थल ॥ ९२ ॥
कलबल नलक समुद्र-सेतु-करणी ॥ ९३ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

विधाता सर्व्वलोकानामयं रामो धनुर्द्धारी ॥ ९४ ॥
मनोवाचामदृश्योऽसौ प्रभुस्सर्व्वत्र सञ्चारी ॥ ९५ ॥
रघोर्व्वंशे समुत्पन्नस्समर्थो भाति संसारी ॥ ९६ ॥
घनानां घोरपापानां खलानां गर्व्वसंहारी ॥ ९७ ॥
कृतं कार्य्यं त्वया नेष्टं छलान्नीतात्र वैदेही ॥ ९८ ॥
शरण्यस्सेव्यतां सम्यक् भव त्वं तत्पदस्नेही ॥ ९९ ॥

भी नहीं जा सकता है। ८४-८५ राम के बाण के प्रताप से समुद्र थर्रा उठा। ८६ एक भी सैनिक को जहाज पर चढ़ना न पड़ा। ८७ असंख्य कपि पक्षी की तरह आकाश में उड़ चले। ८८ कपियों का रास्ता जल-स्थल-आकाश कहीं रुका न रहता। ८९ हे वीर रावण! अब किसी भी इन्तिज़ाम से काम चलने को नहीं। ९० अब चैन कहाँ? सारी धरती बन्दरों से छाई लगती है। ९१ राम की सेना बड़ी प्रबल है। समुद्र में सेतु बाँधने की नल की कला हर जगह मशहूर है। ९२-९३ ये धनुषधारी राम सभी लोकों की सृष्टि करनेवाले हैं। ९४ ये मन और वचन के परे हैं, सबों के मालिक हैं, सर्वत्र जानेवाले हैं। ९५ मायावश रघु के वंश में अवतार ले सर्वशक्तिमान् होते हुए भी सांसारिक मनुष्य-जैसे लगते हैं। ९६ घनघोर पापों और दुष्टों के घमंड को दूर करनेवाले हैं। ९ आपने जो छल से सीता का हरण किया वह अच्छा नहीं किया। ९८ आप शरणागतवत्सल राम की सेवा कीजिए और उनके चरण-कमल में प्रीति कीजिए। ९९ जगज्जननी जानकी को हरण करके आपने अच्छा नहीं किया। अब शान्ति के खातिर सीता राम को लौटा

हृता भ्रान्त्या जगन्माता प्रशान्त्यातां प्रयच्छास्मै ॥ १०० ॥
असून् संरक्ष तद्बाणरनीती रोचते कस्मै ॥ १०१ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

॥ जयकरी इत्यपि नाम ॥

शुक-मुख-वचन शुनल लङ्केश। मूढ़ तोर जानल बुढ़ बेश ॥ १ ॥
शुक गुरुजकँ की कहइछ ज्ञान। बाढ़ल मनमे बड़ अभिमान ॥ २ ॥
रे पाविष्ठ नगर काँ छाड़। बसय न देब भाँड़ सम राड़ ॥ ३ ॥
एखनहि प्राण तोर हर लेब। खर खर कें मानब गुरु-देव ॥ ४ ॥
किङ्कर जानि कयल प्रतिपाल। सिंहक शासक शुभ्र शृगाल ॥ ५ ॥
रे हम त्रिभुवन-शासक आज। नीति पढ़ाबय मन नहि लाज ॥ ६ ॥
प्राण हरण करितहुँ से क्रोध। बचला पूर्वक गुण अनुरोध ॥ ७ ॥
पुन जनु आबह राजद्वार। बिगड़ल बुद्धि बिलट व्यवहार ॥ ८ ॥

दीजिए; और १०० उनके तीरों से अपनी जान को बचाइए। अन्याय किसे रुचता है?" १०१

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

रावण द्वारा शुक का अपमान; शुक की कथा; माल्यवान का निष्कासन

लंकापति रावण ने शुक के मुँह से उपर्युक्त बातें सुनीं और सक्रोध बोले, "अरे मूढ़, मुझे समझ में आ गया। तुम बहुत बूढ़े हो गये हो। १ शुक, तुम तो गुरु की तरह मुझे ज्ञान की बातें बताते हो। तुम्हारे मन में अभिमान बहुत बढ़ गया है। २ अरे परम पापी, तुम मेरी लंकापुरी से बाहर चले जाओ। इस फूटे भाँड़ जैसे राँड़ को मैं अपने नगर में रहने नहीं दूँगा। ३ अभी मैं तुम्हारी जान ले लूँगा। गधे के बराबर इस दूत को मैं अपना गुरुदेव मान लूँ? ४ नौकर समझकर मैंने तुम्हारी परवरिश की। क्या सफ़ेद सियार सिंह का शासक हो सकता है? ५ अरे, आज मैं तीनों लोकों का शासक हूँ, फिर मुझे ही तुम नीति पढ़ाते हो? मन में लज्जा नहीं होती है तुम्हें? ६ गुस्सा तो मुझे इतना हुआ कि अभी मैं तुम्हारी जान ले लेता, पर पिछले गुणों के कारण तुम अभी बच गये। ७ फिर कभी इस दरबार में मत

बानर-नख-दन्तक विष देह। औषध करहु जाय निज गेह ॥ ९ ॥
जोड़ल हाथ कम्प बड़ अङ्ग। चलल कवन भय मानक भङ्ग ॥ १० ॥
मन मे शुक कह महाप्रसाद। हेतु कि ककरहु कहब समाद ॥ ११ ॥
शुक ब्रह्मिष्ठ छला द्विज जाति। वानप्रस्थ-विधि-रत दिन राति ॥ १२ ॥
देव-वृद्धि सुख हो अभिराम। यज्ञ करथि असुर-क्षय-काम ॥ १३ ॥
वज्रदंष्ट्र एक राक्षस घोर। आयल आश्रम बनि कें चोर ॥ १४ ॥
अयला ततय अगस्ति महान। शुक पाहुनक कयल सम्मान ॥ १५ ॥
जखना कुम्भज गेला नहाय। वज्रदंष्ट्र तनि वेष बनाय ॥ १६ ॥
छाग मांस होइछ मन खाइ। कहलनि तृप्त निजाश्रम जाइ ॥ १७ ॥
शुक बनबाओल तेहने पाक। मुनि विलम्ब पूजा सन्ध्याक ॥ १८ ॥
से राक्षस पुन चूपहि चूप। आयल बनि शक-बधू स्वरूप ॥ १९ ॥
मानुष-मासु परसि देल पात। अन्तर्हित अपने भय कात ॥ २० ॥
मानुष-मांस अमेध्य विचार। घोर कोप मुनि-मन सञ्चार ॥ २१ ॥
रे शुक राक्षस हो तों जाय। मानुष मांस तों दितें खोआय ॥ २२ ॥

आना। जब बुद्धि बिगड़ जाती है तब चाल उलट जाती है। ८ तुम्हारे शरीर में बन्दर के नाखूनों और दाँतों का ज़हर फैला है। अपने घर जाकर इसका इलाज करो।" ९ सुनते ही शुक का शरीर ज़ोर-ज़ोर से काँपने लगा। उसने हाथ जोड़ लिये और भयभीत हो सम्मान गँवाकर अपने घर चला गया। १० शुक ने मन ही मन कहा— बड़ी कृपा हुई कि जिन्दा छोड़ दिया। मेरा अपराध यही हुआ कि मैंने किसी का संवाद सुना दिया। ११ शुक द्विज थे, ब्रह्म के साधक थे, दिन-रात वानप्रस्थों के कर्म में लगे रहते थे। १२ देवताओं की वृद्धि से अच्छा सुख मिलता है, इसलिए असुरों के नाश के लिए वे यज्ञ किया करते थे। १३ एक समय में वज्रदंष्ट्र नाम का एक भयानक राक्षस चोर बनकर उनके आश्रम में घुस आया। १४ उस आश्रम में महर्षि अगस्ति पधारे। शुक ने उन अतिथि का समुचित सत्कार किया। १५ जब अगस्ति मुनि स्नान करने गये तब वज्रदंष्ट्र ने उनका स्वरूप धारण कर लिया, १६ और बोले कि— "मन करता है खस्सी का मांस खाऊँ और तृप्त हो अपने आश्रम लौट जाऊँ।" १७ शुक ने वैसा ही खस्सी का मांस बनवाया। मुनि को शाम की पूजा में कुछ समय लग गया। १८ फिर वह राक्षस चुपके से शक जाति की महिला का रूप धारण कर आ गया। १९ उस छद्मरूपा महिला ने मनुष्य का मांस पत्ते पर परोस दिया और खुद ग़ायब हो गयी। २० मुनि अगस्ति ने ज्यों ही समझा कि मनुष्य का अखाद्य मांस परोसा गया है, त्यों ही क्रोध से आगबबूला हो गये, २१ और बोले— "अरे शुक, तुम तुरन्त राक्षस हो जाओ। आज तो तुम मुझे मनुष्य का मांस खिला

शुक-मन शुष्क कहल मुनि जेह। छाग-मांस भोजन विधि सेह ॥ २३ ॥
मुनि मुहूर्त भरि कयलनि ध्यान। जानल कर्म्म कयल केओ आन ॥ २४ ॥
कहल अगस्ति तोहर नहि दोष। शाप अकारण मन घन रोष ॥ २५ ॥
रामक जखन होयत अवतार। दशवदनक बनबह तो चार ॥ २६ ॥
रामक दर्शन सौं छुट शाप। कर जनु शुक किछु मन मे ताप ॥ २७ ॥
शुक ब्राह्मण राक्षस तन पाय। भोगल कर्म्म लिखल कत जाय ॥ २८ ॥
वैखानस सङ्ग कर तप वेश। राक्षसताक रहल नहि लेश ॥ २९ ॥

॥ चौबेल छन्द ॥

शुक निष्काशन कयल दशानन, तखन कहल भल माल्यवान ॥ ३० ॥
की निशङ्क चित्त लङ्कापति, कपि-डङ्का शुनि पड़य कान ॥ ३१ ॥
अपनहुँ आँखि प्रबल दल देखल, अपने काँ के कहत आन ॥ ३२ ॥
श्रीरघुवर-परमेश-समागम, नृपवर भय रहु सावधान ॥ ३३ ॥
सीता देल जाय रघुवर कें, काल-दण्ड कर तनिक बाण ॥ ३४ ॥
शपथ खाय हम सत्य कहै छी, नहि तौं बचत न अहँक प्राण ॥ ३५ ॥
कोटि कोटि हनुमान अधिक-बल, नख-दन्तायुध चढ़ल शाण ॥ ३६ ॥

देते।'' २२ सुनते ही शुक के प्राण सूख गये। उन्होंने कहा— ''हे मुनि, आपने जो कहा था वही खस्सी का मांस तो भोजन में दिया गया है।'' २३ मुनि अगस्ति क्षण भर ध्यानमग्न हुए, फिर उन्हें मालूम हो गया कि यह कुकर्म किसी और ने किया है। २४ अगस्ति ने कहा— ''अहा इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। तेज क्रोध के चलते नाहक मैंने तुम्हें शाप दे दिया। २५ जब राम का अवतार होगा तब तुम रावण के गुप्तचर बनोगे। २६ राम के दर्शन से तुम्हारा यह शाप दूर हो जाएगा। हे शुक, तुम मन में कुछ सन्ताप मत करो।'' २७ इस प्रकार ब्राह्मण शुक ने राक्षस का शरीर पाकर कर्म का फल भोगा। जो भाग्य में लिखा हुआ है वह टलेगा कैसे? २८ तब वह शुक संन्यासियों के साथ तप करने लगा और उसमें राक्षसत्व का लेश भी न रहा। २९ इस तरह जब रावण ने शुक को निकाल बाहर कर दिया तब माल्यवान् ने कहा— ''हे लंकाधिपति, आप कैसे चैन से हैं जबकि वानरी सेना के डंके की आवाज सुनाई पड़ रही है? ३०-३१ आपने अपनी आँखों से भी वानरों की प्रबल सेना को देखा। फिर आपसे गैर क्या कहेगा? ३२ हे श्रेष्ठ राजा, परमेश्वर राम पधार रहे हैं। आप सावधान होकर रहिए। ३३ राम को सीता दे दीजिए। उनके हाथ का तीर मानों काल-दंड है। ३४ मैं सौगन्ध के साथ कहता हूँ, ऐसा न करने से आपकी जान न बचेगी। ३५ इस वानरी सेना में करोड़ों सैनिक हनुमान से अधिक ताक़तवर हैं। उनके

प्रातः पुरी-प्रवेश करत सभ, शत शङ्कर नहि करत त्राण ॥ ३७ ॥
यदवधि सीता हरि आनल अछि, असगुन होइछ पुरी आबि ॥ ३८ ॥
तकरो शान्ति सविधि होअक थिक, काटल जाय अनिष्ट भावि ॥ ३९ ॥
रामचन्द्र नारायण निश्चय, तनिक चरण मे करु भक्ति ॥ ४० ॥
जननी वैदेही कँ मानू, हरिमाया वर-आदि-शक्ति ॥ ४१ ॥
शुनि दशभाल लाल-लोचन कह, यम-कुवेर कँ हमर त्रास ॥ ४२ ॥
वानर-बल-आश्रित दुइ भ्राता, होयता राक्षस-जनक ग्रास ॥ ४३ ॥
जाह जाह घुरि एतय न आबह, बहुत वृद्ध गत-बुद्धि-ज्ञान ॥ ४४ ॥
रामचन्द्र बिशि मिलि आयल छह, ततहि जाह निर्व्वाहि मान ॥ ४५ ॥

॥ सवैया ॥

गिरिवर-उच्च सौध पर रावण बैसल वर-मन्त्री-गण सङ्ग ॥ ४६ ॥
कथक गाब रसभाव सुखद स्वर विविध ताल लय बाज मृदङ्ग ॥ ४७ ॥
मन्दोदरी निकट पट-भूषण-शोभित छथि शुनइत वर गान ॥ ४८ ॥
मदिरा पान-पात्र शोभित थल त्रास नाश अतिशय अभिमान ॥ ४९ ॥

नाखून और दाँत मानो सान पर चढ़ाकर तेज किए हुए हों। ३६ वह सेना सुबह लंकापुरी में प्रवेश करेगी। एक सौ भगवान् शंकर भी आपका त्राण न कर सकेंगे। ३७ जब से आप सीता को हर लाये हैं, तब से इस लंकापुरी में अपशकुन होते रहे हैं। ३८ इन अपशकुनों की शान्ति भी विधिपूवक की जानी चाहिए। भावी अमंगल का निराकरण किया जाय। ३९ रामचन्द्र निःसन्देह नारायण-स्वरूप हैं। उनके चरणों में भक्ति कीजिए। ४० सीता को जगज्जननी, विष्णु की माया आदिशक्ति समझिए।" ४१ यह सुनकर रावण की आँखें लाल हो गईं। वह बोला— "यम और कुबेर को भी मेरा डर होता है। ४२ केवल वानरी सेना की ताक़त वाले ये दोनों भाई राक्षसों के भक्ष्य हो जाएँगे। ४३ जाओ, अपने घर लौट जाओ। फिर यहाँ मत आना। बहुत बूढ़े हो चले। अब तुम्हारी समझ-बूझ जाती रही। ४४ तुम राम से साँठ-गाँठ कर आये हो। वहीं जाओ। वहीं तुम्हारा निर्वाह होगा, वहीं सम्मान पाओगे।" ४५

राम के बाण से रावण के मुकुट का गिरना और मन्दोदरी द्वारा समझाना

पहाड़ की ऊँची चोटी पर श्रेष्ठ मन्त्रियों के साथ रावण बैठा था। ४६ कत्थक-रस और भाव से युक्त मधुर स्वर में गा रहा था और तरह-तरह के तालों में मृदंग बज रहा था। ४७ पास में बैठी मन्दोदरी कपड़ों और गहनों से सजी बैठकर सुन्दर संगीत सुन रही है। ४८ स्थान मदिरा से भरे प्यालों

रावण घन मुकुटाली चपला मन्दोदरी-श्रवण-ताटङ्क ॥ ५० ॥
रावण काँ देखल रघुनन्दन भेल कोप मन भ्रुकुटी बङ्क ॥ ५१ ॥
दश किरीट अवदात छत्र महि खसल चलल रघुवर-कर तीर ॥ ५२ ॥
की थिक की थिक दशमुख लज्जित कहल बहल नहि प्रबल समीर ॥ ५३ ॥

॥ सोरठा ॥

शयन-भवन चललाह, मुकुट छत्र खसलय विमन ॥ ५४ ॥
पुन कहि हँसि उठलाह, शिर कटलय बढ़इछ विभव ॥ ५५ ॥

॥ मिथिला सङ्गीतानुसारेण जयकरी छन्दः ॥

मन्दोदरि असगुन मन मानि। दैवक हतमति काँ नित हानि ॥ ५६ ॥
राम-अनादर-फल परिणाम। कुशल कतहु रह लङ्का गाम ॥ ५७ ॥
तखनहि सौँ मन बढ़ आतङ्क। खसल अकारण श्रुति-ताटङ्क ॥ ५८ ॥
रावण काँ कहलनि सति रीति। मर्यादा कत जतय अनीति ॥ ५९ ॥
हमरहु दुख देखी हित हानि। गेलहुँ वर्षा बाँधी पानि ॥ ६० ॥
राम विमुख सुख-सिन्धु सुखाय। बधिर अन्ध कह जन-समुदाय ॥ ६१ ॥

से सुशोभित हैं। भय दूर हो गया है और भारी घमंड जगा हुआ है। ४९ रावण के घने मुकुटों की श्रेणी और मन्दोदरी के कान के झुमके स्वर की गति पर डोल रहे हैं। ५० राम ने इस रूप में रावण को देखा। उनके मन में क्रोध जाग उठा और भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ५१ राम ने एक बाण चलाया। रावण के दसों मुकुट और श्वेत छत्र धरती पर गिर पड़े। ५२ रावण लज्जित हो बोल उठा— "अरे, यह क्या है? ये कैसे गिरे? कोई तेज़ हवा तो नहीं चली है!" ५३ मुकुट और छत्र के गिरने से, जो अशकुन है, चिन्तित हो रावण सोने के कमरे में चला गया। ५४ फिर हँसकर बोल उठा— "अरे, चिन्ता की क्या बात है? सर कटने से तो मेरी सम्पत्ति बढ़ती ही है।" ५५ मन्दोदरी इसे अशकुन समझकर चिन्ता करने लगी— 'जिसकी बुद्धि को दैव मार देता है उसका हमेशा अनभल होता रहता है। ५६ राम का अपमान करने का यह फल है। अब लंकापुरी में कुशल नहीं।' ५७ तभी से उसका मन आतंकित है जब से कान के गहने बिना कारण गिर पड़े थे। ५८ सती-साध्वी की रीति से मन्दोदरी ने रावण से कहा— "जहाँ अन्याय होगा वहाँ प्रतिष्ठा नहीं बच सकती। ५९ मुझे भी दुख है। देखती हूँ, आपका अहित हो रहा है। कहावत है, वर्षा समाप्त हो जाने पर भी खेत में पानी बाँधकर रखना चाहिए, अर्थात् जो बीत गया सो बीत गया, अब आगे की चिन्ता कीजिए। ६० राम अप्रसन्न हो जाएँ तो सुख का समुद्र भी सूख जाएगा तथा लोग अन्धा और बहरा कहेंगे। ६१ आपने बिना किसी डर के अपने सगे भाई का

अपमानित सोदर निर्भीत। घर-विरोध नाशक पथ थीक ॥ ६२ ॥
अपने काँ अछि कोप प्रचण्ड। नीति कहथि से पाबथि दण्ड ॥ ६३ ॥

॥ सवैया छन्दः ॥

कहइत नीति लात सौँ मारल नेह न राखल सोदर भाय ॥ ६४ ॥
गेला विभीषण विश्वकर्म्म-सुत नलसौँ राम समुद्र बन्धाय ॥ ६५ ॥
हनूमान वानर से आयल लङ्का मे गेलि आगि लगाय ॥ ६६ ॥
प्राणनाथ निश्शङ्क वृथा छी बाढ़ल जाइछ विपति सदाय ॥ ६७ ॥

(रावण-वचन)

की करताह आबि लंका मे जनिकाँ वानर भालु सहाय ॥ ६८ ॥
प्रेयसि शुनु चिन्ता मन जनु करु कुम्भकर्ण सन हमरा भाय ॥ ६९ ॥
जगइत छथि एको नहि बचता सभ कपिदलकेँ ज थनि खाय ॥ ७० ॥
जिबइत पकड़ब बुनू भाइ काँ तखन तमाशा देखब जाय ॥ ७१ ॥

(मन्दोदरी-वचन)

देखल तमाशा लङ्का जरइत अक्षय बेरि नहि भेलहुँ सहाय ॥ ७२ ॥
ओ परमेश्वर थिकथि निरञ्जन माया-मानुष देह बनाय ॥ ७३ ॥
अनुज न तनुज न अपन सुतनु नहि सेना रक्षा करति कि हाय ॥ ७४ ॥
लौकिक उपलक्षणक भेल क्षण टिटही टेकल पर्व्वत जाय ॥ ७५ ॥

अपमान किया। घर में झगड़ा होना नाश का रास्ता है। ६२ आपका प्रचंड क्रोध है। जो उचित बात कहता वह सजा पाता है। ६३ आपने नेक सलाह देते सगे भाई को लात मारा, स्नेह भुला दिया। ६४ विभीषण चले गये। विश्वकर्मा के पुत्र नल से राम ने समुद्र में बाँध बनवाया। ६५ हनुमान बन्दर आया और लंका में आग लगा गया। ६६ हे प्राणनाथ, आप निश्चिन्त क्यों हैं? विपत्ति रोज बढ़ती जा रही है।" ६७ रावण ने कहा— "जिनके केवल बन्दर और भालू मददगार हैं वे लंका में आकर मेरा क्या कर लेंगे? ६८ हे प्रिये, तुम मन में चिन्ता मत करो। मेरे कुम्भकर्ण-जैसा भाई है। ६९ उसे जागने दो। एक भी नहीं बचेगा। वह सभी बन्दरों को खा जाएगा। ७० राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को ज़िन्दा ही पकड़ लूँगा, तब तमाशा देखना।" ७१ फिर मन्दोदरी ने कहा— "जब लंका जल रही थी, तब तमाशा देख लिया। जब अक्षयकुमार का वक़्त आया, तब तमाशा देख लिया। आप तो एक बार भी मददगार नहीं हुए। ७२ राम निर्गुण परमेश्वर हैं और मानव के रूप में अवतार लिया है। ७३ न बेटा आपको बचा सकेगा, न भाई, न अपनी पत्नी, और न सेना। ७४ इस समय लोगों में प्रचलित यह कहावत याद आती है कि टिटिहरी पक्षी टाँगें उठाकर पर्वत को

॥ सोरठा ॥

करइछ सभ कृति काल, कहल बहुत मन्दोवरी ॥ ७६ ॥
मानल नहि दशभाल, चिन्तहिँ बितलि बिभावरी ॥ ७७ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

इत प्रातहि जागल रघुवीर। जय जय ध्वनि कर कपि रणधीर ॥ ७८ ॥
आज्ञा देल जाय रघुनाथ। आनथि बाँधि वैरि दशमाथ ॥ ७९ ॥
सानुज राम विभीषण नाम। सह सुग्रीव सभा एकठाम ॥ ८० ॥
भेल विचार करक की आज। अयलहुँ चाढ़ दशकण्ठ-समाज ॥ ८१ ॥
कहल प्रसन्न प्रथम श्रीराम। थिक कर्त्तव्य प्रथम विधि साम ॥ ८२ ॥
दूत एक रावण तट जाय। रावण काँ कह नीति बुझाय ॥ ८३ ॥
जौँ मानथि से मन में हारि। तौँ को हेतु भयङ्कर मारि ॥ ८४ ॥
सभ अनुमति सभ कह तट जाय। टहल करब प्रभु रहब सहाय ॥ ८५ ॥
कपि-कुल बहुत चित्त उत्साह। जायब हमहिँ नाथ कहताह ॥ ८६ ॥
ककरो मन नहि ततय मलान। प्रभु प्रताप विजयक अभिमान ॥ ८७ ॥

टेकता है।" ७५ इस प्रकार मन्दोदरी ने समझाया, पर सब कुछ काल ही करता है, इसलिए रावण ने कुछ नहीं सुना। चिन्ता में ही वह रात बीत गयी। ७६-७७

अंगद का दूत बनकर रावण के पास जाना और बातचीत करना

इधर सवेरे ही राम जागे। वीर कपिगण जय-जयकार करने लगे। ७८ और कहने लगे— "हे रघुनाथ, आज्ञा दीजिए तो दुश्मन रावण को बाँधकर ले आवें।" ७९ राम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव चारों सभा लगाकर एक जगह बैठे। ८० यह विचार होने लगा कि रावण के पास तक चढ़ आये; अब आगे क्या करना चाहिए ? ८१ सबसे पहले प्रसन्न चित्त से राम ने कहा— "पहला काम साम (मेल) का उपाय करना है। ८२ रावण के पास एक दूत भेजा जाय। वह रावण को समझाएगा कि क्या न्यायोचित है। ८३ यदि समझाने पर वह कायल हो जाय तो भयानक युद्ध करना निरर्थक है।" ८४ इस बात से सभी सहमत हो गये। सब कहने लगे— "मैं रावण के पास जाऊँगा और इस काम में आपका सहायक बनूँगा।" ८५ कपियों के मन में बड़ा उत्साह था। हर कोई सोचता था— 'प्रभु की आज्ञा होगी, मैं ही जाऊँगा।' ८६ वहाँ किसी का मन उदास नहीं था। राम के प्रताप से सबों के हृदय में विजयी होने का अभिमान था। ८७ तब राम ने कहा— "शत्रु

॥ सोरठा ॥

तखन कहल रघुराज, लङ्का जयबा योग्य छथि ॥ ८८ ॥
बालि तनय युवराज, रिपु-भञ्जन अङ्गद बली ॥ ८९ ॥
बद्धाञ्जलि युवराज, उत्साही शुनितहिँ कहल ॥ ९० ॥
स्वयंसिद्ध प्रभु काज, टहल कहल कर्त्तव्य विधि ॥ ९१ ॥
पुन कहलनि रघुराज, परम चतुर युवराज अहँ ॥ ९२ ॥
जे भल जानब काज, सिद्धि करब अरि जीति रण ॥ ९३ ॥
कयल मुदित प्रस्थान, कयल प्रदक्षिण राम-पद ॥ ९४ ॥
सानुकूल भगवान, तारासुत विस्तार बल ॥ ९५ ॥
देखल राक्षस-लोक, पुन पुर अबइछ एक कपि ॥ ९६ ॥
केओ रोक नहि टोक, चौंकि पड़ायल विकल-मन ॥ ९७ ॥

॥ मन्दाक्रान्ता छन्द ॥

की रे की रे कह कि झट दे मूह कीयै सुखेलौ ॥ ९८ ॥
वीरे वीरे बहुत जन छी त्रास की हेतु भेलौ ॥ ९९ ॥
हाँ हौ हाँ हौ बिपति बड़ छौ काल लङ्का समैलौ ॥ १०० ॥
लङ्काध्वंसी कपिक सदृशे दोसरो फेरि ऐलौ ॥ १०१ ॥

की सेना में भगदड़ मचानेवाले वालिपुत्र युवराज अंगद ही लंका जाने योग्य हैं।" ८८-८९ सुनते ही उत्साह से भरे युवराज अंगद ने हाथ जोड़कर कहा— ९० "आपका काम तो स्वयं सिद्ध होता है। फिर मुझे जो यह काम करने का भार दिया सो केवल व्यवहारार्थ।" ९१ फिर राम ने कहा— "हे युवराज अंगद, आप बड़े होशियार हैं। ९२ लड़ाई में शत्रु को पछाड़कर जैसा अच्छा समझिएगा वैसा कीजिएगा।" ९३ आज्ञा पाकर अतुल बलवान तारासुत अंगद ने राम के चरणों की प्रदक्षिणा करके खुशी से प्रस्थान किया। भगवान राम उन पर प्रसन्न थे। ९४-९५ राक्षसों ने देखा कि एक बन्दर फिर नगर में आ रहा है। ९६ उसकी कहीं किसी ने रोक-टोक नहीं की। हर कोई देखते ही चौंककर व्याकुल हो भाग गया। ९७ भागते देख और ने पूछा— "अरे, बात क्या है? जल्द कहो। चेहरा क्यों सूख गया है? ९८ हम बहुत-सारे बहादुर जुटे हुए हैं। फिर इस तरह आतंकित क्यों हो?" ९९ उसने उत्तर दिया— "हाँ जी, हाँ जी, भारी आफ़त आ पड़ी। लंका में काल घुस आया। १०० लंका को उजाड़नेवाले उस बन्दर-जैसा ही दूसरा बन्दर फिर आ गया है।" १०१ लंकापुरी में भारी

॥ जयकरी छन्द ॥

लंका नगर कोलाहल ढेर। पुर-दाहक कपि आयल फेर॥ १०२ ॥
के कर भानस खायत भात। हृदय काँप जनु पीपर-पात॥ १०३ ॥
घर घर सभ जनि कह हिय हारि। भल नहि भावि भयंकर मारि॥ १०४ ॥
एकओ गोटय जनु बाहर जाह। अछि संप्राप्त समय अधलाह॥ १०५ ॥
रावण काँ कह सभ जन जाय। कृत सभ तनिके करथु उपाय॥ १०६ ॥
प्रलय करत दौड़त कपि सर्व्व। व्यर्थ करथि घर रावण गर्व्व॥ १०७ ॥
की घर छथि रावण बहराथु। अपनहिं राम-शरण मे जाथु॥ १०८ ॥
घर रहलें न सिद्धि हो काज। झपटल बगड़ा ऊपर बाज॥ १०९ ॥
करथु सन्धि जौं जन-भल चाह। विग्रह सौं नहि अछि निर्व्वाह॥ ११० ॥
धर्म्ममूर्त्ति रावण-छोट-भाय। तनिकहु राम लेल अपनाय॥ १११ ॥
रावण निकट कहल जन जाय। रावण देखल आँखि उठाय॥ ११२ ॥

॥ शार्दूलविक्रीडित ॥

लङ्का मे कपि एक आयल बली, निश्शङ्कता की कहू॥ ११३ ॥
की ओ फेरि अनर्थ जारत पुरी, से वृत्त बूझू अहूँ॥ ११४ ॥

शोर मच गया कि लंका को जलानेवाला बन्दर फिर आ गया। १०२ कौन रसोई करता और कौन भात खाता। सबका कलेजा पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा। १०३ घर-घर में औरतें ढाढ़स खोकर कहने लगीं— "अब कल्याण नहीं है। भयानक लड़ाई होनेवाली है। १०४ कोई भी घर से मत निकलो। बुरे दिन आ गये हैं।" १०५ फिर सभी लोग रावण से कहते— यह सब रावण का किया हुआ है। वे ही अब इससे त्राण का उपाय करें। १०६ ये सारे बन्दर दौड़ते आयेंगे तो प्रलय मचा देंगे। रावण अपने घर में बेकार घमंड करते हैं। १०७ रावण घर में घुसे क्यों हैं? वे बाहर आवें। स्वयं राम की शरण में जायें। १०८ अब घर में घुसे रहने से काम नहीं बनेगा। अब तो गौरैया के ऊपर बाज़ झपट्टा मार रहा है। १०९ यदि रावण लोगों की भलाई चाहते हैं तो सन्धि कर लें। लड़ाई से कल्याण नहीं होगा। ११० रावण के छोटे भाई विभीषण जो परम धार्मिक हैं, उन्हें भी राम ने अपना लिया। १११ प्रजाजनों ने जाकर रावण से ये बातें कहीं। रावण ने नज़र उठाकर देखा। ११२ लोगों ने कहा— "एक बलवान कपि लंकापुरी में आया है। वह बड़ा ही निर्भय-निःशंक है। ११३ क्या वह फिर लंकापुरी जलाने का अनर्थ करेगा, यह खबर आपको भी रखनी चाहिए। ११४ नगर के लोगों को सोना, खाना-पीना और चलना-फिरना हराम हो गया है, हाय! और

निद्राहार-विहार-शून्य नगरी, हा कष्ट की की सहू ॥ ११५ ॥
आबंय कि सभा कहै किछु कथा, लङ्केश सज्जे रहू ॥ ११६ ॥

॥ चौपाइ ॥

स्मितमुख कहलनि रावण नीक । लय आनहु कपि के ओ थीक ॥ ११७ ॥
एक कहयित दश दौड़ल धाय । अङ्गद काँ लय चलल बजाय ॥ ११८ ॥
हरिणाधिप गजराज-समाज । जेहन निशङ्क तेहन युवराज ॥ ११९ ॥
कह से कह कत चलल लेआय । रावण अछि कत देह देखाय ॥ १२० ॥
शशि-रविकुल वर-वनिता-रत्न । छल हरि अनलक चोर प्रयत्न ॥ १२१ ॥
कालानल सन रघुपति-बाण । जे जरता गय शलभ समान ॥ १२२ ॥
देखि सभासद सभ भेल ठाढ़ । दशमुख-हृदय कोप बड़ बाढ़ ॥ १२३ ॥
देखल परस्पर से सभ रूप । सभा सकल जन कत छन चूप ॥ १२४ ॥
रावण पुछलनि परिचय नाम । ककर दूत की अछि मन काम ॥ १२५ ॥
विब - शत्रु - पुर मे की काज । त्रास-रहित कहु करु जनु लाज ॥ १२६ ॥

॥ वसन्ततिलका ॥

श्री रामचन्द्र-परमेशक दूत जानू ॥ १२७ ॥
लङ्का-निशाचर समस्तक काल मानू ॥ १२८ ॥

क्या-क्या तकलीफ़ झेलें। ११५ वह आ रहा है और दरबार में आकर कुछ बात कहेगा। इसलिए हे रावण, आप तैयार रहिये।" ११६ मुस्कराकर रावण ने कहा— "ठीक है, उस बन्दर को ले आओ। देखें, वह कौन है?" ११७ रावण ने एक से कहा तो दस व्यक्ति दौड़ पड़े और अंगद को बुलाकर दरबार में ले गये। ११८ युवराज अंगद उसी तरह निःशंक थे, जिस तरह हाथी के सामने सिंह। ११९ अंगद ने कहा— "बताओ, मुझे कहाँ लिये जा रहे हो? मुझे दिखाओ, वह रावण कहाँ है; जो चन्द्रवंश और सूर्यवंश दोनों की श्रेष्ठ नारी सीता को चोरी से हरकर ले आया है; और जो प्रलयकाल की आग के समान राम के बाण से पतंग की तरह जलकर मरनेवाला है?" १२०-१२२ अंगद को देखते ही दरबार के सभी लोग खड़े हो गये। रावण क्रुद्ध हो उठा। १२३ दरबार के सभी लोग एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे। कुछ देर सभी लोग गुम रह गये। १२४ तब रावण ने परिचय पूछा— "आप किनके दूत हैं और आपकी क्या कामना है? १२५ राक्षसपुरी में आपको क्या काम है? निर्भय होकर कहिए, लजाइए नहीं।" १२६ अंगद ने कहा— "मैं परमेश्वर रामचन्द्र का दूत हूँ। मुझे लंकावासी सारे राक्षसों का काल समझिए। १२७-१२८ जिनकी शूरता सर्वत्र विख्यात है,

बाली बली सकल जानल शौर्य्य से टा ॥ १२९ ॥
उद्दण्ड अङ्गद तनिक थिकौँह बेटा ॥ १३० ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

एतय पठाओल अछि प्रभु राम । उचित प्रथम भूपति काँ साम ॥ १३१ ॥
विधि-प्रपौत्र शिव-द्विगुण सुभाल । अनुचित पथ चढ़लहुँ एहि काल ॥ १३२ ॥
जगदम्बा वन सौँ हरि आनि । मोह-विवश नहि जानल हानि ॥ १३३ ॥
सीता काँ माता मन मानि । करू समर्पण रामक पानि ॥ १३४ ॥
कपि-दल आयल सागर-पार । रिपुदल - तूलराशि - अङ्गार ॥ १३५ ॥
पित्ती हमर छथि रामक सङ्ग । तनिक चरण मे प्रीति अभङ्ग ॥ १३६ ॥
जानि बूझि मन जनु अनठाउ । रामचरण मे माँथ लगाउ ॥ १३७ ॥
नव लङ्केश्वर अहँ काँ भाय । सुख सौँ छथि प्रभु-दास कहाय ॥ १३८ ॥
हम देखल प्रभु-बाण-प्रताप । बाण प्राण-हृत हमरा बाप ॥ १३९ ॥
काल न जीति सकथि सङ्ग्राम । जानू परमेश्वर छथि राम ॥ १४० ॥
वचन हमर हित धरब न कान । तौँ भावी जानू अछि आन ॥ १४१ ॥
हमर जनक काँ विश्व चिन्हार । के कर समर शूर व्यवहार ॥ १४२ ॥
स्मित मुख रावण बजलाह आह । बड़ गुण-शालि बालि मुइलाह ॥ १४३ ॥

उन बलवान बालि का मैं पराक्रमी बेटा अंगद हूँ। १२९-१३० प्रभु राम ने मुझे यहाँ भेजा है। राजा को पहले साम (समझौते) का सहारा लेना उचित है। १३१ आप ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं और पंचमुख शिव के दुगुने मस्तक वाले हैं, फिर भी आप सम्प्रति अनुचित रास्ते पर चले हैं। १३२ आप मोह में पड़कर जगज्जननी सीता को वन से हर लाये। इसका क्या कुपरिणाम होगा यह आपने नहीं सोचा ? १३३ आप सीता को माता समझकर राम के हाथ सौंप दीजिए। १३४ शत्रु की सेना को रुई की भाँति जलानेवाला अग्नि-रूपी कपि-सेना समुद्र पार कर चुकी है। १३५ मेरे चाचा सुग्रीव राम के साथ हैं। उन्हें राम के चरण में अटूट भक्ति है। १३६ समझ-बूझकर इस बात की उपेक्षा मत कीजिए। जाकर राम के चरण में माथा टेकिए। १३७ आपके भाई विभीषण लंका के नये राजा हुए हैं और वे राम का दास बनकर सुखपूर्वक वहाँ रहते हैं। १३८ मैंने राम के बाण की शक्ति देखी है। उस बाण ने मेरे पिता का भी प्राण-हरण कर दिया है। १३९ राम को लड़ाई में काल भी नहीं जीत सकता है। यह जान लीजिए कि राम मानव नहीं, परमेश्वर हैं। १४० यदि मेरी नेक सलाह को आप न सुनेंगे तो जान लीजिए कि कुछ और ही भावी है। १४१ मेरे पिता को सारी दुनिया जानती है। उनसे लड़ाई में मुकाबला कौन कर सकता है ?" १४२ रावण मुस्कराकर बोला— "अहा ! बालि मर गये। वे बड़े गुणवान थे। १४३ अब वानरों में

बानर मे नहि रहले शूर। छल छथि समर-कला-परिपूर॥ १४४॥
बिलटल घर तानिके तों पूत। अयला बनल तपस्वी-दूत॥ १४५॥
ओ अछि कतय एतय जे आय। लङ्का मे गेल आगि लगाय॥ १४६॥
मारल गेल न दूत-बिचार। नीति सों भरल हमर व्यवहार॥ १४७॥
यम कुबेर लड़ि लड़ि पछताथि। के नहि हमरा डरें नुकाथि॥ १४८॥
वनिता-विरही गत-उत्साह। मानुष असुर समुख लड़ताह॥ १४९॥
देखलनि लंका घुरि घर जाथु। चारू खूट मांगि कें खाथु॥ १५०॥
हमरा जिबइत हमर कनिष्ठ। लङ्केश्वर बनलाह बलिष्ठ॥ १५१॥
ई अन्याय बालि कां भाय। रामक से छथि मुख्य सहाय॥ १५२॥
किष्किन्धा भेल वीर-परीक्ष। सुग्रीवे छथि प्रबल महोक्ष॥ १५३॥
देखलहि लंका मन भेल त्रास। त्यागल सभ जन जीवन-आश॥ १५४॥
दूत बनल अङ्गद अयलाह। राजपुत्र-बल पाओल थाह॥ १५५॥
मन मे बाढ़ल समुचित सन्धि। अभिप्राय की होये सन्धि॥ १५६॥
बालिक तनय कतहु नहि चूक। हसि हसि कहलनि फूजल ऊक॥ १५७॥
बानर मे करु काल प्रतीति। लज्जारहित सकथि जग जीति॥ १५८॥
घर समटल अछि अहँइक आज। प्रेत-समान कर्म्म नहि लाज॥ १५९॥

कोई शूर न रहा। वे लड़ाई की कला में पारंगत थे। १४४ उनका घर बरबाद हो गया। तुम उन्हीं का बेटा होकर इस तपस्वी राम का दूत बने आये हो? १४५ वे कहाँ रहे जो आकर लंका में आग लगा गये थे? १४६ दूत समझकर मैंने उसे मारा नहीं। मेरा काम नीति के अनुसार होता है। १४७ यम और कुबेर मुझसे लड़-लड़कर पछताते हैं। मेरे डर से कौन नहीं छुप जाते हैं? १४८ जो स्त्री के विरह से खिन्न और उत्साहहीन हो गये हैं, ऐसे मानव राम राक्षसों से क्या लड़ सकेंगे? १४९ यहाँ आये तो लंका को देखा, यही लाभ हुआ, अब घर लौट जायें। चारों दिशाओं में भीख माँगकर पेट पालें। १५० मेरे जीते ही मेरा छोटा भाई लंका का बलवान राजा बन बैठा। १५१ ये अन्यायी वालि के भाई सुग्रीव राम के मुख्य सहायक हैं। १५२ अब किष्किन्धा में कोई वीर नहीं रहा। इसलिए सुग्रीव ही महारथी कहलाते हैं। १५३ लंका को देखते ही सभी डर गये और जीने की आशा छोड़ बैठे। १५४ इसीलिए तो अंगद दूत बनकर आये हैं। इसी से क्षत्रियों की ताकत का पर्दाफ़ास हो गया। १५५ इसीलिए तो यह विचार हुआ कि सन्धि करना ही उचित होगा; पर सन्धि केवल इच्छा से होनेवाली नहीं है।" १५६ बालि के पुत्र अंगद कहीं चूकनेवाले नहीं हैं। उन्होंने खुले हुए ऊक की तरह हँस-हंसकर कहा— १५७ "बन्दर को काल समझिए। एक लाज को छोड़ दें तो सर्वत्र जीत ही जाते हैं। १५८ क्या आपका अपना घर दुरुस्त

लङ्का कपि आयल एक गोट । सुग्रीवक से अनुचर छोट ॥ १६० ॥
राक्षस-गन सौँ बाँधल जानि । वनचर अनुचर गञ्जन मानि ॥ १६१ ॥
शाखामृग वन रहल नुकाय । विनु आज्ञा कयलक अन्याय ॥ १६२ ॥
निजजन-गञ्जन समुचित पाय । देवतारि-पुर अनल लगाय ॥ १६३ ॥
छोड़ि देलक आछि सेव्य-समाज । बहुत गलानि मानि मन आज ॥ १६४ ॥
निज घर शूर समटु मन रोष । बलक थाह पाओल भरि रोष ॥ १६५ ॥
शङ्कर किङ्कर कर पद-ध्यान । रामक तुलना के कर आन ॥ १६६ ॥
लङ्केश्वर अहँ कौ लघु भाय । सुपथ चलनि उत्तम पद जाय ॥ १६७ ॥
लङ्का उलटक तन-सामर्थ्य । प्रलय करब ई यश बुझि व्यर्थ ॥ १६८ ॥
सन्धि समर विधि देखल नयन । महितल बिकल करब अहँ शयन ॥ १६९ ॥

॥ शार्दूलविक्रीडित ॥

एके गोट समुद्र लाँघि अयला, लङ्कापुरी डाहि कैँ ॥ १७० ॥
से की वानर-देह जानल अहाँ, गेला किला ढाहि कैँ ॥ १७१ ॥
जे अज्ञान कुबुद्धि युद्ध भिड़ला, निष्प्राण से से तहाँ ॥ १७२ ॥
सीतान्वेषक दूत कर्म्म बुझले, छी छिः अहाँ ओ कहाँ ॥ १७३ ॥

है ? आप प्रेत के जैसा काम करते हैं, फिर भी लाज नहीं आती । १५९ लंका में जो एक कपि आया था, वह तो सुग्रीव का छोटा-सा नौकर था । १६० राक्षसों से बाँधा गया; यह जानकर उस वनचारी नौकर की बड़ी फटकार हुई । १६१ इससे वह लजाकर वन में छुपा हुआ है । उसने आज्ञा के बिना गड़बड़ काम किया । १६२ राक्षसों की नगरी में आग लगायी, इसके लिए उसे अपने लोगों ने उचित ही बहुत फटकारा । १६३ उसे मन में बड़ी ग्लानि हुई और उसने अपने प्रभु के पास जाना भी छोड़ दिया है । १६४ हे अपने घर में शूर कहलानेवाले रावण, मन से गुस्सा हटाइए । आपकी ताक़त की हद भलीभाँति मालूम हो गयी । १६५ भगवान शिव भी जिनके उपासक हो चरण का ध्यान करते हैं, उन राम की बराबरी और कौन कर सकता है ? १६६ हे लंकापति रावण, आपके छोटे भाई विभीषण ने अच्छे रास्ते को पकड़कर ऊँचे पद को प्राप्त कर लिया है । १६७ शरीर में लंका को उलट देने की शक्ति है, प्रलय मचा सकता हूँ, ऐसा अभिमान करना बेकार है । १६८ अब सन्धि कर लें, इसी में सामरिक चतुरता दिखाई देती है । अन्यथा आप विकल हो धरती पर सो जाइएगा । १६९ एक ही कपि तो समुद्र पार कर लंका आया और लंका में आग लगा, उसके गढ़ को ध्वस्त कर चला गया । क्या उसे आपने मामूली बन्दर समझ लिया ? १७०-१७१ जो-जो नासमझी से या दुर्बुद्धिवश लड़ने आये वे सभी मारे गये । १७२ सीता को खोजने आये हुए दूत की करनी तो आपने देख ही ली । क्या वही आप हैं ? धिक्कार है

॥ सवैया छन्द ॥

(रावण-वचन)

अजगव-खण्डन जलनिधि-बन्धन ॥ १७४ ॥
व्याध बनल छल मारल बालि ॥ १७५ ॥
छल सड़ले ओ जड़ मातल मृग ॥ १७६ ॥
शुन रे बालिक पुत्र कुचालि ॥ १७७ ॥
हमर बीश भुज सतत रहित-रुज ॥ १७८ ॥
अनायास कैलाश उठाब ॥ १७९ ॥
तों युवराज काज कर दूतक ॥ १८० ॥
धिक मन मे नहि लज्जा आब ॥ १८१ ॥

(अङ्गद-वचन)

काँख दबाय लेल तोहरा जे ॥ १८२ ॥
सातो जलधिक तट तट जाय ॥ १८३ ॥
सन्ध्यार्चन जे कयल महाबल ॥ १८४ ॥
विद्यमान तनि सोदर भाय ॥ १८५ ॥
एक तीर मारल रघुनन्दन ॥ १८६ ॥
बालिक रहि न सकल तन प्रान ॥ १८७ ॥
शुन दशभाल गाल आरह की ॥ १८८ ॥
काल-विवश नहि तोहरा ज्ञान ॥ १८९ ॥

आपको।" १७३ रावण ने कहा— "माना कि राम ने शिव-धनुष को तोड़ा, पर वह तो सड़ा हुआ था; माना कि उसने समुद्र को बाँधा, पर वह तो जड़ पदार्थ था और उसने व्याध बनकर छल से बालि को जो मारा, उसमें क्या बड़ाई है? वह तो मदमत्त जंगली जानवर था। १७४-१७६ अरे बालि के कुकर्मी बेटे, सुन। १७७ मेरी ये बीस भुजाएँ, जिनमें कभी जख्म नहीं हुआ, बिना श्रम के कैलाश पर्वत को उठाने में समर्थ हैं। १७८-१७९ तुम युवराज होकर दूत का काम करते हो? धिक्कार है! तुम्हें लज्जा नहीं आती?" १८०-१८१ अंगद ने कहा— "जिन्होंने तुम्हें बगल में दबाए सातों समुद्र के किनारे जा-जाकर सन्ध्या-वन्दन किया, उन महाबली बालि का सगा भाई अभी मौजूद है। १८२-१८५ राम ने एक ही बाण चलाया कि ऐसे महाबली बालि के भी प्राण उड़ गये। १८६-१८७ हे रावण, सुनिए। आप नाहक डींग हाँकते हैं। आप काल के वश हो सुध-बुध खो बैठे हैं।" १८८-१८९ रावण ने कहा— "यमराज मेरे पाँव दबाते हैं। सूरज अपनी धीमी-धीमी किरण फैलाते हैं, ताकि मुझे तेज

(रावण-वचन)

हमर पयर जाँतथि यमराजा, मन्द मन्द रवि किरण पसार ॥ १९० ॥
आठो लोकपाल भय-कम्पित, बद्धाञ्जलि भय वचन उचार ॥ १९१ ॥
देववधू पन्नगी आदि काँ, गर्भ स्रवित हो देखि तरुआरि ॥ १९२ ॥
के थिक राम कहाँ के लक्ष्मण, वचन रचन कर सभा विचारि ॥ १९३ ॥

(अङ्गद-वचन)

शुन दशकन्ध वन्ध्य-मति लोचन-अन्ध लेश नहि भूपति ज्ञान ॥ १९४ ॥
रे हतप्राण त्राण के करतौ, मृग-विशेष व्यर्थहि जनु फान ॥ १९५ ॥
श्रीरघुवर-कर-मुक्त विषम शर, खसत समर सभटा तोर भाल ॥ १९६ ॥
बाल वृद्ध मिलि गृद्ध काक-कुल, क्रीड़ाकुल सञ्चरत शृगाल ॥ १९७ ॥

॥ सोरठा ॥

(रावण-वचन)

रे शाखामृग मूढ़, कि करब दूत अवध्य थिक ॥ १९८ ॥
भूप-नीति बड़ गूढ़, अङ्ग-भङ्ग अङ्गद करब ॥ १९९ ॥

(अङ्गद-वचन)

सुयश कतय नहि सोर, रे रे राक्षस अधम तों ॥ २०० ॥
धिक धिक वनिता-चोर, शूर्पनखा-गति हम करब ॥ २०१ ॥

न लगे। १९० आठों दिगपाल मेरे डर से थर्राते हैं और हाथ जोड़कर ही विनती करते हैं। १९१ मेरी तलवार को देख देव, गन्धर्व, पन्नग आदि की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं। १९२ मेरे सामने वह राम कौन है और वह लक्ष्मण कहाँ का है? दरबार में जरा सोच-विचारकर बोला करो।" १९३ अंगद ने कहा— "हे दशमुख, सुनो। तुम्हारी बुद्धि बेकार हो गयी है। आँखें अन्धी हो गयी हैं। राजा को जो ज्ञान होना चाहिए वह कुछ भी तुम्हें नहीं है। १९४ रे गतायु रावण, अब तुमको कौन बचाएगा? हमें चौपाया जानवर समझकर नाहक छलाँग मत भरो। १९५ राम के हाथ से छूटे तीखे तीरों से तुम्हारे सभी मुंड मिट्टी पर गिर जाएँगे। १९६ बच्चे-बूढ़े गीधों, कौओं और सियारों के झुंड उन मुंडों से खेलेंगे।" १९७ रावण ने कहा— "अरे नादान बन्दर क्या करूँ? मजबूर हूँ; क्योंकि दूत अवध्य होता है। १९८ राजनीति बड़ी पेचीदी होती है। मैं तुम्हारा अंग-भग कर दूँगा।" १९९ अंगद ने कहा— "राम का यश कहाँ नहीं मशहूर है। अरे राक्षस, तुम नीच हो। २०० स्त्री चुरानेवाले तुमको धिक्कार है। मैं तुम्हारा वही हाल करूँगा जो शूर्पणखा का हुआ।" २०१ रावण ने कहा— "सूर्य मेरा दरबान

॥ रोला छन्द ॥

(रावण-वचन)

प्रतीहार रवि हमर, अमरपति मालाकारक ॥ २०२ ॥
वरुण वायु गृह बाढ, मार्ज्जनो मृत्य अगारक ॥ २०३ ॥
दिनकर धर कर छत्र, पाककर्त्ता नित हुतवह ॥ २०४ ॥
रक्षभक्ष्य की हमर, समर मे तुलना करबह ॥ २०५ ॥

॥ षट्पद छन्द ॥

(अङ्गद-वचन)

रे रे कुमति कठोर मनुष-गणना रघुनन्दन ॥ २०६ ॥
नदी कि गङ्गा होथि वृक्ष की छथि हरिचन्दन ॥ २०७ ॥
की ऐरावत करटि इन्द्र-वाजी की छथि हय ॥ २०८ ॥
स्त्री की रम्भा होथि मूढ़मति शुन रे निर्भय ॥ २०९ ॥
की कृतयुग युग मे थिकथि धन्वी मनसिज के गणत ॥ २१० ॥
जनि प्रताप त्रिभुवन प्रकट हनूमान कपि के कहत ॥ २११ ॥

॥ रोला छन्द ॥

(रावण-वचन)

कुल-कलङ्क-प्रद पुत्र कतहु जनु देथि विधाता ॥ २१२ ॥
बरु जन सहथु विषाद रहथु बन्ध्या भय माता ॥ २१३ ॥
धिक अङ्गद युवराज तपस्वी-दूत कहाबय ॥ २१४ ॥
जे मारल छल बालि तनिक जय सतत मनाबय ॥ २१५॥

है; इन्द्र मेरा माली है; वरुण और वायु दोनों मेरे घर बुहारते हैं और मेरे आँगन में झाड़ू लगाते हैं; सूर्य मेरा छाता धरता है और अग्नि मेरा रसोइया है। २०२-२०४ राक्षसों के आहार बन्दर होकर तुम मुझसे क्या मुक़ाबला कर सकोगे ?" २०५ अंगद ने कहा— "अरे रे वज्र मूर्ख, क्या तुम राम को सामान्य मानवों में गिनते हो ? २०६ गंगा क्या सामान्य नदी है ? चन्दन क्या सामान्य काठ है ? २०७ क्या ऐरावत की गणना साधारण हाथियों में होती है ? क्या इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा साधारण घोड़ा है ? २०८ क्या रम्भा की गणना साधारण स्त्रियों में होती है ? अरे निडर मूर्ख, सुनो। २०९ क्या सत्ययुग सामान्य युग है ? कामदेव को कौन साधारण तीरन्दाज मानेगा ?" २१० हनुमान के कथनानुसार प्रभु राम का प्रताप त्रिभुवन में प्रकट है। २११ रावण ने कहा— "भले ही पिता को विषाद रहे और माता को वन्ध्या होने का दुःख रहे, कुल में कलंक लगानेवाला बेटा विधाता किसी को भी न दे। २१२-२१३ धिक्कार है ! उस युवराज अंगद को जो तपस्वी का दूत कहलाता है और जो सदा उसकी जय-ध्वनि करता रहता है, जिसने उसके पिता

॥ सोरठा ॥

(अङ्गद-बचन)

उचित कयल रघुनाथ, जे बनपति देल दिव्य गति ॥ २१६ ॥
बचत कि तोहर माँथ, परवनिता-गण-चोर खल ॥ २१७ ॥

॥ षट्पद छन्द ॥

(रावण-अङ्गद-बचन)

बाँधल किदहुँ समुद्र, अमर-अरि-घर नहि जानल ॥ २१८ ॥
कत हम त्रिभुवन जयी, कतय मर्कट हठ ठानल ॥ २१९ ॥
हँसि कह बालि-कुमार, सत्य-संकल्प राम-घन ॥ २२० ॥
बरिसत कर नाराच, बचत तोहर नहि हित जन ॥ २२१ ॥
एक बिभीषण कुशल-मति, लङ्कापति बनले रहत ॥ २२२ ॥
छिन्न भिन्न रावण सकुल, शोणित-मय सरिता बहत ॥ २२३ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

(रावण-बचन)

बाँधल बाँध जलधि मे बानर ॥ २२४ ॥
नहि आश्चर्य विदित व्यवहार ॥ २२५ ॥
पर्वत सन कर उच्च मृत्तिका ॥ २२६ ॥
अति लघुतर हो कीट दिबार ॥ २२७ ॥
लङ्का दग्ध कयल कपि चञ्चल ॥ २२८ ॥
से जानक थिक अनल-स्वभाव ॥ २२९ ॥

वालि को मारा है। २१४-२१५ अंगद ने कहा— "राम ने उचित ही किया जो वनराज वालि की सद्गति दी। २१६ अरे परायी औरतों को चुरानेवाले दुष्ट, तुम्हारा सर क्या बचा रहेगा?" २१७ रावण ने कहा— "समुद्र को तो बाँध लिया, पर यह नहीं जाना कि राक्षसों का घर कहाँ है। २१८ कहाँ मैं तीनों लोकों को जीतनेवाला और कहाँ इन बन्दरों का हठ।" २१९ वालि के पुत्र अंगद ने हँसकर कहा— "राम का संकल्प सदा सत्य होता है। २२० उनके हाथों से छूटे बाणों की वर्षा होगी और उसमें तुम्हारा कोई हितबन्धु नहीं बचेगा। २२१ लंका में सही समझवाला एक मात्र लंकापति विभीषण बचा रह जाएगा। २२२ रावण अपने कुल के लोगों-सहित छिन्न-भिन्न हो जाएगा और लहू की नदी बहने लगेगी।" २२३ रावण ने कहा— "बन्दरों ने समुद्र में बाँध बनाया, यह तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसी बात प्रायः देखी जाती है। २२४-२२५ दीमकें, जो बहुत छोटा कीड़ा होती हैं, मिट्टी का पहाड़-सा टीला बना देती हैं। २२६-२२७ चंचल बन्दर ने लंका को जलाया, इसमें क्या बड़ाई है? जलाना तो आग का स्वभाव ही

राम-प्रताप एखन धरि नहि किछु ॥ २३० ॥
हम देखल अछि होयत कि आब ॥ २३१ ॥

॥ शार्दूल-विक्रीडित छन्द ॥

(अङ्गद-वचन)

गेली सूर्पनखा नटी कपटिनी गोदा-तटी धर्क्कटी ॥ २३२ ॥
श्रीरामानुज-तीक्ष्ण-खड्ग लगलैं ख्याता मही नक्कटी ॥ २३३ ॥
लै सेना खरदूषणादि लड़ला गेला कहाँ से कहू ॥ २३४ ॥
सीतावल्लभ सौं विरोध कयलैं से ठाम जैबे अहूँ ॥ २३५ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

(रावण-वचन)

अपनहि हाथ माँथ दश काटल ॥ २३६ ॥
होम कयल नहि किछु मन त्रास ॥ २३७ ॥
अति प्रसन्न गौरीश देल वर ॥ २३८ ॥
नव नव शिर भेल मन भेल हाल ॥ २३९ ॥
बाँचल विधिक लेख निज भाल मे ॥ २४० ॥
मरण मनुक्ख-हाथ सौं पाब ॥ २४१ ॥
सकल-लोक-जित बिश भुज हमरा ॥ २४२ ॥
विधि अति वृद्ध ज्ञान नहि आब ॥ २४३ ॥

है। २२८-२२९ अभी तक मैंने राम का प्रताप कुछ भी नहीं देखा है, आगे क्या खाक देखूँगा ?" २३०-२३१ अंगद ने कहा— "नर्तकी-जैसी मायाविनी, धृष्टा शूर्पणखा गोदावरी के किनारे आयी २३२ और लक्ष्मण की तीखी तलवार से नाक कटने पर 'नकटी' नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई। २३३ खर, दूषण आदि जो वीर सेना लेकर लड़ने आये, वे कहाँ गये यह तो बताओ ? २३४ सीतापति राम से रार करने पर आप भी वहीं चले जाइएगा।" २३५ रावण ने कहा— "मैंने अपने ही हाथों से दसों सिरों को काटा और आहुति दी, इसमें तनिक भी डर न हुआ। २३६-२३७ परम प्रसन्न होकर शिव ने वर दिया, जिससे फिर नये-नये सिर हो गये, मन प्रफुल्ल हो गया। २३८-२३९ ललाट में विधाता का लिखा स्वयं पढ़ा कि मेरी मृत्यु मनुष्य के हाथ से होगी। २४०-२४१ मैंने तीनों भुवनों को जीत लिया है, मेरे बीस भुजाएँ हैं, फिर मैं मनुष्य के हाथ कैसे मरूँगा ? विधाता बहुत बूढ़े हो गये, अतः उन्हें अब ज्ञान न रहा।" २४२-२४३ अंगद ने कहा— "कितनी स्त्रियाँ तो पति के मरने

(अङ्गद-वचन)

पतिहीना दोना अबला कत, करय निराकुल अनल-प्रवेश ॥ २४४ ॥
अथवा इन्द्रजाल-विज्ञानी, काटय अङ्ग दुःख नहि लेश ॥ २४५ ॥
शुन रावण आब न मुख लज्जा, निज-मुख निज-गुण वर्णन कयल ॥ २४६ ॥
अक्षयकुमार मारि पुर जारल, तनि कपिकाँ किय बाँधि न धयल ॥ २४७ ॥

॥ दोहा ॥

कार्त्तवीर्य्य बलि बालि की, नहि त्रिभुवन सौं भिन्न ॥ २४८ ॥
तनि प्रताप अनुभव अहंक, मन होइछ नहि खिन्न ॥ २४९ ॥

॥ सोरठा ॥

(रावण-वचन)

के थिक मानव राम, के लक्ष्मण हनुमान के ॥ २५० ॥
करत कठिन संग्राम, हम रावण सुरपति-जयी ॥ २५१ ॥

॥ सोरठा ॥

(अङ्गद-वचन)

लक्ष्मण-कृत धनु-रेख, लाँघि न सकला शून्य मे ॥ २५२ ॥
हनूमान-बल देख, मान-रहित लङ्का कयल ॥ २५३ ॥

॥ रूपमाला ॥

बालि-सुत रघुनाथ-चरणक दास अङ्गद नाम ॥ २५४ ॥
मारि तोहरा आज दशमुख करब चौपट गाम ॥ २५५ ॥

पर निःशंक भाव से आग में जल मरती हैं। २४४ अथवा कितने जादूगर अपना अंग काट लेते हैं और उन्हें कोई पीड़ा नहीं होती। २४५ अरे रावण, सुनो। अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती। २४६ यदि तुम्हारे ताक़त थी तो जो अक्षयकुमार को मारकर लंका को जला गया, उस कपि को बाँधकर रखा क्यों नहीं? २४७ राजा कार्तवीर्य, बलि और वालि, क्या वे त्रिभुवन के बाहर के हैं? इनके प्रताप को यादकर क्या तुम्हारे मन में ग्लानि नहीं होती है?" २४८-२४९ रावण ने कहा— "मानव राम कौन होता है, लक्ष्मण कौन होता है और हनुमान कौन होता है जो मुझसे घनघोर लड़ाई करेगा? मैं रावण हूँ, इन्द्र को भी जीतनेवाला रावण। २५०-२५१ अंगद ने कहा, लक्ष्मण ने धनुष से रेखा बना दी। सूने में उसे तुम पार न कर सके। २५२ तुमने हनुमान का भी बल देख ही लिया, जिन्होंने लंका का मान-मर्दन किया। २५३ मैं वालि का पुत्र और राम का सेवक अंगद आज तुम्हें मारकर तुम्हारे नगर को खत्म कर दूंगा। २५४-२५५ फिर सीता और मन्दोदरी दोनों

जनकजा मन्दोदरी कॉं संग लेब लगाय ।। २५६ ।।
देब हम पहुँचाय प्रभु-तट विजय-वाद्य बजाय ।। २५७ ।।

।। षट्पद छन्द ।।

(रावण-वचन)

धर धर कपि वाचाल काल बनि हिनका मारब ।। २५८ ।।
के अछि त्रिभुवन शूर जतय हम रण मे हारब ।। २५९ ।।
सकल सैन्य सन्नद्ध मार मक्कट कॉं धय धय ।। २६० ।।
त्रास-रहित चल लड़य पराक्रम सङ्गर कय कय ।। २६१ ।।
धर तपसी दुहु भाय कॉं, मार विभीषण अनुज खल ।। २६२ ।।
रावण आज्ञा देल हम, वार्ता दय दे सकल थल ।। २६३ ।।

(अङ्गद वचन)

थिर रह रे दशभाल काल हम तोहर अयलहुँ ।। २६४ ।।
जयबह कतय पड़ाय चोर कॉं चीन्हल धयलहुँ ।। २६५ ।।
पटकल महि भुजदण्ड चण्ड-धुनि दश दिश व्यापल ।। २६६ ।।
खसल दशानन-मुकुट मही ओ महिधर कॉंपल ।। २६७ ।।
चपल-कोप युवराज तहँ, बाज-जकॉं तहिपर टूटल ।। २६८ ।।
प्रभु-तट फेकल मुकुट से, चारू जनु नृप-गुण लुटल ।। २६९ ।।

को साथ लगा लूंगा और जीत के बाजे बजाते हुए प्रभु राम के पास पहुँचा दूंगा।" २५६-२५७ रावण ने कहा— "पकड़ो, पकड़ो इस बक्की बन्दर को! काल बनकर मैं इसको मार डालूंगा। २५८ तीनों भुवन में ऐसा शूर कौन है जिससे युद्ध में मैं हार जाऊँ? २५९ सारी सेना तैयार होकर इस बन्दर को पकड़कर पीटो। २६० देखो तो किस प्रकार यह निडर हो पराक्रम करते लड़ने को उतावला है। २६१ दोनों भाई तपस्वी राम और लक्ष्मण को क़ैद कर लो। दुष्ट छोटे भाई विभीषण को मार डालो। २६२ मैं रावण यह हुक्म देता हूँ। सारी जगह इस बात का ऐलान कर दो।" २६३ अंगद ने कहा— "अरे रावण! ठहरो, ठहरो। मैं तुम्हारा काल आ गया। २६४ भागकर जाओगे कहाँ? चोर को पहचाना और पकड़ लिया।" २६५ इतना कहकर अंगद ने धरती पर अपनी बाँह पटक दी। प्रचंड ध्वनि दसों दिशाओं में छा गयी। २६६ रावण के चार मुकुट धरती पर गिर पड़े। पर्वत काँप उठे और धरती काँप उठी। २६७ क्रोध से चंचल युवराज अंगद बाज़ पक्षी की भाँति उन पर टूट पड़े। २६८ फिर उन चारों मुकुटों को उठाकर राम के पास फेंक दिया, मानों रावण के चारों राज-गुणों को लूट लिया। २६९ उधर कपियों की मंडली में

॥ दोहा ॥

उत कपिदल हलचल सकल, अरिपुर सौं की चारि ॥ २७० ॥
अबइत अछि ग्रहवेग सौं, रविमण्डल-अनुकारि ॥ २७१ ॥

॥ सोरठा ॥

हनूमान उड़ि धैल, रवि-उज्ज्वल मुकुटावली ॥ २७२ ॥
सभक स्वस्थ मन कैल, उल्कापातक दिवस भ्रम ॥ २७३ ॥
हसि कहलनि भगवान, अङ्गद-प्रेषित तर्क्क हो ॥ २७४ ॥
करत एहन के आन, राक्षसेन्द्र-शिर-मुकुट हर ॥ २७५ ॥

॥ चौपाइ ॥

बड़ कौतुक प्रभु मुकुट-निहार । अङ्गद-धन्यवाद उच्चार ॥ २७६ ॥
उत दशकन्धर मौन बिचार । देखि बालि-सुत-बल-बिस्तार ॥ २७७ ॥
त्रस्त अस्त-बल जेहन बटेर । बलि-युवराज-बाज-बल हेर ॥ २७८ ॥
जाइत छी कहलनि युवराज । अछि कर्त्तव्य आगु किछु काज ॥ २७९ ॥
करता रघुनन्दन भगवान । रावण-मुण्डावलि बलिदान ॥ २८० ॥
कह रावण मर्क्कट कँ घेर । करत अनर्थ कि चलती बेर ॥ २८१ ॥
कह अङ्गद हसि वचन प्रमान । अनल-पटल जानथि हनुमान ॥ २८२ ॥
अङ्गद धरणी रोपल चरण । रावण-गण-मन-संशय-हरण ॥ २८३ ॥

खलबली मच गयी । अरे, शत्रु की नगरी से ये चारों कौन चीजें ग्रह की जैसी तेजी से आ रही हैं ? ये तो सूर्यमंडल-से लगते हैं । २७०-२७१ हनुमान ने आकाश में उड़कर सूरज-जैसे चमकनेवाले उन चारों मुकुटों को पकड़ लिया । २७२ सबों के मन प्रसन्न हुए । लगता था कि दिन में ही उल्कापात हो रहा है । २७३ राम ने हँसकर कहा— "लगता है, अंगद ने फेंका है । २७४ राक्षसराज रावण के सिरों के मुकुटों को छीन लेना, यह काम दूसरा कौन कर सकता है ?" २७५ बड़े कुतूहल से राम उन मुकुटों को देखते हैं और अंगद को बधाई देते हैं । २७६ उधर वालि के पुत्र अंगद की शक्ति को देख रावण गुम हो सोच में पड़ गया । २७७ अंगद रूपी बाज़ के बल को देख रावण निर्बल बटेर की तरह त्रस्त हो गया । २७८ फिर अंगद ने रावण से कहा— "अब जाता हूँ । आगे और बहुत-कुछ करना है । २७९ भगवान राम रावण के मुण्डों का बलिदान करेंगे ।" २८० रावण बोल उठा— "घेरो, घेरो इस बन्दर को ! क्या यह जाते वक़्त भी कुछ अनर्थ कर जाएगा ?" २८१ अंगद हँसकर सच्ची बात बोले— "आग लगाना तो हनुमान ही जानते थे ।" २८२ रावण के दलवालों के मन में कोई संशय न रहे —यह सोचकर अंगद ने धरती पर अपना पाँव रख दिया और बोले— "जो मेरे पाँव को धरती से ऊपर उठा देगा उसकी

महि सौँ जे दैत चरण उखारि । से विजयी हम मानब हारि ।। २८४ ।।
कय बल राक्षस सुभट उठाब । उठय न पद प्रभु-राम-प्रभाव ।। २८५ ।।
सभ कह मन मन अद्भुत कीश । भेल विपक्ष बुझल जगदीश ।। २८६ ।।
रावण चरण धरय चललाह । अङ्गद देखितहिँ हसि उठलाह ।। २८७ ।।
कयलह रघुनन्दन सौँ वैर । ककर ककर नहि धरबह पैर ।। २८८ ।।
रावण लज्जित बैशला घूरि । अङ्गद लेल प्रतिज्ञा पूरि ।। २८९ ।।
अङ्गद चलल उठल दरबार । रावण गेला वनितागार ।। २९० ।।
मन्दोदरी कहथि शुनु नाह । लङ्कावास कठिन निर्व्वाह ।। २९१ ।।
यद्यपि अहाँ कयल बड़ दोष । श्रीरघुनन्दन काँ नहि रोष ।। २९२ ।।
दूत पठाओल बालि-कुमार । अहँक कयल नहि किछु अपकार ।। २९३ ।।
ठानल हठ नहि मानल नीति । धर्म्म विरोध पाप सौँ प्रीति ।। २९४ ।।
वानर एकसर नगरी जार । विधि जौँ वाम वाम संसार ।। २९५ ।।
अङ्गद-चरित देखल सभ नयन । सकल पराक्रम सम्प्रति शयन ।। २९६ ।।
कयल विसर्ज्जन सचिव-प्रधान । हितकर वचन धरय के कान ।। २९७ ।।

जीत होगी; मैं उससे हार मान जाऊँगा ।" २८३-२८४ सुनते ही एक-एक कर सभी राक्षस योद्धाओं ने पूरी ताक़त लगाकर उनका पाँव उठाने की चेष्टा की, किन्तु राम की महिमा से पाँव उठा न सके । २८५ सभी मन ही मन कहते—'यह तो अजीब बन्दर निकला । लगता है ईश्वर हम लोगों के प्रतिकूल हो गये हैं ।' २८६ अन्त में रावण स्वयं उनका पाँव उठाने चला । देखते ही अंगद हँस पड़े । २८७ बोले— "अरे, तुमने राम से वैर किया तो अब किसका-किसका पाँव न पकड़ोगे ।" २८८ रावण शरमा गया और लौटकर बैठ गया । अंगद ने बाज़ी मार ली । २८९ अंगद चले गये । दरबार उठ गया । रावण रनिवास चला गया । २९० वहाँ मन्दोदरी ने कहा— "हे नाथ, अब लंका में रहना कठिन हो गया है । २९१ यद्यपि आपने भारी अपराध किया है, फिर भी राम को क्रोध नहीं है । २९२ उन्होंने आपकी कोई बुराई नहीं की है । उन्होंने अंगद को दूत बनाकर भेजा । २९३ आप ज़िद पर अड़ गये । आपने नीति का त्याग किया; धर्म के विरुद्ध रहे और पाप से नाता जोड़ा । २९४ अकेला बन्दर सारी लंका जला गया । अगर विधाता प्रतिकूल हो जाता है तो सारी दुनिया प्रतिकूल हो जाती है । २९५ आपने अंगद की सारी करामात अपनी आँखों से देखी । सम्प्रति आपके सभी पराक्रम सुप्त हो गये हैं । २९६ आपने प्रधानमन्त्री को निकाल बाहर कर दिया । हित की बात अब कौन कान देता है । २९७ राम का दूत एक बन्दर आया । वह बिना

॥ सवैया छन्द ॥

जनिक दूत वानर एक आयल, निर्भय सौँ लङ्का-पुर जारि ॥ २९८ ॥
से हँसि गेल कयल की तनिकर, ककरा ककरा सौँ करि मारि ॥ २९९ ॥
कालरात्रि सीता कँ आनल, ई की जानल प्राकृत नारि ॥ ३०० ॥
काल-विवश लङ्केश्वर निश्चय, भावी विषय शकय के टारि ॥ ३०१ ॥

॥ रूपक दण्डक ॥

शुनु प्राणेश सत्य मन मानू ॥ ३०२ ॥
जिबितहिँ छथि से बाली, बलशाली ॥ ३०३ ॥
सकल सभा कँ अङ्गद-बल-चय ॥ ३०४ ॥
अनुभव समर-प्रणाली, वागाली ॥ ३०५ ॥
जनिक विलोचन बसथि अनुक्षण ॥ ३०६ ॥
लहलह-रसना-बाली, कंकाली ॥ ३०७ ॥
लङ्कावास निराश, भेल मन ॥ ३०८ ॥
सुख सौँ बसथु शृगाली, काकाली ॥ ३०९ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

उत अङ्गद-मन हर्ष अपार। पहुँचल कुशल प्रभुक दरबार ॥ ३१० ॥
प्रभुक प्रदक्षिण कयल प्रणाम। अङ्गद राखल बालिक नाम ॥ ३११ ॥
राम पुछल कहु कहु युवराज। लङ्का जाय कयल की काज ॥ ३१२ ॥

किसी डर के लंका को जला हँसकर चला गया। उसका आप क्या बिगाड़ सके? उसने किस-किससे युद्ध नहीं किया? २९८-२९९ कालरात्रिस्वरूपा सीता को आप ले आये। क्या उनको आपने सामान्य नारी समझ लिया? ३०० हे रावण, आप पर निश्चय काल आ गया है। जो भवितव्य होता है उसे कौन टाल सकता है? ३०१ हे प्राणनाथ! सच समझिए, वे बलवान् वालि जीते ही हैं (अपने पुत्र अंगद के रूप में)। ३०२-३०३ सारे दरबार को मालूम हो चुका है कि अंगद की कैसी ताक़त है, कैसा रणकौशल है और कैसा बोल है? ३०४-३०५ इनकी आँखों में लहलहाती जीभ वाली भगवती कंकाली सदा निवास करती हैं। ३०६-३०७ लंका में चैन से रहने की आशा अब नहीं रही; अब सियार और कौए यहाँ सुख से रहेंगे।" ३०८-३०९

अंगद का लौटना; प्रभंजन का मारा जाना; राम-रावण का घमासान युद्ध

उधर अंगद बड़े प्रसन्न मन से कुशलपूर्वक राम के दरबार में लौट आये। ३१० प्रदक्षिणा करके राम को प्रणाम किया। अंगद ने अपने पिता की प्रतिष्ठा को क़ायम रखा। ३११ राम ने पूछा— "हे युवराज अंगद,

अङ्गद कहल दशानन-गर्व । प्रभुक प्रताप हरल हम सर्व ॥ ३१३ ॥
सन्धिक प्रिय नहि खल दशभाल । पयःपान निर्विष नहि व्याल ॥ ३१४ ॥
अबइछ रावण-सैन्य अपार । कयल जाय प्रभु समर-विचार ॥ ३१५ ॥
प्रभु प्रधान काँ देल निदेश । प्रातहिँ युद्ध करत लङ्केश ॥ ३१६ ॥
सावधान रहु कपि-दल राति । मायामय थिक राक्षस-जाति ॥ ३१७ ॥
सभ छल शयन प्रभुक बल पाय । जागल अङ्गद मात्र सहाय ॥ ३१८ ॥
नाम प्रभञ्जनि राक्षसि जाति । रावण-प्रेरित आइलि राति ॥ ३१९ ॥
से पापिनि काँ मुख्य विचार । सानुज रामक करब संहार ॥ ३२० ॥
कल कौशल जौँ सिद्ध उपाय । मूलच्छेदेँ वृक्ष सुखाय ॥ ३२१ ॥
देखलनि अङ्गद तकर स्वरूप । ग्रह-दुर्दशा आइलि चुप चूप ॥ ३२२ ॥
ललकारल नहि भेल पड़ाय । डाकिनि काँ नहि रहल उपाय ॥ ३२३ ॥
फनला अङ्गद धयलनि झोँट । लतिअओलँ भेली लोटपोट ॥ ३२४ ॥
अति चीत्कार करय से लाग । शब्द शुनल कपि-दल भेल जाग ॥ ३२५ ॥
धर धर पकड़ पकड़ भेल सोर । जाय पड़ाय न राक्षस चोर ॥ ३२६ ॥
केओ भूधर केओ वृक्ष उखाड़ । मार मार लङ्कापुर-राड़ ॥ ३२७ ॥

कहिए। आपने लंका जाकर क्या-क्या काम किया ?" ३१२ अंगद ने कहा—"आपके प्रताप से मैंने रावण का सारा घमंड उतार दिया। ३१३ दुष्ट रावण सन्धि नहीं चाहता है। दूध पीने से साँप का जहर नहीं जाता। ३१४ रावण की अपार सेना आ रही है। अब लड़ाई का विचार किया जाय।" ३१५ राम ने सेनापति को हुक्म दिया— "रावण सुबह होते ही लड़ाई शुरू कर देगा। ३१६ हे कपियो, रात भर आप लोग सावधान रहिए। राक्षस मायावी जाति के होते हैं।" ३१७ राम के प्रताप के भरोसे सभी सैनिक सोये हुए थे, केवल अंगद रक्षा के लिए जगे थे। ३१८ उस रात रावण की भेजी प्रभंजनी नाम की एक राक्षसी आई। ३१९ उस पापिनी का खास इरादा राम और लक्ष्मण का वध करना था। ३२० यदि चतुरतापूर्वक यह प्रयास सिद्ध हो जाए तो मानों जड़ ही काट गयी, फिर पेड़ तो खुद सूख जाएगा। ३२१ अंगद ने उस राक्षसी को देख लिया; मानों चुपके से ग्रहों की बुरी दशा आ पहुँची हो। ३२२ फटकारने पर वह भागी नहीं। उस डायन को कोई रास्ता न मिला। ३२३ अंगद ने छलाँग मारकर उसके सिर के बाल पकड़ लिये। लात से पीटने लगे। वह धराशायी हो गयी। ३२४ ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। कपियों ने आवाज़ सुनी। सभी जाग गये। ३२५ 'पकड़ो-पकड़ो' का शोर मच गया ताकि वह चोर राक्षसी भाग न जाय। ३२६ कोई पहाड़ उखाड़ता तो कोई पेड़। सभी चिल्लाते— मारो, लंका के बदमाश को मारो! ३२७ जैसे प्रलयकालीन बादल गरजता है, उसी तरह तेज़ आवाज़

परिपूरित भेल कतय न शब्द। प्रलयकाल जनि गर्जय अब्द ॥ ३२८ ॥
दशवदनक मुह गेल सुखाय। मुइलि प्रभञ्जनि गञ्जन खाय ॥ ३२९ ॥
कह मन रावण हमरे भाय। बाट घाट सभ देल देखाय ॥ ३३० ॥
कपिदल मन किछु त्रास न पाव। पुर स्वाधीन जकाँ चल आव ॥ ३३१ ॥
हमरा बालि कें बैरी भाय। पोसल पन्नग दूध पिआय ॥ ३३२ ॥
कपि चञ्चल-बल की करताह। अनल शलभ सन सब जरताह ॥ ३३३ ॥
गञ्जित मुइलि प्रभञ्जनि जाय। उचित न शत्रुक विजय उपाय ॥ ३३४ ॥
निज प्रधान काँ कहल सकोप। प्रथम करह बानर-बल लोप ॥ ३३५ ॥
शुनितहिँ चलल पटह देल चोट। कातर जीव न एको गोट ॥ ३३६ ॥
गोमुख भेरी बाज मृदङ्ग। पणवानक गोमुख भल रङ्ग ॥ ३३७ ॥
महिष ऊँट खर सिंह सवार। वाहन विविध प्रवह सञ्चार ॥ ३३८ ॥
शूल चाप तोमर तरुआरि। पाश यष्टि शक्तिक भल मारि ॥ ३३९ ॥
लङ्का सकल द्वार सौँ व्यूह। चलल बहुत उत्साही मूह ॥ ३४० ॥
एतय राम-अनुशासन पाय। कपि-दल चलल न रण पछुआय ॥ ३४१ ॥
केओ गिरि-शृङ्ग-शिखर कर धयल। तरु उखाड़ि कें आयुध कयल ॥ ३४२ ॥

सर्वत्र व्याप्त हो गयी। ३२८ रावण का चित्त उदास हो गया। वह सोचने लगा कि प्रभंजनी राक्षसी फटकार खाकर मर गयी। ३२९ रावण मन-ही-मन कहता— "मेरे भाई विभीषण ने ही रास्ता बता दिया। ३३० कपियों को तनिक भी डर नहीं होता। वे बेधड़क नगर में घुसते आ रहे हैं जैसे स्वाधीन-स्वच्छन्द हों। ३३१ मुझे और बालि को भी अपना भाई ही दुश्मन हो गया। मानों हमने साँप को दूध पिलाकर पाला। ३३२ बन्दर तो स्वभावतः चंचल होते हैं, वे क्या ताक़त दिखाएँगे? वे सभी उसी तरह जल जाएँगे जिस तरह आग में पतंगा। ३३३ प्रभंजनी वहाँ जाकर नाहक मारी गयी। शत्रु को जीतने का यह ठीक उपाय नहीं हुआ।" ३३४ ऐसा सोचकर रावण ने अपने प्रधान सेनापति से क्रोधपूर्वक कहा— "पहले वानरी सेना का संहार करो।" ३३५ सुनते ही राक्षसों की सेना चल पड़ी। डंके पर चोट पड़ी। एक भी सैनिक कायर हो रुके नहीं। ३३६ गोमुख, नगाड़ा, मृदंग, ढोल आदि भलीभाँति बजने लगे। ३३७ भैंसा, ऊँट, गधा, सिंह आदि विविध वाहनों पर चढ़-चढ़कर राक्षस-सैनिक वायुवेग से बढ़े। ३३८ बरछा, तीर-धनुष, भाला, तलवार, पाश, लाठी, साँग आदि अस्त्रों से घमासान लड़ाई हुई। ३३९ लंका के सभी द्वारों से सेनाएँ चलीं। उनमें हर व्यक्ति परम उत्साही था। ३४० इधर राम की आज्ञा पाकर वानरों की सेना चली जो युद्ध में कभी पिछड़ती नहीं। ३४१ किसी ने पहाड़ की चोटी को हाथ में ले लिया, किसी ने पेड़ को उखाड़कर उसे ही अपना अस्त्र बनाया। ३४२

दल सन्नद्ध सकल छल ठाढ़। वीरोत्साह बहुत मन बाढ़॥ ३४३॥
करब दशानन-सुभट संहार। मन मन कपिदल करथि विचार॥ ३४४॥
रोकल लंका चारू द्वारि। कपि-दल प्रबल मचल बड़ मारि॥ ३४५॥
कोटि कोटि यूथप एक बेरि। लंका नगर सगर लेल घेरि॥ ३४६॥
खन उड़ गगन मही घुरि आब। गर्ज तर्ज कपि चपल-स्वभाव॥ ३४७॥
अतिबल राम जयति जयवीर। तथा महाबल लक्ष्मण धीर॥ ३४८॥
राघव-पालित जय कपिराज। सिद्ध मन्त्र रण वानर बाज॥ ३४९॥

॥ षट्पद छन्द ॥

पवन-तनय युवराज, कुमुद नल नील महाबल॥ ३५०॥
शरभ केसरी द्विविद, तार वानर भट भल भल॥ ३५१॥
जाम्बवान दधिवक्त्र, मन्द यूथप लंका काँ॥ ३५२॥
रोकल सगरो नगर, फानि बाढ़ल तंका काँ॥ ३५३॥
तरु पव्वत नख दन्त सौं, राक्षस-बल कयलनि विकल॥ ३५४॥
युद्ध-हेतु सभद्वार सौं, बहरायल क्रोधी सकल॥ ३५५॥

॥ चौपाइ ॥

भिन्दिपाल पट्टिश तरुआरि। शूल हाथ राक्षस कर मारि॥ ३५६॥
शोणित मांस पूर रण पङ्क। तदपि युगल दल बड़ निःशङ्क॥ ३५७॥

सैनिकों के सारे दल सज्जित हो तनात थे। सबों के मन में वीरोचित उत्साह लहरा रहा था। ३४३ कपि लोग मन में सोचते— आज राक्षस के बड़े-बड़े योद्धाओं को मार गिराऊँगा। ३४४ कपियों के दलों ने लंका के चारों द्वारों को रोक लिया। घमासान लड़ाई छिड़ गयी। ३४५ एक-एक बार में लाखों दलपतियों ने सारी लंकापुरी को घेर लिया। ३४६ चंचल स्वभाववाले कपि तुरत आकाश में उड़ जाते, तुरन्त धरती पर लौट आते और गर्जन-तर्जन करते। ३४७ वे लड़ाई के मैदान में इन सिद्ध मन्त्रों का नारा लगाते— परम बलवान राम की जय हो, रघुवीर की जय हो, महाबली धीर लक्ष्मण की जय हो, रामचन्द्र द्वारा संरक्षित कपिराज सुग्रीव की जय हो। ३४८-३४९ हनुमान, अंगद, कुमुद, नल, नील, शरभ, केसरी, द्विविद, तार, जाम्बवान, दधिवक्त्र, मैन्द —आदि सभी दलपति छलाँग मार-मारकर आगे बढ़े और आतंक में डूबी सारी लंका को घेर लिया। ३५०-३५३ कपियों ने पेड़, पहाड़, नाखून और दाँत के प्रहार से राक्षसों को व्याकुल कर दिया। ३५४ तब सभी राक्षस क्रुद्ध हो-होकर सभी द्वारों से निकल पड़े। ३५५ भिन्दिपाल (ढेलवाँस), पट्टिशर (भाला), तलवार, बरछा और शूल हाथों में लेकर राक्षस लड़ने लगे। ३५६ लहू और मांस से धरती कीचड़मयी हो गयी, तथापि दोनों दल निःशंक हो लड़ते रहे। ३५७ स्वर्ण-पर्वत के समान हाथियों, घोड़ों और रथों

काञ्चन-निभ हय गज रथ हाँकि। राक्षस-शूर कोश-दल ताकि ॥ ३५८ ॥
करय युद्ध हो दश दिश शोर। मत्त महाभट राक्षस घोर ॥ ३५६ ॥
कुपित कपीन्द्र दनुज-जय काज। राक्षस-चटक प्रकट कपि-बाज ॥ ३६० ॥
देव-अंश-सम्भव सब कोश। विद्यमान रघुवर जगदीश ॥ ३६१ ॥
समर अमर कपि दनुज विनाश। अंकुर-व्रीहि टिड्डी कर नाश ॥ ३६२ ॥
जय हो ततय जतय रह धर्म्म। दनुज-पराजय दशमुख-कर्म्म ॥ ३६३ ॥
चतुर्थांश सैन्यक भेल नाश। विचलित राक्षस-दल मन त्रास ॥ ३६४ ॥
मेघनाद भेल अन्तर्धान। ब्रह्म-दत्त वर मन अभिमान ॥ ३६५ ॥
गगन जाय अस्त्रक कर वृष्टि। नाना विधि अद्भुत रण-सृष्टि ॥ ३६६ ॥
वानर-सैन्यक चल नहि हाथ। विकल देख दल श्रीरघुनाथ ॥ ३६७ ॥
क्षण भरि छला महाप्रभु चूप। क्रोध कयल धय नि निज रूप ॥ ३६८ ॥
लक्ष्मण हमर अजय धनु देब। ब्रह्मास्त्रहिँ हम बदला लेब ॥ ३६६ ॥
तत्क्षण सबकाँ हम देब जारि। हमरा सौं के करता मारि ॥ ३७० ॥
सुनि घननाद गेल घुरि गेह। मन मानल समरक सन्देह ॥ ३७१ ॥
वानर-दल समर-क्षत-अङ्ग। ककरो छल नहि जीवक रङ्ग ॥ ३७२ ॥

पर सवार हो राक्षस योद्धा वानरों के दलों को खोजकर लड़ने लगे। दसों दिशाओं में कोलाहल होने लगा। ३५८-३५६ राक्षसों को जीतने के लिए कपिराज सुग्रीव क्रुद्ध हो उठे और राक्षस रूपी गौरैयों पर बाज़ की भाँति टूट पड़े। ३६० सभी वानर देवताओं के अंशावतार थे और राम संसार के ईश्वर थे। ३६१ लड़ाई में देवावतार कपि राक्षसों का संहार कर रहे थे जिस प्रकार टिड्डीदल फ़सल के अंकुरों का संहार करता है। ३६२ जहाँ धर्म रहता है वहीं जय होती है। रावण के कुकर्म के कारण राक्षसों की मृत्यु हो रही है। ३६३ जब राक्षसों की चौथाई सेना का अन्त हो गया तब डर से उनमें भगदड़ मच गयी। ३६४ फिर मेघनाद ग़ायब हो गया जिसे ब्रह्मा से मिले वर का घमंड था। ३६५ वह आसमान में जाकर अस्त्र बरसाने लगा। तरह-तरह के अजीब युद्ध हुए। ३६६ वानर सैनिकों के हाथों का चलना बन्द हो गया। सेना को इस हालत में देख राम घबरा गये। ३६७ क्षण भर तो महाप्रभु राम चुप हो देखते रहे, फिर क्रुद्ध होकर अपना रूप धारण किया। ३६८ बोले— "हे लक्ष्मण, मेरा 'अजय' नाम का धनुष दो ताकि इस ब्रह्मास्त्र का प्रतिकार किया जाय। ३६६ तुरन्त मैं सबों को जला दूँगा। मुझसे कौन युद्ध करेगा ?" ३७० यह सुनकर मेघनाद लड़ाई के मैदान से लौटकर घर चला गया। उसे लड़ाई में जीत सन्दिग्ध जान पड़ी। ३७१ वानर सैनिकों के अंग लड़ते-लड़ते क्षत-विक्षत हो गये थे। लगता था कोई भी जी न सकेगा। ३७२ राम ने कहा— "हे हनुमान, सम्प्रति आपको छोड़

रघुनन्दन कह शुनु हनुमान। एखन प्रयास करत के आन ॥ ३७३ ॥
क्षीर-महोदधि सत्वर जाउ। द्रुहिणाचल औषधि लय आउ ॥ ३७४ ॥
अपन सकल दल विकल जिआउ। वीर-सुयश त्रिभुवन मे पाउ ॥ ३७५ ॥
शुनि हनुमान पवन-जव जाय। आनल ओ गिरि सकल उठाय ॥ ३७६ ॥
औषधि-बल बाँचल सम कीश। पालक स्वयन्देव जगदीश ॥ ३७७ ॥
जत सौं आनल नग हनुमान। राखल ततहि कहल भगवान ॥ ३७८ ॥
वानर-दल कर भैरव नाद। छुटल समर-श्रम भरण-विषाद ॥ ३७९ ॥
मन विस्मित शुनि लंकाधीश। कयलक कठिन काल-बल कीश ॥ ३८० ॥
विधि राघव-अरि ध्रव निर्म्माय। वर्त्तमान देल नगर पठाय ॥ ३८१ ॥
हटि नहि रहब करब संग्राम। दूरि करब नहि रावण-नाम ॥ ३८२ ॥
मन्त्रि बन्धु यूथप जे शूर। करथु सकल जन आलस दूर ॥ ३८३ ॥
करथु युद्ध सभ मन उत्साह। हम नहि कथल ककर निर्व्वाह ॥ ३८४ ॥
हमरा कष्ट समय अछि आज। त्रासें घर रहला किछु व्याज ॥ ३८५ ॥
अरि सम तनिकाँ हम देब मारि। अपनहिँ हाथ धरब तरुआरि ॥ ३८६ ॥
त्रासें चलल समर सभ शूर। रण-पण्डित बल-कला-सुपूर ॥ ३८७ ॥

और कौन काम देगा ? ३७३ आप तुरन्त क्षीर-सागर जाइए और द्रुहिणाचल से बूटी ले आइए। ३७४ बीमार पड़े अपने सारे दल को जिलाइए और तीनों लोकों में वीर होने का यश पाइए।" ३७५ यह सुनकर हनुमान वायुवेग से वहाँ गये और उस सारे पर्वत को उठाकर ले आये। ३७६ उस बूटी के प्रभाव से सभी वानरों की प्राणरक्षा हुई। स्वयं भगवान राम उनके रक्षक थे। ३७७ फिर राम की आज्ञा के अनुसार हनुमान जहाँ से वह पर्वत उठा लाये थे वहाँ ले जाकर रख दिया। ३७८ कपिदल फिर भयावनी किलकार करने लगा। उनकी लड़ाई से होनेवाली सारी तकलीफ़ दूर हो गयी। ३७९ यह समाचार सुनकर लंकापति रावण अचम्भे में पड़ गया और बोला— 'काल के समान इस वानरी सेना ने बड़ी कठिनाई पैदा कर दी। ३८० मानों ब्रह्मा ने राम रूपी दुश्मन बनाकर सम्प्रति लंका में भेजा है। ३८१ मैं अपना रावण नाम बिना छोड़े और बिना हटे युद्ध करूँगा। मेरे जो-जो मन्त्री, बन्धु-बान्धव और दलपति बहादुर हैं वे सभी अब आलस्य छोड़ें। ३८२-३८३ सभी जोश के साथ लड़ाई करें। मैंने किसका पालन-पोषण नहीं किया है ? ३८४ आज मुझे वक्त पड़ा है तो वे कुछ बहाना बनाकर डर से घर घुस गये। ३८५ ऐसे लोगों को मैं दुश्मन की तरह मार दूँगा। अपने ही हाथ से तलवार उठाऊँगा।" ३८६ इतना सुनते ही रावण के सभी सैनिक, जो बल और कौशल दोनों से भरे रण-पंडित थे, डरकर रणभूमि की ओर चल पड़े। ३८७ 'अतिकाय' नाम का परम बलवान् सैनिक चला। सेनापति होकर 'प्रहस्त'

अतिबल चलल नाम अतिकाय । तथा प्रहस्त प्रधान कहाय ॥ ३८८ ॥
नाम महोदर ओ महानाद । लड़य चलल रावण अह्लाद ॥ ३८९ ॥
नाम निकुम्भ देव-अरि नाम । वानर सङ्ग कयल सङ्ग्राम ॥ ३९० ॥
देवान्तक एक नाम कहाव । वीर नरान्तक नाम धराव ॥ ३९१ ॥
अगणित असुर कहब कत नाम । क्रुद्ध युद्ध कर जय मन-काम ॥ ३९२ ॥
वानर-दल मे गेल समाय । उद्धत युद्ध कहल नहि जाय ॥ ३९३ ॥
भिन्दीपाल भुशुण्डिक मारि । बाण परशवध चल तरुआरि ॥ ३९४ ॥
नाना तरहक चयलय अस्त्र । पहिरि पहिरि रण लोहक वस्त्र ॥ ३९५ ॥
कपि-यूथप सङ्ग रण आघात । सहय तुरङ्ग तुरङ्गम-लात ॥ ३९६ ॥
पर्व्वताग्र तरुवर नख दन्त । एहि बल कपि कर राक्षस-अन्त ॥ ३९७ ॥
कत जन काँ दृढ़ मूका मार । नख सौँ तनिकर उदर विदार ॥ ३९८ ॥
कत राक्षस काँ मारल राम । कत काँ कपि देल निर्ज्जर-धाम ॥ ३९९ ॥
कत राक्षस काँ अङ्गद मार । अगणित हति हनुमान प्रचार ॥ ४०० ॥
कत जन काँ लक्ष्मण कर नाश । समर जितल यूथप निस्त्रास ॥ ४०१ ॥
समर-जयी कपिराज-प्रताप । ठाढ़ महाप्रभु कर शरचाप ॥ ४०२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

चला । ३८८ 'महोदर' और 'महानाद' नामक सैनिक रावण के हितार्थ लड़ने चले । ३८९ 'निकुम्भ' और 'देवारि' नामक सैनिकों ने वानरों के साथ युद्ध किया । ३९० एक सैनिक 'देवान्तक' नाम का था और एक 'नरान्तक' नाम का । ३९१ इस तरह अनगिनत राक्षस थे, कितने के नाम गिनाएँ ? सभी जोश के साथ विजय की कामना से युद्ध करने लगे । ३९२ वे बढ़ते-बढ़ते वानरों की सेना में घुस गये । ऐसी लड़ाई चली जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । ३९३ ढेलवाँस, तीर, तोप, तलवार और बरछे चलने लगे । ३९४ राक्षसों ने लोहे का कवच पहन-पहनकर तरह-तरह के अस्त्र चलाये । ३९५ वानरी सेना के दलपतियों के साथ मचे युद्ध में एक घोड़ा दूसरे घोड़े का लताड़ (चरण-प्रहार) खाने लगा । ३९६ पहाड़ को चोटियाँ, बड़े-बड़े पेड़, दाँत और नाखून इन्हीं अस्त्रों के सहारे कपिदल ने राक्षसों का संहार किया । ३९७ कितनों को कसकर मुक्का लगाया और नाखून से पेट फाड़ दिया । ३९८ कितने राक्षसों को राम ने मारा और कितनों को कपियों को स्वर्ग भेजा । ३९९ कितने ही राक्षसों को अंगद ने मारा । कितने ही को हनुमान ने मारा । ४०० कितनों का संहार लक्ष्मण ने किया । लड़ाई में जीत हुई । दलपतियों का डर जाता रहा । ४०१ कपिराज सुग्रीव के प्रताप से लड़ाई में विजयी होकर राम हाथ में तीर-धनुष लिये खड़े थे । ४०२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ सोरठा ॥

जखन शुनल बिस-कान, समर शयित अतिकाय-गण ॥ १ ॥
दशमुख शोक-मलान, कोप-विवश हलचल पड़ल ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

मेघनाद लङ्का-रखबार। रावण कयल लड़य सञ्चार ॥ ३ ॥
विकट सुभट राक्षस लेल सङ्ग। चढ़ल दिव्य रथ कोप अभङ्ग ॥ ४ ॥
अस्त्र शस्त्र सभ लय लेल ताकि। प्रभु-सम्मुख रथ चलला हाँकि ॥ ५ ॥
आशीविष सन मारल बाण। कत जन कपिक छाड़ित सन प्राण ॥ ६ ॥
सुग्रीवादिक यूथ-प्रधान। सभ रण शयन रहित भेल ज्ञान ॥ ७ ॥
कोप विभीषण देखलहिँ बाढ़। गदापाणि निर्भय रण ठाढ़ ॥ ८ ॥
कलकौशल सारथि सौँ माँगि। मय-देल गमहिँ चलाओल साँगि ॥ ९ ॥
देखि विभीषण-नाशिनि शक्ति। बध-अयोग्य हमरा मे भक्ति ॥ १० ॥
अभय देल रण मे रघुबीर। लक्ष्मण आगु धनुष लय तीर ॥ ११ ॥

छठा अध्याय

रावण का राम से युद्ध करना; लक्ष्मण को शक्ति लगना

रावण ने यह समाचार सुना कि अतिकाय आदि सेनापति मारे गये। १ यह सुनकर वह शोक से म्लान हो गया। फिर जोश में आकर हलचल मचाने लगा। २ रावण ने लंका की रक्षा का भार मेघनाद को सौंपकर लड़ने के लिए प्रयाण किया। ३ वह बड़े-बड़े लड़ाकू राक्षसों को साथ ले अटूट जोश के साथ दिव्य रथ पर सवार हो गया। ४ खोज-खोजकर सारे अस्त्र-शस्त्र चुन लिये और रथ हाँककर राम के सामने पहुँच गया। ५ उसने साँप-जैसा तीर मारा, जिससे कई वानरों के प्राण जाने-जाने को हो गये। ६ सुग्रीव आदि जितने दलपति थे सभी रणभूमि में सो गये। सबों के होश जाते रहे। ७ विभीषण को हाथ में गदा लिये निर्भीक खड़ा देखते ही रावण गुस्से से भर गया और ८ चुपके से सारथी से वह शक्ति (साँग) हथियार माँग लिया जो उन्हें मय नामक राक्षस से मिला था। उन्होंने अवसर देख उस शक्ति को चला दिया। ९ विभीषण पर छोड़ी गयी उस शक्ति को देख राम ने सोचा कि विभीषण मेरे भक्त हैं, इसलिए इन्हें मृत्यु से बचाना चाहिए। १० ऐसा सोच राम ने उन्हें युद्ध में अभय का वरदान दे दिया। लक्ष्मण धनुष-बाण लिये आगे खड़े थे। ११ वह शक्ति लक्ष्मण के हृदय में जा लगी। वह ऐसी तेज़

लक्ष्मण-हृदय लाग से साँगि। विषम तेहन शक पानि के माँगि ॥ १२
मायाशक्ति जते संसार। सभहिक लक्ष्मण परमाधार ॥ १३
शेष महाप्रभु से अवतार। सहथि सकल धरणिक जे भार ॥ १४
कि करत ततय शक्ति-सङ्घात। जनि फण धरणि सिरिस-फुलपात ॥ १५।
कर रण मानव-लीलाभाव। रावण-मन उत्साह बढ़ाव ॥ १६।
लक्ष्मणके मूर्छित मन जानि। चलब उठाय यहन मन मानि ॥ १७।
कर सौं बल सौं जाय उठाब। जगदाधारक गरिम सुभाव ॥ १८।
उठला नहि कत कयल प्रयास। गर्व उठाओल छल कैलास ॥ १९।
तेहन अनर्थ देखि हनुमान। दौड़ला प्रबल जेहन पवमान ॥ २०।
रावण कों मारल तत जाय। एक मुका दृढ़ हृदय तकाय ॥ २१।
लगइत अशनि-पतन प्रतिभसल। रोकि ठेघुन मुहभर से खसल ॥ २२।
सभ मुख सभ लोचन सभ कान। शोणित बहल पड़ल अज्ञान ॥ २३।
दशमुख घूर्णित-नयन अवाक। रथपर बैशल भयवश ताक ॥ २४॥

॥ सोरठा ॥

भुज भरि लेल उठाय, हनुमान सौमित्रि कों ॥ २५ ॥
देल ततय पहुँचाय, जगन्नाथ रघुनाथ तट ॥ २६ ॥

थी कि उसके लगने पर किसी को पानी माँगने का भी होश न रहता। १२ संसार में जितनी भी माया शक्तियाँ हैं, लक्ष्मण उन सबों के मूल हैं। १३ वे उन शेषनाग के अवतार हैं जो सारी धरती का भार सहते हैं। १४ ऐसे लक्ष्मण को वह शक्ति क्या कर सकती है जिनके फन पर धरती का गिरना शिरीष के फूल के गिरने के बराबर है ? १५ वे तो युद्ध में मानव की लीला दिखा रहे हैं और रावण के मन को उकसा रहे हैं। १६ रावण ने लक्ष्मण को मूच्छित समझकर मन में सोचा कि उठाकर ले जाऊँ। फिर जोर लगाकर हाथ से उठाने लगा, पर जगत के आधार शेषनाग के अवतार लक्ष्मण में असाधारण भारीपन स्वभावत: है। १७-१८ कितना भी प्रयास किया, पर लक्ष्मण को उठा न सका, जब कि उसके मन में कैलाश पर्वत उठाने का घमंड था। १९ ऐसा अनर्थ देख हनुमान वायुवेग से दौड़े। २० वहाँ जाकर रावण के हृदय में एक मुक्का लगाया। २१ उसे लगा जैसे बज्र गिर पड़ा हो। वह घुटने टेककर मुँह के बल धरती पर गिर गया। २२ दसों मुँहों और बीसों आँखों से लहू बहने लगा। वह बेहोश हो लेट गया। २३ उसकी आँखें घूमने लगीं। बोलती बन्द हो गयी। रथ पर लेटा, वह डर से निहारने लगा। २४ हनुमान ने लक्ष्मण को अपनी बाँहों में लेकर उठा लिया और वहाँ पहुँचा दिया जहाँ राम थे। २५-२६ वह शक्ति शेषावतार लक्ष्मण को छोड़ रावण

रावण रथपर जाय, बैसलि शक्ति अनन्त तजि ॥ २७ ॥
दशमुख संज्ञा-पाय, धयल शरासन कोपवश ॥ २८ ॥

॥ रूपमाला ॥

सँभरि रथपर कर-शरासन, चलल रावण क्रुद्ध ॥ २९ ॥
रामचन्द्रक निकट पहुँचल, करक निर्भय युद्ध ॥ ३० ॥
हनूमान अमान-बल, बरयान चढ़ि रघुबीर ॥ ३१ ॥
कयल धनु-टङ्कार जेहन, अशनि-धुनि गम्भीर ॥ ३२ ॥
कहल प्रभु गम्भीर वचनहिं, रे दशानन चोर ॥ ३३ ॥
कतय जयबह एहि समरसौं, निकट अन्तक तोर ॥ ३४ ॥
हनल जे राक्षस-जनालय, तोहर अनुचर लोक ॥ ३५ ॥
तेहन गति हम करब, सम्प्रति छुटत तोहर शोक ॥ ३६ ॥

॥ चौपाइ ॥

रामक वचन शुनल दशभाल । भ्रुकुटी कुटिल नयन सभ लाल ॥ ३७ ॥
पवन-तनय कौं शत्रु विचार । शर अनेक तनि कौं तन मार ॥ ३८ ॥
शर-व्रण-व्यथा वृथा मन मान । केशरि-नाद करथि हनुमान ॥ ३९ ॥
देखि शरजर्ज्जर मारुति-अङ्ग । कालरुद्र सम श्रीप्रभु-रङ्ग ॥ ४० ॥
अश्वसहित रथ ध्वज रथवाह । धनुष शस्त्र सभ तन सन्नाह ॥ ४१ ॥

के रथ पर जा बैठी । २७ रावण को होश आया । फिर कुपित हो उसने तीर-धनुष उठाया । २८ सँभलकर तीर-धनुष लिये रथ पर सवार रावण क्रुद्ध हो चल पड़ा । २९ निडर हो लड़ने के लिए राम के पास पहुँचा । ३० असीम बलवान हनुमान को साथ ले राम अच्छे रथ पर सवार हुए । ३१ धनुष को छेड़कर ऐसा टंकार किया जैसे वज्र गिरने की गम्भीर ध्वनि हो । ३२ फिर राम ने गाढ़ी आवाज़ में कहा— 'अरे चोर रावण ! ३३ इस लड़ाई से उबरकर तुम कहाँ जाओगे ? तुम्हारी मौत पास आ चुकी है । ३४ लंका में जो तुम्हारे पीछे चलनेवाले राक्षस थे, उन सबों का मैंने अन्त कर दिया । ३५ अब तुम्हारा ऐसा हाल करूँगा कि तुम्हारा सारा कष्ट सदा के लिए दूर हो जाएगा ।" ३६ रावण ने राम की बात सुनी । सुनते ही उसकी भौंहें टेढ़ी और आँखें लाल हो गयीं । ३७ हनुमान को शत्रु समझकर रावण ने उनके शरीर पर अनेक तीर मारे । ३८ तीर के घावों की कोई परवाह न कर हनुमान सिंह-गर्जन करने लगे । ३९ हनुमान के शरीर को तीरों से क्षत-विक्षत देख राम मानों प्रलयकाल के रुद्र हो गये । ४० राम ने शर चलाकर रावण के घोड़ों-सहित रथ, ध्वजाएँ, सारथी, धनुष आदि अस्त्र, शरीर का कवच, छत्र, पताका, सबों को काट दिया । राम के बाण का आघात कौन सह सकता

छत्र पताका सभ देल काटि। रघुवर शरक सहय के साटि॥ ४२॥
रावण हृदय अशनि-शर मारि। भूधर उपर जेहन पाकारि॥ ४३॥
थर थर दशमुख रण भे काँप। कर सौं ससरि ससरि खस चाप॥ ४४॥
रघुपति देखल रावण-रङ्ग। रविनिभ मुकुट शरें कय भङ्ग॥ ४५॥
रे रे दशमुख खल कृशप्राण। एखन प्रहार करब नहि बाण॥ ४६॥
घुरि कें लङ्का लज्जित जाह। प्रातहिँ अबिहह जनु अगुताह॥ ४७॥
देखिहह हमर समर-बल प्रात। अहह रहह हनुमान सौं कात॥ ४८॥
मुका तनिक लगतौ एक गोट। यमपुर जयबह कर्म्मक छोट॥ ४९॥
शुनि रावण लज्जित चललाह। विकल अपन बल पाओल थाह॥ ५०॥
लक्ष्मण मूर्छित धरणी-शयन। सकरुण देखल पङ्कजनयन॥ ५१॥
कत विलाप कय कय प्रभु कान। विकल सकल अङ्गद हनुमान॥ ५२॥
ततय विभीषण कहल उपाय। लङ्कादूत महाबल जाय॥ ५३॥
वैद्य सुषेण जनिक थिक नाम। तनिकाँ लय आनथि एहि ठाम॥ ५४॥
ओ औषधि कहता अनुकूल। लक्ष्मण काँ सञ्जीवन-मूल॥ ५५॥
प्रभु-आज्ञा मारुत-सुत जाय। आनल तनिकाँ गमहिँ उठाय॥ ५६॥

है? ४१-४२ राम ने रावण की छाती पर उसी तरह तीर मारा, जिस तरह इन्द्र पर्वत के ऊपर वज्र मारते हैं। ४३ लड़ाई में रावण थर-थर काँपने लगा। उसके हाथ से धनुष खिसक-खिसक कर गिर जाता। ४४ राम ने रावण का यह हाल देखा और उसके सूरज-से चमकीले मुकुट को बाण के प्रहार से तोड़ दिया। ४५ राम ने कहा— "अरे रे दुष्ट रावण, अब तुम्हारी जान थोड़ी सी रह गयी है। अभी मैं तुम पर तीर नहीं चलाऊँगा। ४६ अभी तुम लज्जित हो लंका जाओ। सुबह होते ही फिर आना। हड़बड़ी क्या है? ४७ कल देखोगे कि लड़ाई में मेरी ताक़त कैसी है? अरे, हनुमान से बचकर रहना। ४८ उनका एक ही मुक्का खाकर तुम अभागे यमलोक चले जाओगे।" ४९ यह सुनकर रावण लज्जित और खिन्न हो घर लौट गया और उसे अपनी ताक़त की हद मालूम हो गयी। ५०

संजीवनी लाने का प्रयास; कालनेमि की कथा

इधर राम ने करुण भाव से देखा कि लक्ष्मण धरती पर बेहोश पड़े हैं। ५१ राम बिलख-बिलखकर रोते हैं और अंगद, हनुमान आदि सभी घबराये हुए हैं। ५२ वहाँ विभीषण ने एक उपाय बताया— "हनुमान को दूत बनाकर लंका भेजिए। ५३ सुषेण नाम के जो वैद्य वहाँ रहते हैं, उन्हें यहाँ ले आवें। ५४ वे ही लक्ष्मण के लिए उपयुक्त दवा सजीवन-मूल बताएंगे।" ५५ राम की आज्ञा पाकर हनुमान गये और वैद्य सुषेण को धीरे

कहल वैद्य औषधिक ठेकान। रातिहिं भरि मे जौं एत आन ॥ ५७ ॥
तौं बच लक्ष्मण वीरक प्राण। प्रात होइत होयत नहि त्राण ॥ ५८ ॥
के जायत लायत एत राति। सह सह करइछ राक्षस जाति ॥ ५९ ॥

॥ सोरठा ॥

नल त्रिरात्र घुरि आब, मैन्द द्विविद दुइ राति मे ॥ ६० ॥
से सुग्रीव-प्रभाव, एकराति मे नील घुर ॥ ६१ ॥
चारि पहर मे आब, जाय द्रुहिणगिरि बालिसुत ॥ ६२ ॥
अड़ड़ा लागल नाव, राम विकल सकरुण कहल ॥ ६३ ॥

॥ चौपाइ ॥

समर-शूर रुद्रक अवतार। हनुमानक मुख राम निहार ॥ ६४ ॥
महावीर द्रुहिणाचल जाउ। मृतावस्थ सौमित्रि जिआउ ॥ ६५ ॥
कह हनुमान यथाज्ञा पाय। लायब पर्व्वत त्वरित उठाय ॥ ६६ ॥
सञ्जीवन औषधि अछि हाथ। चिन्ता परिहरु श्रीरघुनाथ ॥ ६७ ॥
जाइत अबइत हयत न देरि। आनब सञ्जीवन कँ फेरि ॥ ६८ ॥
सकरुण हृदय करब नहि जाय। कपि-दल सकल बिकल अकुलाय ॥ ६९ ॥
रावण कँ वार्त्ता भेल कान। औषध काज चलल हनुमान ॥ ७० ॥
कालनेमि-गृह आतुर जाय। चिन्तातुर रावण असहाय ॥ ७१ ॥

से उठा लाये। ५६ वैद्य ने संजीवनी दवा का ठिकाना बताया और कहा कि यदि कोई रात भर में ही वह दवा यहाँ ला दे तो वीर लक्ष्मण के प्राण बच सकते हैं, नहीं तो सुबह होते ही इन्हें कोई बचा न सकेगा ? ५७-५८ राम ने बिलखते हुए कहा— "इतनी रात में कौन जाकर ले आएगा ? क़दम-क़दम पर राक्षसों की भरमार है। नल तीन रातों में द्रुहिणाचल जा, लौट सकते हैं। मैन्द और द्विविद दो रातों में। सुग्रीव भी दो रातों में लौटने की शक्ति रखते हैं। नील एक रात में लौट सकते हैं। बालि के पुत्र अंगद चार पहरों में लौट सकते हैं। नाव औघट में अटक गयी।" ५९-६३ इतना कहकर राम लड़ने में बहादुर रुद्रावतार हनुमान का मुँह देखने लगे और बोले— ६४ "हे महावीर, आप ही द्रुहिणाचल जाइये और मरणासन्न लक्ष्मण को जिलाइये।" ६५ हनुमान ने कहा— "यदि आज्ञा हो तो मैं तुरत उस पर्वत को उठाकर ला दूँ। ६६ हे राम, आप चिन्ता मत कीजिए। मानों संजीवनी बूटी मेरे हाथ में है। ६७ मुझे जाते और आते देर न लगेगी। मैं संजीवनी लेकर लौटूंगा। ६८ हे राम, आप हृदय में करुण भाव मत आने दीजिए। आपको सकरुण देख सारे कपिगण आकुल-व्याकुल हो उठेंगे।" ६९ उधर रावण को खबर हो गयी कि हनुमान दवा लाने चले। ७० रावण चिन्ता से व्याकुल हो

बैसला अर्घ्यादिक सन्मान। से कयलन्हि जे उचित विधान ॥ ७२ ॥
अति आश्चर्य कथा ई लाग। राजागमन सुभवनक भाग ॥ ७३ ॥
कालनेमि कह कहु वृत्तान्त। नृप भय कौ अयलहुँ एकान्त ॥ ७४ ॥
के थिक से कहु करु जनु व्याज। आनन-कमल मलिन भेल आज ॥ ७५ ॥
रावण कहल वचन छल-हील। हमरहु सङ्कट काल-अधीन ॥ ७६ ॥
मय-देल साँगि चलाओल आज। लक्ष्मण मूछित से भल काज ॥ ७७ ॥
सञ्जीवन आनय हनुमान। अति-जव कयल वीर प्रस्थान ॥ ७८ ॥
कपट मुनिक पथ वेष बनाउ। मारुत-नन्दन काँ अटकाउ ॥ ७९ ॥
प्रातहिँ मरता लक्ष्मण नाथ। विजय हमर हयत सङ्ग्राम ॥ ८० ॥
रावण-वचन शुनल से कान। के रोकत चलइत हनुमान ॥ ८१ ॥
कालनेमि कह आज्ञा करब। मारीचक जकाँ सकइत मरब ॥ ८२ ॥
हत भेल पुत्र पौत्र प्रिय लोक। अपनैँ काँ मन नहि हो शोक ॥ ८३ ॥
हमर असुर-कुल-वीर विनाश। अपनैँ काँ अछि जिबइक आश ॥ ८४ ॥
कि करब सीता कि करब राज। डर सौँ समुचित जन के बाज ॥ ८५ ॥
मुनिगण सङ्ग बसू वन जाय। संयम नियम करू समुदाय ॥ ८६ ॥

अकेले कालनेमि के घर गया। ७१ रावण वहाँ बैठा। कालनेमि ने यथोचित रीति से अर्घ्य आदि देकर उसका सत्कार किया। ७२ कालनेमि ने कहा— "बड़े अचरज की बात है। राजा की सवारी घर आयी, यह मेरे सौभाग्य की बात है। कहिए, क्या हाल है ? क्या आप किसी राजा के डर से अकेले आये हैं ? ७३-७४ कहिए, छुपाइये नहीं। वह राजा कौन है ? आपका चेहरा आज उदास लगता है।" ७५ रावण ने ठीक-ठीक बता दिया— "मैं भी काल के वश में हूँ, इसलिए मुझ पर भी एक संकट आ पड़ा है। ७६ आज मैंने मय द्वारा प्रदत्त साँग (शक्ति) चलाया। उससे लक्ष्मण मूच्छित हुए, यह तो भला हुआ। ७७ पर महावीर हनुमान संजीवनी लाने के लिए बड़े वेग से चल पड़े हैं। ७८ आप मुनि का कपट वेष बनाकर हनुमान को अटकाइये। ७९ सुबह होते ही लक्ष्मण मर जाएगा फिर लड़ाई में मेरी ही जीत होगी।" ८० कालनेमि ने रावण की बात सुनकर कहा— "हनुमान को रास्ता चलते कौन रोक सकता है ? ८१ फिर भी मैं आपकी आज्ञा पूरी करूँगा और मारीच की भाँति देखते-देखते मारा जाऊँगा। ८२ आपका बेटा मरा, पोता मरा और कई प्रिय लोग मरे, फिर भी आपके मन में शोक नहीं हुआ। ८३ मेरे राक्षस कुल के वीर एक-एक कर मरते जा रहे हैं; पर आपको अपने ही जीने की आशा है। ८४ सीता को लेकर और राज्य को लेकर आप क्या कीजिएगा ? डर के मारे कोई भी आपसे उचित बात नहीं कहता है। ८५ आप वन जाकर मुनियों के साथ निवास कीजिए और वहाँ मिल-जुलकर संयम-नियम के साथ रहिए। ८६ इस संसार को केवल माया (वंचना) समझिए।

मायामय जानू संसार। सभ जनले अछि ज्ञानविचार ॥ ८७ ॥
हम उपदेश कहै छी गूढ़। काल-विवश ज्ञानी हो मूढ़ ॥ ८८ ॥
ताकब गय की देश विदेश। लोचन-पथ निज पुर परमेश ॥ ८९ ॥
रामचन्द्र विष्णुक अवतार। लक्ष्मण शेष धरणि धर भार ॥ ९० ॥
सीता विष्णुक माया जानि। हठ परित्यागु हेतु की हानि ॥ ९१ ॥
हृदय-कमल प्रभु-ध्यान लगाउ। ई संसार-जलधि तरि जाउ ॥ ९२ ॥
भजु रघुनन्दन सीता-सहित। वैरि-भावनादिक सौं रहित ॥ ९३ ॥
एखनहुँ धरि अछि विजयक आश। तूर झूर जनु लाग हुताश ॥ ९४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाई ॥

लर्लाक उठल रावण खिसिआय। कालनेमि-मुह गेल सुखाय ॥ १ ॥
रामचन्द्र मे तोहरा प्रीति। के न कहत थिक बहुत अनीति ॥ २ ॥

आपको तो ज्ञान की सारी बातें जानी हुई हैं। ८७ फिर भी मैं कुछ रहस्यमय उपदेश कहता हूँ। काल के वश में आकर ज्ञानवान पुरुष भी अज्ञानी हो जाता है। ८८ आप क्यों देश-विदेश में खोजने जाइएगा। परम प्रभु तो स्वयं आपके नगर में आये हुए हैं। ८९ राम विष्णु के अवतार हैं और लक्ष्मण धरती का भार धारण करनेवाले शेषनाग के अवतार हैं। ९० सीता को विष्णु की स्त्री माया समझिए और ज़िद छोड़िए। नाहक बरबादी में क्यों पड़िएगा। ९१ हृदय में प्रभु राम का ध्यान कीजिए और इस संसार रूपी सागर को पार कीजिए। ९२ सीता-सहित राम का भजन कीजिए जिनमें वैर आदि दुर्भावनाएँ नहीं हैं। ९३ अब भी आपको जीत की आशा बनी हुई है, मानो सूखी हुई रुई में आग लग गयी हो।'' ९४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

रूपमाली की कथा; हनुमान द्वारा कालनेमि राक्षस का संहार

रावण गुस्से से आगबबूला हो उठा। कालनेमि देखकर सहम गया। रावण तमककर बोला— १ "तुम्हें रामचन्द्र से प्रीति हो, कौन नहीं कहेगा कि यह एकदम नीति के प्रतिकूल है। २ मैं कुछ और ही सोचता था, पर तुम तो मुझे ज्ञान का उपदेश देने चले हो। ३ जो काम करने को मैंने कहा है वह

अभिप्राय हमरा किछु आन। ई शिखबय लगला अछि ज्ञान ॥ ३ ॥
करह करह गय कहल उपाय। नहि तौँ यमघर देबहु पठाय ॥ ४ ॥
कालनेमि मन कहि चललाह। उचित कहल लागल अधलाह ॥ ५ ॥
तुहिनाचल पर तपवन कयल। मुनिसम स्वाङ्ग सकल से धयल ॥ ६ ॥
योजन-मित एक आश्रम नीक। बुझि पड़ जनु मुनि जनहिक थीक ॥ ७ ॥
शिव शिव कहथि सुवेष विवेक। कालनेमि मुनि शिष्य अनेक ॥ ८ ॥
से आश्रम देखल हनुमान। लगला करय हृदय अनुमान ॥ ९ ॥
की भोथिआय गेल अछि पन्थ। कहता सभटा निकट महन्थ ॥ १० ॥
बाट सोझ हुनका सौँ जानि। जायब तखन पीबि लेब पानि ॥ ११ ॥
आश्रम मध्य गेला हनुमान। ऐन्द्रयोग मुनि कर सविधान ॥ १२ ॥
देखल शिव-पूजन-विधि वेश। मानल चित्त पुण्यमय देश ॥ १३ ॥
मारुतनन्दन कयल प्रणाम। हनूमान सभ जन कह नाम ॥ १४ ॥
रामकाज सौँ क्षीर-समुद्र। जाइत छी पालक छथि रुद्र ॥ १५ ॥
हमरा सहज त्रिकाल-ज्ञान। भाग्यहिँ भेट भेल हनुमान ॥ १६ ॥
रामक दिव्य विलोचन गर्व्व। बचला लक्ष्मण वानर सर्व्व ॥ १७ ॥
छोट कमण्डलु वारि न पूर्त्ति। तृष्णा होइति अद्‌भुत मूर्त्ति ॥ १८ ॥

करो, नहीं तो यमलोक भेज दूँगा।" ४ यह सुनकर कालनेमि ने मन में कहा, "मैंने तो उचित बात कही पर उसे बुरी लगी।" फिर वह विदा हो गया। ५ हिमालय पर्वत पर तपोवन बनाया और हूबहू मुनि का स्वाँग बना लिया। ६ एक योजन का एक सुन्दर आश्रम बनाया जो लगता था जैसे वास्तव में मुनियों का हो। ७ सुन्दर वेष बनाए, मुनि का रूप धारण किए अनेक शिष्यों से युक्त कालनेमि शिव-शिव जपने लगा। ८ हनुमान ने उस आश्रम को देखा और मन में अनुमान करने लगे— ९ "क्या मेरा रास्ता भुला गया? पास की कुटी के प्रधान सारा हाल बताएँगे। १० उनसे सीधा रास्ता जानकर और वहाँ पानी पीकर आगे बढ़ूँगा।" ११ ऐसा सोचकर हनुमान ने आश्रम में प्रवेश किया और देखा कि मुनि विधि-विधानपूर्वक ऐन्द्र-योग कर रहे हैं। १२ शिव-पूजा का सुन्दर विधान देखा और देखकर मन में विश्वास हो गया कि यह धर्म-स्थान है। १३ हनुमान ने उस छद्म मुनि को प्रणाम किया और कहा— "मेरा नाम हनुमान है। १४ राम के काम से क्षीर समुद्र जा रहा हूँ। भगवान रुद्र मेरी रक्षा करनेवाले हैं।" १५ कालनेमि ने कहा— "मुझे अनायास वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों काल का ज्ञान हो जाता है।" १६ राम की अलौकिक दृष्टि की महिमा से सभी वानरों-समेत लक्ष्मण बच गये। १७ कमंडल छोटा है। उसमें पानी भी पूरा-पूरा भरा नहीं है। प्यास बहुत तेज लगी होगी।" १८ यह सुनकर हनुमान ने कहा,

कतय जलाशय से दिय देखाय। सुख सौं पान करब जल जाय ॥ १९ ॥
मुनि-आज्ञा शुनि लेल बटु आगु। मारुतसुत तनि पाछाँ लागु ॥ २० ॥
आँखि मूनि अहँ कय जलपान। सत्वर आउ निकट हनुमान ॥ २१ ॥
मन्त्र एक हम देब उपदेश। त्वरितहिँ देखब औषधि वेश ॥ २२ ॥
गेला जलाशय लोचन मूनि। विबायत पानि शब्द भेल शूनि ॥ २३ ॥
महती मकरी पयरे धयल। पवनक पुत्र पराक्रम कयल ॥ २४ ॥
तनिकर मुह देल हाथें फाड़ि। अन्तरिक्ष गेलि से तन छाड़ि ॥ २५ ॥

॥ रूपमाला ॥

दिव्यरूप-धराङ्गना से रूपमाली नाम ॥ २६ ॥
कहल सभ हनुमान काँ जे कपट छल तहिठाम ॥ २७ ॥
हे कपीश्वर अहँक चरणक परशँ छूटल शाप ॥ २८ ॥
मुनि न थिक ओ विकट राक्षस कालनेमि सपाप ॥ २९ ॥
ओकर जनु विश्वास-कर मन मारु तनिकाँ जाय ॥ ३० ॥
जाउ द्रोणाचल त्वरित अहँ बाट विघ्न मेटाय ॥ ३१ ॥
ब्रह्म-जनपद हम चलै छी कयल पद-सत्योग ॥ ३२ ॥
तकर फल निष्पापिनी हम छुटल शापज भोग ॥ ३३ ॥

"इसके लिए चिन्ता मत कीजिए। जलाशय कहाँ है यह मुझे बता दीजिए ? मैं वहीं जाकर सुविधापूर्वक पानी पी लूँगा।" १९ मुनि की आज्ञा सुनकर एक ब्रह्मचारी बटु को रास्ता बताने के लिए आगे करके हनुमान उनके पीछे-पीछे चल पड़े। २० फिर कालनेमि बोले, "हे हनुमान ! आप जल्द जाइए, आँख मूँदकर पानी पीजिए और लौटकर मेरे पास आइए। २१ मैं एक मंत्र का उपदेश दूँगा जिसके प्रभाव से आप संजीवनी दवा को पहचान जाइएगा।" २२ हनुमान आँख मूँदकर जलाशय गये और ज्यों ही पानी पीने लगे कि एक आवाज़ सुनाई पड़ी। २३ एक भारी मकरी (मादा मगर) ने उनके पाँव पकड़ लिये। हनुमान छुड़ाने के लिए पराक्रम करने लगे। २४ हाथों से उसके मुँह को फाड़ दिया। वह मगर रूपी शरीर को छोड़ आसमान में चली गयी। २५ फिर अपने दिव्य रूप में प्रकट हो गयी। वह यथार्थ में रूपमाली नाम की दिव्यांगना थी। २६ उसने हनुमान को वह सारा हाल बताया कि वहाँ कैसा कपट रचा गया था ? २७ आगे उसने कहा— "हे हनुमान, आपके चरणों के स्पर्श से मेरा शाप समाप्त हुआ। २८ वह मुनि नहीं है, वह तो भयानक पापी राक्षस कालनेमि है। २९ उस पर विश्वास मत कीजिए। जाकर उसे मार डालिए। ३० फिर रास्ते के विघ्नों को दूर करते हुए द्रोण नामक पर्वत पर जाइए। ३१ मैं अब ब्रह्मलोक जा रही हूँ। मैं आपके चरणों का स्पर्श पा चुकी हूँ। ३२ उसके परिणामस्वरूप मैं पाप-

॥ चौपाइ ॥

सुनय देखल कपिवर से चरित। रुष्ट फिरल आश्रम मे त्वरित ॥ ३४ ॥
कालनेमि कह दहिना कान। लाउ निकट झट दय हनुमान ॥ ३५ ॥
उचित दक्षिणा जे अहँ देब। हम सन्तुष्ट पुष्ट भय लेब ॥ ३६ ॥
मुक्का एक मारल हनुमान। ग्रहण करू दक्षिणा विधान ॥ ३७ ॥
प्रकट भेल खल मरइक काल। लड़य भिड़ल कय मायाजाल ॥ ३८ ॥
कतय कमण्डलु मायाजाल। कालनेमि काँ धयलक काल ॥ ३९ ॥
गेल महाबल गिरिवर द्रोण। चिन्हल न यर सञ्जीवन कोन ॥ ४० ॥
गिरि समस्त काँ लेल उठाय। पवनक पुत्र पवन जकँ जाय ॥ ४१ ॥
उत रघुनन्दन सकरुण चित्त। करथि विलाप इ लोक निमित्त ॥ ४२ ॥
लक्ष्मण काँ लेल हृदय लगाय। किअक न प्राण प्रथम विधि जाय ॥ ४३ ॥
मसक-पक्ष-पवनक आघात। उड़ि क्ष्रु जाथि धराधर सात ॥ ४४ ॥
पन्नगेश काँ भेकी खाय। चीटी-उदर करीन्द्र समाय ॥ ४५ ॥
मेषो देखि सिंह वन त्याग। सुधा-अधिक मधु हो कटु साग ॥ ४६ ॥
ई बरु होय कथा थिक अल्प। मिथ्या नहि रघुकुल-सङ्कल्प ॥ ४७ ॥

रहित हो गयी। मेरे शाप के भोग का अन्त हुआ।" ३३ हनुमान ने उस राक्षस कालनेमि का यह हाल सुना और देखा। फिर रोष के साथ तुरन्त आश्रम लौटे। ३४ कालनेमि ने कहा— "हे हनुमान, अब आप तुरन्त अपना दाहिना कान मेरे पास लाइए, मैं मंत्र देता हूँ। ३५ आप जो भी दक्षिणा देंगे, मैं सन्तोषपूर्वक स्वीकार कर लूँगा।" ३६ हनुमान ने एक मुक्का लगाया और कहा— "यह विधिवत दक्षिणा स्वीकार कीजिए।" ३७ तब वह कपट मुनि मरते समय अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ। मायाजाल फैलाकर लड़ाई ठानी। ३८ क्षण में ही कहाँ वह कमंडल चला गया और कहाँ वह मायाजाल? कालनेमि को हनुमान रूपी काल ने ग्रसित कर लिया। ३९ तब महाबली हनुमान द्रोणाचल पर पहुँचे, परन्तु वह पहचान न सके कि संजीवनी कौन सी है? ४० अतः समूचे द्रोणाचल को उठाकर पवनसुत हनुमान पवन की भाँति तेज गति से चल पड़े। ४१ उधर करुण हृदय राम लौकिक लीला के रूप में विलाप करने लगे। ४२ लक्ष्मण को छाती से लगा लिया और चिन्ता करने लगे— "हा विधाता, पहले मेरे ही प्राण क्यों नहीं चले जाते? ४३ मच्छर के पंख की हवा के झोंके से सातों कुलाचल भले ही उड़ जाएँ; ४४ गरुड़ को भले ही छोटा-सा मेढक खा ले; चींटी के पेट में भले ही हाथी समा जाए; ४५ भेड़ को देख सिंह भले ही जंगल से भाग जाए; कड़ुवा साग भले ही अमृत से भी अधिक मीठा हो जाए। ४६ इन सबों का हो जाना कोई बड़ा अचरज नहीं है, पर रघुवंशी के मन में जो भावना आती है वह कभी

रहल मनोरथ ठामहिँ ठाम । अस्त भेल रघुवंशक नाम ।। ४८ ।।
लक्ष्मण सन नहि भेटता भाय । विधिहुक घर अतिशय अन्याय ।। ४९ ।।
रावण जिबइत रहबे कयल । कथि लय बाण धनुष कर धयल ।। ५० ।।
चौदह वर्षक अछि अवसान । समय कयल विधि आनक आन ।। ५१ ।।
जायब की घर बनल सशोक । शुनि शुनि कि कहत ओतयक लोक ।। ५२ ।।
शिव शिव जीवन हमरो व्यर्थ । रमणी-कारण मरण अनर्थ ।। ५३ ।।
वैदेही ई सुनतिह कान । मरती विलपि होइछ अनुमान ।। ५४ ।।
माता तकयित हयती बाट । नोरक लेल धरणि धुर पाट ।। ५५ ।।
धिक धिक जीवन एहि संसार । कुलकलङ्क बिगड़ल व्यवहार ।। ५६ ।।
दुष्ट दैव कँ कि कहब आज । भल जन बस नहि तनिक समाज ।। ५७ ।।
उठु उठु सत्वर लक्ष्मण भाय । दिनमणि-कुलक कलङ्क मेटाय ।। ५८ ।।
शिव शिव कतय गेला हनुमान । जनि कर अर्पल तन ओ प्राण ।। ५९ ।।
देखि पड़इछ सभटा प्रत्यक्ष । ककरो केओ नहि दैव विपक्ष ।। ६० ।।
की राक्षस हनुमान सौँ युद्ध । कियलक पथ मे हमर विरुद्ध ।। ६१ ।।
महावीर कँ कयलक आँट । राक्षस-संघ कि रोकल बाट ।। ६२ ।।

झूठी नहीं हो सकती है । ४७ मेरी योजना ज्यों की त्यों रह गयी । रघुवंश का नाम जाता रहा । ४८ लक्ष्मण-जैसा भाई फिर नहीं मिलेगा । विधाता के घर में भी भारी अन्याय होता है । ४९ अब रावण जीता रह गया । व्यर्थ मैंने धनुष-बाण धारण किया । ५० चौदह वर्षों की अवधि बीतने ही वाली है । ऐन मौके पर विधाता ने क्या से क्या कर दिया ? ५१ शोक में डूबा कैसे घर जाऊँगा ? वहाँ के लोग सुन-सुनकर क्या कहेंगे ? ५२ हाय-हाय ! मेरी भी ज़िन्दगी बेकार है । यदि मैं स्त्री के खातिर मर जाऊँ तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा । ५३ मेरे मरने का समाचार ज्यों ही सीता के कान में पड़ेगा तो लगता है वह रोते-रोते मर जाएगी । ५४ माता राह जोहती होगी । उनके आँसू से धरती की धूल कीचड़ हो गयी होगी । ५५ इस संसार में धिक्कार है मेरी ज़िन्दगी को । मैंने कुल को कलंकित किया । कुल की परम्परा को मैंने बिगाड़ दिया । ५६ आज दुष्ट विधाता को क्या कहूँ ? उनके पास कोई भला आदमी रह नहीं सकता । ५७ हे लक्ष्मण ! उठो-उठो ताकि सूर्यवंश को कलंक न लगे । ५८ हाय-हाय ! वे हनुमान कहाँ चले गये जिनके हाथ में मैंने अपना तन और प्राण भी सौंप दिये हैं । ५९ सारा हाल मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ । यदि विधाता वाम हो तो किसी को कोई बचानेवाला नहीं होता ? ६० क्या मेरी दुश्मनी में किसी राक्षस ने रास्ते में लड़ाई छेड़ दी ? ६१ क्या राक्षसों के दल ने हनुमान को शिकस्त कर रास्ता रोक दिया ?" ६२ ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती, त्यों-त्यों राम घबराते जाते । ६३ कोई सेनापति

जौं जौं बीतलि रजनी जाथि। रामचन्द्र तौं तौं अकुलाथि ॥ ६३ ॥
केओ सेनाधिप प्रश्न विचार। चढ़ि तरु भूधर उपर निहार ॥ ६४ ॥
औषधि सञ्जीवनक समीप। रविसम कान्ति अखण्डित दीप ॥ ६५ ॥
नभ मे शुनि पड़ धुनि बड़ गोट। हर्ष विषाद हृदय नहि छोट ॥ ६६ ॥
रविशशि बिनु को गगन प्रकाश। क्षण मन हर्ष क्षणहिँ मन त्रास ॥ ६७ ॥

॥ सोरठा ॥

गिरि समेत हनुमान, प्रभु-सन्निधि आयल मुदित ॥ ६८ ॥
शुनु रघुपति भगवान, गिरि आनल औषधि सहित ॥ ६९ ॥
हर्ष कहल नहि जाय, करुण गमन वीरागमन ॥ ७० ॥
प्रभु लेल हृदय लगाय, जगत्प्राण-नन्दन बली ॥ ७१ ॥

॥ मत्तगजेन्द्र छन्द ॥

वैद्य सुषेणक सम्मति सौँ, रघुनन्दन दिव्य महौषधि लैकैँ ॥ ७२ ॥
लक्ष्मण वीरक प्राण बचाओल, जे अनुपान यथाविधि दैकैँ ॥ ७३ ॥
सूतल जागल-रीति जकाँ, उठि ठाढ़ तहाँ रण हर्षित भैकैँ ॥ ७४ ॥
गेल कहाँ रणसौँ खल रावण, मारब आज धनुर्द्धर धैकैँ ॥ ७५ ॥

शकुन उचारते थे तो कोई पहाड़ की चोटी पर चढ़कर हनुमान की राह जोहते थे। ६४ संजीवनी बूटी के पास सूरज के समान चमक दिखाई दी, जैसे अखंड दीप जलता हो। ६५ आकाश में बड़ी तेज़ आवाज़ सुनाई पड़ी। उनके मन में भारी हर्ष और विषाद दोनों साथ-साथ होने लगा। ६६ न सूरज है न चाँद, फिर आकाश में प्रकाश कैसा? क्षण ही में उसे संजीवनी की चमक समझकर हर्ष हुआ और क्षण ही में कोई उत्पात समझकर त्रास भी हुआ। ६७ हनुमान पर्वत को उठाए खुशी के साथ राम के पास आये और बोले— ६८ "हे भगवान राम, मैं संजीवनी-सहित पर्वत को ही उठाकर ले आया हूँ"। ६९ राम को जो हर्ष हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। करुण रस का अन्त हुआ और वीर रस फिर लौट आया। ७० राम ने पवनसुत बली हनुमान को हृदय से लगा लिया। ७१ वैद्य सुषेण की राय से राम ने दिव्य महौषधि संजीवनी बतायी गयी रीति के अनुसार अनुपान (योग) के साथ पिलाकर वीर लक्ष्मण के प्राण बचाए। ७२-७३ लक्ष्मण प्रसन्न हो उसी तरह उठ बैठे जैसे सोया हुआ आदमी जागने पर बैठता है और लड़ने के लिए खड़े हो गये और बोले— ७४ "अरे वह दुष्ट रावण रणभूमि से कहाँ भाग गया? आज मैं तीर-धनुष से उसके प्राण ले लूँगा।" ७५ ऐसे कहते हुए लक्ष्मण को राम

॥ जयकरी छन्द ॥

ई कहयित लक्ष्मण लय अङ्क। लागल नहि रघुबंश कलङ्क ॥ ७६ ॥
महावीर रुद्रक अवतार। कपट-महोदधि कयलहुँ पार ॥ ७७ ॥
देखल निरामय लक्ष्मण बीर। अहँक प्रसाद भेल मन थीर ॥ ७८ ॥
कष्ट नष्ट कयलहुँ हनुमान। ई उपकार-दक्ष के आन ॥ ७९ ॥

॥ रूपक ॥

॥ दण्डक छन्द ॥

जय जय अतिबल रघुबर सानुज।
कहि कपि कयल तयारी, बड़ भारी ॥ ८० ॥
रण-बाजा सभ बाजय लागल।
गिरि चढ़ि देखथि मारी, त्रिपुरारी ॥ ८१ ॥
चलल सकल दल लङ्कागढ़ पर।
तरुवर लेल उखारी, गिरिधारी ॥ ८२ ॥
कपि सुग्रीव विभीषण अनुमति।
रोकय चारू द्वारी, रिपुहारी ॥ ८३ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

रामक शर सौं जर्जर काय। बसल निज सिंहासन जाय ॥ ८४ ॥
सिंहक त्रासित जनु गजराज। पराभूत फणि गरुड़-समाज ॥ ८५ ॥

ने छाती से लगा लिया और बोले— "खैर, रघुकुल में कलंक न लगा। ७६ हे महावीर, आप रुद्र के अवतार हैं। आप ने राक्षसों के छल रूपी समुद्र को पार किया। ७७ वीर लक्ष्मण को रोग-मुक्त देखा। आपकी कृपा से मेरा मन प्रसन्न हुआ। ७८ हे हनुमान ! आपने मुझे भारी संकट से उबारा। ऐसा अलौकिक उपकार करने में आपके समान और कौन समर्थ है ?" ७९ तब 'लक्ष्मण-सहित महाबली रामचन्द्र की जय' इस प्रकार जयघोष करके कपियों के दल नें लड़ाई के लिए भारी तैयारी की। ८० लड़ाई के सारे बाजे बजनें लगे। भगवान शिव हिमगिरि पर चढ़कर युद्ध देखने लगे। ८१ सारी सेना ने लंका गढ़ पर चढ़ाई की। कुछ बन्दर पेड़ उखाड़कर हाथ में लिये हुए थे तो कुछ पर्वत लिये हुए। ८२ कपिगण ने सुग्रीव और बिभीषण की आज्ञा के अनुसार शत्रु का संहार करते हुए चारों द्वारों को रोक लिया। ८३

युद्ध से घबराकर रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाया जाना

लड़ाई में राम के तीरों से रावण का शरीर जर्जर हो गया। वह भागकर अपने सिंहासन पर जा बैठा। ८४ जैसे सिंह के डर से हाथी और

कहल दशानन जन सौं खेद । शरपीड़ित तन मन निर्व्वेद ॥ ८६
मरण कहल विधि मानुष-हाथ । सैह उपस्थित छथि रघुनाथ ॥ ८७
अनरण्यक हमरा अछि शाप । से दिन निकट हृदय बड़ काँप ॥ ८८
कहयित छी अनरण्यक उक्ति । से दिन लगिचायल सभ युक्ति ॥ ८९
परमात्मा हमरा कुल आबि । लेता जन्म समय अछि भावि ॥ ९०
तोहरा पुत्रादिक जे हयत । राम-हाथ मृति पर-पुर जयत ॥ ९१
कहि अनरण्य गेला परलोक । तकरे कारण उपगत शोक । ९२
रामक हाथ हमर अछि मरण । त्यागब हम नहि वीराचरण ॥ ९३
सभजन मिलि कें तहँ अहँ जाउ । कुम्भकर्ण काँ जाय जगाउ ॥ ९४
कहबनि हमर दशा सभ गोट । बड़ गोट काय कर्म्म की छोट ॥ ९५
रावण काँ प्राणान्तिक कष्ट । अहँ की शयन-सुखी धिक भ्रष्ट ॥ ९६
सभ जन कयलनि बहुत उपाय । कुम्भकर्ण लग ढोल बजाय ॥ ९७
बहुत उपाय करय लगलाह । कुम्भकर्ण तं नहि जगलाह ॥ ९८
सुनकर वनिता देल उपदेश । लय आनू गायिनि जनि बेश ॥ ९९

गरुड़ के सामने साँप हार कर बैठ जाता है । ८५ रावण अपनी व्यथा अप लोगों से कहने लगा, "तीरों के घाव से मेरे शरीर में दर्द हो रहा है औ मन में ग्लानि हो रही है । ८६ ब्रह्मा ने कहा है कि मेरी मृत्यु मनुष्य के हा से होगी । उसी मनुष्य के रूप में आज राम उपस्थित हैं । ८७ मुझ प अनरण्यक नामक ऋषि का एक शाप है । वह दिन नजदीक आ गया है मेरा कलेजा काँप रहा है । ८८ अनरण्यक ने शाप में जो कहा था वह बतात हूँ । हर तरह से वह दिन आज पास आ गया है । ८९ उन्होंने कहा थ 'ऐसा समय आनेवाला है जब परमात्मा मेरे वंश में आकर अवतार लेंगे । ९ तुम्हें जो पुत्र-पौत्रादि होंगे वे राम के हाथ से मर-मरकर परलोक सिधारेंगे ।' ९ इतना कहकर अनरण्यक मुनि स्वर्ग चले गये । उसी शाप के कारण यह शो आज मुझे आ पड़ा है । ९२ राम के हाथ मेरी मृत्यु निश्चित है; फिर भी वीरोचित कर्म नहीं छोड़ूँगा । ९३ आप सभी लोग मिलकर वहाँ जाइए जह कुम्भकर्ण है और उसे जगाइए । ९४ मेरा जो हाल है वह पूरा-पूरा उस कहिएगा । मेरा शरीर तो बड़ा है, पर करनी बड़ी छोटी है । ९ कहिएगा कि रावण को प्राणान्तक पीड़ा हो रही है और आप आराम से सो हुए हैं । आप भ्रष्ट हो गये । धिक्कार है आपको ।" ९६ सभी लो कुम्भकर्ण के पास गये और ढोल पीट-पीटकर उसे जगाने की कोशिश कर लगे । ९७ बहुत प्रयास करने के बावजूद कुम्भकर्ण न जगा । ९८ कुम्भकर की स्त्री ने सलाह दी, "आप लोग अच्छी-अच्छी गायिकाओं को ले आइए । ९९ उन सुन्दरियों का गान सुनते ही ये जाग जाएँगे, तब आप

उठला शुनि शुनि वनिता-गान। जे कहनीय कहब से कान ॥ १०० ॥
एक दश कानन एक दिश नाँच। भोग रहल लङ्का दिन पाँच ॥ १०१ ॥
कुम्भकर्ण उठला निज सेज। लय पहुँचल राक्षस गण भेज ॥ १०२ ॥
गिरिसम मासुक ढेरी कयल। तीव्र सुरा अगणित घट धयल ॥ १०३ ॥
मदिरा मासु गेला पिबि खाय। कहल बजौलनि बड़का भाय ॥ १०४ ॥
आय भूप कौं कयल प्रणाम। दीन वचन कह दशमुख नाम ॥ १०५ ॥
कुम्भकर्ण हम पड़लहुँ कष्ट। लङ्का-बिभव-निग्रह हत नष्ट ॥ १०६ ॥
पुत्र पौत्र बान्धव हत समर। वानर कुशल बनल अछि अमर ॥ १०७ ॥
वानर राक्षस-भट संहार। समुचित की कर्त्तव्य बिचार ॥ १०८ ॥
रामचन्द्र सुग्रीव-सहाय। लङ्का पहुँचल उदधि बँधाय ॥ १०९ ॥
हमरो दशा देखं छी नयन। अहँ चिर काल करै छी शयन ॥ ११० ॥
सकल सुभट सौं लङ्का हीन। बचि रहलहुँ अछि गनली तीन ॥ १११ ॥
वानर मरय करू से काज। काज जगाय मँगाओल आज ॥ ११२ ॥

॥ सोरठा ॥

अट्टहास शुनि कयल, कुम्भकर्ण भ्राता-वचन ॥ ११३ ॥
नीति कान नहि धयल, पूर्वहि मन्त्र-विचार मे ॥ ११४ ॥

उनसे जो कुछ कहना है सो कहिएगा।" १०० एक ओर क्रन्दन और एक ओर गान। लंका में पाँच दिनों तक यही रंग रहा। १०१ तब जाकर कुम्भकर्ण अपनी शय्या से उठे और राक्षसों का दल सदेश लेकर पहुँचा। १०२ मांस का पहाड़-सा ढेर लगा दिया और अनगिनत घड़े तीखी मदिरा सामने रखी। १०३ जब कुम्भकर्ण सारा मांस खा गया और मदिरा पी गया तब राक्षसों ने कहा कि आपको बड़े भाई रावण ने बुलाया है। १०४ कुम्भकर्ण ने जाकर भाई को प्रणाम किया। रावण ने बिलखते हुए कहा— १०५ "हे कुम्भकर्ण ! मैं मुसीबत में पड़ा हुआ हूँ। लंका की सारी धन-सम्पत्ति नष्ट हो गयी। १०६ मेरे बेटे, पोते और रिश्तेदार लड़ाई में मारे गये, पर वानरों का दल खैरियत के साथ ज़िन्दा है जैसे अमर हो। १०७ बन्दर राक्षसों की सेना को मौत के घाट उतारते गये हैं। अब यह विचार करो कि आगे क्या करना उचित होगा ? १०८ राम सुग्रीव के सहारे समुद्र में बाँध बनाकर लंका पहुँच गया है। १०९ मेरी भी जो हालत है वह तो तुम अपनी आँखों से देख ही रहे हो। तुम तो अधिक समय सोये ही रहते हो। ११० लंका में जितने अच्छे-अच्छे योद्धा थे सभी समाप्त हो चुके हैं, अब हम केवल तीन बचे हुए हैं। १११ अब ऐसा काम करो जिससे बन्दर मरें। काम ही ऐसा पड़ा, इसलिए जगाकर बुलाया।" ११२ भाई रावण की बात सुनकर कुम्भकर्ण अट्टहास कर उठा और बोला— ११३ "आरम्भ में ही मन्त्रणा

॥ चौपाइ ॥

उपगत शत शत जत तत पाप। दिन दिन छिन हो प्रबल प्रताप ॥ ११५ ॥
पूर्व कहल नारायण राम। सीता आदि प्रकृति श्री-नाम ॥ ११६ ॥
नगर विशाला वन गिरि सानु। हम देखल नारद जनु भानु ॥ ११७ ॥
कत चललहुँ अछि हे मुनिनाथ। हम पूछल कह एक न लाथ ॥ ११८ ॥
सकल देव काँ मन्त्र-विचार। होइछ ततय कयल सञ्चार ॥ ११९ ॥
अहँ सौं रावण सौं सभ अमर। पीड़ित कय न शकथि केओ समर ॥ १२० ॥
कहल विष्णु काँ होउ सहाय। रावण काँ मारू महि जाय ॥ १२१ ॥
त्राहि त्राहि हम धयलहुँ चरण। मानुष-कर अछि तनिकर मरण ॥ १२२ ॥
मानुष बनि प्रभु सुख-अवतार। हरण करू अवनिक सभ भार ॥ १२३ ॥
नारायण कयलनि स्वीकार। सैह थिकथि रघुवर अवतार ॥ १२४ ॥
भल भय भय सौं रहु घर बैशि। नहि तौं मरण समर-महि पैशि ॥ १२५ ॥
तनिक चरण-पङ्कज कह भक्ति। यावत अछि एतबो तन-शक्ति ॥ १२६ ॥
भक्तिभाव सौं पायब ज्ञान। भक्ति मुक्तिदा वेद प्रमाण ॥ १२७ ॥

के समय आपने नीतियुक्त उचित बात को अनसुना कर दिया। ११४ ज्यों-ज्यों पाप संचित होते जाते हैं, त्यों-त्यों दिन-पर-दिन प्रताप घटता जाता है। ११५ मैंने पहले ही कहा था कि राम नारायण के अवतार हैं और सीता मूल प्रकृति लक्ष्मी हैं। ११६ मैंने विशाला नाम की नगरी में जंगल के बीच पहाड़ की चोटी पर नारद को जाते देखा जो सूरज के समान चमक रहे थे। ११७ मैंने पूछा कि हे मुनिवर, आप कहाँ चले हैं साफ़-साफ़ मुझे बताइये ? ११८ उन्होंने बताया— 'वहाँ सभी देवता जुटकर आपस में मन्त्रणा कर रहे हैं। मैं वहीं जा रहा हूँ। ११९ सभी देव आपसे और रावण से पीड़ित हैं और आप लोगों से लड़ने की ताक़त उनमें नहीं है।' १२० देवों ने विष्णु भगवान से कहा, 'आप हमारे सहायक होइये और पृथ्वी पर जाकर रावण का वध कीजिए। १२१ बचाइये, हमें बचाइये। हम आपके पाँव धरते हैं। रावण की मृत्यु मनुष्य के हाथ से होनी है। १२२ इसलिए हे प्रभु ! आप मनुष्य रूप में सुखपूर्वक अवतार लीजिए और धरती के सारे भार को दूर कीजिए।' १२३ भगवान विष्णु ने यह निवेदन स्वीकार कर लिया। वही अवतार-पुरुष ये राम हैं। १२४ भले आदमी बनकर आप डर से घर जा बैठिये, नहीं तो रणभूमि में आप मारे जाइएगा। १२५ जब तक इतनी भी ताक़त है, राम के चरणों में भक्ति कीजिए। १२६ भक्ति के सहारे आप ज्ञान पाएँगे। वेद बताते हैं कि भक्ति से मुक्ति मिलती है। १२७ हे भ्राता,

सहज उपाय करब नहि भाय। दुर्म्मति धरब मरब रण जाय॥ १२८॥
नारायणक बहुत अवतार। कहयित कथा बहुत विस्तार॥ १२९॥
सभ सौं श्रेष्ठ ज्ञानि अवतार। से आयल छथि लङ्काद्वार॥ १३०॥
नहि उपाय सम्प्रति किछु आन। रामक शरण करण कल्याण॥ १३१॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे सप्तमोऽध्यायः॥

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः॥

॥ सोरठा॥

शुनल वचन लङ्केश, कुम्भकर्ण समुचित कहल॥ १॥
मानल हृदय कलेश, क्रोधातुर चहलनि उठय॥ २॥
शिखइक नहि अछि ज्ञान, बजबाओल से काज करु॥ ३॥
जाउ जौं मन किछु आन, करु सुषुप्ति निद्रा-विकल॥ ४॥

॥ चौपाइ॥

कुम्भकर्ण शुनि रावण-उक्ति। कालविवश काँ नीति न युक्ति॥ ५॥
समुचित कहल कयल ओ कोप। पापक उपचय शर्म्मक लोप॥ ६॥

यदि आप यह सीधा सा उपाय नहीं कीजिएगा और अपने बुरे इरादे पर अड़े रहिएगा तो लड़ाई में बेमौत मरिएगा। १२८ भगवान विष्णु के बहुत से अवतार हैं। उनकी कथा कहना बड़ा लम्बा काम होगा। १२९ उन सभी अवतारों में सबसे श्रेष्ठ है ज्ञानी के रूप में रामावतार। वही राम लंका के द्वार पर आये हुए हैं। १३० अब और कोई चारा नहीं है। राम की शरण गहने में ही खैरियत है।" १३१

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त॥

आठवाँ अध्याय

कुम्भकर्ण का वध

कुम्भकर्ण का कहा हुआ उचित वचन रावण ने सुना। १ उसे वह बुरा लगा। सुनते ही वह गुस्से में आ गया और तुरन्त उठकर चले जाना चाहा। २ जाते समय कहा— "मुझे तुमसे ज्ञानोपदेश नहीं लेना है। जिस काम से बुलाया है वह काम करो। ३ यदि मन में कोई और बात हो तो जाकर सो जाओ। तुम नींद से परेशान जान पड़ते हो।" ४ रावण की यह बात सुनकर कुम्भकर्ण सोचने लगा— "जिसके सर पर काल सवार हो जाता है उसे नीति नहीं भाती है। ५ मैंने तो उचित बात कही, पर वह कुपित हो

महागोट पर्ब्बत सन काय। चलला समर विषाद विहाय ॥ ७ ॥
रण-मह्हि कयल तेहन से नाद। सातो जलधि रहित-मर्याद ॥ ८ ॥
अति भयकारक कपि-दल जान। कुम्भकर्ण थिक काल-समान ॥ ९ ॥
झपटि झपटि वानर कें खाथि। गिरि सपक्ष सन सत्वर जाथि ॥ १० ॥
मुद्गर लय कर तेहन घुमाव। कालदण्ड गुणि के लग आब ॥ ११ ॥
बहुतक चूर चरण ओ हाथ। बहुत जनक भेटय की माथ ॥ १२ ॥
जाय विभीषण कयल प्रणाम। गदापाणि कहलनि निज नाम ॥ १३ ॥
भाय दया करु भय गेल भेट। रावण रहल न कहल समेट ॥ १४ ॥
बहुत कहल हम नीति बुझाय। अनुचित मानल बड़का भाय ॥ १५ ॥
कि कहब सहल बहुत अपमान। रहितहुँ निकट न बचयित प्राण ॥ १६ ॥
मारल लात हाथ तरुआरि। असमन्धिक जकँ धिक पढ़ गारि ॥ १७ ॥
राम-शरण हम धयल बिचारि। सचिव-चारि-युत कुशल निहारि ॥ १८ ॥
अमृत त्यागि विष लिष के खाय। चुम्बन करय व्यालमुख जाय ॥ १९ ॥
कुम्भकर्ण लघु भ्राता जानि। मिलि कहलनि की तोहर हानि ॥ २० ॥

उठा। पाप संचित होने से सुख का नाश होता है।" ६ ऐसा सोच मन के बिषाद को भुलाकर पर्वतकाय कुम्भकर्ण लडाई के लिए चल पड़ा। ७ रणभूमि में पहुँचते ही उसने जो सिंहनाद किया उससे सातों समुद्र उछलने लगे। ८ कपियों का दल उससे बहुत डर गया। अरे, कुम्भकर्ण तो काल के समान है। ९ वह झपट-झपटकर वानरों को खाता और पाँखोंवाले पहाड़ की भाँति झटपट उड़ जाता। १० जब वह हाथ में मुग्दर ले उसे भाँजने लगता तो उसे कालदण्ड समझ कोई नजदीक आने की हिम्मत न करता। ११ उसने बहुत से वानर भटों के हाथ-पाँव चूर-चूर कर दिये। बहुतों का तो माथा ही लापता हो गया। १२ तब विभीषण हाथ में गदा लिये कुम्भकर्ण के पास गये और उसे अपना नाम कहा और बोले— १३ "हे भाई! मुझ पर दया करो। सौभाग्यवश भेंट हो गयी। रावण मेरी सलाह में नहीं रहा। १४ मैंने उसे बहुत से नीति-उपदेश समझाये। पर मेरे बड़े भाई रावण ने उसे बुरा मान लिया। १५ क्या बताऊँ, मैंने बहुत अपमान बर्दाश्त किया। यदि उसके पास रहता तो मेरे प्राण भी न बच पाते। १६ हाथ में तलवार लिये मुझे लात मारा और ऐसी भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं जैसे मैं उसका रिश्तेदार ही न होऊँ। १७ सोच-विचारकर चारों सचिवों-सहित मैंने राम की शरण गही; क्योंकि इसी में कल्याण देख पड़ा। १८ अमृत को छोड़कर कड़वा जहर कौन पियेगा? साँप के मुँह को चूमने कौन जाएगा।" १९ यह सुनकर कुम्भकर्ण विभीषण को छोटा भाई समझकर उनसे मिले और कहा कि इसमें तुम्हें

महाभागवत थल भल पाय। कुल मे कमल भेलहुँ एक भाय ॥ २१ ॥
नारद सौँ हमरा सभ ज्ञात। जाउ निकट सौँ सम्प्रति कात ॥ २२ ॥
के थिक अपन बुझो नहि आन। सुरा हरल जतबो छल ज्ञान ॥ २३ ॥
कहलनि कुम्भकर्ण जे भाय। कह सुग्रीव चरण लपटाय ॥ २४ ॥
कनयित कनयित भेला बिदाय। कयल निवेदन प्रभु-पद जाय ॥ २५ ॥
कुम्भकर्ण किछु श्रम नहि लेथि। करपद सौँ कपि-दल पिसि देथि ॥ २६ ॥
मुका एक मारल हनुमान। खसला कटला गाछ समान ॥ २७ ॥
कुम्भकर्ण रण उठल सम्भारि। हनुमानक सङ्ग बजरल मारि ॥ २८ ॥
हनुमानक पर मुका चलाय। मूर्छित कय देल अवनि सुताय ॥ २९ ॥
नल-नीलादि सहित कपिराज। पटकल छल सभ किछु नहि बाज ॥ ३० ॥
मातल जेहन प्रबल मातङ्ग। कुम्भकर्ण से धयलनि रङ्ग ॥ ३१ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

कण्ठकूप मे कपिपति जाँतल, सभ प्रधान सङ्ग्राम खसाय ॥ ३२ ॥
कुम्भकर्ण घुरि लङ्का चलला, ककरो बुत नहि बनय उपाय ॥ ३३ ॥

कोई हानि नहीं हुई है। २० तुमने महाभागवतों (उत्कृष्ट विष्णु-भक्तों) के बीच अच्छा स्थान प्राप्त किया। कम से कम एक भाई तो कुल-कमल हुआ। २१ सारा हाल मुझे नारद के मुँह से मालूम है। अभी मेरे सामने से दूर चले जाओ। २२ मदिरा ने जो कुछ भी ज्ञान था उसे हर लिया है। कौन अपना है और कौन पराया, यह भी समझ में नहीं आता है? २३ कुम्भकर्ण ने जो कहा वह विभीषण ने सुग्रीव के पाँव से लिपटकर उन्हें सुनाया। २४ फिर रोते-रोते वहाँ से विदा हुए और राम के पास जाकर उनसे भी सुनाया। २५ कुम्भकर्ण को लड़ाई में कोई श्रम नहीं करना पड़ता था। यों ही कपियों के दल को अपने हाथों और पाँवों से कुचल देता था। २६ हनुमान ने उसे एक घूँसा लगाया। वह कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। २७ कुम्भकर्ण लड़ने के लिए फिर सँभलकर उठा। उसकी हनुमान के साथ लड़ाई छिड़ गयी। २८ उसने भी हनुमान पर एक घूँसा जमा दिया और उन्हें बेहोश कर धरती पर लिटा दिया। २९ नल, नील आदि के समेत जितने बड़े-बड़े योद्धा कपि थे सभी पटके गये थे, अतः कुछ बोल न पाते। ३० जैसे मद से पागल हाथी हो, उसी तरह कुम्भकर्ण लड़ाई में रंग दिखाने लगा। ३१ लड़ाई में सभी सेनापतियों को पछाड़कर कुम्भकर्ण ने सुग्रीव को अपने गले में दबा लिया। ३२ और लौटकर लंका की ओर चल पड़ा। प्रतिकार करने की ताक़त किसी को न रही। ३३ तब अलक्षित रूप से धीरे-

गमहि गमहि अति साहसि कपिपति, हुनकर काटल नासा कान ॥ ३४ ॥
उड़ि नभ अपन कटक चल अयला, कुम्भकर्ण कॉं भेल न ज्ञान ॥ ३५ ॥

॥ बरवा छन्द ॥

सूर्प्पनखा कॉं समुचित, भेलथिन भाय ॥ ३६ ॥
रूप भयङ्कर तिनकर, कहल न जाय ॥ ३७ ॥

॥ बोधय छन्द ॥

लय त्रिशूल कर फिरल भयङ्कर कालमूर्ति जनु आबं ॥ ३८ ॥
नाशा-श्वास-पवन सौं कपिगण योजन बहुत उड़ाबं ॥ ३९ ॥
एक अनक शक से नहि भेले, जे क्षण रण अटकाबं ॥ ४० ॥
प्रबल वेग चल प्रवह जेहन बह, कत कपि नभ लटकाबं ॥ ४१ ॥
नहि सुबाहु खरदूषण नहि हम, नहि कबन्ध वनचारी ॥ ४२ ॥
नहि हम शम्भु-धनुष जे तोड़लह, तथा ताटका नारी ॥ ४३ ॥
सूर्प्पनखा मारीच नीच नहि, जड़ जलनिधि नहि जानह ॥ ४४ ॥
रे रे राम विश्वबलमर्दन, कालमूर्ति मन मानह ॥ ४५ ॥

॥ चौपाइ ॥

वानर विकल देखल रघुनाथ । क्रुद्ध धनुष शर लेलनि हाथ ॥ ४६ ॥
फेकलनि अस्त्र एक वायव्य । अस्त्रसहित काटल भुज सव्य ॥ ४७ ॥

धीरे कपिपति सुग्रीव साहस करके कुम्भकर्ण के गले से निकले। उसकी नाक और कान काट लिये और आकाश में उड़कर अपनी छावनी में लौट आये; कुम्भकर्ण को मालूम ही न हुआ। ३४-३५ शूर्पणखा को जैसा होना चाहिए वैसा भाई मिल गया। कुम्भकर्ण के रूप की भयंकरता वर्णनातीत थी। ३७-३६ फिर कुम्भकर्ण हाथ में त्रिशूल लेकर लौटा। वह वैसा ही भयंकर लगता था जैसा मूर्तिमान काल आ रहा हो। ३८ वह नाक की साँस की हवा से कपियों को कई योजन दूर उड़ा फेंकता था। ३९ किसी को भी ऐसी ताक़त न थी कि लड़ाई में एक क्षण भी उसे अटकाये। ४० वह प्रलयकाल के तूफ़ान की तरह प्रबल वेग से आगे बढ़ता जाता था और कितने ही कपियों को आकाश में फेंक लटका देता था। ४१ उसने राम से कहा— "ओ राम, न मैं सुबाहु हूँ, न खर-दूषण और न जंगली कबन्ध। ४२ न मैं शिवजी का वह धनुष हूँ जिसे तुमने तोड़ा और न मैं नारी ताटका हूँ। ४३ न मैं शूर्पणखा हूँ, न अधम मारीच हूँ और न जड़ समुद्र हूँ। ओ राम, मुझे तुम दुनिया भर की ताक़त को मसल देने में समर्थ प्रत्यक्ष काल समझो, काल!" ४४-४५ जब राम ने देखा कि कपि लोग घबरा गये हैं तब क्रुद्ध हो स्वयं हाथ में धनुष-बाण लिया। ४६ उन्होंने एक वायव्य-अस्त्र चलाया और उससे कुम्भकर्ण की अस्त्र-सहित बायीं

खसल हाथतर कपि जे पड़ल। रहि गेल ठामहिँ नहि संचरल ॥ ४८ ॥
राक्षस लय कर शाल विशाल। रघुवर पर दौड़ल तत्काल ॥ ४९ ॥
इन्द्र-अस्त्र प्रभु मारल ताहि। शालसहित कटि गेल तनि बाँहि ॥ ५० ॥
भुजयुग-रहित चलल खिसिआय। रावण काँ प्राणाधिक भाय ॥ ५१ ॥
अर्द्धचन्द्र दुइ सौँ बुझि बयर। काटि देल प्रभु तनिकर पयर ॥ ५२ ॥
छिन्नचरण महि खसला ढेर। ओँघड़ायित दौड़ल से फेर ॥ ५३ ॥
बड़वामुह सन मुह बड़ बाय। बिधु लग राहु ग्रसय जनु जाय ॥ ५४ ॥
शिलाखण्ड प्रभु शरपर लेथि। कुम्भकर्ण-मुह भरि भरि देथि ॥ ५५ ॥
तदपि न मरय करय सञ्चार। ओँघड़ायितहुँ कपिदल संहार ॥ ५६ ॥
तखन ऐन्द्रधनु अशनि समान। राम धनुष पर कर सन्धान ॥ ५७ ॥
फेकल कयल तनिक संहार। वासव वृत्र समर व्यवहार ॥ ५८ ॥
कुम्भकर्ण शिर लङ्का-द्वारि। तनिक पतन तन वारिधि वारि ॥ ५९ ॥
धर तल जलचर जे पड़ि गेल। तनिकर मरण अकालहिँ भेल ॥ ६० ॥
देखल समर अमर-गण गगन। कयलनि सुमन-वृष्टि मन-मगन ॥ ६१ ॥
खग पन्नग मुनिगण गन्धर्व्व। अतिशय हृदय हर्ष भर सर्व्व ॥ ६२ ॥

बाँह कट गयी। ४७ उसकी कटकर गिरी बाँह के नीचे जो-जो कपि पड़े वे बिना हिले-डुले ही जहाँ थे वहीं निष्प्राण रह गये। ४८ कुम्भकर्ण बचे हाथ में साल का भारी पेड़ लेकर तुरन्त राम पर टूट पड़ा। ४९ राम ने इन्द्र-अस्त्र चलाया और उससे साल के पेड़-सहित उसकी दाहिनी बाँह कट गयी। ५० तब रावण का प्राण से भी अधिक प्यारा भाई दोनों बाँहों से रहित हो गुस्से से आगबबूला हो आगे बढ़ा। ५१ रामचन्द्र ने देखा कि अब भी यह वैर कर रहा है तो दो अर्धचन्द्राकार तीरों से उसके दोनों पाँव काट दिये। ५२ पाँव कटने पर वह लोथ हो धरती पर गिर पड़ा, लेकिन फिर भी लुढ़कते हुए आगे बढ़ा। ५३ बड़वा-मुख (नरक के उत्तरी द्वार) की भाँति उसका मुँह फैला हुआ था। लगता था जैसे राहु चाँद को ग्रसने के लिए जा रहा हो। ५४ राम बड़े-बड़े पत्थरों को तीर पर लेते और उनसे कुम्भकर्ण का मुँह भरते जाते थे। ५५ फिर भी वह मरा नहीं, बल्कि चलता-फिरता ही रहा और लुढ़कते हुए भी कपियों को कुचलता फिरता था। ५६ तब राम ने जैसे इन्द्र के धनुष पर वज्र छोड़ा जाता है उसी तरह अपने धनुष पर तीर चढ़ाया और ५७ चला दिया। उससे कुम्भकर्ण का संहार कर दिया, जैसे इन्द्र ने वृत्र का संहार किया था। ५८ कुम्भकर्ण का सिर लंका के सिंहद्वार पर गिरा और उसका शरीर समुद्र के पानी में गिरा। ५९ जो भी जल-जन्तु उसके धड़ के नीचे पड़े वे सभी बेमौत मारे गये। ६० आकाश से देवता लोग युद्ध देख रहे थे। वे राम की जीत से आनन्दमग्न हो फूल बरसाने लगे। ६१ पक्षी,

नारद मुनि अयला तहिठाम। स्तुति कर धन्य धन्य प्रभु राम॥ ६३॥
विजय सवसर बजबथि वीण। धरणीभार कयल प्रभु क्षीण॥ ६४॥
कुम्भकर्ण सन मारल शूर। सज्जन मुनिक मनोरथ पूर॥ ६५॥
के छथि जनिकाँ देल न कष्ट। सुखित आज छथि दिग्गज अष्ट॥ ६६॥
अपनें क तकलें हो संसार। मुनलय आँखि सृष्टि-संहार॥ ६७॥
प्रकृति पुरुष साक्षी से काल। व्यक्ताव्यक्त त्रिगुणमय जाल॥ ६८॥
सबहिक मूलभूत अहँ राम। बार बार तें करी प्रणाम॥ ६९॥
स्मरण नाम कीर्त्तन गुण करथि। कथा-कथन से संसृति तरथि॥ ७०॥
सभ-ज्ञाता काँ हम की कहब। सुर मिलि नभ सौँ देखयित रहब॥ ७१॥
कृपा करू जाइत छी आज। सिद्धि कयल धरणी सुरकाज॥ ७२॥
चलल मनोगति विधिक समाज। सुरमण्डलि सुख गगन विराज॥ ७३॥
जय अतिबल रघुबर भगवान। भूमि गगन धुनि पूरित कान॥ ७४॥
जय जय शब्द करय कथ जेर। वानर अरिगण काँ नहि टेर॥ ७५॥
कुम्भकर्ण काँ मारल राम। पर्व्वत सन शिर अछि एहिठाम॥ ७६॥

सर्प, मुनि और गन्धर्व सबों के हृदय भारी हर्ष से लबालब भर गये। ६२ नारद मुनि वहाँ पहुँच गये। वे स्तुति करने लगे— "हे भगवान राम, आप धन्य हैं!" ६३ वे ऐन मौक़े पर वीणा पर विजय-ध्वनि बजाने लगे और बोले— "हे प्रभु, आपने धरती का भार दूर किया। ६४ आपने कुम्भकर्ण जैसे वीर राक्षस को मारा। आज भले लोगों और ऋषि-मुनियों की अभिलाषा पूरी हुई। ६५ कौन ऐसा है जिसे इस राक्षस ने कष्ट नहीं दिया? आज आठों दिग्गज सुखी हैं। ६६ आप ही देखते हैं तो दुनिया बन जाती है और जब आप आँखें बन्द कर लेते हैं तो प्रलय हो जाता है। ६७ आप ही प्रकृति, पुरुष और काल हैं। आप ही सांख्य के अनुसार व्यक्त और अव्यक्त तथा त्रिगुणात्मक जगज्जाल हैं। ६८ हे राम, आप सबों के मूल हैं, इसलिए आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। ६९ जो आपका स्मरण करता, जो आपके नाम और गुणों का कीर्तन करता और आपके चरित्र की कथा सुनता है, वह संसार-सागर से तर जाता है। ७० आप सर्वज्ञ हैं, अतः आपसे मैं क्या कहूँ? मैं देवताओं के साथ होकर आकाश से देखता रहूँगा। ७१ कृपा कीजिए, आज जाता हूँ। आपने धरती का और देवगण का काम पूरा किया।" ७२ यह कहकर नारद मुनि मन के समान गति से ब्रह्मा के पास पहुँचे जहाँ आकाश में देवताओं का दल जुटा था। ७३ 'भगवान महाबली रामचन्द्र की जय!' यह ध्वनि धरती और आकाश में कान-कान में भर गयी। ७४ कपि के अनेक दल जय-जयकार कर रहे थे। कपिगण शत्रु को टेरते नहीं। ७५ (किसी ने आकर संवाद दिया—)

सुनि से रावण भूमि लोटाय। कहि भ्राता-गुण शोक समाय ॥ ७७ ॥
क्षण-क्षण मूर्छा क्षण चैतन्य। बरनथि विशद सहज सौजन्य ॥ ७८ ॥
गेलहुँ आज उत्साह-विहीन। मानल गेलहुँ काल-अधीन ॥ ७९ ॥
विह्वल पिती विह्वल लङ्केश। सुनि मेघनाद पहुँचि तहि देश ॥ ८० ॥
परिहरु शोच पिता एहिठाम। हमरा आगाँ के थिक राम ॥ ८१ ॥
अतिबल जिबितहिँ छी घननाद। अपनेँ काँ नहि उचित विषाद ॥ ८२ ॥
स्वस्थ चित्त सौँ रहु महिपाल। हम श्रम करब हरब जञ्जाल ॥ ८३ ॥
अपनेँक शत्रु-समूह संहारि। तौँ जानब हमरा शक्रारि ॥ ८४ ॥
मेघनाद रण चलल सकोप। करब समर रघुवर-बल-लोप ॥ ८५ ॥
भोरहिँ वानर रोकल द्वारि। भेल परस्पर भारी मारि ॥ ८६ ॥
मेघनाद अतिमाया धयल। रथ चढ़ि गगन महा-रव कयल ॥ ८७ ॥
एक एकर नहि लगइछ नीक। विकल सकल दल कहु की थीक ॥ ८८ ॥
होइछ अस्त्र जते संसार। नभ सौँ बरिसय नानाकार ॥ ८९ ॥

"राम ने कुम्भकर्ण को मार डाला। उसका पहाड़ जैसा सिर द्वार पर यहाँ पड़ा है।" ७६ सुनते ही रावण धरती पर लोटने लगा। भाई के गुणों का बखान कर-करके वह शोक में लीन हो गया। ७७ क्षण-क्षण में बेहोश होता और फिर होश में आता था। उसकी सहज भलमनसाहत का विशद वर्णन करता था। ७८ वह विलाप करने लगा— "अब मेरा सारा जोश जाता रहा। आज मान गया कि मैं अब काल के वश हो गया हूँ।" ७९

युद्ध में मेघनाद का आना और तान्त्रिक साधना करना

चाचा कुम्भकर्ण को मृत और रावण को घबराया जान वहाँ मेघनाद आया और पिता को ढाढ़स देने लगा— ८० "हे पिता, यहाँ शोक मत कीजिए। मेरे सामने राम कौन होता है? ८१ मैं निजबल से जीतूँगा, इसलिए आपको दुःख करना उचित नहीं। ८२ हे राजा! आप चैन से रहिए। मैं ताक़त से इस संकट को दूर करूँगा। ८३ आपके सारे दुश्मनों को मैं मौत के घाट उतार दूँगा, तभी आप मुझे इन्द्रजित् समझिएगा।" ८४ इतना कहकर मेघनाद रोष के साथ निकल पड़ा और बोला— "मैं युद्ध में राम की सारी सेना को मटियामेट कर दूँगा।" ८५ सुबह होते ही कपि-सेना ने दरवाजे को रोक दिया। आपस में भारी लड़ाई मच गयी। ८६ मेघनाद ने एक बड़ी माया रची। वह रथ पर सवार हो आकाश में जाकर गरजने लगा। ८७ कपियों ने देखा, रंग अच्छा नहीं लगता। दल के सभी कपि एक-दूसरे से पूछने लगे— "अरे यह क्या हो रहा है? ८८ संसार में जितने प्रकार के अस्त्र होते हैं वे सभी तरह-तरह की आकृति में आकाश से गिर रहे हैं। ८९ जैसे

अविरल वारिद बरिसय नीर। तेहने बरष गगन सौं तीर॥ ९० ॥
समर राम सङ्ग करय प्रताप। शर तन लाग ससरि हो साप॥ ९१ ॥
वानर वल भय थर थर काँप। सगर समर भरि सापहिं साप॥ ९२ ॥
साप लपटि सभहिक तन जाय। रह अवकाश न केओ पड़ाय॥ ९३ ॥
तखन प्रकट भेल पढ़ियित गारि। परिकल छह कय दिन कय मारि॥ ९४ ॥
एतगोट दर्प्प हमर पुर जार। अतिबल राक्षस काँ संहार॥ ९५ ॥
जाम्बवान कहलनि रे दुष्ट। जयबह कतय समर-सन्तुष्ट॥ ९६ ॥
मेघनाद शुनि कय मन क्रोध। रह रे वृद्ध वृद्ध-दुर्बोध॥ ९७ ॥
बुढ़ भनि छोड़ल साहस छोड़। अपना बल काँ के कह थोड़॥ ९८ ॥
देखि प्रताप तदपि नहि ज्ञान। हम छी मेघनाद नहि आन॥ ९९ ॥
शूल चलाओल बचनैं झोंकि। जम्बवान लेल हाथैं लोकि॥ १०० ॥
मारल शूल हृदय मे हाँकि। मूर्छित खसला शकथि न ताकि॥ १०१ ॥
समर-भूमि पद धय घिसिआय। लङ्का फेकि देल खिसिआय॥ १०२ ॥
हर्ष बिषाद नगर भरि भरल। रजनि जानि नहि जनसञ्चरल॥ १०३ ॥

बादल मूसलाधार पानी बरसाता है, उसी तरह आकाश से तीरों की वर्षा हो रही है। ९० यह तो राम के साथ लड़ने में भी अपना प्रताप दिखा रहा है। तीर देह में लगते ही साँप बनकर रेंगने लगते हैं। ९१ कपिदल डर से थर्राने लगा। सारी रणभूमि में साँप ही साँप फैल गये। ९२ ये साँप सबों के शरीर में लिपट जाते हैं। किसी को भागने का भी मौक़ा नहीं मिलता।" ९३ तब गाली बकते हुए वह मेघनाद प्रकट हुआ और बोला— "कई दिन लड़ाई करते-करते तुम्हें आदत लग गयी है। ९४ तुम्हें इतना घमंड हो गया कि मेरे नगर लंका को जला दिया और महाबली राक्षसों का संहार किया।" ९५ जाम्बवान ने जवाब दिया— "अरे बदमाश, लड़ाई से खुश होनेवाले तुम भागकर जाओगे कहाँ ?" ९६ यह सुनकर मेघनाद ने क्रुद्ध हो कहा— "अरे बूढ़ा, वृद्ध होने पर ज्ञान नहीं रहता है। ९७ बूढ़ा समझकर मैंने तुम्हें छोड़ दिया। तुम ढिठाई मत करना। अपनी ताक़त को कौन कम कहता है ? ९८ मेरा प्रताप देख लिया, फिर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुली हैं। तुम नहीं जानते हो कि मैं मेघनाद हूँ ?" ९९ इस बोल के झटके में ही मेघनाद ने बरछा चलाया। जाम्बवान ने उसे आकाश में ही हाथ से पकड़ लिया। १०० और उसी बरछे को मेघनाद की छाती को निशाना करके लौटा दिया। मेघनाद बेहोश हो गिर पड़ा। उसकी आँखें बन्द हो गयीं। १०१ जाम्बवान ने लड़ाई के मैदान में उसे पाँव पकड़ घसीटते हुए गुस्से के साथ लंका में फेंक दिया। १०२ सारे नगर में एक पक्ष में हर्ष और दूसरे पक्ष में बिषाद छा गया। रात समझकर कोई कहीं निकला नहीं। १०३ उधर अशोक वाटिका में राक्षसी

॥ रूपक दण्डक छन्द ॥

॥ सरमाक उक्ति ॥

नागपाश सौँ रण मे बाँधल
सीता तोहर भर्त्ता, उद्धर्त्ता ॥ १०४ ॥
प्रायः एको व्यक्ति नहि छूटल
जे सङ्कट काँ हर्त्ता, अरि मर्त्ता ॥ १०५ ॥
त्यागू मन सौँ पति-प्रत्याशा
पड़लहुँ शोकक गर्त्ता, रुचिकर्त्ता ॥ १०६ ॥
सरमा कहल सत्य कहयित छी
हमहुँ भेलहु दुःखार्त्ता, शुनि वार्त्ता ॥ १०७ ॥

॥ वसन्ततिलका छन्दः ॥

॥ सीता उक्ति ॥

हा राम लक्ष्मण कहू कत की करै छी ॥ १०८ ॥
माया-भुजङ्गमक बन्धन सौँ मरै छी ॥ १०९ ॥
हा स्पष्ट कष्ट हमरे सभ हेतु प्राप्त ॥ ११० ॥
अम्भोजबन्धु-कुल-कीर्त्ति-शशी समाप्त ॥ १११ ॥

॥ नाराचिका छन्द ॥

॥ तिरहुति ॥

पतिगति शुनिय जिवन थोर, फरकय वाम नयन मोर ॥ ११२ ॥
मुनिजन देखल कहल जत, नहि वैधव्य लिखल तत ॥ ११३ ॥

सरमा ने सीता से कहा— "हे सीता, तुम्हारा उद्धार करनेवाले तुम्हारे पति राम लड़ाई में नागपाश से बँध गया है। १०४ शायद ऐसा एक व्यक्ति भी नहीं बचा जो तुम्हारे शत्रु को मारकर तुम्हारी रक्षा करे। १०५ अब फिर अपने पति को प्राप्त करने की आशा मन से दूर करो। विधाता की इच्छा से तुम शोक के गड्ढे में गिर गयी। मैं सच कहती हूँ, यह समाचार सुनकर तुम्हारे दुःख से मैं भी दुखी हो गयी हूँ।" १०६-१०७ यह सुन सीता विलाप करने लगीं— "हा राम, हा लक्ष्मण, कहिए, आप कहाँ हैं ? क्या कर रहे हैं ? १०८ क्या आप माया के नागपाश में बँधकर मर रहे हैं ? १०९ हाय, मुझे ही ये सारे कष्ट झेलने पड़े। ११० क्या सूर्यवंश को उजागर करनेवाला यशचन्द्र अस्त हो गया ? १११ पति का हाल सुनकर तो लगता है कि उनका जीवन अब समाप्त होनेवाला है। पर मेरी बायीं आँख फड़क रही है, जो शुभसूचक है। ११२ जितने ऋषि-मुनियों ने मुझे देखा है, सबों ने कहा है कि मुझे वैधव्य नहीं लिखा है। ११३ राम युद्ध में कभी हारनेवाले नहीं हैं। वे शत्रु

समर-अजय रघुनन्दन, करता अरि-बल-खण्डन ॥ ११४ ॥
यदपि वचन सुनि दुस्सह, मन नहि अपन तेहन कह ॥ ११५ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

गरुड़ वाहन कयलनि राम। चलल विहगपति नभ बलधाम ॥ ११६ ॥
उड़यित उड़ि गेल बहुत पहाड़। गलित होय पन्नग-कुल-हाड़ ॥ ११७ ॥
अयला तखन जखन रघुराज। तनि भय सौं भेल निर्भय काज ॥ ११८ ॥
खगपति खयलनि माया-व्याल। गरुड़क पूर भेल नहि गाल ॥ ११९ ॥
पक्ष-पवन-स्वन प्रलय घटाक। अति दुर्गति लङ्काक अटाक ॥ १२० ॥
सभ जन सुखित दुखित नहि एक। कयल विहगपति अमृतक सेक ॥ १२१ ॥
गिरिवर तरु कपि-दल लय जाय। मारथि राक्षस-भट खिसिआय ॥ १२२ ॥
सकल पड़ायल राक्षस बीर। समर एक नहि रहले थीर ॥ १२३ ॥
नहि मुइला ओ वरक प्रसाद। मेघनाद मन बहुत विषाद ॥ १२४ ॥
रावण-मुख देखि लज्जा आब। मन मन जाम्बवान गुन गाब ॥ १२५ ॥
त्रिकुटाचल-अन्तर-गिरि जाय। मेघनाद अभिचारि नुकाय ॥ १२६ ॥
अरुण वसन गल माला लाल। चन्दन सुमन विधान विशाल ॥ १२७ ॥
अर्द्धचन्द्र कुण्डक निर्माण। आमिष शोणित तत लय आन ॥ १२८ ॥

की सेना का संहार करेंगे ही। ११४ यद्यपि असह्य दुखदायी समाचार सुन रही हूँ, तथापि अपने मन में वैसी आशंका नहीं होती।" ११५ राम ने साँप का उपद्रव देखकर गरुड़ का आवाहन किया। बलवान गरुड़ आकाश में उड़ आये। ११६ उनके उड़ने से बही हवा के झोंके से कई पहाड़ उड़ गये। साँपों की हड्डी गलने लगी। ११७ गरुड़ वहाँ पहुँचे जहाँ राम थे। उनके डर से कपिदल निर्भय हो गये। ११८ गरुड़ उस माया रूपी साँप को खा गये, फिर भी उनके गाल भरे नहीं। ११९ उनकी पाँखों की हवा से जो आवाज हुई वह प्रलयकाल के बादल के गर्जन के समान थी। लंका के महलों का बुरा हाल हो गया। १२० कपिदल में हर कोई सुखी हो गया, किसी को भी कोई शिकायत न रही। मानो गरुड़ ने अमृत की वर्षा कर दी। १२१ कपिगण पहाड़ और पेड़ उठा-उठाकर ले जाने और गुस्से के साथ उससे राक्षस योद्धाओं को पाटने लगे। १२२ राक्षसदल के सारे वीर सैनिक भाग गये। मैदान में एक भी अड़ा न रहा। १२३ वर के प्रभाव से वह मेघनाद मरा तो नहीं, उसका मन बहुत घबरा गया। १२४ रावण को अपना चेहरा दिखाने में उसे लाज लगी। मन ही मन वह जाम्बवान की बड़ाई करने लगा। १२५ तान्त्रिकप्रवर मेघनाद त्रिकूट पर्वत की भीतरी पहाड़ियों में जा छिपा। १२६ लाल वस्त्र पहन लिया। गले में लाल माला डाल ली। सविस्तार विधान के अनुसार चन्दन और फूल जुटाया। १२७ अर्धचन्द्र के

काठ बहेड़ुक कयल से ढेर। होम करय लगलाह सबेर ॥ १२९ ॥
होमक धूम गगन घन-रूप। अनुष्ठान कर चूपहि चूप ॥ १३० ॥
जनल विभीषण से सभ कर्म्म। रघुनन्दन सौँ कहलनि मर्म्म ॥ १३१ ॥
प्रभु कहइत छी हम कल जोड़ि। आन लड़ाइ आइ दिय छोड़ि ॥ १३२ ॥
होमारम्भ कयल घननाद। जकर धूम अम्बर आछाद ॥ १३३ ॥
सौँ सम्पन्न होयत मख-काज। अजय होयत सुरपति-जित आज ॥ १३४ ॥
लक्ष्मण चलथु सैन्य सभ सङ्ग। करथु प्रथम तनिकर मख-भङ्ग ॥ १३५ ॥
मारथु तनिका लड़ि सङ्ग्राम। आज्ञा देल जाय प्रभु राम ॥ १३६ ॥
राम कहल भल हमहीँ जयब। सुरपति-अरि रण-सन्मुख हयब ॥ १३७ ॥
अनल-अस्त्र तनिकाँ हम मारि। बन-दव सम तनिकाँ देब जारि ॥ १३८ ॥

॥ सोरठा ॥

कहल हाथ दुहु जोड़ि, शुनल विभीषण प्रभु-वचन ॥ १३९ ॥
श्री लक्ष्मण काँ छोड़ि, मरत न रावण-सुत समर ॥ १४० ॥
बारह वर्ष विहीन, निद्राहार-विहार सौँ ॥ १४१ ॥
कयल विरञ्चि अधीन, जे तनि कर मर इन्द्रजित ॥ १४२ ॥

आकार के कुण्डल बनवाए। रक्त और मांस वहाँ ले आया। १२८ बहेड़े की सूखी लकड़ी जमा की। सवेरे हवन शुरू कर दिया। १२९ हवन का धुआँ बादल-जैसे आसमान में छा गया। वह चुपके से तान्त्रिक अनुष्ठान करने लगा। १३० यह सारी योजना विभीषण को मालूम हो गयी। यह रहस्य की बात उन्होंने राम को बता दी। १३१ उन्होंने कहा— "हे प्रभु राम, मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ। आज दूसरी लड़ाई छोड़ दीजिए। १३२ मेघनाद ने हवन शुरू किया है जिसका धुआँ आसमान में छाया हुआ है। १३३ यह यज्ञ यदि पूरा हो जाएगा तो इन्द्रजित मेघनाद आज अमर हो जाएगा। १३४ सारी सेना को साथ लेकर लक्ष्मण चलें और सबसे पहले उसके यज्ञ को भंग करें। १३५ वहाँ लड़ाई छेड़कर उसका वध करें। हे प्रभु राम आप इसके लिए आज्ञा दीजिए।" १३६ राम ने कहा— "अच्छी बात है। मैं खुद जाऊँगा और मेघनाद से युद्ध में सामना करूँगा। १३७ उसके ऊपर अग्न्यस्त्र चलाऊँगा और वन में लगी आग की तरह उसे जला डालूँगा।" १३८ राम की बात सुनकर विभीषण ने दोनों हाथ जोड़कर कहा— १३९ "रावण का लड़का मेघनाद लक्ष्मण के सिवा और किसी के हाथ से नहीं मर सकता है। १४० जो व्यक्ति बारह वर्षों तक निद्रा, आहार और विहार के बिना रहकर ब्रह्मा को वश में करेगा, उसके हाथ से इन्द्रजित् मेघनाद का मरण होगा। १४१-१४२ लक्ष्मण जब से अयोध्या से चले, तभी

निद्रादिक परित्याग, अवधि अयोध्यागमन सौँ ॥ १४३ ॥
लक्ष्मण-विषय विराग, रघुनन्दन-सेवा-निरत ॥ १४४ ॥
मरता लक्ष्मण-हाथ, मेघनाद लङ्केश-सुत ॥ १४५ ॥
शुनु शुनु प्रभु रघुनाथ, अपनें क आज्ञा पाबि कें ॥ १४६ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

कहल विभीषण समय विचार। प्रभु सर्व्वज्ञ कयल स्वीकार॥ १ ॥
लक्ष्मण काँ कहलनि अहँ जाउ। खल बधि समर अमर बनि आउ॥ २ ॥
हनुमदादि यूथप सङ्ग रहथि। सन्मुख तनिक प्रहार जे सहथि॥ ३ ॥
जाम्बवान सङ्ग रहता बूढ़। तनिकहि डरय डराइछ मूढ़॥ ४ ॥
सङ्ग बिभाषण मन्त्री लेथु। सकल देखाय बाट ओ देथु॥ ५ ॥
पर्व्वत कतय विवर कोन ठाम। बुझल विभीषण कें निज गाम॥ ६ ॥
कपिदल कति अर्व्वुद सङ्ग्राम। चलल सङ्ग कहि जय जय राम॥ ७ ॥
शुनि लक्ष्मण रघुवरक निदेश। प्रभु-प्रसाद कहलनि से बेश॥ ८ ॥

से रामचन्द्र की सेवा में लगे निद्रा आदि का परित्याग किये हुए हैं और विषय-भोग से विरत हैं। १४३-१४४ इसलिए रावण का बेटा मेघनाद लक्ष्मण के हाथ से मरेगा। १४५ हे प्रभु राम ! सुनिए। आप उन्हें आज्ञा दीजिए। १४६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

नवाँ अध्याय

मेघनाद की तान्त्रिक साधना में बाधा पड़ना और उसका वध

विभीषण ने जो समयानुकूल सुझाव दिया, उसे सर्वज्ञ राम ने स्वीकार किया। १ उन्होंने लक्ष्मण से कहा— "तुम जाओ, उस दुष्ट को लड़ाई में मारकर अमर हो लौट आओ। २ हनुमान आदि दलपति साथ रहेंगे जो उसके सामने अस्त्र-प्रहार को रोक सकें। ३ वृद्ध जाम्बवान साथ जाएँगे, क्योंकि वह मूर्ख उन्हीं से डरता है। ४ मंत्री विभीषण को साथ कर लें जो सही रास्ता बताएँगे। ५ विभीषण का वह अपना गाँव है इसलिए उन्हें मालूम है कि कहाँ पहाड़ है और कहाँ खोह ? ६ लड़ने के लिए कई अरब वानरों का दल 'जय जय राम' कहते हुए प्रस्थान करेगा।" ७ राम का यह निर्देश सुनकर लक्ष्मण ने कहा— "ठीक है, प्रभु की जैसी कृपा हो।" ८ ऐसा कहकर

चलल राम कौं जाय प्रणाम। सुरपति-अरि-मारण मनकाम॥ ९॥
जौं मोर रघुवर-किङ्कर नाम। तौं घननाद जितब सङ्ग्राम॥ १०॥
आज समर शर अरि कौं मारि। स्नान करब भोगावति - वारि॥ ११॥
सहित विभीषण कर शर चाप। चलल महाबल विजय प्रताप॥ १२॥

॥ भुजङ्गप्रयात छन्द ॥

विदा भेलि आबैछ लङ्केश-सेना।
चतुर्दिक्षु देखू घटाटोप जेना॥ १३॥
करू यत्न सौमित्रि छत्री अहाँ छी।
सुरारीन्द्र-संहारकर्त्ता जहाँ छी॥ १४॥
सुरेशारि ई क्षेत्र मे बीर गुप्ते।
करये महाहोम से होय लुप्ते॥ १५॥
दशग्रीव-भ्राताक से शूनि बानी।
कहै छी समीचीन ई लेल मानी॥ १६॥
धनुर्ब्बाण सन्धानि सौमित्रि मारै।
चटाचट्ट दैत्यन्द्र-सेना-कपारै॥ १७॥
हनूमान ऋक्षेश यूथेश पक्का।
महाशैल ओ वृक्ष लै मार धक्का॥ १८॥
तथा शत्रु-सेना महाअस्त्र मारै।
महायुद्ध संघट्ट केओ न हारै॥ १९॥

उन्होंने इन्द्रजित् को मारने की कामना से राम को प्रणाम किया और बोले— ९ "यदि मैं वास्तव में राम का सेवक कहलाता हूँ तो लड़ाई में मेघनाद को अवश्य जीतूंगा। १० आज युद्ध में शत्रु को मारकर भोगावती नदी में स्नान करूंगा।" ११ इतना कहकर विभीषण के साथ हाथ में धनुष-बाण लिये महाबली लक्ष्मण विजय-कीर्ति करने चल पड़े। १२ विभीषण ने कहा— "रावण की सेना प्रस्थान कर चली आ रही है। लगता है जैसे चारों ओर बादल छा गया हो। १३ हे लक्ष्मण, आप सतर्क रहिए। आप क्षत्रिय हैं और इन्द्र के शत्रु मेघनाद का संहार करनेवाले हैं। १४ इसी क्षेत्र में जहाँ अभी आप हैं, इन्द्रजित वीर मेघनाद गुप्त रूप से महाहोम कर रहा है। ऐसा प्रयास कीजिए कि वह यज्ञ ध्वंस हो जाए।" १५ रावण के भाई विभीषण की यह बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा— "आप ठीक कहते हैं। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।" १६ तब लक्ष्मण निशाना साधकर तीर चलाने लगे, जो रावण की सेना के माथे में चटाचट लगते थे। १७ पक्के दलपति हनुमान और जाम्बवन्त पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानों और पेड़ों से धक्का देने लगे। १८ उधर शत्रु की सेना भी बड़े-बड़े अस्त्र चलाती, घमासान लड़ाई होती और कोई

हनूमान छी कौशलाधीश-दासे।
महानन्द सौं भाषि विद्वेषि नाशै ॥ २० ॥
महावीर सद्वीरता मध्य पूरा।
कते शत्रु सेना मिलायोल धूरा ॥ २१ ॥
कहाँ सौं चलंय महाधूम-धारे।
त्वरा जाय देखी करू से विचारे ॥ २२ ॥

॥ नाराच छन्द ॥

चलू चलू महागुहा कि होम ओ करंछ की ॥ २३ ॥
लगैछ आबि दुष्टगन्धि आगि मे धरंछ की ॥ २४ ॥
तहाङ्गदादि जोर सोर मार आँखि कान मे ॥ २५ ॥
लड़ाइ सौं पड़ाय इन्द्रजीत ठक्क ध्यान मे ॥ २६ ॥

॥ चामर छन्द ॥

छोड़ छोड़ ठक्क बक्क-ध्यान होम गाढ़ रे ॥ २७ ॥
चापबाण हाथ लै अनन्त द्वार ठाढ़ रे ॥ २८ ॥
आज वीरताक बेरि मेघनाद तोर रे ॥ २९ ॥
बाप कौं बंधाय के पड़ाय पाप चोर रे ॥ ३० ॥

॥ चौपाइ ॥

मेघनाद गर्जन सह ढेर। इन्द्रादिक कौं जे नहि टेर ॥ ३१ ॥
सहि धिक्कार गारि ओ मारि। छोड़ल होम चलल शक्रारि ॥ ३२ ॥

भी पक्ष टस-मस नहीं होता। १९ 'मैं राम का दास हनुमान हूँ' इस तरह परम आनंद के साथ घोषणा करते हुए हनुमान शत्रु का संहार करने लगे। २० वीरता में अद्वितीय महाबली हनुमान ने बहुत सी शत्रु-सेना को धूल में मिला दिया। २१ विभीषण ने कहा— "धुएं का यह विशाल गुब्बारा कहाँ से निकल जा रहा है ? ऐसा निर्णय कीजिए कि उसे जल्द जाकर देखा जाय। २२ चलिए, चलते चलिए। लगता है वह इसी बड़ी गुहा में हवन करता है। २३ वह न जाने आग में क्या झोंक रहा है, बदबू आ रही है ? २४ अब उसकी आँखों और कानों में तीर, गदा आदि जोर-जोर से मारते जाइए। २५ लड़ाई के मैदान से भागकर वह मेघनाद यहाँ बक-ध्यान लगाए बैठा है। २६ अरे रे वंचक, इस झूठी गहरी समाधि और इस होम को छोड़ो। २७ धनुष-बाण हाथ में लिये शेषावतार लक्ष्मण तुम्हारे दरवाज़े पर खड़े हैं। २८ अरे मेघनाद, आज तुम्हें अपनी वीरता दिखाने का वक़्त आया है। २९ बाप को बँधाकर कौन पापी चोर इस प्रकार भागता है ?" ३० जो मेघनाद इन्द्र आदि को भी परवाह नहीं करता था वह आज इस प्रकार गर्जन सुन रहा है। ३१ धिक्कार,

घर घर घर्कट मर्कट गोल। आयल पशु बिनु कौड़िक मोल ॥ ३३ ॥
होम विघ्न कय वानर लोक। हँसि बहरायल एकहि झोंक ॥ ३४ ॥
मेघनाद देखल बहराय। जय-जय-कार ध्वजा फहराय ॥ ३५ ॥
देखल निज दल अर्दित रङ्ग। बानर भालुक कटक अभङ्ग ॥ ३६ ॥
रथपर चढ़ल धनुष शर हाथ। कहल कतय आबथु रघुनाथ ॥ ३७ ॥
क्षुद्र कीश थिक रह तोर भाग। वानर पर शर हमर न लाग ॥ ३८ ॥
सुरपति - वारण - कुम्भ विदार। लज्जावश न करय सञ्चार ॥ ३९ ॥
हे सौमित्रि हमर विष रोष। नहि देखल छौ की भरि पोष ॥ ४० ॥
मेघनाद थिक हमरे नाम। जयबह कतय विषम सग्राम ॥ ४१ ॥
तहाँ विभीषण कौं देखि ठाढ़। निष्ठुर वचन कोप मन बाढ़ ॥ ४२ ॥
उचितो पितौ कहू कत आज। कुलघातक पातक नहि लाज ॥ ४३ ॥
लङ्का जन्म ततहि सभ कर्म। छाड़ि देल निज वंशक धर्म ॥ ४४ ॥
लङ्केश्वर सन छोड़ल भाय। की छी आनक भृत्य कहाय ॥ ४५ ॥
पुत्रक विषय विषम विद्रोह। केहन हृदय भेल नहि मन मोह ॥ ४६ ॥

गाली और मार सहते-सहते अन्त में वह मेघनाद होम को छोड़ लड़ने के लिए विदा हुआ। ३२ वह बोला— "पकड़ो, इन बेशर्म बन्दरों के दल को पकड़ो! ये हमारे आहार के पशु बिना क़ीमत के आ गये हैं।" ३३ बन्दर होम में विघ्न डालकर एक ही जत्थे में निकल भागे। ३४ मेघनाद ने बाहर आकर देखा, राम का जय-जयकार हो रहा है और ध्वजाएँ फहरा रही हैं। ३५ उसने देखा कि उसकी अपनी सेना का बुरा हाल है और बन्दरों-भालुओं के दल डटे हुए हैं। ३६ वह रथ पर सवार हो, हाथ में तीर-धनुष लिये निकला और बोला— "कहाँ है, आवे अब राम मेरे सामने? ३७ अरे, बन्दर तो क्षुद्र जन्तु है। तुम लोग रहो। तुम भाग्यवान हो, क्योंकि मेरा तीर बन्दर पर नहीं चलता है। ३८ जिसने इन्द्र के हाथी ऐरावत के मस्तक को चीरा है वह मेरा तीर तुम पर चलते लजाता है। ३९ हे लक्ष्मण, तुमने मेरा ज़हर-सा क्रोध पूरा-पूरा देखा नहीं है क्या? ४० मेरा ही नाम है मेघनाद। तुम जाओगे कहाँ? अब देखो दाँत खट्टे करनेवाली लड़ाई।" ४१ फिर वहाँ विभीषण को खड़ा देखकर उसके मन में गुस्सा और भी बढ़ गया तथा वह निष्ठुर वचन कहने लगा— ४२ "चाचा, आज मैं क्या सत्कार का विनय-वचन कहूँ? आप अपने ही कुल को नाश करने का पाप कर रहे हैं। लज्जा नहीं आती। ४३ लंका में जन्म लिया और वहीं सभी कर्म किए; फिर भी आपने अपने कुल-धर्म को त्याग दिया। ४४ लंकेश्वर रावण-जैसे भाई को छोड़ दिया। दूसरे का नौकर कहाकर क्या जी रहे हैं? ४५ आपने अपने बेटे, भतीजे से बुरी तरह विद्रोह किया। कैसा है आपका कलेजा? मन में कुछ

अहाँ कयल निज वंश-विनाश। राजा बनब एहन मन आश ॥ ४७ ॥
करयित छलहुँ अजय हम याग। अहाँ देखाओल गत-अनुराग ॥ ४८ ॥
ई कहि लक्ष्मण देखल वीर। हनुमत्पृष्ठ चढ़ल रण-धीर ॥ ४९ ॥
रथ-वर चढ़ल कुपित घननाद। उद्यत-अस्त्र कहल दुर्वाद ॥ ५० ॥
वानर लोर रुधिर-पय-पान। करत हमर शर सर्पसमान ॥ ५१ ॥
लक्ष्मण धनुष-बाण कर सज्ज। वृथा तोर बल रे निर्ल्लज्ज ॥ ५२ ॥
लक्ष्मण बाण मर्म्म मे मार। भेल घननाद रहित सञ्चार ॥ ५३ ॥
जागल एक मुहूर्त्त बिताय। मन-वैकल्य कहल की जाय ॥ ५४ ॥
लक्ष्मण काँ देखल छथि ठाढ़। कहि कटु कथा कोप मन बाढ़ ॥ ५५ ॥
हमर शूरता पहिला बेरि। बुझि नहि पड़लहु तोहरा फेरि ॥ ५६ ॥
समर-विभव हम देबहु देखाय। शपथ थिकौ नहि जाह पड़ाय ॥ ५७ ॥
कहि लक्ष्मण काँ शर से सात। कयल प्रहार ससरि किछु कात ॥ ५८ ॥
उग्र बाण हनुमानक काय। सात लगौलक मर्म तकाय ॥ ५९ ॥
द्विगुण विभीषण पर कय कोप। कत शर मारल जिव आरोप ॥ ६० ॥

भी मोह-ममता न हुई ? ४६ आपने अपने ही कुल का नाश किया। इसमें राजा बनना ही आपका मंशा था। ४७ मैं अजय-यज्ञ कर रहा था (जो पूरा होने पर मुझे कोई जीत न सकता); पर आपने स्नेह को तिलांजलि देकर राम को दिखा दिया।" ४८ इतना कहने के बाद मेघनाद ने देखा कि वीर व रणधीर लक्ष्मण हनुमान की पीठ पर सवार हैं। ४९ मेघनाद क्रुद्ध हो एक अच्छे रथ पर सवार हुआ। हथियार उठाए ललकारने लगा— ५० "अरे बन्दरो, सर्प के समान मेरा तीर तुम लोगों का लहू रूपी दूध पिएगा।" ५१ लक्ष्मण ने धनुष पर तीर चढ़ाते हुए कहा— "अरे बेहया तुम बेकार अपनी ताक़त दिखाते हो। ५२ लक्ष्मण ने मेघनाद के मर्मस्थल में वह तीर मारा। लगते ही मेघनाद बेहोश हो गया। ५३ फिर एक घड़ी के बाद जागा। उसके मन की विकलता कही नहीं जा सकती है। ५४ सामने लक्ष्मण को खड़ा देखा। मन में क्रोध तेज हो गया और वह कटु वचन बोलने लगा— ५५ "अरे, पहली बार की लड़ाई में तुम्हें मेरी वीरता समझ में न आयी। ५६ इस बार मैं दिखा दूँगा कि लड़ाई में मुझमें क्या ताक़त है ? तुमको सौगन्ध है, मैदान से भागना नहीं।" ५७ ऐसा कहकर उसने कुछ बगल में खिसककर सात तीर मारे। ५८ फिर सात तेज तीर हनुमान के मर्मस्थलों में लगाये। ५९ फिर दूने गुस्से से जी-जान लगाकर विभीषण को अनगिनत तीर लगाये। ६० लक्ष्मण ने ललकारते हुए कहा— "अरे मेघनाद, अब तुम्हारी

॥ घनाक्षरी छन्द ॥

लक्ष्मण कहल ललकि मेघनाद तोर
थोड़ अछि आयु की समर मे समट्टबें ॥ ६१ ॥
दशमुख-बाल बड़ गोट अछि गाल तोर
थोड़ काल मध्य महाकाल-गाल अट्टबें ॥ ६२ ॥
हट्टबें न युद्ध सौं विरुद्ध अस्त्र कट्टबें जौं
चट्टबें महासुरा कतेक गप्प छट्टबें ॥ ६३ ॥
ठट्ठबें कुठाठ तौं समर भूमि लट्टबें तौं
बाण ओ कृपाण सौं काँकड़ि जकाँ फट्टबें ॥ ६४ ॥

॥ चौपाइ ॥

मेघनाद शर कयल प्रहार। लक्ष्मण पर बड़ कोप हजार ॥ ६५ ॥
भेल कवच-विनु लक्ष्मण अङ्ग। लक्ष्मण कयल हुनक से रङ्ग ॥ ६६ ॥
युद्ध परस्पर केओ नहि हार। तन शोणित बह निर्झर धार ॥ ६७ ॥
लक्ष्मण तखन हनल शर पाँच। सारथि रथ न तुरग एक बाँच ॥ ६८ ॥
धनुष आन से आनल हारि। लक्ष्मण काटल तिनि शर मारि ॥ ६९ ॥
मेघनाद काँ रहल न चाप। शर सौं जर्जर थर थर काप ॥ ७० ॥

आयु थोड़ी रह गयी है। युद्ध में क्या सामना कर सकोगे ? ६१ अरे रावण के बेटे, तुम बहुत गाल बजाते हो। थोड़ी ही देर में तुम महाकाल के गाल में समा जाओगे। ६२ अगर लड़ाई के मैदान से भागोगे नहीं, हथियार का जवाब हथियार से दोगे, बहुत अधिक दारू पियोगे, डींग हाँकोगे; ६३ और बदमाशी करोगे तो लड़ाई के मैदान में लिटा दिए जाओगे तथा बाणों और तलवारों के प्रहार से ककड़ी की तरह फट जाओगे।" ६४ यह सुनकर मेघनाद गुस्से से जल उठा और लक्ष्मण पर एक हजार तीरों की बौछार कर दी। ६५ लक्ष्मण का शरीर कवचहीन हो गया। लक्ष्मण ने भी उसका वैसा ही हाल किया। ६६ दोनों के बीच घमासान लड़ाई हुई। कोई हारने का नाम नहीं लेता। दोनों के शरीर से झरने की तरह लहू की धारा बहने लगी। ६७ तब लक्ष्मण ने पाँच तीर छोड़े। तीर लगते ही न सारथि रहा, न रथ और न एक भी घोड़ा। ६८ तब मेघनाद दूसरा धनुष ले आया और लक्ष्मण ने तीन ही तीरों में उस धनुष को भी काट दिया। ६९ अब मेघनाद के पास कोई धनुष न रहा। तीरों से उसका शरीर जर्जर हो गया और वह थर-थर काँपने लगा। ७० फिर उसने काफी हिम्मत करके दूसरा धनुष लिया और खींच-

बड़ साहस सौँ धनु पुनि आनि। लक्ष्मण काँ शर मारय तानि ॥ ७१ ॥
रवि-सन्निभ शर लाख हजार। वानर भालु गोल मे मार॥ ७२ ॥

॥ सोरठा ॥

जय रघुनाथ उचार, ध्यान राम-पद-कमल मे ॥ ७३ ॥
मेघनाद काँ मार, कहि कहि लक्ष्मण ऐन्द्रशर ॥ ७४ ॥
धर्म्मात्मा रघुवीर, सत्यसन्ध दशरथ-तनय ॥ ७५ ॥
रण मे एकहि तीर, तौँ घननादक हो मरण ॥ ७६ ॥

॥ चौपाइ ॥

इन्द्रक शत्रु लड़ल भरि पोष। लगलनि लक्ष्मण-शर से चोष ॥ ७७ ॥
रोकि न शकला से उतपात। धर सौँ शिर भय गेलनि कात ॥ ७८ ॥
रवि-मण्डल-छवि कुण्डल कान। समर शयित से दैव प्रधान ॥ ७९ ॥
कत कह जिवतहिँ अछि घननाद। कत कह मरि गेल विविध विवाद ॥ ८० ॥
अमर सकल नभ कर गुण-गान। जय रघुनाथ देव भगवान ॥ ८१ ॥
स्तुति कर बहुल वृष्टि कर फूल। देखल सृष्टि इष्ट अनुकूल ॥ ८२ ॥
दुन्दुभि-शब्द भेल आकाश। इन्द्रादिक मन छुटि गेल त्रास ॥ ८३ ॥
जिवितहिँ दशमुख शम उतपात। जनि सारक टूटल विषदाँत ॥ ८४ ॥
स्थिरा धरा निर्म्मल भेल गगन। जय-जय शब्द करथि जन मगन ॥ ८५ ॥

खींचकर लक्ष्मण पर तीर चलाने लगा। ७१ वह बन्दरों और भालुओं के दल पर सूरज के समान हज़ारों व लाखों तीरों की बौछार करने लगा। ७२ राम के चरण-कमल में ध्यान लगाये और 'राम की जय' का नारा लगाते लक्ष्मण ने मेघनाद को ऐन्द्र-शर लगाया। ७३-७४ सत्यव्रती राजा दशरथ के पुत्र धर्मात्मा रघुवीर के एक ही बाण से मेघनाद मर सकता था। ७५-७६ इन्द्र के शत्रु मेघनाद ने खूब लड़ाई की। अन्त में लक्ष्मण का तेज बाण उसे लग गया। ७७ वह इस बाण रूपी आपदा को रोक न सका। उसका सिर धड़ से अलग हो गया। ७८ उसके कानों में कुडल सूर्य-मंडल की तरह चमक रहे थे। वह युद्ध-भूमि में सो गया। विधाता सब कुछ कर सकता है। ७९ कोई कहता, मेघनाद जिन्दा ही है और कोई कहता कि मर गया। इस पर तरह-तरह का विवाद होने लगा। ८० आकाश में देवता लोग गुणगान करने लगे— भगवान रामचन्द्र की जय। ८१ स्तुति करते और फूल बरसाते देवताओं ने देखा कि दुनिया में इच्छानुरूप चैन हो गया है। ८२ आकाश में हर्ष के नगाड़े बजने लगे। इन्द्र आदि देवताओं के मन में त्रास का अन्त हुआ। ८३ रावण के जीते ही सारा उपद्रव शान्त हो गया, मानो साँप के जहरीले दाँत तोड़ दिये गये। ८४ पृथ्वी स्थिर हो गयी, आकाश स्वच्छ हो गया, लोग आनन्द में मग्न जय-जयकार करने लगे। ८५ जब कुछ देर में

[illegible]मण वीर अखन श्रम-रहित। बालि-तनय मारुत-सुत सहित ॥ ८६ ॥
[illegible]क धुनि धनुषक टङ्कार। लक्ष्मण कयल विजय व्यवहार ॥ ८७ ॥
[illegible]नि शुनि हर्षक नाद विशाल। मूर्छित उठल हटल श्रम-जाल ॥ ८८ ॥
[illegible]तिशय हर्षित कपि-दल सर्व्व। मारल मेघनाद बड़ गर्व्व ॥ ८९ ॥
[illegible]य-जय लक्ष्मण जय रणधीर। कालहु जित सित अपनेँक तीर ॥ ९० ॥
[illegible]नुमदादि सेनाधिप-सहित। तथा विभीषण दूषण-रहित ॥ ९१ ॥
रामचन्द्र काँ कयल प्रणाम। कुशल सकल जीतल संग्राम ॥ ९२ ॥
[illegible]नें चरणक मुख्य प्रसाद। रण मे शयित अहित घननाद ॥ ९३ ॥
[illegible]ल निरन्तर भरि भरि राति। अतिमायाबल राक्षस जाति ॥ ९४ ॥
[illegible]रल खल काँ लक्ष्मण वीर। हृदय लगाओल कहि रघुवीर ॥ ९५ ॥
[illegible]नाद छल बड़ा लड़ाक। तनिकाँ मारल अहाँ तड़ाक ॥ ९६ ॥
[illegible]कहि धरि छल अछि संग्राम। हिनि जितलय जीतल सभ काम ॥ ९७ ॥
[illegible]र-जर्जर सभ सेना-गात्र। जिति अयलहु अहाँ त्रिगत त्रिरात्र ॥ ९८ ॥
[illegible]-शोक सौँ दशमुख दीन। की कर पौरुष जल बिनु मीन ॥ ९९ ॥

[illegible]गद और हनुमान-सहित वीर लक्ष्मण की थकावट दूर हुई, तब विजय की [illegible]ति के अनुसार लक्ष्मण ने एक बार शंख बजाया और धनुष का टंकार [illegible]या। ८६-८७ विजयोल्लास की यह आवाज़ सुन-सुनकर वे भी उठ खड़े हुए [illegible] बेहोश पड़े थे और सबों की थकान जाती रही। ८८ सारे कपि-दलों में [illegible] छा गया। मेघनाद को मारा यह बड़े गौरव की बात थी। ८९ 'जय हो, [illegible] में अडिग वीर लक्ष्मण की जय हो। आपका तीखा तीर काल को भी जीत [illegible]कता है।' ९० इस तरह बड़ाई करते हुए हनुमान आदि दलपतियों-सहित [illegible]कलुष विभीषण ने राम को प्रणाम किया और उन्हें खुशखबरी सुनाई— "हम [illegible]भी कुशलपूर्वक लड़ाई में विजयी हुए। ९१-९२ मुख्यत: आप ही के चरण [illegible] प्रसाद से हमारा दुश्मन मेघनाद युद्ध में मारा गया। ९३ वह रात-रात [illegible]र लगातार लड़ता रहा। राक्षस लोगों को माया की भारी शक्ति रहती [illegible]। ९४ उस दुष्ट को लक्ष्मण ने मारा।" यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को [illegible]दय से लगा लिया और बोले— ९५ "मेघनाद बहुत ही लड़ाकू था। [illegible]सको तुमने चटपट मार डाला। ९६ मानों लड़ाई इसी तक थी। इसको [illegible]त लिया तो सब जीत लिया। ९७ सभी योद्धाओं के शरीर तीरों से क्षत-[illegible]क्षत हो गये हैं। तुम तीन ही रातों में जीत आये। ९८ रावण तो पुत्र [illegible] शोक से विह्वल हो गया है। बिना जल की मछली के समान वह अब [illegible]या करामात कर सकेगा।" ९९ उधर रावण को विश्वास हो गया कि बेटा

रावण मन मानल सुत-मरण। अतिशय आकुल अन्तःकरण॥ १००
झट झट अट्ट-शिखर चढ़ि ताक। चढ़ल विकल चित चिन्ता-चाक॥ १०१

॥ घनाक्षरी छन्द॥

जय-जय-कार धुनि अमर उचार कर,
शुनि पड़ कान हनुमान-हर्ष-हाक रे॥ १०२॥
ध्वज फहराय बहराय कँ शिखर चढ़ि,
यन्त्र मे लगाय दृष्टि दूरही सौं ताक रे॥ १०३॥
आज मेघनादक समाइ न शुनल शुभ,
जेह सूर्पनखाक काटल कान नाक रे॥ १०४॥
सेह राम-भाय हाय कैलक अन्याय जनु,
अनुमान होइछ देलक शिर डाक रे॥ १०५॥

॥ जयकरी छन्द॥

पक्ष-हीन जनु पड़ल पहाड़। रावण महा-विपट पतझाड़॥ १०६॥
दुष्ट बिभीषण खूनल मूल। सोदर भाय हाय प्रतिकूल॥ १०७॥
विधि भेल वाम इष्ट भेल ठक्क। कालपुरुष नहि ककरो शक्क॥ १०८॥
जोर नोर बह बीशहु आँखि। खग भेल लोथ कतरलय पाँखि॥ १०९॥
कि कहब मन्दोदरी-विषाद। जिबयित मरण शरण घननाद॥ ११०॥

मेघनाद मारा गया। उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। १०० वह झटपट ऊँची अटारी पर चढ़कर देखने लगा। उसका दिमाग़ चिन्ता से चकराने लगा। १०१ देवता लोग जय-जयकार का नारा लगा रहे हैं। जीत के हर्षोल्लास में लगाई गई हनुमान की किलकारी सुनाई पड़ रही है। १०२ विजय-ध्वजाएँ फहरा रही हैं। रावण पहाड़ की चोटी पर चढ़कर दूर-दर्शी यन्त्र में आँख लगाकर दूर ही से देख रहा है और सोच रहा है— १०३ "आज मेघनाद का शुभ समाचार नहीं मिल रहा है। जिसने शूर्पणखा के कान नाक काटे उसी राम के भाई लक्ष्मण ने शायद अनर्थ कर दिया। लगता है कि उसने मेरा सर्वनाश किया।" १०४-१०५ रावण उस पहाड़-सा पड़ा हुआ है जिसकी पाँखें काट दी गई हों। मानो विशाल वृक्ष में पतझड़ हो गया हो। १०६ दुष्ट विभीषण ने उसकी जड़ खोद दी। अपना सगा भाई दुश्मन हो गया। १०७ विधाता वाम हो गये। जो हित थे वे वंचक हो गये। काल किसी के भी वश में नहीं होता। १०८ रावण की बीसों आँखों से आँसू ढल रहे थे। उसका हाल पंख कटे पक्षी का-सा हो गया। १०९ मन्दोदरी को जो विषाद हुआ वह क्या कहा जाय। उसको जिन्दगी मौत-सी लगती थी, क्योंकि मेघनाद ही उसका प्राणाधार था। ११० आज देवता लोगों का

भेल देवगण आज। ऋषि मुनि जन मन बलि गेल काज ॥ १११ ॥
धिक हमरहु शत्रु कलङ्क। पड़ल गजेन्द्र विषम थल पङ्क ॥ ११२ ॥
से पुन दैत्य संहार। जिबयित रावण कपि-सञ्चार ॥ ११३ ॥
धिक मेघनाद बल तोर। उठि की कुम्भकर्ण भेल जोर ॥ ११४ ॥

॥ मत्तगजेन्द्र छन्द ॥

वास सदा मणिमन्दिर मे
तहँ खाट मनोहर रत्नमणि-पावा ॥ ११५ ॥
गेलि विलास-कला सकला
उत धान धरी मुह होइछ लावा ॥ ११६ ॥
कोटि विलाप करै वनिता
कहि भेलहुँ आज उपाय अभावा ॥ ११७ ॥
की लिखि देल ललाटक पट्ट मे
बूझि न से बुढ़बा विधि बाबा ॥ ११८ ॥

॥ चकोर छन्द ॥

लै कहु खड्ग दशानन दौड़ल रामप्रिया हम मारब आज ॥ ११९ ॥
मन्त्रि सुपार्श्व बुझाब विपत्ति मे हे प्रभु ई नहि भूपति-काज ॥ १२० ॥
वीर अहाँ रणधीर महाशय तुल्य अहाँक कहाँ महराज ॥ १२१ ॥
ई शुनि देखि कहू ककरा नहि स्त्रीबध उत्सव हो मन लाज ॥ १२२ ॥

दूर हुआ। ऋषियों व मुनियों की कामना पूरी हुई। १११ रावण कहता है— धिक्कार है मुझको कि मुझे भी कलंक लगानेवाला शत्रु मिल गया। मानो गजराज गहरे कीचड़ में फँस गया। ११२ और वह शत्रु भी एक मामूली तापस है। इतना ही नहीं, वह तो राक्षसों का संहार करते जा रहा है। फिर भी रावण ज़िन्दा है, और वानरदल सक्रिय है। ११३ हे मेघनाद! तुम्हारी ताक़त को भी धिक्कार है। हे कुम्भकर्ण, तुम्हें जगाकर ही क्या हुआ? ११४ मन्दोदरी विलाप करती है— "मैं सदा रत्नमय भवन में रहती थी और क़ीमती पावों वाले सुन्दर पलंग लगे रहते थे। ११५ मेरी वह सारी विलासिता खत्म हो गई। इतनी सन्तप्त हूँ कि मुँह में धान रखूँ तो वह फूटकर लावा हो जाय।" ११६ रावण की स्त्री मन्दोदरी अपार विलाप कर रही है— "आज मैं सारे साधनों से हीन हो गई। ११७ बूढ़े बाबा विधाता ने ललाट में न जाने क्या लिख दिया है।" ११८ रावण क्रुद्ध हो तलवार लेकर यह कहते दौड़ा कि आज सीता को मार डालूँगा। ११९ सुपार्श्व नाम के उसके मन्त्री ने उसे समझाया— 'हे प्रभु! विपत्ति के समय राजा को ऐसा काम नहीं करना चाहिए। १२० आप वीर हैं, रणधीर हैं, ऊँचे विचार वाले हैं, अतः ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता। १२१ यह

॥ सोरठा ॥

सब जन मिलि तत जाय, मारब लक्ष्मण राम काँ ॥ १२३ ॥
अहँ पौलस्त्य कहाय, स्त्रीवध अनुचित सर्वथा ॥ १२४ ॥
लज्जित भवन प्रवेश, कयल दशानन विकल-मन ॥ १२५ ॥
पुछल सकल दनुजेश, प्रात सभा मे आबि पुन ॥ १२६ ॥

॥ चौपाइ ॥

मानव बानर दानव मार। आनब बल हम कोन अपार ॥ १२७ ॥
शलभ नाम मन्त्री बल अनल। चलल समर रघुबर शर-अनल ॥ १२८ ॥
जत राक्षस आबथि संग्राम। सभ काँ लोटपोट कर राम ॥ १२९ ॥
अपनहु बहुत दशानन लड़ल। रघुबर-शर-जर्जर भय पड़ल ॥ १३० ॥
हृदय-मध्य वेधित एक बाण। लङ्का अयला मूर्छित प्राण ॥ १३१ ॥

॥ दोहा ॥

लङ्का सती सुलोचना, पति घननाद समाप्त ॥ १३२ ॥
लक्ष्मण-शर-प्रेरित सुभुज, तनि आङ्गन सम्प्राप्त ॥ १३३ ॥

बात सुनकर और सोच-समझकर बताइए कि स्त्री-वध करके उछाह मनाना किसके लिए लज्जा की बात न होगी ? १२२ हम सभी लोग मिलकर वहाँ जाएँगे और लक्ष्मण तथा राम को मारेंगे। १२३ आप पुलस्ति के नाती कहाते हैं, अतः आपके लिए स्त्री-वध करना एकदम अनुचित है।" १२४ यह सुनकर रावण लज्जित हो गया और लहू का घूँट पीकर अपने भवन में चला गया। १२५ फिर सुबह होने पर रावण ने दरबार लगाया और सबों से पूछा— १२६ "मनुष्य और बन्दर राक्षसों को मारता जा रहा है। अब मैं इतनी सेना कहाँ से लाऊँगा ? हे मन्त्रियो, युद्ध में राम के तीर रूपी आग में मेरी सेना पतंग की तरह जलती जा रही है।" १२७-१२८ लड़ाई के मैदान में जो भी राक्षस आते सबों को राम मौत के घाट उतार देते। १२९ खुद रावण ने भी बहुत लड़ाई की और अन्त में राम के तीरों से क्षत-विक्षत हो धराशायी हो गया। १३० उसकी छाती में एक तीर बिंध गया और वह बेहोश ही लंका ले आया गया। १३१

सुलोचना का विलाप और सती होना

लंका में मारे गये मेघनाद की पत्नी सुलोचना रनिवास में थी। लक्ष्मण के तीर के सहारे फिकाई हुई मेघनाद की एक बाँह उसके आँगन में आ गिरी। १३२-१३३ उस पर एक दासी की नज़र पड़ी। उसने अपनी मालिकिन

॥ चौपाइ ॥

दासी एक देखल से नयन। स्वामिनि सौं कहलनि से अयन ॥ १३४ ॥
आङ्गन मध्य गगन सौं बाँहि। खसल बाणयुत भेलहुँ बताहि ॥ १३५ ॥
स्वामिनि चलु चलु देखू आज। आपत की मर्य्यादा लाज ॥ १३६ ॥
फणिगेश - तनया तत गेलि। भुज कँ देखि विकल-मन भेलि ॥ १३७ ॥
फरकै छल अछि दक्षिण अङ्ग। परिणत फल की लगइछ रङ्ग ॥ १३८ ॥
कर करुणा अरुणायतनयन। भुज-जित-विश्व समर-महि शयन ॥ १३९ ॥
लवणोदधि हो अमृत समान। कनकाचल त्यागथि स्वस्थान ॥ १४० ॥
सुरगुरु मूक मूक वाचाल। झपटि सिंह कँ मार श्रृगाल ॥ १४१ ॥
अद्भुत नहि विस्तर संसार। वानर नर सुरवर-जित मार ॥ १४२ ॥
पतिभुज तन्द्रा करु परित्याग। हयब सती हम पूरण भाग ॥ १४३ ॥
जौं हम सत्य सती मन साँच। लिखि प्रमाण कहु सभ जन बाँच ॥ १४४ ॥

॥ सोरठा ॥

भुज देल हाथ पसारि, देखल सती सुलोचना ॥ १४५ ॥
सुमती चित्त विचारि, खड़ी धरायोल हाथ मे ॥ १४६ ॥

सुलोचना को सूचित किया— १३४ "हे स्वामिनी, आँगन में तीर-लगी एक बाँह आसमान से गिरी है। मैं तो उसे देख पागल हो गई हूँ। १३५ हे स्वामिनी, आज चलकर देखिए। संकट के समय लज्जा क्या और मर्यादा क्या।" १३६ सुलोचना वहाँ गई और बाँह देखते ही व्याकुल हो गई। वह बोली— १३७ "मेरा दाहिना अंग फड़क रहा था। लगता है, यह उसी का बुरा फल है। १३८ हे लाल और बड़ी-बड़ी आँखोंवाले मेरे प्यारे, दया कीजिए। हाय, जो अपने बाहुबल से सारी दुनिया को जीतनेवाले थे, वे ही आज लड़ाई के मैदान में सोये हुए हैं। १३९ खारा समुद्र अमृत के समान हो सकता है। सुमेरु अपनी जगह छोड़ सकता है। १४० देवताओं के गुरु बृहस्पति गूंगे हो सकते और गूंगा वक्ता बन सकता है। सियार झपटकर सिंह को मार सकता है। १४१ संसार में अचरजों का अन्त नहीं है। यह भी आश्चर्य है कि बन्दरों और मनुष्यों ने इन्द्र को जीतनेवाले मेघनाद को मार दिया। १४२ हे मेरे पति की बाँह, आप आलस छोड़िये। मैं सौभाग्यवश अब सती होऊँगी। १४३ यदि मैं सचमुच में सती हूँ और मेरा हृदय पवित्र है, तो हे बाँह, आप लिखकर प्रमाणित कीजिए ताकि सब पढ़ ले।" १४४ इतना सुनकर सती सुलोचना ने देखा कि बाँह ने हाथ फैला दिया है। १४५ फिर बुद्धिमती सुलोचना ने सोच-विचारकर उस हाथ में खरिया डाल दिया। १४६ उस हाथ ने रत्नों से बने फर्श पर खरिया से लिख दिया—

॥ चौपाइ ॥

मणिमय आँगन लिखलनि हाथ। परमेश्वर जानू रघुनाथ ॥ १४७ ॥
धरा - भार - धर पन्नग जैह। जानक थिक लक्ष्मण कीं सेह ॥ १४८ ॥
तनिकहि हाथ हमर भेल मरण। सुखमय अभय स्वर्ग भेल शरण ॥ १४९ ॥
निद्राहार विहार विराग। मनस्पथहु नहि दूषण लाग ॥ १५० ॥
सति शुभमति चिन्ता नहि करिय। सङ्ग हमर सुरपुर सञ्चरिय ॥ १५१ ॥
राम समक्ष माथ अछि धयल। लय आनू लिखि सूचित कयल ॥ १५२ ॥
निरुपद्रव रघुनाथ - समीप। श्वशुर विभीषण छथि कुल दीप ॥ १५३ ॥
की सुख राज्यभोग अवसान। उत्तम गति देलनि भगवान ॥ १५४ ॥
सुरपति-जित-गृहिणी निज गेह। तन धन जन मन सौँ तजि नेह ॥ १५५ ॥
सकल अनित्य विश्व मन मानि। चललि दशानन-तट गुरु जानि ॥ १५६ ॥
मणिमय यान पतिक भुज धयल। अपनहुँ चढ़लि शोक नहि कयल ॥ १५७ ॥
अमरेश्वर - जित - अबला सङ्ग। चलल पदाति महीपति-रङ्ग ॥ १५८ ॥
दासी सकल विकल भय कान। आज अभाग्य देल भगवान ॥ १५९ ॥
वैतालिक आगाँ एक जाय। विकल दशानन कहल बुझाय ॥ १६० ॥

"राम को परमेश्वर समझिये। १४७ धरती के भार को उतारनेवाले जो शेषनाग हैं लक्ष्मण को उन्हीं का अवतार समझिये। १४८ मेरी मृत्यु उन्हीं के हाथ से हुई है। मरने पर मुझे सभी सुखों से युक्त और भय से मुक्त स्वर्ग मिला है। १४९ सोना, खाना-पीना और घूमना-फिरना सबसे तुम्हें विराग रहा (एकमात्र मुझमें अनुराग रहा)। तुम्हें मन के रास्ते भी कोई पाप छूने न पाया। १५० हे भले विचारवाली सती, तुम चिन्ता मत करो। मेरे साथ स्वर्ग में विहार करो। १५१ मेरा सिर राम के आगे रखा हुआ है", हाथ ने लिखकर जनाया— "उसे ले जाओ। १५२ तुम्हें राम के पास कोई असुविधा न होगी। कुल को उजागर करनेवाले तुम्हारे ससुर विभीषण वहाँ हैं ही। १५३ राजसुख भोगने के बाद मुझे यह स्वर्गसुख मिला है। भगवान ने मुझे उत्तम गति दी है।" १५४ इतना जानकर इन्द्रजित् मेघनाद की पत्नी सुलोचना ने तन, धन और जन सबों से नाता तोड़ दिया; १५५ संसार की हर वस्तु को नाशवान् समझ लिया, और ससुर समझकर रावण के पास गई। १५६ पति की बाँह को रत्नों से रचित रथ पर रखा और शोक को दबाकर खुद भी उस रथ पर चढ़ गई। १५७ इन्द्रजित् की पत्नी के साथ पैदल सेना उसी तरह चली जिस तरह राजा के साथ चलती है। १५८ सभी दासियाँ फूट-फूटकर रोती हैं— हाय, आज भगवान ने हमें भाग्यहीन बना दिया। १५९ एक हरकारा आगे गया और शोकाकुल रावण को सूचना दी— १६० "आपकी सती पुत्रवधू सुलोचना आई हुई हैं। वे आपसे

॥ सोरठा ॥

सती पुछोह अहाँक, आइलि छथि कहतीह किछु ॥ १६१ ॥
हुनि शिर पड़ि गेल डाक, मेघनाद-शिर समर अछि ॥ १६२ ॥
देखल आँखि उघारि, लय आनू तट पालकी ॥ १६३ ॥
बिश लोचन बह वारि, कहल विकल दशकण्ठ तहँ ॥ १६४ ॥
पति भुज देल उघारि, सती धरणि मूर्छित खसलि ॥ १६५ ॥
पुन उठि समय विचारि, श्वशुर-चरण लपटाय कह ॥ १६६ ॥

॥ गीत ॥

॥ वियोगि-मालव छन्द ॥

से पहु हमर गेला रे, रे परलोक।
हमरहि हृदय असह शोक ॥ १६७ ॥
जरब न पहु सङ्ग रे, रे यावत।
विरह - दहन - दुख तावत ॥ १६८ ॥
सकल-भुवन-राज रे, रे सभ सुख।
जखन देखब इन्द्रजित-मुख ॥ १६९ ॥
आब हमर मन रे, रे निरभय।
सुमति युगुति सति जीव दय ॥ १७० ॥

॥ त्रिभङ्गी छन्द ॥

पतिसङ्ग हम जायब अनल समायब
घुरि नहि आयब पुनि धरणी ॥ १७१ ॥

कुछ निवेदन करना चाहती हैं। १६१ उनका सर्वनाश हो गया। मेघनाद का सिर लड़ाई के मैदान में गिरा हुआ है।" १६२ रावण ने आँखें खोलकर उनकी ओर देखा और कहा— "पालकी को मेरे पास ले आइये।" १६३ शोकवश उसकी बीसों आँखों से आँसू बह रहे थे। १६४ सती सुलोचना ने अपने पति की बाँह खोलकर रख दी और खुद बेहोश हो गिर पड़ी। १६५ फिर होश में आई और अवसर देख संभलकर ससुर के चरणों में लिपटकर कहने लगी— १६६ "मेरे प्यारे पति परलोक सिधार गये। मेरे हृदय में असह्य शोक दे गये। १६७ जब तक मैं पति के साथ जलूँगी नहीं, तब तक उनके विरह का सन्ताप दूर न होगा। १६८ जब मैं इन्द्र को जीतनेवाले मेघनाद का मुँह देखूँगी तब मुझे वे सारे सुख मिल जाएँगे जो तीनों भुवनों का राज्य मिलने पर होते हैं। १६९ अब मेरे मन में कोई डर न रहेगा क्योंकि समझ-बूझ के साथ सती होने के लिए मैं अपने प्राण दे दूँगी। १७० मैं पति के साथ जाऊँगी, चिता में प्रवेश करूँगी, फिर लौटकर धरती पर नहीं आऊँगी। १७१

शुनु गुरु दशकन्धर दनुज - पुरन्दर
सुन्दर पातिव्रत - सरणी ॥ १७२ ॥
पति-शिर दिय आनी अपनें ज्ञानी
शोक न मानी विधि-करणी ॥ १७३ ॥
अपलहुँ यहि आशा हत-जगदाशा
गत-पशुपाशा सुत-घरणी ॥ १७४ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनि सुतवधू-विलाप, रावण बहुत भरोस दय ॥ १७५ ॥
कहल हृदय-सन्ताप, सुमति विलम्ब दिनेक करु ॥ १७६ ॥

॥ चौपाइ ॥

उपगत विपति हयत की कानि । मारब शत्रु भेल मन आनि ॥ १७७ ॥
रामादिक शिर प्रथमहि काटि । देवि देब दिक्पति बलि बाँटि ॥ १७८ ॥
पति-शिर शमर सहज अहुँ लेब । अरि-शिर वाम चरण अहुँ देब ॥ १७९ ॥
शुनि दशकन्धर-वचन कठोर । क्षण चुप रहलि नयन भर नोर ॥ १८० ॥
पुन कहलनि गुरु आगाँ ठाढ़ि । सभ सौं आशा काँ अछि बाढ़ि ॥ १८१ ॥
जौं कदाच अरि काँ लेब जीति । करब राज्य अरि-रहित सुनीति ॥ १८२ ॥
अपनें काँ भेटत जन सर्ब्ब । एखनहु धरि मन मे अछि गर्ब्ब ॥ १८३ ॥
श्वशुर समाज मुख्य नृप-द्वार । रहल न आज लाज व्यवहार ॥ १८४ ॥

हे मेरे गुरुजन राक्षसराज रावण ! सुनिए, पातिव्रत का रास्ता बड़ा अच्छा होता है। १७२ आप मेरे पति का सिर ला दीजिए। आप ज्ञानवान् हैं; इसे विधि का विधान समझकर शोक नहीं कीजिएगा। १७३ संसार की आशा को छोड़ और जीवन के बन्धन को तोड़ मैं आपकी पुत्रवधू इसी आशा से आपके पास आई हूँ।" १७४ पतोहू का विलाप सुनकर रावण ने उसे बहुत ढाढ़स दिया और सन्तप्त हृदय से कहा— "हे बुद्धिमती ! एक दिन ठहर जाओ। १७५-१७६ जब विपत्ति आ ही गयी तो अब रोकर क्या होगा। मन में आन जगी। शत्रु को मारकर रहूँगा। १७७ पहले ही राम आदि दुश्मनों के सिर काटकर, हे देवी, दिक्पतियों (इन्द्र आदि देवताओं) को बलि चढ़ाऊँगा। १७८ तब तुम अनायास ही अपने पति का सिर ले लोगी और दुश्मनों के सिर पर अपना बायाँ पाँव रखोगी।" १७९ रावण की यह कठोर वाणी सुनकर सुलोचना क्षण भर चुप रह गई और उसकी आँखों से आँसू बहते रहे। १८० फिर गुरुजन रावण के आगे खड़ी हो कहने लगी— "आशा सबसे प्रबल होती है। १८१ यदि कदाचित् आप शत्रु को जीत लेंगे तो निष्कंटक हो न्यायपूर्वक राज्य करेंगे। १८२ आपको सभी लोग मिल जाएँगे। अभी तक आपके मन में अभिमान रह ही गया है। १८३ ससुर के सामने प्रधान दरबार में

यावत गगन भानु रह चन्द। तावत सुयश रहत स्वच्छन्द ॥ १८५ ॥
छल छथि दशमुख काँ एक पूत। जीतल अमर समर पुरहूत ॥ १८६ ॥
हमरहु नहि मन मे किछु शोक। हर्षित अमर रहथु निज लोक ॥ १८७ ॥
पहु विनु जीवन सुख की राज। बरु भल रौरव नरक समाज ॥ १८८ ॥
चलब आब गुरु-अनुमति पाय। विधिक रेख के शकत मिटाय ॥ १८९ ॥
सुनलनि वचन पुतोहुक कान। कि करथु दशमुख विधि बलवान ॥ १९० ॥
आशु शाशु-घर कनयित जाय। कहल सकल तनि पद लपटाय ॥ १९१ ॥
कहलनि श्वशुरक वचन विचार। दैव ज्ञान हर अस्त्र न मार ॥ १९२ ॥
हम कटु कहल न बड़ गुरु जानि। कालाधीन गुणल नहि हानि ॥ १९३ ॥
मन्दोदरी कहल वृत्तान्त। नारद जे कहलनि एकान्त ॥ १९४ ॥
समर-विमुख दशमुख नहि हयत। सकुल सदल कालक घर जयत ॥ १९५ ॥
सभ सौं हुनका अछि अरि-भाव। दशकन्धर नहि बचता आब ॥ १९६ ॥
लङ्का लूटत बानर आबि। मुनि वृत्तान्त गेला कहि भाबि ॥ १९७ ॥
एतय विभीषण नृपति कहाय। करता भोग वस्तु-समुदाय ॥ १९८ ॥

आज मुझे लाज करने का अवसर न रहा। १८४ जब तक आसमान में सूरज और चाँद रहेंगे तब तक अनुपम यश छाया रहेगा कि १८५ रावण के एक बेटा था जिसने लड़ाई में देवराज इन्द्र को भी पराजित किया। १८६ मेरे मन में भी कुछ शोक नहीं है। देवता लोग अपने लोक स्वर्ग में हर्ष के साथ रहें। १८७ पति के बिना जीवन में राजसुख किस काम का है। इससे तो पति के साथ नरक में रहना ही अच्छा है। १८८ अब मैं गुरुजन से आज्ञा लेकर चलूँगी। विधाता का लिखा कौन मिटा सकता है ?" १८९ रावण ने बहू की बात सुनी। वह कर क्या सकता था ? भाग्य बलवान् होता है। १९० झटपट रोती हुई सास के घर गई। उसके पाँव में लिपटकर सारा हाल सुनाया। १९१ ससुर ने जो विचार दिया वह भी सुनाया। विधाता अस्त्र से मारता नहीं, वह तो सीधे ज्ञान हर लेता है। १९२ सुलोचना ने कहा— "मैंने गुरुजन समझकर उन्हें कटु वचन नहीं कहा। काल का दोष समझकर मैंने अपनी हानि की परवाह नहीं की।" १९३ फिर मन्दोदरी ने वह सारा किस्सा सुनाया जो नारद ने एकान्त में उसे सुनाया था। १९४ मन्दोदरी ने कहा— "रावण युद्ध करना नहीं छोड़ेंगे। अपने कुल के और अपने दल के सभी लोगों के साथ वे काल के गाल में समायेंगे। १९५ उनको हर एक से दुश्मनी है। अब रावण बचनेवाले नहीं हैं। १९६ बन्दर आकर लंका में लूटपाट करेंगे। नारद मुनि यह भावी घटना बता गये हैं। १९७ यहाँ लंका में विभीषण राजा होंगे और सारी वस्तुओं का भोग करेंगे। १९८

परमात्मा परमेश्वर राम। ज्ञाते छथि लक्ष्मण गुणधाम ॥ १९९ ॥
हनूमान रुद्रक अवतार। मुख्य सकल दल रहित-विकार ॥ २०० ॥
ततय विभीषण श्वशुर प्रधान। समदर्शी लग सकल समान ॥ २०१ ॥
जाउ जाउ थिक मुख्य विचार। ओतय न लेश असत व्यवहार ॥ २०२ ॥
उप-लक्षमण गति समुचित पूर। सती आगु स्वर्ग कत दूर ॥ २०३ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

चललि पति-भुज पालकी धय, रामचन्द्र समाज ॥ २०४ ॥
कहल दल वनिता-सवारी, अबै अछि की आज ॥ २०५ ॥
जनु दशानन हारि मानल, मेघनादक नाश ॥ २०६ ॥
जनकजा पठबाय देलनि, मानि रघुवर-त्रास ॥ २०७ ॥
चिन्हल दासी भृत्यजन काँ, तट विभीषण जाय ॥ २०८ ॥
उतरि शीघ्र सुलोचना, गुरुचरण गेलि लपटाय ॥ २०९ ॥
कहल अपनेंक कयल से नहि, कयल अति अपमान ॥ २१० ॥
तकर फल परिणत अचिर अछि, भेल आनक आन ॥ २११ ॥

॥ सोरठा ॥

से कर्त्तव्य उपाय, पहु-शिर लय जरि जाइ हम ॥ २१२ ॥
देल जाय मङबाय, आज्ञा वैदेही-पतिक ॥ २१३ ॥

हे राम परमेश्वर परमात्मा हैं। लक्ष्मण के गुण तो सभी को मालूम ही हैं। १९९ हनुमान रुद्र के अवतार हैं। अन्यान्य सभी दलपति भी निष्कलुष हैं। २०० वहाँ विभीषण हैं जो तुम्हारे श्रेष्ठ ससुर हैं। समदर्शी के पास तो सब बराबर है। २०१ जाओ-जाओ। यह अच्छा विचार है। वहाँ तनिक भी बुरे बरताव का डर नहीं है। २०२ यह कहावत भलीभाँति चरितार्थ होगी कि सती के आगे स्वर्ग कितनी दूर है। २०३ पति की बाँह को पालकी में लेकर सुलोचना राम के पास चली। २०४ दल के वानरों ने देखकर कहा— "क्या आज महिला की सवारी आ रही है ? २०५ लगता है, रावण ने हार मान ली क्योंकि उसका पुत्र मेघनाद मारा गया। २०६ अतः राम से डरकर उसने सीता को भेज दिया है। २०७ दासियों ने विभीषण के सेवकों को पहचाना। सुलोचना विभीषण के पास गई। २०८ पालकी से उतरकर वह विभीषण के चरण में लिपट गई। २०९ बोली— "रावण ने आपका कहा नहीं किया, आपका बहुत अपमान किया। २१० उसका फल उन्हें जल्द ही भोगना पड़ा। क्या से क्या हो गया। २११ अब ऐसा उपाय कीजिए कि मैं प्राणनाथ का सिर लेकर जल मरूँ। २१२ राम की आज्ञा लेकर वह सिर मुझे मँगवा दिया जाय।" २१३ विभीषण ने वहाँ जाकर रामचन्द्र से कहा— २१४ "अन्याय

कहल बिभीषण आय, श्रीरघुनन्दन सौं तत्य ।। २१४ ।।
भाय हमर अन्याय, कयल पड़ल साध्वीक शिर ।। २१५ ।।

।। रूपमाला छन्द ।।

मेघनादक थिकथि गृहिणी, देव शुनु रघुनाथ ।। २१६ ।।
सती नाम सुलोचना लिखि, देल स्वामी-हाथ ।। २१७ ।।
शिर एतहि अछि मेघनादक, मुख्य अयबा काज ।। २१८ ।।
स्वामि मिलि पावक समाइति, शरण आइलि आज ।। २१९ ।।

।। दण्डक छन्द ।।

जय महेश्वर-चाप-खण्डन, जनक-नगरी-कुल-सुमण्डन,
पालिताखिल-भक्त-सज्जन, दलित-दुर्जन हे ।। २२० ।।
सत्य-सन्ध मनोज-सुन्दर, जनक-जननी-सत्य-धृतिकर,
महाराज मही-पुरन्दर, प्राप्त-निर्जन हे ।। २२१ ।।
जय धनुर्द्धर दनुज-नाशन, सदा-शासित-पाकशासन,
कृत-विहङ्गम-नायकासन, पन्नगासन हे ।। २२२ ।।
जय महोदधि-सेतु-कारक, दशवदन-कुल विपुल-मारक,
विहित-मारुततनय-चारक, नुत-त्रिषाशन हे ।। २२३ ।।

किया मेरे भाई ने पर उसका बुरा फल इस बेचारी सती के सिर पर पड़ा । २१५ हे राम, सुनिये ! यह मेघनाद की पत्नी है । २१६ इसका नाम है सती सुलोचना । स्वामी के कटे हुए हाथ ने इसे लिखकर जानकारी दी है कि २१७ मेघनाद का सिर यहाँ पड़ा हुआ है । इसके यहाँ आने का मुख्य काम यह है कि २१८ यह स्वामी के साथ चिता में प्रवेश कर सती होना चाहती है । इसीलिए सिर लेने आपके पास आई है ।" २१९ सुलोचना स्तुति करने लगी—"राम की जय हो, जय हो, जिन्होंने शिव के धनुष को तोड़ा, जनकपुरी की शोभा बढ़ाई, सारे भक्त सज्जनों का पालन किया और दुर्जनों का दलन किया । २२० आप सत्यव्रती हैं, कामदेव के समान सुन्दर हैं, पिता और माता दोनों के सत्य और धैर्य को बचानेवाले हैं । आप महाराज हैं, धरती के इन्द्र हैं, आप एकान्तसेवी हैं । २२१ आप धनुष चलाने में दुर्धर्ष हैं, आपने सदा इन्द्र के ऊपर शासन किया, आपने पक्षियों के राजा गरुड़ को वाहन बनाया तथा शेषनाग को आसन बनाया । २२२ समुद्र में पुल बाँधनेवाले आपकी जय हो । रावण के विशाल वंश को नाश करनेवाले आप की जय हो, हनुमान को दूत बनानेवाले और शिव को प्रणाम करनेवाले आपकी जय हो ।२२३ हे रघुराज ! आपकी जय हो । २२४ जहाँ न मन, न बुद्धि और न

॥ गीत ॥

जय रघुराज ॥ २२४ ॥
मन मति वचनक पहुच जतय नहि, निर्गुण ब्रह्म देखल आज ॥ २२५ ॥
हम राक्षसी इन्द्रजित-गृहिणी, विषयविलास सतत काज ॥ २२६ ॥
योगिनि बनि अयलहुँ शरणागत, करिय प्रणाम रहित-लाज ॥ २२७ ॥
प्रभु जगदिष्ट इष्ट-सम्पादक, तुच्छ सकल पुर सम्राज ॥ २२८ ॥
अन्तर्य्यामी रघुनन्दन अहँ, व्यर्थ वैखरी के बाज ॥ २२९ ॥
अपनें कयल दनुज-कुल-भेदन, प्रभु समर्थ बड़ रण-शूर ॥ २३० ॥
हमरा जन्य बीज-रवि भेदब, करब मनोरथ निज पूर ॥ २३१ ॥
दैल जाय मँगवाय पतिक शिर, आज न हो प्रभु संग्राम ॥ २३२ ॥
जय रघुनन्दन दुर्गति-खण्डन, भव-जलनिधि-तारण नाम ॥ २३३ ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनि सुलोचना साध्वी उक्ति। रघुवर कहलनि वचन सुयुक्ति ॥ २३४ ॥
करु जनु शुभमति चित्त विषाद। मन हो तों जीवथि घननाद ॥ २३५ ॥
निर्विषाद अपना घर जाउ। युवती सती वियोग न पाउ ॥ २३६ ॥
हाथ जोड़ि कर दण्ड-प्रणाम। कह सुलोचना शुनु गुणधाम ॥ २३७ ॥

वचन पहुँच सकता है, उस निर्गुण ब्रह्म को आज मैंने देखा। २२५ मैं मेघनाद की पत्नी राक्षसी हूँ। सदा विषय-भोग में लगी रही हूँ। २२६ पर आज योगिनी बनकर आपकी शरण में आई हूँ और बिना लाज के आपको प्रणाम करती हूँ। २२७ हे प्रभु! आप संसार में सबों के इष्टदेव हैं। आप सभी कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं। संसार की सभी वस्तुएँ तुच्छ हैं, नगर तुच्छ है और साम्राज्य तुच्छ है। २२८ हे राम! आप तो सबके भीतर की बात समझते हैं, फिर आपकी स्तुति में वैखरी ध्वनि (शब्दोच्चारण) करने का क्या प्रयोजन होगा? २२९ आपने राक्षसों के कुल का संहार किया। आप सब कुछ करने में समर्थ हैं और लड़ाई में बहादुर हैं। २३० मेरे वास्ते बीज-रवि का भेदन कीजिएगा और अपनी कामना पूरी कीजियेगा। २३१ मुझे पति का सिर मँगवा दीजिए। आज लड़ाई बन्द रखिए। २३२ दुर्गति को नाश करनेवाले रघुनन्दन की जय हो। आपका नाम भव-सागर से पार उतारनेवाला है।" २३३ सती सुलोचना की बात सुनकर राम ने युक्तिसंगत बात कही— २३४ "हे कल्याणकर विचारवाली, आप अपने मन में शोक मत कीजिए। आप चाहें तो आपके पति मेघनाद जी सकते हैं। २३५ आप शोक-विषाद को छोड़ अपने घर जाइए। आप युवती हैं और पतिव्रता हैं। विरह में मत पड़िये।" २३६ सुलोचना ने हाथ जोड़कर और दंडवत् प्रणाम करके बोली— "हे गुणवान, २३७ एक गुहा में दो सिंहों का रहना ठीक

एक गुहा मे दुइ मृगराज । समुचित नहि निर्व्वाहक काज ।। २३८ ।।
पितौ नृपाल देखता शक्रारि । एक कोस मे दुइ तरुआरि ।। २३९ ।।
जेहि लय योग ज्ञान वैराग्य । सुलभ प्राप्त से हमर सुभाग्य ।। २४० ।।
प्रभु-पद देखि छूटल भव-राग । मन नहि कतहु विषय-सुख लाग ।। २४१ ।।
गगन कहक थिक गगनाकार । जलधि जलधि उपमाक विचार ।। २४२ ।।
राम - दशानन सम संग्राम । राम - दशानन उपमा ठाम ।। २४३ ।।
सुरपति-अरि हमरा प्राणेश । कोन वस्तु नहि तनिका देश ।। २४४ ।।
निर्गुण ब्रह्म-सगुण-तन धयल । भूप-रूप बड़ माया कयल ।। २४५ ।।
जे जे निहत भेल संग्राम । से से पाओल उत्तम धाम ।। २४६ ।।
धन्य धन्य थिक अपनेक कोप । पाप-पुञ्ज कर क्षण मे लोप ।। २४७ ।।
कीर्त्ति-शरीर अचल युग चारि । बनल काज की देब बिगारि ।। २४८ ।।
प्रभु-रुचि जानि आनि देल मुण्ड । देखयित कौतुक बानर-झुण्ड ।। २४९ ।।
जेहन परशमणि पावथि रङ्क । पति-शिर लेल हरषि भरि अङ्क ।। २५० ।।
आँचर सौं मुह धूरा पोछ । भ्रमराली-निभ दाढ़ी-मोछ ।। २५१ ।।
जीतल समर अमर अमरेश । आज हमर भेल योगिनि-भेश ।। २५२ ।।

नहीं । दोनों में बनेगा नहीं । २३८ इन्द्रजित् मेघनाद अपने चाचा विभीषण को राजा बने देखेंगे । एक म्यान में दो तलवारें कैसे समाएँगी । २३९ जिसको पाने के लिए योग है, ज्ञान है और वैराग्य है, वह (राम के चरण का दर्शन) मुझे सौभाग्यवश मिल गया है । २४० आपके चरण को देखकर दुनिया के प्रति मेरा आकर्षण समाप्त हो गया है । अब विषयभोग में कहीं मन नहीं लगता है । २४१ आकाश के समान आकाश ही कहा जा सकता है, समुद्र की उपमा समुद्र ही सम्भव है । २४२ इसी तरह राम और रावण के बीच जो लड़ाई हुई उसकी उपमा राम-रावण-युद्ध से ही दी जा सकती है । २४३ मेरे पति इन्द्र को जीतनेवाले हैं अतः उनके राज्य में कौन-सी वस्तु मेरे लिए दुर्लभ है ? २४४ निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया । आपने राजा का रूप धारण कर बहुत लीला की । २४५ लड़ाई में जो-जो मारा गया, सबों को स्वर्ग मिला । २४६ आपका क्रोध भी धन्य है, जो पाप की राशि को क्षण भर में जला देता है । २४७ यश रूपी शरीर चार युगों तक टिका रहता है । मैं अपने बने हुए काम को क्या बिगाड़ दूँ ? " २४८ राम का इशारा पाकर वानरों ने मेघनाद का सिर ला दिया और कुतूहलपूर्वक देखने लगे । २४९ सती सुलोचना ने बड़े हर्ष से अपने पति का सिर गोद में ले लिया, मानो रंक को पारसमणि मिल गई हो । २५० उन्होंने अपने आँचल से चेहरे पर पड़ी धूल को साफ़ किया । उस सिर में दाढ़ी और मूँछ भौंरों की कतार-सी लगती थी । २५१ "लड़ाई में अमर इन्द्र को जीता, पर आज मैं

रामचन्द्र कौं कयल प्रणाम। जहि मे सकल-विश्व-विश्राम ॥ २५३ ॥
रामाकार सकल थल भास। छुटल राग संसार प्रयास ॥ २५४ ॥
चलयिक समय हँसल से मुण्ड। हलचल माचल वानर-झुण्ड ॥ २५५ ॥
बाहु लिखल लक्ष्मण-गुण पूर। हँसिहि कयल जन-संशय दूर ॥ २५६ ॥
हँसल मुण्ड भुज-लिपि भेल ठीक। पति-सह-गामिनि धन्या थीकि ॥ २५७ ॥
चललि प्रदक्षिण प्रभुकाँ कयल। शिर-भुज पुन पालकि पर धयल ॥ २५८ ॥
बड़ बड़ बाजन चलल निशान। आर्त्तनाद सौँ पूरित कान ॥ २५९ ॥
सञ्चर बहुत निशाचर लोक। प्रभु-आज्ञा सौँ रोक न टोक ॥ २६० ॥
सिन्धुक सङ्गम थल भल जाय। चिता बहुत विस्तार बनाय ॥ २६१ ॥
श्रीखण्डादिक लागल ढेर। वनिता पुरुष सकल दिश घेर ॥ २६२ ॥
घृत घट बहुत चिता मे ढारि। धय भुज शिर नागेश-दुलारि ॥ २६३ ॥
आहिताग्नि दय देलनि ताहि। मर्य्यादा कुल-युगल निबाहि ॥ २६४ ॥
पति सह सती परमगति गेलि। द्वेषराग सौँ रहिता भेलि ॥ २६५ ॥
सभ वृत्तान्त देखल लङ्केश। मन्दोदरी सहिता तहि देश ॥ २६६ ॥
अयला कि करथु मन बड़ शोक। संसारक निन्दा कर लोक ॥ २६७ ॥

योगिनी बन गई हूँ।" २५२ यह कहकर सुलोचना ने राम को प्रणाम किया, जिसमें सारी दुनिया समाई हुई है। २५३ सभी स्थल राम ही राम दिखाई देने लगा। संसार के प्रति लगाव खत्म हो गया। २५४ चलते समय मेघनाद का मुण्ड हँस उठा। वानरों के दल में हलचल मच गयी। २५५ मेघनाद की बाँह में लक्ष्मण के सारे गुण लिखे थे। मुंड ने हँसकर लोगों के सन्देह को दूर कर दिया। २५६ मुंड यह जनाने के लिए हँसा कि बाँह में जो लिखा है वह सच्चा हुआ। जो स्त्री पति के साथ जलती (सती होती) है, वह धन्य है। २५७ सुलोचना राम की प्रदक्षिणा करके विदा हुई। पति के सिर और बाँह को फिर उसी पालकी पर रखा। २५८ बड़े-बड़े बाजे और पताकाएँ चलीं। हाहाकार से कान फट रहे थे। २५९ बहुत से राक्षस भी साथ चल रहे थे। राम की आज्ञा से कोई रोक-टोक न थी। २६० सभी सिन्धु के संगम पर पहुँचे। वहाँ बहुत बड़ी चिता रचाई गई। २६१ श्रीखंड चन्दन आदि वस्तुओं का अम्बार लग गया। चारों ओर से स्त्रियाँ और पुरुष चिता को घेरे हुए थे। २६२ चिता में कई घड़े घी डाला गया। तब उस पर बाँह और सिर को शेष-कन्या सुलोचना ने स्वयं रख दिया। २६३ तब उसमें अग्नि का आधान किया। इस प्रकार दोनों कुलों की मर्यादा का पालन करके सती सुलोचना पति के साथ जलकर स्वर्ग चली गई और राग-द्वेष आदि सभी विकारों से मुक्त हो गई। २६४-२६५ वहाँ मन्दोदरी-सहित रावण ने यह सारा तमाशा देखा। २६६ आये तो करते क्या ? मन में भारी शोक था।

एहि संसारक ई व्यवहार। उतपति थिति होइछ संहार ॥ २६८ ॥
सभ जन घुरि लङ्का गढ़ प्राप्त। जय-प्रत्याशा भेल समाप्त ॥ २६९ ॥
अतिशय विकल दशानन कान। कर उपदेश आन कआँ ज्ञान ॥ २७० ॥
एहि संसारक भंगुर भोग। प्रपादेश संयोग वियोग ॥ २७१ ॥
ककरो विभव रहल नहि थीर। जेहन कमल-दल चञ्चल नीर ॥ २७२ ॥
वर्त्तमान कत कत कत जाय। कालपुरुष सभ सुख धय खाय ॥ २७३ ॥

॥ इति श्रीचन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे नवमोऽध्यायः ॥

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण मन मन मानल हारि। महि नहि रहल शूर शक्रारि ॥ १ ॥
मारुत-सुत-बल हृदय विचारि। जनिक मुष्टि शत-अशनि प्रहारि ॥ २ ॥
शुक्रक निकट गेला अति दीन। बद्धाञ्जलि राजस-रस-हीन ॥ ३ ॥
शुक्र पुछल कहु नृप लङ्केश। कोन हेतु अयलहुँ एहि देश ॥ ४ ॥

लोग संसार की परिपाटी की निन्दा करते थे— २६७ "इस दुनिया की यही रीति है। इसमें हर वस्तु को उत्पत्ति, स्थिति और नाश तीनों होते ही हैं।" २६८ फिर सभी लोग लौटकर लंका गढ़ गये। जीतने की उम्मीद खत्म हो चुकी थी। २६९ बहुत खिन्न हो रावण रो रहा था, पर दूसरों को ज्ञानोपदेश दे रहा था— २७० "इस संसार में सुख-दुःख का भोग क्षण भर ही होता है। यहाँ मिलन और बिछोह उसी तरह प्रतिक्षण होते रहते हैं, जिस तरह प्याऊ पर प्यासे लोग परस्पर मिलते और क्षण भर में एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। २७१ किसी का भी विभव सदा नहीं रहता है। वह उसी प्रकार चंचल रहता है जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पानी। २७२ कोई वस्तु सदा वर्तमान कहाँ रहती। न जानें वह कहाँ-कहाँ चली जाती है। हरेक सुख को अन्त में कालपुरुष चबा जाता है।" २७३

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का नवाँ अध्याय समाप्त ॥

दसवाँ अध्याय

रावण का शुक्राचार्य से मंत्र ले साधना करना और राम का विघ्न डालना

रावण ने मन में हार मान ली। वीर मेघनाद न रहा। १ उसको मालूम हो गया कि हनुमान के कितनी ताकत है जिनका घूँसा सौ वज्रों की चोट के बराबर है। २ इसलिए वह परम दीन हो, राजस् सुख से विरक्त हो हाथ जोड़कर राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य के पास गया। ३ शुक्राचार्य ने

शर-जर्ज्जर अति कृशतर काय। कियक रहल अछि वदन सुखाय॥ ५॥
कयल प्रणाम बिनत शत बार। कहल दशानन शोक अपार॥ ६॥
वचन एखन अछि ई कहबाक। नहि अछि राक्षसकुल रहबाक॥ ७॥
लड़ियत लड़ियत भेलहुँ आँट। एको तरह नहि बाँचक बाट॥ ८॥
मृतसमान अयलहुँ एहि ठाम। असुर-शमन सन जनमल राम॥ ९॥
विद्यमान अपनें जहिठाम। असुरक हारि होइछ संग्राम॥ १०॥
कहलनि शुक्र ग्रहण करु मन्त्र। सिद्ध हयत तौं होयब स्वतन्त्र॥ ११॥
निकट न आओत कालक दूत। कि करत समर अमर पुरहूत॥ १२॥
गुप्त करू गय होमक कुण्ड। देखब बुझय न वानर-झुण्ड॥ १३॥
होमकुण्ड आगिक उठ दाह। तेहि सौं उतपति रथ रथबाह॥ १४॥
नाना अस्त्र शस्त्र बहराय। तखन चलब रण-ध्वज फहराय॥ १५॥
अजर अमर रहुगय सभ काल। करु गय दीक्षाविधि प्रतिपाल॥ १६॥
विघ्न मध्य नहि होमय पाब। शत्रु तकैत रहै अछि दाब॥ १७॥
बलि सन राजा बञ्चित कयल। स्वयं विष्णु वामन-तन धयल॥ १८॥
बलि-हित करइत गेल एक आँखि। मन्त्रशक्ति की होयत राखि॥ १९॥

पूछा— "कहिए, लंकेश रावण, आप मेरे यहाँ किस प्रयोजन से पधारे? ४ आपका शरीर तो तीरों से क्षत-विक्षत हो गया है। आप बड़े दुबले हो गये हैं। आपका मुँह क्यों सूख रहा है?" ५ नम्रतापूर्वक सौ बार प्रणाम करके रावण ने अपने अपार शोक का वृत्तान्त सुनाया और कहा— ६ "अभी यही बात कहनी है कि अब राक्षसों का कुल नहीं बचनेवाला है। ७ मैं लड़ते-लड़ते बेदम हो गया। बचने का एक भी रास्ता नहीं दिखाई देता है। ८ मैं असमर्थ हुआ सा यहाँ आया हूँ। राक्षसों के लिए यम के समान राम ने जन्म लिया है। ९ जहाँ आप मौजूद हैं वहीं लड़ाई में राक्षस हारते जा रहे हैं।" १० शुक्राचार्य ने कहा— "मुझसे एक मन्त्र लीजिए। यदि यह मन्त्र सिद्ध हो जाएगा तो आप मुक्त हो जाइएगा। ११ यम का दूत भी आपके पास न भटकेगा, युद्ध में इन्द्रदेव भी कुछ नहीं कर सकेंगे। १२ आप चुपसे से जाइए और हवन-कुण्ड बनाइये। देखना, कहीं वानरों के दल को मालूम न हो जाए। १३ हवन-कुण्ड से आग की ज्वाला निकलेगी, उससे एक रथ और एक सारथि उत्पन्न होगा। १४ तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र भी निकलेंगे। तब आप ध्वजा फहराते युद्ध के लिए चलिएगा। १५ इसके प्रभाव से सदा अजर-अमर रहियेगा। दीक्षा का विधान पूरा कीजिए। १६ बीच में विघ्न न होने पावें। दुश्मन घात लगाए रहते हैं। १७ भगवान् विष्णु ने स्वयं वामन-रूप धारण कर बलि जैसे राजा को धोखा दिया। १८ बलि का हित करते हुए मेरी एक आँख चली गई। मन्त्रशक्ति को सुरक्षित रखना कठिन है। १९

मीनादिक तन धयलनि जेह। स्वयं विष्णु रघुनन्दन सेह॥ २०॥
मन्त्र लेल होमक विधि पाय। मुदित दशानन लङ्का जाय॥ २१॥
अपन भवन अन्तर दशभाल। गुफा बनाओल जेहन पताल॥ २२॥
लङ्का-द्वार कपाट लगाय। होमक द्रव्य सकल मङ्गवाय॥ २३॥
होम करय लगला लङ्केश। मौन दृढ़ासन सधँम-वेश॥ २४॥
देखल विभीषण अम्बर-धूम। राजभवन सौँ अविरल धूम॥ २५॥
हे रघुनन्दन देखिय धूम। रवि शशि-ग्रह-मण्डल कँ चूम॥ २६॥
सविधि होम-पूरणता पाय। रावण सत्य अमर भय जाय॥ २७॥
कयल जाय प्रभु शीघ्र उपाय। सिद्ध दशानन कर अन्याय॥ २८॥

॥ सोरठा॥

शुनु अङ्गद हनुमान, जाउ सकल दल कहल प्रभु॥ २९॥
करब विघ्न मतिमान, होम दशानन करै अछि॥ ३०॥

॥ रूपमाला॥

दशकोटि वानर गेल लङ्का, लाँघि सभ प्राकार॥ ३१॥
जाय रावण-भवन-रक्षक, सभक कयल संहार॥ ३२॥
बाजि गजकाँ पटकि मारल, घोरतर चीत्कार॥ ३३॥
तत विभीषण-वधू शरमा, कयल सूचित द्वार॥ ३४॥

जिन्होंने मीन आदि अवतार लिया वही भगवान् विष्णु राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।" २० हवन की रीति जानकर रावण ने शुक्राचार्य से मंत्र की दीक्षा ली। फिर प्रसन्न हो लंका गया। २१ उसने अपने महल के भीतर पाताल-जैसी एक गुहा बनाई। २२ लंका के दरवाजे पर फ़ाटक बन्द करा दिया। फिर हवन की सारी सामग्री मँगाई गई। २३ तब वह मौन हो, अटल आसन लगाकर कड़े संयम के साथ बैठकर हवन करने लगा। २४ विभीषण ने आकाश में धुआँ देखा जो राजभवन से लगातार निकल रहा था। २५ उन्होंने राम से कहा— "हे राम! यह धुआँ देखिए जो सूरज और चाँद को छू रहा है। २६ यदि रावण विधिपूर्वक हवन पूरा कर लेगा तो वास्तव में अमर हो जाएगा। २७ हे प्रभु! इसका जल्द प्रतिकार किया जाय। यदि रावण को सिद्धि मिल गई तो अनर्थ हो जाएगा।" २८ सुनकर राम ने कहा— "हे अंगद, हे हनुमान! सदल-बल प्रयाण कीजिए। २९ रावण हवन कर रहा है। जाकर उसमें विघ्न कीजिए।" ३० दस करोड़ वानर लंका गये। सभी चहारदीवारियों को लाँघकर भीतर घुसे और रावण के महल के रक्षकों का संहार किया। ३१-३२ घोड़ों और हाथियों को पटक-पटककर मारा। वे ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगे। ३३ वहाँ विभीषण की पत्नी शरमा ने उस गुहा का गुप्तद्वार दिखा दिया। ३४ गुहा का द्वार मजबूती के साथ पत्थरों से ढका

॥ चौपाइ ॥

पाथर-पिहित-गुहा दृढ़द्वार। अङ्गद जोर लात सौँ मार ॥ ३५ ॥
चूर चूर सभ कयल कपाट। कयल प्रवेश विदित भेल बाट ॥ ३६ ॥
अङ्गद कहल सकल दल आउ। करू कोलाहल ध्यान छोड़ाउ ॥ ३७ ॥
रावण ध्यानलीन नहि वाक। दृढ़ आसन से अनत न ताक ॥ ३८ ॥
पकड़ि पकड़ि सेवक काँ मार। फेकल वस्तु होम - सम्भार ॥ ३९ ॥
उप-साधक काँ कुण्डहिं झोँक। शक के महावीरगण रोक ॥ ४० ॥
स्रुव लेल खँचि न दशमुख जान। स्रुवक मारि मारल हनुमान ॥ ४१ ॥
मारि बहुत रावण सहि लेथि। ध्यानदृष्टि नहि बाहर देथि ॥ ४२ ॥
अन्तःपुर गेला युवराज। आनल मन्दोदरी समाज ॥ ४३ ॥
घिसिआबथि तनिकाँ धय झोँट। करथि उपद्रव कपि कय गोट ॥ ४४ ॥
फाड़ल वसन जेहन हो जाल। तदपि न ध्यान छोड़ दशभाल ॥ ४५ ॥
कानथि मन्दोदरी विषाद। हा सुत कतय गेलहुँ घननाद ॥ ४६ ॥
अहँ बिनु एत गोट गञ्जन भोग। जीवित की नहि विधिसंयोग ॥ ४७ ॥
शुनु प्राणेश्वर विपति समाज। एखनहुँ धरि अहँ काँ नहि लाज ॥ ४८ ॥

हुआ था। अंगद ने जोर से उसमें अपने पाँव से धक्का मारा। ३५ फ़ाटक को चकनाचूर कर दिया। रास्ता मिल गया और उसमें प्रवेश किया। ३६ अंगद ने कहा— "सारा दल जुटाकर यहाँ आइये और हल्ला मचाइए और इस प्रकार रावण का ध्यान तोड़िए।" ३७ रावण मौन साधकर ध्यान में लीन था। अटल आसन लगाये हुए था। कहीं इधर-उधर झाँकता न था। ३८ वानरों का दल सेवकों को पकड़-पकड़कर पीटने लगा। हवन की सामग्री को फेंकने लगा। ३९ हवन में सहायता करनेवाले जो पुरोहित थे उन्हें तो हवन-कुण्ड में ही झोंक दिया। वानरों के दल को कौन रोक सकता था। ४० पास से स्रुव खींच लिया, पर रावण को कुछ मालूम न हुआ। तब हनुमान उसे स्रुव से पीटने लगे। ४१ रावण मार बर्दाश्त करता रहा, पर ध्यान तोड़ बाहर नज़र नहीं फेरी। ४२ अंगद रनिवास में घुस गये। परिजन-सहित मन्दोदरी को पकड़ लाये। ४३ उसे चोटी पकड़ घसीटने लगे। कपिगण तरह-तरह से ऊधम मचाने लगे। ४४ कपड़ों को फाड़-फाड़कर जाल-सा बना दिया, फिर भी रावण का ध्यान न टूटा। ४५ मन्दोदरी बिलख-बिलखकर रोने लगी— "हा पुत्र मेघनाद, तुम कहाँ गये? ४६ तुम्हारे बिना इतनी बड़ी दुर्दशा भुगतनी पड़ रही है। जीते थे तो क्या नहीं था। विधि की विडम्बना है। ४७ सुनिए हे प्राणनाथ! इतनी सारी विपत्तियाँ भुगतनी पड़ीं, अब भी आपको लाज नहीं आती है क्या? ४८ उठिए-उठिए, जाकर लड़ाई कीजिए।

उठु उठु समर कहुगय जाय। की बैसल छी घर घुरिआय ॥ ४९ ॥
शुक्रक एतय लाग नहि मन्त्र। परमेश्वर रघुनाथ स्वतन्त्र ॥ ५० ॥
मरण नीक बरु निस्संकोच। वानर धय धय आँचर नोच ॥ ५१ ॥
की बैसल छी आश विचारि। हा हतभाग्या भेलहुँ उघारि ॥ ५२ ॥

॥ सोरठा ॥

सहि न सकल दशमाथ, मन्दोदरि विकला वचन ॥ ५३ ॥
खड्ग लेल बिश हाथ, कपिगण काँ मारय चलल ॥ ५४ ॥

॥ चौपाइ ॥

सहि तरुआरि बालि-सुत अङ्ग। हँसि सभ चलल होम कय भङ्ग ॥ ५५ ॥
कयल कटक रामक तट गमन। होमक धूम-धार कय शमन ॥ ५६ ॥
देखल प्राणप्रिया लङ्केश। लगला करय ज्ञान-उपदेश ॥ ५७ ॥
रावण-भवन भालु कपि आब। ई सभ जानब काल-स्वभाव ॥ ५८ ॥
यम जेहि नगर पयर नहि देथि। कुशलक्षेम सीमहि बुझि लेथि ॥ ५९ ॥
जिवयित की नहि देखी आँखि। की लय करब प्राण धन राखि ॥ ६० ॥
प्राणप्रिया परिहरु मन शोक। सकल विनाशि दृश्य अछि लोक ॥ ६१ ॥
जत हम-हम तत दुःख अपार। जत निर्म्मम तत दुःख-उधार ॥ ६२ ॥

घर घुसकर बैठे क्या हैं। ४९ शुक्राचार्य का मंत्र यहाँ कामयाब न होगा। भगवान राम इन सबों के वश में नहीं हैं। ५० हे निर्लज्ज! इससे तो लड़कर मर जाना अच्छा है। देखिए, ये बन्दर पकड़-पकड़कर मेरे आँचल को नोच रहे हैं। ५१ किस आशा से, क्या सोचकर आप बैठे हुए हैं? हाय, मैं अभागिन नंगी हो रही हूँ।" ५२ मन्दोदरी का यह विलाप-भरा वचन रावण बर्दाश्त न कर सका। ५३ बस, बीसों हाथों में तलवार लेकर वह कपियों को मारने के लिए चल पड़ा। ५४ अंगद ने तलवार के वार को बर्दाश्त कर लिया और हवन में विघ्न करके सभी हँसकर चल पड़े। ५५ हवन के धुएँ को खत्म कर सभी अपनी छावनी में राम के पास पहुँचे। ५६ उधर रावण ने अपनी प्रेयसी मन्दोदरी को देखा और उसे ज्ञान का उपदेश देने लगा— ५७ "रावण के महल में भालू और बन्दर आये यह सब काल का संकेत है। ५८ इस नगर में तो यमराज भी क़दम नहीं रख सकते थे। सीमा के उस पार से ही कुशल-मंगल जानकर चले जाते थे। ५९ कहावत है, जियें तो क्या-क्या न देखें। अब जीवन और धन रखकर क्या करूँगा? ६० हे प्यारी! मन में शोक मत करो। इस संसार में जो कुछ दीख पड़ता सब विनाशशील है। ६१ जितनी ही 'मैं-मैं' की भावना होगी उतना ही अधिक दुःख होगा, और ममता जितनी घटती जाएगी उतना दुःख से उद्धार होता जाएगा। ६२ अभी मैं

सम्प्रति हम चललहुँ संग्राम। आइ कि बचता लक्ष्मण राम॥ ६३॥
जौँ कदाच विधि हो विपरीति। तौँ हमरा मे राखब प्रीति॥ ६४॥
हमर चिता मे करब प्रवेश। सीता मारि लेब एहि देश॥ ६५॥
मन्दोदरी कहल शुनु नाथ। सभ गति अछि रघुनन्दन-हाथ॥ ६६॥
बनचर चारि एक अति खर्व। हरण करय दुर्जन-गण-गर्व॥ ६७॥
तीनि राम मे दोसर राम। अवतरला अयला एहि ठाम॥ ६८॥
राजस तामस रस दिय तोड़ि। राज्य विभीषण काँ दिय छोड़ि॥ ६९॥
निर्जन वन बसु मुनिक समाज। सानुकूल रहता रघुराज॥ ७०॥
तनिक चरण मे ध्यान लगाउ। माया - सीता तत पहुँचाउ॥ ७१॥
कयल बहुत युग राज्यक भाग। परिणत से प्राणान्तिक रोग॥ ७२॥
कयल ककर नहि अहँ अपराध। वनिता-हरिणि-हरण बनि व्याध॥ ७३॥
विषय मनोरथ-पुञ्ज हटाउ। अथवा रण मे माँथ कटाउ॥ ७४॥
रावण कहल शोक-विस्तार। हम मानल मिथ्या संसार॥ ७५॥
जाय करब जौँ वन मे वास। दुर्जन करत बहुत उपहास॥ ७६॥
साधन-योग्य न रहल शरीर। की हम की मारथु रघुबीर॥ ७७॥

लड़ने को चला। आज राम और लक्ष्मण बचकर जाएँगे कहाँ। ६३ यदि विधाता विपरीत हो अर्थात् मैं ही मारा जाऊँ तो मुझमें प्रेम बनाये रखना। मेरी चिता मे समा जाना। सीता को भी मारकर उसी जगह ले लेना।" ६४-६५ मन्दोदरी ने कहा— "हे प्राणनाथ, सब कुछ राम के हाथ में है। ६६ चार वनवासी जिनमें एक बहुत छोटा है (अर्थात राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और अंगद) दुर्जनों के घमंड को चूर कर रहे हैं। ६७ राम नाम वाले तीन अवतारों में (अर्थात् बलराम, दशरथ-पुत्र राम और परशुराम मे) द्वितीय राम ने अवतार लिया है। वही यहाँ आये हैं। ६८ राजस् (भोग-विलास आदि) और तामस् (क्रोध-द्वेष आदि) के प्रति चाव छोड़ दीजिए। राज्य विभीषण को दे दीजिए। ६९ निर्जन वन में मुनियों की मंडली में जाकर बसिये। भगवान राम आप पर कृपालु रहेंगे। ७० उनके चरणों में ध्यान लगाइए और मायास्वरूपा सीता को उनके पास दे आइए। ७१ आपने कई युगों तक राज्य-सुख का भोग किया। वही भोग आज जानलेवा रोग के रूप में परिणत हो गया है। ७२ आपने नारी रूपी मृगी को फँसाने के लिए व्याध बनकर किस-किसका अपराध नहीं किया। ७३ आप चाहे तो विषय-भोग के लालच को छोड़िये या लड़ाई में सर कटाइये।" ७४ रावण ने कहा— "भारी शोक आ पड़ा है। मैं मानता हूँ कि यह संसार मिथ्या है। ७५ फिर भी यदि मैं जाकर वन में वास करूँ तो दुष्ट लोग मेरी खिल्ली उड़ाएँगे। ७६ अब मेरा शरीर तप करने लायक न रहा। चाहे मैं राम को मारूँ या राम ही मुझको

जानि जानकी आनल गेह। मरण राम-कर निस्सन्देह ॥ ७८ ॥
अपनहिँ पौरुष हम हठ ठानि। समर मरब की होयत हानि ॥ ७९ ॥
ककरो रहल न मन मे रोच। रण लड़ि मरब कोन सङ्कोच ॥ ८० ॥
हमर राज्य जौँ पाओत आन। हमहूँ होयब स्वयं भगवान ॥ ८१ ॥
जायब तनिकहि अङ्ग समाय। जनु कटु धूम जलद बनि जाय ॥ ८२ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे दशमोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

एहि चिन्ता मे भय गेल भोर। वानर भालु द्वार कर शोर ॥ १ ॥
रे दशकण्ठ लण्ठ बहराह। राम-शरानल शलभ समाह ॥ २ ॥
चारु द्वार नगर घर घेर। रावण काँ तृणवत नहि टेर ॥ ३ ॥
रावण शुनल कपिक किलकार। कहल प्रबल रथ कर तैयार ॥ ४ ॥
रथ मे चक्र एगारह पाँच। बहुत भयावह वदन पिशाच ॥ ५ ॥

मारें। ७७ मैं जान-बूझकर सीता को अपने घर ले आया। अवश्य ही राम के हाथ मेरी मृत्यु होगी। ७८ यदि मैं अपनी ही बहादुरी से लड़ाई छेड़ूँ और लड़ाई के मैदान में मर जाऊँ तो क्या हानि होगी? ७९ मैंने मन में किसी की परवाह नहीं की। तब युद्ध में लड़कर मरूँ तो इसमें लज्जा क्या है? ८० यदि मेरा राज्य कोई और ले लेगा तो मैं भी खुद भगवान हो जाऊँगा। ८१ मैं उसी के शरीर में लीन हो जाऊँगा, जिस तरह कड़वा धुआँ बादल बन जाता है।" ८२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

राम और रावण का प्रचण्ड युद्ध और रावण का वध

इसी तरह सोच-विचार करते सुबह हो गई। बन्दर और भालू दरवाज़े पर शोर मचाने लगे— १ "अरे बदमाश रावण, जल्द निकलो और राम के तीर की आग में पतंग की भाँति समाओ।" २ बन्दरों और भालुओं ने नगर के चारों द्वारों को घेर लिया; और रावण को तिनके के बराबर भी टेरते नहीं। ३ रावण ने जब बन्दरों की किलकारी सुनी तो हुक्म दिया— "एक मजबूत रथ तैयार करो।" ४ उस रथ में सोलह पहिये थे। उसके आगे-पीछे बहुत सारे डरावने चेहरेवाले राक्षस थे। ५ रथों में गधों के कई जोड़े जोते

खर अनेक रथ जोतल जोड़। सैन्य प्रधान चलल नहि थोड़॥ ६ ॥
अस्त्र-शस्त्र सभ तहि पर धयल। दशकन्धर रणयात्रा कयल॥ ७ ॥
दुहु दल छल संघट्ट अमान। राति दिवस किछु हो नहि भान॥ ८ ॥
नभ मे भय गेल धूलि-वितान। बड़ गोट शब्द बाधिर भेल कान॥ ९ ॥
रावण जेहन प्रलय - जीमूत। ओ नहि कपि-सामान्यक बूत॥ १० ॥
कपिदल कौं रण मे ललकार। झपटि झपटि अन्तक जकँ मार॥ ११ ॥
पड़ल ततय हनुमानक दृष्टि। रावण-हृदय हनल एक मुष्टि॥ १२ ॥
ठेघुना भर रथपर खसलाह। मूर्छित कय मारुति हँसलाह॥ १३ ॥
क्षण मूर्छा रावण सौं दूर। कहलनि पवनतनय तों शूर॥ १४ ॥
धिक धिक हमरा कह हनुमान। एखनहु धरि अछि तोहरा प्राण॥ १५ ॥
करह प्रथम तों मुष्टि-प्रहार। हमरा हृदय जते बलसार॥ १६ ॥
हमहुँ तखन एक मूका हनब। दशकन्धर निज बलकाँ जनब॥ १७ ॥
पवनक तनय कहल पण जेहन। कयल दशानन झट दय तेहन॥ १८ ॥
क्षण भरि अनमन सन हनुमान। रावण-मुष्टि सहत के आन॥ १९ ॥
पवन-तनय दृढ़ मुष्टि उठाय। चलला रावण चलल पड़ाय॥ २० ॥
हनूमान अङ्गद नल नील। बड़ बड़ राक्षस मारण-शील॥ २१ ॥

गये। बहुत से सेनापति चले। ६ उन रथों पर अस्त्र-शस्त्र लदे थे। इस प्रकार रावण ने युद्ध के लिए प्रयाण किया। ७ दोनों दल आपस में खूब टकराते। रात है या दिन कुछ भी मालूम नहीं होता था। ८ आकाश में धूल चँदोवे की भाँति छा गई। इतनी तेज आवाज होने लगी कि कान बहरे हो गये। ९ रावण मानो प्रलयकाल का बादल था। उसे मामूली बन्दर पछाड़ नहीं सकते थे। १० वह लड़ाई में बन्दरों को फटकारने लगा और पकड़-पकड़कर यमराज की तरह मारने लगा। ११ वहाँ हनुमान की नजर पड़ी। उन्होंने रावण की छाती में एक घूंसा जमा दिया। १२ वह घुटनों के बल रथ पर से गिर पड़ा। उसे बेहोश कर हनुमान हंसने लगे। १३ क्षण भर में जब रावण की बेहोशी दूर हुई, तब हनुमान ने कहा— "हे रावण, तुम सचमुच शूर हो। १४ धिक्कार है मुझको कि अभी तक तुम्हारे प्राण गये नहीं। १५ तुम्हारे जितनी ताकत हो, सब लगाकर मेरी छाती पर घूंसा लगाओ। १६ फिर मैं भी एक घूँसा लगाऊँगा। हे रावण, तब तुमको मेरी ताकत मालूम हो जाएगी।" १७ हनुमान ने जैसी शर्त रखी, रावण ने झटपट वैसा ही किया। १८ क्षण भर हनुमान कुछ अप्रकृतिस्थ रहे, फिर ठीक हो गये। रावण का घूँसा और कौन सह सकेगा? १९ तब हनुमान ने मुक्का उठाकर दौड़े कि रावण भाग गया। २० हनुमान, अंगद, नल और नील बड़े-बड़े राक्षसों को मारने लगे। २१ अग्निवर्ण नाम का जो रावण का सेनापति था उसे हनुमान ने

अग्निवर्ण रावणक प्रधान। तनिक प्राण लेलनि हनुमान ॥ २२ ॥
सर्प्परोम कौं अङ्गद मार। खड्गरोम कौं नल संहार ॥ २३ ॥
वृश्चिकरोम लड़ल घड़ि चारि। तनिकहु समर नील लेल मारि ॥ २४ ॥
सिंहनिनाद कयल कपि घोर। गेला जतय छला रघुवीर ॥ २५ ॥

॥ चञ्चला छन्द ॥

भालु ओ प्रचण्ड कीश जाय जाय झट्ट झट्ट ॥ २६ ॥
राक्षसेन्द्र वीर कौं पछाड़ि मार पट्ट पट्ट ॥ २७ ॥
शैलखण्ड वृक्ष हाथ सौं उखाड़ चट्ट चट्ट ॥ २८ ॥
राक्षसेन्द्र-सैन्य-झुण्ड-मुण्ड फोड़ फट्ट फट्ट ॥ २९ ॥
लाग अस्त्र मध्य अस्त्र आबि आबि चट्ट चट्ट ॥ ३० ॥
रावणोग्र-वीर-पेट-कुम्भ फूट भट्ट भट्ट ॥ ३१ ॥
नाचि नाचि योगिनीक वृन्द भाष हट्ट हट्ट ॥ ३२ ॥
राक्षसावलीक मुण्ड जाय खाय कट्ट कट्ट ॥ ३३ ॥
रामचन्द्र-तीर-बिद्ध-मौलि-पात छट्ट छट्ट ॥ ३४ ॥
योगिनीक वृन्द रक्त-ओघ घोंट घट्ट घट्ट ॥ ३५ ॥
खाय की शृगाल मासु नोचि नोचि गट्ट गट्ट ॥ ३६ ॥
वस्ति-अस्थि दन्त घोर जोर तोड़ मट्ट मट्ट ॥ ३७ ॥
जोर सौं कबन्ध नाच वीरभूमि कोटि कोटि ॥ ३८ ॥
भैरवी भभाय हँस्स भूमिमध्य लोटि लोटि ॥ ३९ ॥

निष्प्राण किया। २२ सर्परोम को अंगद ने मारा और खड्गरोम का अन्त नल ने किया। २३ उसके बाद वृश्चिकरोम चार घड़ी लड़ता रहा; उसे भी युद्ध में नील ने मार डाला। २४ तब हनुमान सिंहनाद करके वहाँ गये जहाँ राम थे। २५ प्रचंड भालू और बन्दर तेज़ी से जाते और रावण के सैनिकों को पटापट पछाड़ते जाते। २६-२७ पहाड़ों के टुकड़े और पेड़ चटपट हाथ से उखाड़ लेते और उनसे रावण के सैनिकों के मुंडों को फटाफट फोड़ते। २८-२९ आ-आकर हथियार हथियारों से चटाचट टकराते हैं। रावण के बड़े-बड़े वीरों के पेट रूपी घड़े भटाभट फूटते हैं। ३०-३१ झुंड की झुंड योगिनियाँ नाच-नाचकर एक-दूसरी से कहती हैं— हटो-हटो, और स्वयं मरे राक्षसों के मुंड कटाकट चबाती हैं। ३२-३३ राम के तीरों से राक्षसों के सिर गिरते जाते हैं और योगिनियाँ उससे छूटे लहू की धारा को गटागट पीती जा रही हैं। ३४-३५ सियार मांस नोच-नोचकर जल्दी-जल्दी खा रहे हैं। मूत्राशय की थैलियाँ और हड्डियाँ दाँतों से खूब ज़ोर लगाकर फटाफट तोड़ रहे हैं। ३६-३७ रणभूमि में करोड़ों कबन्ध ज़ोर-ज़ोर से नाच रहे हैं। भैरवियाँ धरती पर लोट-लोटकर अट्टहास कर रही हैं। ३८-३९ छोटी-छोटी भैरवियाँ

नाचथि प्रसन्न गीत गाबि गाबि छोटि छोटि ॥ ४० ॥
हर्ष सौं कपाल ताल देथि महा मोटि मोटि ॥ ४१ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

॥ देश ॥

महाकाली विशालाक्षी मुदा गृह्णाति मुण्डालीम् ॥ ४२ ॥
हसन्ती युद्धभूमौ तम्पिबन्ती शोणितं काली ॥ ४३ ॥
वहन्मुण्डालिभारस्ते महोक्षो विह्वलत्येषः ॥ ४४ ॥
कथन्नाद्यापि सन्तुष्टो भवान्व्यग्रश्च ते शेषः ॥ ४५ ॥

॥ चौपाइ ॥

लाखहि लाख सवार-विहीन। घोड़ दौड़ पिठ कसले जीन ॥ ४६ ॥
मुइले चढ़ल पीठ असवार। कय चीत्कार भ्रमित दन्तार ॥ ४७ ॥
घोड़ा बहुतक डाँड़े टूट। लादल अस्त्र पड़ायल ऊँट ॥ ४८ ॥
शोणित-धार चलल बढ़िआय। गेलि दीर्घिका सिन्धु समाय ॥ ४९ ॥
भेलि तेहनि सूतहु नहि थाह। बहुत समुद्रक पहुँचल ग्राह ॥ ५० ॥
तनिका भेटल भक्ष्य कबन्ध। खाय खाय सभ भेल निर्धन्ध ॥ ५१ ॥
समरभूमि कत योगिनि नाँच। खाथि मासु निधुरायल काँच ॥ ५२ ॥
अगनित गृद्ध चिल्ह ओ काक। कङ्क शृगालक बनि गेल ताक ॥ ५३ ॥

प्रसन्न हो गा-गाकर नाच रही हैं और मोटी-मोटी भैरवियाँ हर्षपूर्वक खोपड़ियाँ पीट-पीटकर ताल दे रही हैं। ४०-४१ बड़ी-बड़ी आँखोंवाली महाकाली युद्ध-भूमि में लहू पीती हुई हर्ष के साथ मुंडों को बटोरती है। ४२-४३ अरे, इतने मुंड लाद दिये हैं कि आपका यह विशाल बसहा लड़खड़ा रहा है। ४४ फिर भी आपको सन्तोष क्यों नहीं होता ? आपका शेषनाग भी व्यग्र है। ४५ बिना सवार के लाखों घोड़े, जिनकी पीठ पर जीन कसे हुए ही हैं, दौड़ते नज़र आ रहे हैं। ४६ पीठ पर चढ़े मृत सवारोंवाले बहुत से दन्तार हाथी चिंघाड़ते हुए इधर-उधर भटक रहे हैं। ४७ बहुत से घोड़ों की कमर टूट गई है। अस्त्रों से लदे ऊँट भागते जा रहे हैं। ४८ लहू की धारा की बाढ़ आ गई और बड़े-बड़े तालाब उमड़कर समुद्र में जा गिरने लगे। ४९ इतनी बाढ़ आई कि सूत से भी गहराई मापी नहीं जा सकती। समुद्र से बहुत से मगर आ पहुँचे। ५० उन मगरों को खाने के लिए कबन्ध (मुर्दों के सिर-रहित धड़) मिल गये और वे खा-खाकर निश्चिन्त हो गये। ५१ लड़ाई के मैदान में बहुत सी योगिनियाँ नाचती और लहू से लिपटे मांस खातीं। ५२ अनगिनत गीधों, चील्हों, कौवों, कंकों और सियारों को अच्छा मौका हाथ लगा। ५३ रक्त की धारा में तैरते मुर्दों पर कौवे बैठ जाते। मांस खानेवाले

भासल घर पर वायस बास। मांसाशी खग पूरित आश ॥ ५४ ॥
लङ्का वनिता-गण जे कान। करुणा-गिरि-झरनाक समान ॥ ५५ ॥
भैरव मुण्डमाल लय आब। महाकाल गलमे पहिराब ॥ ५६ ॥
वृद्ध गृद्ध रण-महि मे भाष। आइ पुरल आमिष-अभिलाष ॥ ५७ ॥
आहि आहि हा हा धुनि कान। लङ्काधिप-पुर पड़ल मलान ॥ ५८ ॥
लङ्केश्वर से पढलनि पाठ। सगर नगर भेल राँड़क ठाठ ॥ ५९ ॥
राक्षस - वृन्द - वधूटी कान। आज कयल विधि घर शमशान ॥ ६० ॥
मान्य विभीषण छथि कोन ठाम। जे राखल राक्षसकुल-नाम ॥ ६१ ॥
लय लय तीक्ष्ण हाथ तरुआरि। प्रिय-हीना केँ से देथु मारि ॥ ६२ ॥
धिक पति विनु जीवन संसार। अपनो प्राण लगै अछि भार ॥ ६३ ॥
पति-रण-मरण देखल सभ आँखि। की सुख जीव देह मे राखि ॥ ६४ ॥
आनु हलाहल सभ जनि खाउ। गर पाथर दय सिन्धु समाउ ॥ ६५ ॥
कतय कयल नहि राक्षस लूटि। हा स्वाधीन नगर गेल छूटि ॥ ६६ ॥
त्यागथि विकला गहना अङ्ग। विधि विपरीत मनोरथ भङ्ग ॥ ६७ ॥
मणिमाला व्याली समतूल। लगइछ आइ दैव प्रतिकूल ॥ ६८ ॥
केओ कह युवति चित्त कर थीर। सभ सङ्कट हर्त्ता रघुवीर ॥ ६९ ॥

पक्षियों की आशा पूरी हुई। ५४ लंका में औरतें जो रोती वह मानो करुणा के पहाड़ से झरना गिर रहा हो। ५५ भैरव मुंडमाल ले-ले आते और महाकाल के गले में पहनाते। ५६ बूढ़े गीध लड़ाई के मैदान में बोलते— मांस खाने की अभिलाषा आज पूरी हुई। ५७ चारों ओर आह-आह और हाय-हाय की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। लंका नगरी सदमे से उदास हो गई। ५८ रावण ने ऐसा पाठ पढ़ा कि सारे नगर में विधवाओं की जमघट हो गई। ५९ राक्षसों की बहुएँ रोतीं और कहतीं— "हाय, आज विधाता ने हमारे घर को श्मशान बना दिया। ६० पूजनीय विभीषण कहाँ हैं, जिन्होंने राक्षस-वंश की इज्जत बचाई? ६१ वे हाथ में तेज तलवार ले-लेकर विधवाओं को क़त्ल कर दें, क्योंकि ६२ संसार में पति के बिना जीना बेकार है। खुद अपने प्राण भी भार लगते हैं। ६३ सबों ने अपनी आँखों से अपने-अपने पतियों को युद्धभूमि में मरते देखा। अब शरीर में प्राण रखकर क्या सुख मिलेगा? ६४ ज़हर लाओ और सभी बहनें मिलकर पियें या गले में पत्थर लटकाकर समुद्र में डूब मरें। ६५ राक्षसों ने कहाँ लूटपाट नहीं की? हाय, अब यह लंका नगरी स्वाधीन नहीं रही।" ६६ इस प्रकार बिलखती हुई वे अपने शरीर से गहने उतारतीं और कहतीं, "जब विधाता प्रतिकूल हो जाता है तब सारे अरमान जाते रहते हैं। ६७ मणि की माला लगती है जैसे नागिन हो। लगता है आज हमारे भाग्य ने पलटा खाया।" ६८ कोई कहती— "हे युवती, चित्त

तनिकाँ सौँ होयत नहि हानि । करुणामय तनिकाँ लिय मानि ।। ७० ।।
दाँतय ओठ काट दशभाल । विकट कोप विश लोचन लाल ।। ७१ ।।
रामचन्द्र दिश रथ चढ़ि धाव । अशनि जेहन शर कोटि चलाब ।। ७२ ।।
अविरल जलधर सम शर-धार । शरक निकर दशकन्धर मार ।। ७३ ।।
राम-निकट जे वीर प्रधान । सभ जन आनन कयल मलान ।। ७४ ।।
कनक-अलङ्कृत पावक जेहन । रघुवर बाण चलाओल तेहन ।। ७५ ।।

।। सोरठा ।।

देखि समर अमरेश, मातलि सारथि काँ कहल ।। ७६ ।।
रथपर अछि लङ्केश, रघुनन्दन रथ-रहित छथि ।। ७७ ।।
रथ लङ्का लय जाउ, अस्त्र सकल तेहि पर धरू ।। ७८ ।।
हमर सन्देश सुनाउ, रथ चढ़ि मारू शत्रु कें ।। ७९ ।।
रथ पहुँचल तेहिठाम, हाथ जोड़ि मातलि कहल ।। ८० ।।
चढ़ल जाय प्रभु राम, अमरेश्वर-साहित्य रथ ।। ८१ ।।
अस्त्र शस्त्र सभ धयल, कवच अभेद्य अखेद्य विधि ।। ८२ ।।
प्रभु सुनि सम्मति कयल, नमस्कार कय रथ चढ़ल ।। ८३ ।।

को स्थिर करो। राम सभी संकटों को हरण करनेवाले हैं। ६९ उनके हाथ बुरा नहीं होगा। मान लो, वे बड़े दयालु हैं।" ७० रावण दाँतों से अपना होठ काटता। भीषण क्रोध से उसकी बीसों आँखें लाल हो गई हैं। ७१ वह रथ पर सवार हो राम की ओर दौड़ा, और वज्र के समान करोड़ों तीर उन पर चलाने लगा। ७२ जैसे बादल से वर्षा होती है उसी तरह रावण तीरों की बौछार करने लगा। ७३ यह देख राम के पास जितने वीर सेनापति थे उन सबों का चेहरा उतर गया। ७४ तब राम ने सोने से अलंकृत आग के समान बाण चलाया। ७५ इन्द्र ने यह लड़ाई देखी और अपने सारथि मातलि से कहा— ७६ "देखो, रावण रथ पर सवार है पर राम बिना रथ के हैं। ७७ इस रथ को लंका ले जाओ। इस पर सारे अस्त्र रख दो। राम को मेरा संवाद जाकर कहो कि वे इस रथ पर सवार हो शत्रु को मारें।" ७८-७९ रथ राम के पास पहुँच गया। हाथ जोड़कर मातलि ने कहा— ८० "हे राम, इस रथ पर चढ़िये। देवताओं के राजा इन्द्र ने सहायता के लिए यह रथ दिया। ८१ इसमें सभी प्रकार के अस्त्र रखे हैं, और ऐसा कवच है जिसे कोई अस्त्र बींध नहीं सकता है।" ८२ राम ने यह सुनकर उस रथ को स्वीकार किया और इन्द्र के प्रति सिर झुकाकर रथ पर सवार हो गये। ८३ फिर इतनी भारी लड़ाई होने लगी जिसका वर्णन कोई न कर सकता, शेषनाग

॥ चौपाइ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

महायुद्ध बरणय के पार। शेष सहस्र-मुख कहइत हार ॥ ८४ ॥
रावण अग्नि-अस्त्र लय फेक। अग्नि-अस्त्र सौं प्रभु सभ टेक ॥ ८५ ॥
देव-अस्त्र दशभाल चलाब। देव-अस्त्र-बल राम फिराब ॥ ८६ ॥
पन्नग-अस्त्र चलाओल फेर। सापहि साप समर भेल ढेर ॥ ८७ ॥
दिश ओ विदिश विकल दल कयल। गरुड़-अस्त्र रघुनन्दन धयल ॥ ८८ ॥
पन्नगास्त्र जौं जौं फुफुआथि। गरुड़-अस्त्र गट गट गिड़ि जाथि ॥ ८९ ॥
रावण माया करथि अपार। श्रीरघुनन्दन कर संहार ॥ ९० ॥
देखि इन्द्रक रथ सारथि निकट। रावण क्रुद्ध भेल मन विकट ॥ ९१ ॥
इन्द्रादिक कृत सभ उत्पात। बड़ प्रपञ्च अपनें रह कात ॥ ९२ ॥
इन्द्रक घोड़ा कौं शर मार। मातलि सारथि शत्रु विचार ॥ ९३ ॥
पड़य न सारथि घोड़ा दृष्टि। कयल दशानन सायक-वृष्टि ॥ ९४ ॥
सुरगण नभ कर हा हा-कार। बिगड़ल देखि समर-व्यवहार ॥ ९५ ॥
सहित विभीषण बानर वीर। विकल मर्म्म मे वेधित तीर ॥ ९६ ॥
घोर युद्ध कर रावण एक। विश भुज धनुष धयल शर फेक ॥ ९७ ॥
रामचन्द्र मन बाढ़ल कोप। करथ चाह दश-वदनक लोप ॥ ९८ ॥

अपने हज़ार मुँहों से भी वर्णन करते थक जाएँगे। ८४ रावण अग्न्यस्त्र चलाता तो राम अग्न्यस्त्र से उसे काट देते। ८५ जब वह देवास्त्र चलाता तो राम देवास्त्र से उसे लौटा देते। ८६ फिर रावण ने सर्पास्त्र छोड़ा। सारी रणभूमि में साँप ही साँप छा गये। ८७ सभी दिशाओं में राम के सैनिक यह देख घबरा गये। तब राम ने गरुड़ास्त्र छोड़ा। ८८ ज्यों-ज्यों सर्पास्त्र फू-फू करते हुए बढ़ते त्यों-त्यों गरुड़ास्त्र उन्हें टपाटप खाते जाते। ८९ रावण तरह-तरह की माया रचता और राम उसको काटते जाते। ९० इन्द्र के रथ और सारथि को राम के पास में देखकर रावण के मन में घोर क्रोध हो उठा। ९१ उसने कहा— "ये सारे उत्पात इन्द्र आदि देवताओं ने रचे हैं, पर वंचना यह है कि वे खुद अलग ही रहते।" ९२ इतना कहकर रावण ने इन्द्र के घोड़े को तथा सारथि मातलि को शत्रु समझकर तीर लगाया। ९३ फिर न वह घोड़ा दिखाई पड़ा और न वह सारथि। रावण तीरों का बौछार करने लगा। ९४ आकाश में देवता लोग लड़ाई की बिगड़ी हुई हालत देख हाहाकार करने लगे। ९५ विभीषण-सहित वीर बन्दरों के मर्मस्थल में तीर घुभ गये थे, इससे वे विकल थे। ९६ रावण अकेला ही भीषण युद्ध कर रहा था। बीसों हाथों में धनुष ले दनादन तीर चलाता जा रहा था। ९७ रामचन्द्र के मन में क्रोध बढ़ गया और वे राक्षस को खत्म करने की कोशिश करने

ऐन्द्र धनुष सायक लय हाथ। कालानल सन श्री रघुनाथ ॥ ९९ ॥
सुरगण सिद्ध तथा गन्धर्व्व। देखथि युद्ध गगन सौँ सर्व्व ॥१००॥

॥ मिथिला-संगीतानुसारेण भैरव-छन्दः ॥

॥ ध्रुपद ॥

रामचन्द्र-हाथ सौँ सायक छट सन्न सन्न ॥ १०१ ॥
राक्षसेन्द्र-देह सौँ शोणित बह फन्न फन्न ॥ १०२ ॥
देवी नाच मगन नूपुर बाज झन्न झन्न ॥ १०३ ॥
देवताक वृन्द कहै रामचन्द्र धन्य धन्य ॥ १०४ ॥
बार बार मेदिनी समस्त ऊठ काँपि काँपि ॥ १०५ ॥
अन्धकार चन्द्र सूर्य्य चक्र लेथि झाँपि झाँपि ॥ १०६ ॥
तारका-निपात उतपात बाढ़ अर्व्व खर्व्व ॥ १०७ ॥
राहु-उपराग दृष्ट चन्द्र सूर्य्य विना पर्व्व ॥ १०८ ॥
गृद्ध वृद्ध आबि दशभाल-भाल-वृन्द नोच ॥ १०९ ॥
आज छूटि गेल की जटायु धर्म्मशील शोच ॥ ११० ॥
मौलि दशमौलि मही आबि खस्स धम्म धम्म ॥ १११ ॥
योगिनीक यूथ लूट ताल-फल हुम्म हुम्म ॥ ११२ ॥
रावण न मरय सकल माथ काटलहुँ ॥ ११३ ॥
सङ्ग्राम-अवनि मुण्ड-झुण्ड काटि पाटलहुँ ॥ ११४ ॥
चिन्तित बहुत चित्त भेल रघुनाथ काँ ॥ ११५ ॥

लगे। ९८ राम ने इन्द्र-धनुष पर प्रलयकाल की आग के समान ती
चलाये। ९९ देव, सिद्ध और गन्धर्व सभी आकाश से युद्ध देख रहे थे। १०
राम के हाथ से सनासन तीर छूट रहे हैं। १०१ रावण के शरीर से बन-ब
लहू निकल रहा है। १०२ देवी चंडी नाच रही है और उसके नूपुर झनाझ
बज रहे हैं। १०३ देवता लोग पुकार रहे हैं— धन्य हैं, राम धन्य हैं। १
बार-बार सारी धरती काँप उठती है। १०५ धूल के उड़ने से छाये अंधेरे
चाँद और सूरज को ढक लिया। १०६ तारे टूटे और लाखों उत्पात हुए। १
अमावस और पूनम के बिना ही सूरज और चाँद के गहन लगे। १०८
गीध. आ-आकर रावण के माथे नोच रहे हैं। १०९ क्या आज धर्मा
जटायु की चिन्ता दूर हो गई ? ११० रावण के मस्तक कट-कटकर धरती
धड़ाम-धड़ाम गिर रहे हैं। १११ योगिनियाँ पेड़ से गिरे ताड़ के फल
समान उन मुंडों को आपस में होड़ के साथ लूट रही हैं। ११२ सारे f
कट जाने पर और रणभूमि में कोटि-कोटि मुंडो के फैल जाने पर भी रा
मरा नहीं। ११३-११४ रावण के मस्तक को बढ़ते ही देखकर राम के मन

वृद्ध भेल देखि देखि रावणक माथ कां ॥ ११६ ॥
महाकाल सहित समर शोभ कालिका ॥ ११७ ॥
बहुत प्रसन्नतरा देवि मुण्ड-मालिका ॥ ११८ ॥
हाथ जोड़ि चण्डिकाक कयल देव वन्दना ॥ ११९ ॥
जय जय जगदीश्वरी महेशि दक्ष-नन्दना ॥ १२० ॥
सृष्टि उतपत्ति प्रतिपाल लय कारिणी ॥ १२१ ॥
अम्बिका थिकहुँ अहाँ सर्व्व लोक-तारिणी ॥ १२२ ॥
तारिणी हमर चित्त चिन्ताजाल आज अछि ॥ १२३ ॥
मर दशभाल से उपाय मुख्य काज अछि ॥ १२४ ॥
अट्टहास हसलि तखन मुण्डमालिका ॥ १२५ ॥
विजय पायब रघुनाथ कहै कालिका ॥ १२६ ॥
कयल कृतार्थ अहाँ मर्त्य-अवतार सौं ॥ १२७ ॥
योगिनी प्रसन्ना-मुखी भेलि रक्तधार सौं ॥ १२८ ॥
हमर क्षुधाक शान्ति भेल नहि कतहू ॥ १२९ ॥
भेलहुँ प्रसन्ना हम महाकाल बतहू ॥ १३० ॥
देखि लेब रावणक मृत्यु गोट नयन सौं ॥ १३१ ॥
तखन नाचति योगिनीक वृन्द चयन सौं ॥ १३२ ॥
रावण मरत कोना पूछू तनि भाय कां ॥ १३३ ॥
कहताह रावणक मरण-उपाय कां ॥ १३४ ॥

बड़ी चिन्ता हुई। ११५-११६ भगवान महाकाल के साथ भगवती कालिका मुंडों की माला पहने शोभा पा रही हैं और बहुत खुश हैं। ११७-११८ तब राम हाथ जोड़कर देवी चण्डिका की स्तुति करने लगे— ११९ "हे जगदीश्वरी, हे शिव की शक्ति, हे दक्ष की कन्या, तुम्हारी जय हो। १२० तुम इस संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हो। १२१ तुम सारे संसार की माता अम्बिका हो, तुम सभी लोगों का उद्धार करनेवाली हो। १२२ हे तारिणी, आज मेरा मन चिन्ता के जाल में फँसा है। १२३ रावण मरे, यही आज मेरी प्रधान कामना है।" १२४ यह स्तुति सुनकर मुण्डमालाधारिणी चण्डिका ठठाकर हँसी। १२५ चण्डिका ने कहा— "हे राम! तुम विजय पाओगे। १२६ आपने मानव के रूप में अवतार लेकर हम देवताओं को कृतार्थ किया। १२७ योगिनियाँ रक्त की धारा से तृप्त हो गईं। १२८ इससे पहले मेरी भूख कहीं नहीं मिटी थी। १२९ आज मैं प्रसन्न हुई और मेरे मतवाले शिवजी भी प्रसन्न हुए। १३० रावण की मृत्यु अपनी आँखों से देख लेंगे। १३१ ऐसा होने पर योगिनियों का दल निश्चिन्त हो नाचेगा। १३२ रावण कैसे मरेगा यह रहस्य आप उसके भाई विभीषण से पूछिए। १३३ वे

देव ने विलम्ब करू मारू दशमाथ काँ ॥ १३५ ॥
कहु की अभीष्ट-देनिहार सर्व्व-नाथ काँ ॥ १३६ ॥

॥ दोहा ॥

निकटहि छला विभीषण, पुछलनि श्रीरघुनाथ ॥ १३७ ॥
रावण-मरण-उपाय कहू, सम्प्रति हमरा हाथ ॥ १३८ ॥

॥ चौपाइ ॥

सुनल विभीषण रघुवर-उक्ति । रावण-मरणक कहलनि युक्ति ॥ १३९ ॥
ब्रह्म-दत्त-वर छथि दशभाल । निकट न आबय तनिकर काल ॥ १४० ॥
नाभि - प्रदेश कुण्डलाकार । सुधा - सरोवर प्राणाधार ॥ १४१ ॥
अनल-अस्त्र सौँ शोषल जाय । रावण-मरणक सहज उपाय ॥ १४२ ॥
अनल-अस्त्र रघुवर देल छोड़ि । रावण-नाभिकुण्ड देल फोड़ि ॥ १४३ ॥
दुइ भुज एक शेष कय माथ । काटल भुज शिर श्रीरघुनाथ ॥ १४४ ॥
घोर शक्ति दश-कण्ठ उठाय । मारल मरथु विभीषण भाय ॥ १४५ ॥
शक्तिक शक्ति हरल प्रभु बाट । कनकाञ्चित सिर शर सौँ काट ॥१४६॥
रावण अतिशय भेला मलान । एक शिर दुइ भुज तदपि न ज्ञान ॥१४७॥
रघुनायक पर सायक फेक । रघुनन्दन शर मार अनेक ॥ १४८ ॥

रावण की मृत्यु का उपाय बतायेंगे। १३४ हे देव, अब विलम्ब न कीजिए और रावण को मारिये। १३५ अधिक क्या कहूँ; आप सबके प्रभु और अभीष्ट-दाता हैं।" १३६ विभीषण पास में ही थे। राम ने उनसे पूछा— "अभी मुझे यह बताइए कि रावण मरे, इसका उपाय क्या है ?" १३७-१३८ राम की बात सुनकर विभीषण ने उन्हें रावण के मरने का उपाय बता दिया। उन्होंने कहा— १३९ "रावण को ब्रह्मा से वरदान मिला हुआ है कि काल पुरुष भी उसके पास भटक नहीं सकता। १४० उनकी नाभि की जगह गोल आकार का एक अमृतकुंड है; वही उसके प्राण का आधार है। १४१ अग्न्यस्त्र चलाकर उस अमृतकुंड को सोख लीजिए। रावण मरे, इसका यही आसान रास्ता है।" १४२ राम ने अग्न्यस्त्र छोड़ा और रावण के नाभिकुंड को फोड़ डाला। १४३ फिर राम ने दो बाँहें और एक सिर को छोड़ शेष बाँहों और सिरों को काट दिया। १४४ तब भाई विभीषण को जान से मारने के लिए रावण ने एक भीषण शक्ति (साँगी) उठाकर वार किया। १४५ राम ने उस साँगी के प्रभाव को नष्ट कर दिया और उसके सोने से मढ़े शीर्ष (नोक) को तीर से काट दिया। १४६ रावण बहुत उदास हो गया। एक सिर और दो बाँहें शेष रह जाने पर भी उसे आँख न खुली। १४७ वह राम के ऊपर तीर चलाने लगा और राम भी उसे तीर पर तीर मारने लगे। १४८ घमासान

तुमुल युद्ध सुर हर्ष विषाद। सकल समुद्र रहित-मर्याद ॥ १४९ ॥
मातलि देलनि स्मरण कराय। दशमुख माथ न काटल जाय ॥ १५० ॥
कयल जाय ब्रह्मास्त्र प्रयोग। दशकन्धर नहि जीतय योग ॥ १५१ ॥
रावण-मरण-समय अछि आज। कहथि रहथि नित देव-समाज ॥ १५२ ॥
ताकि मर्म्म मे हनिऔनि बाण। चट पट उड़ दशवदनक प्राण ॥ १५३ ॥
इन्द्रक सारथि कहलनि जह। रघुनन्दन शुनि कयलनि सेह ॥ १५४ ॥
कयलनि हाथ दीप्त शर तेहन। कर फुफकार फणीश्वर जेहन ॥ १५५ ॥
जनिक पार्श्व मे मारुत बनल। तनि फल मे रवि राजित अनल ॥ १५६ ॥
देह गगनमय जनिकां सर्व्व। लोकपाल बस तनिका पर्व्व ॥ १५७ ॥
गुरुता मन्दर मेरु समान। यहन अस्त्र लेलनि भगवान ॥ १५८ ॥
सर्व्वलोक - भय - नाशन नाम। अभिमन्त्रित कयलनि श्रीराम ॥ १५९ ॥
वेद-उक्त विधि सौं लेल चाप। कयलनि रघुवर प्रबल प्रताप ॥ १६० ॥

॥ षट्पद छन्द ॥

क्रुद्ध कहल रघुनाथ, दशानन खल कों मारब ॥ १६१ ॥
निर्भय कय सभ लोक, भार धरणीक उतारब ॥ १६२ ॥
कयल धनुष सन्नद्ध बाण, अरि-मर्म्म-विघाती ॥ १६३ ॥
वज्रकल्प उद्धष धधक, दशकन्धर-छाती ॥ १६४ ॥

लड़ाई होने लगी। देवता लोग कभी हर्षित होते थे तो कभी चिन्तित। सभी समुद्र उतावले हो गये। १४९ इन्द्र के सारथि मातलि ने स्मरण कराया कि "रावण का सिर काटना तो बाकी ही है। १५० अब ब्रह्मास्त्र चलाइए। रावण को जीतने की ताक़त नहीं है। १५१ रावण के मरने का समय आज ही है, देवता लोग ऐसा बतला रहे थे। १५२ मर्म ताककर तीर चलाइए। तुरन्त ही रावण के प्राण उड़ जाएँगे।" १५३ इन्द्र के सारथि मातलि ने जैसा कहा राम ने वैसा किया। १५४ राम ने अपने हाथ में एक तेज़ बाण लिया। वह शेषनाग की भाँति फुफकारता था। १५५ उसके बगल में चलाने के लिए वायुदेव थे, उसके फल में सूर्य और अग्निदेव समाहित थे। १५६ उसका सारा शरीर आकाशमय था। उसकी ग्रन्थि-ग्रन्थि में इन्द्र आदि लोकपाल समाहित थे। १५७ उसमें मेरु पर्वत के बराबर भारीपन था। राम ने ऐसा बाण हाथ में लिया। १५८ इस अस्त्र का नाम 'सभी लोगों के डर को दूर करनेवाला' था। राम ने इसको अभिमन्त्रित किया। १५९ फिर वेद में बताई गई रीति से धनुष उठाया और प्रबल प्रताप दिखाने लगे। १६० राम क्रुद्ध होकर बोले— "आज मैं दुष्ट रावण को मार डालूँगा। १६१ सभी लोगों का डर दूर कर धरती का भार उतारूँगा" १६२ तब राम ने शत्रु के मर्मस्थल पर चोट पहुँचानेवाले उस बाण को धनुष पर

लागल जाय कृतान्त जकँ, हृदय बेधि प्राणान्त कय ॥ १६५ ॥
धसि धरणीतल राम-शर, आबि बसल तूणीर मय ॥ १६६ ॥

॥ कलहंस-छन्दोभेदे माली-छन्दः श्रीछन्दश्च ॥

रावणक हाथ सौँ ससरि खस चाप ॥ १६७ ॥
घूमिकेँ खसल भूमि भूमिभार पाप ॥ १६८ ॥
भेलहुँ अनाथ नाथ विना दशभाल ॥ १६९ ॥
छलहुँ कि सिंह आब भेलहु श्रृगाल ॥ १७० ॥
करत के रावण सदृश प्रतिपाल ॥ १७१ ॥
सूर्य्यवंश मध्य राम जनमल काल ॥ १७२ ॥
विश गोट बाहु दश गोट छल भाल ॥ १७३ ॥
तनिकहु आबिकँ ग्रहण कयल काल ॥ १७४ ॥
प्राण सौँ रहित भय गेला दशमाथ ॥ १७५ ॥
नाचि नाचि कीश कहै जय जय रघुनाथ ॥ १७६ ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण-मरण विदित सभठाम । मन अति हर्ष विजय सङ्ग्राम ॥ १७७ ॥
पूरल आश देव-मन आज । रघुनन्दन कयलनि सभ काज ॥ १७८ ॥

चढ़ाया। १६३ वज्र के समान वह अमोघ बाण रावण की छाती में लगा और उसे दग्ध करने लगा। १६४ उस बाण ने यमराज की तरह जाकर उसकी छाती को बेध उसका प्राणान्त कर दिया। १६५ फिर धरती में घुसा और लौटकर तरकस में आ गया। १६६ रावण के हाथ से धनुष खिसककर गिर गया। १६७ चक्कर खाकर वह धरती का भार पापी रावण धरती पर गिर पड़ा। १६८ जीवित बचे राक्षस कहते हैं— "रावण हमारे प्रभु थे उनके बिना हम अब अनाथ हो गये। १६९ पहले हम लोग सिंह के समान थे, पर अब तो सियार की गति हो गई। १७० रावण की भाँति अब हमारा पालन-पोषण कौन करेगा ? १७१ सूर्यवंश में राम हम लोगों के लिए काल होकर पैदा हुआ। १७२ जिन्हें बीस बाँहें और दस सिर थे उन रावण को भी काल आकर खा गया। १७३-१७४ रावण के प्राण चले गये।" १७५ कपिगण नाच-नाचकर कहते हैं— "जय हो ! रघुनाथ की जय हो।" १७६ हर जगह खबर फैल गई कि रावण मारा गया। लड़ाई में विजय होने से देवताओं के मन में हर्ष का ठिकाना न रहा। १७७ आज देवताओं के मन की कामना पूरी हुई। राम ने सारा काम तमाम कर दिखाया। १७८

त्रिदश-दुन्दुभी बाजय लाग। नाच अप्सरा गाबि सुराग॥ १७९॥
रघुनन्दन पर फूलक वृष्टि। कय देल आज अपूर्व्व सृष्टि॥ १८०॥
स्तुति कर मुनिजन सिद्ध समस्त। धन्य कयल रावण-बल-अस्त॥ १८१॥
रावण-देह जोति बहराय। रघुनन्दन मे गेल समाय॥ १८२॥
से देखइत सभ देव छलाह। धन्य दशानन सुर बजलाह॥ १८३॥
हमरा सभ काँ सात्त्विक कर्म्म। सपनहुँ नहि पर-तरुणी-नर्म्म॥ १८४॥
बहुत कर्म्म रावण-कृत छोट। तामस-रूप भूप बड़ गोट॥ १८५॥
विष्णु-द्रोह तापस काँ मार। हरि हरि आनय अनकर दार॥ १८६॥
दैवौ गति किछु कहल न जाय। मुक्तिलाभ तनिकाँ की न्याय॥ १८७॥
नारद पहुँचलाह तहिठाम। कहलनि नाम बजाओल राम॥ १८८॥
बुझलनि अमरक हृदय-विषाद। नारद कहल बहुत आह्लाद॥ १८९॥
रावण-मरण शुनल प्रभु-हाथ। कोपहु कल्पवृक्ष रघुनाथ॥ १९०॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

मारि रावण विश्व-कण्टक, धनुष बामा हाथ॥ १९१॥
तथा धयलथ दक्ष कर शर, भ्रमण कर रघुनाथ॥ १९२॥

देवताओं का नगाड़ा बजने लगा। अच्छे-अच्छे गीत गाती हुई अप्सराएँ नाचने लगीं। १७९ राम के ऊपर फूल बरसने लगे। राम ने आज मानो नयी सृष्टि कर दी। १८० सारे मुनि और सिद्ध लोग राम की स्तुति करने लगे— "हे राम, आप धन्य हैं जो रावण की ताक़त को खत्म किया।" १८१ रावण के शरीर से एक ज्योति निकली और वह राम के शरीर में समा गई। १८२ सभा देवता यह तमाशा देख रहे थे। देवगण बोले— "धन्य है रावण। १८३ हम लोग सदा सात्त्विक कामों में लगे रहे। सपने में भी पराई औरत से साथ नहीं किया। १८४ रावण ने तो बहुत-सारे ओछे काम किये हैं। वह बड़े भारी तामसी प्रकृति का राजा था। १८५ वह भगवान् विष्णु से द्रोह करता था। तपस्वियों को मारता था। पराई औरत को हरण कर ले आता था। १८६ भाग्य की गति कोई नहीं जानता। ऐसे रावण को मुक्ति मिली। क्या आश्चर्य की बात है!" १८७ वहाँ नारद पहुँचे। उन्होंने अपना नाम बताया। राम ने उन्हें अपने पास बुलाया। १८८ उन्हें देवताओं के हृदय का विषाद मालूम हुआ। नारद ने कहा— "बड़ी खुशी है।" १८९ उन्हें मालूम हुआ कि रावण राम के हाथ से मारा गया है। क्रोध में आने पर भी राम कल्प-वृक्ष के समान हैं। १९० दुनिया भर को तकलीफ़ देनेवाले रावण को मारकर बायें हाथ में धनुष लिये और दाहिने हाथ में तीर लिये राम भ्रमण कर रहे हैं। १९१-१९२ उनकी आँखों के कोने लाल हैं, साँवला शरीर

शोण-लोचन-कोण रिपु-शर-भिन्न श्याम शरीर ॥ १९३ ॥
कोटि-सूर्य्य-प्रकाश रक्षा, करथु से रघुवीर ॥ १९४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे एकादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

देखि विभीषण ओ हनुमान। अङ्गद लक्ष्मण कोश प्रधान ॥ १ ॥
जाम्बवान आदिक रणधीर। सभकाँ तुष्ट कहल रघुवीर ॥ २ ॥
अहँ सभहिक बाहुक बल पाबि। मारल रावण लङ्का आबि ॥ ३ ॥
यावत रवि शशि नभ रहताह। यशागान मुनिजन करताह ॥ ४ ॥
ई चरितक जे कीर्त्तन करत। भव-वारिधि विनु श्रम से तरत ॥ ५ ॥
रावण मृतक पड़ल रण-भूमि। गृद्ध काक विघासल घूमि घूमि ॥ ६ ॥
दुस्सह मन्दोदरिक विषाद। मुरछि मुरछि कर कुररी-नाद ॥ ७ ॥
पति-गुण कहि कहि करथि विलाप। पाप - प्रताप असह सन्ताप ॥ ८ ॥
भेलहुँ अभागिनि पहु विनु आज। धिक् विधवा-जीवन को काज ॥ ९ ॥

दुश्मन के तीरों से क्षत हैं, उनसे करोड़ों सूर्यों के बराबर ज्योति निकल रही है। ऐसे भगवान् रघुवीर रक्षा करें। १९३-१९४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

बारहवाँ अध्याय

विजय के बाद राम द्वारा विभीषण आदि के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन

युद्ध के बाद राम ने विभीषण, हनुमान, अंगद, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान आदि सभी योद्धाओं की खोज-खबर ली और प्रसन्न हो सबों से कहा— १-२ "आप सबों के बाहुबल की बदौलत मैंने लंका आकर रावण को मारा। ३ जब तक आकाश में सूरज और चाँद रहेंगे तब तक मुनि लोग आप सबों का गुण गाते रहेंगे। ४ मेरे इस चरित का जो कीर्तन करेगा वह बिना श्रम के भव-सागर पार करेगा।" ५ रावण का शव लड़ाई के मैदान में पड़ा हुआ है। गीध और कौवे उसे नोच-नोचकर खा रहे हैं। ६ मन्दोदरी को असह्य शोक हो रहा है। वह बार-बार बेहोश होती और कुररी की तरह सिसक-सिसककर रोती है। ७ पति के गुणों का बखान कर-करके बिलखती है। पाप के परिणामस्वरूप वह असह्य सन्ताप से जल रही है— ८ आज मैं पति के बिना अभागिन हो गई। धिक्कार है विधवा के जीवन को। इससे अब क्या

तुम्बुरु प्रभृतिक शुन जे गान। काक नोच से प्रियतम-कान ॥ १० ॥
यम जे लोचन-ओतहि जाथि। हा से गृद्ध नोचि कथ खाथि ॥ ११ ॥
शिव काँ माँथ चढ़ाबथि काटि। सञ्जीवन-साधन भेल माटि ॥ १२ ॥
अहह नाथ नित नित अन्याय। एकदिन माँथा अवश बिशाय ॥ १३ ॥
परमेश्वर सौँ भारी द्वेष। दण्डक गेलहुँ दण्डी-वेष ॥ १४ ॥
सीता हरि आनल जेहि काल। तेँहिखन भानल नहि दशभाल ॥ १५ ॥
शोक बिभीषण-हृदय समाय। शीतज्वर जनु देल दलकाय ॥ १६ ॥
कुल-प्रधान हा बड़का भाय। काल-प्रपञ्च वृथा नहि जाय ॥ १७ ॥
अपनेक कि कहब गुण ओ दोष। के कर वारण कालक रोष ॥ १८ ॥
विधवा-बनिता-वृन्द-विलाप। शुनि पर-मन सञ्चर सन्ताप ॥ १९ ॥

॥ दोहा ॥

शुनु लक्ष्मण रघुनाथ कह, सत्वर अहँ तहँ जाय ॥ २० ॥
विकल विभीषण शोक सौँ, सद्यः करू उपाय ॥ २१ ॥
लाउ विभीषण काँ एतय, तत्वज्ञान शुनाउ ॥ २२ ॥
की राजा मन विकल अहँ, वनिता-वृन्द बुझाउ ॥ २३ ॥

काम ? ९ हाय, जो कान तुम्बुरु आदि महान संगीताचार्यों का गान सुनते थे, मेरे प्रियतम के उन्हीं कानों को आज कौवे नोच रहे हैं। १० जिन आँखों के सामने यम भी नहीं आते थे, उन्हें गीध नोच-नोचकर खा रहे हैं। ११ जिस संजीवन-सिद्धि के सहारे वे अपना सर काटकर चढ़ाते थे, वह संजीवन-सिद्धि आज मिट्टी हो गई। १२ हा नाथ, यदि रोज-ब-रोज अन्याय-अत्याचार करें तो एक-न-एक दिन उनका कुफल अवश्य भोगना पड़ता है। १३ आपने परमेश्वर से बहुत द्वेष किया। संन्यासी का छद्म-वेष बनाकर दंडकवन गये। १४ जब ही आप सीता को हर लाये, उसी दिन मैं जान गई कि अब आपके ये दसों सिर टिकनेवाले नहीं।" १५ विभीषण के हृदय में शोक हुआ। उनका हृदय दलकने लगा जैसे जड़ैया बुखार हो गया हो। १६ वे विलाप करने लगे— "हा मेरे बड़े भाई, आप हमारे कुल के श्रेष्ठ पुरुष थे। काल की चाल बेकार नहीं जाती। १७ आपका गुण या दोष मैं क्या कहूँ ? काल-वश सभी सब कुछ करते हैं, काल के प्रकोप को कौन रोक सकता है!" १८ विधवाएँ जो करुणक्रन्दन कर रही हैं वह सुनकर दुश्मन का मन भी सन्ताप से भर जाता है। १९ तब राम ने कहा— "हे लक्ष्मण, तुम तुरत वहाँ जाओ। २० विभीषण शोक से व्याकुल हैं। उन्हें सान्त्वना देने का उपाय करो। २१ विभीषण को यहाँ ले आओ। उनका प्रबोधन करो कि २२ राजा होकर आप विह्वल क्यों होते हैं ? आप महिलाओं को समझाइए-बुझाइए। २३ लक्ष्मण ने विभीषण को सान्त्वनाप्रद उपदेश दिया— "रोने

॥ चौपाइ ॥

लक्ष्मण कहल सुखद उपदेश। कनलेँ की भेटता लङ्केश ॥ २४ ॥
देहादिक सौँ आत्मा आन। विश्व अनित्य मानि करु ज्ञान ॥ २५ ॥
देखू रावण-देह समीप। भवन अँधार मिझायल दीप ॥ २६ ॥
सगुण ब्रह्म रामहिँ काँ जानि। सेवा करू कतहु नहि हानि ॥ २७ ॥
प्रभु कहइत छथि से शुनु कान। भ्राता रावण छथि नहि आन ॥ २८ ॥
दाहादिक परलौकिक काज। करु गय सभटा अपनहि आज ॥ २९ ॥
कनइत वनिता-गण करु चूप। लङ्का-राज्यक भेलहुँ भूप ॥ ३० ॥
सभ जनि घुरिकेँ लङ्का जाथु। पानि पिबथु गय अन्नो खाथु ॥ ३१ ॥
लक्ष्मण कहल कथा सुनि कान। गेला जतय राम भगवान ॥ ३२ ॥
कहल विभीषण शुनु भगवान। रावण पतित छला सभ जान ॥ ३३ ॥
तनिकर दाह करब नहि जाय। विदित छला अततायि कहाय ॥ ३४ ॥

॥ सोरठा ॥

बैर मरण-पर्य्यन्त, कहल राम उत्तर तकर ॥ ३५ ॥
भेल प्रयोजन अन्त, करु रावण संस्कार विधि ॥ ३६ ॥
तखन विभीषण कयल, लङ्कापति-संस्कार तहँ ॥ ३७ ॥
काष्ठ घृतादिक धयल, चिता धधक प्रलयाग्नि सन ॥ ३८ ॥

से क्या रावण मिल जाएँगे ? २४ देह आदि से आत्मा भिन्न है और यह विश्व अनित्य है, यह समझकर ढाढ़स बाँधिये। २५ देखिये, रावण का शरीर पास में पड़ा है। दिया बुझ गया और घर में अँधेरा छा गया। २६ राम को सगुण ब्रह्म जानकर उनकी सेवा कीजिए, कहीं कोई अहित न होगा। २७ राम ने जो कहा है वह ध्यान से सुनिये। रावण आपके भाई थे, कोई ग़ैर नहीं। २८ आज उनका दाह-संस्कार आदि सारा काम आप स्वयं कीजिए। २९ महिलाएँ जो रो रही हैं, उन्हें समझाइए-बुझाइए। आप लंका के राजा हुए। ३० सभी महिलाएँ लौटकर लंका जाएँ और खाएँ-पिएँ।" ३१ इस प्रकार लक्ष्मण ने जो कहा वह सुनकर विभीषण वहाँ गये जहाँ राम थे। ३२ विभीषण ने कहा— "हे भगवान राम, सुनिये। सभी जानते हैं कि रावण पतित थे। ३३ उनका दाह-संस्कार मैं कैसे करूँगा ? वे तो आततायी के रूप में मशहूर थे।" ३४ राम ने इसका उत्तर दिया— "शत्रुता मरने तक ही रहती है। जो काम था वह पूरा हो गया। अब रावण का संस्कार कीजिए।" ३५-३६ तब विभीषण ने लंकापति रावण का वहाँ अन्तिम संस्कार किया। ३७ चिता में लकड़ी, घी आदि ईंधन डाला और चिता प्रलयकाल की आग जैसे धहधह करने लगी। ३८ तब स्नान किया और हाथ में कुश

कथलनि तखना स्नान, देल तिलाञ्जलि हाथ कुश ॥ ३९ ॥
वनिता-गण कां ज्ञान, कहल विभीषण हित वचन ॥ ४० ॥
क्रन्दन की रहु चूप, सगर नगर घर बनल अछि ॥ ४१ ॥
हमहि भेल छी भूप, सुख सौं रहबे पूर्व्ववत् ॥ ४२ ॥
दशमुख-धरणी जाय, बद्धाञ्जलि प्रभु सौं कहल ॥ ४३ ॥
हो को हमर उपाय, दुर्म्मति पति-सुत-रहित छी ॥ ४४ ॥

॥ अहीर छन्द ॥

॥ तिरहुति ॥

छल छथि पति दशमाथ, हे माधव, तनि विनु विकलि अनाथ ॥ ४५ ॥
ओ अरि-भाव बढ़ाय, हे माधव, प्रभु तन गेलाह समाय ॥ ४६ ॥
हम पाविनि सहि ताप, हे माधव, परिणत भेल फल पाप ॥ ४७ ॥
हम घननादक माय, हे माधव, जलनिधि-शोक समाय ॥ ४८ ॥
प्रभुक चरण भरि नयन, हे माधव, देखल मुक्तिक अयन ॥ ४९ ॥
जय रघुनन्दन वीर, हे माधव, नूतन जलद शरीर ॥ ५० ॥
भ्राता युगल उदार, हे माधव, करब हमर उद्धार ॥ ५१ ॥

॥ मिथिला-सङ्गीतानुसारेण कलहंस छन्दः ॥

॥ श्रीमालव छन्दश्च ॥

देवर अहांक एत छथि महराजे। सुख सम अनुभव तनिक समाजे ॥ ५२ ॥
दशमुख-घरणि करणि अछि नीके। पुर परिजन सभ अहँइक थीके ॥ ५३ ॥

लेकर तिलांजलि दी। ३९ महिलाओं को प्रबोध दिया और बताया कि क्या करना चाहिए— ४० "रोती क्यों हैं? सारी लंकापुरी में घर बन चुके हैं। ४१ मैं ही राजा हुआ हूँ। आप सभी जैसे रहती थीं वैसे ही आराम से रहेंगी।" ४२ रावण की स्त्री मन्दोदरी राम के पास गई और हाथ जोड़कर उनसे कहा— ४३ "अब मेरी क्या गति होगी? मुझे न तो बुद्धि है, न पति और न बेटा। ४४ रावण मेरे प्राणेश्वर थे। उनके बिना मैं अनाथ हो गई। ४५ हे भगवान्, वे आपसे शत्रु का भाव जगाकर अन्त में आपके शरीर में लीन हो गये। ४६ मैं पापिनी सन्ताप सह रही हूँ, पापों का फल भुगत रही हूँ। ४७ मैं मेघनाद की माता हूँ, फिर भी शोकसागर में डूबी हूँ। ४८ मैंने आपके चरण आँखों भर देखे जो मुक्ति के साधन हैं। ४९ हे रघुनन्दन! घनश्याम-तनु वीरवर राम, आपकी जय हो। ५० आप उदार हृदय दोनों भाई मेरा उद्धार करेंगे।" ५१ राम ने कहा— "यहाँ आपके देवर विभीषण महाराज के पद पर हैं। उनके पास आपको सभी सुविधाएं मिलेंगी। ५२ हे रावण की प्रिया मन्दोदरी, आपकी करनी अच्छी है। सभी नौकर-चाकर

देवर वदान्य सह करु सहवासे। मन न रखब किछु विपतिक त्रासे ॥ ५४ ॥
शुनि प्रभु-वचन सकल दुख-हीना। लङ्का मानल से अपन अधीना ॥ ५५ ॥

॥ सोरठा ॥

सभ काँ नगर पठाय, प्राप्त विभीषण प्रभु-निकट ॥ ५६ ॥
पङ्कज-नयन उठाय, देखल भक्त-प्रधान काँ ॥ ५७ ॥
रामक दण्ड-प्रणाम, बहुत विनय मातलि कयल ॥ ५८ ॥
चलला सुरपति-धाम, प्रभु-आज्ञा सौँ हर्षयुत ॥ ५९ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

करु अभिषेक विभीषण माथ। लक्ष्मण काँ कहलनि रघुनाथ ॥ ६० ॥
पूर्व्व कयल हम लङ्कानाथ। सुखशासन न विभीषण-हाथ ॥ ६१ ॥
विधिपूर्व्वक ब्राह्मण सभ आब। हाटक-घटसौँ जलधि-जल लाब ॥ ६२ ॥
पुरजन वानर सैन्य अनेक। कयल विभीषण नृप-अभिषेक ॥ ६३ ॥
प्रभुक प्रणाम विभीषण करथि। रत्न अमूल्य चरण पर धरथि ॥ ६४ ॥
देखि विभीषण प्रभु कृतकृत्य। बड़ गोट राज्य पाबि गेल भृत्य ॥ ६५ ॥
मिलि सुग्रीव सङ्ग रघुनाथ। भेल विजय-यश अहँइक हाथ ॥ ६६ ॥
मारल रावण लङ्का राज। देल विभीषण काँ भल काज ॥ ६७ ॥

और नगरनिवासी आप ही के हैं। ५३ आप उदार देवर के साथ रहें। आप विपत्ति में हैं, ऐसी आशंका मत कीजिए।" ५४ राम की बात सुनकर मन्दोदरी का दुख दूर हुआ और उसने लंका को अपने अधिकार में समझा। ५५ विभीषण सबों को लंकापुरी भेजकर स्वयं राम के पास गये। ५६ राम ने आँख उठाकर अपने प्रमुख भक्त विभीषण को देखा। ५७ इन्द्र के सारथि मातलि ने राम को दंडवत् प्रणाम किया और बहुत बिनती की। फिर राम की आज्ञा पाकर सहर्ष इन्द्रपुरी विदा हुए। ५८-५९ तब राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम विभीषण के माथे पर अभिषेक करो। ६० पहले मैंने इन्हें लंका का स्वामी बनाया। पर सुखपूर्वक शासन करनें का अधिकार विधिवत् उनके हाथ में सौंपा नहीं था। ६१ अब शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ब्राह्मण बुलाए जाएँ। सोनें के घड़ों में समुद्र का जल मँगाया जाए।" ६२ नगर के निवासी, कपिगण और अनेक सैनिक सबों ने मिलकर विभीषण का राज्याभिषेक किया। ६३ विभीषण ने राम को प्रणाम किया और अमूल्य रत्न उनके चरणों पर समर्पित किये। ६४ विभीषण को राजा के रूप में देखकर राम कृतकृत्य हो गये। सेवक को महान् राज्य मिल गया। ६५ तब राम सुग्रीव से मिले और उनसे कहा— "यह विजय की कीर्ति मुझे आप ही की मदद से मिली है। ६६ रावण को मारा। लंका का राज्य विभीषण को दिया, यह अच्छा

विजय-लाभ भेल अहँक प्रसाद। राखल उचित मित्र-मर्याद ॥ ६८ ॥
लङ्का मारुतसुत अहँ जाउ। सीता काँ वृत्तान्त सुनाउ ॥ ६९ ॥
रावण-मरण प्रथम कहि देव। समाचार तनिकर बुझि लेब ॥ ७० ॥
सुनि प्रभु-वचन गेला हनुमान। दनुजी-जन मन कर अनुमान ॥ ७१ ॥
प्रथमहिँ लङ्का अयला जेह। मन अबइछ लगइछ रङ्ग सेह ॥ ७२ ॥
जनकनन्दिनी देखल जाय। दिन दिन गेलि बहुत दुबराय ॥ ७३ ॥
रामचन्द्र-पद मे दृढ़ ध्यान। चिन्हल न आयन छथि हनुमान ॥ ७४ ॥
हाथ जोड़ि तहँ कयल प्रणाम। दूर ठाढ़ भय कहलनि नाम ॥ ७५ ॥
स्वामिनि रावण काँ रघुवीर। मारल समर अमर-मन थीर ॥ ७६ ॥
भेल विभीषण नव लङ्केश। जय जय करथि अमर अमरेश ॥ ७७ ॥
प्रभु-आज्ञा सौँ हर्ष समाद। अयलहुँ कहय न रहय विषाद ॥ ७८ ॥
रावण-दशा कि अछि कहबाक। धर पर सञ्चर गृद्ध ओ काक ॥ ७९ ॥
गेला विभीषण आज्ञा पाय। अन्त-क्रिया कयलनि बुझि भाय ॥ ८० ॥
छल छल लङ्का रावण-वंश। सभहिक भेल समर विध्वंस ॥ ८१ ॥

हुआ। ६७ मैंने आप ही की बदौलत जीत पाई। आपने मित्र की मर्यादा भलीभाँति निभाई।" ६८

सीता को संवाद देना, उनका लौटना तथा अग्नि-परीक्षा

फिर राम ने हनुमान से कहा— "हे पवनसुत, आप लंका जाइए और सीता को समाचार सुनाइए। ६९ पहले यह सुनाना कि रावण मारा गया। फिर उनका कुशल-मंगल पूछना।" ७० राम की बात सुनकर हनुमान सीता के पास गये। वहाँ उन्हें देख राक्षसियाँ अनुमान करने लगीं— ७१ जो बन्दर पहले आया था, रंग-ढंग से लगता है कि वही फिर लंका आया है। ७२ हनुमान ने जाकर जनकनन्दिनी सीता को देखा। वह दिन-पर-दिन दुबली होती गई थी। ७३ उनका ध्यान राम के चरण में इस प्रकार लगा था कि पहचान न सकीं कि ये हनुमान हैं। ७४ वहाँ हनुमान ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दूर ही खड़ा रहकर अपना नाम कहा। ७५ फिर बोले— "हे स्वामिनी, राम ने युद्ध में रावण को मार डाला। देवताओं का मन निश्चिन्त हुआ। ७६ विभीषण लंका के नये राजा हुए। देवता और उनके राजा इन्द्र राम का जय-जयकार कर रहे हैं। ७७ राम की आज्ञा से यह हर्ष का समाचार मैं सुनाने आया हूँ ताकि आपका विषाद दूर हो। ७८ रावण का जो हाल है वह क्या कहें। उसके घर पर गीध और कौवे मँड़रा रहे हैं। ७९ राम की आज्ञा से विभीषण गये और भाई समझकर उसका अन्तिम संस्कार किया। ८० लंका में रावण के कुल के जो-जो राक्षस थे, युद्ध में सबों का अन्त हो गया। ८१ प्रभुवर राम के जो सेवक थे युद्ध में वे सभी बचे हुए हैं

श्रीरघुवर प्रभु३रक जे दास। से सभ कुशल समर निस्त्रास ॥ ८२ ॥
वैदेही मन शुनि बड़ हर्ष। तन पुलकित लोचन जल वर्ष ॥ ८३ ॥
रघवर - प्रिय - सेवक हनुमान। वचन अहाँक सुधाक समान ॥ ८४ ॥
प्रिय वचनक तुल की वसु देब। सकल लोक उत्तम यश लेब ॥ ८५ ॥
शुनु वैदेहि कहल हनुमान। देवि-अनुग्रह सम की आन ॥ ८६ ॥
रावण काँ मारल रघुवीर। मन छल कलुषित से सुख थीर ॥ ८७ ॥
हनुमानक शुनि वचन उदार। सीता उत्तर कहल विचार ॥ ८८ ॥
करुणा-सदन समीर-कुमार। कहल समाद प्रभुक दरबार ॥ ८९ ॥
आज्ञा देथि दुखी - दुख - हरण। देखो श्री रघुनन्दन - चरण ॥ ९० ॥
चलल अनिल-सुत कयल प्रणाम। पहुँचलाह रघुवर जहिं ठाम ॥ ९१ ॥
सीता - दशा कहल सभ कहल। गदगद कण्ठ नयन जल बहल ॥ ९२ ॥
जेहि कारण सागर मे सेतु। दशकन्धर मारल जे हेतु ॥ ९३ ॥
तनि सीता - मन छूटय शोक। देखल जाय मङ्गाय सुकोक ॥ ९४ ॥
रघुनन्दन - माया के जान। मन मे कयल तखन प्रभु ध्यान ॥ ९५ ॥
सीता अनल - गता बहराथु। माया-सीता छाया जाथु ॥ ९६ ॥

और उन्हें अब कोई त्रास नहीं है।" ८२ सीता को यह सुनकर मन में बड़ा हर्ष हुआ। हर्ष से शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। ८३ उन्होंने कहा— "हे राम के प्रिय सेवक हनुमान, आपका यह वचन अमृत के समान है। ८४ आपको मैं इस प्रिय वचन के अनुरूप क्या इनाम दूं? सारी दुनिया में आपको सर्वश्रेष्ठ कीर्ति मिलेगी।" ८५ हनुमान ने कहा— "हे जानकी, आपकी कृपा से बढ़कर और कौन चीज़ है? ८६ रावण को राम ने मारा यह सुनकर मेरा व्यथित चित्त सुख से शान्त हो गया।" ८७ हनुमान का यह प्रशस्त वचन सुनकर सीता ने उत्तर में यह विचार रखा। ८८ "हे कृपालु पवनसुत हनुमान, आपने राम के दरबार का समाचार कहा। ८९ अब मैं दुखियों के दुख को दूर करनेवाले राम के चरणों का दर्शन करना चाहती हूँ।" ९० तब हनुमान प्रणाम करके विदा हुए और वहाँ पहुँचे जहाँ राम थे। ९१ सीता का हाल पूरा-पूरा कह सुनाया। सुनकर राम गद्‌गद हो गये और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। ९२ उन्होंने कहा— "जिनके खातिर समुद्र बाँधा गया और रावण मारा गया उन सीता के मन से शोक दूर होना चाहिए। उनको सकुशल मँगाया जाय। ९३-९४ राम की माया कौन जान सकता है। तब राम ने सोचा— ९५ जो असली सीता आग में समाई हुई थीं वह निकलकर बाहर आवें और माया रूपी सीता छाया में समा जाएँ। ९६ तब राम ने अपने नये मित्र लंकापति विभीषण से हर्षपूर्वक कहा— ९७ "अब सीता वहाँ

॥ सोरठा ॥

मित्र सुनिवल लङ्केश, कहल रघूत्तम हर्षयुत ॥ ९७ ॥
लय आनू एहि देश, सीता भीता छथि वृथा ॥ ९८ ॥

॥ चौपाइ ॥

स्नान वस्त्र सुन्दर नवरङ्ग । सकलाभरण - विभूषित अङ्ग ॥ ९९ ॥
शिविका पर लय आनू आज । प्राणेश्वरि कौं हमर समाज ॥ १०० ॥
गेला विभीषण सङ्ग हनुमान । करबाओल तनिका अस्नान ॥ १०१ ॥
बड़ि बड़ि वृद्धा कौं मङ्गबाय । तेल सुगन्धि देल लगबाय ॥ १०२ ॥
सभ सौं उत्तम छल नव कोष । वस्त्र पहिरलनि से निर्दोष ॥ १०३ ॥
जनि पहिराओल गहना सर्व्व । वस्तु अमूल्य कि खर्व्व निखर्व्व ॥ १०४ ॥
शिविका चढ़लि कहार उठाय । चललि राजपथ सङ्ग सहाय ॥ १०५ ॥
सङ्ग पदाति न किछु पछुआथि । हट हट करयित आगाँ जाथि ॥ १०६ ॥
देखय दौड़ल बानर-ठठ्ठ । धक्का खड़्गिक सह निरहठ्ठ ॥ १०७ ॥
नहि हट पथ सौं कपि जे झट्ट । बेंतक मारि सहथि पट पट्ट ॥ १०८ ॥
बानर-वृन्द कयल चित्कार । राक्षसगण बानर कौं मार ॥ १०९ ॥
राम समीप गेला सभ गोट । मन विषाद किछु लगलैं चोट ॥ ११० ॥

नाहक डरी हुई है। उसे यहाँ ले आइये। ९८ सीता स्नान करके नये रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र पहने। अंगों में सभी गहने लगाये। ९९ तब मेरी प्राणेश्वरी सीता को डोली चढ़ाकर मेरे पास लेते आइये।" १०० आज्ञा पाकर हनुमान के साथ विभीषण सीता के पास गये। उन्हें स्नान कराया। १०१ बड़ी-बड़ी बूढ़ियों को मँगवाकर उनसे फुलेल लगवाया। १०२ नये खजाने में जो सबसे अच्छा स्वच्छ वस्त्र था सीता ने वह पहना। १०३ उन महिलाओं ने उन्हें सारे गहने पहनाये। ये गहने अमूल्य थे, अरबों-खरबों में भी उनका मूल्य आँका नहीं जा सकता। १०४ सीता डोली पर सवार हुई। कहारों ने डोली को उठाया। वह परिजनों के साथ राजपथ पर चल पड़ी। १०५ साथ में पैदल अंगरक्षक सैनिक चल रहे थे; वे कभी पीछे न होते। वे 'हटो-हटो' की आवाज करते आगे-आगे चल रहे थ। १०६ बन्दरों के दल सीता को देखने दौड़े। उन्हें खड्गधारी अगरक्षक धक्का दे-देकर हटाते थे। फिर भी वे निर्लज्ज की भाँति धक्का खाते थे। १०७ जो बन्दर रास्ते से तुरत न हटते थे उन्हें अंग-रक्षकों के बेंत की मार पड़ती थी। १०८ तब कपिगण चिल्लाने लगे कि राक्षस बन्दरों को पीट रहे हैं। १०९ ये सभी बन्दर राम के पास गये। चोट लगी थी, इससे इनका मन दुखी था। ११० तब राम ने देखा कि एक डोली आ रही है और उसके

देखि सबारी अबइत एक। अनुव्रजन कर लोक अनेक ॥ १११ ॥
कहल बिभीषण कौं तहँ राम। वैदेही आबथु एहिठाम ॥ ११२ ॥
उतरि सबारीवर सौं लेथु। निज-पद-दर्शन जनकौं देथु ॥ ११३ ॥
रघुनन्दन आज्ञा देल जेहन। जनकनन्दिनी कयलनि तेहन ॥ ११४ ॥
राम असह्य कथा किछु कहल। सर्व्वसहा-तनया सभ सहल ॥ ११५ ॥
सीता कौं मन मे भेल आनि। लक्ष्मण कौं कहलनि शुनि कानि॥ ११६ ॥
करु करु देवर ज्वलित हुताश। करब सकल मन संशय नाश ॥ ११७ ॥
प्रभु-अनुमति बुझि जोड़ल अनल। देखइत लोक शोक सौं कनल ॥ ११८ ॥
राम निकट भय भेला ठाढ़। धह धह धाह आगि मे बाढ़ ॥ ११९ ॥
पतिक प्रदक्षिण कय कय बेरि। बेरि बेरि चरणाम्बुज हेरि ॥ १२० ॥
वैदेही सभ शक्तिक शक्ति। रामचरण मे अविरल भक्ति ॥ १२१ ॥
विकल लोक ओ राक्षसदार। कि होयत कि होयत वचन उचार॥१२२॥
सकल देवता भूसुर-चरण। कयल प्रणाम कष्ट सभ हरण ॥ १२३ ॥
सीता निर्भीता निज चित्त। साहस कर आमर्ष निमित्त ॥ १२४ ॥
करयुग जोड़ल अनल समीप। विधु-दिनकर-कुल-कीर्ति-प्रदीप ॥ १२५ ॥
जौं रघुवर मे सत्य सनेह। तौं रह अनल बनल ई देह ॥ १२६ ॥

पीछे बहुत-से लोग लगे हैं। १११ यह देख राम ने विभीषण से कहा—"जानकी को यहाँ लाइये। ११२ वे अपनी डोली से उतर जाएँ और अपने सेवकों को अपने चरण का दर्शन दें।" ११३ राम ने जैसी आज्ञा दी, सीता ने वैसा किया। ११४ राम ने कुछ कड़वी बात कही। सर्वंसहा (सब कुछ सहनेवाली, धरती) की पुत्री सीता ने सब बरदाश्त कर लिया। ११५ फिर भी सीता के मन में कुछ आन हुई। उन्होंने रोते हुए अपने देवर लक्ष्मण से कहा— ११६ "हे देवर जी, आप आग जलाइये। मैं सबों के मन का संदेह दूर करूँगी।" ११७ राम की अनुमति पाकर लक्ष्मण ने आग जलाई। देखते ही सभी लोग शोक से रोने लगे। ११८ राम उस आग के पास खड़े हो गये। आग में धह-धहकर ज्वाला बढ़ती जा रही थी। ११९ सीता ने, जो देवी शक्ति की भी शक्ति है और जिन्हें राम के चरण में अटल भक्ति है, बार-बार पति का प्रदक्षिण किया और बार-बार उनके चरण-कमल का दर्शन किया। १२०-१२१ सभी लोग और राक्षस-पत्नियाँ स्थिति देखकर खिन्न हो गई थीं और बोलती थीं कि न जाने अब क्या होगा। १२२ तब सीता ने सभी देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणाम किया जो सभी कष्टों को दूर करनेवाले हैं। १२३ सीता को मन में कोई त्रास नहीं था। वह आन पर साहस कर रही थीं। १२४ चन्द्रवंश और सूर्यवंश दोनों को उजागर करनेवाली सीता हाथ जोड़कर आग के पास खड़ी हो गईं और बोलीं— १२५ "यदि मुझे राम से सच्चा प्रेम है तो मेरा यह शरीर आग में ज्यों-का-त्यों बना रहे। १२६

जौं पति तेजि मन अनत न जाय। तौं रह अनल बनल ई काय ॥ १२७ ॥
जाग्रत स्वप्नदशा मे आन। पुरुषक भेल न मन मे ध्यान ॥ १२८ ॥
सत्य स्वकीया जौं हम नारि। पति-पद-व्रत मन गर्व्व विचारि ॥ १२९ ॥
ज्वलित अनल मे पड़बे जाय। व्रत अन्यथा देह जरि जाय ॥ १३० ॥
साक्षी पावक रक्षा करब। संशय सकल-लोक-गत हरब ॥ १३१ ॥
कयल प्रदक्षिण अग्नि-प्रवेश। जय-जय शब्द भेल नभ बेश ॥ १३२ ॥
सीता अनल-राशि मे ठाढ़ि। सीता-कान्ति कोटिगुण बाढ़ि ॥ १३३ ॥
सकल सिद्ध कह बारंबार। एहन विशुद्ध आन के दार ॥ १३४ ॥
लक्ष्मी सीता करु जनु त्याग। सकल लोक कां अनुचित लाग ॥ १३५ ॥
अनल कहल बनि दिव्य स्वरूप। शुनु जगदीश्वर माया-भूप ॥ १३६ ॥
छल छथि सीता सोपलि जतय। प्रकट भेलि छथि देखू ततय ॥ १३७ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥

यदि मेरा मन पति को छोड़ और कहीं नहीं जाता है तो मेरा यह शरीर आग में ज्यों-का-त्यों बना रहे। १२७ यदि जागते या सोते कभी मेरे मन में पराये पुरुष का ध्यान न आया; १२८ यदि मैं सच्ची स्वकीया नारी हूँ और पतिव्रता होने का मुझे अभिमान है, १२९ तो मैं धधकती आग में प्रवेश करूँगी। यदि मेरा व्रत गड़बड़ हो तो मेरा यह शरीर जल जाय। १३० हे अग्नि, आप साक्षी हैं; मेरी रक्षा कीजियेगा। सारे लोगों के मन के सदेह को दूर कर दीजियेगा।" १३१ इतना कहकर सीता ने आग की प्रदक्षिणा किया और उसमें प्रविष्ट हो गई। आकाश में ज़ोर-ज़ोर से जयध्वनि होने लगी। १३२ सीता धधकती आग में खड़ी हो गई। उनकी कान्ति करोड़ों गुना बढ़ गई। १३३ सभी सिद्ध बार-बार कहने लगे— "और कौन नारी ऐसी विशुद्ध है। १३४ सीता तो साक्षात् लक्ष्मी हैं। इनका त्याग मत कीजिये।" राम का ऐसा व्यवहार सबों को बुरा लगा। १३५ अग्नि भगवान् दिव्य रूप में प्रकट हुए और बोले— "हे लीलावश राजा बने जगदीश्वर राम! आपने वास्तविक सीता को जहाँ सौंप रखा था, देखिये, उसी आग से वह यहाँ प्रकट हो गई हैं।" १३६-१३७

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्याय: ॥

॥ चौपाइ ॥

ऐरावत पर चढ़ि सुरराज। समीचीन श्री-शची समाज ॥ १ ॥
सहस्राक्ष अयला तहिठाम। सुरगण सहित गबंत गुणग्राम ॥ २ ॥
यम ओ वरुण कुबेर समेत। अयला रघुनन्दन - रण - खेत ॥ ३ ॥
वृषभ चढ़ल अयला वृषकेतु। करब रघूत्तम-स्तुति तैं हेतु ॥ ४ ॥
रजताचल सन झलकय देह। चण्डी सङ्ग अखण्ड सिनेह ॥ ५ ॥
त्रिनयन शोभित श्रीमुख पाँच। रघुपति-चरित सतत से बाँच ॥ ६ ॥
गङ्गा पिङ्ग - जटा भल रङ्ग। भूतप्रेत-गण बहुविध सङ्ग ॥ ७ ॥
ब्रह्मा अयला हंस-सवार। सङ्ग शारदा सदगुणदार ॥ ८ ॥
वीणा पुस्तक अक्ष सुमाल। अयली जतय राम महिपाल ॥ ९ ॥
मुनि ऋषि पितर सिद्ध गन्धर्व्व। उरगादिक मिलि अयला सर्व्व ॥ १० ॥
बद्धाञ्जलि अभिनत सब भाष। प्रभु पूरल जन-मन-अभिलाष ॥ ११ ॥
सकल - लोक - कर्त्ता भगवान। साक्षी सकल देह विज्ञान ॥ १२ ॥
रावण सभक हरल धन धाम। तकरा अपनें मारल राम ॥ १३ ॥

तेरहवाँ अध्याय

सभी देवों द्वारा राम की स्तुति; अग्निदेव द्वारा वास्तविक सीता का लौटाया जाना और राम का सदल-बल अयोध्या के लिए प्रस्थान

देवताओं के राजा हज़ार आँखों वाले इन्द्र सची-सहित और देवताओं के साथ राम का गुण गाते हुए ऐरावत पर चढ़कर वहाँ आये। १-२ यम, वरुण और कुबेर भी वहाँ आये जहाँ राम-रावण-युद्ध हुआ था। ३ बैल पर चढ़कर भगवान् शिव भी राम की स्तुति करने के उद्देश्य से वहाँ पधारे। ४ उनका शरीर चाँदी के पर्वत के समान चमकता था। चण्डी भी साथ में थीं जिनके साथ उन्हें अटूट प्रेम है। ५ उनके पाँचों श्रीमुख तीन-तीन आँखों से शोभायमान थे, और वे मुख सदा राम के चरित का कीर्तन करते थे। ६ सफ़ेद गंगा और हल्की पीली जटा दोनों का रंग खूब खुलता था। तरह-तरह के भूतों और प्रेतों के दल उनके साथ थे। ७ ब्रह्मा हंस पर सवार होकर आये। साथ ही उनकी गुणवती स्त्री शारदा भी वीणा, पुस्तक और स्फटिक माला लिये वहाँ आई जहाँ राजा राम थे। ८-९ ऋषि, मुनि, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, नाग आदि सभी मिलकर आये। १० सभी हाथ जोड़े सर झुकाये हुए बोले— "हे प्रभु, आपने अपने भक्तों के मन की कामना पूरी की। ११ हे भगवान्, आप तीनों लोकों की सृष्टि करनेवाले हैं, सभी कर्मों के साक्षी हैं, और सभी शरीरों में विज्ञान के रूप में विद्यमान हैं। १२ रावण ने सबों की

मेलहुँ अकण्टक सुख सौँ रहब । निज निज सदन सुयश-चय कहब ॥ १४ ॥
ब्रह्मास्तुति कयलनि अगुआय । आज कयल प्रभ समुचित न्याय ॥ १५ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥
॥ देश ॥

स्तुवे कादम्बिनी-श्यामं धनुष्मन्तम्मुदा रामम् ॥ १६ ॥
युगान्ते सर्व्वलोकायामशोकानां हि विश्रामम् ॥ १७ ॥
खले मन्दोदरीकान्ते महच्चित्रं रणे शान्ते ॥ १८ ॥
हृताशेषावनीभारं रमादारं महोदारम् ॥ १९ ॥
मुनीनां दुःखशान्त्यर्थं मुदा सम्प्राप्तकान्तारम् ॥ २० ॥
सुमित्रानन्दनं वन्दे रणे शक्रारिहन्तारम् ॥ २१ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

बाक अगोचर चित्त अगोचर, के कह केहन कान्ति कहाँ छी ॥ २२ ॥
सूक्ष्मसौँ सूक्ष्म बिशाल बिशालसौँ, ईश्वर छी बिभु छी जे अहाँ छी ॥ २३ ॥
सृष्टिक हेतु अनादि अनामय, ध्यान सौँ ध्येय-स्वरूप तहाँ छी ॥ २४ ॥
बिष्णु अहाँ छी विरञ्चि अहाँ छी, महेश अहाँ छी कहाँ ने अहाँ छी ॥ २५ ॥
ज्ञान समाधि समग्र महातप, ध्येय सरूप जहाँ छी तहाँ छी ॥ २६ ॥
नाम बिरञ्चि कहै छथि लोक से, गोचर ब्रह्म न देव कहाँ छी ॥ २७ ॥

धन-सम्पत्ति और घर-बार हर लिये थे। उसका आपने संहार किया। १३ हम लोग अकंटक हो गये। अब आराम से रहेंगे। अपने-अपने घर में आपके सुयश का बखान करते रहेंगे।" १४ फिर आगे होकर ब्रह्मा ने स्तुति की— "हे प्रभु, आपने रावण के प्रति उचित न्याय किया। १५ मैं बादल-से साँवले धनुषधारी राम की सानन्द स्तुति करता हूँ जिनमें युग के अन्त में सभी लोग शोक-रहित हो लीन हो जाते हैं। १६-१७ जिन्होंने मंदोदरी के पति दुष्ट रावण को आश्चर्यपूर्वक युद्ध में मारकर धरती का भार दूर किया उन परम उदार लक्ष्मीपति भगबान् की मैं स्तुति करता हूँ। १८-१९ जो मुनियों के कष्ट को दूर करने के लिए खुशी से बन गये, और जिन्होंने युद्ध में इन्द्रजित् मेघनाद को मारा उन सुमित्रानन्दन लक्ष्मण की मैं स्तुति करता हूँ। २०-२१ आप वाणी के परे हैं, चित्त के परे हैं, तब कौन कह सकता कि आपकी झलक कैसी है। २२ आप अणु से भी अणु और महान से भी महान हैं। आप ईश्वर हैं और विभु अर्थात् सर्वव्यापी हैं, जो हैं, जहाँ हैं। २३ आप सृष्टि के कारण अर्थात् कर्ता हैं। आप आदिहीन हैं, विकारों से रहित हैं। आपका स्वरूप केवल योग द्वारा ध्यान में दिखाई पड़ सकता है। २४ आप विष्णु हैं, आप ब्रह्मा हैं और आप ही महेश हैं। आप कहाँ नहीं हैं? २५ जहाँ कहीं भी आप ज्ञान, समाधि या उग्र तपस्या द्वारा ध्यान में आने योग्य हों; आपके

व्योम समीर तथानल ओ जल, देखल जाइछ सर्व्व-सदा छी ॥ २८ ॥
श्री रघुनन्दन दुष्ट-निकन्दन, सद्गुण ब्रह्म अनन्त अहाँ छी ॥ २९ ॥

॥ चौपाइ ॥

पावक प्रकट भेल तहिकाल । दिव्यरूप अति-दीप्ति विशाल ॥ ३० ॥
वैदेही आरोपित अङ्क । क्षीरोदधि जनु रमा निशङ्क । ३१ ॥
अरुण वसन विमलारुण कान्ति । दिव्य विभूषण सुन्दरि शान्ति ॥ ३२ ॥
सकलदेव जय-जय धुनि करथि । गगन अवनि स्वेच्छा सञ्चरथि ॥ ३३ ॥
पावक कहल राम भगवान । करयति यशोराशि - गुणगान ॥ ३४ ॥
सीता काँ सोपल वन राम । लेल जाय प्रभु से एहि ठाम ॥ ३५ ॥
प्रमुदित राम कमल-कर धयल । वाम अङ्ग मे स्थापित कयल ॥ ३६ ॥
से शोभा देखथि अमरेश । कह जय-जय सीता-प्राणेश ॥ ३७ ॥
सहस्राक्ष फल पाओल आज । सीतासहित देखल रघुराज ॥ ३८ ॥
हम अमरेश्वर छल ई गर्व्व । से अभिमान रहित भेल सर्व्व ॥ ३९ ॥
श्रीप्रभु-चरणक हम लघु दास । रावणादि-कृत छूटल त्रास ॥ ४० ॥
रामचन्द्र नूतन - घन - रङ्ग । जनक-सुता-सौदामिनि सङ्ग ॥ ४१ ॥

उस स्वरूप को लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। किन्तु आप सबों की आँख में दीखने वाले कहाँ नहीं हैं ? २६-२७ आप तो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के रूप में सर्वत्र देखे जाते हैं। २८ हे दुष्टों का संहार करनेवाले रघुनंदन राम, आप अनन्त ब्रह्म होते हुए भी सगुण हैं।" २९ इसी समय अग्निदेव दिव्य रूप में प्रकट हुए। उनके शरीर में अद्भुत चमक थी। ३० उनकी गोद में सीता निःशंक विराजमान थीं जैसे समुद्र की गोद में लक्ष्मी। ३१ सीता लाल वस्त्र पहने थीं। उनके शरीर का रंग निर्मल लाल था। वे अलौकिक आभूषण पहने हुए थीं, सुन्दर और शान्त लगती थीं। ३२ सभी देवता लोग जय-जयकार कर रहे थे और रावण की मृत्यु से निर्भय हो स्वच्छन्दतापूर्वक धरती और आकाश में विचरण कर रहे थे। ३३ अग्निदेव ने राम के यश और गुणों का गान करते हुए कहा— ३४ "हे राम, वन में आपने सीता को जो मेरे जिम्मे सौंपा था सो उन्हें आज यहाँ वापस लीजिए।" ३५ राम ने प्रसन्न हो सीता का हाथ धर लिया और अपने बायें अंग में रख लिया। ३६ इन्द्र ने यह शोभा देखी और बोले— "जय हो, सीतापति रामचन्द्र की जय हो ! ३७ हजार आँखें मिलने का फल आज पाया। सीता-सहित राम का दर्शन पाया। ३८ मुझे घमंड था कि मैं देवताओं का राजा हूँ, पर वह सारा घमंड आज जाता रहा। ३९ मैं आपके चरण का तुच्छ दास हूँ। रावण आदि राक्षसों से होनेवाला आतंक आज दूर हुआ। ४० राम के शरीर का रंग नये बादल का-सा है और बिजली की

जहिलय योग ज्ञान तप करथि। गुहावास घन वन सञ्चरथि ॥ ४२ ॥
जहिलय शङ्कर करथि समाधि। तनिकाँ देखल छूटल आधि ॥ ४३ ॥
केओ कह कर्म्म काल केओ प्रकृति। केओ कह पुरुष सिद्धमुनि प्रभृति ॥ ४४ ॥
कहयित शुनयित अन्त न पाब। केओ कह सृष्टिक सहज स्वभाव ॥ ४५ ॥
कर्त्ता कर्म्मादिक जत भाष। देखि प्रभु-चरण पुरल अभिलाष ॥ ४६ ॥
रहल न एको मन वैषम्य। सभहिक अपने केवल गम्य ॥ ४७ ॥

॥ दण्डक ॥

जय सदोद्यत-धराधारे, हृत-धरित्री-विपुल-भारे ॥ ४८ ॥
जगन्मातर्गुणागारे महोदारे हे ॥ ४९ ॥
जनक-महि-महनीय-कन्ये, शिव-विरञ्चि-प्रभृति-मान्ये ॥५०॥
रमा-गौरी-जन-वदान्ये, यशोहारे हे ॥ ५१ ॥
सदानाहत-जलज-वासे, पाप-तूल-महा-हुताशे ॥ ५२ ॥
पूरिताखिल-सुर-जनाशे, निराकारे हे ॥ ५३ ॥
राम-घन-चपले सुकामिनि जय चराचर-वर स्वामिनि ॥५४॥
रूप जित-कन्दर्प-मानिनि, शक्तिसारे हे ॥ ५५ ॥

चमक जैसी कान्ति वाली सीता साथ में हैं। ४१ जिनके लिए ऋषि-मुनि लोग योग, ज्ञान और तप करते हैं; निर्जन गुहा और घने जंगलों में रहते हैं; जिनके लिए भगवान् शिव समाधि लगाते हैं, उनको मैंने आज अपनी आँखों से देखा। सारी चिन्ता दूर हो गई। ४२-४३ कोई आपको कर्म कहते हैं, कोई काल कहते हैं, कोई प्रकृति कहते हैं और कोई पुरुष कहते हैं। ऋद्धि-सिद्धि, ऋषि-मुनि लोग भी आपका बखान करते और सुनते अन्त नहीं पाते हैं। कोई कहते हैं कि आप विश्व का स्वाभाविक गुण हैं। ४४-४५ कर्ता, कर्म आदि अनेक रूपों में आप भासमान हैं। आपके चरण-कमल को देखकर मेरी अभिलाषा पूरी हुई। ४६ मन में कोई द्विविधा न रही। आप सभी साधकों के एक मात्र लक्ष्य हैं। ४७ हे सीता, आपकी जय हो। आप पृथ्वी को धारण करने में सदा उद्यत रहती हैं। आप पृथ्वी के विशाल भार को हरती हैं। आप संसार की माता अर्थात् मूल प्रकृति हैं। आप गुणों का खजाना हैं और परम उदार हैं। ४८-४९ जनक की भूमि मिथिला की पूज्य कन्या हैं। शिव, ब्रह्मा आदि आपकी पूजा करते हैं। ५० लक्ष्मी, गौरी आदि देवियाँ आपकी स्तुति करती हैं। आप यशोमालिका से विभूषित हैं। ५१ आप सदा अनाहत कमल में निवास करती हैं। आप पाप रूपी रुई के लिए दारुण आग हैं। ५२ आपने सभी देवताओं की आशा पूरी की। आप निराकार शक्तिस्वरूपा हैं। ५३ आप राम रूपी बादल में बिजली की तरह शोभती हैं। आप आदर्श नारी हैं। आप संसार की चल और अचल सभी वस्तुओं की स्वामिनी हैं। आपने अपने रूप से कामदेव की स्त्री रति को

॥ चौपाइ ॥

राम कहल शुनु शुनु सुरराज। एकगोट अपनैं सौं काज ॥ ५६ ॥
वानर रण मे मुइल बहूत। से सजीव करु प्रिय पुरहूत ॥ ५७ ॥
से शुनि तेहन कयल अमरेश। अमृत-वृष्टि सौं राम-निदेश ॥ ५८ ॥
प्राप्त जीव से लाखहि लाख। जय रघुनन्दन आनन्द भाष ॥ ५९ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनु करुणानिधि राम, हाथ जोड़ि शङ्कर कहल ॥ ६० ॥
हम आयब ओहिठाम, अति उत्सव अभिषेक मे ॥ ६१ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

दशरथ नृप देखयित छथि ठाढ़। अहँ मे प्रेम जनिक अछि गाढ़ ॥ ६२ ॥
दशरथ काँ लगला प्रभु गोड़। लक्ष्मण सीता हर्ष न थोड़ ॥ ६३ ॥
दशरथ कहलनि पूरल आश। संशय आधि सर्व्व भेल नाश ॥ ६४ ॥
दशरथ गेला पाबि सम्मान। राग द्वेष गत पाओल ज्ञान ॥ ६५ ॥
तखन बिभीषण जोड़ल हाथ। एक विज्ञप्ति हमर रघुनाथ ॥ ६६ ॥
घर थिक अपन चलल प्रभु जाय। दिनेक रहब-शक के अटकाय ॥ ६७ ॥
स्नान अलङ्कृत मङ्गल वेष। सभ काँ मन प्रभु-छवि काँ देख ॥ ६८ ॥

जीता है। आप शक्ति की भी शक्ति हैं।" ५४-५५ राम ने कहा— "हे इंद्र, सुनिये। आपसे मुझे एक काम है। ५६ लड़ाई में बहुत-से कपि मरे हैं। हे मेरे प्यारे इंद्र, आप कृपा कर उन्हें जिला दें।" ५७ यह सुनकर देवराज इंद्र ने वैसा ही किया। राम के अनुरोध से उन्होंने अमृत की वर्षा की। ५८ लाख-लाख बन्दर जी उठे और आनन्द के साथ राम का जय-जयकार करने लगे। ५९ शिवजी ने हाथ जोड़कर कहा— "हे दयासागर राम, मैं आपके राज्याभिषेक के महान् उत्सव में वहाँ आऊँगा। ६०-६१ राजा दशरथ आपको देखते हुए खड़े हैं, जिन्हें आप में घना स्नेह है।" ६२ राम ने दशरथ को प्रणाम किया। लक्ष्मण और सीता को उनका दर्शन पाकर अपार हर्ष हुआ। ६३ दशरथ ने कहा— "मेरा मनोरथ पूरा हुआ। मन में जो संशय और चिन्ता थी वह सब दूर हुआ। ६४ राजा दशरथ सत्कार ग्रहण कर चले गये। वे राग और द्वेष की भावना से मुक्त हो गये। उन्हें ज्ञान मिल गया। ६५ तब विभीषण हाथ जोड़कर बोले— "हे राम, एक बिनती मेरी सुनिए। ६६ हे प्रभु, चलिये, आपका अपना घर है। एक-दो दिन रहियेगा। आपको अटका कौन सकता है। ६७ मेरे यहाँ सबों की इच्छा है कि स्नान करके वस्त्राभूषण लगाये आपकी मंगलमय छवि का दर्शन पावें।" ६८ राम ने कहा— "आपका घर मेरा अपना घर हुआ। आप-

पर भेल अपन अहुँक सन भक्त। रघुवर कहलनि समय अशक्त ॥ ६९ ॥
अति सुकुमार भरत की ह्यत। अवधि एको दिन जौं बिति जयत ॥ ७० ॥
वल्कल वसन जटा धर माथ। हमरा बिनु शत्रुघ्न अनाथ ॥ ७१ ॥
तकइत ह्यता हमरे बाट। अनतय न बनब छन सम्राट ॥ ७२ ॥
करब स्नान की तनि बिनु आज। जायब सत्वर तनिक समाज ॥ ७३ ॥
सुग्रीवादिक हो सत्कार। हम मानब अपने उपकार ॥ ७४ ॥
सुनल विभीषण रघुवर-उक्ति। अति प्रसन्न मन मानल युक्ति ॥ ७५ ॥
कनकाम्बर बररत्न बजार। निज निज रुचि पाहुन ब्यवहार ॥ ७६ ॥
यूथप-गणक कयल सत्कार। मुदित विभीषण परमोदार ॥ ७७ ॥
मणि लय बानर सादर चाट। स्वाद न पाब पटक झट बाट ॥ ७८ ॥
कनकाम्बर नख दसनें चीर। हसथि विनोद देखि रघुवीर ॥ ७९ ॥
पुष्पकरथ रवि-तेज विराज। लयल विभीषण रामक काज ॥ ८० ॥
तेहि रथ चढ़ला राम नरेश। अछि गन्तव्य शीघ्र निज देश ॥ ८१ ॥
सीता लक्ष्मण रथ चढ़लाह। मन उदास कपिगण पड़लाह ॥ ८२ ॥
सभ काँ राम वचन कहि वेश। भालु कीश काँ देल निदेश ॥ ८३ ॥

जैसे भक्त का आग्रह है। पर, ऐसे समय में यह सम्भव नहीं होगा। ६९ भरत बड़े सुकुमार हृदय के हैं; एक दिन भी यदि अवधि से अधिक हो जायेगा तो भरत का क्या हाल हो जायेगा? ७० वल्कल पहने और जटा धारण किये हुए शत्रुघ्न मेरे बिना अशरण हो गया है। ७१ वह मेरी राह जोहता होगा। मैं और कहीं भी सम्राट् नहीं बनूँगा। ७२ उनके बिना मैं आज स्नान नहीं करूँगा। जल्द से जल्द उनके पास पहुँचूँगा। ७३ आप सुग्रीव आदि का आतिथ्य करें। मैं समझूंगा कि आपने मेरा ही सम्मान किया।" ७४ विभीषण राम की यह बात सुनकर प्रसन्न हुए। राम के तर्क को वे हृदय से मान गये। ७५ परम उदार विभीषण ने अतिथि के उपयोग के लिए उनकी अपनी-अपनी पसन्द के अनुरूप बाजार से जरीदार वस्त्र और अच्छे-अच्छे रत्न ले आये और आनन्दपूर्वक दलपतियों का स्वागत-सत्कार किया। ७६-७७ रत्नों को लेकर बन्दर आदर के साथ चाटते, कोई स्वाद न पाते और फिर माटी पर फेंक देते। ७८ जरीदार वस्त्र को दाँतों और नाख़ूनों से चीर-फाड़ देते। राम देख-देखकर कुतूहल से मुस्कुराते। ७९ विभीषण राम के वास्ते एक पुष्पक रथ ले आये जो सूरज के समान चमक रहा था। ८० राजा राम उस रथ पर सवार हुए। उन्हें जल्द अपने देश अयोध्यापुरी जाना है। ८१ सीता और लक्ष्मण भी रथ पर चढ़े। कपियों का मन उदास हो गया। ८२ सबों को राम ने उचित विदाई-संदेश कहा और भालुओं व बन्दरों को निर्देश दिया— ८३ "कपि और भालू लोग अब इच्छानुसार जा सकते हैं और

बानर भालु यथारुचि जाथु। स्वेच्छा बन उत्तम फल खाथु॥ ८४॥
कपि-पति अङ्गद नवलङ्केश। सभ काँ कहलनि चलइत देश॥ ८५॥
मित्र-काज अपने सभ कयल। ऋण उपकार सर्व्वदा धयल॥ ८६॥
आज्ञा दी तौँ चली सबेर। भेट घाट होयत कय बेर॥ ८७॥
किष्किन्धा लय सैन्य अपार। कपिपति जाउ सिद्ध उपकार॥ ८८॥
भक्त विभीषण करु गय राज। लङ्कापुर मे सहित समाज॥ ८९॥
बड़ अगुताइ कथा अछि ढेर। चलब अयोध्या होइछ अबेर॥ ९०॥
शुनि शुनि सभजन जोड़ल हाथ। मानल जाय देव रघुनाथ॥ ९१॥
देखितहुँ रामचन्द्र-अभिषेक। रहल लालसा मन मे एक॥ ९२॥
कौशल्या काँ करब प्रणाम। घुरि घुरि सभ जन अयबे गाम॥ ९३॥
प्रभु कह कथा देब नहि काटि। केओ न हमर भरत सौँ घाटि॥ ९४॥
चलु चलु पुष्पक होउ सवार। अतिशय कठिन प्रेम व्यवहार॥ ९५॥
लङ्केश्वर कपिवर हनुमान। वानर रथ पर चढ़ल प्रधान॥ ९६॥
राजराज-रथ अतिशय राज। चढ़ल सकल दल हलचल काज॥ ९७॥
आज्ञा देलनि विश्व-निवास। हंसयुक्त रथ उड़ल अकास॥ ९८॥

स्वच्छन्दतापूर्वक वन के उत्तम-उत्तम फल तोड़कर खा सकते हैं।" ८४ राम ने अयोध्या जाते समय सुग्रीव, अंगद और विभीषण से कहा— ८५ "आप लोगों ने अपने मित्र का काम सँभाला। इस उपकार का ऋण मैं सदा वहन करूँगा। ८६ अब आप लोगों की आज्ञा हो तो शीघ्र विदा होऊँ। फिर कई बार भेंट होगी। ८७ हे सुग्रीव, आप अपनी विशाल सेना लेकर किष्किन्धा जाइये। आप ने जो उपकार किया वह सफल हुआ। ८८ हे भक्त विभीषण, आप सपरिजन जाकर लंका-नगरी में राज कीजिए। ८९ बड़ी हड़बड़ी है; बातें बहुत हैं। अयोध्या जाना है। देर हो रही है।" सुनकर सबों ने हाथ जोड़कर कहा— "हे देव राम, हमारी एक बात मान लीजिए। ९०-९१ हमारे मन में एक लालसा रह गई है कि आपका राज्याभिषेक देखते। ९२ माता कौशल्या को प्रणाम करते और फिर अपने-अपने घर आते।" ९३ राम ने कहा— "आप लोगों का यह अनुरोध मैं टाल नहीं सकता। आप लोगों में कोई भी मेरे लिए भरत से कम नहीं हैं। ९४ चलते चलिये। सभी पुष्पक रथ पर सवार होइए। प्रेम का बरताव बड़ा कठिन होता है।" ९५ कुबेर का पुष्पक रथ अतिशय शोभा पा रहा था। हलचल के साथ सारा दल उस रथ पर चढ़ गया। ९६-९७ राम ने आज्ञा दी और वह हंसवाही रथ आकाश-मार्ग से उड़ चला। ९८ उस पर राम की शोभा

रघुनन्दन वर छवि कौं पाब। शोभा जेहन विरञ्चिक आब ॥ ९९ ॥
दिनकर-बिम्ब सुछबि कौं धयल। धनपति-रथ नभ-पथ गति कयल ॥१००॥

॥ सोरठा ॥

जय जय श्याम-शरीर, जय जय पङ्कज-नयन प्रभु ॥ १०१ ॥
जय सानुज रघुवीर, जय सीतापति अमर कह ॥ १०२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

क्रम क्रम सकल देखावथि धाम। रथ पर सौं सीता कौं राम॥ १ ॥
गिरि त्रिकूट लङ्का रण-भूमि। काक गृद्ध मड़ड़ाइछ घूमि॥ २ ॥
राक्षस वानर कौं एत मारि। मुइला एतहि दशानन हारि॥ ३ ॥
कुम्भकर्ण घननादक झुण्ड। बहुतक एतहि खसल छल मुण्ड॥ ४ ॥
ई बाँधल भेल सागर-सेतु। वानर-निकर उतरबा हेतु॥ ५ ॥
परम पवित्र पाप सभ हरथि। सेतुबन्ध दर्शन जे करथि॥ ६ ॥
हम रामेश्वर स्थापन कयल। शरण विभीषण एहि थल धयल॥ ७ ॥

वैसी ही थी जैसे ऐरावत पर इन्द्र की। ९९ जब कुबेर का रथ आकाश-मार्ग में चला तब उसकी शोभा सूरज-जैसी हो गई। १०० देवता लोग कहने लगे— "जय हो, श्यामल शरीर की जय हो, कमलनयन राम की जय हो, लक्ष्मण-सहित राम की जय हो, सीतापति राम की जय हो।" १०१-१०२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

चौदहवाँ अध्याय

पुष्पक रथ से राम का सदल-बल अयोध्या पहुँचना

ज्यों-ज्यों रथ बढ़ता जाता था, राम सीता को पुराने स्थान दिखाते जाते थे— १ "देखो, त्रिकूट पर्वत पर लंका का यह युद्धक्षेत्र है जहाँ कौवे और गीध जहाँ-तहाँ चक्कर काट रहे हैं। २ यहीं राक्षसों और कपियों के बीच लड़ाई हुई थी। यहीं रावण हारकर मरा। ३ कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि बहुत-से वीरों के सिर यहीं गिरे थे। ४ यह कपियों के उतरने के लिए समुद्र में बनाया गया बाँध है। ५ जो इस सेतुबन्ध का दर्शन करते हैं वे अतिशय पवित्र हो जाते हैं और पापों से मुक्त होते हैं। ६ यहाँ मैंने रामेश्वर की स्थापना की। यहाँ विभीषण शरणागत हुए थे।" ७ जानकी ने और

दर्शन कयल जानकी जाय। जय शिव रटथि सैन्य-समुदाय ॥ ८ ॥
किष्किन्धा ई कपिपति - ग्राम। कहि किछु काल कयल विश्राम ॥ ९ ॥
ताराधिक सुग्रीवक दार। चढ़ली पुन रथ उड़ल उदार ॥ १० ॥
सीता - प्रिय - कारण व्यवहार। करथि रघूत्तम विश्वाधार ॥ ११ ॥
मुइला बालि बली एहिठाम। ऋष्यमूक गिरि हिनकर नाम ॥ १२ ॥
पञ्चवटी अयलहुँ से ठाम। राक्षस सङ्ग जतय संग्राम ॥ १३ ॥
भेला जे जे समर समक्ष। मारल गेला से से रक्ष ॥ १४ ॥
मुनि सुतीक्ष्ण मुनि तथा अगस्त्य। आश्रम दूनू परम प्रशस्त ॥ १५ ॥
तापसगण पड़इत छथि दृष्टि। धन्य धन्य थिक हिनकर सृष्टि ॥ १६ ॥
चित्रकूट गिरि होइछ प्रकाश। बारह वर्ष जतय छल बास ॥ १७ ॥
होउ प्रसन्न शरण हम धयल। भरत बहुत हठ एतहि कयल ॥ १८ ॥
भारद्वाजाश्रम ई थीक। यमुनातट मे लगइछ नीक ॥ १९ ॥
ई थिकि गङ्गा करू प्रणाम। परम पवित्रा कहलनि राम ॥ २० ॥
सरयू निकट अयोध्या धाम। थिक कर्त्तव्य नगर-विश्राम ॥ २१ ॥

॥ सोरठा ॥

भरद्वाज-मुनि-धाम, अटकाओल कौबेर रथ ॥ २२ ॥
अभिनत कयल प्रणाम, मुनि हर्षित पुछलनि कुशल ॥ २३ ॥

सैनिकों ने वहाँ जाकर रामेश्वर का दर्शन किया और कपियों ने शिव की जयध्वनि की। ८ राम कहने लगे— "यह सुग्रीव की नगरी किष्किन्धा है।" यह कहकर कुछ देर वहाँ विश्राम किया। ९ सुग्रीव की तारा आदि स्त्रियाँ उस रथ पर चढ़ीं। फिर रथ स्वच्छन्द उड़ने लगा। १० विश्व के आधार राम सीता को प्रसन्न करने के लिए ये लीलाएँ करते। ११ फिर राम कहने लगे— "बलवान् बाली यहाँ मरे थे। इस पर्वत का नाम ऋष्यमूक है। १२ अब हम पंचवटी आये। यह वही स्थान है जहाँ राक्षसों से लड़ाई शुरू हुई। १३ यहाँ जो-जो राक्षस लड़ाई में सामने आये वे सभी मारे गये। १४ यह सुतीक्ष्ण मुनि का और यह अगस्त्य मुनि का आश्रम है। ये दोनों आश्रम परम श्रेष्ठ हैं। १५ देखो, ये तपस्वी लोग दिखाई दे रहे हैं। इन लोगों की दुनिया धन्य है, धन्य है। १६ वह चित्रकूट पर्वत दिखाई दे रहा है जहाँ हम बारह बरस रहे। १७ यह यमुना नदी के किनारे ऋषि भरद्वाज का आश्रम है। यह कैसा सुहावना लगता है? १८-१९ यह गंगा नदी हैं। इन्हें प्रणाम करो। यह परम पवित्र हैं।" —राम ने कहा— २० "यह सरयू नदी के पास अयोध्यापुरी है। यहाँ हमें नगर-विश्राम करना उचित है।" २१ यह कहकर राम ने भरद्वाज मुनि के आश्रम में कुबेर के पुष्पक रथ को रोका। २२ झुककर मुनि को प्रणाम किया। हर्ष के साथ मुनि भरद्वाज ने

॥ पूर्ण चतुर्दश वर्ष, तिथि भल आइलि पञ्चमी ॥ २४ ॥
॥ मन मे बाढ़ल हर्ष, वार्त्ता पुर पहिलहि उचित ॥ २५ ॥
जिबइत छथि सभ माय, भरद्वाज मुनि सुनल अछि ॥ २६ ॥
कुशल क्षेम दुहु भाय, पुरी सुभिक्षा अछि कहू ॥ २७ ॥
अति प्रसन्न सभ लोक, भरद्वाज हर्षयित कहल ॥ २८ ॥
अपनें क केवल शोक, आबि गेलहुँ देखबे करब ॥ २९ ॥
॥ कन्द मूल फल खाथि, माथ जटा वल्कल बसन ॥ ३० ॥
अनतय कतहु न जाथि, भरत खरौं सेवा करथि ॥ ३१ ॥

॥ चौपाइ ॥

नृप-प्रताप अपनेंक पद ध्यान । रामचन्द्र हमरा सभ ज्ञान ॥ ३२ ॥
जे जे चरित कयल प्रभु जाय । आज्ञा पाबब देब सुनाय ॥ ३३ ॥
नहि अछि आदि मध्य नहि अन्त । परब्रह्म छी देव अनन्त ॥ ३४ ॥
अपनें क नाभिकमल - उत्पन्न । ब्रह्मा करथि सृष्टि सम्पन्न ॥ ३५ ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण अवतार । हरण करैछी पृथिवी-भार ॥ ३६ ॥
करु पवित्र प्रभु हमरो गेह । सेवक-विषय विशेष सिनेह ॥ ३७ ॥

कुशल-समाचार पूछा और कहा— २३ "चौदह बरस की अवधि पूरी हो गई। पंचमी शुभ तिथि आई। २४ हर्ष की लहर छा गई। नगर में पहले ही खबर कर देना उचित होगा।" २५ राम ने पूछा— "हे भरद्वाज मुनि, कृपया बताइए कि क्या हमारी सभी माताएँ जीती हैं ? क्या भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई कुशल से हैं ?" २६-२७ भरद्वाज ने मुस्कुराते हुए कहा— "सभी लोग परम प्रसन्न हैं। २८ केवल आपके बारे में चिन्ता थी। अब तो आप आ गये हैं, स्वयं देखेंगे ही। २९ भरत केवल कन्द, मूल और फल खाते हैं, माथे में जटा और तन में वल्कल धारण किये हुए हैं। ३० अन्यत्र कहीं नहीं निकलते। निरन्तर आपके खड़ाऊँ की सेवा करते रहते हैं। ३१ हे रामचंद्र, आपके चरणों में ध्यान लगाकर की गई तपस्या के प्रभाव से मुझे सभी बातें मालूम हैं। ३२ आपने जो-जो चरित किया है, यदि आज्ञा हो तो मैं सब कुछ सुना दूँ। ३३ आपका न आदि है और न अन्त। आप अनंत परब्रह्म हैं। ३४ आप ही के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा सारी दुनिया की सृष्टि करते हैं। ३५ आप निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी सद्गुण रूप में अवतार लेते हैं और पृथ्वी का भार दूर करते हैं। ३६ हे प्रभु, आप मेरे घर को भी पधारकर पवित्र कीजिए। आपको अपने सेवकों पर विशेष अनुग्रह रहता है।" ३७ राम ने भरद्वाज के अनुरोध को स्वीकार किया। मुनि ने सुन्दर भोजन की

अङ्गीकार कयल भगवान। अति आतिथ्य सुभोज्य विधान ॥ ३८ ॥
भेटय तीर्थ तहाँ तहाँ जाथि। तीर्थ-कृत्य-विधि तहाँ नहाथि ॥ ३९ ॥

॥ बरवा छन्द ॥

कहलनि श्रीरघुनन्दन, शुनु हनुमान ॥ ४० ॥
अयलहुँ से वार्त्ता पड़, भरतक कान ॥ ४१ ॥

॥ प्रज्झटिति छन्द ॥

पुर झटिति पवन-सुत अहाँ जाउ। सभ कुशलक्षेम जनकाँ शुनाउ ॥ ४२ ॥
गृह शृङ्गवेरपुर हमर मित्र। तनिकहु कहि देबक सभ चरित्र ॥ ४३ ॥
छथि नन्दिग्राम मे भरत भाय। आगमन कुशल तनिकाँ शुनाय ॥ ४४ ॥
पुन हमर निकट अहँ शीघ्र आउ। कहुँ किछु विलम्ब नहि अहँ लगाउ ॥४५॥
मानुष - तन धयलय हनुमान। चलला उड़ि नभ जनु गरुत्मान ॥ ४६ ॥
से शृङ्गवेरपुर प्रथम जाय। अयला रघुनन्दन से शुनाय ॥ ४७ ॥
चौदह वर्षोत्तर अहँक मित्र। समटा कहि देलनि तनि चरित्र ॥ ४८ ॥
अतिशय मन हर्षित गुह निषाद। छुटि गेल सकल संशय-विषाद ॥ ४९ ॥

॥ चौपाइ ॥

कहि हनुमान चलल उड़ि गगन। रामतीर्थ सरयू देखि मगन ॥ ५० ॥
सरयू लाँघि गेला तहिठाम। भरत छला जहाँ नन्दिग्राम ॥ ५१ ॥

तैयारी करके खूब आतिथ्य किया। ३८ आश्रम के पास जहाँ-जहाँ तीर्थ थे, वहाँ-वहाँ जाकर राम ने तीर्थ में अनुपालनीय विधि से स्नान किया। ३९ तब राम ने कहा— "हे हनुमान, सुनिये। ४० हम लोग आ गये, इसकी खबर भरत को मिलनी चाहिए। ४१ हे हनुमान, आप जल्द अयोध्यापुरी जाइए और वहाँ लोगों को सारा कुशल-समाचार सुनाइए। ४२ शृंगवेरपुर के निवासी, जो मेरे मित्र हैं, उन्हें भी सारा समाचार सुनाना है। ४३ नन्दिग्राम में मेरा भाई भरत रहता है, उसे मेरे आने का समाचार सुनाकर जल्द ही मेरे पास लौट आइये, और कहीं भी तनिक भी देर मत लगाइये।" ४४-४५ यह सुनकर हनुमान मनुष्य का रूप धारण करके आकाश में गरुड़ के समान उड़ चले। ४६ पहले वे शृंगवेरपुर गये। वहाँ राम के मित्र गुह को बताया— "चौदह वर्षों के बाद आपके मित्र राम आ गये।" फिर राम का सारा इतिवृत्त कह सुनाया। ४७-४८ निषादराज गुह का मन यह सुनकर अतिशय आनन्दित हो उठा। उनका सारा अंदेशा दूर हो गया। ४९ गुह को हाल बताकर हनुमान फिर आकाश में उड़े। आगे सरयू नदी में रामतीर्थ देख उनका मन आनंदमग्न हो गया। ५० सरयू को पार करके उस नन्दिग्राम पहुँचे जहाँ भरत थे। ५१ उन्हें राम के चरणों में असीम प्रेम था। नंदिग्राम

रामचरण - पङ्कज अनुराग। डेढ़ कोश निजपुर सौँ लाग ॥ ५२ ॥
अति कृश देखल भरत-शरीर। नहि सुखाय पल नयनक नीर ॥ ५३ ॥
जटामुकुट बलकल भल चोर। दीन मीन संक्षीण सुनीर ॥ ५४ ॥
कन्द मूल फल भक्ष्य-विधान। रामचन्द्र-पद केवल ध्यान ॥ ५५ ॥
पुर-प्रधान काँ शोक अभङ्ग। बसन पहिर से गेरुक रङ्ग ॥ ५६ ॥
चौदहवर्ष जानि अवसान। पलपल हर्ष विषाद समान ॥ ५७ ॥
धर्म्ममूर्ति जनु देखल ठाढ़। हर्ष हनूमानक मन बाढ़ ॥ ५८ ॥
कहलनि विनत हाथ दुहु जोड़ि। चिन्ता भरत अहाँ दिय छड़ि ॥ ५९ ॥
त्यागु त्यागु नज हृदय - महाधि। राम - वियोगज - शोक - समाधि ॥ ६० ॥
गाछ सुखायल लता समूल। भेल सपल्लव नव फल फूल ॥ ६१ ॥
नाच मयूर पूरस्वर गाब। षड्ज सु - मूर्तिमान बनि आब ॥ ६२ ॥
कोकिल-कुल कल करइछ गान। स्वर पञ्चम शुनि पड़इछ कान ॥ ६३ ॥
केकयि-नन्दन करु अनुमान। अयला रामचन्द्र भगवान ॥ ६४ ॥
राजराज रथपर रघुराज। राजा बनल अबै छथि आज ॥ ६५ ॥

अयोध्यापुरी से डढ़ कोस दूर था। ५२ हनुमान ने देखा कि भरत का शरीर एकदम दुबला-पतला हो गया है। उनकी आँखों में आँसू पल भर भी सूखते नहीं। ५३ जटाओं को सिमटकर मुकुट बनाया हुआ है। सुन्दर बल्कल के वस्त्र पहने हैं। उनकी हालत वैसी है जसे पानी घट जाने पर मछली की होती है। ५४ वे केवल कन्द, मूल और फल खाकर रहते थे और केवल रामचन्द्र के चरणों में ध्यान लगा रहता था। ५५ नगर के प्रधान को भारी शोक था। वे गेरुआ वस्त्र पहने थे। ५६ चौदह बरस की अवधि का अन्त देखकर भरत के चित्त मे पल-पल में कभी हर्ष और कभी विषाद होता था। ५७ हनुमान ने भरत को खड़े देखा जैसे मूर्तिमान धर्म खड़ा हो। हनुमान को हर्ष का ठिकाना न रहा। ५८ उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"हे भरत, अब आप चिन्ता त्यागिये। ५९ अपने हृदय की भारी व्यथा को हटाइये और राम के बिछोह से होनेवाले दुःख में लीन रहना छोड़िये। ६० जो लता जड़-सहित सूख चुकी थी उसमें नये-नये पत्ते, फूल और फल लग गये। ६१ मोर नाच रहे हैं और पूरे स्वर में गा रहे हैं, लगता था जैसे षड्ज स्वर मूर्तिमान बनकर सामने आ गया हो। ६२ कोयल कलरव कर रही हैं। उनका पंचम स्वर सुनाई दे रहा है। ६३ हे भरत, इन लक्षणों से आप अनुमान लगाइए। भगवान रामचन्द्र आ गये हैं। ६४ राम आज कुबेर के पुष्पक रथ पर राजा बने आ रहे हैं। ६५ उन्होंने लड़ाई में रावण को मार डाला। उन्होंने ऐसा

रावण कैं मारल संग्राम। कर्म्म अमानुष कयलनि राम ॥ ६६ ॥
क्रम क्रम चरित कहल सभ गोट। नहि कर्त्तव्य भरत मन छोट ॥ ६७ ॥
सीता लक्ष्मण चित्त प्रसन्न। प्रभु सङ्ग मित्र सुगुण-सम्पन्न ॥ ६८ ॥
हर्षक कथा शुनाओल कान। कर उद्योग मिलन सन्मान ॥ ६९ ॥

॥ आर्या दोहा ॥

॥ जाल तिरहुति ॥

पवन-तनय-मुखवाणी, शुनल भरत हित कान ॥ ७० ॥
सकल-कला-कल्याणी, ब्रह्मानन्द-समान ॥ ७१ ॥
फरकै छल अछि दहिना, भुज ओ दहिना आँखि ॥ ७२ ॥
सत्य-वचन प्रभु तहिना, मरइत लेलनि राखि ॥ ७३ ॥

॥ मिथिला सङ्गीतानुसारेण कोडार छन्दः ॥

अयला भ्राता नरेश ॥ ७४ ॥
केकयी-कुमंत्रणा सौं वनी मुनिबेश ॥ ७५ ॥
बिष्णु की बिरञ्चि अहाँ की स्वयं महेश ॥ ७६ ॥
मानव कि कारुणिक लयलहुँ सन्देश ॥ ७७ ॥
हर्षकथा बराबरि वित्त नै विशेष ॥ ७८ ॥
रघुनाथ-सभ्य अहाँ लोभक न लेश ॥ ७९ ॥

करतब दिखाया जो मनुष्य नहीं कर सकता।" ६६ इस प्रकार क्रमशः राम के सारे चरित्र का वर्णन कर गये। फिर बोले— "हे भरत, अब आप अपना चित्त ओछा मत कीजिए। ६७ सीता और लक्ष्मण दोनों हृदय से खुश हैं। राम के साथ उनके भले मित्र भी हैं। ६८ अब आदर के साथ मिलन की तैयारी कीजिए।" इस प्रकार हनुमान ने भरत को खुशखबरी सुनाई। ६९ भरत ने हनुमान के मुँह से यह हर्ष की वार्ता सुनी। ७० उन्हें सुनकर वैसा आनन्द हुआ जैसा ब्रह्म के साक्षात्कार से होता है। वे बोले— ७१ "मेरी दाहिनी बाँह और दाहिनी आँखें फड़क रही थीं। ७२ मेरे प्रभु राम बड़े सत्यव्रती हैं। उन्होंने मरते हुए मुझे बचा लिया। ७३ मेरे भाई राजा राम आ गये। ७४ वे कैकेयी के कुविचार से मुनि का वेष बनाकर वनवासी हो गये थे। ७५ आप कौन हैं ? आप साक्षात् ब्रह्मा या विष्णु हैं या महेश हैं, या आप कोई परम कारुणिक मानव हैं जो यह सन्देश लेकर आये हैं ? ७६-७७ आपने जितने बड़े हर्ष की बात सुनाई है उसके अनुरूप इनाम देने के लिए मेरे धन-सम्पत्ति नहीं है। ७८ आप राम की मंडली के हैं, इसलिए आपको नाम मात्र भी लोभ नहीं होगा। ७९ आइये, मेरे साथ इस खुशी

आउ मिलि पाउ सुख कहू कि निदेश ॥ ८० ॥
धन्य धन्य आज हम छूटल कलेश ॥ ८१ ॥

॥ दोहा ॥

ग्राम देब शय गोट हम, शय हजार देब गाय ॥ ८२ ॥
मुग्धा षोड़श कन्यका, मरयित लेल जिआय ॥ ८३ ॥

॥ चौपाइ ॥

भरत एक मन करु जनु शोक । कुशलक्षेम अबइत छथि लोक ॥ ८४ ॥
जनिक हेतु चिन्ता बिस्तारि । अयला से रण रावण मारि ॥ ८५ ॥
अपनेँक कुशल बुझक छल काज । आगु पठाओल श्रीरघुराज ॥ ८६ ॥
दारुण शोक करू परित्याग । जागल भरत इष्टजन-भाग ॥ ८७ ॥
देखब भाय मनोरथ पूर्त । किछु विलम्ब नहि एक मुहूर्त ॥ ८८ ॥
लक्ष्मण सङ्ग राम कृत-कार्य्य । आबि गेला अछि कुशल-सभार्य्य ॥ ८९ ॥
हरषनोर-सौँ गेला नहाय । रघुनन्दन सन अयला भाय ॥ ९० ॥
खसि पड़ला महि हर्ष अपार । अति आनन्द कि तन सम्भार ॥ ९१ ॥
मारुत-सुत कौँ हृदय लगाब । उजड़ल नगर बसाओल आब ॥ ९२ ॥
बहुत वर्ष शोचहिँ गेल बीति । बार्त्ता आइ प्राप्ति भल रीति ॥ ९३ ॥
जौँ जिब रह तौँ सहज स्वभाव । शय वर्षहु पर आनन्द आब ॥ ९४ ॥

मैं शरीक होइये। कहिये, आपके लिए क्या किया जाय? ८० आज मैं धन्य, धन्य हूँ। मेरे सारे दुःख-दर्द दूर हो गये। ८१ मैं आपको सौ गाँव दूँगा। सौ हज़ार गायें दूँगा; ८२ सोलह नवयौवना कन्याएँ दूँगा। आपने मरते हुए मुझे जिला लिया।" ८३ हनुमान ने कहा— "हे भरत, आप मन में कोई शोक मत कीजिए। आपके वे लोग सकुशल आ रहे हैं। ८४ जिनके लिए आप इतनी बड़ी चिन्ता करते हैं वे लड़ाई मे रावण को मारकर आ गये हैं। ८५ आप ही के कुशल जानने के वास्ते राम ने मुझे आगे भेजा है। ८६ अब उस दारुण शोक को त्यागिये। हे भरत, अब आपके अपने लोगों का भाग्य जाग उठा। ८७ आपकी कामना पूरी होगी। आप अपने भाई राम को देखियेगा। इसमें अब कुछ देर नही है, एक घड़ी भी नहीं। ८८ अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ राम सारे कर्तव्यों को पूरा कर सकुशल वापस आ गये हैं।" ८९ राम जैसे भाई आ गये, यह जानकर भरत आनन्द के आँसू से नहा गये। ९० इतना हर्ष हुआ कि उछलकर धरती पर गिर पड़े। आनन्द-विह्वल हो जाने से अपने शरीर का भी होश न रहा। ९१ हनुमान को छाती से लगाते बोले— "आपने आज मेरे उजड़े हुए नगर को फिर से बसा लिया। ९२ शोक में ही बहुत वर्ष बीत गये। आज शुभ वार्ता प्राप्त हुई। ९३ यदि जियें तो स्वाभाविक है कि सौ साल के बाद भी

कहु बानर रघुबर सतसङ्ग। कोन गत बाढ़ल प्रीति अभङ्ग ॥ ९५ ॥
क्रम क्रम सकल चरित हनुमान। कहल मगन मन शेष समान ॥ ९६ ॥
भरत कहल शत्रुघ्न बजाय। अयला अरि जिति बड़का भाय ॥ ९७ ॥
देवी देव जते छथि गाम। तनिक समर्च्चन हो तहिठाम ॥ ९८ ॥
बन्दी मागध प्रभृति जे लोक। आबथि शीघ्र रोक नहि टोक ॥ ९९ ॥
गणिकागण कौं शीघ्र बजाब। मङ्गलदायिनि गाइनि आब ॥ १०० ॥

॥ गीत तिरहुति ॥

भरत निकट मे एक जन, बड़ परसन ॥ १०१ ॥
कहलनि शुभ सन्देश, आब प्रभु यहिखन ॥ १०२ ॥
जनिक वियोग सकल जन, अति अनमन ॥ १०३ ॥
देखब जनक-दुलारि, राम ओ लछमन ॥ १०४ ॥
हर्ष-नोर दृग बहयित, ई कहयित ॥ १०५ ॥
बीतल चौदह वर्ष, विषम दुख सहयित ॥ १०६ ॥
गीत सुन्दरी गाबथि, हरि आबथि ॥ १०७ ॥
रामचन्द्र घनश्याम, चातकी पाबथि ॥ १०८ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

हाथी घोड़ा रथ पथ लागु। रानिक चनय सबारी आगु ॥ १०९ ॥
चलल सकल पुरजन अगुआय। देखब राम इ नयन जुड़ाय ॥ ११० ॥

आनन्द का दिन अवश्य आयेगा। ९४ हे हनुमान, कहिये राम के वानरों से संगत किस तरह हुई और अटूट प्रेम कैसे बढ़ा ?" ९५ हनुमान ने क्रमशः सारा वृत्तान्त अनुराग के साथ सुनाया, जैसे शेषनाग सुना रहे हों। ९६ भरत ने शत्रुघ्न को बुलाकर कहा— "बड़े भाई राम शत्रु को जीतकर आ गये हैं। ९७ गाँव भर में जितने देवी-देवता हैं, सबों की पूजा अपने-अपने स्थान में कराई जाय। ९८ बन्दी, मागध, चारण आदि जितने भी लोग हैं सबों को आज बेरोक-टोक आने दिया जाय। ९९ नाचनेवाली वेश्याओं को तुरत बुलाया जाय। मंगलगीत गानेवाली ललनायें आवें।" १०० एक आदमी ने बड़ी खुशी के साथ भरत के पास आकर शुभ संवाद सुनाया कि राम अभी आ रहे हैं। १०१-१०२ जिनके बिछोह से सभी लोग व्याकुल थे उन राम, लक्ष्मण और जानकी को अभी देखेंगे। १०३-१०४ घोर वेदना सहते हुए चौदह वरस बीत गये —ऐसा कहते हुए उसकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। १०५-१०६ ललनाएं गीत गाती हैं— भगवान् राम आ रहे हैं। आज चातकियाँ राम रूपी श्याम घन का दर्शन पायेंगी। १०७-१०८ हाथी, घोड़े, रथ सड़क पर चल पड़े। रानियों की सवारियाँ आगे-आगे चलीं। १०९ नगर के लोग बढ़-बढ़कर चल पड़े ताकि जल्द से जल्द राम को

ब्राह्मण वृद्ध कहथि सभ लोक। आज छूटत मानस जत शोक ॥ १११ ॥
मुक्तारत्नमयोज्वल गाम। तोरण विविध पताका धाम ॥ ११२ ॥
घर बाहर छवि तेहन बनाव। वासव-मानस विस्मय आब ॥ ११३ ॥
वृन्दा वृन्द चलली पुर-नारि। रम्भा रतिक गर्व्व देल टारि ॥ ११४ ॥
लाख हजार घोड़ा रथ सङ्ग। एक अयुत तत मद मातङ्ग ॥ ११५ ॥
कनक-अलङ्कृत रथ पथ राज। स्वागत रामचन्द्र महराज ॥ ११६ ॥
शिबिका चढ़लि चललि सभ माय। बाल तरुण कि रहय पछुआय ॥ ११७ ॥
राजक खरौं भरत धय माँथ। हाथ जोड़ि कह भेटता नाथ ॥ ११८ ॥
पयरहि चलल सङ्ग लघु भाय। गगन निहारथि दृष्टि उठाय ॥ ११९ ॥

॥ सोरठा ॥

आब कि अछि कहबाक, भुज उठाय हनुमान कह ॥ १२० ॥
सभ जन ऊपर ताक, रथ अबइछ जनु चन्द्ररवि ॥ १२१ ॥
सीता लक्ष्मण राम, ओ सुग्रीव कपीश छथि ॥ १२२ ॥
भक्त बिभीषण भाम, मंत्री मान्य अनेक जन ॥ १२३ ॥

॥ मिथिला-सङ्गीतानुसारेण कामोद छन्दः ॥

मन बड़ हरख बरष दृग-बारि
सीता राम लक्ष्मण वदन निहारि ॥ १२४ ॥

देख नयन तृप्त हों। ११० वृद्ध ब्राह्मण लोग कहते— आज हमारे मन के सारे दुःख दूर हो जाएंगे। १११ गाँव लटकाये गये मोतियों और रत्नों से जगमग हो गये। तरह-तरह की ध्वजाओं से बन्दनवार और घर सज ये गये। ११२ घर और बाहर हर जगह ऐसी सजावट की गई कि देखकर इन्द्र के मन में भी अचंभा लगता। ११३ झुण्ड के झुण्ड नगर की ललनाएँ चलीं। ये अपनी सुन्दरता से रम्भा और रति का भी गुमान तोड़ती थीं। ११४ साथ में एक लाख घोड़े और रथ चले। दश लाख मतवाले हाथी चले। ११५ राजा रामचन्द्र की अगवानी करके लाने के लिए सोने से मढ़ा रथ सड़क पर चला। ११६ डोलियों पर चढ़कर सभी माताएँ चलीं। बच्चे और जवान क्यों पीछे रहते ? ११७ राम के खड़ाऊँ को माथे पर रखकर भरत कहते— "आज प्रभु मिलेंगे।" ११८ छोटे भाई लक्ष्मण पैदल ही चले। वे आनन्दमग्न हो नजर उठा-उठाकर देखते थे। ११९ बाँह उठाकर हनुमान ने कहा— अब क्या कहना है ! सभी लोग आकाश की ओर देखने लगे— जैसे चाँद या सूरज हो उसी तरह आकाश-मार्ग से रथ आ रहा था। १२०-१२१ उस रथ पर राम, लक्ष्मण, सीता, कपिराज सुग्रीव और भक्त विभीषण हैं; और भी अनेक मान्य मंत्री हैं। १२२-१२३ मन में बड़ा हर्ष है। सीता, राम और लक्ष्मण के मुँह देखकर आँखों से आनन्द के आँसू बह रहे हैं। १२४ वे चौदह बरस

गेला वनवास ओ वरष दश चारि
अयला अवधि-दिन रावण कें मारि ॥ १२५ ॥
आनन्द - सुधावगाह सब नरनारि
मनोरथ - द्रुम कुसुमित सब डारि ॥ १२६ ॥
त्रिदश आनन्दमग्न नररूप धारि
मर्त्य देवलोकक टुटल जनु आरि ॥ १२७ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

देखि कयल जन हर्षक सोर। अयला राम सुदिन भेल मोर ॥ १२८ ॥
लक्ष्मण सीता रथपर राज। भल भल हित जन तनिक समाज ॥१२९॥
वृद्ध बाल बनितागण भाख। देखल राम पुरल अभिलाष ॥ १३० ॥
उतरि बाजि गज रथ असवार। रामचन्द्र दिश गगन निहार ॥ १३१ ॥
भरत ऊर्द्ध्वमुख जोड़ल हाथ। सानुज सजन देखल रघुनाथ ॥ १३२ ॥
स्यन्दनस्थ रघुनन्दन केहन। गिरि सुमेरु पर दिनकर जेहन ॥ १३३ ॥
वन्दन करथि भरत अनुराग। बद्धाञ्जलि दृगपल नहि लाग ॥ १३४ ॥
रथ लय चलु एहि महि निज ठाम। अयलहुँ गाम कहल प्रभु राम ॥ १३५ ॥
भरत कयल वन्दन कय बेरि। पुष्पक महिपर रघुबर हेरि ॥ १३६ ॥
भरत उठाय अङ्क आरोप। चिर-बियोग दुःखक भेल लोप ॥ १३७ ॥

वनवास के लिए गये। अवधि बीतने के दिन रावण को मारकर लौटे। १२५ पुरुष और स्त्री सभी लोग आनन्द के अमृत-सिन्धु में गोते लगा रहे हैं। उनके मनोरथ का पेड़ डाल-डाल पर खिल उठा है। १२६ मनुष्य का रूप धारण कर देवता लोग भी इस आनन्द में शामिल हो गये हैं, मानो देवलोक और मर्त्यलोक के बीच दीवार टूट गई। १२७ देखते ही लोग हर्षित हो शोर मचाने लगे— "राम आ गये! मेरा भाग्योदय हुआ! १२८ लक्ष्मण और सीता रथ पर बिराजते हैं। उनके साथ में उनके भले-भले इष्ट-मित्र हैं।" १२९ बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ सभी बोलने लगे— "राम को देखा। मेरा मनोरथ पूरा हुआ।" १३० सभी लोग घोड़ों, हाथियों और रथों से उतर-उतरकर आकाश में आते राम की ओर निहारने लगे। १३१ भरत ने हाथ जोड़े मुँह उठाकर भाई और परिजन-सहित राम को देखा। १३२ रथ पर कैसे लगते हैं जैसे सुमेरु पर्वत पर सूर्य। १३३ भरत प्रेम में पगे वन्दना कर रहे हैं; दोनों हाथ जोड़े हैं और पलक नहीं गिराते हैं। १३४ तब राम ने अपने रथ से कहा— "हे रथ, अब मुझे अपने स्थान की इस धरती पर उतारिये। मैं अपना नगर आ गया।" १३५ भरत ने पुष्पक रथ को धरती पर उतरे और उस पर राम को आसीन देख बार-बार राम की वन्दना की। १३६ राम ने भरत को उठाकर गोद में ले लिया। बहुत दिनों के बिछोह का दुःख जाता रहा। १३७

लक्ष्मण सौँ मिलि मिलिकेँ भरत। कहथि धन्य प्रभु-सेवा-निरत ॥ १३८ ॥
वैदेहीक उचारल नाम। चरण-सरोरुह करथि प्रणाम ॥ १३९ ॥
भरतक भक्ति-दशा सभ देख। धर्म्म देहधारी मन लेख ॥ १४० ॥
हनूमान जन देथि चिन्हाय। सानुज भरत मिलथि लत जाय ॥ १४१ ॥
कपिपति जाम्बवान युवराज। मैन्द द्विविद ओ ऋषभ समाज ॥ १४२ ॥
मुदित विभीषण सौँ मिललाह। क्रम क्रम जे जन मुख्य छलाह ॥ १४३ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

नल गवाक्ष सुषेण आदिक गन्धमादन नाम ॥ १४४ ॥
शरभ पनश मनुष्य-तन सम बनल छल तहि ठाम ॥ १४५ ॥
सकल जन सौँ भरत मिलला कुशल पुछलनि सर्व ॥ १४६ ॥
सकल जन मिलि कर प्रशंसा भ्रातृ-भक्ति अखर्व्व ॥ १४७ ॥
कहल मिलि सुग्रीव केँ पुन अहाँ मुख्य सहाय ॥ १४८ ॥
राम रण दशवदन जीतल अहाँ पाँचम भाय ॥ १४९ ॥
तखन पुन शत्रुघ्न रामक चरण कयल प्रणाम ॥ १५० ॥
लक्ष्मणक सीताक वन्दन कयल से तहिठाम ॥ १५१ ॥

॥ चौपाइ ॥

शोक-विकल जननी काँ जानि। राम प्रणाम कयल सन्मानि ॥ १५२ ॥
कैकयि तथा सुमित्रा माय। लगला गोड़ सभहि काँ न्याय ॥ १५३ ॥

भरत लक्ष्मण से बार-बार मिले और उन्हें कहने लगे— "निरन्तर राम की सेवा में लगे आप धन्य हैं। १३८ फिर जानकी का नाम लेकर उनके चरण-कमलों में प्रणाम किया। १३९ भक्तिवश भरत की जो दशा थी उसे देख सबों को ऐसा लगा जैसे शरीर धारण कर साक्षात् धर्म विराजमान हो। १४० हनुमान राम के सेवकों का परिचय देते और छोटे भाई शत्रुघ्न-सहित भरत उन सबों के पास जा-जाकर उनसे मिलते। १४१ मुख्यता के क्रम से भरत सुग्रीव, जाम्बवान, अंगद, मैन्द, द्विविद, ऋषभ और विभीषण इन सबों से बड़ी खुशी के साथ मिले। १४२-१४३ नल, गवाक्ष, सुषेण, गन्धमादन, शरभ, पनश आदि सभी वहाँ मनुष्य का रूप धारण कर पधारे थे। १४४-१४५ भरत राम के हरेक सेवक से मिले और हरेक से कुशल पूछा। १४६ सभी मिलकर एक स्वर से भरत की अपार भ्रातृभक्ति सराहने लगे। १४७ फिर भरत ने सुग्रीव से मिलकर कहा— "आप ही राम के मुख्य सहायक थे। १४८ आप ही की सहायता से राम ने रावण को जीता। आप हमारे पाँचवें भाई हुए। १४९ तब शत्रुघ्न ने राम के चरणों में प्रणाम किया। १५० फिर सीता का और लक्ष्मण का चरण-वन्दन किया। १५१ राम ने माता कौशल्या को शोक से व्याकुल समझकर सम्मानपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। १५२ फिर

तखनुक कहल कि जाइछ रीति। हरषें कनयित गबयित गीत ॥ १५४ ।
भरत खरौं से रघुवर-चरण। पहिराओल सभ सङ्कट-हरण ॥ १५५ ।
आइ सुफल भेल जीवन मोर। अयश मेटायल सञ्चित घोर ॥ १५६ ।
सञ्चित द्रव्य सैन्य बल कोश। दश-गुण अछि प्रभु-चरण-भरोश ॥१५७।
लेल जाय निज राज्यक भार। किङ्कर हम कि करब उपकार ॥ १५८ ।
शुनि कपिवर-लोचन बहु वारि। अकपट भरतक बिनय विचारि ॥ १५९ ।
उतरलाह रथपर सौं, राम। कहलनि अयलहुँ अपना गाम ॥ १६० ।
पुष्पक-रथ अहँ धनपति-धाम। जाउ कुशल सौं रहु तहिठाम ॥ १६१ ।

॥ दोहा ॥

गुरु वसिष्ठ पद-कमल मे, रघुवर कयल प्रणाम ॥ १६२ ॥
गुरु-आज्ञा आसन निकट, कयल राम विश्राम ॥ १६३ ॥

॥ कवित्त ॥

रामचन्द्र-जननि पसारि आँखि देखु अहाँ, ॥ १६४ ॥
जानकीसहित राम लछन किशोर कें ॥ १६५ ॥
भूमि नाचै सुन्दरी गगन किन्नरो ई नाचै, ॥ १६६ ॥
बाट बाट भाट सुकवित्त पढ़ै शोर कें ॥ १६७ ॥

माता कैकेयी और सुमित्रा को भी यथोचित रीति से प्रणाम किया। १५
उस समय जो दशा थी उसका वर्णन क्या किया जाय ? सभी माताएँ हर्ष
रोती और गीत गाती थीं। १५४ भरत ने सभी संकटों को दूर करनेवा
राम के चरणों में वे खड़ाऊँ पहनाये। १५५ फिर भरत बोले— "आज मे
जीवन सफल हुआ। मेरी जो भारी बदनामी जमा हो गई थी वह आ
मिटी। १५६ धन-धान्य, सेना और खजाना सभी आपके चरणों की कृपा
आज दस गुने हो गये हैं। १५७ हे प्रभु, अब आप अपने राज्य का भा
सँभालें। मैं सेवक आपका क्या उपकार कर पाऊँगा ?" १५८ भरत क
निश्छल विनय देखकर सुग्रीव की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। १५९ त
राम पुष्पक रथ से उतरे और बोले— "हम घर पहुँच गये। १६० हे पुष्पक
अब आप कुशलपूर्वक कुबेर के पास चले जाइये और वहाँ रहिए।" १
फिर राम ने गुरु वसिष्ठ के चरणों में प्रणाम किया। १६२ गुरु की आज्ञा
उनके आसन के पास कुछ देर विश्राम किया। १६३ हे राम की मा
कौशल्या, आँख फैलाकर देखो, ये हैं तुम्हारे सीता-सहित राम और किशो
लक्ष्मण। १६४-१६५ धरती पर सुन्दरियाँ नाच रही हैं; आकाश में किन्नरि
नाच रही हैं; रास्ते-रास्ते पर भाट ऊँचे स्वरों में कवित्त पढ़ते हैं। १६६-१

राग नाचे रागिनी भवानीपति नाचि कहै, ॥ १६८ ॥
भल कैल मारल जे दशकण्ठ चोर कें ॥ १६९ ॥
जननी प्रणाम राम करथि जानकीयुत, ॥ १७० ॥
कौसल्या हरषि लेल मुख चुमि कोर कें ॥ १७१ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

केकयि - तनय विनय - सम्पन्न । किछु नहि मानस छल प्रच्छन्न ॥ १ ॥
भरत कहल शुनु बड़का भाय । अपनें नृपति दुखी वन जाय ॥ २ ॥
चौदह वरष छलहुँ वनवास । अयलहुँ अवधि पुराओल आस ॥ ३ ॥
जे कृति कयलनि केकयि माय । से प्रभु नहि मन पाड़ल जाय ॥ ४ ॥
प्रभु - आज्ञा मानल सभ गोट । सेवक थिकहुँ भाय हम छोट ॥ ५ ॥
राज्य - भार करु अपन अधीन । रविकुल शुद्ध रीति प्राचीन ॥ ६ ॥
ई कहि चरण पड़ल लपटाय । देल जाय प्रभु आधि घटाय ॥ ७ ॥

संगीत के राग नाचते हैं, रागिनियाँ नाचती हैं, और नटराज शिव नाच-नाचकर कहते हैं— अच्छा किया कि चोर रावण को मारा। १६८-१६९ सीता-सहित राम माता को प्रणाम करते हैं। कौशल्या ने हर्षपूर्वक उनका मुँह चूमकर उन्हें गोद में ले लिया। १७०-१७१

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिलाभाषा रामायण में लंकाकाण्ड का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

राम का राज्याभिषेक और देव-गन्धर्व आदि द्वारा उनकी स्तुति

कैकेयी के पुत्र भरत ने, जो विनीत हैं और जिनके मन में कुछ भी छिपा नहीं रहता, राम से कहा— "हे बड़े भाई सुनिये। आप दुःख उठाकर वन गये। १-२ चौदह बरसों तक वनवास करते रहे और अवधि का अन्त होते ही आकर हम लोगों की आशा पूरी की। ३ हे प्रभु, माता कैकेयी ने जो कुछ करनी की उसे मत याद कीजिए। ४ मैंने आपकी सभी आज्ञाओं का पालन किया। मैं छोटा भाई आपका सेवक हूँ। ५ अब राज्य का भार अपने हाथ में लीजिए। यही सूर्यवंशियों की शुद्ध परम्परागत रीति है।" ६ इतना कहकर भरत राम के चरणों में लिपट गये और बोले— "हे राम, मेरे मन की व्यथा को दूर कीजिए।" ७ कैकेयी ने कहा— मैंने बड़ी बदनामी

केकयि कहल सहस उपहास। हरल हमहिँ प्रभु राज्य-विलास ॥ ८ ॥
कहल नीक नहि विश्वक लोक। चौदह बरष सहल मन शोक ॥ ९ ॥
भेल से भेल गेल दिन बीति। एखनहुँ राखक थिक कुलरीति ॥ १० ॥
हमहुँ अशक्य अहाँ कों माय। देल कुमतिवश विपिन पठाय ॥ ११ ॥
आज्ञा हमर यहन लिय मानि। रीति सनातन करु जनु हानि ॥ १२ ॥
कहल वसिष्ठ कहै छथि माय। भरतक कथा कयल प्रभु जाय ॥ १३ ॥
राम कयल राज्यक स्वीकार। भेल सकल थल जय-जयकार ॥ १४ ॥
परमात्मा की करता राज। सभटा होइछ माया-व्याज ॥ १५ ॥
समय जानि लक्ष्मण लघु भाय। नापित निपुण देल बजबाय ॥ १६ ॥
तनिकर कृत्य भेल सम्पन्न। सकल लोक मन होथि प्रसन्न ॥ १७ ॥
अभिषेकक आयल सम्भार। रघुवर हेतु वृत्त सभ द्वार ॥ १८ ॥
प्रथमहिँ कयल भरत असनान। लक्ष्मण तखना स्नान-विधान ॥ १९ ॥
सविधि सनान कयल कपिराज। तथा विभीषण सभ्य समाज ॥ २० ॥
भरतक जटा केश फुटकाब। चित्र-माल्य अनुलेप लगाब ॥ २१ ॥
वसन महोत्तम पहिरल भरत। छवि-तुलना त्रिभुवन के करत ॥ २२ ॥

झेली। आपके राज्य-सुख का अपहरण करनेवाली मैं ही हूँ। ८ दुनिया भर के लोगों ने मेरी निन्दा की। चौदह बरसों तक मैं मन में दुःख सहती रही। ९ जो हुआ सो हुआ। वे दिन अब बीत गये। अब भी सूर्यवंश की परम्परा को बचाना है। १० मेरा कोई वश न चला। आपको माता ने दुर्बुद्धि के कारण वन भेज दिया। ११ अब मेरी यह आज्ञा स्वीकार करो और सदा से चली आई परम्परा को टूटने मत दो।" १२ गुरु वसिष्ठ ने कहा— "माता आपको आज्ञा देती हैं कि भरत ने जैसा कहा वैसा किया जाय।" १३ राम ने राज्य लेना स्वीकार कर लिया। सभी जगह जय-जयकार होने लगा। १४ राम तो परमात्मा हैं, वे राज्य क्या करेंगे। यह सब माया का खेल हो रहा है। १५ अवसर देखकर छोटे भाई लक्ष्मण ने एक कुशल नाऊ को बुलवाया। उसने अपना काम तमाम किया। सभी लोग खुश हुए। १६-१७ तब राज्यतिलक की सामग्री जुटाई जाने लगी। राम के लिए सभी साधन मौजूद थे। १८-१९ पहले भरत ने स्नान किया। तब लक्ष्मण विधिपूर्वक नहाये। तब सुग्रीव ने भी यथाविधि स्नान किया। फिर विभीषण आदि राम की मण्डली के लोग नहाये। २० राम ने भरत की जटाओं के बालों को बिलगाया, रंग-बिरंगे फूलों की माला पहनाई और चन्दन लगाये। २१ फिर भरत ने उत्तम से उत्तम वस्त्र पहने। उनकी शोभा की तुलना तीनों लोकों में कौन कर सकेगा? २२ इसी तरह सारे कर्म भरत ने राम

भरत कराओल प्रभु प्रतिकर्म्म। मन मे मानल सेवक-धर्म्म ॥ २३ ॥
शुचिशुचिमय - धुत शोभाधाम। दिव्य - अलंकृति - धृत प्रभुराम ॥ २४ ॥

॥ कवित्त ॥

कौशल्या कुशलमति हरषि भृङ्गार कर, ॥ २५ ॥
अपनहि कर सौं पुतोहु बिधुबदना ॥ २६ ॥
बदन निहार ओ उचार शिवगौरीगीत, ॥ २७ ॥
हृदय लगाब बारबार शोभासदना ॥ २८ ॥
सकल शाशुक सीता करथि प्रणाम आशु, ॥ २९ ॥
आशिष ओ देथि कहि कहि कुन्दरदना ॥ ३० ॥
जनकक कन्यका कनीनिका मे राखे योग, ॥ ३१ ॥
अयोध्या-मिथिलालोक आधिक निकन्दना ॥ ३२ ॥

॥ सोरठा ॥

सभ रानी सीताक, कय शिंगार आनन्द कह ॥ ३३ ॥
शिरोरत्न वनिताक, त्रिभुवन मे सीता अहाँ ॥ ३४ ॥

॥ दोधय छन्द ॥

आगत छली जते उत्सव मे, बानर-लोकक दारा ॥ ३५ ॥
सभक शिंगार कयल कौशल्या, धृतशोभा बिस्तारा ॥ ३६ ॥
कहलनि धर्म्म-पुतोहु थिकहुँ अहाँ, हमरा प्राणाधारा ॥ ३७ ॥
लक्ष्मण रामचन्द्र हित युवती, लोचनतारा तारा ॥ ३८ ॥

से कराये। मन में सोचा कि सेवक का यही धर्म है। २३ इस प्रकार सफाई और प्रसाधन करके तथा अपूर्व अलंकरण लगाकर प्रभु राम शोभा की खान हो गये। २४ सद्बुद्धि वाली माता कौशल्या ने हर्ष के साथ अपनी पतोहू चन्द्रमुखी सीता को अपने ही हाथों से सँवारा-सजाया। २५-२६ वे सीता के चेहरे को देखतीं, शिव और गौरी के गीत नचारी गातीं, और शोभा की खान अपनी बहू को बार-बार छाती से लगातीं। २७-२८ सीता ने इस प्रकार बन-ठनकर सभी सासों को प्रणाम किया और सासें उन्हें कुन्द की कली के सरीखे दाँतों वाली अर्थात् बच्ची कह-कहकर आशीर्वाद दिया। २९-३० राजा जनक की यह बेटी तो आँखों की पुतली में रखने लायक हैं और अयोध्या एवं मिथिला दोनों देशों के लोगों के दुःख को दूर करनेवाली हैं। ३१-३२ सभी रानियाँ सीता को सँवारकर बोलीं— "हे सीता, तुम तीनों लोकों में नारियों के सिर का रत्न हो।" ३३-३४ इस उत्सव में बन्दरों के साथ जो-जो बन्दरियाँ मनुष्य का रूप धर आई थीं, कौशल्या ने उन सबों को भी सँवारा और उनकी शोभा बढ़ गई। ३५-३६ कौशल्या ने कहा— "आप सभी मेरी धर्मपतोहू हुईं और मुझे प्राण से भी प्यारी हैं। लक्ष्मण और

॥ जयकरी छन्द ॥

आज्ञा शत्रुघ्नक शुनि कान । रथ सुमन्त रवि-रुचि शुचि आन ॥ ३९ ॥
तेहिपर चढ़ला राम नरेश । देखितहिँ सभ जन विगत-कलेश ॥ ४० ॥
कपिपति अङ्गद ओ हनुमान । तथा विभीषण वरमति-मान ॥ ४१ ॥
कयलनि स्नान अलंकृत अङ्ग । गज बाजी चढ़ि चल प्रभु सङ्ग ॥ ४२ ॥
कपिपति वनिता काँ अतिमान । सीतासङ्ग चललि चढ़ि यान ॥ ४३ ॥
जेहन हरित - हय - रथ त्रिदशेश । चलल महापुर प्रभु रुचिवेश ॥ ४४ ॥
रत्नदण्ड - कर सारथि भरत । छविमय के समता जग करत ॥ ४५ ॥
शत्रुघ्नक कर छत्र सु - धवल । पंखा लक्ष्मण कर लस नवल ॥ ४६ ॥
एक चामर शत्रुघ्नक हाथ । दोसर कर धर असुरक नाथ ॥ ४७ ॥
सिद्धसंघ कर जय-जय-कार । मधुर मनोहर वचन उचार ॥ ४८ ॥
बानर सुन्दर मनुज - स्वरूप । गजवर चढ़ल चढ़ल जनु भूप ॥ ४९ ॥
बाजन नानातरहक बाज । रामचन्द्र पाओल निज राज ॥ ५० ॥
पुरवासी जन सकल निहार । दुर्व्वादल-श्यामल सुकुमार ॥ ५१ ॥
रत्नकिरीटालङ्कृत अङ्ग । शोणकमलदल लोचन-रङ्ग ॥ ५२ ॥

राम के लिए युवती तारा तो मानो आँखों की तारा है।" ३७-३८ शत्रुघ्न की आज्ञा सुनकर सुमन्त्र ने सूरज-सा चमकीला एक पवित्र रथ ला दिया। ३९ उस पर राजा राम चढ़े। देखते ही सबों का दुःख दूर हो गया। ४० सुग्रीव, अंगद, हनुमान और परम बुद्धिमान विभीषण सबों ने स्नान किया, अलंकरण लगाये तथा हाथियों और घोड़ों पर सवार हो राम के साथ चले। ४१-४२ सुग्रीव की स्त्रियों को बड़ा सम्मान मिला। वे रथ पर चढ़कर सीता के साथ चलीं। ४३ जिस प्रकार हरे रंग के घोड़ों वाले रथ पर देवताओं के राजा इन्द्र चलते हैं उसी तरह राम सुन्दर वेश बनाए अयोध्या पुरी चले। ४४ सारथि का काम करते भरत रत्नों से बना राजदंड हाथ में लिये हुए हैं। उनकी शोभा की बराबरी दुनिया में कौन कर सकेगा? ४५ शत्रुघ्न के हाथ में श्वेत छत्र है और लक्ष्मण के हाथ में नया पंखा शोभा पा रहा है। ४६ एक चँवर शत्रुघ्न के हाथ में है और दूसरा असुरराज विभीषण अपने हाथ में लिये हुए हैं। ४७ सिद्धों का दल जय-जयकार कर रहा है और मीठे स्वर में गुणकीर्तन कर रहा है। ४८ कपि लोग मनुष्यों का कमनीय रूप धारण कर अच्छे हाथियों पर चढ़े, लगते हैं जैसे राजा हों। ४९ तरह-तरह के बाजे बज रहे हैं। राम ने अपना राज पाया। ५० नगर के सारे लोग दूब की पत्ती जैसे साँवले सुकुमार राम को देख रहे हैं, ५१ जिनका अंग रत्नमय किरीट से भूषित है; आँखों का रंग लाल कमल की पंखुड़ियों-सा है; ५२ जो पीले वस्त्र और उत्कृष्ट मोतियों का हार पहने हुए हैं। राम

पीताम्बर वरमुक्ता-हार। भाग्य अपन मन प्रजा विचार ॥ ५३ ॥
सुग्रीवादिक कपि-प्रधान। सभ सौँ सेवित श्री भगवान ॥ ५४ ॥
कस्तूरी चन्दन घनसार। कल्पमहीरुह-सुमनक हार ॥ ५५ ॥
उच्च अटापर चढ़ि वरनारि। एकटक रघुवर-रूप निहारि ॥ ५६ ॥
निज गृहकाज देल परित्यागि। शान्ति कयल मन आधिक आगि ॥ ५७ ॥
हँसि हँसि करथि प्रसूनक वृष्टि। गेल पुरी सौँ शोकक सृष्टि ॥ ५८ ॥
इषत-हँसित-मुख राम निहार। प्रजाचित्त छूटल दुख भार ॥ ५९ ॥

॥ रूपमाला ॥

अमरपति-पुर तुल्य शोभा, लसित दशरथ-धाम ॥ ६० ॥
सकल लोक कृतार्थ करयित, पहुँचला श्रीराम ॥ ६१ ॥
देवतामति मातृलोकक, कयल चरण प्रणाम ॥ ६२ ॥
प्रभु-चुमाओन विविध उत्सव, भेल विधि तहिठाम ॥ ६३ ॥
भरत काँ रघुनाथ कहलनि, हमर जे छल धाम ॥ ६४ ॥
सर्व्वसम्पति-युक्त समुचित, वास हो ओहिठाम ॥ ६५ ॥
मित्र कपिपति ओ विभीषण, राक्षसेन्द्रक नीक ॥ ६६ ॥
सुख-निवास कपि-प्रधानक, आज देबक थीक ॥ ६७ ॥

की यह झाँकी देख प्रजा अपने को भाग्यवान् समझने लगी। ५३ सुग्रीव आदि कपियों के सभी दलपति राम की सेवा कर रहे हैं। ५४ राम कस्तूरी, चन्दन और कर्पूर लगाये हुए हैं और पारिजात के फूलों का हार पहने हुए हैं। ५५ ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़-चढ़कर ललनाएँ अपलक आँखों से राम के रूप को देख रही हैं। ५६ उन्होंने इसके पीछे अपने घर के कामों को छोड़ दिया है। इस प्रकार राम के दर्शन करके उन्होंने अपने मन की व्यथा को दूर किया। ५७ वे हर्ष से हँस-हँसकर पुष्पवृष्टि कर रही हैं। नगर से मातमी समा जाती रही। ५८ मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए राम सब देख रहे हैं। प्रजा के मन से सारे दुःख-दर्द दूर हो गये। ५९ राजा दशरथ की राजधानी में, जिसकी शोभा इन्द्रपुरी के बराबर है, राम पहुँचे। ६१ उन्होंने देवी समझकर माताओं के चरणों में प्रणाम किया। ६२ वहाँ तरह-तरह के उत्सवों के साथ राम का 'चुमावन' नाम का रस्म अदा किया गया। ६३ राम ने भरत से कहा— "मेरे मित्र कपियों के राजा सुग्रीव और राक्षसों के राजा विभीषण को वहाँ आवास देना अच्छा होगा जहाँ मैं रहता था; और ६४-६६ अन्याय कपियों के दलपतियों को भी आज सुखद आवास मिलना चाहिए।" ६७ राम की आज्ञा के अनुसार भरत ने सबों को सुखद आवास

॥ सोरठा ॥

लभक देल सुख-आस, भरत जेहन आज्ञा प्रभुक ॥ ६८ ॥
भेल चित्त निस्त्रास, दिन जाइत जानथि न से ॥ ६९ ॥
छिक विचार इत एक, भरत कहल कपिनाथ सौं ॥ ७० ॥
करब प्रभुक अभिषेक, आनय सात-समुद्र-जल ॥ ७१ ॥

॥ कवित्त ॥

कहल कनक-घट सासहु समुद्र-जल ॥ ७२ ॥
आनु गय झट दय कपीन्द्र प्रधान कौं ॥ ७३ ॥
अङ्गद सुषेण शुनि बहुत हर्षित चित्त ॥ ७४ ॥
प्रभुक निमित्त वेग मारुतसमान कौं ॥ ७५ ॥
आनल सकल जन जल सातो समुद्रक ॥ ७६ ॥
दूर पथ कत जाम्बवान हनुमान कौं ॥ ७७ ॥
आयल सकल तीर्थ-जल से कहल जाय ॥ ७८ ॥
मन्त्रिसङ्ग शत्रुघ्न वसिष्ठ वर-ज्ञान कौं ॥ ७९ ॥

॥ सवैया चकोर छन्द ॥

रत्न-सिंहासन शुद्ध मनोहर, संस्थित जानकि-संयुत राम ॥ ८० ॥
उत्सव-मध्य त्रिलोकिक लोक, प्रधान प्रधान छला सहिठाम ॥ ८१ ॥
रावण-गर्व्व-विनाशन सर्व्व, स्वरूपसौं निर्जित कोटिक काम ॥ ८२ ॥
स्वस्ति-समस्त प्रशस्त विलक्षण, गाब-विरञ्चि मनोहर साम ॥ ८३ ॥

दिया। ६८ मन निःशंक हुआ। दिन कैसे बीतते गये, यह भी भरत को लक्षित न हुआ। ६९ एक दिन भरत ने सुग्रीव से कहा— "यहाँ एक विचार करना है। ७० अब राम का राज्याभिषेक करें। सातों समुद्रों से जल आना चाहिए।" ७१ सुग्रीव ने दलपतियों से कहा— "सोने के घड़े ले-लेकर सातों समुद्रों से शीघ्र जल लेते आइये।" ७२-७३ यह सुनकर अंगद और सुषेण को बड़ी प्रसन्नता हुई। राम के काम के लिए तो उनकी तेजी वायु के समान हो जाती है। ७४-७५ सब कोई सातों समुद्रों के जल ले आये। जाम्बवान और हनुमान के लिए रास्ता कोई दूर नहीं था। ७६-७७ तब मन्त्रियों के साथ शत्रुघ्न ने ज्ञानियों में श्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ से जाकर कहा— "सभी तीर्थ-जल आ गये।" ७८-७९ रत्नमय शुद्ध और सुन्दर सिंहासन पर राम और सीता दोनों बैठाये गये। ८० तीनों लोकों के सभी प्रधान-प्रधान लोग वहाँ उस उत्सव में उपस्थित हुए। ८१ ब्रह्मा स्वयं राम की प्रशंसा में सुन्दर साम गाने लगे— "रावण के तमाम घमडों को दूर करनेवाले, रूप से करोड़ों कामदेव को जीतनेवाले, पूर्ण रूप से मंगलमय, विलक्षण प्रशस्तियों से युक्त राम की जय हो!" ८२-८३ गौतम, जाबालि, वसिष्ठ तथा अन्याय बहुत से

॥ कवित्त ॥

गौतम जाबालि ओ वसिष्ठ वाल्मीकि वृद्ध, ॥ ८४ ॥
ब्राह्मण बहुत वेद-विद्या-निधान सौं ॥ ८५ ॥
ऋत्विज अनेक ओ कुमारी तथा मन्त्रिगण, ॥ ८६ ॥
औषधि समस्त रस देल सम्मान सौं ॥ ८७ ॥
लोकप सगण मन मगन समस्त लोक, ॥ ८८ ॥
पाओल अभीष्ट फल राम भगवान सौं ॥ ८९ ॥
तुलसी गन्ध पुष्प जल कोमल कुशाग्र-हस्त, ॥ ९० ॥
राम-अभिषेक भेल वेदक विधान सौं ॥ ९१ ॥

॥ चौपाइ ॥

तत शत्रुघ्न छत्र कर धयल। श्वेतरङ्ग प्रभु-सेवा कयल ॥ ९२ ॥
चामर धयल धवल तहँ हाथ। वानरेन्द्र ओ राक्षस-नाथ ॥ ९३ ॥
स्तुति कर सकल देव तहिठाम। जय-जय वैदेहीपति राम ॥ ९४ ॥
जगत्प्राण देल हेमक माल। इन्द्रक अनुमति कान्ति विशाल ॥ ९५ ॥
सर्व्व-रत्न मणि कञ्चन हार। इन्द्र देल भक्तिक व्यवहार ॥ ९६ ॥
स्तुति कर पुन पुन सुरगन्धर्व्व। नाचथि किन्नर अप्सर-सर्व्व ॥ ९७ ॥
देव दुन्दुभी गगन बजाव। पुष्प-वृष्टि नभ सौं भल आव ॥ ९८ ॥
नव-दूर्व्वादल-सुन्दर श्याम। पङ्कजलोचन श्रीयुत राम ॥ ९९ ॥

वृद्ध ब्राह्मण उपस्थित थे जो वेद-शास्त्र में पारंगत थे। ८४-८५ अनेक ऋत्विक्, कुमारियाँ तथा मंत्री उपस्थित थे, जिन्होंने राम और सीता को सम्मान के साथ यथाविहित औषधि और रस दिये। ८६-८७ सदल-बल सभी दिक्पाल और सभी लोग बड़े प्रसन्न थे। सबों ने भगवान् राम से वांछित फल पाये। ८८-८९ तुलसी, चन्दन, फूल, जल और कुश ये सभी हाथ में लेकर वेद में बताई गई रीति से राम का राज्याभिषेक किया गया। ९०-९१ इस अभिषेकोत्सव में शत्रुघ्न ने श्वेत रंग का छत्र अपने हाथ में लिये राम की सेवा की। ९२ सुग्रीव और विभीषण अपने हाथों में चँवर लिये हुए थे। ९३ सभी देवता लोग वहाँ उपस्थित हो गुणगान कर रहे थे— 'सीतापति राम की जय हो!' ९४ वायु ने सोने का हार उपहार दिया। इन्द्र ने उज्ज्वल कान्ति दी। ९५ फिर अपनी भक्ति के अनुरूप इन्द्र ने सभी रत्नों और मणियों से खचित सोने का हार दिया। ९६ देवता लोग और गन्धर्व लोग बारम्बार स्तुति करते। किन्नर लोग और सभी अप्सरायें नाचतीं। ९७ देवता लोग आकाश में नगाड़े बजाते। आकाश से फूल बरसाते। ९८ राम के शरीर का रंग नई दूब के पत्ते के समान साँवला-सुहावना है। उनकी आँखें कमल-सी हैं। ९९ उनके अंग में करोड़ों सूरज की

कोटि - प्रभाकर - छवियुत - अङ्ग । नव-किरीटि छवि-विजित-अनङ्ग ।। १०० ।।
पीताम्बर धर दिव्याभरण । सकल-लोक आनन्दित-करण ।। १०१ ।।
सीता शोभित बामा भाग । श्री देवी कां अति-श्री लाग ।। १०२ ।।
अतिशय शोभा धृत-कर-कमल । सर्व्वाभरण - विभूषित बनल ।। १०३ ।।
उमा-सहित सम्प्राप्त महेश । स्तुति कर अति आनन्दित देश ।। १०४ ।।

।। घनाक्षरी छन्द ।।

नमो नमो रामाय सशक्तिकाय निर्गुणाय, ।। १०५ ।।
नीलोत्पलसुप्रभातिकोमलाय विष्णवे ।। १०६ ।।
मीनकमठादिरूपधारिणे धरित्रीधृजे, ।। १०७ ।।
देव-महि-कण्टक-समस्त-खल - जिष्णवे ।। १०८ ।।
किरिट - हाराङ्गदविभूषण - विभूषिताय, ।। १०९ ।।
सिंहासनस्थाय रामचन्द्र-भूप-वेधसे ।। ११० ।।
लीलारूपधारकाय सर्व्वविश्वकारकाय, ।। १११ ।।
सकलमहसामपि देवपूर्णतेजसे ।। ११२ ।।

।। सोरठा ।।

स्तुति करयित अमरेश, बद्धाञ्जलि प्रभु सों कहल ।। ११३ ।।
जय-जय राम नरेश, वेश कयल सुरकार्य्य प्रभु ।। ११४ ।।

चमक है। वे नये किरीट भूषण पहने हुए हैं और अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीते हुए हैं। १०० पीले वस्त्र पहने हुए हैं, दिव्य भूषण लगाये हुए हैं। सभी लोगों को प्रसन्न करनेवाले हैं। १०१ बाईं ओर सीता विराजमान हैं। महारानी सीता की शोभा लक्ष्मी की शोभा से भी बढ़ी-चढ़ी है। १०२ हाथ में कमल लिये हुए हैं, सभी गहने लगाये अतिशय शोभामयी बनी हुई हैं। १०३ पार्वती-सहित महेश पहुँचे हुए हैं और आनन्द के अवसर पर उनकी स्तुति कर रहे हैं— १०४ "नमस्कार है, उन राम को नमस्कार है जो शक्ति से युक्त होते हुए भी निर्गुण हैं। १०५ नीलकमल की सी छवि वाले हैं और बड़े कोमल हृदय विष्णुस्वरूप हैं। १०६ मत्स्य, कच्छप आदि के रूप में अवतार लेकर धरती की रक्षा करनेवाले हैं। १०७ देवताओं और मानवों को सताने वाले सभी दुष्टों को हरानेवाले हैं। १०८ किरीट, हार, अंगद आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। १०९ सिंहासन पर विराजमान हैं। ऐसे राजा रामचन्द्र ब्रह्मस्वरूप हैं। ११० ये लीलावश सगुण रूप धारण करते हैं, सारे जगत् की रचना करते हैं, सभी तेजों से अधिक तेज देवता हैं।" १११ इन्द्र ने हाथ जोड़े स्तुति करते हुए राम से कहा— ११२ "हे राजा राम, आपकी जय हो, जय हो! आपने देवताओं का बहुत बड़ा उपकार किया। ११३-११४ रावण ने ब्रह्मा से वरदान पा करके देवताओं के सारे सुख

प्राप्त महोरग किन्नर-लोक। स्तुति कर कह हम भेलहुँ अशोक ॥१२८॥
वसु मुनि गुह्यक पक्षी सकल। सहित प्रजापति छल छथि बिकल॥१२९॥
बड़ गोट उत्सव देखल नयन। दुःखँ रहित सकल मन चयन ॥ १३० ॥
पृथक पृथक स्तुति सब जन कयल। रामचरण-पङ्कज मन धयल ॥ १३१ ॥
लक्ष्मण - सीता - सय्युँत राम। विधि-अभिषिक्त बिराज सुधाम॥१३२॥
ब्रह्मादिक निज पद प्रस्थान। कयल कयल प्रभु बड़ सन्मान ॥ १३३ ॥

॥ दण्डक छन्द ॥

नवधन-रङ्ग हे ॥ १३४ ॥
राम भूपति थित-सिंहासन, अवनिगत जनु पाकशासन ॥ १३५ ॥
कान्ति-कोटि-दिनेश-भासन, कृत-दशानन-भङ्ग ॥ १३६ ॥
जानकी-लक्ष्मण-मरुत्सुत, मुनि-निवह हरिगणसँ-संयुत ॥ १३७ ॥
रामचन्द्र-समीप बसि नित, भजन भाव प्रसङ्ग ॥ १३८ ॥
गगन-सङ्कुल त्रिदश बाजल, पुष्प वर्षण कर मुदित-मन ॥ १३९ ॥
करथि प्रभु-गुण-गान परसन, बिपुल-पुलक सुअङ्ग ॥ १४० ॥

तब नाग और किन्नर लोग आये और स्तुति करने लगे— "अब हम शोक-रहित हुए। १२८ वसु, ऋषि-मुनि, यक्ष, पक्षी आदि सभी जीव और प्रजापति ब्रह्मा भी विकल थे। १२९ आज हमने बहुत भारी उत्सव अपनी आँखों से देखा। सबों के दुःख दूर हुए। सबों के मन निश्चिन्त हुए।" १३० हरेक ने अलग-अलग भी स्तुति की और राम के चरण का ध्यान अपने हृदय में सँजोया। १३१ लक्ष्मण और सीता-सहित राम विधिवत् अभिषेक पाकर सिंहासन पर विराजमान हैं। १३२ ब्रह्मा आदि अपनी-अपनी जगह लौट गये। राम ने सबों का पूर्ण सत्कार किया। १३३ अहा, राम नये बादल के समान साँवले हैं। १३४ राजा राम सिंहासन पर विराजमान हैं जैसे इन्द्र धरती पर उतर आये हों। १३५ वे करोड़ों सूर्य के समान प्रभा से देदीप्यमान हैं। उन्होंने रावण का संहार किया है। १३६ सीता, लक्ष्मण, हनुमान, मुनिगण तथा कपिगण ये सभी राम के समीप में बैठे नित्य भजन-भाव कर रहे हैं। १३७-१३८ आकाश में देवताओं की भीड़ लगी हुई है। वे बाजा बजा रहे हैं और प्रसन्न हृदय से फूल बरसा रहे हैं। १३९ आनन्दमग्न हो राम का गुण गा रहे हैं। उनके अंग अतिशय रोमांचित हैं। १४० भगवान् राम मुस्कुरा रहे हैं। वे सभी गुणों का खजाना हैं, भक्तों को सदा सुख

रावण विधि-वर पाबि, देवताक सुख हरल छल ॥ ११५ ॥
मारल खल कों आबि, पाओल प्रभुक प्रसाद से ॥ ११६ ॥

॥ चौपाइ ॥

सकल देव कह निज कर जोड़ि। सङ्कट-बन्ध देल प्रभु तोड़ि ॥ ११७ ॥
रावण-कृत कि नियत छल त्रास। गमहि गमहि सहि अतिशय त्रास॥११८॥
रावण हरि लेल यज्ञक भाग। ब्रह्म-दत्त-वर सौं के लाग ॥ ११९ ॥
रावण कों मारल प्रभु जाय। सर्वसहापर भेलहुँ सहाय ॥ १२० ॥
पितरलोक कहलनि कलजोड़ि। शरण न आन चरण ई छाड़ि ॥ १२१ ॥
रावण-वध सौं सुख बड़ गोट। खायब पिण्ड प्रमोद सँ मोट ॥ १२२ ॥
रावण मख सभ हरि लय जाय। भाग गयादिक अपनहि खाय ॥ १२३ ॥
यज्ञ न रहल सहल बड़ कष्ट। रावण मुइल भेल दुख नष्ट ॥ १२४ ॥
गबइत गीत प्रीति सौं सर्व्व। कहल राम सौं गण गन्धर्व्व ॥ १२५ ॥
सहल बहुत दशकन्ध-अनीति। प्रभु-गुणगान छुटल सब भीति ॥ १२६ ॥
तनि गुण गाबि बचाओल प्राण। आज कयल सब सङ्कट त्राण ॥ १२७ ॥

हर लिये थे। ११५ आपने अवतार लेकर उस दुष्ट को मारा। यह फल हमें आपकी कृपा से ही प्राप्त हुआ।" ११६ सभी देव लोग हाथ जोड़कर कहते हैं— "हे राम, आपने हम लोगों को संकट के फन्दे से मुक्त किया। ११७ रावण ने तो हमारे घरबार का भी ठिकाना न रहने दिया। हमारा आतंक क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। ११८ रावण ने यज्ञ में मिलनेवाले हमारे अंशों को हर लिया। उसे ब्रह्मा का वर प्राप्त था, अतः उसका सामना हम नहीं कर सकते थे। ११९ हे प्रभु, आपने जाकर रावण का संहार किया। धरती के उद्धारक हुए।" १२० तब पितर लोगों ने हाथ जोड़कर कहा— "हमें आपके चरण के सिवा कोई दूसरा सहारा नहीं है। १२१ रावण के मरने से हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। अब हम खुशी से मोटा-मोटा पिंड खायेंगे। १२२ रावण यज्ञ में मिलनेवाला हमारा सारा अंश खा जाता था। गया आदि में मिलनेवाला हमारा अंश भी स्वयं खा लेता था। १२३ यज्ञ का नामोनिशान न रहा। हमें बड़ी तकलीफ़ होने लगी। रावण के मरने से हमारी यह तकलीफ़ दूर हो गई।" १२४ फिर सारे गन्धर्व लोग खुशी से गीत गाते हुए राम की स्तुति करने लगे— १२५ हम ने रावण के बहुत दुराचार सहे। आपकी स्तुति के प्रसाद से हमारा सारा डर दूर हुआ। १२६ डर से उस रावण का गुणगान कर-करके ही हम अपने प्राण बचाते रहे। आज आपने हमें सभी संकटों से छुटकारा दिलाया।" १२७

अङ्गद काँ अङ्गद देल राम। लगला करय सुयश सभ ठाम ॥ १० ॥
चन्द्रकोटि मणि-रत्न सुहार। वैदेही काँ देल उदार ॥ ११ ॥
पहिरि हार निज कर मे धयल। दृष्टि पवन-नन्दन दिश कयल ॥ १२ ॥
प्रभु-मुख वारहिँ वार निहार। हार-दान मे केहन विचार ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥

जतय तुष्ट मन अहँक अछि, दिय लनि जन काँ हार ॥ १४ ॥
वैदेही काँ कहल प्रभु, हमरो सेहु विचार ॥ १५ ॥
हार देल हनुमान काँ, लेल से कण्ठ लगाय ॥ १६ ॥
बद्धाञ्जलि नत ठाढ़ तहँ, भक्ति कहल को जाय ॥ १७ ॥

॥ चौपाइ ॥

वर अभिलषित माँगु हनुमान। कहलनि रघुनन्दन भगवान ॥ १८ ॥
त्रिभुवन सुर-दुर्लभ वरदान। देब अहाँक समान न आन ॥ १९ ॥
कहि नहि हो हनुमानक हर्ष। गद गद कण्ठ नयन जल वर्ष ॥ २० ॥
यावत अपनैक रह जह नाम। तावत हमहुँ रही तहि ठाम ॥ २१ ॥
रहय निरन्तर नामस्मरण। प्रभुक चरण-वश अन्तष्करण ॥ २२ ॥
ई वर छोड़ि न माँगब आन। छल सौँ रहित कहल हनुमान ॥ २३ ॥

वे सर्वत्र अपना यश फैलाने लगे। १० दानी राम ने चन्द्रकान्त मणि का एक अच्छा हार सीता को दिया। ११ सीता ने वह हार पहना और उसे उतार हाथ में ले अपनी नजर हनुमान पर डाली। १२ फिर बार-बार राम का मुँह जोहने लगीं कि उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है। १३ राम ने कहा— "जहाँ तुम्हारा मन चाहे, उसे तुम हार दे सकती हो। मेरी भी इसमें सहमति है।" १४-१५ सीता ने वह हार हनुमान को दिया। हनुमान ने उसे अपने गले में लगा लिया। १६ फिर हाथ जोड़े, सर झुकाये खड़े हो गये। उनकी भक्ति का क्या कहना। १७ भगवान् राम ने कहा— "हे हनुमान, आपको जो भी अभिलाषा हो, वर माँगिये। १८ आपको ऐसा वरदान दूँगा जो तीनों लोकों में देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मुझे आपके बराबर कोई नहीं है।" १९ हनुमान को असीम आनन्द हुआ। उनका गला रुँध गया। और आँखों से आँसू बरसने लगे। २० हनुमान ने कहा— "जहाँ कहीं जब तक आपका नाम लिया जाता रहे, तब तक मैं वहाँ रहूँ। २१ मुझे सदा आपका नाम-स्मरण होता रहे। मेरा चित्त सदा आपके चरणों के वश में रहे। २२ यह छोड़कर और कोई वर नहीं माँगूगा" हनुमान ने शुद्ध हृदय से ऐसा कहा। २३ राम ने वहीं कहा— "ऐसा ही हो।

राम प्रभु गुण-धाम स्मित-सुख, सदा दायक भक्त जन सुख ।। १४१ ।।
कयल अदित दनुज-गण लुख, कान्ति-विजित-अनङ्ग ।। १४२ ।।
।। इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ।।

।। अथ षोड़शोऽध्यायः ।।

।। चौपाइ ।।

रामक भेल जखन अभिषेक। महाराज कौँ नीति विवेक ।। १ ।।
सकल लोक कौँ अति सुख प्राप्त। सकल शस्य सौँ धरणी व्याप्त ।। २ ।।
भल भल सुफल महीरुह लाग। राम नृपति प्रकृतिक बड़ भाग ।। ३ ।।
जे छल सुमन गन्ध सौँ रहित। भेल अपूर्व्व सुगन्धिक सहित ।। ४ ।।
घोड़ा दान हजार हजार। धेनु दान कर परमोदार ।। ५ ।।
शत शत वृषभ विप्र कौँ देथि। आशिष शिष्ट लोक सौँ लेथि ।। ६ ।।
तीस कोटि पाओल भल दान। वर सुवर्ण ब्राह्मण गुणवान ।। ७ ।।
वस्त्राभरण रत्न वसु आन। नित नित ब्राह्मण जन कौँ दान ।। ८ ।।
सूर्य्यकान्ति सम रत्न उदार। देल सुग्रीव-गरा मे हार ।। ९ ।।

देनेवाले हैं। १४१ उन्होंने राक्षसों के दल को भूँसे की भाँति मसल दिया। वे अपनी शोभा से कामदेव को भी जीते हुए हैं। १४२

।। मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

सोलहवाँ अध्याय

राज्याभिषेक के उपलक्ष में इनाम बाँटा जाना; विभीषण आदि को विदा करना; रामायण का माहात्म्य

जब राम का राज्याभिषेक हुआ, और नीति और विवेक से युक्त महाराज हुए, १ तब सभी लोग सुखी हो गये। धरती फ़सलों से भरी-पूरी हो गयी। २ पेड़ों में अच्छे-अच्छे फल लगने लगे। राम राजा हैं। प्रजा का भाग्य जगा है। ३ जो फूल सौरभ से हीन होते थे उनमें भी अजब सुगन्ध आ गई। ४ हजार-हजार घोड़ों और हजार-हजार दुधारू गायों का दान उदारता के साथ किया गया। ५ सौ-सौ बैल ब्राह्मणों को देते और शिष्ट जनों से आशीर्वाद लेते थे। ६ गुणवान् ब्राह्मणों को तीस करोड़ सुवर्णमुद्राएँ मिलीं। ७ रोज-रोज ब्राह्मणों को वस्त्र, गहने, रत्न और अन्यान्य धन दान में दिये जाते। ८ उदार राम ने सूर्यकान्त जैसे दुर्लभ रत्नों का हार सुग्रीव के गले में दिया। ९ राम ने अंगद को अंगद नामक बाँह का गहना दिया।

दिव्याभरण राज्य कय देश। देल मित्र काँ राम नरेश ॥ ३८ ॥
नयन सजल मिलि मिलि चललाह। राम-वियोग न किछु बजलाह ॥ ३९ ॥
सुग्रीवादिक सकल प्रधान। सभ जन पाओल बर सम्मान ॥ ४० ॥
वानर-निकरक कथ सन्मान। वसनाभरण अमूल्य अमान ॥ ४१ ॥
सन्मानित सभ भेल विदाय। गदगद कण्ठ नयन जल जाय ॥ ४२ ॥
सभजन अपन अपन गेल गेह। अचल रहल रामक पद नेह ॥ ४३ ॥
किष्किन्धा कपि-पति सह-दार। चलल सैन्य सह भरिया भार ॥ ४४ ॥
लङ्का गेला निज जन सहित। चकल विभीषण कण्टक-रहित ॥ ४५ ॥
रघुवर कयल बहुत सत्कार। जे पवित्र मित्रक व्यवहार ॥ ४६ ॥
लक्ष्मण काँ बल सौँ युवराज। कयल रघूत्तम सहित समाज ॥ ४७ ॥
कर्म्माध्यक्ष तदपि नहि बन्ध। परमात्मा मन सौँ निर्द्वन्ध ॥ ४८ ॥
स्वात्मानन्दहिँ प्रभु सन्तुष्ट। जन उपदेश करथि मन तुष्ट ॥ ४९ ॥
हयमेधादिक यज्ञ अनेक। कयल यथाविधि विमल-विवेक ॥ ५० ॥
विपुल दक्षिणा जन सन्तुष्ट। त्रिभुवन जन मन रहल न रुष्ट ॥ ५१ ॥

नहीं जाइयेगा।" ३७ अपूर्व भूषण और कई प्रदेशों का राज्य राम ने अपने मित्र गुह को दिया। ३८ उनकी आँखों में आँसू भर आये और वे राम से बार-बार मिले; राम के बिछोह के दुख से कुछ बोल न पाये। ३९ सुग्रीव आदि जो-जो सेनापति थे सबों ने खूब सम्मान पाया। ४० अमूल्य और अनगिनत वस्त्र और भूषण देकर कपियों का सम्मान किया। ४१ सभी सम्मानित होकर विदा हुए। सबों के गले रुँधे थे और आँखों में आँसू थे। ४२ सभी अपने-अपने घर चले गये। सबों के मन में राम के चरणों में अटल भक्ति थी। ४३ कपियों के राजा सुग्रीव पत्नी तारा-सहित किष्किन्धा चले और उनके पीछे उनकी सेना थी और साथ में भारिक भारों में सामान लिये थे। ४४ विभीषण अपने परिजनों-सहित लंका को चले जहाँ उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। ४५ राम ने सच्चे मित्र के साथ जैसा व्यवहार होना चाहिए, अपने मित्रों का खूब सम्मान किया। ४६ राम ने अपने इष्टमित्रों के साथ विचार-विमर्श कर आग्रहपूर्वक लक्ष्मण को युवराज बनाया। ४७ सभी राज-काज के प्रधान होते हुए भी राम कर्म के बन्धन में नहीं रहे क्योंकि वे परमात्मा थे और उनके मन में द्वन्द्व (भेदबोध) नहीं था। ४८ वे आत्म-साक्षात्कार से होनेवाले आनन्द से ही तृप्त रहते थे और सेवकों को प्रसन्न मन से उपदेश देते थे। ४९ उन्होंने शास्त्रों में बताई गई रीति से शुद्ध भाव से अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये। ५० प्रचुर दक्षिणा पाकर सभी सम्बद्ध लोग खुश हुए। तीनों भुवनों में किसी के भी मन में कोई शिकायत न रही। ५१ वहाँ कोई महिला विधवा नहीं होती थी। साँप के काटने का डर न था।

राम तथास्तु कहल लहि ठाम। जीवन्मुक्त अहाँ गुणधाम॥ २४॥
कल्पान्तहु हमरे सायुज्य। सतत सुखी रहु तन नेरुज्य॥ २५॥
वैदेही देलन्हि बरदान। जतय ततय बसु गय हनुमान॥ २६॥
ततहि मनोभिलषित फल पयब। आशिष हमर न चिन्तित हयब॥ २७॥

॥ सोरठा ॥

धरणी धय निज माथ, कयल प्रणाम समीर-सुत॥ २८॥
वैदेही - रघुनाथ, सानुकूल रहु की कहब॥ २९॥

॥ किरीट छन्द ॥

वृक्षक पत्र जकाँ रघुनायक, जाय कहूँ अपनेक कहायब॥ ३०॥
वानर छी वन मे बसि कें, झरना-जल पान तते फल खायब॥ ३१॥
जीवन मुक्त निरन्तर ध्यान, विदेह-सुता प्रभु-गान शुनायब॥ ३२॥
जाइतछी हिमवान मे हे प्रभु, ई सुख-पुञ्ज कते हम पायब॥ ३३॥

॥ चौपाइ ॥

हाथ जोड़ि कहि कयल विदाय। गुह निषाद काँ हृदय लगाय॥ ३४॥
घर थिक अपन निरन्तर आउ। मित्र अपन पुर सम्प्रति जाउ॥ ३५॥
चिन्ता हमर चित्त मे धरब। विपुल भोग-सुख सुख सौं करब॥ ३६॥
मित्र हमर सारूप्ये पयब। अन्त समय नहि दुर्गति जयब॥ ३७॥

हे परम गुणवान हनुमान, आपने जीते ही मोक्ष पा लिया। २४ चार युगों का कल्प बीत जाने के बाद मुझमें पूर्णतः लीन हो जायेंगे। आप सदा सुखी रहें और आपका शरीर नीरोग रहे। २५ सीता ने वरदान दिया— "हे हनुमान, आप जहाँ कहीं भी रहेंगे आपके मन की अभिलाषा पूरी होती रहेगी। मेरा आशीर्वाद है। आपको कहीं कोई चिन्ता न होगी।" २६-२७ हनुमान ने धरती में माथा टेककर प्रणाम किया और कहा— "हे सीता, हे राम, आप मुझ पर अनुग्रह बनाये रखें; और क्या कहूँ। २८-२९ हे रघुनाथ, पेड़ के पत्ते की तरह जहाँ भी जाऊँगा, आप ही का कहलाऊँगा। ३० मैं बन्दर हूँ, वन में रहकर झरना का जल पियूँगा और फल खाऊँगा। ३१ मैं जीते ही मुक्त हो चुका हूँ। सदा आपका ध्यान करता रहूँगा और सीता-राम का गुन गाता रहूँगा। ३२ हे प्रभु, मैं अब हिमालय के जंगल में जाता हूँ। यह सुख और कहाँ पाऊँगा? ३३ तब राम ने निषादराज गुह को गले लगाया और हाथ जोड़कर यह कहते हुए विदा किया— ३४ "यह आपका अपना घर है, सदा आते रहिये। हे मित्र, अब आप अपने नगर जा सकते हैं। ३५ मेरी याद रखियेगा। सुख के साथ खब भोग कीजियेगा। ३६ हे मित्र, आप जीवन का अन्त होने पर मेरा सारूप्य पाइयेगा, और नरक

श्रद्धायुत जे पढ़ इ पुराण। ईश्वर तनिकाँ देथिनि ज्ञान ॥ ६८ ॥
करथि उमेश तनिक प्रतिपाल। निकट न आबं तनिका काल ॥ ६९ ॥

॥ इति चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे षोडशोऽध्यायः ॥

॥ इति लंकाकाण्ड ॥

ग्रहों की प्रतिकूलता समाप्त हो जायेगी। ६७ जो इस पुराण रूपी रामकथा को पढ़ेगा उन्हें भगवान् ज्ञान देंगे। ६८ शिव उनकी रक्षा करेंगे और काल भी उनके पास नहीं भटकेगा। ६९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ लंकाकाण्ड समाप्त ॥

प्राप्त ततय नहि विधवा योग। नहि सर्प्पादिक भय नहि रोग ॥ ५२ ॥
तस्करादि नास्तिक नहि लोक। प्राप्त न ककरहु पुत्रक शोक ॥ ५३ ॥
रामाचरित प्रजा समस्त। वस्तु प्रशस्त सतत सभ सस्त ॥ ५४ ॥
सकल प्रजाकें धर्म्महिं प्रीति। बड़ मन धृति नहि ईतिक भीति ॥ ५५ ॥
बरष बलाहक समय सुबेरि। व्रीहि व्रीहि मय महि भे ढेरि ॥ ५६ ॥
वर्णाश्रम-गुणयुत जन सर्व्व। ककरो नहि मन अंकुर गर्व्व ॥ ५७ ॥
प्रजा पुत्र सम कर प्रतिपाल। रामचन्द्र उत्तम महिपाल ॥ ५८ ॥
दशसहस्त्र वर्षावधि राज। कयल राम बसि अवनि-समाज ॥ ५९ ॥
चिरतर जीवन तन आरोग्य। धन-धान्यादिक उत्तम भोग्य ॥ ६० ॥
अतिपुण्यद श्रीरघुवर - चरित। पाठक श्रोता कॉं नहि दुरित ॥ ६१ ॥
श्रीरामक अभिषेक चरित्र। श्रवण पठन धन-करण पवित्र ॥ ६२ ॥
पढ़थि रामायण सुनथि समग्र। प्राप्ति सुपुत्र न मन हो व्यग्र ॥ ६३ ॥
समर-शूर रण निकट न आब। रामचरित कॉं सहज स्वभाव ॥ ६४ ॥
बन्ध्या रामायण मन लाब। रजस्वला उत्तम सुत पाब ॥ ६५ ॥
रामायण जे पढ़थि विचारि। सुलभ तनिक कर-गत फल चारि ॥ ६६ ॥
रोग न रहय पाप क्षय जाय। ग्रह-विघ्नादिक दूर पड़ाय ॥ ६७ ॥

रोग का भी डर नहीं था। ५२ न चोर थे, न नास्तिक। किसी को पुत्र-शोक नहीं होता। ५३ सारी प्रजा राम की अर्चना में लगी रहती। सदा उत्तम-उत्तम वस्तुएँ उचित मूल्य में सुलभ थीं। ५४ प्रजा में सभी लोग धर्मानुरागी थे। सबों के मन में सन्तोष था। अकाल का भय नहीं था। ५५ बादल अपेक्षानुसार समय पर बरसता था। धरती पर अनाज-ही-अनाज छा जाता था। ५६ सभी लोग अपने-अपने वर्ण और अपने-अपने आश्रम के कर्तव्यों में लगे थे। किसी के भी मन में अभिमान पैदा नहीं होता था। ५७ राजा राम अपनी प्रजा का पालन पुत्र के समान करते थे। ५८ राम ने धरती पर रहकर दस हजार वर्ष राज किया। ५९ राम का चरित सुनने से लम्बी आयु मिलती है, शरीर रोगहीन रहता है, धन-धान्य आदि सभी उत्तम वस्तुएँ भोग के लिए मिलती हैं तथा पढ़नेवाले और सुननेवाले भी सभी पापों से मुक्त होते हैं। ६०-६१ जो राम के अभिषेक की कथा सुनेगा या पढ़ेगा वह धनवान होगा। ६२ जो सारी रामायण पढ़ेगा या सुनेगा उसे अच्छा बेटा होगा, और मन निश्चिन्त रहेगा। ६३ युद्ध-भूमि में उसके सामने कोई वीर आने की हिम्मत नहीं करेगा। रामायण का यह स्वाभाविक माहात्म्य है। ६४ जो बाँझ स्त्री रामायण में चित्त लगायेगी वह रजस्वला होकर अच्छा बेटा पायेगी। ६५ जो ध्यानपूर्वक रामायण पढ़ेगा उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल अनायास प्राप्त होंगे। ६६ उनसे रोग दूर रहेंगे, पाप छूट जाएंगे,

मुनि-मण्डली शिष्यसौँ परिवृत, अयला तथा अगस्त्य ।। ११ ।।
द्वारपाल काँ कहलनि सभ मुनि, कोमल वचन प्रशस्त्य ।। १२ ।।

।। जयकरी छन्द ।।

प्रतीहार बुझि सभ मुनि नाम । कहलनि आयल छथि एहिठाम ।। १३ ।।
नृप काँ आशिष देबक काज । आगत छी मुनि-मण्डलि आज ।। १४ ।।
द्वारपाल से बुद्धि - विशाल । गेला जतय राम महिपाल ।। १५ ।।
बद्धाञ्जलि ओ कयल प्रणाम । मुनि-आगमन कहल तहिठाम ।। १६ ।।
मुनि अगस्ति छथि बहुत चिन्हार । आशिष देता वृत्त छथि द्वार ।। १७ ।।
द्वारपाल काँ कहलनि राम । आदर सौँ आनू एहि ठाम ।। १८ ।।
नानारत्न - विभूषित धाम । पूजित मुनि गेला तहि ठाम ।। १९ ।।
मुनि-अभिमुख प्रभु जोड़ल हाथ । पूजा सविधि कयल रघुनाथ ।। २० ।।
अर्घ्यादिक उत्तर गोदान । पृथक पृथक मुनिजन सम्मान ।। २१ ।।
सभ काँ कयलनि राम प्रणाम । दिव्यासन देलनि तहि ठाम ।। २२ ।।
सभ काँ कुशल पुछल रघुबीर । दिनमणि-वंश-शिरोमणि धीर ।। २३ ।।
सभ मुनि कहल कुशल सभ ठाम । रावणादि मारल संग्राम ।। २४ ।।
नहि आश्चर्य धनुष धय हाथ । सकल-लोक-जित श्री रघुनाथ ।। २५ ।।
अति अद्भुत घननादक मरण । तनिक विजय रण साहस करण ।। २६ ।।

सर्वज्ञ थे। शिष्यों से घिरे मुनियों का दल आया, ९-११ और प्रशंसनीय मीठी बोली में सभी मुनियों ने द्वारपाल से कहा— १२ "हे द्वारपाल, सभी मुनियों का नाम जानकर आप राजा से कहिये कि आज राजा को आशीर्वाद देने के लिए मुनियों का एक दल यहाँ आया हुआ है।" १३-१४ वह समझदार द्वारपाल वहाँ गया जहाँ राजा राम थे। १५ उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मुनियों के आने की बात सुनाई। फिर द्वारपाल ने कहा— १६ "अगस्त्य मुनि जो आपके परम परिचित हैं वे आशीर्वाद देने के लिए द्वार पर उपस्थित हैं।" १७ राम ने द्वारपाल से कहा— "उन सबों को आदर के साथ यहाँ ले आओ।" १८ राजभवन तरह-तरह के रत्नों से सजा हुआ था। सत्कार के साथ मुनि लोग वहाँ आये। १९ राम ने मुनियों के सामने हाथ जोड़ खड़े हुए और उचित रीति से उनकी पूजा की। २० अलग-अलग हरेक मुनि को पहले आदरपूर्वक अर्घ्य आदि दिये, और अन्त में गोदान दिया। २१ फिर सबों को प्रणाम किया और वहाँ उन्हें बैठने के लिए दिव्य आसन दिये। २२ तब सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ धीर राम ने सबों से कुशल पूछी। २३ सभी मुनियों ने कहा— "सभी जगह कुशल है। आपने युद्ध में रावण आदि राक्षसों का संहार किया, २४ यह अचरज की बात नहीं है कि आपने हाथ में धनुष लेकर तीनों भुवनों को जीता। २५ मेघनाद मारा गया, यह एक

उत्तरकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ दोबय छन्द ॥

जय रघुवंश-तिलक कौशल्या-नन्दन-दशरथ-बालक ॥ १ ॥
दशमुख-नाशक पङ्कज-लोचन, जय मुनिजन-प्रतिपालक ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय गिरिराज-कुमारि। शिव कां पूछल समय बिचारि ॥ ३ ॥
रावणादि कां मारल राम। राजा भेला अयोध्या-धाम ॥ ४ ॥
भूतल रहला ओ कति वर्ष। श्रीसीता सह बास सहर्ष। ॥ ५ ॥
से कयलनि महि-मण्डल त्याग। तृप्ति न कथा सुधा-सम लाग ॥ ६ ॥
शिव कहलनि शुनु प्रिया महेशि। कथा पुछल अछि अपनें बेसि ॥ ७ ॥
राम अकण्टक महि-सुरराज। मुनिगण अयला आशिष काज ॥ ८ ॥

॥ दोबय छन्द ॥

विश्वामित्र कण्व दुर्वासा, सित भृगु शिष्य अनेक ॥ ९ ॥
अत्रि अङ्गिरा वामदेव सभ, निर्मल सकल विवेक ॥ १० ॥

पहला अध्याय

रावण के जन्म की कथा

रघु के कुल में श्रेष्ठ, कौशल्या और दशरथ के पुत्र, रावण का संहार करनेवाले, ऋषि-मुनियों की रक्षा करनेवाले कमलनयन राम की जय हो। १-२ एक समय उचित अवसर पाकर हिमालय की बेटी गिरिजा ने शिव से पूछा— ३ "राम ने रावण को मारा। अयोध्या में राजा हुए। ४ सीता के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए धरती पर कई बरस बिताये। ५ फिर वे पृथ्वी को छोड़ चले गये। यह कथा तो मुझे अमृत के समान भाई। सुनते-सुनते तृप्ति ही नहीं हो रही है।" ६ शिव ने कहा— "हे प्रिये गिरिजा, तुमने अच्छा प्रसंग चलाया है, सुनो। ७ राजा राम निष्कंटक हो धरती पर इन्द्र के समान राज करते थे। एक दिन उन्हें आशीर्वाद देने के लिए मुनियों की एक मण्डली आई। ८ इस मण्डली में विश्वामित्र, कण्व, दुर्वासा, सित, भृगु, अत्रि, अंगिरा, वामदेव, अगस्त्य और उनके शिष्य थे। ये सभी निष्कलुष और

तृणविन्दुक कन्या अज्ञात। मुनि-दृग-गोचर भेली प्रात ॥ ४१ ॥
भेलि गर्भिणी मन सन्ताप। गेलि तहाँ जहाँ छलथिनि बाप ॥ ४२ ॥
से राजर्षि बुझल वृत्तान्त। ज्ञान-नयन सौं मुनिक नितान्त ॥ ४३ ॥
कन्या लय तृणविन्दु उदार। मुनि पुलस्त्य काँ कयल सदार ॥ ४४ ॥
मुनिसेवा मे लागलि रहथि। करथि टहल से मुनि जे कहथि ॥ ४५ ॥
सेवा - तुष्ट देल वरदान। कन्या काँ से मुनि भगवान ॥ ४६ ॥
उभयबंश-बर्द्धन एक तनय। हयतौ सदाचार सद्विनय ॥ ४७ ॥
बिश्रुत - लोक विश्रवा नाम। तनिकाँ पुत्र भेला गुणधाम ॥ ४८ ॥
पिता - तुल्य तप ब्रह्मज्ञान। ख्यात महामुनि तपोनिधान ॥ ४९ ॥
देखल शीलादिक समुदाय। भरद्वाज तनि कयल जमाय ॥ ५० ॥
तहि कन्या मे तनय धनेश। जनिकाँ अति प्रिय मित्र महेश ॥ ५१ ॥
बिदित विरञ्चिक बहुत दुलार। पितातुल्य तप कयलअपार ॥ ५२ ॥
तनिकाँ विधि देलनि वरदान। वित्त अखण्डित वर विज्ञान ॥ ५३ ॥

कभी न आई। ४० पर ऋषि तृणविन्दु की लड़की, जो यह बात नहीं जानती थी, सुबह ही मुनि पुलस्त्य की नजर के सामने आ गई। ४१ वह गर्भवती हो गई, यह जान बड़ी चिन्तित हुई और वहाँ गई जहाँ उसके पिता थे। ४२ राजर्षि तृणविन्दु अपनी सर्वज्ञ दृष्टि से मुनि पुलस्त्य का सारा हाल जान गये। ४३ फिर उदार विचार वाले ऋषि तृणविन्दु ने अपनी कन्या को ले जाकर मुनि पुलस्त्य के हाथ सौंप दिया। पुलस्त्य ने उससे विवाह कर लिया। ४४ तब से वह लड़की मुनि पुलस्त्य की सेवा में लग गई, और मुनि जो कुछ कहते वह सारा काम पूरा कर देती। ४५ सेवा से प्रसन्न हो मुनि पुलस्त्य ने उसे वरदान दिया— ४६ "तुम्हें एक पुत्र होगा जो माता और पिता दोनों के वंशों को बढ़ाएगा, अच्छे आचरणवाला तथा विनीत होगा। ४७ उस कन्या से विश्रवा नाम का पुत्र हुआ। वह तीनों भुवनों में विख्यात और परम गुणवान् हुआ। ४८ वह अपने पिता के समान ही तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी निकला। वह अपने तप के कारण महामुनि के रूप में विख्यात हो गया। ४९ भरद्वाज मुनि ने उस विश्रवा में शील आदि सभी वांछित गुण देखकर उसे अपना जमाई बना लिया। ५० विश्रवा को उस कन्या में एक पुत्र धनेश हुआ, जिसके शिव प्यारे मित्र थे। ५१ उसे ब्रह्मा का स्नेह बहुत मिलता। उसने भी अपने पिता के समान भारी तपस्या की। ५२ तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उसे वर दिया— "तुम अक्षय सम्पत्ति वाले होओगे, और तुम्हें उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा।" ५३ ब्रह्मा से यह वर पाकर वह लड़का

सुनि मुनि-वचन कहल श्रीराम। मेघनाद छल की बलधाम ॥ २७ ॥
कुम्भकर्ण रावण अति वीर। कालहु काँ मन जलय न थीर ॥ २८ ॥
काँपथि थर थर निकट न जाथि। देखयित तनिकाँ गमहि पड़ाथि ॥ २९ ॥
मेघनाद तनिकहु सौं शूर। कहल जाइ अछि नहि किछु फूर ॥ ३० ॥

॥ दोहा ॥

कहलनि तखन अगस्ति मुनि, शुनु ईश्वर रघुनाथ ॥ ३१ ॥
जन्म कर्म्म वरदान विधि, जे पाओल दशमाथ ॥ ३२ ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनि पुलस्त्य विधि-तनय महान। मेरु निकट तप कर विद्वान ॥ ३३ ॥
तृणविन्दुक आश्रम मे जाय। कलयुग मे एक धर्म्म सहाय ॥ ३४ ॥
सुर - गन्धर्व - कन्यका आब। अति रमणीयक आश्रम पाब ॥ ३५ ॥
गाबय नाचय बाद्य बजाय। हसय बहुत नहि एक लजाय ॥ ३६ ॥
बड़ि निरहँटि सटि मुनि लग जाय। अतिशय उनमति युवता पाय ॥ ३७ ॥
मुनि मन बाढ़ल अतिशय कोप। करति तपोविधि जनु ई लोप ॥ ३८ ॥
हमर दृष्टिपथ अयोती नारि। गर्भवती हयतीह कुमारि ॥ ३९ ॥
बड़ दुःप्रथा कथा जे शून। केओ हुनि मुनि लग आब न पून ॥ ४० ॥

अद्‌भुत घटना है। युद्ध में उसे जीतना साहस की बात है।" २६ मुनियों की यह बात सुनकर राम ने कहा— "मेघनाद अद्‌भुत बलवान था। २७ कुम्भकर्ण और रावण भी बहुत वीर थे। उसके सामने काल भी घबरा जाता था। २८ डर से काँपता रहता था। उसके पास न जा सकता था। उसे देखते ही चुपके से भाग जाता। २९ पर मेघनाद तो उनसे भी अधिक बहादुर कहा जाता है, जो यथार्थ बात है।" ३० तब अगस्त्य मुनि ने कहा— "हे भगवान् राम, सुनिए। ३१ मैं बताता हूँ कि रावण का जन्म कैसे हुआ, उसने क्या काम किया और कैसे वरदान प्राप्त किया। ३२ ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य नाम के एक मुनि, जो बड़े विद्वान् थे, मेरु पर्वत के पास तृणबिन्दु के आश्रम में जाकर तपस्या करने लगे, क्योंकि कलियुग में तो धर्म ही सहारा है। ३३-३४ देवों और गन्धर्वों की लड़कियाँ उस आश्रम को परम आकर्षक पाकर वहाँ आतीं, ३५ बाजे बजा-बजाकर नाचतीं, गातीं और खिलखिला-खिलखिलाकर हँसतीं। एक भी लजाती नहीं। ३६ वे बहुत ही ढीठ हो मुनि के एकदम निकट चली जातीं। वे जवानी पाकर उद्धत-सी हो गई थीं। ३७ मुनि पुलस्त्य के मन में बड़ा क्रोध हुआ। उन्हें लगा कि ये लड़कियाँ उनकी तपस्या को भंग कर देंगी। ३८ उन्होंने शाप दिया— "जो लड़की मेरी नजर के सामने आएगी वह क्वाँरी ही गर्भवती हो जाएगी।" ३९ जिस-जिस लड़की के कान में यह कुरीति की बात पड़ी, वह फिर उन मुनि के सामने

कन्या कहल कहू हे तात। करब न वचनक प्रत्याख्यात ॥ ६९ ॥
ब्रह्म-कुलोद्भव वर करु वरण। तनय हयत सभ सङ्कट-हरण ॥ ७० ॥
धनदक सदृश रूप-सम्पन्न। करु गय पुनि पुत्र उत्पन्न ॥ ७१ ॥
विश्रवाक से आश्रम जाय। ठाढ़ि भेलि चिर समय लजाय ॥ ७२ ॥
धरणी लिखथि चरण सौं ठाढ़ि। चिन्ता एकाकिनि मन बाढ़ि ॥ ७३ ॥
अये के अहँ मुनि पुछल कि काज। कर जोड़ि कहल रहल नहि व्याज। ७४॥
ध्यानहिँ विदित हयत वृत्तान्त। आइलि छी एकसरि एकान्त ॥ ७५ ॥
मुनि कहलनि कयलहु उत्पात। पुत्रार्थिनि मानल हो ज्ञात ॥ ७६ ॥
अयिलिहु आश्रम दारुण काल। दारुण दुइ सुत लाभ विशाल ॥ ७७ ॥
कहल केकसी अति अन्याय। लोह सुवर्ण परशमणि पाय ॥ ७८ ॥
अपनहुँ सौं जौं एहने हयत। मर्यादा धर्मक उठि जयत ॥ ७९ ॥
मुनि पुन कहलनि सभहिक छोट। महा-भागवत से सुत गोट ॥ ८० ॥
करथि केकसी निज निर्व्वाह। बितल कतो दिन चलल प्रवाह ॥ ८१ ॥
रावण लेल प्रथम अवतार। बीस बाहु दश गोट कपार ॥ ८२ ॥
धरणी - कम्प बहुत उत्पात। कुम्भकर्ण दोसर सुत जात ॥ ८३ ॥

"तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।" ६७-६८ लड़की ने कहा— "हे पिताजी, जो कहना चाहें, कहिये। आपकी बात मैं कभी न टालूँगी।" ६९ पिता ने कहा— "ब्रह्मा के कुल में पैदा हुए महानुभाव को तुम अपना पति बनाओ। उनसे तुम्हें सभी संकटों को दूर करनेवाला बेटा होगा। ७० हे बेटी, तुम इन्हीं धनेश के समान रूपवान् पुत्र जनो।" ७१ यह सुनकर वह लड़की विश्रवा के आश्रम में गई और बहुत देर तक खड़ी रही। ७२ वह पाँव के नाखून से धरती पर लकीरें बनाती। अकेली में उसके मन में चिन्ता की बाढ़ आ गई थी। ७३ मुनि विश्रवा ने पूछा— "अरी, तुम कौन हो? तुम्हें क्या काम है?" लड़की ने हाथ जोड़कर खुलकर सारी बात कह दी— ७४ "आपको तो सारा हाल योगबल से मालूम ही होगा। मैं यहाँ अकेली एकान्त में आई हूँ।" ७५ मुनि ने कहा— 'तुमने तो झंझट पैदा कर दिया। लगता है तुम्हारे मन में पुत्र पाने की कामना है। ७६ तुम दारुण समय में आश्रम में आई हो, इसलिए तुम्हें दो बड़े दारुण पुत्र होंगे।" ७७ उस लड़की केकसी ने कहा— "अजीब बात है। पारस पाकर भी लोहा सोना नहीं होगा? ७८ यदि आपका संग करने से भी ऐसा ही होगा तो धर्म की प्रतिष्ठा क्या रह जाएगी।" ७९ यह सुनकर मुनि ने आगे कहा— "हाँ, जो सबसे छोटा लड़का होगा वह परम भागवत (भगवद्भक्त) होगा।" ८० इसके बाद वह केकसी अपना गुजर करने लगी। कुछ दिन बीते। फिर सन्तान होना शुरू हुआ। ८१ सबसे पहले रावण पैदा हुआ जिसके दस सिर और बीस बाँहें थीं। ८२ उसके जनमते ही धरती काँप उठी तथा और भी

॥ सोरठा ॥

वर विरञ्चि सौं पाबि, ब्रह्म-दत्त पुष्पक चढ़ल ॥ ५४ ॥
विश्रवाक लग आबि, कहल तपस्या-फल सकल ॥ ५५ ॥

॥ चौपाइ ॥

ब्रह्मा देल अखण्डित वित्त । वासस्थान न हमर निमित्त ॥ ५६ ॥
हिंसा-शून्य रहौ जत जाय । देल जाय सुखवास देखाय ॥ ५७ ॥
अछि सुत थल भल अहँइक योग । लङ्का बसू करू धन भोग ॥ ५८ ॥
विश्वकर्म्म - निर्म्मित ओ वास । परक कदापि परत नहि त्रास ॥ ५९ ॥
कहइत छी लङ्का वृत्तान्त । भेल सुरासुर-समर नितान्त ॥ ६० ॥
विष्णुक त्रासित असुर पड़ाय । रहल रसातल जाय नुकाय ॥ ६१ ॥
सागरमध्य पुरी मे वास । कयल धनद सुखमय निस्त्रास ॥ ६२ ॥
रहला बहुत दिन ततहि धनेश । दिन दिन उज्वल भेल सुदेश ॥ ६३ ॥
राक्षस एक सुमाली नाम । अयला एक समय तहिठाम ॥ ६४ ॥
युवती कन्या तनिकाँ सङ्ग । जनु तनु प्रथम निवास अनङ्ग ॥ ६५ ॥
श्रीदेवी सम तनिकर रूप । चिन्तातुर राक्षस चुपचूप ॥ ६६ ॥
पुष्पक चढ़ल धनेश निहारि । राक्षस अपना चित्त विचारि ॥ ६७ ॥
कन्या काँ राक्षस से कहल । तोहरा समय कहय किछु रहल ॥ ६८ ॥

ब्रह्मा के दिये हुए पुष्पक रथ पर चढ़कर अपने पिता विश्रवा के पास आया और अपनी तपस्या का परिणाम उसे बताया। वह बोला— ५४-५५ "ब्रह्मा ने मुझे अक्षय सम्पत्ति तो दे दी, पर मेरे लिए कोई वासस्थान नहीं दिया। ५६ जहाँ जाकर मैं निष्कंटक रहूँ, ऐसा सुखद वासस्थान कृपया बता दीजिए।" ५७ विश्रवा ने कहा— "हे पुत्र, तुम्हारे ही योग्य एक अच्छा स्थान है लंका। वहाँ जाकर बसो और वर में मिली सम्पत्ति का भोग करो। ५८ वह नगर विश्वकर्मा का बनाया हुआ है। वहाँ कभी शत्रु से डर नहीं है। ५९ सुनो, मैं लंका का इतिहास बताता हूँ। एक समय देवों और दानवों में भारी लड़ाई हुई। ६० विष्णु से डरकर दानव भाग गये और रसातल में जा छुपे। ६१ कुबेर ने समुद्र में एक वासस्थल बनाया जो सुखद भी था और निरापद भी। ६२ कुबेर बहुत दिनों तक वहीं रहे। वह स्थान दिन-पर-दिन उजागर होता गया। ६३ एक दिन सुमाली नाम का एक राक्षस वहाँ आया। ६४ उसके पास एक सयानी लड़की थी। वह बड़ी सुन्दरी थी, मानो कामदेव ने प्रथम-प्रथम उसी के शरीर में निवास किया हो। ६५ उसका रूप भगवती लक्ष्मी के समान था। और वह सुमाली राक्षस चिन्ता में मग्न गुमसुम वहाँ बैठा था। ६६ उसने पुष्पक विमान पर कुबेर को देखा और अपने मन में कुछ सोचकर अपनी लड़की से कहा—

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

अथ एक समय तहाँ वित्तेश। राजित पिता वास जहि देश॥ १ ॥
पुष्पक चढ़ल भानु-सम राज। राज-राज सम्राज विराज॥ २ ॥
तनिकर विभव देखल सतमाय। नाम केकसी अवसर पाय॥ ३ ॥
रावण काँ से देल देखाय। कतय अहाँ कहाँ धनपति भाय॥ ४ ॥
करु गय सुत अहँ तेहन उपाय। होउ हुनक सन कर्म्म बढ़ाय॥ ५ ॥
सुनि रावण मन बाढ़ल कोप। कयल प्रतिज्ञा मन आरोप॥ ६ ॥
तनि सन होयब हम की बाढ़ि। करब तपस्या साहस गाढ़ि॥ ७ ॥
माता मन नहि चिन्ता करब। मनस्ताप समटा हम हरब॥ ८ ॥
रावण सानुज बनि मुनिवर्ण। फल सिध्यर्थ गेला गोकर्ण॥ ९ ॥
तप दुष्कर मे दृढ़ मन धयल। निज निज नियम तिनू जन धयल॥ १० ॥
दश हजार गत भय गेल वर्ष। कुम्भकर्ण तप कयल सहर्ष॥ ११ ॥
कयल विभीषण तप बड़ गाढ़। एक चरण-भर रहला ठाढ़॥ १२ ॥
बष बीति गेल पाँच हजार। सत्य-धर्म्म-रत सद्व्यवहार॥ १३ ॥

दूसरा अध्याय

रावण आदि की तपस्या, वर पाना तथा विवाहादि वृत्तान्त

एक समय धनेश पुष्पकविमान पर चढ़कर सूरज के समान चमकते हुए वहाँ विराजमान थे जहाँ पिता ने उन्हें वास दिया था। १-२ मौका पाकर उनकी सौतेली माता केकसी ने उनका वैभव देखा। ३ उसने अपने पुत्र रावण को दिखाया और कहा— "कहाँ तुम और कहाँ तुम्हारा भाई धनेश। ४ हे पुत्र, तुम भी ऐसा उपाय करो जिससे तुम अपने कर्म के बल पर उनकी बराबरी कर सको।" ५ यह सुनकर रावण का मन आन से भर गया। उसने मन में दृढ़ संकल्प किया— ६ "मैं उनके समान क्या, गाढ़ी तपस्या और साहस करके उनसे अधिक उन्नति कर दिखाऊँगा। ७ हे माता, तुम मन में चिन्ता मत करना। मैं तुम्हारे मन का सारा सन्ताप दूर करूँगा।" ८ छोटे भाई कुम्भकर्ण और विभीषण के साथ रावण मुनि का वेश धारणकर अपनी कामना पूरी करने के लिए गोकर्ण नामक तीर्थ गया। ९ तीनों अपने-अपने नियमों का पालन करते हुए कठोर तपस्या में लग गये। १० दस हज़ार वर्ष बीत गये, कुम्भकर्ण अथक रूप से तप करता रहा। ११ विभीषण ने तो उससे भी कड़ी तपस्या की। वे एक ही टाँग पर खड़े रह गये। १२ पाँच हज़ार वर्ष बीत गये। वे सच्चे धर्म में लगे और अच्छा व्यवहार करते

पर्व्वत सन तन कहल न जाय। देखितहिं के नहि लोक डराय ॥ ८४ ॥
सूर्प्पनखा भेली उतपन्नि। जेहने भाय तेहनि अनमन्नि ॥ ८५ ॥
लेल विभीषण वर अवतार। अतिसुन्दर सुन्दर व्यवहार ॥ ८६ ॥
कर्म्म - परायण नियताहार। स्वाध्यायी से परमोदार ॥ ८७ ॥
जन - भय - कर रावण तन बाढ़। कुम्भकर्ण पर्व्वत सन ठाढ़ ॥ ८८ ॥
सञ्चर ऋषिगण कों धय खाथि। कुम्भकर्ण नहि कतहु अघाथि ॥ ८९ ॥
कहल राम कों गत वृत्तान्त। कि कहब अपने लक्ष्मीकान्त ॥ ९० ॥
साक्षी सर्व्व हृदय मे वास। नित्योदित निर्म्मल निस्त्रास ॥ ९१ ॥
प्रभु सर्वज्ञ कहल किछु आबि। अपनेंक दयादृष्टि कें पाबि ॥ ९२ ॥

॥ सोरठा ॥

अति प्रसन्न-मन राम, कुम्भज मुनि सौं से कहल ॥ ९३ ॥
अपनहुं छी निष्काम, हमर कृपा निर्भय सदा ॥ ९४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

बहुत-सारे अपशकुन हुए। दूसरा बेटा कुम्भकर्ण हुआ। ८३ उसका शरीर पर्वत-जैसा विशाल था; कौन ऐसा होगा जो देखते ही डर न जाए। ८४ उसके बाद सूर्पनखा पैदा हुई, जो भयंकरता में हू-ब-हू वैसी ही थी जैसा उसका भाई। ८५ उसके बाद विभीषण ने जन्म लिया जो देखने में भी परम सुन्दर थे और व्यवहार में भी। ८६ वे धर्म में रत रहते, आहार-विहार में संयम बरतते, शास्त्रों का अध्ययन करते रहते और बड़े उदार हृदय के थे। ८७ लोगों को देखते ही डरा देनेवाला रावण का शरीर बढ़ता गया और कुम्भकर्ण पहाड़ के समान खड़ा हो गया। ८८ जहाँ-तहाँ घूमता-फिरता और ऋषियों को पकड़-पकड़कर खाता। कुम्भकर्ण कहीं भी अघाता नहीं।'' ८९ अगस्ति रावण की इतनी पूर्वकथा सुनाकर बोले— ''क्या सुनाऊं, आप तो भगवान् विष्णु के अवतार हैं। ९० सबों के हृदय में साक्षी के रूप में वास करते हैं। सदा प्रकट रहते हैं, निष्कलुष हैं, और निर्भय हैं। ९१ हे प्रभु, आप तो सर्वज्ञ हैं। फिर भी आपकी दयादृष्टि पाकर मैंने आकर कुछ कहा।'' ९२ अगस्ति मुनि से यह सुनकर राम परम प्रसन्न हुए और कहा— ९३ ''आप भी तो साधना द्वारा कामना से रहित हो गये हैं। आप सदा मेरी कृपा से निःशंक रहेंगे।'' ९४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

विधि सन्तुष्ट अमरता देल। सज्जन वचन सत्य शुनि लेल ॥ २८ ॥
कुम्भकर्ण - तट गेला जखन। सुरपति काँ वार्त्ता भेल तखन ॥ २९ ॥
थर थर सकल देव-गण काँप। कुम्भकर्ण बुझि उग्र-प्रताप ॥ ३० ॥
जौं विधि हिनकाँ देल वरदान। एक मुनिक नहि बाँचत प्राण ॥ ३१ ॥
जयता सभ काँ सत्वर खाय। चलु चलु जतय शारदा माय ॥ ३२ ॥
विधि करइत छथि बड़ अन्याय। देवि शारदा होउ सहाय ॥ ३३ ॥
कुम्भकर्ण काँ कण्ठ समाउ। हमरा सभहिक प्राण बचाउ ॥ ३४ ॥

॥ सोरठा ॥

कहल विधाता आबि, कुम्भकर्ण वर माँगु अहँ ॥ ३५ ॥
मन-वाञ्छित फल पाबि, जाउ छोड़ि घर कठिन तप ॥ ३६ ॥
कण्ठ शारदा-वास, कुम्भकर्ण माँगल तखन ॥ ३७ ॥
सभ सुर-मन हो त्रास, की मँगताह विरञ्चि सौं ॥ ३८ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

निद्रा मे बीतय षट मास। एक दिन भोजन विषय-विलास ॥ ३९ ॥
विधि देलनि वर से तहिठाम। हृष्ट देव जपि देवी नाम ॥ ४० ॥

प्रसन्न होकर उन्हें अमर होने का वर दिया। सज्जन विभीषण ने अमर होने की सच्ची बात सुन ली। २८ ज्यों ही ब्रह्मा कुम्भकर्ण के पास पहुँचे त्यों ही इन्द्र को खबर हो गई। २९ सभी देवता लोग भय से काँपने लगे। वे जानते थे कि कुम्भकर्ण का प्रताप बड़ा उग्र है। ३० वे सोचने लगे— 'यदि ब्रह्मा ने इसे वरदान दे दिया तो एक भी मुनि के प्राण न बचेंगे। ३१ यह तो सबको झटपट खा जाएगा। चलिये, अब हम लोग माँ सरस्वती के पास चलें।' ३२ वे सरस्वती के पास जाकर बोले— "ब्रह्मा बड़ा अनर्थ करने जा रहे हैं। हे देवी सरस्वती, आप हमारी मदद कीजिए। ३३ आप कुम्भकर्ण की वाणी में समा जाइए और हम लोगों के प्राण बचाइए।" ३४ ब्रह्मा ने आकर कहा— "हे कुम्भकर्ण, आप वर माँगिये; ३५ मन में जो कामना हो वह पाकर कठोर तपस्या को छोड़ घर चले जाइये।" ३६ गले में जब सरस्वती आकर बैठ गई थी, तब कुम्भकर्ण ने वर माँगा। ३७ सभी देवताओं के मन में आतंक था कि यह ब्रह्मा से क्या न क्या वर माँग लेगा। ३८ उसने यह वर माँगा— "यही वर दीजिए कि मैं छः महीने निद्रा में बिताऊँ, केवल एक दिन भोजन और विषय-भोग करूँ।" ३९ ब्रह्मा ने ऐसा वर तुरत दे दिया। देवता लोग प्रसन्न हो भगवती सरस्वती का नाम जपने लगे। ४० सरस्वती मुँह से निकल गई कि कुम्भकर्ण पछताने लगा। ४१

दिव्य सहस्र वर्ष हठ ठानि। कर तप रावण अन्न न पानि ॥ १४ ॥
एक सहस्र पूर्ण हो वर्ष। होम करथि शिर अनल सहर्ष ॥ १५ ॥
नव सहस्र वत्सर गत काल। नव शिर होम करथि दशभाल ॥ १६ ॥
काटय लगला निज कर माथ। दौड़ि द्रुहिण तनिकर धर हाथ ॥ १७ ॥
वर माँगू रावण हम वृत्त। तप दुष्कर सौं होउ निवृत्त ॥ १८ ॥
होइ अमर वर समरहु मारि। देवासुर सौं कहल विचारि ॥ १९ ॥
नाग सुपर्ण आदि जे यक्ष। समर न हारब हुनक समक्ष ॥ २० ॥
मानव तृण-सम हेतु कि लड़त। बिउटी गजक पाव-तल पड़त ॥ २१ ॥
कहल तथास्तु कयल ततकाल। वत्स सुमुनि अहँ छी दशभाल ॥ २२ ॥
अय गोट कयल होम शिर आगि। सभटा नव नव जायत लागि ॥ २३ ॥
अक्षय हयल जाउ सुख वास। अहँ काँ समक मिटायत त्रास ॥ २४ ॥
गेला बिभीषण भक्त समाज। कहल बिरञ्चि माँगु वर आज ॥ २५ ॥
बिनत बिभीषण जोड़ल हाथ। धर्म्महिँ बुद्धि रहय नित नाथ ॥ २६ ॥
कहल विरञ्चि तथास्तु उदार। रावण - अनुजक सत्याचार ॥ २७ ॥

रहे। १३ रावण तो अन्न और जल को भी त्यागकर देवताओं के वर्ष के हिसाब से हज़ार वर्ष साहसपूर्वक तप करता रहा। १४ हर एक हज़ार वर्ष पूरा होने पर रावण हर्ष के साथ अपना एक सिर काटकर आग में हवन कर देता था। १५ इस तरह नौ हज़ार वर्ष बीत गये और रावण ने अपने नौ सिरों को हवन कर दिया। १६ जब दसवाँ सिर भी इस तरह काटने लगा तब ब्रह्मा दौड़कर आये और उसका हाथ पकड़ लिया। १७ उन्होंने कहा— "हे रावण, आप वर माँगिये। मैं देने के लिए तैयार हूँ। अब आगे कठिन तपस्या छोड़िये।" १८ रावण ने सोच-विचार कर कहा— "ऐसा वर दीजिए कि युद्ध में मुझे न देव मार सकें और न दानव। १९ नाग, सपर्ण, यक्ष आदि जो प्राणी हैं उनके सामने तो मैं लड़ाई में कभी हार सकता नहीं। २० मनुष्य तो मेरे सामने तिनके के बराबर है। वह मुझसे क्या लड़ेगा। उसे तो उसी तरह मसल दूँगा जिस तरह हाथी के पाँव के नीचे चींटी।" २१ ब्रह्मा ने कहा— "ऐसा ही होगा।" और तुरत वैसा कर दिया। फिर बोले— "हे वत्स रावण, आप वास्तव में मुनि हैं। २२ जितने सिरों का आपने हवन किया वे सभी फिर नये सिरे से लग जायेंगे। २३ आप जाइए और अक्षय हो सुखपूर्वक रहिये। आपको किसी का भी डर न रहेगा।" २४ तब ब्रह्मा भक्त विभीषण के पास गये और कहा— "आप वर माँगिये।" २५ विभीषण ने झुककर हाथ जोड़े और कहा— "हे प्रभु, मुझे यही वर दीजिए कि चित्त सदा धर्म में लगा रहे।" २६ दयालु ब्रह्मा ने कहा— "वैसा ही हो।" रावण के छोटे भाई विभीषण की यह सच्चाई है। २७ ब्रह्मा ने

॥ चौपाइ ॥

तखन प्रहस्त कहल तहिठाम। शुनु प्रभु रावण अहँ गुण-धाम ॥ ५६ ॥
शुनल शूर काँ नहि सौभ्रात्र। अतिशय कठिन धर्म्म थिक क्षात्र ॥ ५७ ॥
सुर राक्षस थिक कश्यप-तनय। तनिकाँ एक घड़ी नहि बनय ॥ ५८ ॥
अर्थी काँ किछु अर्थे सूझ। शूर सहोदर काँ नहि बूझ ॥ ५९ ॥
कहइतछी नहि वचन अशुद्ध। देव असुर काँ हेतु कि युद्ध ॥ ६० ॥
रावण वचन गेला पतिआय। मानल मन कहइल अछि न्याय ॥ ६१ ॥
रावण कोप नयन बड़ लाल। कहलनि करब असुर प्रतिपाल ॥ ६२ ॥
ई वृत्तान्त कहल नहि माय। ज्ञात भेल हम करब उपाय ॥ ६३ ॥
गिरि त्रिकूट पर रावण जाय। देलनि दूत प्रहस्त पठाय ॥ ६४ ॥
कहब धनाधिप निकट समाद। हमरा हुनका कोन बिवाद ॥ ६५ ॥
हमरा मातामहक निवास। त्यागथु लङ्का जौँ मन त्रास ॥ ६६ ॥
कहलनि धनपति आबथु बेश। कतहु बसब गय बड़ गोट देश ॥ ६७ ॥
स्वस्ति स्वस्ति रावण लङ्केश। आबथु पुर मे करथु प्रवेश ॥ ६८ ॥
धनपति छोड़ल लङ्कागाम। रावण आबि गेला तहि ठाम ॥ ६९ ॥

मन्त्री प्रहस्त ने तुरत कहा— "हे प्रभु रावण, सुनिए। आप परम गुणवान् हैं। ५६ सुना है कि वीर पुरुष को भाईचारा नहीं होता है। राजा का कर्तव्य क्षात्र-धर्म बड़ा कठिन होता है। ५७ देव और दानव दोनों कश्यप की सन्तति हैं, उनमें आपस में एक घड़ी भी मेल नहीं होता है। ५८ जो अर्थ (सांसारिक अभ्युदय) चाहनेवाला है उसे केवल अर्थ दिखाई देता है। वीर पुरुष ऐसा नहीं सोचते कि यह मेरा सगा भाई है।" ५९ रावण ने कहा— "आपका कहना गलत नहीं है। देवों और दानवों में लड़ाई का और कारण क्या है ?" ६० रावण प्रहस्त की बात का कायल हो गया। मन में सोचा कि यह ठीक कहता है। ६१ बस क्या था, रावण का क्रोध जगा। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने कहा— 'मैं असुरों की रक्षा अवश्य करूँगा। ६२ ऐसी बात तो माँ ने कभी नहीं कही। अब मालूम हुआ। मैं प्रतिकार करूँगा।" ६३ ऐसा कहकर रावण त्रिकूट पर्वत पर गया और प्रहस्त को दूत बनाकर भेजा और कहा— ६४ "धनेश के पास मेरा यह संवाद पहुँचाना कि मुझमें और उनमें कोई विवाद तो नहीं है। ६५ लंका मेरे नाना का निवास है। उन्हें यदि मन में मेरा कुछ डर हो तो वे लंका को छोड़ दें।" ६६ ऐसा सुनकर धनेश ने कहा— "अच्छा है, वे आना चाहें तो आवें। देश बहुत बड़ा है। मैं कहीं जाकर बस जाऊँगा। ६७ कल्याण के साथ रावण आवें, लंका के राजा बनें। नगर में प्रवेश करें।" ६८ यह कहकर धनेश ने लंका को छोड़ दिया और रावण वहाँ आ गया। ६९ रावण मन्त्रियों-सहित

बोलि सरस्वति मुख बहराय। कुम्भकर्ण लगला पछताय ॥ ४१ ॥
शुनल सुमाली विधि-वरदान। पलटल हमर भाग्य भगवान ॥ ४२ ॥
प्रहस्तादि कौं सङ्ग लगाय। भय सौं रहित चलल बहराय ॥ ४३ ॥
मिलि मिलि रावण परिचय कहल। वत्स बहुत दिन दुख हम सहल ॥ ४४ ॥
आज पुरल अछि मन-अभिलाष। हरषें कनयित गदगद भाष ॥ ४५ ॥
लङ्कहि छल छी गेलहुँ पड़ाय। अहँक माय कौं एतहि नड़ाय ॥ ४६ ॥
हम दुख सहब अहँक सन नाति। रक्षा करु राखू निज जाति ॥ ४७ ॥
क्रम क्रम सकल चरित से कहल। बड़ सम्पति छल किछु नहि रहल ॥ ४८ ॥
हमरा सबहिं रसातल रहब। अहँक विभव पाबि दुख सहब ॥ ४९ ॥
धनदक ओतय सम्वाद पठाउ। अथवा बल सौं हुनि उपटाउ ॥ ५० ॥
राजा कौं सम्बन्ध कि भाय। राजा दैवक दोसर न्याय ॥ ५१ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

कहल दशमुख कथा शुनि शुनि, थिकथि धनपति भाय ॥ ५२ ॥
ज्येष्ठ गुरुतर बड़ तपस्वी, करब नहि अन्याय ॥ ५३ ॥
हुनक सन के भाय हमरा, देखू आँखि पसारि ॥ ५४ ॥
अछि बनल घर विश्व भरि, अरि कर समर के मारि ॥ ५५ ॥

सुमाली ने सुना कि ब्रह्मा ने अमुक-अमुक वरदान दिये, वह प्रसन्न हो बोला— "भगवान् ने मेरा भाग्य पलट दिया।" ४२ प्रहस्त आदि को साथ लेकर वह बिना किसी डर के निकलकर चल पड़ा। ४३ रावण से बार-बार मिलकर उसने अपना परिचय दिया— "हे वत्स, मैंने बहुत दिनों तक दुख झेला। ४४ आज मेरे मन की कामना पूरी हुई।"— हर्ष से रोते हुए रुँधे गले से वह बोला— ४५ 'मैं लंका में ही था। तुम्हारी माता को वहीं छोड़ मैं भाग गया। ४६ तुम-जैसे नाती के रहते मैं दुख झेलूँ यह ठीक नहीं है। तुम हमारी रक्षा करो और अपने कुल की प्रतिष्ठा बचाओ।" ४७ धीरे-धीरे उसने अपनी सारी कहानी सुनाई— "बहुत धन-सम्पत्ति थी, पर अब तो कुछ नहीं रही। क्या हम लोग रसातल में ही रहेंगे और तुम्हारे विभव को पाकर भी हम लोग दुख झेलते रहेंगे? ४८-४९ धनेश को सवाद दो कि वह हट जाय, अथवा उसे यहाँ से बलपूर्वक हटा दो। ५० राजा का भाईचारा नहीं होता। राजा और दैव का अलग रास्ता होता है।" ५१ यह सुनकर रावण ने कहा— 'धनेश मेरे भाई हैं। ५२ वे मुझसे बड़े हैं, बड़े तपस्वी हैं। उनके प्रति मैं अन्याय नहीं करूँगा। ५३ आँख खोलकर देखिये, उनके समान मेरा कौन भाई है? ५४ संसार भर में घर बहुत जगह बने हुए हैं। इसके लिए शत्रु से लड़ाई में युद्ध करना ठीक न होगा।" ५५ तब

धर्म्मराज शैलूष महान। तनिकाँ कन्या देल भगवान ॥ ८५ ॥
सरमा नाम बिभीषण - दार। सकल सुलक्षण शोभागार ॥ ८६ ॥

॥ सोरठा ॥

पुत्र भेल बलवान, मन हर्षित मन्दोदरी ॥ ८७ ॥
गर्ज्जल मेघ-समान, मेघनाद तेँ नाम छल ॥ ८८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कुम्भकर्ण कह बड़का भाय। निद्रा सौँ ताकल नहि जाय ॥ ८९ ॥
रावण देल गुहा बनबाय। कुम्भकर्ण सुख सुतला जाय ॥ ९० ॥
रावण भ्रमण करय लगलाह। सभटा करथि कर्म्म अधलाह ॥ ९१ ॥
मुनि सज्जन काँ मारथि जाय। रावण करथि बहुत अन्याय ॥ ९२ ॥
धनपति शुनल दशानन कर्म्म। शिव शिव रावण करथि अधर्म्म ॥ ९३ ॥
कहा पठाओल दूत देआय। कह जनु रावण अहँ अन्याय ॥ ९४ ॥
शुनि रावण धनपति दिश टूटि। लेल जीति कत सम्पति लूटि ॥ ९५ ॥
पुष्पक रथक कयल से हरण। खल उपदेश करब थिक मरण ॥ ९६ ॥
यम ओ वरुण पुरी निर्भीति। रावण लेलनि सभ केँ जीति ॥ ९७ ॥
स्वर्ग लोक रावण गेलाह। मघवा युद्धोद्यत भेलाह ॥ ९८ ॥
सकल देव सुरपति संग्राम। रावण काँ बाँधल तेहिठाम ॥ ९९ ॥
से शुनि मेघनाद तत जाय। देल पिताक बांध कटबाय ॥१००॥

थी। ८४ धर्मराज शैलूष के भगवान् की कृपा से एक लड़की हुई थी। उसका नाम सरमा था। वह सभी शुभ लक्षणों से युक्त और सुन्दरी थी। उसका विवाह विभीषण से हुआ। ८५-८६ मन्दोदरी के एक बेटा हुआ। वह प्रसन्न हुई। वह बच्चा बड़ा बलवान था। ८७ जनमते ही वह मेघ की तरह गरजा, इसलिए उसका नाम मेघनाद पड़ा। ८८ कुम्भकर्ण ने कहा—"हे बड़े भाई, मुझे तो नींद से आँखें खुलती ही नहीं हैं।" ८९ रावण ने एक गुफा बनवा दी और कुम्भकर्ण वहाँ जाकर सुख से सो गया। ९० रावण घूमने लगा और सारे कुकर्म करने लगा। ९१ मुनियों और भले लोगों को जा-जाकर मारता और अन्याय करता। ९२ धनेश ने रावण की करनी सुनी कि वह बड़ा पापकर्म कर रहा है। ९३ उसने दूत के द्वारा कहला भेजा— "हे रावण, इस तरह अन्याय मत करो।" ९४ सुनते ही रावण आग-बबूला हो, हमला कर, उसकी सम्पत्ति और पुष्पकविमान छीन लिया। दुष्ट को उपदेश देना मानो मौत को बुलाना है। ९५-९६ उसने यम और वरुण की नगरी में घुसकर सबको जीत लिया। फिर रावण स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्र से भी लड़ने को तैयार हो गया। ९७-९८ इन्द्र के साथ उस लड़ाई में देवों ने मिलकर रावण को वहीं बाँध रखा। ९९ खबर पाकर मेघनाद वहाँ

दशमुख कयलनि लङ्का-वास। मन्त्री सहित रहित-मन-त्रास ॥ ७० ॥
पुछलनि धनद पिता काँ जाय। लङ्का सौँ अयलहुँ बहराय ॥ ७१ ॥
छोड़ि देल रावण काँ धाम। कयल न एक वचन संग्राम ॥ ७२ ॥
जाउ कहाँ से भेद निदेश। कहल पिता जत देव महेश ॥ ७३ ॥
आज्ञा शुनि गेला कैलाश। कयल तपस्या कत दिन बास ॥ ७४ ॥
तुष्ट महेश देल वरदान। अलका तनिकाँ वासस्थान ॥ ७५ ॥
शिव - पालित भेला दिक्पाल। मित्र महेशक भाग्य विशाल ॥ ७६ ॥

॥ सोरठा ॥

सकल लोक सन्ताप, कर रावण निज-गण-सहित ॥ ७७ ॥
दिन दिन बाढ़ प्रताप, निश्शंसय मन नहि मरण ॥ ७८ ॥

॥ चौपाइ ॥

सूर्पनखा काँ भेल विवाह। कालखञ्ज सौँ बड़ उत्साह ॥ ७९ ॥
विद्युज्जिह्व तनिक छल नाम। मायाविनि बड़ लङ्कागाम ॥ ८० ॥
मय देल रावण कन्या दान। मन्दोदरी नाम सविधान ॥ ८१ ॥
देलनि अमोघ शक्ति कर जाय। दितिसुत रावण जानि जमाय ॥ ८२ ॥
वैरोचन दौहित्री आनि। कुम्भकर्ण काँ देल सम्मानि ॥ ८३ ॥
वृत्रज्वाला कन्या नाम। लोक विदित छल अछि सभ ठाम ॥ ८४ ॥

निःशंक हो लंका में रहने लगा। ७० उधर धनेश ने पिता से जाकर पूछा—"मैं तो लंका को छोड़ चला आया। ७१ वह स्थान रावण के लिए छोड़ दिया। एक शब्द भी विवाद नहीं किया। ७२ अब आज्ञा दीजिए कि मैं कहाँ जाऊँ?" पिता ने कहा—"वहाँ जाओ जहाँ भगवान् शिव हैं।" ७३ पिता की आज्ञा सुनकर वे कैलास चले गये। बहुत दिनों तक वहाँ रहते हुए तपस्या की। ७४ शिव ने प्रसन्न हो उन्हें वरदान दिया कि उन्हें निवास के लिये अलकापुरी मिलेगी। ७५ शिव का संरक्षण पाकर वे दिक्पाल बन गये शिव के मित्र हुए और उनका भाग्य चमक गया। ७६ इधर अपने दल-बल सहित रावण सभी लोगों को सताने लगा। ७७ उसका पराक्रम दिन-पर-दिन बढ़ता गया। उसके मन में मरण की कोई आशंका न रही। ७८ सूर्पनखा का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ कालखंज से हुआ। ७९ उस कालखंज का नाम विद्युज्जिह्व (बिजली-सी जीभ वाला) था। लंका जादू की नगरी थी। ८० मय ने मन्दोदरी नाम की अपनी बेटी विधानपूर्वक रावण को दी। ८१ दिति के पुत्र मय ने जमाई समझकर रावण को अपनी अमोघ शक्ति (कभी न चूकनेवाली बरछी) दी। ८२ वैरोचन ने अपनी दौहित्री (नातिन) को सम्मानपूर्वक कुम्भकर्ण के साथ ब्याह दिया। ८३ उस कन्या का नाम वृत्रज्वाला था। वह इस नाम से सब जगह विख्यात

कुम्भकर्ण गिरि-सन्निभ जीति । राखल विश्व चिरन्तन रीति ॥ ११६ ॥
अपनें नारायण भगवान । विभु बिश्वम्भर सर्व्वनिदान ॥ ११७ ॥
नाभिकमल ब्रह्मा उत्पन्न । मुख सौं अग्नि वचन सम्पन्न ॥ ११८ ॥
बाहुयुगल सौं सभ जन-पाल । नयनें रवि शशि भेला विशाल ॥ ११९ ॥
दिशा विदिश कर्णहि सौं जात । घ्राण सौं प्राण वायु विख्यात ॥ १२० ॥
तथा अश्विनी युगल कुमार । जङ्घादिक सौं लोकप्रचार ॥ १२१ ॥
भेल उदर सौं सागर चारि । स्तन सौं वरुण तथा पाकारि ॥ १२२ ॥
बालखिल्य - गण भेल उत्पन्न । ऊर्द्धरेत सद्गुण - सम्पन्न ॥ १२३ ॥
भेल मेढ़ सौं यम-उतपत्ति । गुद सौं मरणक सर्व्व विपत्ति ॥ १२४ ॥
अहँक कोप रुद्रक अवतार । अस्थि सौं पर्व्वत अति विस्तार ॥ १२५ ॥
कच सौं जलद रोम सौं सर्व्व । औषधि भेल अनन्त निखर्व्व ॥ १२६ ॥
नख - संजात स्वरादिक भेल । अपनें विश्वरूपता लेल ॥ १२७ ॥
स्थावर जङ्गम जत संसार । सभ अपनहिं बाहर व्यवहार ॥ १२८ ॥

॥ दोहा ॥

अपनेक बल पिब अमृत सुर, सकल यज्ञ मे जाय ॥ १२९ ॥
भासमान रवि चन्द्रमा, अपनेंक भा कौं पाय ॥ १३० ॥

को लक्ष्मण ने मारा । ११५ पर्वत के समान विशालकाय कुम्भकर्ण को जीतकर राम ने विश्व में सनातन परम्परा की रक्षा की । ११६ आप भगवान् नारायण हैं। आप सर्वव्यापी हैं, सारे विश्व का पालन करनेवाले हैं, और सबों का मूल-कारण हैं । ११७ आपके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, मुँह से अग्नि उत्पन्न हुए हैं. और वाणी उत्पन्न हुई हैं । ११८ आपकी दोनों बाँहों से इन्द्र आदि लोकपाल उत्पन्न हुए हैं, आँख से सूर्य और चन्द्र उत्पन्न हुए हैं । ११९ आपके कान से आठों दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं और नाक से प्राणवायु उत्पन्न हुए । १२० आपकी जाँघ से अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए हैं, यह सर्व-विदित है । १२१ आपके पेट से चार समुद्र हुए, स्तन से वरुण और इन्द्र हुए १२२ सभी बालखिल्य उत्पन्न हुए जो अखंड ब्रह्मचारी हैं और सभी सद्गुणों से युक्त हैं । १२३ आपके लिंग से यम उत्पन्न हुए तथा गुद से मृत्यु की सभी उपाधियाँ पैदा हुईं । १२४ आपके क्रोध से रुद्र का अवतार हुआ, और आपकी हड्डी से विशाल पर्वत हुए । १२५ आपके बाल से बादल हुआ और आपके रोम से अनगिनत अरबों-खरबों वनस्पति । १२६ आपके नख से स्वर्ग आदि हुए । इस प्रकार आप विश्वरूप हुए । १२७ संसार में जो भी चल और अचल वस्तुएँ हैं, सभी आप ही की बाह्य व्यावहारिक सत्ता है । १२८ देवगण आप ही के बल पर सभी यज्ञों में जाकर अमृत पीते हैं । १२९ आप ही की चमक पाकर सूरज और चाँद प्रकाश देते हैं । १३० आप सर्वत्र

गञ्जन बन्धन बापक हेरि। देवराज कौं बाँधल फेरि ॥ १०१ ॥
सुरपति बान्धल सङ्ग लगाय। पिता सहित हर्षित पुर जाय ॥ १०२ ॥
ब्रह्मा अयला बुझि अन्याय। सुरपति कौं देल बाँध फोआय ॥ १०३ ॥
वर दय ब्रह्मा अपना धाम। गेला जखना हे प्रभु राम ॥ १०४ ॥
रावण बहुत लोक कौं जीति। रण साहस से कयल अनीति ॥ १०५ ॥
भुज उठाय लेल गिरि कैलास। सकल लोक कौं बाढ़ल त्रास ॥ १०६ ॥
नन्दीश्वर तत देलथिनि शाप। रावण तोहरा बाढ़ल पाप ॥ १०७ ॥
हयतौ नर-वानर-कर मरण। काज न अयतौ दुष्टाचरण ॥ १०८ ॥
अति उन्मत्त गेला एक काल। हैहयपट्टन गर्व्व विशाल ॥ १०९ ॥
रावण कौं से बाँधल तत्य। बहु अन्याय फलित हो कतय ॥ ११० ॥
तत पुलस्त्य मुनि तहि चल जाय। कहि सुनि कें देल बाँध कटाय ॥ १११ ॥
बालिक ओतय कयल बल लाख। ओ धय राखल अपना काँख ॥ ११२ ॥
चारु समुद्र समुद्र घुमाय। षन्मासावधि देल अटकाय ॥ ११३ ॥
बड़ दुख काटल धयले धयल। बहरयला मिलि मैत्री कयल ॥ ११४ ॥
मारल रावण कौं प्रभु राम। रावणि कौं लक्ष्मण संग्राम ॥ ११५ ॥

दौड़ा और पिता को बन्धन से मुक्त किया। १०० अपने पिता को गंजन करने और बाँधने का बदला चुकाने के लिए उसने इन्द्र को बाँध दिया। १०१ बँधे हुए इन्द्र को साथ लगाये पिता-सहित सहर्ष लंकापुरी आया। १०२ रावण ने ऐसा अन्याय किया। यह खबर पाकर ब्रह्मा वहाँ आये और इन्द्र को बन्धन से छुड़ाकर ले गये। १०३ हे राम, जबसे ब्रह्मा रावण को वर देकर ब्रह्मलोक गये, तबसे उसने साहस के साथ लड़ाई ठानकर बहुतों को जीतता और अन्याय करता रहा। १०४-१०५ कैलास पर्वत को अपनी बाँहों पर उठा लिया और उस पर रहनेवाले सभी त्रस्त हो उठे। १०६ वहाँ शिव के वृषभ नन्दीश्वर ने रावण को शाप दिया—"अरे रावण, तुम्हारा पाप बढ़ता जा रहा है। १०७ नरों और वानरों से तुम्हारी मौत होगी। कोई भी दुष्टतापूर्ण कुकर्म काम नहीं देगा।" १०८ एक समय वह मतवाला होकर भारी घमंड के साथ हैहयपट्टन गया। १०९ वहाँ राजा हैहय ने उसे बाँध रखा। अन्याय बहुत बार नहीं फबता। ११० फिर पुलस्त्य मुनि को खबर हुई तो वे वहाँ गये और हैहय से अनुनय-विनय करके उसे बन्धन से छुड़ाया। १११ फिर वह बाली के पास अपना बाहुबल दिखाने गया। उन्होंने बगल में दबाकर रख लिया। ११२ वे उसे बगल में लिये चारों समुद्र घुमा लाये और छः महीनों तक बगल में दबाये रखे। ११३ जब बगल में दबे-दबे बहुत कष्ट झेला तब बाली से दोस्ती करके उसकी बगल से निकला। ११४ रावण को युद्ध में राम ने मारा और रावण के पुत्र मेघनाद

योगारूढ़ शारदानाथ। आनन्दाश्रु बहल लेल हाथ॥ ५ ॥
से कर धयलहि धयलनि ध्यान। त्याग कयल पुन चरित के जान॥ ६ ॥
तहि सौं जनमल भल कपिराज। कहल विधाता बसह समाज॥ ७ ॥
किछु दिन बितलय हयतौ नीक। सुखित रहह किछु दिन निर्भीक॥ ८ ॥
यहिमत गत भेल बहुतो वर्ष। ऋक्षाधिप रह सतत सहर्ष॥ ९ ॥
भ्रमयित गिरिवर फल-मूलार्थ। विधि-निवास मे सकल पदार्थ॥ १० ॥
वापी एक पड़ल तनि दृष्टि। मणिमय तत जल अमृतक सृष्टि॥ ११ ॥
करय ततय गेला जलपान। दृष्टि पड़ल प्रतिबिम्ब समान॥ १२ ॥
भ्रम अन्तर अछि के ई आन। कुदि पड़ला जल कपि अज्ञान॥ १३ ॥
बहरयला पुन जल सौं फानि। स्त्री बनला पुरुषत्वक हानि॥ १४ ॥
अति विस्मय मन होइन्हि लाज। कि कहब ककरा रहित समाज॥ १५ ॥
पूजि चतुर्मुख कौं अमरेश। दुइ पहर दिन चलला देश॥ १६ ॥

का सुमेरु पर्वत है जिसकी चोटी बहुत ऊँची है। इसका मध्यक्षेत्र रत्नमय है और सौ योजन फैला हुआ है। ४ यहाँ सरस्वती के पति ब्रह्मा योग की समाधि लगाये थे। उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बहे। आँसू को उन्होंने हाथ में ले लिया। ५ वे उसे हाथ में लिये ही फिर ध्यान में डूब गये और उस आँसू को छोड़ दिया। उन लोगों के आचरण का अर्थ कौन जान सकता है? ६ उससे एक श्रेष्ठ बन्दर का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने उससे कहा— "बन्दरों के अपने दल में तुम यहाँ रहो। ७ कुछ दिन बीतने पर तुम्हारा अभ्युदय होगा। कुछ दिनों तक निर्भय हो आनन्द से यहाँ रहो।" ८ इस प्रकार बहुत-से वर्ष गुजर गये। वह बन्दरों के दल का प्रधान होकर आनन्द से रहता। ९ पर्वतों पर घूम-घूमकर फल-मूल खाता। ब्रह्मा के इस आलय में सभी वस्तुएं सुलभ थीं। १० एक दिन वहाँ उसे एक वापी दिखाई पड़ी। यह रत्नों की बनी थी और इसमें अमृत-सा पानी था। ११ वह उसमें पानी पीने गया कि उसे कुछ परछाईं-सी नजर आई। १२ उसने सोचा— चित्त में भ्रम तो नहीं हो रहा है? यह दूसरा कौन है? फिर वह नासमझ बन्दर उस पानी में कूद पड़ा। १३ छलाँग मारकर पानी से निकला तो वह स्त्री बन गया। उसका पुरुषत्व जाता रहा। १४ उसके मन में भारी विस्मय होने लगा और वह लजाने लगा। उसने सोचा, किसे क्या कहूँ, यहाँ तो समाज का कोई नहीं है। १५ उधर देवताओं के राजा इन्द्र ब्रह्मा की पूजा करने वहाँ आये और पूजा समाप्त कर दुपहर में अपने घर चले। १६ उन्होंने उस रमणी को देखा। देखते ही कामविह्वल हो गये।

सर्व्वंग नित्य अनन्त प्रभु, ज्ञान-बिलोचन-दृष्ट ॥ १३१ ॥
नहि देखथि अज्ञान-दृग, रवि कां लोचन-मृष्ट ॥ १३२ ॥
देखथित छथि निज देह मे, योगीजन परमेश ॥ १३३ ॥
भक्ति-भावना ज्ञान-बल, सकल वस्तु सभ देश ॥ १३४ ॥

॥ सोरठा ॥

क्षमब सकल अपराध, प्रभुक अनुग्रहवान हम ॥ १३५ ॥
विरहित मायाबाध, अपनें सेवा-निरत रहि ॥ १३६ ॥
वारंवार प्रणाम, कयल सकल मुनि मिलि तलय ॥ १३७ ॥
कयल बचन बिश्राम, रामक छवि देखथि सतत ॥ १३८ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-बिरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

कहु सानुज बालिक उतपत्ति। जनिका छल अति बल सम्पत्ति॥ १ ॥
रावण तनि तट तृणक समान। बालिक सदृश शूर के आन॥ २ ॥
राम-प्रश्न मुनि शुनल अगस्त्य। चरित कहय लगलाह प्रशस्त्य॥ ३ ॥
कनक-सुमेरु शिखर बड़ गोट। शतयोजन मणिमय सब कोट॥ ४ ॥

पहुँचनेवाले हैं, सदा रहनेवाले हैं, अन्तहीन हैं। आपके दर्शन केवल ज्ञान रूपी आँख से होते हैं। १३१ जिसकी आँख में अज्ञान (माया) की पट्टी बँधी रहती है वह आपको उसी तरह नहीं देखता जिस तरह अन्धा सूर्य को। १३२ योगी लोग अपने शरीर में ही आपको भक्ति और ज्ञान के बल से सभी वस्तुओं और स्थानों में परमेश्वर-रूप में देखते हैं। १३३-१३४ हे प्रभु! आप हम सबों का अपराध क्षमा करेंगे। हम आपसे अनुगृहीत हैं।" १३५ आप हमें माया के बन्धन से अलग करके अपनी सेवा में लगाइए। १३६ वहाँ सभी मुनियों ने मिलकर बार-बार प्रणाम किया और निरन्तर राम की झाँकी देखते मौन हो गये। १३७-१३८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-बिरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

वाली और सुग्रीव के जन्म आदि की कथा; सनत्कुमार द्वारा रावण को उपदेश

राम ने पूछा— "अब अनुज सुग्रीव-सहित वाली के जन्म की कहानी सुनाइये, जो परम शक्तिशाली थे। १ वाली के सामने रावण तो तिनके के बराबर था। वाली के समान शूर और कोई नहीं है।" २ राम का यह प्रश्न सुनकर अगस्त्य मुनि वाली का प्रशंसनीय चरित सुनाने लगे। ३ सोने

तनिकर सभ कपि करब सहाय। देवदूत देल कथा बुझाय ॥ ३३ ॥
विधि सौं जेहन बुझल ओ दूत। कपिपति तनक कयल पुरहूत ॥ ३४ ॥
तेहि दिन सौं किष्किन्धा वास। बालि प्रभृति छल छथि निस्त्रास ॥ ३५ ॥
विधि प्रार्थित अपन परमेश। भूमि-भार टारल अकलेश ॥ ३६ ॥
ब्रह्म अखण्डानन्द-स्वरूप। कोन पराक्रम नरवर भूप ॥ ३७ ॥
तदपि भक्तजन वर्णन करथि। गुणगण गाबि दुःख सौं तरथि ॥ ३८ ॥
जे कीर्त्तन कर कपिपति-जनन। कथा तनिक हो पातक-हनन ॥ ३९ ॥
अब हम कथा कहै छी आन। श्रीरघुनन्दन सुनु दय कान ॥ ४० ॥
रावण कयलनि सीता - हरण। प्रकट तकर फल दुर्गति मरण ॥ ४१ ॥
सनत्कुमार प्रजापति - तनय। कृतयुग रावण कयलनि विनय ॥ ४२ ॥
कयल प्रणाम जोड़ि बिश हाथ। प्रभु सर्व्वज्ञ कहल हो नाथ ॥ ४३ ॥
जनिकर जनन मरण नहि एक। भर्त्ता विश्वक विशद विवेक ॥ ४४ ॥
जनिकर बल सौं सुर-समुदाय। शत्रु जित छथि अमर कहाय ॥ ४५ ॥
यजन करै छथि द्विजगण जकर। योगी ध्यान करै छथि जकर ॥ ४६ ॥
ई सभ संशय सनत्कुमार। कहल जाय प्रभु परमोदार ॥ ४७ ॥

कपि मिलकर उनकी सहायता करें।" इस प्रकार ब्रह्मा ने देवदूत को सारी बात समझा दी। ३३ ब्रह्मा ने जैसा समझाया उसी के अनुसार कपिपति को किष्किन्धा का सम्राट् बना दिया। ३४ उसी दिन से बाली आदि कपि किष्किन्धा में निःशंक वास करते रहे हैं। ३५ हे परमेश्वर, आपने ब्रह्मा की प्रार्थना से धरती के भार को अनायास दूर किया। ३६ आप अखड आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। पुरुषश्रेष्ठ राजा होकर आपने जो पराक्रम किया वह कौन बड़ी बात है? ३७ फिर भी भक्त लोग आपके इस पराक्रम का वर्णन करते हैं और आपके गुणों को गा-गाकर दुःख से छुटकारा पाते हैं। ३८ जो सुग्रीव के जन्म की कथा का कीर्तन करेंगे, उनके सभी पाप दूर हो जाएंगे। ३९ अब मैं दूसरी कथा सुनाता हूँ। हे राम, आप ध्यान देकर सुनिये। ४० रावण ने सीता का हरण किया। इसका उसे प्रत्यक्ष कुपरिणाम मिला। उसकी दुर्दशा हुई और अन्त में वह मारा गया। ४१ सत्ययुग में रावण ने ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार से प्रार्थना की। ४२ उसने बीसों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा— "हे प्रभु, आप सब जाननेवाले हैं। हे नाथ, कहिए कि वे कौन हैं, ४३ जिनका न कभी जन्म होता है और न मरण; जो विश्व भर का भरण करते हैं, और जो असन्दिग्ध रूप से ज्ञानी हैं; ४४ जिनके बल से देवता लोग सदा अपने दुश्मनों से जीतते हैं और अमर कहलाते हैं; ४५ द्विज लोग जिनका यज्ञ करते हैं, और योगी लोग जिनका ध्यान करते हैं? ४६ हे प्रभु, परम उदार सनत्कुमार जी, इन संशयों को आप कृपा कर दूर

॥ सोरठा ॥

देखल से वर नारि, काम-विवश सुरपति तनय ॥ १७ ॥
नहि शकलाह सम्भारि, बीज-पतन हुनि बाल पर ॥ १८ ॥
जन्म लेल एक बाल, बालहिं सौँ सज्ञा तनिक ॥ १९ ॥
बालि भेल तत्काल, स्वर्णमाल दय हरि चलल ॥ २० ॥
रविहुक तेहने हाल, बीज तनिक ग्रीवा खसल ॥ २१ ॥
जनमल बाल बिशाल, ग्रीवा सौँ सुग्रीव तैँ ॥ २२ ॥
देलनि तनि रक्षार्थ, हनूमान कँ भानु तत ॥ २३ ॥
वन-फलादि भक्ष्यार्थ, बहुत देखि रवि नभ चलल ॥ २४ ॥

॥ चौपाइ ॥

युगल पुत्र लेल सङ्ग लगाय। सुति रहली कहुँ से अलसाय ॥ २५ ॥
भेल प्रात जौँ निद्रा भङ्ग। पुन बनि गेला पूर्व्वक रङ्ग ॥ २६ ॥
युगल बाल सङ्ग बहु फल मूल। प्राप्त ततय जत विधि अनुकूल ॥ २७ ॥
देल विधाता बड़ आश्वास। कोशराज कँ भेल विश्वास ॥ २८ ॥
विधि एक अमर दूत बजबाय। कहलनि किष्किन्धा से जाय ॥ २९ ॥
कपिपति होथि तहाँ महाराज। सत्वर कर गय ई गोट काज ॥ ३० ॥
सकल द्वीप जे वानर लोक। हिन कपिपति-वस-वर्त्ति विशोक ॥ ३१ ॥
रामक जखन हयत अवतार। असुर-विनाश हरण महि-भार ॥ ३२ ॥

वे अपने को सँभाल न सके। उस रमणी के बाल पर उनका वीर्य गिर पड़ा। १७-१८ इससे एक बच्चा पैदा हुआ। इसलिए इसका नाम 'वाली' पड़ा। इन्द्र उस स्त्री को सोने का हार देकर चले गये। १९-२० सूर्य का भी वही हाल हुआ। उनका वीर्य ग्रीवा पर गिरा। २१ उससे एक विशाल बच्चा पैदा हुआ, इसलिए उसका नाम 'सुग्रीव' पड़ा। २२ उस बच्चे की रक्षा के लिए सूर्य ने हनुमान को नियुक्त किया और वन में फल-मूल आदि खाद्य-पदार्थ प्रचुर देखकर सूर्य आकाश में चले गये। २३-२४ दोनों पुत्रों को साथ लेकर माता अलसाकर कहीं सो गई। २५ सुबह जब आँखें खुलीं तो वह फिर पहले की भाँति बन्दर बन गई। २६ दोनों बच्चे साथ में थे। प्रचुर कन्द, मूल, फल सुलभ थे। जहाँ विधि अनुकूल हो वहाँ क्या न सुलभ हो? २७ ब्रह्मा ने बहुत बड़ा आश्वासन दिया था, इससे उस बन्दर को विश्वास था कि अभ्युदय होगा। २८ ब्रह्मा ने एक देव-दूत को बुलाया और उसे आज्ञा दी— "किष्किन्धा जाओ और २९ तुरत ऐसा काम करो जिससे ये कपिवर वहाँ के महाराज हो जाएँ। ३० सभी द्वीपों में जितने भी बन्दर हैं वे सभी इन कपि के वश में आ जाएँ और सुख से रहें। ३१ जब राम असुरों का नाश कर धरती का भार दूर करने के लिए अवतार लेंगे, ३२ तब सभी

तनिक स्वरूप कहै छी आज। स्थावर जङ्गम सभ सम्राज ॥ ६४ ॥
एक वस्तु नहि हुनि सौं हीन। अन्तर अन्तर सभ मे लीन ॥ ६५ ॥
नद ओ नदी जलधि जत नीर। पर्व्वत पृथिवी गगन शरीर ॥ ६६ ॥
ओ सावित्री ओ ओङ्कार। ओ पुन सत्य समस्ताधार ॥ ६७ ॥
कच्छप शेष धरणिधर जतेक। अनल आदि जत ओ प्रभु एक ॥ ६८ ॥
जे जे पड़यिछ अहँ का दृष्टि। से सभटा थिक से प्रभु सृष्टि ॥ ६९ ॥
ओ प्रभु सकल चराचर व्याप्त। हुनकहि मे पुन अन्त समाप्त ॥ ७० ॥
नीलोत्पलदल - सुन्दरश्याम। चपला - वर्णाम्बर अभिराम ॥ ७१ ॥
जम्बूनद-रुचि श्री तन वाम। प्रेम परस्पर प्रभु गुणधाम ॥ ७२ ॥
हिनका देखि शकथि नहि आन। ओ प्रभु अपनहि अपन समान ॥ ७३ ॥
हुनकर भक्त ततहि रत-प्राण। ततहि निरन्तर मन सज्ञान ॥ ७४ ॥
मननादिक सौं निर्म्मल नयन। तनिका हृदय करथि प्रभु शयन ॥ ७५ ॥
जौं अछि हुनकर दर्शन काज। त्रेता मे हयता रघुराज ॥ ७६ ॥

जो बात आई है वह ठीक है। ६२ कुछ दिनों के बाद तुम्हारी यह कामना पूरी होगी। हे रावण, तुम चिन्ता मत करना। ६३ आज मैं उन परमेश्वर का वर्णन करता हूँ। चल या अचल सभी वस्तुओं पर उनका प्रभुत्व है। ६४ एक भी ऐसी चीज नहीं है, जिसमें वे न हों। वे हरेक अन्तःकरण में छुपे रहते हैं। ६५ नद, नदी, समुद्र आदि जो भी जलराशि है, पर्वत, पृथ्वी और आकाश सब उन्हीं का शरीर है। ६६ सावित्री वही हैं, ॐकार वही हैं। सभी वस्तुओं के आधार और सत्य वही हैं। ६७ धरती को धारण करनेवाले कच्छप, शेषनाग आदि भी वही हैं। अग्नि आदि जो तेज हैं, वह भी एक मात्र वही हैं। ६८ तुम्हारी नजर में जो कुछ भी चीज आती है वह सब उन्हीं प्रभु की बनाई हुई है। ६९ वे चल या अचल हर वस्तु में व्याप्त हैं। हर वस्तु प्रलय होने पर फिर उन्हीं में लीन हो जाती है। ७० राम नील-कमल की पंखुड़ी के समान मनोहर साँवले हैं और उनका वस्त्र बिजली-जैसा चमकीला मनोहर पीला है। ७१ बायें में उनकी अर्धांगिनी सीता सुनहले वर्ण की हैं। दोनों में आपस में प्रेम है। हमारे प्रभु राम गुणों का खजाना हैं। ७२ इनको कोई और नहीं देख सकता है। वे प्रभु अपने समान आप अकेले हैं। ७३ उनके भक्तों के प्राण सदा उन्हीं में रमे रहते हैं, उनके मन सदा उन्हीं में लगे रहते हैं। ७४ जिन्होंने श्रवण, मनन आदि साधना द्वारा अपनी दृष्टि को निर्मल बना लिया है उनके हृदय में प्रभु सोये रहते हैं। ७५ अगर तुम उनके दर्शन चाहते हो तो देखना, त्रेता में वे रघुवंशी राजा दशरथ के पुत्र होकर जन्म लेंगे और राजा दशरथ की आज्ञा पाकर यहाँ आकर माया-

॥ सोरठा ॥

शुनि पुन सनत्कुमार, योगदृष्टि सौँ मौन क्षण ॥ ४८ ॥
प्रश्नोत्तर उच्चार, समुचित कयल दशास्य-हित ॥ ४९ ॥
शुनु शुनु सुत लङ्केश, अव्यय नारायण थिकथि ॥ ५० ॥
जतय न दुःखक लेश, विश्वम्भर तनि जन्म नहि ॥ ५१ ॥
तनि बल सौँ संग्राम, अमर जितै छथि योगि पुन ॥ ५२ ॥
ध्यान निरन्तर नाम, करथि जपथि संसृति तरथि ॥ ५३ ॥
पुन पुछलनि दशभाल, दैत्यादिक जे विष्णु सौँ ॥ ५४ ॥
निहत समर वश काल, जाइत छथि कहु कोन गति ॥ ५५ ॥
असुर मरथि सुर-हाथ, से जाइत छथि स्वर्ग-पद ॥ ५६ ॥
शुनु रावण दशमाथ, रहित-पुण्य सौँ महि-पतन ॥ ५७ ॥
विष्णुक हाथ विनाश, जनिकर से हरिगति पहुँच ॥ ५८ ॥
जेहन शुद्धाकाश, निर्म्मल मन नहि वासना ॥ ५९ ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण शुनल मुनिक मुख वचन । मन मन करय लागल भल रचन ॥ ६० ॥
समर करब हम विष्णुक सङ्ग । रावण - मन सङ्कल्प अभङ्ग ॥ ६१ ॥
मुनि जानल रावण मन-वृत्ति । कहलनि भल थल चित्त-प्रवृत्ति ॥ ६२ ॥
सिद्ध अभीष्ट विगत किछु काल । चिन्ता करु जनु मन दशभाल ॥ ६३ ॥

कीजिए।" ४७ सनत्कुमार ने यह सुनकर क्षण भर मौन हो समाधि लगाकर देखा, फिर ४८ रावण के हितार्थ उसका समुचित उत्तर दिया— ४९ "हे वत्स लंकापति रावण, सुनो। वे हैं अव्यय (विकारहीन) नारायण; ५० जिनमें नाम मात्र दुःख नहीं है। वे सारे विश्व का भरण करनेवाले हैं। उनका जन्म नहीं होता। ५१ उन्हीं के बल से देवगण युद्ध में विजय पाते हैं, और योगी लोग सतत उन्हीं का ध्यान करते और नाम जपते संसार-सागर को पार करते हैं।" ५२-५३ फिर रावण ने पूछा— "जो राक्षस आदि विष्णु के हाथों लड़ाई में मरकर काल के वश होते हैं उनकी क्या गति होती है?" ५४-५५ सनत्कुमार ने उत्तर दिया— "हे दशमुख रावण, सुनो। जो कोई राक्षस देवों के हाथों मरते हैं वे स्वर्ग पाते हैं; पुण्य समाप्त होने पर फिर धरती पर गिरते हैं। ५६-५७ जो विष्णु के हाथ से मरते हैं, वे विष्णुलोक पहुँचते हैं। उनका मन वैसा ही निर्मल और वासनाहीन हो जाता है, जैसा बिना बादल-धूल का आकाश।" ५८-५९ रावण ने ऋषि सनत्कुमार के मुँह से यह बात सुनकर मन-ही-मन सोचने लगा कि विष्णु के साथ लड़ाई की जाय। उसने मन में पक्का इरादा कर लिया। ६०-६१ मुनि सनत्कुमार रावण के मन की बात ताड़ गये और बोले— "तुम्हारे मन में

हमर समान कतय बलधाम। जत हम करब घोर संग्राम ॥ ३ ॥
मुनि कहलनि अछि श्वेतद्वीप। पुष्पक-रथ पथ सकल समीप ॥ ४ ॥
विष्णुभक्त वा तत्कर-मरण। श्वेतद्वीप तनिक हो शरण ॥ ५ ॥
एहन सृष्टि नहि दोसर ठाम। जाय सकी तौँ हो संग्राम ॥ ६ ॥
शुनितहिँ रावण कयलनि गमन। हुनकर अनय करय के शमन ॥ ७ ॥
पुष्पक चलनहि द्वीप समीप। उतरि चलल तत असुर-अधीप ॥ ८ ॥
वनिता वृद्धा तनिकाँ धयल। पकड़ि घुमाओल दुर्गति कयल ॥ ९ ॥
के तोँ थिका एतय की काज। ककर पठाओल कह नहि लाज ॥ १० ॥
दशकन्धर उत्तर नहि बाज। महा मनोदुख तनिक समाज ॥ ११ ॥
बड़ अनुचित अयलहुँ एहिठाम। पाओल साहस-फल परिणाम ॥ १२ ॥
जखना पाओल किछु अवकाश। गमहिँ पड़यला बड़ मन त्रास ॥ १३ ॥
धिक अमरत्व कि गञ्जन-ग्रस्त। दशमुख दुख-चिन्ता सौँ व्यस्त ॥ १४ ॥
विष्णुक हाथ मरण से करब। नहि पुनि अमर-समर सञ्चरब ॥ १५ ॥

देश घूमने निकला। १ उसकी नारद मुनि से भेंट हुई। उनके पास जाकर उसने पूछा— २ "हे मुनि, बताइए कि मेरे बराबर शक्तिशाली कहाँ पर है जहाँ जाकर मैं जमकर युद्ध करूँ?" ३ नारद ने कहा— "श्वेतद्वीप ऐसा स्थान है। आपके पुष्पकविमान है, आपके लिए सभी स्थान निकट ही हैं। ४ जो कोई विष्णु के भक्त मरते हैं या जो कोई विष्णु के हाथ से मरते हैं, श्वेतद्वीप उन्ही लोगों का स्थान है। ५ ऐसी सुन्दर सृष्टि और कहीं नहीं है। यदि आप जा सकें तो वहाँ जाकर लड़ाई ठानें।" ६ नारद के मुँह से यह बात सुनते ही रावण चल पड़ा। अन्याय की ओर उसकी प्रवृत्ति को कौन रोक सकता है? ७ पुष्पकविमान उस द्वीप के पास पहुँचते ही चलने में असमथ हो गया, अत: राक्षसराज रावण वहीं उतरकर पदल आगे बढ़ा। ८ वहाँ एक बूढ़ी औरत ने उसे पकड़ लिया और घुमा-घुमाकर उसकी बड़ी दुर्दशा की। ९ उस औरत ने पूछा— "तुम कौन हो? यहाँ किस काम से आये हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? लजाओ मत। बताओ।" १० रावण के मुँह से बोली नहीं निकलती। उस औरत के पास उसके मन में भारी पीड़ा होने लगी। ११ फिर उस औरत ने कहा— "तुमने बड़ी ग़लती की कि यहाँ आये। तुमने अपने दुःसाहस का फल भोगा।" १२ कुछ देर के बाद ज्यों ही मौका मिला, रावण चुपके से वहाँ से भाग निकला। मन मे बड़ा आतंक था। १३ वह सोचने लगा— "धिक्कार है मुझको। गजन सहते हुए अमर बना रहना किस काम का?" रावण व्यथा और चिन्ता में डूब गया। १४ उसने निश्चय किया— "जिससे विष्णु के हाथ मरण हो वसा काम करूँगा। फिर कभी देवताओं से लड़ाई ठानने के लिए नहीं

दशरथ-सुत तनि आज्ञा पाबि । माया - लीला करता आबि ॥ ७७ ॥
निजमाया कौं लयोता सङ्ग । दण्डक-वन मुनिजन-दुखभङ्ग ॥ ७८ ॥
अनुज-सहित वन वन सञ्चरत । कहु कत नरवर लीला करत ॥ ७९ ॥
अहुँ हुनि प्रभु मे भक्ति बढ़ाउ । सभ जनितहिँ छी कते पढ़ाउ ॥ ८० ॥

॥ सोरठा ॥

कहलनि सनत्कुमार, रावण कयल बिचार मन ॥ ८१ ॥
करब विरोध प्रकार, मरब समर कय वीरता ॥ ८२ ॥
रावण हर्षित-चित्त, युद्धार्थी सभ लोक फिर ॥ ८३ ॥
सीताहरण निमित्त, अपनैँक हाथेँ मरण हो ॥ ८४ ॥

॥ दोहा ॥

पढ़थि शुनाबथि शुनथि जे, ईं चरित्र सभ योग्य ॥ ८५ ॥
सुख अनन्त आयुष्य बढ़, बढ़ अनन्त आरोग्य ॥ ८६ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय उन्मद लङ्केश । युद्धार्थी सञ्चर कत देश ॥ १ ॥
नारद मुनि सौँ दरशन पाबि । पुछलनि तनिकाँ तट मे आबि ॥ २ ॥

वश अपनी लीला करेंगे । ७६-७७ वे अपनी माया (सीता) को साथ लिये आवेंगे और दंडकारण्य में मुनियों का दुख दूर करेंगे । ७८ अपने छोटे भाई के साथ वन-वन भटकेंगे और पुरुषोत्तम की बहुत-सी लीलाएँ करेंगे । ७९ तुम भी उन प्रभु की भक्ति करो । तुम तो सब जानते ही हो, कितना पढ़ाऊँ ।" ८० जब सनत्कुमार ने ऐसा कहा तब रावण ने मन में यह निर्णय किया कि उनसे शत्रुता करूँगा और लड़ाई में वीरता करके उनके हाथ मरूँगा । ८१-८२ रावण खुश हो उठा । वह लड़ाई ठानने के लिए दुनिया भर में भटकने लगा । ८३ उसने मन-ही-मन कहा— "हे प्रभु, सीता के हरण को कारण बनाकर मैं आपके हाथ से मारा जाऊँ ।" ८४ जो कोई यह कथा पढ़ेंगे, सुनेंगे या सुनाएँगे उन्हें अपार सुख मिलेगा, आयु बढ़ेगी और आरोग्य बढ़ेगा । ८५-८६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय

रावण का श्वेतद्वीप जाना और पराजित हो राम के हाथ मरने की कामना

एक समय मद से चूर हो लंकापति रावण युद्ध करने की इच्छा से देश-

रथ चढ़ि चढ़ि सभ देश, जाथि करथि सभ लोक सुख ॥ २९ ॥
ककरहु हो न कलेश, हनुमदादि सेवक सतत ॥ ३० ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय द्विज-तनयक मरण। ब्राह्मण कलुषित-अन्तष्करण ॥ ३१ ॥
धर्म्मक पालक श्री रघुनाथ। सकल वस्तु अछि अपनेँक हाथ ॥ ३२ ॥
हम निष्पाप कहल अछि आय। राजा-विषय पड़ल अन्याय ॥ ३३ ॥
पुत्र जिबथि तैँ होउ सहाय। विकल कहै छी करू उपाय ॥ ३४ ॥
लक्ष्मण रामक आज्ञा पाय। शूद्र एक वन देखल जाय ॥ ३५ ॥
विप्रक सन करइत आचरण। लक्ष्मण-कर तनिकर भेल मरण ॥ ३६ ॥
ब्राह्मण - बालक उठि बैसलाह। द्विज से धन्य कहय लगलाह ॥ ३७ ॥
शिव - स्थापना कोटिक कयल। लोका चारक सत्पथ धयल ॥ ३८ ॥
एक समय क्रीड़ा - आराम। सीता - सङ्ग नवल - घनस्याम ॥ ३९ ॥
कहल जानकी प्रभु किछु कहब। कत दिन महिमण्डल मे रहब ॥ ४० ॥

रथ पर सवार हो-होकर सभी इलाकों में जाते थे और इससे सभी लोग सुख पाते थे। २९ किसी को कोई तकलीफ़ न थी। हनुमान आदि सेवक सदा तत्पर रहते थे। ३०

शम्बूक का वध

एक दिन ब्राह्मण का एक बेटा मर गया। ब्राह्मण को भारी शोक हुआ। ३१ उसने राम के यहाँ फ़रियाद किया— "हे राम, आप धर्म के रक्षक हैं। सारी व्यवस्था आप ही के हाथ में है। ३२ मैं कहने के लिए आया हूँ कि मैंने कोई पाप नहीं किया है, फिर यह जो पुत्रशोक हुआ है, वह इसलिए कि राजा ने कोई अन्याय किया है। ३३ ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा बेटा जी जाय। मैं विकल होकर निवेदन करता हूँ। मेरी रक्षा कीजिए।" ३४ यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि देखिये क्या बात है? लक्ष्मण ने पता पाया कि वन में एक शूद्र है, ३५ जो ब्राह्मण का आचरण कर रहा है। लक्ष्मण के हाथ से उसकी मौत हुई। ३६ बस क्या था, ब्राह्मण का वह मरा हुआ बेटा जी उठा। वह ब्राह्मण "धन्य-धन्य" कहने लगा। ३७ राम ने करोड़ों शिवलिंग की स्थापना की और समाज में प्रचलित परम्परा का पालन करते रहे। ३८

लोकापवाद का फैलना और सीता का वनवास

एक समय नये बादल-से साँवले राम सीता के साथ क्रीड़ा-उद्यान में थे। ३९ सीता ने कहा— "हे प्रभु, एक बात कहनी है। इस धरती पर और

तकरे हेतु दशानन जानि। सीता-हरण कयल हठ ठानि ॥ १६ ॥
मातृ-बुद्धि ओ मन मे मानि। हुनि कर मरब असुरता हानि ॥ १७ ॥
त्रिकालज्ञ प्रभु साक्षी राम। अन्त सकल विश्वक विश्राम ॥ १८ ॥
स्तुति अगस्त्य मुनि बहुविध कयल। राम-सुपूजित निज पथ धयल ॥ १९ ॥
सीतासङ्ग विषय - अनुरक्त। भासित बाहर चित्त विरक्त ॥ २० ॥
अनासक्त प्रभु कर गृह-काज। परमेश्वर लीला नर-व्याज ॥ २१ ॥
रामचन्द्र कौं देलनि फेर। पुष्पक रथ पठबाय कुबेर ॥ २२ ॥
पुष्पक रावण हरलनि जेह। तनिकाँ जीति छीनि लेल सेह ॥ २३ ॥
यावत पृथिवी-स्थित प्रभु रहत। तावत पुष्पक अहँ काँ बहत ॥ २४ ॥
पुष्पक काँ कहलनि रघुराज। अपनेँक जखन होयत गय काज ॥ २५ ॥
स्मरण करब तखना हम अयब। अन्तर्हित रहु बड़ सुख पयब ॥ २६ ॥

॥ सोरठा ॥

कार्य्यं अमानुष राम, करथि नृपति सन्नीति-युत ॥ २७ ॥
नहि अनीति तहि ठाम, वसुधा शस्यमयी सतत ॥ २८ ॥

भटकूँगा।" १५ रावण ने विष्णु के हाथ से मरने का एक उपाय जानकर ही रावण ने हठपूर्वक सीता का हरण किया। १६ रावण ने सीता को माता के तुल्य माना और सोचा कि उनके हाथ मरने से असुरता में बट्टा लगेगा। १७ इतना कहकर मुनि अगस्त्य ने पुनः बहुत प्रकार से राम की स्तुति की— "आप भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानते हैं। आप सबों के मालिक हैं। सब कुछ देखते रहते हैं। प्रलय होने पर सभी वस्तुएँ आप में लीन हो जाती हैं।" इस प्रकार स्तुति करने के बाद अगस्त्य मुनि ने राम से उचित आदर-सत्कार पाकर अपना रास्ता पकड़ा। १८-१९ राम बाहर से तो लगते थे कि सीता के साथ विषयभोग में लिप्त हैं, किन्तु भीतर मे एकदम विरक्त थे। २० राम गृहस्थ जीवन के सारे काम तो करते थे पर उनमें आसक्त नहीं रहते थे। परमेश्वर होते हुए भी मानव का छद्मवेश धारणकर लीला करते थे। २१ कुबेर ने फिर अपना पुष्पक रथ राम को भेज दिया। २२ उन्होंने सन्देश भेजा— "जिस पुष्पक को रावण ने हर लिया था, उसे आपने रावण से छीन लिया। २३ इसलिए जब तक यह धरती रहेगी तब तक यह पुष्पकविमान आपकी सवारी बना रहेगा।" २४ राम ने पुष्पक से कहा— "जब मुझे आपका प्रयोजन होगा तब मैं आपको याद करूँगा, आप आइयेगा। आप अदृश्य रूप में रहिये। इससे बड़ा सुख मिलेगा।" २५-२६ अपना राजकाज राजनीति के सिद्धान्तों के अनुसार अलौकिक-असाधारण कौशल से चलाते थे। २७ वहाँ कहीं अन्याय-अत्याचार का नाम नहीं था। धरती सदा सस्यों से हरी-भरी रहती थी। २८ राम

माता सभ काँ वा सीता काँ, जे छथि हमरा भाय ॥ ५५ ॥
लोक कहै अछि की से कहु कहु, हमर शपथ अहँ खाय ॥ ५६ ॥
विजय नाम एक हास्य-सभासद, कहलनि शुनु रघुनाथ ॥ ५७ ॥
शपथ खाय हम सत्य कहै छी, करइत छी नहि लाथ ॥ ५८ ॥
सीता काँ वन सौँ दशकन्धर, हरि लय गेल निज धाम ॥ ५९ ॥
से पुन पटरानी छथि सम्प्रति, केहन हृदय छथि राम ॥ ६० ॥
धोबिनि रूसि गेलि छलि घरसौँ, धोबि कहल खिसियाय ॥ ६१ ॥
जेहने नृपति प्रजा-गति तेहनि, राजा कर से न्याय ॥ ६२ ॥
जन सभ चूप भूप रघुनन्दन, कहलनि सभकाँ जाय ॥ ६३ ॥
नयन सजल लक्ष्मण काँ केवल, कहल रहस्य मँगाय ॥ ६४ ॥
लोकमध्य अपवाद शुनल अछि, सीता-कृत विस्तार ॥ ६५ ॥
सीता त्याग करब हम सम्प्रति, हमरा चित्त विचार ॥ ६६ ॥
प्रातहि सीता रथ चढ़ाय अहँ, लक्ष्मण सत्वर जाउ ॥ ६७ ॥
मुनि वालमीकि आश्रम-वनमे, चित्रकूट पहुँचाउ ॥ ६८ ॥
जौँ अन्यथा करी तौँ हमरा, मारी अहँ तरुआरि ॥ ६९ ॥
हा विधि-कृत हमरा छुटइत छथि, सीता सध्वी नारि ॥ ७० ॥

बारे में या हमारे भाई भरत के बारे में लोग क्या बोलते हैं, यह मेरी सौगन्ध खाकर ठीक-ठीक बताइये।" ५५-५६ विजय नाम के एक मजाकिया दरबारी ने कहा— "हे प्रभु, सुनिए। ५७ मैं शपथपूर्वक सच-सच बताता हूँ, कोई छल नहीं करता हूँ। ५८ लोग बोलते हैं, सीता को हरकर रावण अपने घर ले गया था। ५९ वह लौटकर आज पटरानी बनी हुई है। कैसा हृदय है राम का। ६० एक धोबिन रूठकर घर से निकल गई थी। लौटने पर उसे धोबी ने गुस्से में आकर कहा— जैसा राजा करता है वैसा ही उसकी प्रजा करती है। जो राजा करता है वही उचित समझा जाता है!" ६१-६२ सुनकर दरबार के सभी लोग गुम हो गये। राजा राम ने दरबार के सभी लोगों को जाने की आज्ञा दी। ६३ राम ने लक्ष्मण की आँखों में आँसू देख उन्हें एकान्त में बुलाकर कहा— ६४ "प्रजा के बीच सीता के बारे में एक बड़ा अपवाद सुना है। ६५ अब मैं सीता को छोड़ दूँगा। यही मन में निश्चय किया है। ६६ हे लक्ष्मण, तुम सुबह होते ही सीता को रथ पर चढ़ाकर जल्द जाओ; ६७ और चित्रकूट वन में बाल्मीकि के आश्रम में पहुँचाकर वहाँ छोड़ आओ। ६८ यदि मैं इसमें बाधा करूँ तो मुझे तलवार से खत्म कर देना। ६९ हाय, विधाता का क्या विधान है? सीता-सी सती-साध्वी स्त्री को छोड़ना पड़ रहा है।" ७० सुबह होते ही सुमन्त्र-सहित

देव देवगण कह कर जोड़ि। चलु वैकुण्ठ मर्त्यसुख छोड़ि ॥ ४१ ॥
वनि-मुनि-पत्नी काँ वसु देव। तनिकाँ सँ हम आशिष लेब ॥ ४२ ॥
होइछ मन वन देखी जाय। अबितहुँ गङ्गा तीर्थ नहाय ॥ ४३ ॥
जे रुचि हो से करु प्रभु काज। कयल बहुत दिन पृथिवी-राज ॥ ४४ ॥
अयलहुँ जे मन कय सङ्कल्प। तकरो समय रहल अछि अल्प ॥ ४५ ॥
सीता-वचन शुनल प्रभु कान। की कर्त्तव्य धयल प्रभु ध्यान ॥ ४६ ॥

॥ सोरठा ॥

कहइत छी एकान्त, करब लोक-अपवाद छल ॥ ४७ ॥
जनइत छी वृत्तान्त, त्यागब अहँ काँ देब वन ॥ ४८ ॥
जनमत युगल कुमार, गर्भवती अहँ सौँ वनहिं ॥ ४९ ॥
होयत चरित उदार, शपथ करब अहँ आबि पुन ॥ ५० ॥
भूमिक विवर समाय, जायब अहँ वैकुण्ठ पुन ॥ ५१ ॥
किछु दिन हमहुँ गमाय, जानकि तत अयबे करब ॥ ५२ ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

॥ तिरहुति ॥

हास्यप्रौढ़ कथा पण्डित काँ, पुछलनि जखना राम ॥ ५३ ॥
कथा प्रसङ्ग पुछल की कहइछ, ग्राम-लोक सभ ठाम ॥ ५४ ॥

कितने दिन रहना है ? ४० हे प्रभु, देवता लोग हाथ जोड़कर कह रहे हैं कि मर्त्यलोक का सुखभोग छोड़कर अब वैकुण्ठ चलिए। ४१ वैकुण्ठ जाने के पहले मैं चाहती हूँ कि वनवासी मुनियों की पत्नियों को कुछ दान दें और उनसे आशीर्वाद लें। ४२ मन करता है कि फिर जाकर वन देखती और गंगा-स्नान करती। ४३ हे प्रभु, आपको जो-जो काम करने की इच्छा हो, कर लीजिए। आपने पृथ्वी पर बहुत दिनों तक राज किया। ४४ मन में जो संकल्प लेकर आये थे उसका समय भी अब थोड़ा ही रहा है।" ४५ राम ने सीता की बात सुनी और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। ४६ उन्होंने सीता से कहा— "मैं एकान्त में एक गुप्त बात बताता हूँ। मैं लोक-अपवाद का बहाना बनाऊँगा। ४७ तुम तो सारा हाल जानती ही हो, तुमको वन में त्याग दूंगा। ४८ वन में तुम दो कुमारों को जनोगी। ४९ वे दोनों बड़े यशस्वी होंगे। तुम फिर लौटकर शपथ करोगी। ५० फिर धरती की दरार में घुसकर तुम वैकुण्ठ चली जाओगी। ५१ हे सीता, कुछ दिन बाद मैं भी वहाँ चला आऊंगा। ५२ एक समय दरबार में राम ने मज़ाक़ में एक पण्डित से पूछा— "पण्डित जी, मैं यों ही प्रसंगवश पूछता हूँ। गाँव के लोग जहाँ-तहाँ क्या बोलते हैं ? ५३-५४ हमारी माताओं के बारे में, सीता के

जौँ कानब एहिठाम कहब अहँ भायकेँ ॥ ८७ ॥
ओत सभ मिलिमिलि सभ्यमे रहब लजायकेँ ॥ ८८ ॥

॥ हंसी छन्द ॥
॥ तिरहुति वेश ॥

हा वैदेही हा वैदेही, वचन कठिन मुखसँ न किछु आबै ॥ ८९ ॥
सीता साध्वी धीरा हंसी, अहँक सुकृत सुर नर मुनि गाबै ॥ ९० ॥
ओ राजा आज्ञा के टारै, विधिक लिखल छल जन न घटाबै ॥ ९१ ॥
जे चाहै से से निर्व्वाहै, सुरपुर बस अथ नरक पठाबै ॥ ९२ ॥

॥ अभिराम अहीर छन्द ॥

हा न हमर किछु दोष—जानकि—परिहरु मानस-रोष ॥ ९३ ॥
शपथ देल रघुनाथ—जानकि—किछु न कयल हम लाथ ॥ ९४ ॥
की अपराध विचारि—जानकि—त्यागल गुणमति नारि ॥ ९५ ॥
कत मन करब कठोर—जानकि—नयन सतत बह नोर ॥ ९६ ॥
हमरे गुरु अपराध—जानकि—आनल वन बनि व्याध ॥ ९७ ॥
चललहुँ हम कय त्याग—जानकि—जाउ जतय मन लाग ॥ ९८ ॥

॥ चञ्चरी छन्द ॥

की करू कत जाउ हाय उपाय सूझ न नारि केँ ॥ ९९ ॥
नाथ भास्कर-वंश-पङ्कज-भानु देलनि टारि केँ ॥ १०० ॥

यदि आप यहाँ रोएँगे तो मैं आपके भाई से कह दूँगी। ८७ वहाँ इस तरह रोते सभ्य लोगों से मिलेंगे तो आप लज्जित होंगे।" ८८ तब लक्ष्मण बोले— "हाय सीता, मेरे मुँह से कठोर वचन निकल नहीं रहा है। ८९ हे सीता, आप सती-साध्वी हैं, गम्भीर हैं, हंसी की तरह विवेकवाली हैं। देवता लोग, मुनि लोग और साधारण लोग आपका यश गाते हैं। ९० राम राजा हैं। उनकी आज्ञा को कौन टाल सकता है? विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन आदमी मिटा सकता है? ९१ विधाता जो चाहता है वह कर दिखाता है। वह चाहे तो स्वर्ग दे सकता है या नरक भेज सकता है। ९२ हे सीता, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। मुझ पर मन में क्रोध मत कीजिए। ९३ हे सीता, राम ने ऐसा करने के लिए शपथ दी थी। मैंने कोई बहाना बनाकर इसे टाल न सका। ९४ हे सीता, कौन-सा अपराध पाकर राम ने ऐसी गुणवती नारी का त्याग किया? ९५ अब मैं अपने कलेजे को कितना मजबूत बनाऊँगा। मेरी आँखों से लगातार आँसू बह रहे हैं। ९६ यह मेरा ही भारी अपराध है कि व्याध बनकर मैं आपको वन ले आया। ९७ हे सीता, आपको यहाँ छोड़कर जाता हूँ; आपको जहाँ मन हो, जाइये।" ९८ सीता ने कहा— "क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इस नारी को कोई रास्ता नहीं सूझता। ९९

॥ सोरठा ॥

रथलय प्रातहिँ जाय, लक्ष्मण सहित सुमन्त्र तहँ ॥ ७१ ॥
प्रभु-अनुशासन पाय, वैदेही कों कहल से ॥ ७२ ॥

॥ मणिगुण छन्द ॥

चढु चढु रघुवर-घरनि सुरथ मे ॥ ७३ ॥
कहब सकल हम चलयित पथ मे ॥ ७४ ॥
हठ रथ चढ़लि प्रभुक रुचि मन लै ॥ ७५ ॥
अनमनि सनि चललिह बिनु जनलैं ॥ ७६ ॥
सुरसरि उतरि जइति मुनिवन मे ॥ ७७ ॥
तखन प्रकट किछु लछमन मन मे ॥ ७८ ॥
बुझथि न प्रभुरुचि वन-छविसदना ॥ ७९ ॥
पुछल तखन लछमन बिधुवदना ॥ ८० ॥

॥ प्लवङ्गम छन्द ॥

देवर जनु करु खेद नयन जलधार की ॥ ८१ ॥
श्रीरघुवर - पद - कमल प्रेम - विस्तार की ॥ ८२ ॥
सत्वर घुरि घर चलब देखि मुनि-कामिनी ॥ ८३ ॥
सुन्दर नव-घनश्याम थिकहुँ सौदामिनी ॥ ८४ ॥
जौं जनितौं हम एहन नाथ सङ्ग आनितौं ॥ ८५ ॥
नारि-सहित मुनिलोक सकल सन्मानितौं ॥ ८६ ॥

लक्ष्मण रथ लेकर सीता के पास पहुँचे। राम की जैसी आज्ञा थी, सीता को बुला दिया। ७१-७२ लक्ष्मण ने कहा— "हे राम की गृहिणी सीता, इस रथ पर चढ़िये। ७३ सारी बात मैं रास्ते में चलते समय बताऊँगा।" ७४ राम की ऐसी इच्छा है, यह सोचकर सीता बरवश रथ पर चढ़ गईं। ७५ उन्हें कुछ समझ में न आया कि क्या बात है! वे उदास थीं। ७६ जब वे गंगा नदी को पार कर मुनि के आश्रम की ओर चलीं तब लक्ष्मण के मन में कुछ भावना की लहर आई। ७७-७८ वन की शोभा देखने में व्यस्त सीता को यह बोध नहीं था कि राम का क्या इरादा है। ७९ तब सीता ने लक्ष्मण से पूछा— ८० "हे देवर लक्ष्मण, आपकी आँखों में यह आँसू कैसे? ८१ क्या राम के चरण-कमल में जो गहरा प्रेम है इसीलिए बिछोह में रो रहे हैं? ८२ मैं मुनियों की पत्नियों से मिलकर तुरत घर लौट जाऊँगी। ८३ राम मेरे लिए नया सुहावना घनश्याम हैं और मैं उनके लिए विद्युत् की चमक हूँ। ८४ यदि मैं जानती कि आप इस तरह रो पड़ेंगे तो मैं पतिदेव को ही साथ लाती, ८५ और पत्नी-सहित सभी मुनियों की पूजा करती। ८६

हम कि कहब दुख-भारे, विधिक लिखल छल जन के टारे ॥ ११३ ॥
समय न छुटय सभाजे, एखनहु धरि मन उपगत लाजे ॥ ११४ ॥
गर्भ-भरालस अङ्गे, नहि परिचारिणि जनि एक सङ्गे ॥ ११५ ॥
मरितौं गरल हम खाये, होइत बड़ गोट कुल अन्याये ॥ ११६ ॥
आब बचत नहि प्राणे, रघुवर-हृदय कि भेल-पषाणे ॥ ११७ ॥
यहन करत के आने, हित-जन-वचन न धयलनि काने ॥ ११८ ॥
कत दिन काटब कानी, कयल कुटिल जन बड़ मन-हानी ॥ ११९ ॥
भूपति होथि न मित्रे, शुनितहिँ छलहुँ से देखल चरित्रे ॥ १२० ॥

॥ तिरहुति ॥

॥ पादाकुल दोहा छन्द ॥

करुणागार उदार प्राणपति, वन देल दोष लगाय रे ॥ १२१ ॥
देवर-दोष विधिक हम की कहु, जनि घर धर्म्म न न्याय रे ॥ १२२ ॥
हमरहि हेतु दशानन मारल, कपिगण सङ्ग लगाय रे ॥ १२३ ॥
तखन पतिव्रत हमर देखल सभ, अनल मे गेलहुँ समाय रे ॥ १२४ ॥
नैहर जौं मिथिला चलि जायब, कहब बाप की माय रे ॥ १२५ ॥
पुरुष-परशमणि-कर हम सोपल, अयली कि नाम हँसाय रे ॥ १२६ ॥

इसे कौन टाल सकता था ? ११३ ऐसा वक्त नहीं था कि संग छूटे। अभी तक मन शरमा ता ही रहा था। ११४ मेरी देह गर्भ के भार से अलसाई हुई है। एक भी परिचारिका साथ नहीं है। ११५ मैं जहर खाकर मर जाती, मगर इससे तो बड़े कुल में कलंक लग जाएगा। ११६ अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। क्या राम का हृदय पत्थर हो गया ? ११७ ऐसा काम उनके सिवा कौन कर सकता है ? उन्होंने तो अपने हितैषियों की बात भी नहीं सुनी। ११८ रो-रोकर कितने दिन गुजारूँगी ? दुष्ट लोगों ने मेरी आशा पर पानी फेर दिया। ११९ सुनती थी कि राजा किसी का मित्र नहीं होता है। आज वह प्रत्यक्ष देख लिया। १२० हाय, मेरे प्राणपति परम दयालु और उदार राम ने मुझे कलंक लगाकर वन में छोड़ दिया। १२१ हे देवर, मैं विधाता को क्यों कोसूँ ? उनके घर में न तो धर्म है, न न्याय। १२२ राम ने कपियों को साथ करके मेरे खातिर ही रावण को मारा। फिर सबों के सामने मैंने अग्नि में प्रवेश किया और सबों ने मेरे पातिव्रत्य की जाँच की। १२३-१२४ अगर मैं अपने पीहर मिथिला चली जाऊँ तो माँ-बाप क्या कहेंगे ? १२५ यही कहेंगे कि 'मैंने तो पारसमणि के समान पुरुषोत्तम राम के हाथ में सौंपा और यह कलंक लगाकर लौट आई'। १२६ हे लक्ष्मण, भले ही शिरीष का फूल वज्र-सा हो जाय और वज्र शिरीष के फूल-सा हो जाय, पर

भेल की अपराध से कहु लोक के बन आबि कें ॥ १०१ ॥
आढ्य की जन रङ्क की दुख भोग देह इ पाबि कें ॥ १०२ ॥

॥ अमृतगति छन्द ॥

कहलनि जायक बन मे। रघुबर की गुनि मन से ॥ १०३ ॥
झुकि झुकि ताकथि धरणी। बड़ दुख-सिन्धु न तरणी ॥१०४॥
हम मन भेलहुँ विकला। गति थिक विश्वक चपला ॥१०५॥
कहब न दूषण अनकाँ। सकल शुभाशुभ जनकाँ ॥१०६॥

॥ बिष्णुपद छन्द ॥

माय अवनि विष्णु-रमणि, बंश-तरणि शून्य-सरणि ॥ १०७ ॥
हा मरब कष्ट तरब, शुष्क-वदनि साध्वि रमणि ॥ १०८ ॥
आश मनक नाश क्षणक, घोर बनक भीतिजनक ॥ १०९ ॥
नेत्रकमल मेघ सजल, साँथ धुनथि "चन्द्र" भनथि ॥ ११० ॥

॥ तिरहुति ललित विपरीत ॥

॥ हरिपद छन्द ॥

रघुबर बड़ महराजे, कयल उचित नहि सम्प्रति काजे ॥ १११ ॥
हुनकर रमणि कहाये, दुखित बसब हम घन बन जाये ॥ ११२ ॥

सूर्यवंश रूपी कमल के लिए सूरज के समान मेरे पति राम ने मुझे त्याग दिया। १०० यहाँ आये बिना कोई मुझे यह कैसे बतायेगा कि मुझसे क्या अपराध हुआ। १०१ धनी हो या गरीब, जो शरीर पाता है उसे दुख भोगना ही पड़ता है। १०२ मन में क्या सोचकर राम ने मुझे वन जाने को कहा ?" १०३ सीता झुक-झुककर धरती की ओर देखती हैं और कहती है— "माँ, दुख के समुद्र में पड़ गई हूँ। कहीं नाव नहीं मिल रही है। १०४ मैं व्याकुल हो गई हूँ। संसार की गति चंचल होती है। मैं क्या से क्या हो गई। १०५ दूसरे को दोष न दूँगी। लोगों को भला या बुरा जो भी फल मिलता है, सब अपनी ही करनी का होता है। १०६ मेरी माता धरती है, पति विष्णु हैं, वंश सूर्यवंश है, फिर भी मेरा रास्ता सूना है। १०७ हाय, मैं मर जाऊँगी, तभी इस दुख से उद्धार होगा।" कहते-कहते उन सती-साध्वी नारी सीता का चेहरा सूख गया। १०८ क्षण भर में मन की आशा जाती रही। घोर वन उसे भयावना लगने लगा। १०९ उनकी आँखें जल-भरा बादल हो गया। "चन्द्र" कवि कहते हैं कि इस प्रकार सीता विलाप करने लगीं— ११० राम महान् राजा हैं, फिर भी अभी उन्होंने यह उचित काम नहीं किया। १११ उनकी पत्नी कहाकर मैं दुख के साथ घने जंगल में जाकर रहूँगी। ११२ मैं अपनी वेदना क्या बताऊँ ? विधाता ने यही लिखा था।

॥ रूपक चौपाइ ॥

जननि धरणि सनि रघुवर सन पति ॥ १४१ ॥
तिरहुति जनम सकल जन कह सति ॥ १४२ ॥
हयत यहन गति छलहुँ कि जनइत ॥ १४३ ॥
जनम बितत विधि कनयित कनयित ॥ १४४ ॥

॥ चौपाइ ॥

आश्रम निकट एक अनि नारि । एहन के होइसि भुवन दश चारि ॥ १४५ ॥
विकला कनयित छथि एहि ठाम । के थिक के पुछ परिचय नाम ॥ १४६ ॥
शिष्य कहल मुनि कयलनि ध्यान । हुनकाँ सतत त्रिकालक ज्ञान ॥ १४७ ॥
मुनि वाल्मीकि कहल लय आउ । पूजा हुनकर सविधि कराउ ॥ १४८ ॥
थिकथि जानकी रघुवर-दार । जे हरलनि अछि अवनी-भार ॥ १४९ ॥
मुनि-पत्नी सह कयल निवास । नयन सजल मुख आब न हास ॥ १५० ॥
बड़ आदर सब कर नित आबि । किछु गुरु-कार्य एतय अछि भावि ॥१५१॥
मानस-ध्यान करथि मुनि जेह । बाहर सीता देखथि सेह ॥ १५२ ॥

"धरती-जैसी माता है, राम जैसे पति हैं; १४१ मिथिला में जन्म है, और सभी लोग सती कहते हैं। १४२ फिर भी ऐसी गति होगी यह कभी सोचा भी नहीं था। १४३ हाय विधाता, क्या मेरी जिन्दगी रोते-रोते ही कटेगी ?" १४४

सीता का वाल्मीकि के आश्रम में आना

एक शिष्य ने मुनि वाल्मीकि से कहा— "आश्रम के पास एक नारी है। ऐसी नारी तो चौदहों भुवन में कहीं न होगी। १४५ वह विकल हो यहाँ रो रही है। वह कौन है ? उसका परिचय और नाम कौन पूछने का साहस करेगा ?" १४६ शिष्य की यह बात सुनकर मुनि वाल्मीकि ने ध्यान लगाया। उन्हें तो सदा वर्तमान-भूत-भविष्य तीनों काल का सारा हाल मालूम रहता है। १४७ वाल्मीकि मुनि ने कहा— "उन्हें लेते आओ और विधिपूर्वक उनकी पूजा रचो। १४८ वे जनक की बेटी और उन राम की पत्नी सीता हैं, जिन राम ने रावण को मारकर धरती का भार दूर किया।" १४९ सीता वाल्मीकि के आश्रम में आकर मुनि-पत्नियों के साथ रहने लगीं। उनकी आँखें आँसू से भीगी रहतीं और मुँह पर कभी प्रसन्नता न रहती थी। १५० वाल्मीकि के आश्रम में बड़े आदर के साथ नित्य सभी लोग यह सोचकर आते कि गुरु को कोई काम होगा। १५१ मुनि वाल्मीकि मन में जो ध्यान करते थे वही सीता के रूप में बाहर दिखाई देता था। १५२ सीता का बरताव देख-

सिरिस सुमन बरु होथ अशनि सन, अशनि तेहन भय जाय रे ॥ १२७ ॥
से बरु होय होथि नहि अकरुण, अहँ काँ बड़का भाय रे ॥ १२८ ॥
कि कहब कहय योगि नहि रहलहुँ, भेलहुँ सबहिँ काँ भार रे ॥ १२९ ॥
कतहु रहब जानकि जन कहते, श्रीरघुनन्दन-दार रे ॥ १३० ॥

॥ बियोगि मालव छन्द ॥

रघुवर देल बिपिन वास, ओ सुनि हास, नारि मरब हम वन त्रास ॥ १३१ ॥
एकसरि नारि कतय जाउ, बिष खाउ, विधि निर्दय कत गोहराउ ॥ १३२ ॥
रघुवर-मन की निर्दय, देल एत कय, हमरहि भाग कि दुखचय ॥ १३३ ॥
बिधिहुक विधि ओ रघुराज, किछु के बाज, प्रभु छथि कयलनि भल काज ॥१३४॥

॥ दोबय छन्द ॥

लक्ष्मण सीता काँ पुन कहलनि अपनें काँ की कहबे ॥ १३५ ॥
सर्व्वसहा जननी छथि अपनें क, कठिन कष्ट सभ सहबे ॥ १३६ ॥
ई आश्रम वाल्मीकि मुनिक थिक, गेलि जाय तत माता ॥ १३७ ॥
दोष न हमर प्रणाम करैछी, साक्षी सकल विधाता ॥ १३८ ॥

॥ बरबा छन्द ॥

लक्ष्मण कहि घर चलला, घुरि नहि ताक ॥ १३९ ॥
पहुँचलाह रघुवर-तट, नहि मुख-वाक ॥ १४० ॥

आपके बड़े भाई ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते हैं। १२७-१२८ क्या कहूँ, मैं कहने लायक न रही। मैं सबों के लिए बला हो गई। १२९ मैं कहीं भी रहूँगी लोक मुझे जनक की बेटी और राम की पत्नी तो कहेगा ही। १३० राम ने मुझे वनवास दिया, इससे उनका केवल उपहास होगा, पर मैं तो वन में डर से ही मर जाऊँगी। १३१ मैं अकेली औरत कहाँ जाऊँ? क्या जहर खा लूँ? निष्ठुर विधाता से कितनी मिन्नत करूँ। १३२ राम का हृदय कितना निष्ठुर है। मेरा ऐसा हाल कर दिया। क्या सारा दुख-दर्द मुझे ही बदा था? १३३ रघुवंशी राजा राम विधाता के भी विधाता हैं। उनके विरुद्ध कोई क्या बोलेगा? वे प्रभु हैं। उन्होंने जो किया सो अच्छा किया।" १३४ फिर लक्ष्मण ने सीता से कहा— "आपसे क्या कहूँ? १३५ धरती, जो सर्वसहा (सभी पीड़ाओं को सहनेवाली) कहलाती हैं, वह आपकी माता हैं। आप सारा घोर कष्ट भी सह लेंगी। १३६ वह वाल्मीकि का आश्रम है, हे माता, वहाँ जाइये। १३७ मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं प्रणाम करता हूँ। विधाता सभी बातों के साक्षी हैं। १३८ इतना कहकर लक्ष्मण चल पड़े। पलटकर देखा तक नहीं। सीधे राम के पास पहुँचे। मुंह से बोल न निकला। १३९-१४० (इधर सीता फिर विलाप करने लगी—)

करक करक कथ बैसलहुँ, मनमँ मनमँ दुख पैसलहुँ ॥ ५ ॥
थिकथि थिकथि सति जेहनि, कहक कहक की तेहनि ॥ ६ ॥

॥ दोवय छन्द ॥

अधिकल भोग करू प्रारब्धक, करम लिखल परमान रे ॥ ७ ॥
के बुझ कोन छन देह सौं जायत, चेतन अपन परान रे ॥ ८ ॥
कालहिँ विनश अमर अमरावति, नभ ग्रहगण रवि चान रे ॥ ९ ॥
जाय सुमेरु प्रलय प्रलयानल, जल बिनु उदधि महान रे ॥ १० ॥
विनशय धरणि कमठ धरणीधर, विभु परिशेष न आन रे ॥ ११ ॥
क्षणिक देह मे नेह निरर्थक, दुख-कारण अभिमान रे ॥ १२ ॥
परमेश्वर माया-रस-विलसित, नर पामर की जान रे ॥ १३ ॥
राम 'चन्द्र' कह वृथा चिन्तना, करु ईश्वर-गुण-गान रे ॥ १४ ॥

॥ दोवय योगिया छन्द ॥

ममता काँ परित्यागू, नहि तौं दुर्गति आगू ॥ १५ ॥
यावत मलिन वासना रहती, तावत सुख नहि पयबे ॥ १६ ॥
शुद्ध-वासना-युक्त जखन मन, तखन अभय-पद जयबे ॥ १७ ॥
रजो-रेत-संयोग गर्भ मे, इन्द्रजाल की भारी ॥ १८ ॥

है। राजनीति नहीं, केवल सीता का नयन याद आता है। ४ हाथ में जो कुछ करने का काम था वह तमाम कर लिया। अगाध दुख में समा गया हूँ। ५ मेरी सीता कैसी सती है वह क्या वर्णन किया जा सकता है? ६ पूर्वजन्म के कर्म का भोग पूरा-पूरा कर लो। जो ललाट में लिखा रहता है, वह होकर रहेगा। ७ कौन जानता है कि यह चैतन्यस्वरूप प्राण शरीर से कब निकल जाएँगे। ८ काल पाकर न मरनेवाले देव लोग, उनकी नगरी अमरावती, आकाश, सूर्य-चन्द्रादि ग्रहगण सभी नष्ट हो जाते हैं। ९ प्रलय-काल में सुमेरु भी प्रलय की आग में जल जाता और महासागर भी जलहीन हो जाता। १० धरती खत्म हो जाती है। धरती को धारण करनेवाले शेषनाग और कच्छप का भी पता न रहता। केवल सर्वव्यापक परमेश्वर शेष रह जाते, और कुछ नहीं बचता। ११ यह शरीर जो क्षण भर टिकने वाला है, उसमें अनुराग करना बेकार है। अभिमान अर्थात् शरीर को 'मैं' समझ बैठना ही दुख का कारण है। १२ ईश्वर मायावश रस-विलास करते हैं, यह नासमझ मनुष्य क्या जाने। १३ राम 'चन्द्र' कहते हैं सांसारिक चिन्ता करना व्यर्थ है। ईश्वर का भजन करो। १४ ममता को छोड़ो, नहीं तो आगे बुरा हाल होगा। १५ जब तक चित्त में बुरी भावना रहेगी तब तक सुख नहीं मिल सकता है। १६ जब मन की भावना निष्कलुष हो जाएगी तब अभय पद (मोक्ष) मिलेगा। १७ गर्भाशय में रज और वीर्य के

देखि देखि सीता-व्यवहार। मुनि-पत्नी कौं प्रीति अपार ॥ १५३ ॥
कानयित देखथिन करथिनि चूप। जनमत तनय होयत से भूप ॥ १५४ ॥
सोहर शुनब तनय-मुख हेरि। जन्म सुफल होयत से फेरि ॥ १५५ ॥
की घन सन दृग चुप कर बूढ़ि। सुता विदेहक होइछि मूढ़ि ॥ १५६ ॥

॥ सोरठा ॥

त्यागि देल सभ भोग, आदिदेव सीता-रहित ॥ १५७ ॥
सतत ज्ञान की योग, अतिविरक्त मुनि-व्रत-निरत ॥ १५८ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ सोरठा ॥

नहि अछि ककरो काज, राजकाज मन्त्री करथु ॥ १ ॥
अहँ रहु हमर समाज, लक्ष्मणकौं रघुनाथ कह ॥ २ ॥

॥ तिरहुति—वियोगि मालव-छन्दः ॥

[गतप्रत्यागतबन्धोयम्]

कथक कथक नहि लट आब, जलज जलज मन वन दाव ॥ ३ ॥
कनक कनक सन मद कर, नयन नयन धनि सन पर। ४ ॥

देखकर मुनि की पत्नियों को सीता के प्रति परम अनुराग हो गया। १५३ जब वे उन्हें रोती देखतीं तब सान्त्वना देतीं— "आपके बेटा होगा और वह राजा बनेगा। १५४ बेटे का मुख देख-देखकर आप सोहर (जन्मोत्सव-गीत) सुनेंगी। फिर आपका जीवन सफल हो जाएगा।" १५५ बूढ़ी औरतें दिलासा देतीं— "आँखों से आँसू को टपकाती हो। क्या विदेह की बेटी होकर तुम अज्ञानी बनती हो?" १५६ उधर आदिदेव राम ने सीता के विरह में सारे भोगों को त्याग दिया। १५७ वे सदा ज्ञान या योग में लगे रहते, और परम विरागी मुनियों का व्रत धारण किये रहते। १५८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

सीता के विरह में राम का आध्यात्मिक चिन्तन

राम लक्ष्मण से कहते— "मुझे किसी का काम नहीं है। मन्त्री लोग राजकाज सँभालें। हे लक्ष्मण, केवल तुम मेरे पास रहो। १-२ गाकर कथा सुनानेवाला कथक अब मेरे पास न आवे। पानी में पैदा होनेवाला कमल भी मेरे मन रूपी वन में आग के समान है। ३ सोना धतूरे की तरह मद करता

॥ रूपमाला छन्द ॥

मिहिर सन गत-तिमिर, रघुबर सतत शून्य-निवास ॥ ३२ ॥
अन्यदोषाभीत कर धर तट, असीत विलास ॥ ३३ ॥
सरस सारस सन सलक्ष्मण, राज श्रीद्विजराज ॥ ३४ ॥
चिरवन-प्रियवास-वनचर, लसित सतत समाज ॥ ३५ ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनिगण बहुत विकल एक समय। लवणासुर सौँ अनुखन सभय ॥ ३६ ॥
यमुनातीर मुनिक आवास। मुनिवृत्तिहु मे बाढ़ल त्रास ॥ ३७ ॥
भार्गव च्यवन चलल अगुआय। मुनि असंख्य लेल सङ्ग लगाय ॥ ३८ ॥
राघव-दर्शन कार्य्य प्रधान। रघुनन्दन कयलनि सन्मान ॥ ३९ ॥
बड़ स्वागत पुछलनि की काज। सभ मुनिजन आयल छी आज ॥ ४० ॥
ब्राह्मण हमर सतत छथि देव। हुनकर टहल करब यश लेब ॥ ४१ ॥
सभ मुनि कृपा कयल अछि आइ। आज्ञा पाबि टहल मे जाइ ॥ ४२ ॥

समान, अन्धकार से हीन हैं, सदा शून्य में (आकाश में या एकान्त में) निवास करते हैं, ३२ अन्य दोषाभीत (अर्थात् दूसरे के अपवाद से डरे, अथवा अगली रात से डरे) रहते हैं, अपना कर (हाथ अथवा किरण) तट पर ही रखते हैं, असीत (सीता अथवा शीत) के बिना ही विचरण करते हैं; ३३ प्रेमी सारस पक्षी के समान सलक्ष्मण (लक्ष्मण जी के साथ, अथवा सारस पक्षी की मादा लक्ष्मणा के साथ) रहते हैं; द्विजराजों (श्रेष्ठ पक्षियों, अथवा उत्कृष्ट ब्राह्मणों) से भूषित रहते हैं, ३४ बहुत दिनों तक वन में प्यारा बसेरा रहा है, और सदा वनचरों की मंडली में शोभित होते हैं। ३५

शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध और मथुरा में राजधानी बनाना

एक समय मुनि लोग बाणासुर के डर से सदा त्रस्त और दुखी रहते थे। ३६ मुनियों का आश्रम यमुना के किनारे में था। मुनि लोगों को तपस्वी की भाँति जीवन-निर्वाह करते रहने पर भी भय बढ़ता गया। ३७ भार्गव गोत्र के च्यवन ऋषि आगे चले। उन्होंने असंख्य मुनियों को अपने साथ ले लिया। ३८ उनका मुख्य उद्देश्य था राम का दर्शन करना। राम ने उनकी अच्छी आवभगत की। ३९ बड़ा स्वागत किया और पूछा— "आज सभी मुनि लोग आये हैं। क्या काम है? ४० ब्राह्मण हमारे लिए सदा देवता हैं। उनकी सेवा मैं करूँगा और यश पाऊँगा। ४१ आज सभी मुनियों ने यहाँ पधारने की कृपा की है। आज्ञा हो तो आपकी सेवा में लग जाऊँ। ४२ मैं ब्राह्मणों का सेवक हूँ। आप लोग जो काम कहेंगे, मैं

सकलावयव सहित चैतन्यक, बाहर बड़ व्यवहारी ॥ १९ ॥
भव-सन्ताप-हरण परमेश्वर, व्यापक तन मे बासा ॥ २० ॥
अपना मे अपनहिँ अपनायब, जायब गति निस्त्रासा ॥ २१ ॥
राज्य दार सुत आदि देह हठ, किछु संयोग न रहते ॥ २२ ॥
क्षिति आदिक संघात विलय मे, मृतक लोक जित कहते ॥ २३ ॥
जनिकर जनम मरण नहि होइछ, निर्गुण ब्रह्म कहै छी ॥ २४ ॥
छथि अपरोक्ष मनन करु निश्चय, जौँ भवमोक्ष चहै छी ॥ २५ ॥
तिल मे तेल दुग्ध मे घृत सन, भूत भूत विज्ञाने ॥ २६ ॥
मन सौँ मथन करू सुख पायब, विदित उपाय न आने ॥ २७ ॥

॥ सोरठा ॥

लक्ष्मण जोड़ल हाथ, देव-देव करुणा-भवन ॥ २८ ॥
क्षमाशील-रघुनाथ, आत्मज्ञान-विवेक कहु ॥ २९ ॥
तखन देव रघुराज, कहल सकल छल रहित तत ॥ ३० ॥
लक्ष्मण-मन सभ काज, बनल विवेकी रहथि नित ॥ ३१ ॥

संयोग से क्या अजब जादू होता है। १८ जब सभी अंगों से युक्त शरीर में चैतन्य आ जाता है तो बाहर होकर वह बड़ा दुनियावी हो जाता है। १९ परमेश्वर ही इस जन्म-मरण के कष्ट को दूर करनेवाले हैं। शरीर में व्यापक रूप से उन्हीं का निवास रहता है। २० यदि अपने में अपने को पकड़ पाओगे तभी अभय पद पाओगे। २१ राजपाट, पत्नी, पुत्रादि परिवार, शरीर इनका आत्मा में कोई संस्पर्श न रह जाएगा। २२ पृथ्वी, जल आदि पदार्थों का जब प्रलयकाल में लोप हो जाएगा तब लोग तो मर जाएँगे पर आत्मा जीवित रहेगा। २३ जिनका न जन्म होता है और न मरण उन्हें निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। २४ उनका साक्षात्कार हो सकता है। यदि मोक्ष चाहते हो तो उनका चिन्तन-मनन करो। २५ जिस तरह तिल में तेल रहता है और दूध में घी रहता है उसी तरह विज्ञानरूप आत्मा हर प्राणी में रहता है। २६ उस विज्ञानस्वरूप आत्मा का मन से चिन्तन-मनन करो, तभी सुख मिलेगा, और कोई चारा नहीं।" २७ लक्ष्मण ने यह सुन हाथ जोड़कर कहा— "हे देवों के देव, दयालु, क्षमाशील राम, मुझे कुछ आध्यात्मिक उपदेश दीजिए।" २८-२९ तब राम ने निश्छल भाव से दिल खोलकर लक्ष्मण को सारा रहस्य समझाया। ३० लक्ष्मण के मन की सारी कामना पूरी हुई। वे सदा विवेकवान् ज्ञानी बने रहे। ३१ भगवान् राम सूरज के

॥ रूपमाला छन्द ॥

कहल तत शत्रुघ्न करयुग जोड़ि कें तहिठाम ॥ ५७ ॥
नाथ लक्ष्मण कयल बहु बेर असुर सौं संग्राम ॥ ५८ ॥
भरत नन्दीग्राम मे कृश नियम-संयमवान ॥ ५९ ॥
हमहिं लवणासुरक हन्ता होयब हे भगवान ॥ ६० ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनि शत्रुघ्नक वचन गभीर। समुचित कहल देव रघुवीर ॥ ६१ ॥
तनिकाँ लेल अङ्क आरोपि। देल दिव्य शर रघुवर सोंपि ॥ ६२ ॥
कहलनि यहिसौं शत्रु विनाश। करु शत्रुघ्न लाभ मन आश ॥ ६३ ॥
लक्ष्मण सौं सम्भार अनेक। मँगबाओल कयलनि अभिषेक ॥ ६४ ॥
राजा भेलहुँ अहाँ मथुराक। सकल मनोहर धर्म्म-धुराक ॥ ६५ ॥
लवणासुरक बिनाश - उपाय। जखना घर सौं कानन जाय ॥ ६६ ॥
नाना जन्तु पकड़ि कें खाय। के नहि तकरा डरय डराय ॥ ६७ ॥
तखनहिं हुनकर रोकब द्वारि। धनुषबाणधर लेबनि मारि ॥ ६८ ॥
शङ्कर देल शूल घर धयल। लवणासुर हिंसापथ अयल ॥ ६९ ॥
जेहन रघूत्तम कहल उपाय। से शत्रुघ्न कयल विधि जाय ॥ ७० ॥
आओत क्रुद्ध लड़त तनि मारि। मुनिजन-मनक कष्ट देब टारि ॥ ७१ ॥

जोड़कर कहा— "हे प्रभु, लक्ष्मण तो कई बार राक्षसों से लडाई कर चुके हैं। ५७-५८ भरत भी नन्दिग्राम में कठोर नियम-सयम से रहते हुए बहुत दुबले हो गये हैं। ५९ इसलिए हे भगवान्, लवणासुर को मारने का मौका मुझको दिया जाय।" ६० शत्रुघ्न की यह गहरी बात सुनकर भगवान् राम ने कहा— "तुम ठीक कहते हो।" ६१ फिर उन्हें स्नेह से गोद में उठा लिया और दिव्य बाण दिया। ६२ उन्होंने कहा— "इससे तुम शत्रु का संहार करोगे। हे शत्रुघ्न, तुम विजय की आशा करो।" ६३ लक्ष्मण को आदेश देकर उनसे अभिषेक के सामान मँगवाये और भरत का अभिषेक कर दिया और कहा— ६४ "तुम मथुरा के राजा हुए जो सभी नगरों से अधिक सुन्दर है, और धर्म में अगुआ है। ६५ अब लवणासुर को मारने का उपाय बताता हूँ। जब वह घर से निकलकर जंगल में जाता, तरह-तरह के प्राणियों को पकड़-पकड़कर खाने लगता है। उसके डर से कौन नहीं भाग जाता। ६६-६७ ऐसे ही मौके पर तुम उसके द्वार को छेंक लेना, और धनुष-बाण चलाकर उसे मार डालना।" ६८ लवणासुर शिव का दिया हुआ त्रिशूल घर में रखकर शिकार करने चल पड़ा। ६९ तब राम ने जैसा बताया था, शत्रुघ्न ने वैसा ही उपाय किया। ७० राम ने कहा— "वह आयेगा और गुस्साकर लड़ने लगेगा। उसे मारकर तुम मुनियों का कष्ट

हम छी ब्राह्मण-सभहिक भृत्य। करबे करब कहब जे कृत्य ॥ ४३ ॥
शुनि मुनि वचन कहय लगलाह। लवणासुरक कर्म्म अधलाह ॥ ४४ ॥
कृतयुग मध्य दैत्य मधु नाम। सुर-द्विजगणक भक्त सभठाम ॥ ४५ ॥
तनिकाँ देलनि शम्भु त्रिशूल। होयता भस्म अनलवत तूल ॥ ४६ ॥
रावण-अनुजा भार्य्या तनिक। कुम्भीनसी नाम छल जनिक ॥ ४७ ॥
तनि सौँ लवणासुर उत्पन्न। मुनि-हिंसक यज्ञादिक बन्न ॥ ४८ ॥
अयलहुँ शरण अशक्य पड़ाय। प्रभु रघुनन्दन होउ सहाय ॥ ४९ ॥
ई सङ्कष्ट हरत के आन। अयलहुँ शरण ताकि भगवान ॥ ५० ॥

॥ दोहा ॥

कहलनि सत्य-प्रतिज्ञ प्रभु, मरत दुष्ट निर्भीक ॥ ५१ ॥
नहि भय नहि भय सकल मुनि, लवणासुर की थीक ॥ ५२ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

मुनिजन काँ प्रभु कयल विदाय। तखन कहल प्रभु शुनु सभ भाय ॥ ५३ ॥
के मारत गय असुर प्रचण्ड। के धर समर तीर कोदण्ड ॥ ५४ ॥

॥ दोहा ॥

भरत राम महिपाल सौँ, प्रणत सुवचन उचार ॥ ५५ ॥
हम मारब खल लवण काँ, प्रभु-आज्ञा अनुसार ॥ ५६ ॥

अवश्य करूँगा।" ४३ सुनकर मुनि लोग लवणासुर के अत्याचार का वर्णन करने लगे। ४४ "सत्ययुग में मधु नाम का एक दैत्य था। वह सर्वत्र देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति भक्ति करता था। ४५ उसको शिव ने एक त्रिशूल दिया। वह जिसे लगेगा वह आग में रुई की तरह जल जाएगा। ४६ रावण की छोटी बहन, जिसका नाम कुम्भीनसी था, उसकी पत्नी थी। ४७ उसी के गर्भ से लवणासुर का जन्म हुआ। वह मुनियों की हिंसा करने लगा और यज्ञ आदि कर्म बन्द हो गये। ४८ हम लोग मजबूर होकर भाग आये हैं। हे राम! आप हम लोगों की सहायता कीजिए। ४९ हमें इस विपत्ति से और कौन बचाएगा? इसलिए खोजते-खोजते हम आपकी शरण में आये हैं।" ५० यह सुनकर सत्यवादी भगवान् ने कहा— "यह बेहया बदमाश अवश्य मरेगा। हे मुनियो, आप लोगों को कोई डर नहीं, कोई डर नहीं। मेरे सामने यह लवणासुर क्या है?" ५१-५२ यह कहकर राम ने मुनियों को विदा किया। उसके बाद अपने भाइयों से कहा— "हे भाइयो, सुनो। इस आततायी राक्षस को कौन मारेगा? लड़ाई के लिए कौन तीर-धनुष उठाएगा?" ५३-५४ भरत ने राजा राम से विनयपूर्वक कहा— ५५ "आपकी आज्ञा हो तो मैं इस दुष्ट लवणासुर को मारूँगा।" ५६ तब शत्रुघ्न ने वहाँ दोनों हाथ

वैदेही - सुत युगल समान। त्रिभुवन कतहुँ शुनल नहि गान ॥ ८७ ॥
मुनिजन शुनथि सहित अनुराग। समय समय गाबथि से राग ॥ ८८ ॥

॥ सोरठा ॥

प्रथमहि भैरव राग, मालकोश हिण्डोल पुन ॥ ८९ ॥
श्रवण-मनोहर लाग, दीपक श्री ओ मेघ षट ॥ ९० ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

सुस्वर सरस सराग मधुरतर, सालङ्कार प्रमाण ॥ ९१ ॥
स्वर पद छन्द सुताल सुलय युत, युगलकुमर कर गान ॥ ९२ ॥

॥ चौपाइ ॥

स ऋ ग म प ध नी ई स्वर सात। स्वर-प्रस्तार वदन अवदात ॥ ९३ ॥
उच्च निषाद तथा गान्धार। नीच ऋषभ धैवत उच्चार ॥ ९४ ॥
स्वरित स्वर हो यहि सौं आन। कुश लव शिव सुगीति कौं जान ॥ ९५ ॥
षड्ज स्वर रट मत्त मयूर। चातक रटय ऋषभ स्वर पूर ॥ ९६ ॥
अजा उचार करय गान्धार। माध्यम स्वर कौं क्रौञ्च उचार ॥ ९७ ॥
कोकिल पंचम स्वर कर गान। धैवत मण्डुक-वचन समान ॥ ९८ ॥
स्वर निषाद गर्जित गजराज। राग कुशीलव - कण्ठसमाज ॥ ९९ ॥
हास्य शृङ्गार गीत शुभ बेरि। पञ्चम मध्यम स्वर कौं टेरि ॥१००॥
वीर रौद्र अद्‌भुत प्रस्ताव। षड्ज ऋषभ स्वर कौं से गाव ॥१०१॥

गान सीता के ये दोनों कुमार गाते वैसा तीनों भुवनों में कहीं नहीं सुना। ८७ मुनि लोग वह गान चाव से सुनते और स्वयं भी वह राग गाते। ८८ भैरव, मालकोश, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ ये छः राग सुनने में बड़े अच्छे लगते। ८९-९० ये कुमार जो गाते थे उसमें ठीक स्वर, रस, राग, अलंकार, छन्द, ताल और लय होते थे। ९१-९२ स-रे-ग-म-प-ध-नि ये सात स्वर होते हैं, फिर इन सातों के प्रस्तार (विभिन्न प्रकार के विन्यास) से उनका गला एकदम साफ़ हो चुका था। ९३ निषाद और गान्धार उच्च स्वर हैं; ऋषभ और धैवत नीच स्वर हैं। ९४ इनसे भिन्न स्वर अर्थात् स, म, और प, स्वरित हैं। कुश और लव शैव-सिद्धान्त के अनुसार गाते थे। ९५ षड्ज स्वर में मतवाला मयूर बोलता है, ऋषभ स्वर में चातक रहता है, बकरी गान्धार स्वर का उच्चारण करती है, क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर में बोलता है, कोयल पंचम स्वर में गाता है, मेंढक धैवत स्वर उचारता है, और हाथी निषाद स्वर में चिंघाड़ता है। राग कुशी-लवों के कंठ में रहते हैं। ९६-९९ शुभ अवसर पर हास्य और शृंगार रस के गीत पंचम और मध्यम स्वर में गाये जाते हैं। १०० वीर, रौद्र और अद्‌भुत रस षड्ज और ऋषभ स्वरों में गाये जाते हैं। १०१ करुण रस के विषाद-गीत गान्धार और निषाद स्वर में गाये

ओ वन सुन्दर मधुबन नाम। ततहि करब अहँ सुन्दर धाम ॥ ७२ ॥
आयत घोड़ा पाँच हजार। तकर अर्द्ध रथ सहित सवार ॥ ७३ ॥
षटशत वारण बर सम्पत्ति। आओत तीनि अयुत तत पत्ति ॥ ७४ ॥
भ्राता काँ लेल हृदय लगाय। आशिष दय कहु कहल विदाय ॥ ७५ ॥
जेहन रीति कहल छल राम। तेहने कयल जाय संग्राम ॥ ७६ ॥
मधुसुत काँ मारल संग्राम। मथुरा जनपद कयलनि धाम ॥ ७७ ॥
सीता काँ जनमल सुत यमल। विधुमुख लोचन सौँ जित कमल ॥ ७८ ॥
मुनि-बनितागण सोहर गाब। हर्षक नोर नयन भरि आब ॥ ७९ ॥
तनिकर नामकरण मुनि कयल। कुश लव नाम क्रमहि सौँ धयल ॥ ८० ॥
सीता-बालक युगल विनीत। भेला मुनिजन सौँ उपनीत ॥ ८१ ॥
क्रम क्रम विद्या पढ़लनि ढरि। हो अभ्यास सुनथि एक बेरि ॥ ८२ ॥
सीता-तनय रूप-गुण-अयन। विधि सौँ कयलनि बेदाध्ययन ॥ ८३ ॥
सकल रामायण देल पढ़ाय। मुनि वाल्मीकि सुप्रीति बढ़ाय ॥ ८४ ॥
स्वर-सम्पन्न सुयुगल कुमार। तन्त्रीलययुत गाब उदार ॥ ८५ ॥
वन चलयित मुनि-जन जे शून। अति आश्चर्य मनहि मन गून ॥ ८६ ॥

दूर करना। ७१ वह जो सुहावना जंगल मधुवन का है वहीं तुम अपनी राजधानी बनाना। ७२ सवार-सहित पाँच हज़ार घोड़े भेजूँगा और उसका आधा रथ। ७३ छः सौ हाथी भेजूँगा और तीस हज़ार पैदल सैनिक।" ७४ यह कहकर राम ने शत्रुघ्न को गले से लगा लिया और आशीर्वाद देकर विदा किया। ७५ राम ने जैसा ही कहा था शत्रुघ्न ने उसी के अनुसार लड़ाई की। ७६ मधु के पुत्र लवणासुर को लड़ाई में मार डाला और मथुरा में अपनी राजधानी बनाई। ७७

कुश और लव का जन्म और शिक्षा-दीक्षा

सीता के जुड़वाँ पुत्र हुए। दोनों बच्चों के मुँह चाँद को और आँखें कमल को पराजित करनेवाली थीं। ७८ मुनि की पत्नियाँ जन्मोत्सव-गीत सोहर गाने लगीं। उनकी आँखों में हर्ष के आँसू भर आये। ७९ वाल्मीकि ने उन दोनों का नामकरण-संस्कार किया और क्रमशः कुश तथा लव नाम रखे। ८० कालक्रमेण सीता के दोनों कुमारों का मुनियों ने उपनयन-संस्कार किया। ८१ उन्होंने बहुत-सी विद्याएँ पढ़ीं। जो एक बार सुनते थे वह याद हो जाता था। ८२ रूप और गुणों से भरे सीता के दोनों पुत्रों ने ब्रह्मा से वेद पढ़ा। ८३ मुनि वाल्मीकि ने सारी रामायण पढ़ा दी। ८४ दोनों कुमारों का गला मीठा था। वे वीणा के लय पर शानदार गाते थे। ८५ वन में जाते हुए जो मुनि लोग सुनते, वे मन-ही-मन बड़ा अचरज करते। ८६ जैसा

मुनि वाल्मीकि कहय लगलाह। दिव्य समाधि सुखी जगलाह॥ ११७॥
थिकथि चिदात्मा सतत अदेह। देह दृष्ट ई तानकर गेह॥ ११८॥
मन्त्री थिकथि तनिक अभिमान। अपनहिँ तनिकाँ कयल प्रधान॥ ११९॥
तन-तादात्म्य चलल विस्तार। दृढ़ सङ्कल्प निगड़ व्यवहार॥ १२०॥
पुत्र दार गृह आदि अनेक। सभमे ममता बढ़ल अनेक॥ १२१॥
कय सङ्कल्प करथि पुन शोच। संसृति नाना तरहक रोच॥ १२२॥
उत्तम मध्यम अधम शरीर। सत्त्वरजस्तम सभ मे फीर॥ १२३॥
तमोवृद्धि पर गुण हो ह्रास। कृमिकीटादिक होथि प्रकाश॥ १२४॥
सत्त्व - रूप सङ्कल्प प्रधान। सतत परायण धर्मसंज्ञान॥ १२५॥
बड़ साम्राज्य अदूर सुमोक्ष। विद्यमान सुख हो अपरोक्ष॥ १२६॥
रजोरूप सङ्कल्प प्रभाव। सद्व्यवहार विशुद्ध स्वभाव॥ १२७॥
पुत्र दार धन सम्पत्ति पाब। रजोगुणक नृपति बनि आब॥ १२८॥
त्रिविध त्याग सङ्कल्प - विहीन। मन सौँ मनन न होयब दीन॥ १२९॥
वर्ष सहस्र बहुत तप करब। सुख दुख चक्र सतत सञ्चरब॥ १३०॥

वाल्मीकि मुनि अलौकिक समाधि से जागकर सुखपूर्वक कहने लगे— ११७ "चैतन्यस्वरूप आत्मा सदा शरीर से अलग होता है। यह जो शरीर देखा जाता है, वह उसका घर है। ११८ अभिमान उस आत्मा का मन्त्री है। आत्मा ने स्वयं उसे प्रधान बना दिया है। ११९ आत्मा की शरीर से अभिन्नता का मिथ्या ज्ञान फैलता गया। दृढ़ संकल्प अर्थात् कर्म के प्रति आग्रह बेड़ी-जैसा है। १२० बेटा, स्त्री, घर-द्वार आदि जो भी चीजें हैं, सबमें ममता बढ़ती गई। १२१ लोग स्वय संकल्प करते और स्वयं पछताते। संसार में नाना प्रकार का आकर्षण होता है। १२२ जीव को सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों के प्रभाव से क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के शरीरों से गुजरना पड़ता है। १२३ तमस् के बढ़ने से गुण में कमी आती है और कीड़ों-मकोड़ों का शरीर प्राप्त होता है। १२४ सत्त्व प्रधान संकल्प होने से सदा धर्म और ज्ञान की ओर प्रवृत्ति होती है। १२५ बड़ा साम्राज्य मिलता, मोक्ष की प्राप्ति निकट हो जाती है, और प्रत्यक्ष सुख मिलने लगता है। १२६ रजस्-प्रधान संकल्प होने से अच्छा बरताव और परम निश्छल स्वभाव मिलता है। १२७ पुत्र, स्त्री और धन-दौलत पाता है और रजोगुण वाला राजा बनता है। १२८ तीनों प्रकार के संकल्प से दूर रहो। मन से चिन्तन-मनन करते रहो। कभी दीनता न आएगी। १२९ हजार वर्षों तक कठोर तपस्या करोगे; सुख और दुख के चक्र में सदा घूमते रहोगे। १३० जो पाँच इन्द्रिय, मन और ज्ञान से युक्त रहते तथा बुरी

गीति करुणरस रीति विषाद। स्वर गान्धार प्रचार निषाद॥ १०२॥
गीत विभत्स भयानक जखन। धैवत स्वर उच्चारक तखन॥ १०३॥
एकइस गोट मूर्छना नाम। बाइश श्रुति सम्मति तेहिठाम॥ १०४॥
अथवा श्रुति कह चौदह गोटि। चौदह गोटि मूर्छना कोटि॥ १०५॥
रामायण कर कुश लव गान। हरिण हजार सुनथि दय कान॥ १०६॥
नहि तालक न राग अवमान। कुश लव कुशल सकल मत जान॥ १०७॥
अथ एक समय राम महिपाल। अश्वमेध मख करथि विशाल॥ १०८॥
विधि आरम्भ करय लगलाह। सकल निमन्त्रित मुनि चललाह॥ १०९॥
कनकमयी सीता निर्म्माय। यज्ञ कयल जन देखय जाय॥ ११०॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यक जाति। मन घन उत्सव चल दिन राति॥ १११॥
मुनि वाल्मीकि कयल प्रस्थान। कुश लव शिष्य सङ्ग भगवान॥ ११२॥
ऋषि बाटक लग जखन गेलाह। सुमुनि समाधि-विरत भेलाह॥ ११३॥
कुश पुछलनि गुरु कौं तत जाय। ज्ञात सकल गुरु-सेवा पाय॥ ११४॥
देही कौं संसृति सौं बन्ध। अथवा मुक्ति-युक्ति निर्द्वन्ध॥ ११५॥
कहल जाय गुरु हमरा आज। सेवक शिष्य अनन्य समाज॥ ११६॥

जाते। १०२ जब बीभत्स या भयानक रस में गीत गाना हो तब धैवत स्वर को अपनाएँ। १०३ संगीत में इक्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं और बाईस श्रुतियाँ। १०४ दूसरा मत है कि चौदह श्रुतियाँ होती हैं और चौदह मूर्च्छनाएँ। १०५ जब कुश और लव रामायण गाने लगते थे तो हज़ारों हिरन कान देकर सुनने लगते। १०६ न कहीं ताल टूटता, न राग बिगड़ता। कुश और लव संगीत के सभी मतों के ज्ञाता थे। १०७

राम का अश्वमेध यज्ञ करना; गुरु के साथ कुश और लव का वहाँ प्रस्थान

एक समय राजा राम ने अश्वमेध यज्ञ का विशाल आयोजन किया। १०८ यज्ञ का कर्म शुरू हुआ। जितने मुनि आमन्त्रित थे, सभी यज्ञ देखने चले। १०९ सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया गया। सभी लोगों ने जा-जाकर देखा। ११० ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जातियों के लोगों के मन में दिन-रात उछाह रहता था। १११ यज्ञ देखने के लिए अपने शिष्य कुश और लव को साथ लिये मुनि वाल्मीकि भी चल पड़े। ११२ जब वाल्मीकि रास्ते के बगल में समाधि लगाकर उससे निवृत्त हुए, ११३ कुश ने वहाँ जाकर गुरु से पूछा— "गुरु की सेवा का अवसर पाकर मुझे सारा ज्ञान प्राप्त हुआ है। क्या आत्मा को जन्म और मरण का बन्धन रहता है? अथवा वह चिन्ता-रहित मुक्त रहता है? ११४-११५ हे गुरु, आज मुझे यह बताइये। शिष्य आपका सेवक है और एकान्त अवसर मिला है।" ११६ यह सुनकर

मन दय शुनल तनिक प्रभु गान। त्यागल मन प्रवृत्ति सुख आन ॥ ८ ॥
पाठ अपूर्व्व जाति भल छन्द। गेय-समन्वित कर आनन्द ॥ ९ ॥
प्रभु-मन भेल शुनब हम गान। करब सदस-दश मे सम्मान ॥ १० ॥
अथ प्रभु कां कर्म्मान्तर काज। सभा बजाओल राजसमाज ॥ ११ ॥
मुनि पण्डित पटुतर प्राचीन। पौराणिक संशय सौँ हीन ॥ १२ ॥
सकल - शास्त्र - वेत्ता जन अयल। निज जन सहित सभा प्रभु कयल ॥ १३ ॥
कुश लव गायन कां अनबाय। स्वागत-सहित विहित जे न्याय ॥ १४ ॥
कुश लव छवि देखल तहिठाम। अनिमिष - लोचन भेला राम ॥ १५ ॥
सभा परस्पर सभ जन बाज। गायन तुल्यरूप महराज ॥ १६ ॥
वल्कलि जटिल न रहितथि बाल। तौँ समतूल राम महिपाल ॥ १७ ॥
राघव सौँ नहि बुझि पड़ आन। कथा करथि सभ कानहिँ कान ॥ १८ ॥

॥ सोरठा ॥

कुश लव कयलनि गान, मधुर मधुरतर शुद्धस्वर ॥ १९ ॥
शुन गान्धर्व्व जे कान, साधु साधु कह सभ्य सभ ॥ २० ॥
यहन शुनल नहि साम, सकल सभा मन-हरण धुनि ॥ २१ ॥
कहल भरत कां राम, देबक हिनकां अयुत धन ॥ २२ ॥

ध्यान से वह गीत सुनते रहे। उनका मन अन्य सारे सुख को भूल गया। ८ उस गीत की पंक्तियाँ, उसकी जाति और छन्द अजीब थे। संगीत से युक्त होकर वह आनन्द कर देता था। ९ राजा राम को मन हुआ कि वे गान सुनेंगे और दस सभासदों के बीच उनका सम्मान करेंगे। १० तब राम को जब राजकाज से फुरसत हुई तब अन्य काम के लिए राजभवन में सभा बुलाई। ११ उस सभा में मुनि लोग आये, विज्ञ प्राचीन पण्डित लोग आये और पुराणवेत्ता आये, जिन्हें अपने-अपने शास्त्रों में कहीं सन्देह नहीं था। १२ सभी शास्त्रों के विद्वान् आये। राजा राम अपने परिजनों-सहित सभा में उपस्थित हुए। १३ तब गायक कुश और लव को बुलवाया और यथोचित रीति से उनका स्वागत-सत्कार किया। १४ राम कुश और लव की छवि देखते ही एकटक हो गये। १५ सभा में सभी एक-दूसरे से कहते— "अजी, ये दोनों गायक तो राजा राम जैसे लगते हैं। १६ यदि इनके वल्कल और जटा न होती तो ये हू-ब-हू राम के समान लगते।" १७ सभी कानाफूसी करते हैं, लगता है, यह रघुवंशी के सिवा और कोई नहीं। १८ तब कुश और लव ने शुद्ध स्वर में मधुर से भी मधुर गान किया। जिस-जिस सभासद ने वह गान सुना, वाह-वाह करने लगा। १९-२० राम ने भरत से कहा— "सारी सभा के मन को हरनेवाली धुन में ऐसा साम-गान तो मैंने सुना ही नहीं था। इन्हें दस लाख स्वर्ण-मुद्राएँ दी जाएँ।" २१-२२ जब भरत देने

रहथि पांच मन ज्ञान समेत। मति न विचेष्टा चलथि निकेत ॥ १३१ ॥
कहथि परम गति श्रुति-सिद्धान्त। तनिके नाम कहथि बुध शान्त ॥ १३२ ॥
जखन छूटत सङ्कल्पक जाल। जोव ब्रह्मता लह तत्काल ॥ १३३ ॥
कुश लव कुशल रहब सभठाम। वृत्त सुषुप्त चित्त विश्राम ॥ १३४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

काज न करब एक अगुताय। ई देल मुनि वाल्मीकि शिखाय ॥ १ ॥
रामचन्द्र बड़ गोट महराज। आयल छी अहँ तनिक समाज ॥ २ ॥
शुनता जखना अहँ मुह गीति। बाढ़त तनिकाँ अहँ मे प्रीति ॥ ३ ॥
अनतय गायब पड़तनि कान। होयता बड़ प्रसन्न भगवान ॥ ४ ॥
शुनता सभामध्य मँगबाय। गायब गीत चरित-समुदाय ॥ ५ ॥
ओ सन्तुष्ट देता धन ढेरि। ग्रहण न अहाँ करब तहि बेरि ॥ ६ ॥
बाहर बाहर कुश-लव-गान। रामचन्द्र काँ पड़लनि कान ॥ ७ ॥

क्रियाओं में बुद्धि नहीं लगाते हुए अपने घर अर्थात् शरीर में चलते हैं, १३१ उनकी इसी अवस्था का वेद के सिद्धान्त के अनुसार परमगति कहते हैं। उन्हीं को विद्वान् लोग शान्त कहते हैं। १३२ जब संकल्प रूपी जाल छूट जाएगा, तब जीव तुरत ब्रह्म हो जाएगा। १३३ हे कुश और लव, तुम सभी जगह प्रसन्न रहोगे, जब तुम्हारी सारी वृत्तियाँ सुषुप्त हो जाएँगी, और चित्त विश्रामावस्था में आ जाएगा। १३४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

कुश और लव के गीतों का राम के कान में पड़ना; राम द्वारा उनकी पहचान; सीता का बुलाया जाना और धरती में प्रवेश

वाल्मीकि मुनि ने सिखाया— "कोई काम हड़बड़ा कर मत करना। १ रामचन्द्र बहुत बड़े महाराज हैं। तुम उनके पास जा रहे हो। २ जब वे तुम्हारे मुंह से गान सुनेंगे तब उन्हें तुम पर बड़ा स्नेह हो जाएगा। ३ अन्यत्र कहीं गाना। स्वर राजा के कान में पड़ेगा। वे बड़े प्रसन्न होंगे। ४ वे तुम्हें सभा (दरबार) में बुलवाकर गान सुनेंगे। तुम रामचरित का गीत गाना। ५ वे खुश होकर बहुत धन देंगे, लेकिन तुम वहाँ लेना नहीं।" ६ रामचन्द्र को बाहर से हो कुश-लव का गीत सुनाई पड़ा। ७ कुछ देर वे

मिथ्या जन अपवाद लगाव। पातक रुचि जनु मन निधि पाब ।। ३७ ।।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यक जाति। देखय आयल शूद्र जमाति ।। ३८ ।।
अयला ततय महर्षि अनेक। वानर-वृन्द सुभक्ति विवेक ।। ३९ ।।
मुनि वाल्मीकि शीघ्र अयलाह। वैदेही काँ सङ्ग लयलाह ।। ४० ।।
चलति अधोमुखि मुनि चल आगु। गदगदकण्ठ सती भय त्यागु ।। ४१ ।।
लक्ष्मी सनि अयली मख ताहि। साधुवाद बाढ़ल धुनि जाहि ।। ४२ ।।
सीता काँ वाल्मीकि सहाय। सती-शिरोमणि समुचित न्याय ।। ४३ ।।
कहलनि मुनि वाल्मीकि विचारि। सती शिरोमणि सीता नारि ।। ४४ ।।
त्यागल पर-अपवादक भीति। अहह रघूत्तम कयल अनीति ।। ४५ ।।
हमरा आश्रम छलनि निवास। पति-व्रत-रत मन छलि निस्त्रास।। ४६ ।।
ई कुश लव छथि अहँक किशोर। शुनथि रघूत्तम बह दृग नोर ।। ४७ ।।
यमल जात एक तरहक गात। जेहने अपने हिनकर तात ।। ४८ ।।
वरुणक हम छी दशम कुमार। शपथ करैं छी बारंबार ।। ४९ ।।
तप-फल हमरा आब न काज। जौँ दुष्टा सीता महराज ।। ५० ।।
शुनि मुनि-वचन कहल पुनि राम। दृढ़ प्रतीति हमरहु एहिठाम ।। ५१ ।।

होनी चाहिए। ३६ जिसे पापकर्मों में चाव रहता है वही लोगों मे झूठा कलंक फैलाता है। इससे उसे लगता जैसे कोई बड़ा खज़ाना मिल गया। ३७ दल बना-बनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग देखने आये। ३८ वहाँ अनेक महर्षि लोग आये और भक्ति एवं ज्ञान वाले कपिगण आये। ३९ वाल्मीकि मुनि सीता को साथ लिये शीघ्र आ गये। ४० आगे-आगे मुनि चलते थे और पीछे सर झुकाये सीता थी। मुनि गद्गद स्वर में कहते थे— "हे सती सीता, तुम डरो नहीं।" ४१ लक्ष्मी के समान सीता यज्ञस्थल में आईं। साधु-साधु की ध्वनि गूंज उठी। ४२ सीता को एकमात्र वाल्मीकि सहारा थे— उन्होंने भरोसा दिया— "हे सतीशिरोमणि, तुम्हें उचित न्याय मिलेगा।" ४३ मुनि वाल्मीकि ने सोच-समझकर कहा— "सीता सतीशिरोमणि है। ४४ लोकापवाद के डर से, हे रघुकुलश्रेष्ठ, आपने जो इसे त्यागा वह इसके प्रति अन्याय किया। ४५ यह मेरे आश्रम मे रहती थी। इसका मन सदा पतिव्रत में लगा रहता था। वहाँ इसे किसी का डर नहीं था। ४६ ये कुश और लव आपके पुत्र हैं।" यह सुनते ही राम की आँखों से आँसू गिरने लगे। ४७ फिर वाल्मीकि ने कहा— "इनका जन्म जुड़वाँ हुआ है। दोनों का चेहरा एक-सा है। ये ठीक वैसे ही लगते हैं जैसे आप इनके पिता। ४८ मैं वरुण का दसवाँ पुत्र हूँ। बार-बार शपथ करके कहता हूँ। ४९ हे महाराज, यदि सीता कुलटा हो तो मेरा कोई जप-तप काम न आवे।" ५० मुनि वाल्मीकि की बात सुनकर फिर राम ने कहा—

॥ चौपाइ ॥

अखन सुवर्ण देबय लगलाह। कुश लव तखनहि कहि चललाह ॥ २३ ॥
हम बन बसी कन्द फल खाइ। धनसंग्रह सपनहुँ नहि जाइ ॥ २४ ॥
ई कहि मुनि-सन्निधि संप्राप्त। रामचन्द्र - मन विस्मय व्याप्त ॥ २५ ॥
बुझलनि वैदेहीक कुमार। पुरुष आन के यहन उदार ॥ २६ ॥
कहलनि प्रभु शत्रुघ्न बुझाय। हिनकाँ सभ काँ लाउ बजाय ॥ २७ ॥
जनिकर जनिक कहै छी नाम। सत्वर आबथु सभ यहिठाम ॥ २८ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

मारुत-पुत्र सुषेण विभीषण, अङ्गद वालमीकि बजबाउ ॥ २९ ॥
सीता-सहित रहित दुर्जन सौँ, वैदेही सौँ शपथ कराउ ॥ ३० ॥
रामक उक्ति कहल सभजन काँ, कहलनि मुनि पुनि सुनिकैँ नीक ॥ ३१ ॥
प्रातहि शपथ करति महि-तनया, न्याय नृपति काँ उचिते थीक ॥ ३२ ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

नारी सभ काँ परमदेव पति, गति नहि तनिकाँ आन ॥ ३३ ॥
मुनि-रघुबर-संवाद सकल जन, सुनलनि कानहिँ कान ॥ ३४ ॥

॥ चौपाइ ॥

कहलनि रघुवर काँ मुनिराज। करती सीता शपथ जे आज ॥ ३५ ॥
सकल शुभाशुभ जानथु लोक। देखथु आबि रोक नहि टोक ॥ ३६ ॥

लगे तब कुश और लव ने कहा— २३ "हम तो वन में रहते हैं और कन्द-मूल-फल खाकर जीते हैं। धन-संचय करना तो सपने में भी नहीं सोचा।" २४ यह कहकर वे दोनों मुनि वाल्मीकि के पास चले गये। रामचन्द्र को भारी विस्मय हुआ। २५ उन्हें समझ में आ गया कि ये सीता के लड़के हैं। इतना उदार और कौन हो सकता है। २६ राम ने शत्रुघ्न को समझाकर कहा— "इन सबों को बुला लाओ। २७ जिनका-जिनका नाम मैं बताता हूँ, वे सभी जल्द यहाँ आवें। २८ पवनसुत हनुमान, सुषेण, विभीषण, अंगद और वाल्मीकि इन सबों को बुलाओ। २९ सीता भी आवें, लेकिन कोई दुर्जन न आने पावे। उन सबों के बीच सीता से शपथ कराओ।" ३० शत्रुघ्न ने राम की यह बात सबों से कही। मुनि वाल्मीकि ने सुनकर कहा— "ठीक है। ३१ कल सुबह ही धरती की बेटी सीता शपथ करेंगी। राजा का न्याय करना तो धर्म ही है। ३२ स्त्री के लिए पति ही सबसे बड़ा देवता है। स्त्री को और कोई दूसरा सहारा नहीं है।" ३३ राम और वाल्मीकि के बीच जो संवाद हुआ वह कानों-कान सबों को मालूम हो गया। ३४ वाल्मीकि ने राम से कहा— "आज सीता शपथ करेंगी। ३५ भला या बुरा सभी लोग जान लें। सभी आकर के देखें। किसी की रोक-टोक नहीं

खल - उपहास - तम - शमन उदित भेल।
सज्जन - मानस - कञ्ज - बोध सत्य - तरणी ॥ ६४ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

फणिपति-फणवर-सिंहासन-वर, तेहि ऊपर भूदेवि विराज ॥ ६५ ॥
धरणी-विवर उपर जन देखल, बड़ अद्भुत मन मानल काज ॥ ६६ ॥
पुत्रि पुत्रि कहि कहि सीता काँ, ओ लेल अङ्क अपन आरोपि ॥ ६७ ॥
गेलि पाताल सहित फणिपतिसौँ, विवर मृतिकासौँ दय थोपि ॥ ६८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयल अमरगण सुमनक वृष्टि। उठि गेल महि सौँ सीता-सृष्टि ॥ ६९ ॥
सतीशिरोमणि एहनि के आन। धन्या कहि कहि कर जन ध्यान ॥ ७० ॥
सीता-गुण-गण सब जन गाब। रघुनन्दन मन चिन्ता आब ॥ ७१ ॥
प्रभुक स्रवित लोचन मुख ताकि। बाँचथि राम सभहि मन चाँकि ॥ ७२ ॥
मारुतसुत स्वामिनि कहि कान। लभ सौँ हा हत विधि बलवान ॥ ७३ ॥
रामचन्द्र मूर्छित खसलाह। शोक-समुद्र विवश भसलाह ॥ ७४ ॥
रघुवर निकट विकल जन आब। कनइत प्रभु प्रभु कहथि जगाब ॥ ७५ ॥
क्षण मे क्य गेल आनक आन। जगलहुँ अनमन सन भगवान ॥ ७६ ॥
करुण कलाप अश्व - क्रतु छन्न। विहित यज्ञ विधि भय गेल बन्न ॥ ७७ ॥

रूपी सूर्य उदित हो गये। दुष्ट लोगों के द्वारा फैलाया गया अपवाद रूपी अन्धकार दूर हो गया। सज्जनों के मन रूपी कमल खिल उठे।" ६४ धरती फट गई। ऊपर से फाँक में लोगों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। शेषनाग के फन पर पृथ्वीदेवी बैठी हुई हैं। ६५-६६ पृथ्वीदेवी ने पुत्री, पुत्री पुकारकर सीता को गोद में ले लिया। ६७ शेषनाग-सहित वह पाताल चली गईं और जाते समय उस फाँक का मुँह मिट्टी से बन्द कर दिया। ६८ देवताओं ने फूल बरसाये। धरती पर से सीता की लीला समाप्त हो गई। ६९ लोग याद करने लगे— ऐसी सतीशिरोमणि और कौन होगी? धन्य हैं, वे धन्य हैं। ७० सभी लोग सीता के गुण गाने लगे। किन्तु राम चिन्ता में डूब गये। ७१ अजस्र आँसू बहाते राम के चेहरे को देखकर लोग चिन्ता करने लगे कि राम कहीं प्राणत्याग न कर दें। ७२ हनुमान "हे स्वामिनी" पुकार-पुकारकर रोने-बिलखने लगे— "हाय, विधाता सबसे ऊपर होता है।" ७३ राम बेहोश हो गिर पड़े। विवश हो शोक-समुद्र में बह गये। ७४ व्याकुल हो लोग राम के पास आते और रोते-रोते "हे प्रभु, हे प्रभु" पुकारकर उन्हें होश में लाते। ७५ अरे, क्षण भर में क्या से क्या हो गया! होश में आने पर भी प्रभु राम अन्यमनस्क-से लगते हैं। ७६ अश्वमेध यज्ञ के उछाह में करुण भाव छा गया। यज्ञ की क्रिया बन्द हो गई। ७७

अपनेक बचन शुनल हम कान । एहि सौं प्रत्यय अछि की आन ॥ ५२ ॥
पूर्व्वहुँ सीता लङ्का-देश । जनित प्रतीति अनल-परवेश ॥ ५३ ॥
साधुवाद सुरगण-मुख शून । निज घर आनू सीता पून ॥ ५४ ॥
क्षमा करब मुनि नृपता दोष । त्यागल सती-शिरोमणि रोष ॥ ५५ ॥
थिकथि कुशीलव हमरे तनय । कयल बहुत हम साहस अनय ॥ ५६ ॥
ब्रह्मा इन्द्र देवगण सकल । देखथि राम-चरित निर्व्विकल ॥ ५७ ॥
प्रजा सकल मन नव सुख-सृष्टि । त्यागल राम आज दुर्दृष्टि ॥ ५८ ॥

॥ सारवती छन्द ॥

आइलि-जानकि देवसभा, श्रीमति चम्पक हेमनिभा ॥ ५९ ॥
आनत वारिज-श्रीवदना, प्राञ्जलि भाष जगत्सदना ॥ ६० ॥

॥ मिथिलासङ्गीतानुसारि मालो छन्द ॥

शुनु शुनु सकल सदस्य सत्यकरणी ।
शपथ करै छी आज रघुवर-घरणी ॥ ६१ ॥
मनसहुँ आनक चिन्तना नहि कयलहुँ ।
रघुबर-पति-आश सर्व्व-शोक-हरणी ॥ ६२ ॥
सत्य पतिव्रत जौं तनय दुहु प्रभुहिक ।
हमरा विवर देती माता देवी धरणी ॥ ६३ ॥

"इस बात पर मुझे भी पक्का विश्वास है । ५१ आपकी बात मैंने अपने कानों से सुनी । भला इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा ? ५२ सीता लंका में रही, अतः पहले ही अग्नि में प्रवेश करके वह अपना सतीत्व प्रमाणित कर चुकी है । ५३ देवताओं के मुँह से साधु-साधु की आवाज के साथ सुन रहा हूँ कि फिर सीता को अपने घर लाइए । ५४ हे मुनि, राजा होने के कारण मुझसे गलती हुई कि मैं क्रोध में पड़कर सतीशिरोमणि सीता को त्याग दिया । मेरा यह अपराध आप क्षमा करें । ५५ ये कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं । मैंने बहुत साहस और अन्याय किया ।" ५६ ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता लोग एकटक राम के चरित को निहार रहे थे । ५७ सारी प्रजा के मन में नये आनन्द की लहर उठी— आखिर आज राम का भ्रम टूटा । ५८ चम्पा और सोने के समान चमकती हुई सीता राम की सभा में आई । ५९ उनका कमल-सा मुख झुका हुआ था । घट-घट में व्याप्त शक्तिरूपा सीता बोलीं— ६० "सुनिये, सभी सभासदो, सुनिये मेरी सच्ची बात । मैं रामचन्द्र की पत्नी आज शपथ करती हूँ । ६१ मैंने कभी मन में भी पर-पुरुष की भावना नहीं की । मुझे सभी शोकों का हरण करनेवाले पति रामचंद्र की ही सदा आशा रही है । ६२ यदि मेरा सतीत्व सच्चा होगा तो ये दोनों पुत्र आपके हैं; मुझे माता धरती अपने गर्भ में जगह देगी । ६३ आज सत्य

एत छति जौं हम जनितहुँ, की मनितहुँ, ॥ ९३ ॥
अरजि अरजि दुख कनितहुँ ॥ ९४ ॥
लगइत छल गृह गृहंसन, विधि परसन, ॥ ९५ ॥
दुर्लभ पुन हुनि दरशन ॥ ९६ ॥
गुणवति रमणि बिसरलनि, दुख पड़लनि, ॥ ९७ ॥
उचित धरणि धनि हरलनि ॥ ९८ ॥
आब कि हम सुख पायब, कत जायब, ॥ ९९ ॥
चिन्तित जनम गमायब ॥ १०० ॥
करब न हम नृपतिक सुख, बड़ मन दुख, ॥ १०१ ॥
कत विधु कत जानकि - मुख ॥ १०२ ॥
धरणी-गर्भ चलक बेरि, ई मुख हेरि, ॥ १०३ ॥
कयल प्रणाम बहुत बेरि ॥ १०४ ॥
सुखित सतत ओ रहतीह, दुख कहतीह, ॥ १०५ ॥
सर्वसहा सनि सहतीह ॥ १०६ ॥
हमहिं वियोग-विकल मन, नहि सुख छन, ॥ १०७ ॥
बिफल बुझल मल जन धन ॥ १०८ ॥
रहितहुँ सुखित मिलित कोक, को सुरलोक, ॥ १०९ ॥
विधिक लिखल के जन रोक ॥ ११० ॥

ऐसा अनर्थ हो जाएगा तो दुर्जनों की बात न मानता, खुद अरज-अरजकर दुख नहीं झेलता। ९३-९४ साता थी तो घर घर-सा लगता था, और लगता था कि विधाता प्रसन्न है। पर अब तो उसके दर्शन भी दुर्लभ हो गये। ९५-९६ मेरी गुणवती प्रिया मुझे भूल गई। उसे बहुत दुख झेलना पड़ा। पृथ्वी जो सीता को मुझसे छीनकर ले गई सो उसने उचित ही किया। ९७-९८ अब मुझे क्या सुख मिलेगा ? सूझता नहीं कि कहाँ जाऊँ ? चिन्ता में ही सारी जिन्दगी बितानी होगी। ९९-१०० अब मैं राजसुख नहीं भोगूँगा। मन में बड़ी व्यथा है। कहाँ चाँद और कहाँ सीता का मुख ! १०१-१०२ जब वह पृथ्वी के गर्भ में समाने लगी, तो मैंने उसका वह मुखकमल देखकर बार-बार प्रणाम किया। १०३-१०४ वह सदा सुखी रहेगी ! अपना दुख किसी से नहीं कहेगी, अपनी माता सर्वसहा पृथ्वी की भाँति अपने मन में ही सहती रहेगी। १०५-१०६ मैं ही उसके वियोग से तड़प रहा हूँ। क्षण भर भी चैन नहीं है। सारे लोग, सारी धन-दौलत बेकार लगती है। १०७-१०८ चकवा-चकवी की भाँति सीता के साथ रहता तो स्वर्ग का सुख मिलता, पर विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन टाल सकता है ? १०९-११० मैंने नादानी

ऋषि ब्राह्मणगण बहुत बुझाव। नहि प्रभु उचित शोक-प्रस्ताव ॥ ७८ ॥
विद्यमान छथि युगल-कुमार। कनइत छथि करु नयन उघार ॥ ७९ ॥
नहि उन्मीलित होयत आँखि। विश्व सबन गिरि शक के राखि ॥ ८० ॥
प्रभु पुन सजल उघारल आँखि। हा वैदेही सति सति भाखि ॥ ८१ ॥
क्षमा कयल अहँ कत अपराध। अनुचित बचन कहल नहि आध ॥ ८२ ॥
अहँक वियोग सहब नहि आब। मुख सुख कानन शोकज दाव ॥ ८३ ॥
सहा न सहल अवज्ञा आज। देखल कर्म्म होइछ मन लाज ॥ ८४ ॥
छल अधीन से दिव्य विभूति। ततहु खलल खल जन छल जूति ॥ ८५ ॥
बन्धुक वचन धयल नहि कान। राजा घर मे दैव प्रधान ॥ ८६ ॥
जे छल मखविधि शेष सुकाज। कयल पूर रघुवर महराज ॥ ८७ ॥
ऋत्विक मुनि काँ कयल विदाय। धनरत्नादि - तुष्ट समुदाय ॥ ८८ ॥

॥ तिरहुति गीत ॥

कत हम कहब हुनक गुण, हा पुन पुन, ॥ ८९ ॥
भय गेल हमर विपय शुन ॥ ९० ॥
खलक बचन शुनि वन देल, की मन भेल, ॥ ९१ ॥
रमणि परशमणि कत गेल ॥ ९२ ॥

ऋषि लोग और ब्राह्मण लोग तरह-तरह से उन्हें समझा रहे हैं— "हे प्रभु, अभी शोक का अवसर नहीं है। ७८ ये दोनों पुत्र मौजूद हैं। ये रो रहे हैं। आप आँखें खोलिये। ७९ यदि आप आँखें नहीं खोलेंगे तो इस अश्वमेध यज्ञ को कौन सँभाल सकेगा ?" ८० राम ने फिर आँसू से भरी आँखें खोलीं और बिलखने लगे— "हा वैदेही, हा सती। ८१ मेरे कितने अपराध तुमने क्षमा किये। एक भी अनुचित बात न बोली। ८२ अब मैं तुम्हारा वियोग सह नहीं सकता। तुम्हें वनवास देने के शोक की आग से मेरा मुँह सूख रहा है। ८३ पृथ्वी ने तुम्हारी अवहेलना नहीं सही। उन्होंने जो कुछ किया, मैंने देखा। मुझे लज्जा हो रही है। ८४ हाय, सीता रूपी जो दिव्य विभूति मेरे हाथ में थी उसे भी मैंने दुर्जनों की चाल से गँवा दिया। ८५ बन्धु की बात नहीं मानी। राजा के घर में भी दैव ही प्रधान होता है।" ८६ यज्ञ में जो-जो कर्म बाकी रह गये थे, राम ने उन्हें पूरा किया। ८७ ऋत्विजों और मुनियों को विदा किया। सभी वर्गों को स्वर्णमुद्रा, रत्न आदि से सन्तुष्ट किया। ८८ फिर राम विलाप करने लगे— "मैं सीता के गुणों का बार-बार कितना वर्णन करूँगा ? ८९ मेरी दुनिया सूनी हो गई। ९० दुर्जनों की बात सुनकर मैंने तुम्हें वन भेज दिया। कैसी दुमति हो गई मुझे ? कहाँ गई मेरी वह पारसमणि के समान गृहिणी ? ९१-९२ यदि मैं जानता कि

रहथि रहस्य विषय परित्याग। ब्रह्मज्ञान ध्यान मन लाग॥ १२४॥
कौशल्या गेली तहिठाम। नारायण बुझि कयल प्रणाम॥ १२५॥
प्रभु परमेश्वर कहू कतेक। अपनें पुत्र पुण्य-अतिरेक॥ १२६॥
आयल समय आयु-अवसान। कहल जाय भव-नाशन ज्ञान॥ १२७॥
शुनि दयालु कहलनि शुनु माय। पूर्व्व तीन पथ देल शुनाय॥ १२८॥
कर्म्म ज्ञान पुन भक्ति सुयोग। तेसर सुलभ शमन भव-रोग॥ १२९॥
हिंसा दम्भादिक उद्देश। भेद-दृष्टि छथि सेवक वेश॥ १३०॥
से तामस जन हमर कहाब। गुण-कृत हुनकर उचित स्वभाव॥ १३१॥
चाहथि फलभोगक अभिलाख। धन यश काम सतत मन राख॥ १३२॥
प्रतिमादिक मे पूजन करथि। राजस भक्त नाम अनुसरथि॥ १३३॥
परमेश्वर मे अर्पित कर्म्म। कर्म्मक्षय हो पाबो शर्म्म॥ १३४॥
करथि भेदमति थिक कर्त्तव्य। सात्त्विक भक्त नाम धर्त्तव्य॥ १३५॥
यहि सौं योग देब की आन। भक्ति-परक छथि योग प्रधान॥ १३६॥
गुणातीत भय हमरहि पाब। सतत कामना-हीन स्वभाव॥ १३७॥
कर्म्मयोग थिक परम प्रशस्त। हिंसा दोषादिक हो अस्त॥ १३८॥

है। १२३ सभी विषय-वासना को छोड़ राम एकान्त में रहने लगे। उनका मन सदा आध्यात्मिक चिन्तन में लगा रहता था। १२४ कौशल्या उनके पास गईं। उन्हें नारायण समझकर प्रणाम किया, १२५ और बोलीं—"हे प्रभु परमेश्वर, मैं कितना सुनाऊँ? मैं परम पुण्यवती हूँ कि आप मेरे पुत्र हुए। १२६ अब मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है। ऐसा ज्ञान दीजिए जिससे संसार का बन्धन टूटे।" १२७ यह सुनकर दयालु राम ने कहा— "हे माता, सुनिये। मैं तीन रास्ते बता चुका हूँ— १२८ कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। इनमें तीसरा भक्तियोग सबसे आसान है और उससे जन्म-मरण के दुःख दूर होते हैं। १२९ जो हिंसा, दम्भ आदि के उद्देश्य से भेदभाव रखते हुए मेरी सेवा करता है, वह मेरा तामस भक्त कहलाता है। तमोगुण के अनुरूप ही उसका स्वभाव होता है। १३०-१३१ जो फल की इच्छा करता है; धन, यश और कामोपभोग में सदा चाव रखता है, और मेरी प्रतिमा आदि की पूजा करता है, वह मेरा राजस भक्त कहलाता है। १३२-१३३ जो अपना सारा कर्म परमेश्वर को समर्पित करता है ताकि कर्म का क्षय हो और सुख मिले, और मेरा कर्तव्य है, यह समझकर कर्म करता है, उसे मेरा सात्त्विक भक्त समझिये। १३४-१३५ इन तीन योगों के सिवा और क्या योग बताऊँ? इनमें भक्तिपरक योग प्रधान है। १३६ जो कर्मयोगी होता है, वह तीनों गुणों से परे होकर मुझको प्राप्त करता है। वह स्वभावतः सदा कामना से हीन होता है। १३७ कर्मयोग परम प्रशंसनीय मार्ग है।

॥ दोधय छन्द ॥

पामर सङ्ग बसि बसि हँसि हँसि हम, कयल उचित नहि कर्म्म रे ॥ १११ ॥
बैदेही सनि वनिता त्यागल, नहि क्षति गुनल अधर्म्म रे ॥ ११२ ॥
बड़ अपराध कयल हम हुनकर, नहि हो महि सौँ माँगि रे ॥ ११३ ॥
बैदेहीक वियोग जन्म भरि, रहल हृदय मे साँगि रे ॥ ११४ ॥
हा कत तेहन बदन हम देखब, कतय हुनक सन आँखि रे ॥ ११५ ॥
कतय सुनब ओ मधुर वचन हम, धिक धिक जीवन राखि रे ॥ ११६ ॥
कत गोट क्षमा क्षमा-तनयाकाँ, कयल मनहुँ नहि कोप रे ॥ ११७ ॥
आब आब सद्भाव चित्त मे, भेल मनोरथ लोप रे ॥ ११८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयलनि यज्ञक्रियाक समाप्त। सीता-शोक हृदय दुख व्याप्त ॥ ११९ ॥
चलला बिमन अपन पुर राम। कुश लव सङ्ग लेल तहिठाम ॥ १२० ॥
सुख-निवास मे सुख नहि आब। चिन्तित सतत विकल पछताब ॥ १२१ ॥
अयला राम धाम गत-राम। कयलनि तनय सहित विसराम ॥ १२२ ॥
पौषक सर सन रघुवर-सदन। तन भय कर थर थर गतपद्म ॥ १२३ ॥

के साथ रह-रहकर और हँसी-मजाक कर-करके अपने उचित कर्तव्य में चूक की। १११ सीता-जैसी स्त्री को त्यागा; न अपनी हानि समझ पाया न अधर्म। ११२ मैंने उसका बड़ा अपराध किया है। पृथ्वी देवी से वापस माँगने का मुझे मुँह नहीं है। ११३ सीता का विरह मेरे हृदय में काँटे की तरह जीवन भर चुभता रह जाएगा। ११४ हाय, वैसा मुँह फिर कहाँ देखूंगा, और उसकी जैसी आँख कहाँ मिलेगी ? ११५ वह मीठा बोल कहाँ सुनूंगा ? इस जीवन को बचाना धिक्कार है। ११६ क्षमा (पृथ्वी) की बेटी में कितनी क्षमा है ? उसने मन में भी नहीं क्रोध किया। ११७ अब मेरे मन में सद्बुद्धि आई है. पर अब तो मेरी सारी कामना मिट्टी में मिल गई।" ११८

राम का उदास हो अध्यात्म-चिंतन में लीन होना तथा माताओं को उपदेश देना

राम ने अश्वमेध यज्ञ को किसी तरह पूरा किया। सीता के विरह की वेदना उनके हृदय में छाई हुई थी। ११९ राम विखिन्न मन से अपनी राजधानी चले और वहाँ कुश तथा लव को भी साथ कर लिया। १२० आराम-घर में भी उन्हें चैन नहीं मिला। सदा चिन्ता में डूबे व्याकुल हो पछताते रहते। १२१ आनन्दहीन राम अपने भवन में आये और पुत्रों के साथ विश्राम किया। १२२ राम का भवन मानो पूस महीने का सरोवर हो गया, जहाँ सभी कमल गल गये हैं और शरीर भय से थरथर काँप रहा

तावत प्रतिमादिक पूजा मे, स्थिति कल्याण निमित्त ॥ १५५ ॥
यावत सकल एक आत्मा मे, भासित हो नहि चित्त ॥ १५६ ॥
जानकाँ भेदबुद्धि होइछ मन, मरणक तानिकहि त्रास ॥ १५७ ॥
हमरा एक-बुद्धि सौं देखू, पूरत सभ मन-आश ॥ १५८ ॥
ईश्वर जीव भेद नहि मानब, भक्ति ज्ञान शुभ योग ॥ १५९ ॥
दुइ योगहु मे एक ग्रहण करु, पायब नहि दुखभोग ॥ १६० ॥
सकल हृदिस्थित जननी हमरहि, पुत्रभाव करु मन मे ॥ १६१ ॥
कौशल्या कुशला सति कयलनि, पड़लि न भव-बन्धन मे ॥ १६२ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनि शुनि तिनु जनि माय, पाय दिव्य उपदेश काँ ॥ १६३ ॥
तन तजि तनवर पाय, जाय स्वर्ग दशरथ मिललि ॥ १६४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

अथ एक समय युधाजित नाम । आबि अयोध्या भरतक माम ॥ १ ॥
रघुनन्दन - आज्ञा काँ पाय । निजपुर लय गेल भरत लेआय ॥ २ ॥

क्रियाओं से जो भेद उत्पन्न होता है, उसमे मेरी ही तुष्टि होती है। १५४ प्रतिमा आदि की पूजा में आस्था तभी तक कल्याणार्थ अपेक्षित है जब तक एक ही आत्मा मे सभी पदार्थों के अस्तित्व का भान न हो। १५६ जिनके मन में भेद बुद्धि है, मरण का भय उन्हा को होता है। १५७ मुझे अनन्य भाव से देखिये, तभी मन की सारी आशा पूरी होगी। १५८ ईश्वर और जीव में भेद नहीं मानना चाहिए। भक्तियोग और ज्ञानयोग दोनों कल्याण-कारक हैं। १५९ इन दोनों मे किसी एक को अपना लीजिए तो दुःख नहीं होगा। १६० हे माता, सभी प्राणियों के हृदय में रहनेवाले मुझमें पुत्रभाव से भक्ति कीजिए। १६१ कुशल सती कौशल्या ने वैसा किया, जिसके फल-स्वरूप वे भव-बन्धन में न पड़ी।" १६२ तीनों माताएँ यह सुन-सुनकर और अपूर्व उपदेश पाकर भौतिक शरीर को त्यागकर और दिव्य शरीर पाकर स्वर्ग गई और वहाँ फिर दशरथ से जा मिलीं। १६३-१६४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

राम के भ्राताओं और उनकी सन्तानों के राज्याभिषेक

एक समय भरत के मामा युधाजित अयोध्या आये, १ और राम की

॥ हरिपद छन्द ॥

हम अनन्तगुण-आलय मे जनि, मनोवृत्ति दृढ़ जाय ॥ १३९ ॥
गुणगण शुनि शुनि जनि सुरसरि-जल, सागर मध्य समाय ॥ १४० ॥
निर्गुण भक्ति योग-लक्षण से, भक्ति अहेतु बिचरथी ॥ १४१ ॥
सालोक्यादिक मुक्तिहु कों जे, देलहुँ ग्रहण न करथी ॥ १४२ ॥
दर्शन हमर कथन गुण पूजन, मति वन्दन जन भक्त ॥ १४३ ॥
सकल भूत मे हमर भावना, सङ्ग असक्त विरक्त ॥ १४४ ॥
समहिक मान दीन-अनुकम्पा, मैत्री सौं सभ अपनैं ॥ १४५ ॥
सयँम नियम शील सन्तोषित, सन्मर्यादा थपनैं ॥ १४६ ॥
श्रवण करथि वेदान्त-सुवाक्यक, कीर्तन हमरा नामक ॥ १४७ ॥
ऋजुता सौं सतसङ्ग निरन्तर, त्याग अहम्मति-गामक ॥ १४८ ॥
हमरा धर्म्मक अनुरत गुणगण, श्रवण करथि नित कान ॥ १४९ ॥
जेहन वायुवश गन्ध निजाश्रय, नासा-युग मे आन ॥ १५० ॥
सकल भूत मे रहथि व्यवस्थित, आत्मा केवल जान ॥ १५१ ॥
योगाभ्यास चित्त निर्म्मल हो, अनुभव दृढ़ विज्ञान ॥ १५२ ॥
एहि सौं आन सकल पूजादिक, बाहर बाहर जानब ॥ १५३ ॥
क्रिया-जनित कत भेद द्रव्य सौं, हमरे तोषण मानब ॥ १५४ ॥

इससे हिंसा आदि दोष दूर होते हैं। १३८ मेरे गुणों को सुनते-सुनते जिनका चित्त अनन्त गुणों के खजाना रूपी मुझमें उसी तरह समा जाता है जिस तरह गंगा का जल समुद्र में, वे सगुण भक्त हैं। १३९-१४० निर्गुण भक्तियोग का लक्षण यह है : ऐसे भक्त मुझमें अहैतुकी भक्ति करते हैं; १४१ सालोक्य, सायुज्य आदि मोक्ष मिलने पर भी नहीं ग्रहण करते हैं। १४२ मेरे भक्त लोग मेरा दर्शन, कीर्तन, गुणवर्णन, पूजन और वन्दन करते हैं। १४३ सभी प्राणियों में मेरी भावना करते हैं अर्थात् सभी जीवों को ईश्वर समझते हैं। आसक्ति से दूर विरक्त रहते हैं। १४४ सबों का सम्मान करते हैं। दीन-दुखियों पर दया करते हैं। मित्रता करके सबको अपना बना लेते हैं। १४५ सदा संयम और नियम का पालन करते हैं। सन्तोषपूर्वक मर्यादा बनाये रखते हैं। १४६ आध्यात्मिक, दर्शन, वेदान्त के वाक्यों का श्रवण करते हैं। मेरे नाम का कीर्तन करते हैं। १४७ सरल हृदय से भले लोगों का साथ करते हैं। अहंकार का त्याग करते हैं। १४८ मेरे धर्म में अनुराग रखते हैं। नित्य मेरे गुणों का श्रवण करते हैं। १४९ जिस तरह अपने आधार फूल में विद्यमान सौरभ को वायु नाक में पहुँचाता है उसी तरह वे सभी प्राणियों में विद्यमान आत्मा का अनुभव करते हैं। १५०-१५१ योगाभ्यास से चित्त निर्मल होता है। ज्ञानानुभूति दृढ़ होती है। १५२ इनके अतिरिक्त जो भी पूजा आदि विधियाँ हैं वे सभी बाह्य क्रिया हैं। १५३ पदार्थों में

शुनि लक्ष्मण गेला तहिठाम। छल छथि देव-देव जत राम ॥ १७ ॥
दर्शनेच्छ तापस एक द्वार। आयल छथि हो जेहन विचार ॥ १८ ॥
हुनि मुनि काँ सादर लय आउ। वत्स ततय सत्वर अहँ जाउ ॥ १९ ॥
तेज-पुञ्ज मुनि बनल विविक्त। अनलराशि उपजा घृत सिक्त ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

दीप्यमान निज तेज सौं, ओ देखल रघुवीर ॥ २१ ॥
मधुर मधुर कहलनि ततय, आशिष-वचन गभीर ॥ २२ ॥

॥ चौपाइ ॥

बहु स्वागत पूजन-विधि सकल। रामचन्द्र पूछल निर्विकल ॥ २३ ॥
रघुवर दिव्यासन - आसीन। मुनि काँ पूछल वचन छलहीन ॥ २४ ॥
अपने अयलहुँ एतय यदर्थ। बुझि उद्यम हम करू तदर्थ ॥ २५ ॥
ओ कहलनि शुनु रघुवर भूप। कानहिँ कहब एकान्ते चूप ॥ २६ ॥
शुनथि न जन पुन देख न नयन। शुनल वचन रह मानस शयन ॥ २७ ॥
जौं जन तेहि अन्तर हठि अयत। अपनें क हाथ मरण तनि हयत ॥ २८ ॥
यहन प्रतिज्ञा करु प्रतिपाल। तखन कहब अभिमत महिपाल ॥ २९ ॥
लक्ष्मण काँ कहलनि रघुनाथ। द्वार सजग रहु असि लय हाथ ॥ ३० ॥

देवों के देव राम विराजमान थे। १७ उन्होंने राम से कहा— "आपके दर्शन के लिए एक तापस द्वार पर उपस्थित हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो।" १८ राम ने कहा— "हे वत्स, तुम जल्द वहाँ जाओ और उन तापस को आदर के साथ ले आओ।" १९ वह कपटी तापस स्पष्ट रूप से तेज से भर गया जैसे घी डालने से आग प्रज्वलित हो उठती है। २० अपने तेज से चमकते हुए उस तापस ने राम को देखा और वहाँ मीठे स्वर में उन्हें कुछ आशीर्वाद दिया। २१-२२ राम ने पूरी विधि के साथ उनकी बड़ी आवभगत और पूजा की, फिर उनसे सहज भाव से पूछा। २३ दिव्य सिंहासन पर बैठे राम ने मुनि से निश्छल भाव से पूछा— २४ "आप यहाँ किस काम से पधारे, यह यदि मैं जानूँ तो उसे पूरा करने का प्रयास करूँ।" २५ मुनि ने कहा— "हे राजा राम, सुनिए। यह बात मैं कान में चुपके से अकेले में कहूँगा। २६ इस बात को कोई सुने नहीं; कोई आँख से देखे नहीं। सुनी हुई बात मन में ही समाई रहे। २७ यदि कोई व्यक्ति सहसा भीतर आयेगा तो आप अपने हाथ से उसे मार डालेंगे। २८ हे राजा, आप पहले ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए, तब मैं अपने मन की बात कहूँगा।" २९ यह सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम हाथ में तलवार लिये द्वार पर तैनात रहो। ३०

महती सेना समर अभीति। गन्धर्व्वक नायक जन जीति ॥ ३ ॥
नाम पुष्करावति जे धाम। पुष्कर भेला नृप तहिठाम ॥ ४ ॥
तक्षशिलापुर मे पुन तक्ष। सुत दुहु नर-वर भरत समक्ष ॥ ५ ॥
भरत कयल सुत-युग अभिषेक। बड़ धन धान्य पूर सविवेक ॥ ६ ॥
अपने आबि अयोध्या भरत। रामचन्द्र - सेवा मे निरत ॥ ७ ॥
पुन लक्ष्मण काँ कहलनि राम। पश्चिम देश करू संग्राम ॥ ८ ॥
महामल्ल दुर्ज्जन जिति लेब। तनिक राज्य सुत दुनु काँ देब ॥ ९ ॥
अङ्गद चित्रकेतु जनि नाम। उचित निवास देब दुइ ठाम ॥ १० ॥
कय अभिषेक शीघ्र पुनि आउ। हमरा छोड़ि अनत जनु जाउ ॥ ११ ॥
जेहन रघूत्तम - आज्ञा - वचन। सत्वर लक्ष्मण कयल से रचन ॥ १२ ॥
रघुनन्दन - पद - सेवा - निरत । बन्धु यहन दोसर के करत ॥ १३ ॥
अथ एक समय राम महिपाल। पुर तापस बनि पहुँचल काल ॥ १४ ॥
लक्ष्मण द्वारपाल तहिठाम। मुनि पुछलनि कत छथि नृप राम ॥ १५ ॥
हमर आगमन ततय शुनाउ। प्रभु-रुचि पाबि ततय लय जाउ ॥ १६ ॥

अनुमति लेकर भरत को अपने यहाँ ले गये। २ लड़ाई में न डरनेवाली उनकी विशाल सेना ने गन्धर्वों के नायकों को जीत लिया। ३ उस स्थान का नाम पुष्करावती रखा गया और भरत के पुत्र पुष्कर को वहाँ राजा बनाया गया। ४ फिर तक्षशिला नगर में भरत के पुत्र तक्ष राजा बनाये गये। ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ भरत के पुत्र हुए। ५ भरत ने धन-धान्य और विवेक से भरे-पूरे उन दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक किया। ६ उसके बाद स्वयं अयोध्या लौट आये और राम की सेवा म लग गये। ७ फिर राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम पश्चिम दिशा में लड़ाई करो। ८ वहाँ दुर्जन महामल्ल को जीतोगे और उसका राज्य अपने दोनों पुत्रों को दोगे, ९ जिनका नाम अंगद और चित्रकेतु है। दोनों पुत्रों को दो जगह निवास दोगे। १० उन दोनों का राज्याभिषेक करके तुम लौट आना। मुझे छोड़ कहीं जाना नहीं।" ११ राम ने जैसा-जैसा कहा, लक्ष्मण ने तुरत वैसा-वैसा किया। १२ राम के चरणों की सेवा में लगा ऐसा कौन दूसरा भाई कर सकता है? १३

कालपुरुष का आगमन और लक्ष्मण का स्वर्ग जाना

एक समय, जब राम राजा थे, काल तापस का रूप धारणकर उनके नगर में पहुँचा। १४ उस समय लक्ष्मण द्वारपाल थे। तापस मुनि ने पूछा— "राजा राम कहाँ हैं? १५ उन्हें मेरे आने की सूचना दीजिए और उनकी अनुमति लेकर मुझे वहाँ ले जाइए।" १६ यह सुनकर लक्ष्मण वहाँ गये जहाँ

से शुनि मुनि काँ आऊल कोप। काल करय न ककर मति-लोप ॥ ४७ ॥
हमर अवज्ञा नृपतिक द्वार। मुनिजन काँ थिक अधिक अभार ॥ ४८ ॥
जौं नहि कहल करब ई काज। कतय महीपति कत ई राज ॥ ४९ ॥
परिजन-सहित भस्म कय देब। नृपतिक द्वार अनादर लेब ॥ ५० ॥
शुनि मन लक्ष्मण कयल विचार। बड़ सङ्कष्ट पड़ल व्यवहार ॥ ५१ ॥
जौं जायब छूटत ई लोक। कालक दण्ड ककर बुत रोक ॥ ५२ ॥
नहि जायब तौं निकट अनर्थ। कालक निकट यत्न हो व्यर्थ ॥ ५३ ॥
एक हमर जौं होयत नाश। रघुनन्दन रहता निस्त्रास ॥ ५४ ॥
प्रजालोक आनन्दित रहत। अपयश पाप हमर नहि कहत ॥ ५५ ॥
यहन विचारि राम-नृप-वास। कयल प्रवेश कहल निस्त्रास ॥ ५६ ॥
सावधान प्रभु परमोदार। आयल छथि दुर्व्वासा द्वार ॥ ५७ ॥
काल विसर्ज्जन मुनिक प्रणाम। शुनितहिं जाय कयल प्रभु राम ॥ ५८ ॥
कि करब टहल कहल मुनि जाय। मुनि-सत्कार गृही काँ न्याय ॥ ५९ ॥

॥ दोहा ॥

कहल उपासल छलहुँ हम, शुनु नृप वर्ष हजार ॥ ६० ॥
सिद्ध अन्न भोजन करब, मानल मुख्य विचार ॥ ६१ ॥

नहीं करूँगा। कौन हठ करके आग में पतंग बनने जाय।" ४६ यह सुनते ही दुर्वासा ऋषि आगबबूला हो गये। काल किसकी बुद्धि को नहीं बिगाड़ देता है? ४७ वे बोले— "राजा के द्वार पर मेरा ऐसा अपमान हो? यह तो मुनियों की भारी अवहेलना हुई। ४८ यदि आप मेरा यह कहा नहीं करेंगे तो कहाँ आपके राजा जाएँगे और कहाँ यह राज्य। ४९ मैं परिजनों-सहित राम को भस्म कर दूँगा और राजा के द्वार पर अपने अपमान का बदला लूँगा।" ५० यह सुनकर लक्ष्मण ने मन में सोचा— "मैं तो बड़े असमंजस में पड़ गया, क्या करूँ, क्या न करूँ। ५१ यदि भीतर जाता हूँ तो इस दुनिया से चला जाऊँगा। काल के दंड को रोकना किसके बूते की बात है? ५२ अगर नहीं जाता हूँ तो सबका अनर्थ निश्चित है। काल के सामने उबरने की कोशिश बेकार है। ५३ यदि मैं अकेले मरता हूँ तो राम पर कोई खतरा न होगा। ५४ प्रजा भी आनन्द से रहेगी। वह मुझ पर कलंक न लगाएगी। मेरी कोई बदनामी न होगी।" ५५ ऐसा सोचकर वे राजा राम के भवन में घुस गये और बिना किसी डर के उनसे कहा— ५६ "हे परम उदार प्रभु, सावधान होइए। दुर्वासा ऋषि द्वार पर पधारे हैं।" ५७ राम ने यह सुनते ही काल को विदा करके मुनि को प्रणाम किया, और कहा— ५८ "हे मुनि, आज्ञा हो। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मुनियों का सत्कार करना गृहस्थों का धर्म है।" ५९ दुर्वासा ने कहा— "हे राजा, सुनिए। मैं हजार वर्षों से भूखा हूँ। ६० आज

कोो व्यक्ति नहि आबय पाब। सम्प्रति पत्रादिक नहि लाब ॥ ३१ ॥
हठ सौँ जे करता सञ्चरण। हमरहि कर सौँ तनिकर मरण ॥ ३२ ॥
तखन कहल प्रभु अछि एकान्त। कहल जाय मुनि की वृत्तान्त ॥ ३३ ॥
रघुबर सौँ कहलनि सद्भाव। चलल जाय निज धामहिं आब ॥ ३४ ॥
कालपुरुष हम तापस-रूप। अयलहुँ विधिक पठाओल भूप ॥ ३५ ॥
रण-दुर्जय दशमौलिक मरण। धरणीभार कयल प्रभु हरण ॥ ३६ ॥
निज मर्य्यादा राखल जाय। विधिक कहल हम देल शुनाय ॥ ३७ ॥
रघुनन्दन कयलनि स्वीकार। यद्यपि सकल छल निज व्यवहार ॥ ३८ ॥

॥ सोरठा ॥

दुर्व्वासा तहिकाल, कालक प्रेरित प्राप्त तहँ ॥ ३९ ॥
के बुझ कोप विशाल, लक्ष्मण कौँ कहलनि यहन ॥ ४० ॥

॥ चौपाई ॥

लक्ष्मण सत्वर नृपलट जाउ। रामचन्द्र सौँ भेँट कराउ ॥ ४१ ॥
से पुन उत्तर देल शुनाय। क्षण भरि क्षमा कयल मुनि जाय ॥ ४२ ॥
रामचन्द्र सौँ कहु की काज। से सम्पन्न करब हम आज ॥ ४३ ॥
राजा कार्य्यान्तर-आरूढ़। के बुझ नृपतिक आशय गूढ़ ॥ ४४ ॥
केओ सम्प्रति नहि करथ प्रवेश। श्रीरघुनन्दन नियम निदेश ॥ ४५ ॥
नृप-आज्ञाक करब नहि भङ्ग। के हो हठ सौँ अनल-पतङ्ग ॥ ४६ ॥

कोई भी भीतर न आने पावे। अभी चिट्ठी-पत्री भी नहीं लावे। ३१ जो कोई बलजोरी घुसेगा, मेरे हाथ से उसकी मौत होगी।" ३२ इसके बाद राम ने कहा— "हे मुनि, अब एकान्त है। कहिए, क्या बात है?" ३३ मुनि ने शुद्ध भाव से राम से कहा— "अब अपने धाम चलिए। ३४ मैं कालपुरुष हूँ। तापस का कपट वेष बनाकर आया हूँ। हे राजा, मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। ३५ हे प्रभु! आप लड़ाई में न जीतने योग्य रावण को मार चुके और धरती के भार को दूर कर चुके। ३६ अब अपनी देवोचित मर्यादा का पालन कीजिए। ब्रह्मा ने जो कहा वह मैंने सुना दिया।" ३७ राम ने इसे स्वीकार कर लिया, हालाँकि यह सब उनका अपना ही खेल था। ३८ उसी समय कालपुरुष की प्रेरणा से दुर्वासा ऋषि वहाँ पहुँचे। ३९ कौन जानता था कि वे इतने क्रोधी हैं। उन्होंने लक्ष्मण से इस प्रकार कहा— ४० "हे लक्ष्मण, आप तुरत राम के पास जाइए और मेरी उनसे मुलाकात कराइए।" ४१ लक्ष्मण ने उत्तर दिया— "हे मुनि, क्षण भर क्षमा कीजिए। ४२ बताइए आप को राम से क्या काम है? मैं आज ही वह पूरा कर दूँगा। ४३ राजा दूसरे काम में व्यस्त हैं। राजा की भीतरी बात कौन जानता है? ४४ राम ने आज्ञा दी है कि अभी कोई भीतर न आवे। ४५ मैं राजा की आज्ञा का उल्लंघन

शुनि प्रभु-वचन सचिव गुरु सकल। कहल विचारक वचन अविकल ॥ ७६ ॥
कयल धराक भार सभ हरण। जायल अपन धाम ई चरण ॥ ७७ ॥
धर्म्म-प्रतिज्ञा राखल जाय। लक्ष्मण त्याग सकल मत न्याय ॥ ७८ ॥
शुनलनि अर्थ धर्म्मयुत सार। रामचन्द्र मन ठीक विचार ॥ ७९ ॥
लक्ष्मण काँ कहलनि प्रभु सेहु। करु सब धर्म्म-व्यवस्था जेहु ॥ ८० ॥
परित्याग बध एक समान। सज्जन काँ कह धर्म्म प्रधान ॥ ८१ ॥

॥ दोहा ॥

शुनि लक्ष्मण रघुनाथ-पद, कयलनि विनत प्रणाम ॥ ८२ ॥
दुःख शोक सौं भरल से, गेला सत्वर धाम ॥ ८३ ॥

॥ सोरठा ॥

से सरयूतट जाय, कयल आचमन शुद्ध-मन ॥ ८४ ॥
दृढ़ आसन सभ काय, नव द्वार संयमित कय ॥ ८५ ॥
मस्तक पवन चढ़ाय, ध्यान निरन्तर ध्येय-पद ॥ ८६ ॥
देखि देव-समुदाय, सुमन-वृष्टि कय स्तुति करथि ॥ ८७ ॥
लक्ष्मण काँ निजधाम, शचीकान्त लय आय तहँ ॥ ८८ ॥
विष्णु-अंश अभिराम, जानि करथि पूजा तनिक ॥ ८९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

ओर लक्ष्मण के प्रति स्नेह और दूसरी ओर प्रतिज्ञापालन की नीति, इस द्विविधा में चित्त व्याकुल था। ७५ राम की बात सुनकर सभी मन्त्रियों और गुरुजनों ने ठीक-ठीक विचार दिया। ७६ "आपने पृथ्वी का भार दूर कर दिया। अब आप देवलोक में पधारिये। ७७ अपने प्रतिज्ञा रूपी धर्म का पालन कीजिए। लक्ष्मण को त्याग देना हर तरह से उचित होगा। ७८ राम ने धर्मसम्मत तत्त्वार्थ सुन लिया। उन्हें भी यह ठीक जँचा। ७९ राम ने लक्ष्मण से वैसा ही कहा—"वही करो जो धर्म के अनुरूप हो। ८० धर्मिष्ठ सज्जनों का कहना है कि परित्याग करना और वध करना दोनों बराबर है।" ८१ यह सुनकर लक्ष्मण ने राम के चरण में प्रणाम किया और ८२ शोक से व्याकुल हो तुरत अपने महल गये। ८३ फिर सरयू के किनारे गये। उसके जल से आचमन करके अपने मन को शुद्ध किया। ८४ शरीर को सीधा कर और सभी नौ द्वारों को काबू में करके अचल समाधि लगाई। ८५ श्वास को मस्तिष्क में ले गये। अविच्छिन्न रूप से ध्येय ब्रह्म का ध्यान किया। ८६ देवलोग उनकी समाधि देख-देखकर फूल बरसाने और स्तुति करने लगे। ८७ तब इन्द्र लक्ष्मण को वहाँ से अपने यहाँ अमरावती ले गये। ८८ उन्हें विष्णु का अंश समझकर उनकी पूजा करने लगे। ८९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ चौपाइ ॥

कहयित कथा पाक सम्पन्न। भोजन कयल अमृत सन अन्न ॥ ६२ ॥
मुनि सन्तुष्ट गेला निज धाम। स्मरण कयल आज्ञा से राम ॥ ६३ ॥
चिन्ता दुःख कहल की जाय। हा हत हा हत लक्ष्मण भाय ॥ ६४ ॥
स्नेह प्रतिज्ञा दुख मन व्याप। विह्वल विकल रहथि चुपचाप ॥ ६५ ॥
से देख लक्ष्मण जोड़ल हाथ। चिन्ता तेजल जाय रघुनाथ ॥ ६६ ॥
कालक गति के रोकथ पार। तत्वविचार वृथा - संसार ॥ ६७ ॥
प्रभुक निदेश वृथा भय जाय। घोर नरक हमरा तन पाय ॥ ६८ ॥
हमरा विषय नाथ जौं प्रीति। पालन कयल जाय नृप-नीति ॥ ६९ ॥
हमर विचार उचित यहिठाम। पालन कयल जाय नहि साम ॥ ७० ॥
करु निश्शङ्क हमर परित्याग। नीति नृपति कां दोष न लाग ॥ ७१ ॥
लक्ष्मण-वचन शुनल रघुवीर। चिन्तातुर मानस नहि थीर ॥ ७२ ॥
सभ मन्त्री कां लेल बजाय। गुरु वसिष्ठ कां पूछल न्याय ॥ ७३ ॥
काल - पतीक व्यवस्था - सार। दुर्व्वासाक ततय सञ्चार ॥ ७४ ॥
अपन प्रतिज्ञा कथा समग्र। लक्ष्मण-प्रीति नीति मन व्यग्र।' ७५ ॥

सिद्ध अन्न (भात) खाऊँगा।" राम ने इस आज्ञा के पालन को सबसे पहला कर्तव्य समझा। ६१ आज्ञा करते ही रसोई तैयार हो गई। मुनि ने अमृत जैसा अन्न खाया। ६२ खा-पीकर मुनि सन्तुष्ट हो अपनी जगह चले गये। तब राम ने अपनी उस आज्ञा को याद किया। ६३ उनके मन में अवर्णनीय चिन्ता और वेदना हुई। वे हाहाकार करने लगे— "हाय-हाय, हा भ्राता लक्ष्मण!" ६४ एक ओर भ्रातृस्नेह था और दूसरी ओर वह प्रतिज्ञा। वे पीड़ा से भर गये। विकल और विह्वल हो चुपचाप खड़े रहे। ६५ यह हाल देखकर लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा— "हे राम, आप चिन्ता मत कीजिए। ६६ काल की गति को कौन रोक सकता है? इस संसार में तत्व-मीमांसा करना बेकार है। ६७ यदि मेरे रहते आपकी आज्ञा विफल हो जाय तो मेरा यह शरीर किस काम का? मैं तो घोर नरक पाऊँगा। ६८ यदि आपको मुझ पर स्नेह है तो राजा का जो उचित कर्तव्य है उसका पालन किया जाय। ६९ मेरा यही विचार है कि इसमें साम (समझौते) का कोई अवसर नहीं है। ७० बेधड़क मेरा त्याग कर दीजिए। राजा को अपनी नीति के अनुसार कोई काम करने में दोष नहीं है।" ७१ राम ने लक्ष्मण की बात सुनी। उनका मन चिन्ता से व्याकुल हो दहलने लगा। ७२ उन्होंने सभी मन्त्रियों को बुलाया। गुरु वसिष्ठ से पूछा कि क्या करना उचित होगा? ७३ राम ने बताया कि कैसे तापस-वेषधारी काल ने प्रतिज्ञा कराई, कैसे ऋषि दुर्वासा पहुँचे। ७४ स्वयं राम ने कैसे प्रतिज्ञा की तथा कैसे एक

कनइत सभ जन जोड़ल हाथ। आशापूर करू रघुनाथ॥ १३॥
जाइक इच्छा अछि जे ठाम। जायब सङ्गहि सभ से धाम॥ १४॥
पुत्र दार जन एक न त्यागि। नीतिधर्म्म पदयुग अनुरागि॥ १५॥
चलब सङ्ग कहलनि प्रभु बेश। जाइक इच्छा अछि जे देश॥ १६॥
कुश लव कुमरक कय अभिषेक। विदा कयल प्रभु दिव्य-विवेक॥ १७॥
देलनि दिव्य रथ आठ हजार। वन्दि हजार विरुद उच्चार॥ १८॥
साठि हजार सैन्य रण-धीर। एक एक काँ देल रघुबीर॥ १९॥
बहुत वित्त युत जन सङ्ग जाय। कयल प्रणाम चलल दुनु भाय॥ २०॥

॥ दोहा ॥

बहुत दूत शत्रुघ्न केँ, चलल बजाबय काज॥ २१॥
जाय कहल वृत्तान्त से, जे रघुवीर समाज॥ २२॥

॥ चौपाइ ॥

कालपुरुष - आगमनक भीति। अत्रिपुत्र अयला जे रीति॥ २३॥
राम - प्रतिज्ञा बन्धु - वियोग। कुशो-लवक अभिषेक प्रयोग॥ २४॥
प्रजा सहित कहु की हम आन। करता राम महाप्रस्थान॥ २५॥
शुनि शत्रुघ्न व्यथित मन त्रास। धैर्य्य धयल नहि दुःख प्रकाश॥ २६॥

प्रजाजन रोते हुए हाथ जोड़कर बोले— 'हे रघुनाथ, हमारी कामना पूरी कीजिए। १३ आपको जहाँ जाने की इच्छा होती है, हम सभी साथ ही उस स्थान में जाएँगे। १४ पुत्र, स्त्री, सेवक और चरण में अनुरक्त लोकों का त्याग करना कभी नीति या धर्म के अनुकूल नहीं है।" १५ राम ने कहा— "अच्छा मुझे जिस देश जाना है वहाँ आप सभी साथ चलिएगा।" १६ राम ने कुमार कुश और लव का राज्याभिषेक करके अपूर्व विवेक के साथ उन्हें विदा कर दिया। १७ राम ने उन्हें आठ हज़ार दिव्य रथ दिये। एक हज़ार भाट उनका गुणगान करते चले। १८ युद्ध में डटनेवाले साठ हज़ार सैनिक दिये। राम ने इतना-इतना हरेक पुत्र को दिया। १९ स्वर्णमुद्रा लाद कर बहुत-से कुली संग लगा दिये। दोनों भ्राता ने प्रणाम करके प्रस्थान किया। २० शत्रुघ्न को बुलाने के लिए बहुत-से दूत चले, जो राम के साथ थे, और उन्होंने शत्रुघ्न से सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि २१-२२ कैसे भयानक कालपुरुष आया, किस तरह दुर्वासा आये; २३ राम ने प्रतिज्ञा की, भाई लक्ष्मण से बिछोह हुआ; कुश और लव का राज्याभिषेक हुआ। २४ यह वृत्तान्त सुनाकर बोला कि— "और बात क्या कहूँ, राम प्रजा-सहित महा-प्रस्थान करनेवाले हैं।" २५ यह सुनकर शत्रुघ्न के मन में बड़ी व्यथा और आतंक हुआ। पर उन्होंने ढाढ़स बाँधा; अपनी व्यथा को प्रकट नहीं होने दिया। २६ शत्रुघ्न ने भी अपने दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक किया। एक का मथुरा में और दूसरे

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनु गिरिनन्दिनि कहल महेश। पालल रघुवर अपन निदेश ॥ १ ॥
लक्ष्मण-रहित पड़य नहि चयन। जनु निर्झर झर पङ्कज-नयन ॥ २ ॥
गुरुमन्त्री कें कहलनि राम। होथु भरत भूपति एहिठाम ॥ ३ ॥
बन्धु - वियोग सहल नहि जाय। आज मिलब हम लक्ष्मण भाय ॥ ४ ॥
शुनितहिँ प्रजा विकल खस केहन। छिन्नमूल सौं तरुवर जेहन ॥ ५ ॥
मूर्छित खसल भरत उठि भाख। राज्यभार के मांथा राख ॥ ६ ॥
हम नहि करब राज्य-सुख भोग। जन्म अनेकहु छुट नहि रोग ॥ ७ ॥
अपनैक चरण शरण मे रहब। स्वर्ग मर्त्य मे दुःख न सहब ॥ ८ ॥
कुश लव कुमरक करु अभिषेक। कलकौशल उत्तर सुविबेक ॥ ९ ॥
शुनल प्रजाजन मन अति भीति। कहल वसिष्ठ राम सौं नीति ॥ १० ॥
विकल प्रजाजन देखक थीक। सेवक सबहिक हो जे नीक ॥ ११ ॥
शुनल वसिष्ठ कहल भगवान। राम कयल सभ जन सन्मान ॥ १२ ॥

आठवाँ अध्याय

राम का सभी बन्धु-बान्धवों और प्रजाजनों-सहित स्वर्ग-प्रयान

शिव ने कहा— "हे गिरिजा, राम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। १ पर, लक्ष्मण के बिना उन्हें चैन नहीं आता। उनकी कमल-सी आँखें झरने की भाँति झरती रहतीं। २ तब राम ने गुरु और मन्त्रियों से कहा— "अब भरत अयोध्या के राजा होवें। ३ लक्ष्मण का बिछोह अब मुझे सहा नहीं जा रहा है। आज मैं भाई लक्ष्मण से जा मिलूँगा।" ४ राम की यह बात सुनते ही प्रजाजन उसी तरह गिर पड़े जिस तरह जड़ कट जाने पर वृक्ष गिरते हैं। ५ भरत बेहोश हो गिरे; फिर उठकर बोले— ६ इस राज्य का भार कौन अपने सर पर रखेगा? मैं राज्य-सुख नहीं भोगूँगा। मेरा यह रोग जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं छूटेगा। ७ मैं सदा आप ही के चरण की छत्रच्छाया में रहूँगा। आपके बिना मर्त्य क्या, स्वर्ग को भी मैं दुखभोग समझता हूँ। ८ कुश और लव को लाकर यहाँ उनका अभिषेक कीजिए।" भरत ने शान्तिपूर्वक यह विवेकपूर्ण उत्तर दिया। ९ प्रजाजनों को यह सुनकर मन में बड़ा भय होने लगा। तब वसिष्ठ ने राम से नीति की बात कही— १० "दुख से व्याकुल प्रजा को देखना आपका कर्तव्य है। आपको ऐसा करना है जिससे सेवकों की भलाई हो।" ११ वसिष्ठ ने जो कहा उसे भगवान् राम ने मान लिया। राम ने सबों का मान रखा। १२ सभी

कहल विभीषण काँ रघुनाथ । सुखित रहब करइत गुण-गाथ ॥ ४२ ॥
राक्षस राज्य करू गय जाय । यावत धरा प्रजा सुख पाय ॥ ४३ ॥
हमर शपथ थिक करु स्वीकार । हठ उत्तरक त्यागु व्यवहार ॥ ४४ ॥
शुनु शुनु मारुतसुत हनुमान । रहु चिरजीवि कहब की आन ॥ ४५ ॥
आज्ञा हमर थहन लिअ मानि । एक तरह नहि होयत हानि ॥ ४६ ॥
जाम्बवान द्वापर परयन्त । रहु गय अकथ कतो वृत्तान्त ॥ ४७ ॥
सभजन काँ कहलनि पुन राम । चलु चलु सभ जन हमरा धाम ॥ ४८ ॥
प्रातहिँ कमल-नयन भगवान । गुरु वसिष्ठ काँ कहल विधान ॥ ४९ ॥
अग्निहोत्र चल हमरहि सङ्ग । तुष्ट वसिष्ठ कयल से रङ्ग ॥ ५० ॥
रघुवर धौताम्बर कुशहस्त । महा-प्रयाणक बुद्धि प्रशस्त ॥ ५१ ॥
चलला छोड़ि नगर ओ धाम । कोटि कलाकर-छवि-जित राम ॥ ५२ ॥
कञ्ज-करा कमला चलु सङ्ग । सुषमा सुषमा - सिन्धु - तरङ्ग ॥ ५३ ॥
अस्त्र-शस्त्र सङ्ग चलु धनु तीर । आगु भेल भल धयल शरीर ॥ ५४ ॥
धयल शरीर वेद सभ गोट । चलल महामुनि महिमा मोट ॥ ५५ ॥
श्रुति-माता प्रणवक सँग भेलि । व्याहृति मिलि रघुवर मिलि गेलि॥ ५६ ॥
पुत्रदार परिवृत चल सङ्ग । प्रजालोक मन प्रीति अभङ्ग ॥ ५७ ॥

करते हुए आप सुख से रहियेगा । ४२ आप जाइए और राक्षसों का राजा होकर राज्य कीजिए । जब तक धरती रहेगी तब तक आपकी प्रजा सुख से रहेगी । ४३ मैं अपनी सौगन्ध देता हूँ, मेरी बात स्वीकार कीजिए । ज़िद से कुछ उत्तर देने की चेष्टा मत कीजिए । ४४ हे पवनसुत, सुनिए । आप चिरंजीव होइए । और क्या कहूँ । ४५ मेरी यह आज्ञा मान जाइए; आपका किसी भी तरह बुरा न होगा । ४६ हे जाम्बवान्, आप द्वापर तक रहिए । बहुत-सा वृत्तान्त कहने लायक नहीं है ।" ४७ इसके बाद राम ने और सबों से कहा— "चलिये, सभी लोग मेरे धाम चलिए ।" ४८ सुबह होते ही कमल-नयन राम ने गुरु वसिष्ठ से कहा कि क्या-क्या होना चाहिए । उन्होंने कहा— "अग्निहोत्र मेरे साथ चलेगा ।" प्रसन्न हो वसिष्ठ ने वैसा किया । ४९-५० राम ने धौत वस्त्र पहना; कुश हाथ में लिये और महाप्रयाण के लिए उद्यत हो गये । ५१ करोड़ चन्द्रमा की शोभा को जीतनेवाले राम नगर और घर-बार छोड़ चल पड़े । ५२ कमल का फूल हाथ में लिये कमला उनके साथ चली । तरंगों की अपार शोभा वाली सुषमा नदी भी साथ चली । ५३ राम के सभी अस्त्र-शस्त्र और तीर-धनुष शरीर धारण कर आगे-आगे चले । ५४ चारों वेद भी शरीर धारण कर चले । अपार महिमा वाले महामुनि भी चले । ५५-५६ पुत्रों और स्त्रियों-समेत प्रजाजन भी अटूट प्रेम के साथ संग चले । ५७ रनिवास के सेवकों और महिलाओं-सहित भरत और

पुत्र दुहूक कयल अभिषेक। मथुरा विदिश नगर एक एक ॥ २७ ॥
तनय सुबाहु प्रजा-सुख-हेतु। यूपकेतु पालक श्रुति-सेतु ॥ २८ ॥
गेना अयोध्या अपनैं शूर। रामचन्द्र देखि आशा पूर ॥ २९ ॥
देखल रघुवर दिनकर-कान्त। मुनिजन-परिवृत सुन्दर शान्त ॥ ३० ॥
कयल प्रणाम कहल कल जोड़ि। चलब नाथ नहि हमरा छोड़ि ॥ ३१ ॥
बालक बुहुजन काँ दय राज। सावधान हम अयलहुँ आज ॥ ३२ ॥
राम बूझि भाइक बृढ़ भाव। कहल सजग रहु दुपहर आब ॥ ३३ ॥
दिन दुपहर भल दिन प्रस्थान। सभ सौं कालपुरुष बलवान ॥ ३४ ॥
बानर भालु देव-अवतार। समर सहायक बल-विस्तार ॥ ३५ ॥
शुनि अयला सुग्रीवक सङ्ग। रामचन्द्र-पद-प्रीति अभङ्ग ॥ ३६ ॥
पहुँचलाह सत्वर हनुमान। प्रभु-आज्ञाकर वीर-प्रधान ॥ ३७ ॥
भक्त बिभीषण पहुँचि सबेरि। एक हरिजन क्षण कयल न देरि ॥ ३८ ॥
सभ काँ सँग चलइक मन थीर। जानल करुणाकर रघुवीर ॥ ३९ ॥
तहँ सुग्रीव कहल कर जोड़ि। रहब न हम प्रभु मैत्री तोड़ि ॥ ४० ॥
अङ्गद काँ राजा हम कयल। अपनैंक सङ्ग अचल-मति धयल ॥ ४१ ॥

का विदिशा में। २७ सुबाहु नाम का पुत्र प्रजा की भलाई में लग गया और यूपकेतु नाम का पुत्र वैदिक धर्म के पालन में। २८ तब शत्रुघ्न स्वयं अयोध्या गये और वहाँ राम को देख उनकी आशा पूरी हुई। २९ उन्होंने देखा कि राम सूरज की तरह चमक रहे हैं, शान्त व सुन्दर दिखाई पड़ते हैं। चारों ओर से उन्हें मुनि लोग घेरे हुए हैं। ३० शत्रुघ्न ने जाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा— "हे प्रभु, आप मुझे छोड़कर नहीं जाइएगा। ३१ अपने दोनों पुत्रों को राज्य देकर मैं भी आज तैयार होकर ही आया हूँ।" ३२ राम ने भाई शत्रुघ्न का अटल इरादा देखकर कहा— "अब मध्याह्न हो गया। तैयार हो जाओ। ३३ मध्याह्न में यात्रा करना अच्छा है। कालपुरुष सबसे अधिक बलवान होता है।" ३४ महाप्रस्थान का यह समाचार सुनकर वे सभी बन्दर और भालू, जो लड़ाई में सहायता के लिए देवों के अवतार हो विस्तृत सेना में थे, सुग्रीव के साथ आ गये, क्योंकि उन्हें राम के चरण में अटूट भक्ति थी। ३५-३६ राम की आज्ञा का पालन करनेवाले महावीर हनुमान भी झटपट पहुँचे। ३७ भक्त विभीषण भी जल्द पहुँच गये। राम के किसी भी सेवक ने क्षण भर देर नहीं की। ३८ कृपालु राम को मालूम हो गया है कि सभी साथ चलने के लिए डटे हुए हैं। ३९ वहाँ सुग्रीव ने हाथ जोड़कर कहा— "हे राम! मैं मित्रता तोड़कर यहाँ नहीं रहूँगा। ४० मैंने अंगद को राजा बना दिया है। अब आपके साथ चलने का दृढ़ संकल्प कर लिया है।" ४१ राम ने विभीषण से कहा— "मेरा गुणगान

भ्राता सहित मिलन जत जाय। आदि देह निज इच्छा पाय ॥ ७४ ॥
अथवा निजरुचि उत्तम देह। करिय प्रवेश भक्त - पर - नेह ॥ ७५ ॥
देव - देव वर - पुरुष पुराण। चरण प्रणाम कोटि कल्याण ॥ ७६ ॥
विनत-विरञ्चि-वचन बुझि राम। देव सकल देखइत घनश्याम ॥ ७७ ॥
महा - प्रकाश सुलक्षण सहित। भेला चतुर्भुज चिन्ता-रहित ॥ ७८ ॥
लक्ष्मण शेष - नाग - तन सेह। धयल धराधर छल छथि जेह ॥ ७९ ॥
शङ्ख चक्र शोभा विस्तारि। भरत भेलाह तथा लवणारि ॥ ८० ॥
सीता रमा रमेश्वर राम। तन प्राचीन सुछवि गुणधाम ॥ ८१ ॥
बलाराति - गण विष्णु विलोक। परमेश्वर-गति जन के रोक ॥ ८२ ॥

॥ गीतिका छन्द ॥

आनन्द लोचन नीर निर्झर, निरख निर्जर रूप से ॥ ८३ ॥
जन यक्ष देव समक्ष लक्षण युक्त सुन्दर भूप से ॥ ८४ ॥
मुनि पितर प्रभृति प्रशंस गुण-गण तितल आनन्द-नोर सौं ॥ ८५ ॥
तन पुलक-निचय उचार जय जन, देखु लोचन-कोर सौं ॥ ८६ ॥

करनेवाले हैं। आपका निवास यह सारा जगत है। फिर भी मैं इतना ही कहूँगा कि मैं आपका दास हूँ। ७३ भ्राताओं के साथ जहाँ जाकर मिलन होगा, वहाँ अपनी इच्छा से आदि देह अर्थात् ईश्वरीय रूप प्राप्त कीजिए। ७४ अथवा यदि भक्तों पर अनुग्रह करना हो तो दूसरे उत्तम शरीर में अपनी इच्छा के अनुसार प्रवेश कीजिए। ७५ हे देवों के देव, पुरातन पुरुषश्रेष्ठ, आपके कल्याणकारी चरणों में मैं कोटिशः प्रणाम करता हूँ।" ७६ श्रद्धा से झुके हुए ब्रह्मा की बात समझकर बादल से साँवले राम सभी देवताओं के समक्ष सभी लक्षणों-सहित और चिन्ता से रहित चतुर्भुज विष्णु हो गये। ७७-७८ लक्ष्मण वही शेषनाग हो गये जो धरती को धारण किये हुए हैं। ७९ भरत और शत्रुघ्न दोनों शंख-चक्र-धारी हो गये। ८० सीता लक्ष्मी हो गयी। राम नारायण हो गये। इस प्राचीन रूप में दोनों की शोभा निराली थी और दोनों गुणों के भंडार थे। ८१ इन्द्र, विष्णु आदि देवता तमाशा देख रहे थे। ईश्वर की गति को साधारण मनुष्य कैसे रोक सकेगा? ८२ देवताओं की आँखों से आनन्द के आँसू झर रहे हैं और वे उनके रूप का दर्शन कर रहे हैं। ८३ मनुष्य, यक्ष, देव आदि सबों के सामने सर्वलक्षणसंयुक्त राजा ईश्वर के रूप में दिखाई देते हैं। ८४ मुनि, पितर आदि लोग आनन्द के आँसू से भीगे उनके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। ८५ लोगों के शरीर पुलकित हैं। वे जय-जयकार कर रहे हैं और आँखों से उनकी झाँकी देख रहे हैं। ८६ दयालु

अन्तःपुर अनुचर सह नारि। चलल भरत शत्रुघ्न विचारि॥ ५८॥
चलला राम चलल सुरलोक। बाल वृद्ध ककरा के रोक॥ ५९॥
चारू वर्ण शरण भल पाव। शान्त तपस्वी जन अगुआव॥ ६०॥
चल सुग्रीव सदल सदभाव। श्रीअनन्त रघुवर गुण गाव॥ ६१॥
सभ आनन्द गमन - उत्साह। विषय मनोरथ अस्त प्रवाह॥ ६२॥
स्थावर जङ्गम रहल न एक। सभ विरक्त बनि शुद्ध विवेक॥ ६३॥
शून्य अयोध्या जनसौँ तखन। पुरसौँ चलल महाप्रभु जखन॥ ६४॥
सरयूनदी देखल रघुवीर। अति प्रसन्न मन धर्म-शरीर॥ ६५॥
अयला ततय विरञ्चि महान। सकल देव ऋषि सिद्ध सुमान॥ ६६॥
गगन विराजय कोटि विमान। अतिथि काज रवि-कोटि समान॥ ६७॥
अतिशय सुरभि पवन बह बेश। सुमन-वृष्टि-संकुल से देश॥ ६८॥
विद्याधर किन्नर गण गाब। नानायन्त्र मृदंग बजाब॥ ६९॥
परश कयल सरयू-जल राम। पयरहि सर्वशक्ति गुणधाम॥ ७०॥
विधि तहिठाम जोड़ि दुहु हाथ। कहल समक्ष ठाढ़ रघुनाथ॥ ७१॥
अपने परब्रह्म परमेश। सदानन्द विभु विष्णु रमेश॥ ७२॥
जनता - पालक जगन्निवास। कहब तथापि थिकहुँ हम दास॥ ७३॥

शत्रुघ्न भी चले। ५८ राम चले। उनके पीछे सभी देवता लोग चले। बच्चे, बूढ़े, किसको कौन रोकता है? ५९ चारों वर्णों को राम की अच्छी शरण मिली। शान्त तपस्वी लोग आगे-आगे चले। ६० अपने दलों के साथ शुद्ध हृदय से सुग्रीव भी चले। और वे अनन्तश्रीविभूषित राम का गुण गाते चले। ६१ सभी लोग उत्साह और आनन्द में मग्न हैं। विषय-भोग की लालसा का ताँता टूट गया। ६२ क्या स्थावर या जंगम, एक-एक कर सभी विरागी होकर शुद्ध विवेकवाले हो गये। ६३ जब नगर से महाप्रभु रामचन्द्र चले तब सारी अयोध्या वीरान हो गई। ६४ तब राम ने धर्मस्वरूपा सरयू नदी का दर्शन किया। देखकर उनका मन परम प्रसन्न हो गया। ६५ वहाँ ब्रह्मा आये। सभी देवता लोग, ऋषि-मुनि और सिद्ध आये। ६६ आकाश में हजारों विमान छा गये। वे विमान अतिथियों के काम के लिए थे और करोड़ सूरज के समान चमक रहे थे। ६७ खुशबू से भरी हवा चल रही थी। फूल बरसने से सारा इलाका फूल ही फूल हो गया था। ६८ विद्याधर और किन्नर लोग तरह-तरह के बाजे और मृदंग बजाते गा रहे थे। ६९ सभी शक्तियों और गुणों के आगार राम ने चरण से सरयू के जल का स्पर्श किया। ७० हाथ जोड़कर सामने खड़े हो ब्रह्मा ने वहाँ राम की स्तुति की— ७१ "आप परब्रह्म परमेश्वर हैं। आप सदा आनन्दस्वरूप हैं, व्यापक हैं, लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप हैं। ७२ आप जन-समुदाय का पालन

॥ चौपाइ ॥

दिनकर - देह विमल कपिराज । देखथि सुचरित देव-समाज ॥ ९९ ॥
सरयूजल नर कर असनान । दिव्यरूप बनि चढ़ल विमान ॥ १०० ॥
स्वर्ग चलल मल कीट पतङ्ग । विष्णुक नगर अमर सन रङ्ग ॥ १०१ ॥
देखय तमाशा अयला जेह । तनिकर गति भेल उत्तम सेह ॥ १०२ ॥
उत्तर - राम - चरित गिरिजेश । श्री गिरिजा सौं कहलनि वेश ॥ १०३ ॥
पढ़थि शुनथि जे चरित उदार । उत्तम गति पावथि संसार ॥ १०४ ॥
की कर यमकिङ्कर खर-रोष । हर गिरिजा रघुवर सन्तोष ॥ १०५ ॥
रामायण पढ़ एको चरण । पातक-चय निश्चय हो हरण ॥ १०६ ॥
अति प्रसन्न रह उमा-महेश । एलय ओतए नहि रहय कलेश ॥ १०७ ॥
आदि - काव्य रामायण थीक । पढ़थि शुनथि जन रह निर्भीक ॥ १०८ ॥
विष्णुसदन पावथि से अन्त । श्रद्धासहित पढ़थि जे सन्त ॥ १०९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

॥ चन्दा झा कृत मैथिली रामायण समाप्त ॥

शरीर वाले सुग्रीव और देवगण लीला देख रहे थे। ९९ लोग सरयू के जल में स्नान करते और दिव्य रूप प्राप्त कर विमान पर चढ़ जाते। १०० यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़े भी देव-स्वरूप होकर विष्णुलोक जाने लगे। १०१ जो-जो यह तमाशा देखने आये, उन्हें भी यह उत्तम गति विष्णुलोक मिल गया। १०२ शिव ने गिरिजा को यह राम का उत्तर चरित सुनाया। १०३ संसार में जो कोई यह चरित पढ़ेंगे या सुनेंगे, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होगी। १०४ परम क्रोधी यमदूत भी उसका क्या कर सकेगा, जिस पर शिव, पार्वती और राम की कृपा है। १०५ जो एक चरण भी रामायण पढ़ेगा, उसका पापपुंज अवश्य दूर हो जाएगा। १०६ उस पर पार्वती और शिव परम प्रसन्न रहेंगे। इहलोक और परलोक में भी उसे कोई कष्ट न रहेगा। १०७ यह रामायण आदि काव्य है। जो इसे पढ़ते-सुनते वे सदा भय से मुक्त रहते हैं। १०८ जो सन्त श्रद्धा के साथ इसका पाठ करते हैं, वे जीवन के अन्त में विष्णुलोक वैकुण्ठ धाम पाते हैं। १०९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

॥ चन्दा झा कृत मैथिली रामायण समाप्त ॥

॥ सोरठा ॥

देखल द्रुहिण-समाज, कहल दयामय समय शुभ ॥ ८७ ॥
सेवक जन सभ आज, जयता हमरहि सङ्ग सुख ॥ ८८ ॥
जत वानर जत भालु, जत राक्षस सेवक सुखद ॥ ८९ ॥
कहलनि दीन-दयाल, हमर धाम सङ्गहिँ चलथि ॥ ९० ॥

॥ रूपमाला ॥

कहल विधि शुनु विष्णु गुण-निधि बुझल शासन नीक ॥ ९१ ॥
नाम अपि भवसिन्धु तर नर, इ तौँ समुचित थीक ॥ ९२ ॥
वन्द्य वानर-वृन्द वर-गुण, भालु भाग्य-उदार ॥ ९३ ॥
भक्ति-महिमा देख सुर-गण, केहन करुणागार ॥ ९४ ॥

॥ दोहा ॥

अज्ञानहुँ जे करय नर, राम नाम उच्चार ॥ ९५ ॥
अन्त पाव गति उत्तमा, घुरि न आब संसार ॥ ९६ ॥

॥ सोरठा ॥

परसथि सरयू-नीर, हृष्टपुष्ट नहि कष्ट मन ॥ ९७ ॥
पावथि प्रथम शरीर, जय जय धुनि कपि कोटि कर ॥ ९८ ॥

राम ने देवताओं की मंडली की ओर देखा और कहा— "अच्छा समय है। ८७ मेरे सभी सेवक लोग मेरे साथ ही सुखपूर्वक स्वर्ग चलेंगे। ८८ मेरी सेवा करनेवाले और मुझे मदद पहुँचानेवाले जितने बन्दर, भालू और राक्षस हैं वे सभी मेरे साथ ही मेरे धाम जाएँगे।" ८९-९० ब्रह्मा ने कहा— "हे गुणों की खान भगवान् नारायण, सुनिए। आपने जो आदेश किया वह अच्छा है। ९१ आपका नाम जप-जपकर लोग भव-सागर पार करेंगे, यह तो ठीक ही है।" ९२ गुणवान् वानर लोग भी आज पूजनीय हो गये। भालू लोग भी परम भाग्यवान् हो गये। ९३ देवता लोग भक्ति की महिमा देख रहे हैं और कहते हैं— "राम कितने करुणामय हैं।" ९४

रामायण का माहात्म्य

जो मनुष्य अनजान में भी राम-नाम का उच्चारण करेगा वह जीवन के अन्त में उत्तम गति (मोक्ष) पाएगा और फिर लौटकर इस संसार में नहीं आयेगा। ९५-९६ करोड़ों कपि लोग सरयू नदी के जल का स्पर्श करते ही हृष्ट-पुष्ट हो गये। मन में कोई तकलीफ़ न रही। ९७ सभी अपने पूर्व शरीर को प्राप्त करते जय-जयकार करने लगे। ९८ सूरज के समान चमकीले